सत्यार्थप्रकाश

दयानन्दसरस्वती

ओ३म्

सत्यार्थप्रकाशः

सम्पूर्ण सत्यार्थप्रकाश

Click now

वेदादिविविधसच्छास्त्रप्रमाणैः समन्वितः

श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य-
महर्षिदयानन्दसरस्वतीस्वामिविरचितः
(सर्वथा राजनियमे नियोजितः)

अथ सत्यार्थप्रकाशः

महर्षि दयानन्द सरस्वती रचित

अथ सत्यार्थप्रकाशस्य सूचिपत्रम्

[अथ पूर्वार्धः]

चतुर्थः समुल्लासः

पञ्चमः समुल्लासः

षष्ठः समुल्लासः

सप्तमः समुल्लासः

अष्टमः समुल्लासः

नवमः समुल्लासः

दशमः समुल्लासः

॥ इति पूर्वार्धः ॥

[अथ उत्तरार्धः]

एकादशः समुल्लासः

द्वादशः समुल्लासः

चतुर्दशः समुल्लासः

॥ इति उत्तरार्धः ॥

ओ३म्

अथ सत्यार्थप्रकाशः

श्रीयुक्तदयानन्दसरस्वतीस्वामिविरचितः

दयाया आनन्दो विलसति परःस्वात्मविदितः,
सरस्वत्यस्यान्ते निवसति मुदा सत्यशरणा।
तदाख्यातिर्यस्य प्रकटितगुणा राष्ट्रिपरमा,
सको दान्तः शान्तो विदितविदितो वेद्यविदितः ॥१॥

सत्यार्थस्य प्रकाशाय ग्रन्थस्तेनैव निर्मितः।
वेदादिसत्यशास्त्राणां प्रमाणैर्गुणसंयुतः ॥२॥

विशेषभागीह वृणोति यो हितं,
प्रियोऽत्र विद्यां सुकरोति तात्त्विकीम्।
अशेषदुःखात्तु विमुच्य विद्यया,
स मोक्षमाप्नोति न कामकामुकः ॥३॥

न ततः फलमस्ति हितं विदुषो,
ह्यधिकं परमं सुलभन्नु पदम्।
लभते सुयतो भवतीह सुखी,
कपटि सुसुखी भविता न सदा ॥४॥

धर्मात्मा विजयी स शास्त्रशरणो विज्ञानविद्यावरोऽ-धर्मेणैव हतो विकारसहितोऽधर्मस्सुदुःखप्रदः।
येनाऽसौ विधिवाक्यमानमननात् पाखण्डखण्डः कृतः,
सत्यं यो विदधाति शास्त्रविहितं धन्योऽस्तु तादृग्घि सः ॥५॥ *१

---

*१. ये श्लोक सत्यार्थप्रकाश (प्रथम संस्करण, १८७५) की मूलप्रति में विषयसूची के पश्चात् लिखे हुये हैं। महर्षि दयानन्द के **'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका'**, **'संस्कारविधि'**, **'आर्याभिविनय'** आदि ग्रन्थों में भी इसी प्रकार श्लोक लिखने की शैली मिलती है। ये श्लोक प्रथम और द्वितीय संस्करण में किसी कारणवश प्रकाशित नहीं हो पाये थे। ऋषिकृत श्लोकों को सुरक्षित रखने और उनकी शैलीगत परम्परा को संरक्षित रखने के लिए यहां प्रकाशित किये जा रहे हैं।

(परोपकारिणी सभा द्वारा प्रकाशित संस्करण ३९ में टिप्पणी)

॥ओ३म् सच्चिदानन्दायेश्वराय नमो नमः॥

भूमिका

'सत्यार्थप्रकाश' को दूसरी वार शुद्ध कर छपवाया है; क्योंकि जिस समय मैंने यह ग्रन्थ बनाया था, उस समय और उससे पूर्व संस्कृत-भाषण करना, पठन-पाठन में संस्कृत ही बोलने का अभ्यास रहना और जन्मभूमि की भाषा **'गुजराती'** थी, इत्यादि कारणों से मुझको इस भाषा का विशेष परिज्ञान न था। अब **इसको भाषा के व्याकरणानुसार अच्छे प्रकार जानकर अभ्यास भी कर लिया है, इसलिये इस समय इसकी भाषा पूर्व से उत्तम हुई है।** कहीं-कहीं शब्द, वाक्यरचना का भेद हुआ है, वह करना उचित था; क्योंकि उनका भेद किये विना भाषा की परिपाटी सुधरनी कठिन थी। परन्तु अर्थ का भेद नहीं किया गया है; प्रत्युत विशेष तो लिखा गया है। हाँ, जो [-जो] प्रथम छपने में कहीं-कहीं भूल रही थी, वह-वह निकाल-शोधकर ठीक-ठीक कर दी गई है।

यह ग्रन्थ १४ चौदह समुल्लासों अर्थात् चौदह विभागों में रचित हुआ है। इसमें १० दश समुल्लास **'पूर्वार्द्ध'** और चार **'उत्तरार्द्ध'** में बने हैं, परन्तु **अन्त के दो समुल्लास और पश्चात् स्वसिद्धान्त किसी कारण से प्रथम नहीं छप सके थे,** अब वे भी छपवा दिये हैं।

१. प्रथम समुल्लास में ईश्वर के 'ओङ्कार'-आदि नामों की व्याख्या।

२. द्वितीय समुल्लास में सन्तानों की शिक्षा।

३. तृतीय समुल्लास में ब्रह्मचर्य, पठन-पाठनव्यवस्था, सत्यासत्य ग्रन्थों के नाम और पढ़ने-पढ़ाने की रीति।

४. चतुर्थ समुल्लास में [समावर्तन] विवाह और गृहाश्रम का व्यवहार।

५. पञ्चम समुल्लास में वानप्रस्थ और संन्यासाश्रम का विधि।

६. छठे समुल्लास में राजधर्म।

७. सप्तम समुल्लास में वेद-ईश्वर विषय।

८. अष्टम समुल्लास में जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय।

९. नवम समुल्लास में विद्या-अविद्या, बन्ध और मोक्ष की व्याख्या।

१०. दशवें समुल्लास में आचार-अनाचार, भक्ष्याभक्ष्य विषय।

११. एकादश समुल्लास में आर्यावर्तीय मतमतान्तरों के खण्डन-मण्डन का विषय।

१२. द्वादश समुल्लास में चार्वाक, बौद्ध और जैन-मत का विषय।

१३. त्रयोदश समुल्लास में ईसाई-मत का विषय।

१४. चौदहवें समुल्लास में मुसलमानों के मत का विषय।

और चौदह समुल्लासों के अन्त में आर्यों के सनातन वेदविहित-मत की विशेष व्याख्या लिखी है, जिसको मैं भी यथावत् मानता हूँ।

मेरा इस ग्रन्थ के बनाने का प्रयोजन सत्य-अर्थ का प्रकाश करना है, अर्थात् जो सत्य है उसको सत्य और जो मिथ्या है उसको मिथ्या ही प्रतिपादित करना 'सत्य अर्थ का प्रकाश' समझा है। वह सत्य नहीं कहाता जो सत्य के स्थान में असत्य और असत्य के स्थान में सत्य का प्रकाश किया जाय; किन्तु जो पदार्थ जैसा है उसको वैसा ही कहना, लिखना और मानना सत्य कहाता है। जो मनुष्य पक्षपाती होता है वह अपने असत्य को भी सत्य और दूसरे विरोधी मत-वाले के सत्य को भी असत्य सिद्ध करने में प्रवृत्त रहता है, इसलिये वह सत्य मत को प्राप्त नहीं होता। इसीलिये विद्वानों [और] आप्तों का यही मुख्य काम है कि उपदेश वा लेख द्वारा सब मनुष्यों के सामने

सत्यासत्य का स्वरूप समर्पित कर दें। पश्चात् मनुष्य लोग स्वयं अपना हिताहित समझकर सत्यार्थ का ग्रहण और मिथ्यार्थ का परित्याग करके, सदा आनन्द में रहैं।

यद्यपि मनुष्य का आत्मा सत्यासत्य का जाननेहारा है, तथापि अपने प्रयोजन की सिद्धि, हठ, दुराग्रह और अविद्यादि दोषों से सत्य को छोड़, असत्य पर झुक जाता है, परन्तु इस ग्रन्थ में ऐसी बात नहीं रक्खी है, और न किसी का मन दुखाना वा किसी की हानि का तात्पर्य है; किन्तु जिससे मनुष्य जाति की उन्नति और उपकार हो, सत्यासत्य को मनुष्य लोग जानकर सत्य का ग्रहण और असत्य का परित्याग करें [यही मेरा तात्पर्य है]; क्योंकि सत्योपदेश के विना अन्य कोई भी मनुष्यजाति की उन्नति का कारण नहीं है।

इस ग्रन्थ में जो कहीं-कहीं भूल-चूक से [कोई त्रुटि] अथवा शोधने तथा छापने में भूल-चूक रह जाय, उसको जानने-जनाने पर, जैसा वह सत्य होगा, वैसा ही कर दिया जायगा। और जो कोई पक्षपात से अन्यथा शङ्का वा खण्डन-मण्डन करेगा, उस पर ध्यान न दिया जायगा। **हाँ, जो वह मनुष्यमात्र का हितैषी होकर कुछ जनावेगा, उसको सत्य-सत्य समझने पर, उसका मत संगृहीत होगा।**

यद्यपि आज-कल बहुत से विद्वान् प्रत्येक मत में हैं, वे पक्षपात छोड़ सर्वतन्त्र-सिद्धान्त अर्थात् जो-जो बातें सबके अनुकूल, सबमें सत्य हैं,

उनका ग्रहण और जो एक-दूसरे से विरुद्ध बातें हैं, उनका त्याग कर परस्पर प्रीति से वर्तें-वर्तावें, तो जगत् का पूर्ण हित होवे। क्योंकि विद्वानों के विरोध से अविद्वानों में विरोध बढ़कर, अनेकविध दुःखों की वृद्धि और सुखों की हानि होती है। इस हानि ने, जो कि स्वार्थी मनुष्यों को प्रिय है, सब मनुष्यों को दुःखसागर में डुबा दिया है। इनमें से जो कोई सार्वजनिक हित लक्ष्य में धर प्रवृत्त होता है, उससे स्वार्थी लोग विरोध करने में तत्पर होकर, अनेक प्रकार विघ्न करते हैं। परन्तु—

"सत्यमेव जयते नानृतं सत्येन पन्था विततो देवयानः"

[मुण्डक-उप० ३। १। ६]

=सर्वदा सत्य का विजय और असत्य का पराजय और सत्य से ही विद्वानों का मार्ग विस्तृत होता है। इस दृढ़निश्चय के आलम्बन से आप्त लोग परोपकार करने से उदासीन होकर कभी सत्यार्थ-प्रकाश करने से नहीं हटते। यह बड़ा दृढ़निश्चय है कि—

"यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम्"

यह गीता का वचन है [१८। ३७]।

इसका अभिप्राय यह है कि जो-जो विद्या और धर्मप्राप्ति के कर्म हैं, वे प्रथम करने में विष के तुल्य और पश्चात् अमृत के सदृश होते हैं; ऐसी

बातों को चित्त में धरके मैंने इस ग्रन्थ को रचा है। श्रोता वा पाठकगण भी प्रथम प्रेम से देखके, इस ग्रन्थ का सत्य-सत्य तात्पर्य जानकर यथेष्ट करें।

इसमें यह अभिप्राय रक्खा गया है कि जो-जो सब मतों में सत्य-सत्य बातें हैं, वे-वे सबमें अविरुद्ध होने से उनका स्वीकार करके, जो-जो सब मतमतान्तरों में मिथ्या बातें हैं उन-उनका खण्डन किया है। **इसमें यह भी अभिप्राय रक्खा है कि सब मतमतान्तरों की गुप्त वा प्रगट बुरी बातों का प्रकाश कर, विद्वान्-अविद्वान् सब साधारण मनुष्यों के सामने रक्खा है, जिससे सबसे सबका विचार होकर, परस्पर प्रेमी होके, एक सत्यमतस्थ होवें।**

यद्यपि मैं आर्यावर्त देश में उत्पन्न हुआ और वसता हूँ; तथापि जैसे इस देश के मतमतान्तरों की झूठी बातों का पक्षपात न कर, यथातथ्य प्रकाश करता हूँ, वैसे ही दूसरे देश वा मत-वालों के साथ भी वैसा ही वर्तता हूँ। जैसा स्वदेशवालों के साथ मनुष्योन्नति के विषय में वर्तता हूँ, वैसा विदेशियों के साथ भी [वर्तता हूँ]; तथा सब सज्जनों को भी वैसा वर्तना योग्य है। क्योंकि मैं भी जो किसी एक का पक्षपाती होता, तो जैसे आजकल के [मत-वाले] स्वमत की स्तुति, मण्डन और प्रचार करते और दूसरे मत की निन्दा, हानि और [उसको] बन्द करने में तत्पर होते हैं, वैसे मैं भी होता; परन्तु ऐसी बातें मनुष्यपन से बहिः हैं। क्योंकि जैसे पशु बलवान् होकर निर्बलों को दुःख देते और मार भी डालते हैं, जब मनुष्य-शरीर पाके वैसे ही कर्म करते हैं, तो वे

मनुष्य-स्वभावयुक्त नहीं, किन्तु पशुवत् हैं। **और जो बलवान् होकर निर्बलों की रक्षा करता है, वही 'मनुष्य' कहाता है। और जो स्वार्थवश होकर परहानि-मात्र करता रहता है, वह जानो 'पशुओं का बड़ा भाई'** है।

आर्यावर्तीयों के विषय में विशेषकर ग्यारहवें समुल्लास तक लिखा है। इन समुल्लासों में जो सत्यमत प्रकाशित किया है, वह वेदोक्त होने से मुझको सर्वथा मन्तव्य है, और जिन नवीन पुराण, तन्त्रादि ग्रन्थोक्त बातों का खण्डन किया है, वे त्यक्तव्य हैं।

यद्यपि जो १२ वें समुल्लास में चार्वाक का मत लिखा है वह इस समय क्षीणास्त-सा है, और यह चार्वाक बौद्ध-जैन से बहुत सम्बन्ध 'अनीश्वरवाद'-आदि में रखता है। यह चार्वाक सबसे बड़ा नास्तिक शिरोमणि है। इसकी चेष्टा को रोकना आवश्यक है; क्योंकि **जो मिथ्या बात न रोकी जाय, तो संसार में बहुत-से अनर्थ प्रवृत्त हो जायं।**

चार्वाक का जो मत है वह बौद्ध और जैन का मत है, वह भी १२वें समुल्लास में संक्षेप से लिखा गया है। और बौद्धों का भी जैनियों और चार्वाक के मत के साथ मेल है, और कुछ थोड़ा-सा विरोध भी है। और जैन-मत भी बहुत-से अंशों में चार्वाक और बौद्धों के साथ मेल रखता है; और थोड़ी-सी बातों में भेद है। इसलिये जैनों की भिन्न शाखा गिनी जाती है। वह भेद १२वें समुल्लास में लिख दिया है, यथायोग्य वहीं समझ लेना।

जो इनका वैभिन्न्य है, सो भी बारहवें समुल्लास में दिखलाया है। बौद्धमत और जैनमत का विषय भी लिखा है।

इनमें से बौद्धों के **'दीपवंश'**-आदि प्राचीन ग्रन्थों से बौद्धमत संग्रह **'सर्वदर्शनसंग्रह'** में दिखलाया है, उसमें से यहाँ लिखा है। और जैनियों के निम्नलिखित सिद्धान्तों के पुस्तक हैं, उनमें से—

४ (चार) मूल सूत्र—१. आवश्यक सूत्र, २. विशेष आवश्यक सूत्र, ३. दशवैकालिक सूत्र, और ४. पाक्षिक सूत्र।

११ (ग्यारह) अङ्ग—१. आचारांगसूत्र, २. सुगडांगसूत्र, ३. थाणांगसूत्र, ४. समवायांगसूत्र, ५. भगवतीसूत्र, ६. ज्ञाताधर्मकथासूत्र, ७. उपासकदशासूत्र, ८. अन्तगड़दशासूत्र, ९. अनुत्तरोववाईसूत्र, १०. विपाकसूत्र और ११. प्रश्नव्याकरणसूत्र।

१२ (बारह) उपाङ्ग—१. उपवाईसूत्र, २. रावप्सेनीसूत्र, ३. जीवाभिगमसूत्र, ४. पन्नगणासूत्र, ५. जम्बुद्वीपपन्नतिसूत्र, ६. चन्दपन्नतिसूत्र, ७. सूरपन्नतिसूत्र, ८. निरियावलीसूत्र, ९. कप्पियासूत्र, १०. कपबड़ीसयासूत्र, ११. पुप्पियासूत्र और १२. पुप्पचूलियासूत्र।

५ (पाँच) कल्पसूत्र—१. उत्तराध्ययनसूत्र, २. निशीथसूत्र, ३. कल्पसूत्र, ४. व्यवहारसूत्र और ५. जीतकल्पसूत्र।

६ (छः) छेद—१. महानिशीथबृहद्वाचनासूत्र, २. महानिशीथलघुवाचनासूत्र, ३. मध्यमवाचनासूत्र, ४. पिण्डनिरुक्तिसूत्र, ५. औघनिरुक्तिसूत्र, ६. पर्यूषणासूत्र।

१० (दश) पयन्न-सूत्र—१. चतुस्सरणसूत्र, २. पञ्चखाणसूत्र, ३. तदुल-वैयालिकसूत्र, ४. भक्तिपरिज्ञानसूत्र, ५. महाप्रत्याख्यानसूत्र, ६. चन्दाविजयसूत्र, ७. गणीविजयसूत्र, ८. मरणसमाधिसूत्र, ९. देवेन्द्रस्तवनसूत्र, और १०. संसारसूत्र तथा नन्दीसूत्र, अनुयोगोद्धारसूत्र भी प्रामाणिक मानते हैं।

५ पञ्चाङ्ग—१. पूर्व सब ग्रन्थों की टीका, २. निरुक्ति, ३. चरणी, ४. भाष्य; ये चार अवयव और सब **'मूल'** मिलके 'पञ्चाङ्ग' कहाते हैं।

इनमें **'ढूंढिया'** अवयवों को नहीं मानते। और इनसे भिन्न भी अनेक ग्रन्थ हैं कि जिनको जैनी लोग मानते हैं। इनके मत पर विशेष विचार बारहवें समुल्लास में देख लीजिये।

जैनियों के ग्रन्थों में लाखों पुनरुक्त-दोष हैं। और इनका यह भी स्वभाव है कि जो अपना ग्रन्थ दूसरे मत-वाले के हाथ में हो, वा छपा हो, तो कोई-कोई उस ग्रन्थ को अप्रमाण कहते हैं। यह बात उनकी मिथ्या है; क्योंकि जिसको कोई माने, कोई न माने, इससे वह ग्रन्थ जैनमत से बाहर नहीं हो सकता। हाँ, जिसको कोई न माने और न कभी किसी जैनी ने

माना हो, तब तो अग्राह्य हो सकता है; परन्तु ऐसा कोई ग्रन्थ नहीं है कि जिसको कोई भी जैनी न मानता हो। इसलिये जो जिस ग्रन्थ को मानता होगा, उस ग्रन्थस्थ विषयक खण्डन-मण्डन भी उसी के लिये समझा जाता है; परन्तु कितने ही ऐसे भी हैं कि उस ग्रन्थ को मानते-जानते हों, तो भी सभा वा संवाद में बदल जाते हैं। इसी हेतु से जैन लोग अपने ग्रन्थों को छिपा रखते हैं, दूसरे मतस्थ को न देते, न सुनाते, न पढ़ाते; इसलिये कि उनमें ऐसी-ऐसी असम्भव बातें भरी हैं जिनका कोई भी उत्तर जैनियों में से नहीं दे सकता। **झूठ बात का छोड़ देना ही उत्तर है।**

१३वें समुल्लास में ईसाइयों का मत लिखा है। ये लोग **'बाइबल'** को अपना धर्मपुस्तक मानते हैं। इनका विशेष समाचार उसी तेरहवें समुल्लास में देखिये।

और चौदहवें समुल्लास में मुसलमानों के मतविषय में लिखा है। ये लोग **'कुरान'** को अपने मत का मूल पुस्तक मानते हैं। इनका भी विशेष व्यवहार १४वें समुल्लास में देखिये। और इसके आगे वैदिकमत- विषय में लिखा है।

जो कोई इस ग्रन्थ को कर्त्ता के तात्पर्य से विरुद्ध-मनसा से देखेगा, उसको कुछ भी अभिप्राय विदित न होगा। क्योंकि वाक्यार्थबोध में चार कारण होते हैं—**आकांक्षा, योग्यता, आसत्ति** और **तात्पर्य**। जब इन चारों बातों

पर ध्यान देकर, जो पुरुष ग्रन्थ को देखता है, तब उसको ग्रन्थ का अभिप्राय यथायोग्य विदित होता है—

'आकांक्षा'—किसी विषय पर वक्ता की और वाक्यस्थ पदों की आकांक्षा परस्पर होती है।

'योग्यता'—वह कहाती है कि जिससे जो हो सके; जैसे, जल से सींचना।

'आसत्ति'—जिस पद के साथ जिसका सम्बन्ध हो, उसी के समीप उस पद को बोलना वा लिखना।

'तात्पर्य'—जिसके लिये वक्ता ने शब्दोच्चारण वा लेख किया हो, उसी के साथ उस वचन वा लेख को युक्त करना।

बहुत-से हठी-दुराग्रही मनुष्य होते हैं कि जो वक्ता के अभिप्राय से विरुद्ध कल्पना किया करते हैं, विशेषकर मत-वाले लोग। क्योंकि मत के आग्रह से उनकी बुद्धि अन्धकार में फसके नष्ट हो जाती है। **इसलिये जैसा मैं पुराणों, जैनियों के ग्रन्थों, बाइबल और कुरान को प्रथम ही बुरी दृष्टि से न देखकर, उनमें से गुणों का ग्रहण और दोषों का त्याग तथा अन्य मनुष्यजाति की उन्नति के लिये प्रयत्न करता हूँ, वैसा सबको करना योग्य है।**

इन मतों के थोड़े-थोड़े ही दोष प्रकाशित किये हैं, जिनको देखकर मनुष्य लोग सत्यासत्य मत का निर्णय कर सकें और सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग करने-कराने में समर्थ होवें। **क्योंकि एक मनुष्य-जाति में बहकाकर, विरोध-बुद्धि कराके, एक-दूसरे को शत्रु बना, लड़ा मारना विद्वानों के स्वभाव से बहिः है।**

यद्यपि इस ग्रन्थ को देखकर अविद्वान् लोग अन्यथा ही विचारेंगे, तथापि बुद्धिमान् लोग यथायोग्य इसका अभिप्राय समझेंगे। इसलिये मैं अपने परिश्रम को सफल समझता हूँ और अपना अभिप्राय सब सज्जनों के सामने धरता हूँ। **इसको देख-दिखलाके, मेरे श्रम को सफल करें। और इसी प्रकार पक्षपात न करके सत्यार्थ का प्रकाश करना मुझ वा सब महाशयों का मुख्य कर्त्तव्य कर्म है।**

सर्वात्मा, सर्वान्तर्यामी, सच्चिदानन्द परमात्मा अपनी कृपा से इस आशय को विस्तृत और चिरस्थायी करे।

॥अलमतिविस्तरेण बुद्धिमद्-विद्वद्वरशिरोमणिषु॥

॥इति भूमिका॥

स्थान महाराणा जी का उदयपुर
भाद्रपद, शुक्लपक्ष, सम्वत् १९३९

(स्वामी) दयानन्द सरस्वती

॥ओ३म्॥

अथ सत्यार्थप्रकाशः

[अथ प्रथमसमुल्लासारम्भः]

[अथ-ओङ्कारादि-ईश्वरनामानि व्याख्यास्यामः]

[इस समुल्लास में 'ओङ्कार' आदि ईश्वर-नामों की व्याख्या करेंगे]

ओ३म् शन्नों मित्रः शं वरुंणः शन्नों भवत्वर्यमा।
ओ३म् शन्नऽइन्द्रो बृहस्पतिः शन्नो विष्णुंरुरुक्रमः॥
नमो ब्रह्मणे नमंस्ते वायो त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मांसि। त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्मं वदिष्यामि ऋतं वंदिष्यामि सत्यं
वंदिष्यामि तन्मामंवतु तद्वक्तारंमवतु। अवंतु मामंवतु वक्तारंम्।
ओ३म् शान्तिश्शान्तिश्शान्तिंः॥१॥

[तुलना—तैत्ति०आ०, प्रपा० ७। अनु० १]

['ओम्' की संक्षिप्त व्याख्या]

अर्थ—**(ओ३म्)** जो यह **'ओङ्कार'** शब्द है, यह परमेश्वर का सर्वोत्तम नाम है, क्योंकि इसमें जो **'अ', 'उ'** और **'म्'** तीन अक्षर हैं वे मिलके एक **'ओम्'** समुदाय हुआ है। इस एक नाम से परमेश्वर के बहुत नाम आते हैं, जैसे—**अकार** से 'विराट्', 'अग्नि' और 'विश्व'-आदि। **उकार** से 'हिरण्यगर्भ', 'वायु' और 'तैजस'-आदि। **मकार** से 'ईश्वर', 'आदित्य' और 'प्राज्ञ'-आदि नामों का वाचक और ग्राहक है। उसका ऐसा ही वेदादि सत्यशास्त्रों में स्पष्ट व्याख्यान किया है कि **प्रकरणानुकूल** ये सब नाम परमेश्वर के ही हैं।

[अनेकार्थक शब्दों के अर्थ-निश्चय में हेतु]

प्रश्न—परमेश्वर से भिन्न अर्थों के वाचक **'विराट्'** आदि नाम क्यों नहीं? [क्योंकि] ब्रह्माण्ड, पृथिव्यादि भूत, मनुष्य, विद्वान्, इन्द्र आदि देवताओं और वैद्यकशास्त्र में शुण्ठी-आदि ओषधियों के भी ये नाम लिखे हैं।

उत्तर—हैं, परन्तु परमात्मा के भी हैं।

प्रश्न—हम केवल **'देवों'** का ग्रहण इन नामों से करते हैं।

उत्तर—आपके ग्रहण करने में क्या प्रमाण है?

प्रश्न—**'देव'** सब प्रसिद्ध और वे उत्तम भी हैं, इससे मैं उनका ग्रहण करता हूँ।

उत्तर—क्या परमेश्वर अप्रसिद्ध और उससे कोई उत्तम भी है? पुनः ये नाम परमेश्वर के भी क्यों नहीं मानते? जब परमेश्वर अप्रसिद्ध [नहीं] और उसके तुल्य [भी] कोई नहीं, तो उससे उत्तम कोई क्योंकर हो सकेगा? इससे आपका यह कहना सत्य नहीं; क्योंकि आपके इस कहने में बहुत-से दोष भी आते हैं, जैसे— **'उपस्थितं परित्यज्याऽनुपस्थितं याचत इति बाधितन्यायः'**=किसी ने किसी के लिये भोजन का पदार्थ रखके कहा कि 'आप भोजन कीजिये।' और वह जो उसको छोड़के अप्राप्त भोजन के लिये जहाँ-तहाँ भ्रमण करे, उसको बुद्धिमान् न जानना चाहिये; क्योंकि वह उपस्थित नाम समीप प्राप्त हुए पदार्थ को छोड़के अनुपस्थित अर्थात् अप्राप्त पदार्थ की प्राप्ति के लिये श्रम करता है। इससे, जैसे वह पुरुष बुद्धिमान् नहीं, वैसे ही आपका कथन हुआ; क्योंकि आप उन **'विराट्'** आदि नामों के जो प्रसिद्ध, प्रमाणसिद्ध **'परमेश्वर'** और **'ब्रह्माण्ड'**-आदि उपस्थित अर्थों का परित्याग करके असम्भव और अनुपस्थित 'देव'-आदि के ग्रहण में श्रम करते हैं; इसमें कोई भी प्रमाण वा युक्ति नहीं।

[अर्थज्ञान में सहायक—प्रकरण]

जो आप ऐसा कहें कि 'जहाँ जिसका **प्रकरण** है वहाँ उसी का ग्रहण करना योग्य है।' जैसे, किसी ने किसी से कहा कि **'हे भृत्य! त्वं सैन्धवमानय'**='तू सैन्धव को ले आ।' तब उसको समय अर्थात् प्रकरण का विचार करना आवश्यक है; क्योंकि **'सैन्धव'** नाम दो पदार्थों का है, एक घोड़े और दूसरा लवण का। जो स्वस्वामी के गमन का समय हो तो घोड़े, और भोजन का काल हो तो लवण को ले आना उचित है। और जो

गमन-समय में लवण और भोजनसमय में घोड़े को ले आवे, तो उसका स्वामी उसपर क्रुद्ध होकर कहेगा कि 'तू निर्बुद्धि पुरुष है। गमनसमय में लवण और भोजनकाल में घोड़े को लाने का क्या प्रयोजन था? तू **प्रकरणवित्** नहीं है; नहीं तो जिस समय में जिसको लाना चाहिये था, उसी को लाता। जो तुझको **प्रकरण** का विचार करना आवश्यक था, वह तूने नहीं किया, इससे तू मूर्ख है, मेरे पास से चला जा।' इससे क्या सिद्ध हुआ कि **जहाँ जिसका ग्रहण करना उचित हो, वहाँ उसी अर्थ का ग्रहण करना चाहिये।** तो ऐसा ही हम और आप सब लोगों को मानना और करना भी चाहिये।

अथ मन्त्रार्थः

ओं खं ब्रह्म॥१॥ यजुर्वेद, अध्याय ४०। मन्त्र १७॥

देखिये, वेदों में ऐसे-ऐसे प्रकरणों में **'ओम्'** आदि परमेश्वर के नाम हैं—

ओमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीत॥२॥

छान्दोग्य उपनिषत्, [प्रपा॰ १। खण्ड १। मन्त्र १]

ओमित्येतदक्षरमिदꣳ सर्वं तस्योपव्याख्यानम्॥३॥

माण्डूक्य [उपनिषद् १]।

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत् ॥४॥

कठोपनिषदि, [वल्ली २। मन्त्र १५]

प्रशासितारं सर्वेषामणीयांसमणोरपि।

रुक्माभं स्वप्नधीगम्यं विद्यात्तं पुरुषं परम्॥५॥

एतमेके वदत्यग्निं मनुमन्ये प्रजापतिम्।

इन्द्रमेके परे प्राणमपरे ब्रह्म शाश्वतम्॥६॥

मनुस्मृति, अध्याय १२। श्लोक [१२२]। १२३।

स ब्रह्मा स शिवः सेन्द्रः सोऽक्षरः परमः स्वराट्।

स एव विष्णुः स प्राणः स कालाग्निः स चन्द्रमाः॥७॥

कैवल्य उपनिषद्॥ [खण्ड १। मन्त्र ८]

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।

एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः॥८॥

ऋग्वेदे, मण्डले १। सूक्त १६४। मन्त्र ४६॥

भूरसि भूमिरस्यदितिरसि विश्वधाया विश्वस्य भुवनस्य धर्त्री।

पृथिवीं यच्छ पृथिवीं दृꣳह पृथिवीं मा हिꣳसीः॥९॥

यजुर्वेद, अ० [१३]। मन्त्र [१८]॥

मा हिꣳसीः पुरुषं जगत् [यजुर्वेद १६। ३]

इन्द्रो मह्ना रोदसी पप्रथच्छव इन्द्रः सूर्यमरोचयत्।

इन्द्रे ह विश्वा भुवनानि येमिर इन्द्रे स्वानास इन्दवः॥१०॥

सामवेद [उ०], प्रपाठक ७। त्रिक ८। मन्त्र २॥ [मन्त्र १५८८]

प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं वशे।

यो भूतः सर्वस्येश्वरो यस्मिन्त्सर्वं प्रतिष्ठितम्॥११॥

अथर्ववेदे, का० ११। प्रपा० २४। अ० २। मं० [१]॥ [११.४.१]

अर्थ—यहाँ इन प्रमाणों के लिखने में तात्पर्य वही है कि ऐसे-ऐसे **प्रकरणों** में **ओङ्कारादि** नामों से परमात्मा का ग्रहण होता है, [जैसा कि पहले] लिख आये हैं। तथा परमेश्वर का कोई भी नाम अनर्थक नहीं, जैसे लोक में दरिद्री आदि के 'धनपति' आदि नाम होते हैं। इससे यह सिद्ध हुआ कि [परमेश्वर के नाम] कहीं गौणिक, कहीं कार्मिक और कहीं स्वाभाविक अर्थों के वाचक हैं। **'ओम्'** आदि नाम सार्थक हैं, जैसे—

(ओं खं॰) 'अवतीत्योम्, आकाशमिव व्यापकत्वात् खम्, सर्वेभ्यो बृहत्त्वाद् ब्रह्म'=रक्षा करने से **'ओम्'**, आकाशवत् व्यापक होने से **'खम्'**, सबसे बड़ा होने से ईश्वर का नाम **'ब्रह्म'** है॥१॥

(ओमित्येत॰) 'ओम्' जिसका नाम है और जो कभी नष्ट नहीं होता, उसी की उपासना करनी योग्य है, अन्य की नहीं॥२॥

(ओमित्येतक्षर॰) सब वेदादि शास्त्रों में परमेश्वर का प्रधान और निज नाम **'ओम्'** को कहा है, अन्य सब गौणिक नाम हैं॥३॥

(सर्वे वेदा॰) क्योंकि सब वेद, सब धर्मानुष्ठानरूप तपश्चरण, जिसका कथन और मान्य करते और जिसकी प्राप्ति की इच्छा करके ब्रह्मचर्याश्रम करते हैं, उसका नाम **'ओम्'** है॥४॥

(प्रशासिता॰) जो सबको शिक्षा देनेहारा, सूक्ष्म से सूक्ष्म, स्वप्रकाश-स्वरूप, समाधिस्थ बुद्धि से जानने योग्य है, उसको परम **'पुरुष'** जानना चाहिये॥५॥

[एतमेके॰] और स्वप्रकाश [स्वरूप] होने से **'अग्नि'**, विज्ञानस्वरूप होने से **'मनु'** और सबका पालन करने से **'प्रजापति'**, परमैश्वर्यवान् होने से **'इन्द्र'**, सबका जीवनमूल होने से **'प्राण'** और निरन्तर व्यापक होने से परमेश्वर का नाम **'ब्रह्म'** है॥६॥

(स ब्रह्मा स शिवः) सब जगत् के बनाने से **'ब्रह्मा'**, मङ्गलमय और सबका कल्याणकर्त्ता होने से **'शिव'**, दुष्टों को दण्ड देके रुलाने से [वही] **'रुद्र'** [है]। **'यः सर्वमश्नुते न क्षरति न विनश्यति सः-अक्षरः', 'यः स्वयं राजते स स्वराट्', 'योऽग्निरिव कालः कलयिता प्रलयकर्त्ता स कालाग्निः-ईश्वरः', (अक्षरः)** जो सर्वत्र व्याप्त अविनाशी, **(स्वराट्)** स्वयं प्रकाशस्वरूप **(सः विष्णुः)** सर्वत्र व्यापक होने से **'विष्णु'**, और **(कालाग्निः)** प्रलय में [जो अग्नि के समान] सबका काल और काल का भी काल है, इसलिये परमेश्वर का नाम **'कालाग्नि'** है [स्वयं आनन्दस्वरूप और सबको आनन्द देनेवाला होने से परमेश्वर का नाम **'चन्द्रमा'** है]॥७॥

(इन्द्रं मित्रं॰) जो एक, अद्वितीय, सत्य ब्रह्म वस्तु है, उसी के इन्द्रादि सब नाम हैं। **'द्युषु शुद्धेषु पदार्थेषु भवो दिव्यः', 'शोभनानि पर्णानि**

पालनानि पूर्णानि कर्माणि वा यस्य सः सुपर्णः', 'यो गुर्वात्मा स गरुत्मान्', 'यो मातरिश्वा= वायुरिव बलवान् स मातरिश्वा'। (दिव्यः) जो प्रकृत्यादि दिव्य पदार्थों में व्याप्त, **(सुपर्णः)** जिसके उत्तम पालन और पूर्ण कर्म हैं, **(गरुत्मान्)** जिसका आत्मा अर्थात् स्वरूप महान् है, **(मातरिश्वा)** जो वायु के समान अनन्त बलवान् है, इसलिये परमात्मा के **'दिव्य', 'सुपर्ण', 'गरुत्मान्'** और **'मातरिश्वा'** ये नाम हैं। **शेष नामों का अर्थ आगे लिखेंगे**॥८॥

(भूरसि भूमिरसि०) 'भवन्ति भूतानि यस्यां सा [भूः, वा] भूमिः'=जिसमें सब भूत=प्राणी [आश्रित] होते हैं, इसलिये ईश्वर का नाम ['भू', वा] **'भूमि'** है। **शेष नामों का अर्थ आगे लिखेंगे**॥९॥

(इन्द्रो मह्ना०) इसमें **'इन्द्र'** परमेश्वर का ही नाम है, इसलिये यह प्रमाण लिखा है॥१०॥

(प्राणाय०) जैसे **'प्राण'** के वश [में] सब शरीर [और] इन्द्रियाँ होती हैं, वैसे परमेश्वर के वश में सब जगत् रहता है [इससे परमेश्वर का नाम **'प्राण'** है]॥११॥

इत्यादि प्रमाणों के ठीक-ठीक अर्थों के जानने से इन नामों करके परमेश्वर का ही ग्रहण होता है। क्योंकि **'ओम्'** और **'अग्नि'** आदि नामों के मुख्य अर्थ से परमेश्वर का ही ग्रहण होता है, जैसा कि व्याकरण, निरुक्त,

ब्राह्मण, सूत्रादि [और] ऋषि-मुनियों के ग्रन्थों के व्याख्यानों से परमेश्वर का ग्रहण देखने में आता है, वैसा ग्रहण करना सबको योग्य है;

['अग्नि' आदि नामों के ईश्वर वा भौतिक अर्थ में नियामक हेतु]

परन्तु 'ओम्' यह तो केवल परमात्मा का ही नाम है। और अग्नि आदि नामों से परमेश्वर के ग्रहण में प्रकरण और विशेषण नियमकारक हैं।

इससे क्या सिद्ध हुआ कि जहाँ-जहाँ स्तुति, प्रार्थना, उपासना, [आदि प्रकरण और] सर्वज्ञ, व्यापक, शुद्ध, सनातन, सृष्टिकर्त्ता आदि विशेषण लिखे हैं, वहीं-वहीं इन नामों से परमेश्वर का ग्रहण होता है, और जहाँ-जहाँ ऐसे प्रकरण हैं कि—

ततो॑ वि॒राड॑जायत वि॒राजो॒ऽअधि॒ पूरु॑षः।

[यजु० ३१। ५]॥

श्रोत्रा॑द्वा॒युश्च॑ प्रा॒णश्च॒ मुखा॑द॒ग्निर॑जायत।

[यजु० ३१। १२]॥

तेन॑ दे॒वाऽअ॑यजन्त।

[यजु० ३१। ९]॥

प॒श्चाद् भूमि॒मथो॑ पु॒रः॥

[यजु० ३१। ५]॥

तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः। आकाशाद्वायुः। वायोरग्निः। अग्नेरापः। अद्भ्यः पृथिवी। पृथिव्या ओषधयः।

ओषधिभ्योऽन्नम्। अन्नाद्रेतः। रेतसः पुरुषः। स वा एष पुरुषोऽन्नरसमयः।

यह तैत्तिरीयोपनिषद् का वचन है। [ब्रह्म॰वल्ली अनुवाक १]

ऐसे **प्रकरणों** में विराट्, पुरुष, देव, आकाश, वायु, अग्नि, जल, भूमि आदि नाम लौकिक पदार्थों के होते हैं, क्योंकि जहाँ-जहाँ उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय [आदि व्यवहार और] अल्पज्ञ, जड़, दृश्य आदि विशेषण भी लिखे हों, वहाँ-वहाँ 'परमेश्वर' का ग्रहण नहीं होता। [क्योंकि] वह उत्पत्ति आदि व्यवहारों से पृथक् है और उपर्युक्त मन्त्रों में उत्पत्ति आदि व्यवहार हैं, इसी से यहाँ 'विराट्' आदि नामों से परमात्मा का ग्रहण न होके, संसारी पदार्थों का ग्रहण होता है। किन्तु **जहाँ-जहाँ सर्वज्ञ-आदि विशेषण हों, वहीं-वहीं परमात्मा और जहाँ-जहाँ इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख [आदि व्यवहार] और अल्पज्ञ-आदि विशेषण हों, वहाँ-वहाँ जीव का ग्रहण होता है, ऐसा सर्वत्र समझना चाहिये।** क्योंकि परमेश्वर का जन्म-मरण कभी नहीं होता, इससे 'विराट्' आदि नामों और जन्म-आदि विशेषणों से जगत् के जड़ और जीवादि पदार्थों का ग्रहण करना उचित है, परमेश्वर का नहीं।

अब जिस प्रकार **'विराट्'** आदि नामों से परमेश्वर का ग्रहण होता है, वह प्रकार नीचे लिखे प्रमाणे जानो—

['ओम्' की विस्तृत व्याख्या]

[१] अथ 'ओङ्कार'-अर्थः

[२] 'वि' उपसर्गपूर्वक **(राजृ दीप्तौ)** इस धातु से क्विप् प्रत्यय करने से 'विराट्' शब्द सिद्ध होता है। **'यो विविधं नाम चराऽचरं जगद्-राजयति प्रकाशयति स विराट्'**=विविध अर्थात् जो बहु प्रकार के [चराचर] जगत् को प्रकाशित करे, इससे **'विराट्'** नाम से परमेश्वर का ग्रहण होता है।

[३] **(अञ्चु गतिपूजनयोः) (अग, अगि, इण् गत्यर्थक)** धातुयें हैं, इनसे 'अग्नि' शब्द सिद्ध होता है। **'गतेस्त्रयोऽर्थाः—ज्ञानं गमनं प्राप्तिश्चेति, पूजनं नाम सत्कारः।' 'योऽञ्चति, अच्यतेऽगत्यङ्गति-एति वा सोऽयमग्निः'**=जो ज्ञानस्वरूप, सर्वज्ञ, जानने, प्राप्त होने और पूजा करने योग्य है, इससे उस परमेश्वर का नाम **'अग्नि'** है।

[४] **(विश प्रवेशने)** इस धातु से 'विश्व' शब्द सिद्ध होता है। **'विशन्ति प्रविष्टानि [सन्ति] सर्वाणि-आकाशादीनि भूतानि यस्मिन्, यो वाऽऽकाशादिषु सर्वेषु भूतेषु प्रविष्टः स विश्व ईश्वरः'**=जिसमें आकाशादि सब भूत प्रवेश कर रहे हैं अथवा जो इनमें व्याप्त होके प्रविष्ट हो रहा है, इसलिये उस परमेश्वर का नाम **'विश्व'** है।

इत्यादि नामों का ग्रहण **अकार** से होता है।

[५] **"ज्योतिर्वै हिरण्यम्", "तेजो वै हिरण्यम्"**
इत्यैतरेयशतपथब्राह्मणे।

[ऐत०ब्रा० ७। १२; शत०ब्रा० ६। ७। १। २]

"हिरण्यानि सूर्यादीनि तेजांसि गर्भे यस्य स हिरण्यगर्भः" अथवा **'यो हिरण्यानां सूर्यादीनां तेजसां गर्भ उत्पत्तिनिमित्तमधिकरणं स हिरण्यगर्भः'** =जिसमें सूर्यादि तेजवाले लोक उत्पन्न होके जिसके आधार में रहते हैं अथवा जो सूर्यादि तेजःस्वरूप पदार्थों का गर्भ नाम उत्पत्ति और निवास-स्थान है, इससे उस परमेश्वर का नाम **'हिरण्यगर्भ'** है। इसमें यजुर्वेद के मन्त्र का प्रमाण—

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेकऽआसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम॥

[यजुः, १३।४]॥

इत्यादि स्थलों में **'हिरण्यगर्भ'** से परमेश्वर का ही ग्रहण होता है।

[६] **(वा गतिगन्धनयोः)** इस धातु से 'वायु' शब्द सिद्ध होता है। **(गन्धनं हिंसनम्) 'यो वाति चराऽचरं जगद्- धरति [जीवयति, प्रलयति वा] बलिनां बलिष्ठः स वायुः'**=जो चराचर जगत् का धारण, जीवन और प्रलय करे और सब बलवानों से बलवान् है, इससे उस ईश्वर का नाम **'वायु'** है।

[७] **(तिज निशाने)** इस धातु से 'तेजः' और इससे तद्धित करने से 'तैजस' शब्द सिद्ध होता है। **[यः-तेजोमयः तेजसां सूर्यादीनां च प्रकाशकः सः तैजसः]** जो आप स्वयंप्रकाश [स्वरूप] और सूर्यादि तेजस्वी लोकों का प्रकाश करनेवाला है, इससे उस ईश्वर का नाम **'तैजस'** है।

इत्यादि नामार्थ **'उकार'** से ग्रहण होते हैं।

[८] **(ईश ऐश्वर्ये)** इस धातु से 'ईश्वर' शब्द सिद्ध होता है। **'य ईष्टे सर्वैश्वर्यवान् वर्त्तते स ईश्वरः'**=जिसका सत्य विचार, शील, ज्ञान और अनन्त ऐश्वर्य है, इससे उस परमात्मा का नाम **'ईश्वर'** है।

[९-१०] **(दो अवखण्डने, 'अवखण्डनं नाम विनाशः')** इस धातु से **'अदिति'** और इससे तद्धित करने से **'आदित्य'** शब्द सिद्ध होता है। **'न विद्यते विनाशो यस्य सोऽयमदितिः, अदितिरेव आदित्यः'**=जिसका विनाश कभी न हो [उसका नाम अदिति है, अदिति ही आदित्य है, इससे] उसी ईश्वर की **'आदित्य'** संज्ञा है।

[११-१२] **(ज्ञा अवबोधने)** 'प्र' पूर्वक इस धातु से **'प्रज्ञ'** और इससे तद्धित करने से **'प्राज्ञ'** शब्द सिद्ध होता है। **'यः प्रकृष्टतया चराऽचरस्य जगतो व्यवहारं जानाति स प्रज्ञः, प्रज्ञ एव प्राज्ञः'**=जो निर्भ्रान्त ज्ञानयुक्त सबसे उत्तम ज्ञानी है, [और] सब चराचर जगत् के व्यवहार को

यथावत् जानता है, [वह **प्रज्ञ** है, प्रज्ञ ही **प्राज्ञ** कहाता है] इससे उसी ईश्वर का नाम **'प्राज्ञ'** है।

इत्यादि नामार्थ **'मकार'** से गृहीत होते हैं।

जैसे एक-एक मात्रा से तीन-तीन अर्थ यहाँ व्याख्यात किये हैं, वैसे ही अन्य नामार्थ भी 'ओङ्कार' से जाने जाते हैं।

[मन्त्रगत 'मित्र' आदि नामों की व्याख्या]

[अथ प्रथम-मन्त्रार्थः]

जो **(शन्नो मित्रः शं व०)** इस मन्त्र में 'मित्र'-आदि नाम हैं, वे भी परमेश्वर के हैं; क्योंकि स्तुति, प्रार्थना, उपासना श्रेष्ठ की ही किई जाती है। **श्रेष्ठ उसको कहते हैं जो अपने गुण, कर्म, स्वभाव और सत्य-सत्य व्यवहारों में सबसे अधिक हो। उन सब श्रेष्ठों में भी जो अत्यन्त श्रेष्ठ [है], उसको परमेश्वर कहते हैं; जिसके तुल्य न कोई हुआ, न है, और न होगा।** जब तुल्य नहीं, तो उससे अधिक क्योंकर हो सकता है? जैसे परमेश्वर के सत्य, न्याय, दया, सर्वसामर्थ्य और सर्वज्ञत्वादि अनन्त गुण हैं, वैसे अन्य किसी जड़ वा जीव पदार्थ के नहीं हैं। जो पदार्थ सत्य है, उसके गुण, कर्म, स्वभाव भी सत्य ही होते हैं। **इसलिये सब मनुष्यों को योग्य है कि परमेश्वर की ही स्तुति, प्रार्थना और उपासना करें, उससे भिन्न की कभी न करें।** क्योंकि ब्रह्मा, विष्णु, महादेव नामक पूर्वज महाशय विद्वानों; दैत्य-दानवादि निकृष्ट मनुष्यों, और अन्य साधारण मनुष्यों ने भी परमेश्वर में ही विश्वास करके,

उसी की स्तुति, प्रार्थना और उपासना करी, उससे भिन्न की नहीं की; वैसे हम सबको करना योग्य है। **इसका विशेष विचार 'उपासना' और 'मुक्ति' के विषय में किया जायगा।**

[मित्रादि यहाँ ईश्वर के ही वाचक हैं]

प्रश्न—'मित्र' आदि नामों से 'सखा' और **'इन्द्र'**-आदि देवों के प्रसिद्ध व्यवहार देखने से उन्हीं का ग्रहण करना चाहिये।

उत्तर—यहां उनका ग्रहण करना योग्य नहीं; क्योंकि जो मनुष्य किसी का मित्र है, वही अन्य का शत्रु, और किसी से उदासीन भी देखने में आता है। इससे मुख्यार्थ में 'सखा' आदि का ग्रहण नहीं हो सकता; किन्तु जैसा परमेश्वर सब जगत् का निश्चित मित्र है, न किसी का शत्रु और न किसी से उदासीन है, इससे भिन्न कोई भी जीव इस प्रकार का कभी नहीं हो सकता। इसलिये परमात्मा का ही ग्रहण यहाँ होता है। हाँ, गौण अर्थ में 'मित्र'-आदि शब्द से 'सुहृत्'- आदि मनुष्यों का ग्रहण होता है।

[१३] **(ञिमिदा स्नेहने)** इस धातु से औणादिक 'क्त्र' प्रत्यय के होने से 'मित्र' शब्द सिद्ध होता है। **'यो मेदते, मेद्यति= स्निह्यति स्निह्यते वा स मित्रः'**=जो सबसे स्नेह करे और सबको प्रीति करने योग्य है, वह परमेश्वर सबका सच्चा 'मित्र' है, इससे उस परमेश्वर का नाम **'मित्र'** है।

[१४] **(वृञ् वरणे, वर ईप्सायाम्)** इन धातुओं से उणादि 'उनन्' प्रत्यय होने से 'वरुण' शब्द सिद्ध होता है। **'यः सर्वान् शिष्टान् मुमुक्षून्**

धर्मात्मनो वृणोति, अथवा यः शिष्टैर्मुमुक्षुभिर्धर्मात्मभिः व्रियते वर्यते वा स वरुणः परमेश्वरः’=जो आप्तों, योगियों, विद्वानों, मुक्ति की इच्छा करनेवालों, मुक्तों और धर्मात्माओं का स्वीकारकर्त्ता, अथवा जो शिष्टों, मुमुक्षुओं, मुक्तों और धर्मात्माओं से ग्रहण किया जाता है, वह ‘वरुण’ संज्ञक ईश्वर है। अथवा **‘वरुणो नाम वरः श्रेष्ठः**’= जिसलिये सबसे श्रेष्ठ है, इसलिये उस परमेश्वर का **‘वरुण’** नाम है।

[१५] **(ऋ गतिप्रापणयोः)** इस धातु से ‘यत्’ प्रत्यय करने से ‘अर्य’ शब्द सिद्ध होता है और ‘अर्य’ पूर्वक **‘माङ् माने’** इस धातु से ‘कनिन्’ प्रत्यय होने से **‘अर्यमा’** शब्द सिद्ध होता है। **‘योऽर्यान् स्वामिनो न्यायाधीशान् मिमीते मान्यान् करोति सोऽर्यमा**’=जो सत्य न्याय के करनेहारे मनुष्यों का मान्य और पाप तथा पुण्य करनेवालों के पाप और पुण्य के फलों का यथावत् सत्य-सत्य नियम करता है, इसी से उस परमेश्वर का नाम **‘अर्यमा’** है।

[१६] **(इदि परमैश्वर्ये)** इस धातु से ‘रन्’ प्रत्यय करने से ‘इन्द्र’ शब्द सिद्ध होता है। **‘य इन्दति परमैश्वर्यवान् भवति स इन्द्रः परमेश्वरः**’=जो अखिल ऐश्वर्ययुक्त है, इससे उस परमात्मा का नाम **‘इन्द्र’** है।

[१७] ‘बृहत्’ शब्दपूर्वक **(पा रक्षणे)** इस धातु से ‘डति’ प्रत्यय, ‘बृहत्’ के तकार का लोप और ‘सुट्’ आगम होने से ‘बृहस्पति’ शब्द सिद्ध होता है। **‘यो बृहतामाकाशादीनां पतिः स्वामी पालयिता स बृहस्पतिः**’=जो

बड़ों से भी बड़ा और बड़े आकाशादि ब्रह्माण्डों का स्वामी है, इससे उस परमेश्वर का नाम **'बृहस्पति'** है।

[१८] **(विष्लृ व्याप्तौ)** इस धातु से 'नु' प्रत्यय होकर 'विष्णु' शब्द सिद्ध हुआ है। **'वेवेष्टि व्याप्नोति चराऽचरं जगत् स विष्णुः परमात्मा'**=चर और अचररूप जगत् में व्यापक होने से परमात्मा का नाम **'विष्णु'** है।

[१९] **'उरुर्महान् क्रमः पराक्रमो यस्य स उरुक्रमः'**=अनन्त पराक्रमयुक्त होने से परमात्मा का नाम **'उरुक्रम'** है।

जो परमात्मा **(उरुक्रमः)** महापराक्रमयुक्त **(मित्रः)** सबका सुहृत्=अविरोधी है, वह **(शम्)** सुखकारक, वह **(वरुणः)** सर्वोत्तम **(शम्)** सुखस्वरूप, वह **(अर्यमा शम्)** सुखप्रचारक, वह **(इन्द्रः शम्)** सकल ऐश्वर्यदायक, वह **(बृहस्पतिः)** सबका अधिष्ठाता, विद्याप्रद और **(विष्णुः)** जो सबमें व्यापक परमेश्वर है, वह **(नः)** हमारा **(शम्)** कल्याणकारक **(भवतु)** हो।

[अथ द्वितीयमन्त्रार्थः]

(वायो ते ब्रह्मणे नमोऽस्तु) 'बृह बृहि वृद्धौ' इन धातुओं से **'ब्रह्म'** शब्द सिद्ध हुआ है। जो सबके ऊपर विराजमान, सबसे बड़ा, अनन्त-बलयुक्त परमात्मा है, उस ब्रह्म को हम नमस्कार करते हैं। हे परमेश्वर! **(त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि)** आप ही अन्तर्यामी रूप से प्रत्यक्ष **'ब्रह्म'** हो **(त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि)** मैं आप को ही प्रत्यक्ष ब्रह्म कहूँगा, क्योंकि

आप सब जगह में व्याप्त होके, सबको नित्य ही प्राप्त हैं **(ऋतं वदिष्यामि)** जो आपकी वेदस्थ यथार्थ आज्ञा है, उसी का मैं सबके लिये उपदेश और आचरण भी करूँगा **(सत्यं वदिष्यामि)** सत्य बोलूँगा, सत्य मानूँगा और सत्य ही करूँगा, **(तन्मामवतु)** सो आप मेरी रक्षा कीजिये। **(तद्वक्तारमवतु)** सो आप मुझ आप्त सत्यवक्ता की रक्षा कीजिये कि जिससे **आपकी आज्ञा में मेरी बुद्धि स्थिर होकर, विरुद्ध कभी न हो। क्योंकि जो आपकी आज्ञा है वही धर्म, और जो उससे विरुद्ध है वही अधर्म है। "अवतु मामवतु वक्तारम्"** यह दूसरी वार पाठ अधिकार्थ के लिये है। जैसे **'कश्चित् कञ्चित् प्रति वदति त्वं ग्रामं गच्छ, गच्छ'** इसमें दो वार क्रिया के उच्चारण से 'तू शीघ्र ही ग्राम को जा', ऐसा सिद्ध होता है। ऐसे ही यहाँ कि 'आप मेरी अवश्य रक्षा करो अर्थात् धर्म में सुनिश्चित [प्रेम] और अधर्म से घृणा सदा करूँ, ऐसी कृपा मुझ पर कीजिये। मैं आपका बड़ा उपकार मानूँगा।'

[त्रिविध ताप-निवारण]

(ओ३म् शान्तिश्शान्तिश्शान्तिः) इसमें तीन वार शान्तिपाठ का यह प्रयोजन है कि त्रिविधताप अर्थात् इस संसार में तीन प्रकार के दुःख हैं—

एक **'आध्यात्मिक'**=जो आत्मा [और] शरीर में अविद्या, राग, द्वेष, मूर्खता और ज्वर, पीड़ादि से होता है।

दूसरा **'आधिभौतिक'**=जो शत्रु, व्याघ्र और सर्पादि से प्राप्त होता है।

तीसरा **'आधिदैविक'**=अर्थात् जो अतिवृष्टि, अवृष्टि, अतिशीत, अति-उष्णता, मन और इन्द्रियों की अशान्ति से होता है।

इन तीन प्रकार के क्लेशों से आप हम लोगों को दूर करके कल्याणकारक कर्मों में सदा प्रवृत्त रखिये। क्योंकि आप ही कल्याणस्वरूप, सब संसार के कल्याणकर्त्ता और धार्मिक मुमुक्षुओं को कल्याण के दाता हैं। इसलिये आप स्वयं अपनी करुणा से सब जीवों के हृदय में प्रकाशित हूजिये कि जिससे सब जीव धर्म का आचरण [करके] और अधर्म को छोड़के परमानन्द को प्राप्त हों और दुःखों से पृथक् रहैं।

[अन्य ईश्वर-नामों की व्याख्या]

[२०] **"सूर्य्यंऽआत्मा जगंतस्तस्थुषंश्च"**

[यजुः, १३। ४६]

इस यजुर्वेद के वचन से जो **'जगत्'** नाम प्राणी=चेतन और जङ्गम अर्थात् जो चलते-फिरते हैं, **'तस्थुषः'**=अप्राणी जो स्थावर-जड़ अर्थात् पृथिवी आदि हैं, उन सबका आत्मा और स्वप्रकाशरूप होने [और] सबको प्रकाशित करने से परमेश्वर का नाम **'सूर्य'** है।

[२१-२२] **(अत सातत्यगमने)** इस धातु से **'आत्मा'** शब्द सिद्ध हुआ है। **'योऽतति व्याप्नोति स आत्मा'**=जो सब जीवादि जगत् में निरन्तर व्यापक हो रहा है। **'परश्चासौ-आत्मा च, यश्च आत्मभ्यो जीवेभ्यः सूक्ष्मेभ्यः परोऽतिसूक्ष्मः स परमात्मा'**=जो सब जीवों आदि से उत्कृष्ट

और जीव, प्रकृति तथा आकाश से भी अतिसूक्ष्म और सब जीवों का अन्तर्यामी आत्मा है, इससे ईश्वर का नाम **'परमात्मा'** है।

[२३] सामर्थ्यवाले का नाम **'ईश्वर'** है। **'य ईश्वरेषु समर्थेषु परमः श्रेष्ठः स परमेश्वरः'**=जो ईश्वरों अर्थात् समर्थों में समर्थ, जिसके तुल्य कोई भी न हो, उसका नाम **'परमेश्वर'** है।

[२४] **(षुञ् अभिषवे, षूङ् प्राणिगर्भविमोचने)** इन धातुओं से 'सविता' शब्द सिद्ध होता है। **'अभिषवः प्राणिगर्भविमोचनं चोत्पादनम्। यश्चराचरं जगत् सुनोति सूते वा- उत्पादयति स सविता परमेश्वरः'**=जो सब [चराचर] जगत् की उत्पत्ति करता है, इसलिये परमेश्वर का नाम **'सविता'** है।

[२५] **(दिवु, क्रीडा-विजिगीषा-व्यवहार-द्युति-स्तुति-मोद-मद-स्वप्न-कान्ति-गतिषु)** इस धातु से 'देव' शब्द सिद्ध होता है। **(क्रीडा)** जो शुद्ध जगत् को क्रीड़ा कराने, **(विजिगीषा)** धार्मिकों को जिताने की इच्छायुक्त, **(व्यवहार)** सबको चेष्टा के साधनोपसाधनों का दाता, **(द्युति)** स्वयंप्रकाशस्वरूप, सबका प्रकाशक **(स्तुति)** प्रशंसा के योग्य, **(मोद)** आप आनन्दस्वरूप और दूसरों को आनन्द देनेहारा, **(मद)** मदोन्मत्तों का ताड़नेहारा, **(स्वप्न)** सबके शयनार्थ रात्रि और प्रलय का करनेहारा, **(कान्ति)** कामना के योग्य, और **(गति)** ज्ञानस्वरूप है, इसलिये उस परमेश्वर का नाम **'देव'** है।

अथवा **'यो दीव्यति क्रीडति स देवः'**=जो अपने स्वरूप में आनन्द से आप ही क्रीडा करे अथवा किसी के साहाय्य के विना क्रीड़ावत् सहज स्वभाव से सब जगत् को बनाता वा सब क्रीड़ाओं का आधार है; **'[यो] विजिगीषते स देवः'**=जो सबका जीतनेहारा, स्वयं अजेय अर्थात् जिसको कोई भी न जीत सके; **'[यो] व्यवहारयति स देवः'**=जो न्याय और अन्यायरूप व्यवहारों का जाननेहारा और उपदेष्टा है; **'यः-चराचरं जगत् द्योतयति [स देवः]'**=जो सब [चराचर जगत्] का प्रकाशक है; **'यः स्तूयते स देवः'**=जो सब मनुष्यों की प्रशंसा के योग्य हो और निन्दा के योग्य न हो; **'यो मोदयति स देवः'**=जो स्वयं आनन्दस्वरूप और दूसरों को आनन्द कराता है, जिसको दुःख का लेश भी न हो; **'यो माद्यति स देवः'**=जो सदा हर्षित, शोक से रहित है और दूसरों को हर्षित करनेवाला और दुःख से पृथक् रखनेवाला है; **'यः स्वापयति स देवः'**=जो प्रलय-समय अव्यक्त में सब जीवों को सुलाता है; **'यः कामयते काम्यते वा स देवः'**=जिसके सब सत्य काम हैं और जिसकी प्राप्ति की कामना सब शिष्ट करते हैं; **'यो गच्छति गम्यते वा स देवः'**=जो सबमें प्राप्त और जानने के योग्य है; इससे उस परमेश्वर का नाम **'देव'** है।

[२६] **(कुबि आच्छादने)** इस धातु से 'कुबेर' शब्द सिद्ध होता है। **'यः सर्वं कुम्बति स्वव्याप्त्या-आच्छादयति स कुबेरो जगदीश्वरः'**=जो अपनी व्याप्ति से सबका आच्छादन करे, इससे उस परमेश्वर का नाम **'कुबेर'** है।

[२७] **(पृथु विस्तारे)** इस धातु से 'पृथिवी' शब्द सिद्ध होता है। **'यः पर्थति सर्वं जगद्-विस्तृणाति तस्मात् स पृथिवी'**=जो सब विस्तृत जगत् का विस्तार करनेवाला है, इसलिये उस ईश्वर का नाम **'पृथिवी'** है।

[२८] **(जल घातने)** इस धातु से 'जल' शब्द सिद्ध होता है, **'जलति घातयति दुष्टान् सङ्घातयति- अव्यक्तपरमाण्वादीन् तद् ब्रह्म जलम्'**=जो दुष्टों का ताड़न और अव्यक्त तथा परमाणुओं का अन्योन्य संयोग वा वियोग करता है, वह परमात्मा 'जल' संज्ञक कहाता है। यद्वा **'यज्जनयति लाति सकलं जगत् [सुखं वा] तद् ब्रह्म जलम्'**=अथवा जो सबका जनक और सब सुखों का देनेवाला है, इसलिये भी परमात्मा का नाम **'जल'** है।

[२९] **(काशृ दीप्तौ)** इस धातु से 'आकाश' शब्द सिद्ध होता है, **'यः सर्वतः सर्वं जगत् प्रकाशयति स आकाशः'**=जो सब ओर से सब जगत् का प्रकाशक है, इसलिये उस परमात्मा का नाम **'आकाश'** है।

[३०-३२] **(अद् भक्षणे)** इस धातु से 'अन्न' शब्द सिद्ध होता है।

अद्यतेऽत्ति च भूतानि तस्मादन्नं तदुच्यते। अहमन्नमहमन्नमहमन्नम्। अहमन्नादोऽहमन्नादोऽहमन्नादः॥

ये तैत्तिरीयोपनिषत् के वचन हैं [२। २; ३।१०]।

अत्ता चराऽचरग्रहणात्॥

यह व्यासमुनिकृत शारीरक सूत्र है [वेदान्तसू० १।२।९]।

जो सबको भीतर रखने=सबको ग्रहण करने योग्य चराचर जगत् का ग्रहण करनेवाला है, इससे ईश्वर के **'अन्न', 'अन्नाद'** और **'अत्ता'** नाम हैं। और जो इसमें तीन वार पाठ है, सो आदर के लिये है। जैसे गूलर के फल में क्रिमि उत्पन्न होके, उसी में रहते हैं और नष्ट हो जाते हैं, वैसे परमेश्वर के बीच में सब जगत् की अवस्था है।

[३३] **(वस निवासे)** इस धातु से 'वसु' शब्द सिद्ध हुआ है। **'वसन्ति भूतानि यस्मिन्-अथवा यः सर्वेषु भूतेषु वसति स वसुरीश्वरः'**=जिसमें सब आकाशादि भूत वसते हैं और जो सब [भूतों] में वास कर रहा है, इसलिये उस परमेश्वर का नाम **'वसु'** है।

[३४] **(रुदिर् अश्रुविमोचने) "रोदेर्णिलुक् च"** [उणादि० २। २२]" इस सूत्र से 'रुदिर्' णिजन्त धातु से 'रक्' प्रत्यय होने से 'रुद्र' शब्द सिद्ध होता है। **'यो रोदयति-अन्यायकारिणो जनान् स रुद्रः'**=जो दुष्ट कर्म करनेहारों को रुलाता है, इससे उस परमेश्वर का नाम **'रुद्र'** है।

यन्मनसा ध्यायति तद्वाचा वदति, यद्वाचा वदति तत् कर्मणा करोति, यत् कर्मणा करोति तदभिसम्पद्यते॥

यह यजुर्वेद के ब्राह्मण का वचन है। [तुलना—शत०ब्रा० १४। ७। २। ७]

जीव जिसका मन से ध्यान करता उसको वाणी से बोलता, जिसको वाणी से बोलता उसको कर्म से करता, जिसको कर्म से करता उसी को प्राप्त होता है। इससे क्या सिद्ध हुआ कि **जो जीव जैसा कर्म करता है वैसा ही फल पाता है।** जब दुष्ट कर्म करनेवाले जीव ईश्वर की न्याय-व्यवस्था से दुःखरूप फल पाते हैं तब रोते [हैं]; और इसी प्रकार ईश्वर उनको रुलाता है। इसलिये उस परमेश्वर का नाम **'रुद्र'** है।

[३५] **आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः।**
ता यदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः॥

यह मनुस्मृति का श्लोक है अ० १।१०॥

जल और जीवों का नाम 'नारा' है। वे अयन अर्थात् निवासस्थान हैं जिसका, इसलिये सब जीवों में व्यापक परमात्मा का नाम **'नारायण'** है।

[३६] **(चदि आह्लादे)** इस धातु से 'चन्द्र' शब्द सिद्ध होता है। **'यः-चन्दति चन्दयति वा स चन्द्रः'**=जो [स्वयं] आनन्दस्वरूप और सबको आनन्द देनेवाला है, इसलिये उस ईश्वर का नाम **'चन्द्र'** है।

[३७] **(मगि गत्यर्थक)** धातु से **'मङ्गेरलच्'** [उणादि० ५।७०] इस सूत्र से 'मङ्गल' शब्द सिद्ध होता है। **'यो मङ्गति मङ्गयति वा स मङ्गलः'**=जो आप मङ्गलस्वरूप और सब जीवों के मङ्गल का कारण है, इसलिये उस परमेश्वर का नाम **'मङ्गल'** है।

[३८] **(बुध अवगमने)** इस धातु से 'बुध' शब्द सिद्ध होता है। **'यो बुध्यते बोधयति वा स बुधः'**=जो स्वयं बोधस्वरूप और सब जीवों के बोध का कारण है, इसलिये परमेश्वर का नाम **'बुध'** है।

'बृहस्पति' शब्द का अर्थ कर दिया [है]।

[३९] **(ईशुचिर् पूतीभावे)** इस धातु से 'शुक्र' शब्द सिद्ध हुआ है। **'यः शुच्यति शोचयति वा स शुक्रः'**=जो अत्यन्त पवित्र और जिसके सङ्ग से जीव भी पवित्र हो जाता है, इसलिये उस ईश्वर का नाम **'शुक्र'** है।

[४०] **(चर गतिभक्षणयोः)** इस धातु से **'शनैस्'** अव्यय उपपद धरके 'शनैश्चर' शब्द सिद्ध हुआ है। **'यः शनैश्चरति स शनैश्चरः'**=जो सबमें सहज से प्राप्त और धैर्यवान् है, इससे उस परमेश्वर का नाम **'शनैश्चर'** है।

[४१] **(रह त्यागे)** इस धातु से 'राहु' शब्द सिद्ध होता है। **'यो रहति परित्यजति दुष्टान् राहयति त्याजयति स राहुरीश्वरः'**=जो एकान्तस्वरूप है, जिसके स्वरूप में दूसरा पदार्थ संयुक्त नहीं है। जो दुष्टों को छोड़नेहारा और [दुष्टों से] अन्यों को छुड़ानेहारा है, इससे उस परमेश्वर का नाम **'राहु'** है।

[४२] **(कित निवासे रोगापनयने च)** इस धातु से 'केतु' शब्द सिद्ध होता है। **'यः केतयति चिकित्सति वा स केतुरीश्वरः'**=जो सब जगत् का निवासस्थान, सब रोगों से रहित और मुमुक्षुओं को मुक्ति समय में सब रोगों से मुक्त रखता है, इसलिये उस परमात्मा का नाम **'केतु'** है।

[४३] **(यज देवपूजासङ्गतिकरण दानेषु)** इस धातु से 'यज्ञ' शब्द सिद्ध होता है।

'यज्ञो वै विष्णुः' यह ब्राह्मणग्रन्थ का वचन है।

[शत०ब्रा०, १।१।२।१३, गो०ब्रा०उत्तरभाग, प्रपा० ४। कं० ६]

'यो यजति विद्वद्भिः-इज्यते वा स यज्ञः'=जो सब जगत् के पदार्थों को संयुक्त करता और सब विद्वानों का पूज्य है, और ब्रह्मा से लेके सब ऋषि-मुनियों का पूज्य था, है, और होगा, इससे उस परमात्मा का नाम **'यज्ञ'** है; क्योंकि वह सर्वत्र व्यापक है।

[४४] **(हु दानाऽदनयोः, आदाने चेत्येके)** इस धातु से 'होता' शब्द सिद्ध हुआ है। **'यो जुहोति स होता'**=जो सब जीवों को देने योग्य पदार्थों का दाता और ग्रहण करने योग्यों का ग्राहक है, इससे उस ईश्वर का नाम **'होता'** है।

[४५] **(बन्ध बन्धने)** इस धातु से 'बन्धु' शब्द बना है। **'यः स्वस्मिन् चराऽचरं जगद् बध्नाति बन्धुवद्-धर्मात्मनां सुखाय सहायो वा वर्तते स बन्धुः'**=जिसने अपने में सब लोक-लोकान्तरों को नियमों से बद्ध कर रक्खा है और [जो धर्मात्माओं का] सहोदर के समान सहायक है। इसी से [लोकलोकान्तर] अपनी-अपनी परिधि वा नियम का उल्लङ्घन नहीं कर सकते। जैसे, भ्राता भाइयों का साहाय्यकारी होता है, वैसे परमेश्वर भी पृथिव्यादि लोकों के धारण, रक्षण [करने], और सुख देने से **'बन्धु'** संज्ञक है।

[४६-४८] **(पा रक्षणे)** इस धातु से 'पिता' शब्द सिद्ध हुआ है। **'यः पाति सर्वान् स पिता'**=जो सबका रक्षक है। जैसे पिता अपने सन्तानों पर सदा कृपालु होकर उनकी उन्नति चाहता है, वैसे ही परमेश्वर सब जीवों की उन्नति चाहता है, इससे उस ईश्वर का नाम **'पिता'** है। **'यः पितॄणां पिता स पितामहः'**= जो पिताओं का भी पिता है, इससे उस परमेश्वर का नाम **'पितामह'** है। **'यः पितामहानां पिता स प्रपितामहः'**=जो पिताओं के पितरों का भी पिता है, इससे उस परमेश्वर **'प्रपितामह'** कहाता है।

[४९] **(माङ् माने शब्दे च)** इससे माता शब्द बनता है। **'यो मिमीते मानयति सर्वान्-जीवान् स माता'**=जैसे पूर्णकृपायुक्त जननी अपने सन्तानों का सुख और उन्नति चाहती है, वैसे परमेश्वर भी सब जीवों की बढ़ती चाहता है, इससे उस परमेश्वर का नाम **'माता'** है।

[५०] **(चर गतिभक्षणयोः)** आङ्पूर्वक इस धातु से 'आचार्य' शब्द सिद्ध होता है। **'य आचारं ग्राहयति, सर्वा विद्या बोधयति स आचार्य ईश्वरः'**=जो सत्य आचार का ग्रहण करानेहारा और सब विद्याओं की प्राप्ति का हेतु होके सब विद्यायें प्राप्त कराता है, इससे उस परमेश्वर का नाम **'आचार्य'** है।

[५१] (गॄ शब्दे) इस धातु से 'गुरु' शब्द बना है।

'यो धर्म्यान् शब्दान् गृणात्युप-दिशति स गुरुः'।
"स एष पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्"

यह योगशास्त्र का सूत्र है। [१।२६]

=जो सत्यधर्मप्रतिपादक, सकलविद्यायुक्त वेदों का उपदेश करता है, जो कि सृष्टि के आदि में अग्नि, वायु, आदित्य, अङ्गिरा, और ब्रह्मादि गुरुओं का भी गुरु है; और जिसका नाश कभी नहीं होता, इसलिये उस परब्रह्म का नाम **'गुरु'** है।

[५२] **(अज गति-क्षेपणयोः, जनी प्रादुर्भावे)** इन धातुओं से 'अज' शब्द बना है। **'योऽजति सृष्टिं प्रति सर्वान् प्रकृत्यादीन् पदार्थान् प्रक्षिपति जनयति कदाचित्-न जायते सोऽजः'**=जो सब प्रकृति के अवयव आकाशादि भूत- परमाणुओं को यथायोग्य मिलाता, शरीर के

साथ जीवों का सम्बन्ध करके जन्म देता और स्वयं कभी जन्म नहीं लेता है, इससे उस ईश्वर का नाम **'अज'** है।

[५३] **(बृह बृहि वृद्धौ)** इन धातुओं से 'ब्रह्मा' शब्द सिद्ध होता है। **'योऽखिलं जगत्-निर्माणेन बर्हीति [बृंहति] वर्द्धयति स ब्रह्मा'**=जो सम्पूर्ण जगत् को रचके बढ़ाता है, इसलिये उस परमेश्वर का नाम **'ब्रह्मा'** है।

[५४-५७] **'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म'** यह तैत्तिरीयोपनिषद् का वचन है। [ब्रह्म०, अनु० १]

'सन्तीति सन्तः, तेषु सत्सु साधु तत्सत्यम्। यज्जानाति चराऽचरं जगत् तत्-ज्ञानम्। न विद्यतेऽन्तोऽवधिः-मर्यादा यस्य तदनन्तम्। सर्वेभ्यो बृहत्त्वाद् ब्रह्म' =जो पदार्थ हों, उनको 'सत्' कहते हैं, उनमें साधु होने से परमेश्वर का नाम **'सत्य'** है। जो [चराचर जगत् का] जाननेवाला है, इसलिये परमेश्वर का नाम **'ज्ञान'** है। जिसका अन्त, अवधि, मर्यादा अर्थात् इतना लम्बा, चौड़ा, छोटा वा बड़ा है, ऐसा परिमाण नहीं है; इसलिये परमेश्वर का नाम **'अनन्त'** है। जो सबसे बड़ा है [इससे **'ब्रह्म'** नाम है]। इसलिये उस परमेश्वर के नाम **सत्य, ज्ञान अनन्त** [और **ब्रह्म**] हैं।

[५८] **(डुदाञ् दाने)** 'आङ्' पूर्वक इस धातु से 'आदि' शब्द और नञ्पूर्वक 'अनादि' शब्द सिद्ध होता है। **'यस्मात् पूर्वं नास्ति परं चास्ति स आदिः-इत्युच्यते।' 'न विद्यते आदिः कारणं यस्य सोऽनादिः-ईश्वरः'**=जिसके पूर्व कुछ न हो और परे हो, उसको 'आदि' कहते हैं। जिसका आदि कारण कोई भी नहीं है, इसलिये उस परमेश्वर का नाम **'अनादि'** है।

[५९] **(अस् भुवि)** इस धातु से 'सत्' शब्द सिद्ध होता है। **'यदस्ति, त्रिषु कालेषु न बाध्यते तत्सद् ब्रह्म'**=जो सदा वर्त्तमान रहे और भूत, भविष्यत्, वर्त्तमान कालों में जिसका बाध न हो, इससे उस परमेश्वर को **'सत्'** कहते हैं।

[६०] **(चिती संज्ञाने)** इस धातु से 'चित्' शब्द सिद्ध होता है। **'यश्चेतति चेतयति संज्ञापयति सर्वान् सज्जनान् योगिनः- तच्चित्परं ब्रह्म'**=जो चेतनस्वरूप [है तथा] सब [सज्जन] जीवों [और योगियों] को चेताने और सत्यासत्य का जनानेहारा है, इसलिये उस परमात्मा का नाम **'चित्'** है।

[६१] **(टुनदि समृद्धौ)** 'आङ्' पूर्वक इस धातु से 'आनन्द' शब्द बनता है। **'आनन्दन्ति सर्वे मुक्ता यस्मिन्, यद्वा यः सर्वान्-जीवान्-आनन्दयति स आनन्दः'** =जो [स्वयं] आनन्दस्वरूप है, और जिसमें सब मुक्त जीव आनन्द को प्राप्त होते हैं [और जो] सब

धर्मात्मा जीवों को आनन्दयुक्त करता है, इससे उस ईश्वर का नाम **'आनन्द'** है।

[६२] इन तीनों शब्दों का विशेषण होने से परमेश्वर का नाम **'सच्चिदानन्द-स्वरूप'** कहते हैं।

[६३] **नित्य—'यो ध्रुवोऽचलोऽविनाशी स नित्यः'**=जो निश्चल, अविनाशी है, सो **'नित्य'** शब्दवाच्य ईश्वर है।

[६४] **(शुन्ध शुद्धौ)** इस धातु से 'शुद्ध' शब्द सिद्ध होता है। **'यः शुन्धति सर्वान् शोधयति वा स शुद्ध ईश्वरः'**=जो स्वयं पवित्र [अर्थात्] सब अशुद्धियों से पृथक् और सबको शुद्ध करनेवाला है, इससे ईश्वर का नाम **'शुद्ध'** है।

[६५] **(बुध अवगमने)** इस धातु से 'क्त' प्रत्यय होने से 'बुद्ध' शब्द सिद्ध होता है। **'यो बुद्धवान् सदैव ज्ञाताऽस्ति स बुद्धो जगदीश्वरः'**=जो सदा सबको जाननेहारा है, इससे उस ईश्वर का नाम **'बुद्ध'** है।

[६६] **(मुच्लृ मोचने)** इस धातु से 'मुक्त' शब्द सिद्ध होता है। **'यो मुञ्चति मोचयति वा मुमुक्षून् स मुक्तो जगदीश्वरः'**=जो सर्वदा अशुद्धियों से अलग है और सब मुमुक्षुओं को क्लेश से छुड़ा देता है, इसलिये उस परमात्मा का नाम **'मुक्त'** है।

'अत एव नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावो जगदीश्वरः'=इसी कारण से परमेश्वर का स्वभाव नित्य, शुद्ध, बुद्ध और मुक्त है।

[६७] **(डुकृञ् करणे)** इस धातु से निर् और आङ्पूर्वक 'निराकार' शब्द सिद्ध होता है। **'निर्गत आकारात् स निराकारः'**=जिसका आकार कोई भी नहीं और जो न कभी शरीर धारण करता है, इसलिये उस परमेश्वर का नाम **'निराकार'** है।

[६८] **(अञ्जू व्यक्तिम्रक्षणकान्ति गतिषु)** इस धातु से 'अञ्जन' शब्द बना है और 'निर्' उपसर्ग के योग से 'निरञ्जन' शब्द सिद्ध होता है। **'अञ्जनं व्यक्तिर्म्रक्षणं कुकामनाभिः-इन्द्रियैः प्राप्तिः-इति-अस्मात्-यो निर्गतः पृथग्भूतः स निरञ्जनः'**= जो व्यक्ति अर्थात् आकृति, म्रक्षाचार, दुष्टकामनाओं और चक्षुरादि इन्द्रियों के विषयों के पथ से पृथक् है, इससे उस ईश्वर का नाम **'निरञ्जन'** है।

[६९-७०] **(गण संख्याने)** इस धातु से 'गण' शब्द सिद्ध होता है, इसके आगे 'ईश' वा 'पति' शब्द रखने से 'गणेश' और 'गणपति शब्द' सिद्ध होते हैं। **'ये प्रकृत्यादयो जडा जीवाश्च गण्यन्ते संख्यायन्ते तेषामीशः स्वामी पतिः पालको वा स गणेशो गणपतिर्वा'**=जो प्रकृत्यादि जड़ और जीव [आदि] सब प्रख्यात पदार्थों का स्वामी वा पालन करनेहारा है, इससे उस ईश्वर का नाम **'गणेश'** वा **'गणपति'** है।

[७१] **‘यो विश्वम्-ईष्टे स विश्वेश्वरः’**=जो संसार का अधिष्ठाता है, इससे उस परमेश्वर का नाम **‘विश्वेश्वर’** है।

[७२] **‘यः कूटेऽनेकविधव्यवहारे स्वस्वरूपेणैव तिष्ठति स कूटस्थः परमेश्वरः’**=जो सब व्यवहारों में व्याप्त और सब व्यवहारों का आधार होके भी, किसी व्यवहार में अपने स्वरूप को नहीं बदलता, इससे उस परमेश्वर का नाम **‘कूटस्थ’** है।

[७३-७४] जितने ‘देव’ शब्द के अर्थ लिखे हैं उतने ही **‘देवी’** शब्द के भी हैं। परमेश्वर के तीनों लिङ्गों में नाम हैं, जैसे—**‘ब्रह्म चितिः-ईश्वरश्चेति’।**

जब ईश्वर का विशेषण होगा तब ‘देव’, जब **‘चिति’** का होगा तब **‘देवी’**। इससे ईश्वर का नाम **‘देवी’** है।

[७५] **(शक्लृ शक्तौ)** इस धातु से ‘शक्ति’ शब्द बनता है। **‘यः सर्वं जगत् कर्तुं शक्नोति स शक्तिः’**=जो सब जगत् के बनाने में समर्थ है, इसलिये उस परमेश्वर का नाम **‘शक्ति’** है।

[७६] **(श्रिञ् सेवायाम्)** इस धातु से ‘श्री’ शब्द सिद्ध होता है। **‘यः श्रीयते सेव्यते सर्वेण जगता विद्वद्भिः-योगिभिश्च स श्रीरीश्वरः’**= जिसका सेवन सब जगत्, विद्वान् और योगी जन करते हैं, इससे उस परमात्मा का नाम **‘श्री’** है।

[७७] **(लक्ष दर्शनाङ्कनयोः)** इस धातु से 'लक्ष्मी' शब्द सिद्ध होता है। **'यो लक्षयति पश्यति-अङ्कते चिह्नयति चराऽचरं जगद् अथवा वेदैः-आप्तैः- योगिभिश्च यो लक्ष्यते स लक्ष्मीः सर्वप्रियेश्वरः'**=जो सब चराचर जगत् को देखता, चिह्न अर्थात् दृश्य बनाता, जैसे शरीर के नेत्र, नासिका [आदि]; और वृक्ष के पत्र, पुष्प, फल, मूल; पृथिवी-जल के कृष्ण, रक्त, श्वेत, मृत्तिका, पाषाण [आदि], चन्द्र-सूर्यादि चिह्न बनाता तथा सबको दिखाता है, जो सब शोभाओं की शोभा है, और जो वेदादिशास्त्रों, धार्मिक विद्वानों [और] योगियों का लक्ष्य अर्थात् देखने योग्य है; इससे उस परमेश्वर का नाम **'लक्ष्मी'** है।

[७८] **(सृ गतौ)** इस धातु से 'सरस्', उससे 'मतुप्' और 'ङीप्' प्रत्यय होने से 'सरस्वती' शब्द सिद्ध होता है। **'सरो विविधं ज्ञानं विद्यते यस्यां चितौ सा सरस्वती'**=जिसको विविध विज्ञान, शब्द- अर्थ-सम्बन्ध-प्रयोग का ज्ञान यथावत् होवे, इससे उस परमेश्वर का नाम **'सरस्वती'** है।

[७९] **'सर्वाः शक्तयो विद्यन्ते यस्मिन् स सर्वशक्तिमान्-ईश्वरः'**=जो अपने कार्य करने में किसी अन्य के साहाय्य की इच्छा लेशमात्र भी नहीं करता; अपने ही सामर्थ्य से, अपने सब काम पूरे करता है, इसलिये उस परमात्मा का नाम **'सर्व-शक्तिमान्'** है।

[८०] **(णीञ् प्रापणे)** इस धातु से 'न्याय' शब्द सिद्ध होता है। **"प्रमाणैरर्थ-परीक्षणं न्यायः"**—यह वचन न्यायसूत्रों के ऊपर

'वात्स्यायन मुनिकृत भाष्य' का है। [वा० भा० १।१।१] **'पक्षपातराहित्याचरणं न्यायः'**=जो प्रत्यक्षादि प्रमाणों की परीक्षा से सत्य-सत्य सिद्ध हो, जो पक्षपातरहित धर्मरूप आचरण है, वह न्याय कहाता है। 'न्यायं कर्तुं शीलमस्य स न्यायकारी- ईश्वरः'=जिसका न्याय अर्थात् पक्षपातरहित धर्म करने का ही स्वभाव है, इससे उस ईश्वर का नाम **'न्यायकारी'** है।

[८१] **(दय दान-गति-रक्षण-हिंसा- दानेषु)** इस धातु से 'दया' शब्द सिद्ध होता है। **'दयते ददाति जानाति गच्छति रक्षति हिनस्ति यया सा दया, बह्वी दया विद्यते यस्य स दयालुः परमेश्वरः'**=जो अभय का दाता, सत्यासत्य सर्वविद्याओं का जानने-[जनानेहारा], सब सज्जनों की रक्षा करने और दुष्टों का हनन करनेवाला और उनको यथायोग्य दण्ड देनेवाला है, इससे उस परमात्मा का नाम **'दयालु'** है।

[८२] **'द्वयोर्भावो द्वाभ्यामितं सा द्विता द्वीतं वा सैव तदेव वा द्वैतम्, न विद्यते द्वैतं द्वितीयेश्वरभावो यस्मिंस्तदद्वैतम्' अर्थात् 'सजातीय-विजातीय-स्वगत-भेदशून्यं ब्रह्म'**=दो का होना, दो से युक्त होना वह द्विता, वा द्वीत अथवा द्वैत, जो इससे रहित है [वह 'अद्वैत है']। **सजातीय** =जैसे मनुष्य का सजातीय दूसरा मनुष्य होता है, **विजातीय**=जैसे मनुष्य से भिन्न जातिवाले वृक्ष, पाषाणादि। **स्वगत** अर्थात् जैसे शरीर में आँख, नाक, कान आदि अवयवों का भेद है। वैसे दूसरे स्वजातीय ईश्वर,

विजातीय ईश्वर वा अपने आत्मा में तत्त्वान्तर वस्तुओं से रहित एक परमेश्वर है, इससे उस परमात्मा का नाम **'अद्वैत'** है।

[८३] **'गुण्यन्ते ये ते गुणा वा यैः- गुणयन्ति ते गुणाः, यो निर्गतः गुणेभ्यो स निर्गुण ईश्वरः'**=जितने सत्त्व, रज, तम, रूप, रस, स्पर्श, गन्धादि जड़ के गुण; अविद्या, अल्पज्ञता, राग, द्वेष और अस्मितादि क्लेश जीव के गुण हैं, उनसे जो पृथक् है। इसमें **"अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययम्"**

[कठोप० १।३।१५] इत्यादि, उपनिषदों के प्रमाण हैं।

जो शब्द, स्पर्श, रूपादि गुणरहित है, इससे उस परमात्मा का नाम **'निर्गुण'** है।

[८४] **'यो गुणैः सह वर्त्तते स सगुणः'**=जो सब ज्ञान, सर्वसुख, पवित्रता, अनन्त-बलादि गुणों से युक्त है, इसलिये उस परमेश्वर का नाम **'सगुण'** है। जैसे, पृथिवी गन्धादि गुणों से [सहित होने से] 'सगुण' और इच्छादि गुणों से रहित होने से 'निर्गुण' है, वैसे जगत् और जीव के गुणों से पृथक् होने से परमेश्वर 'निर्गुण' और सर्वज्ञादि गुणों से सहित होने से 'सगुण' है, अर्थात् ऐसा कोई भी पदार्थ नहीं है, जो सगुणता और निर्गुणता से पृथक् हो। जैसे, चेतन के गुणों से पृथक् होने से जड़ पदार्थ निर्गुण और अपने गुणों से सहित होने से सगुण [हैं], वैसे ही जड़ के

गुणों से पृथक् होने से जीव चेतन, निर्गुण और अपने इच्छादि गुणों से सहित होने से सगुण है। ऐसे ही परमेश्वर में भी समझना चाहिये।

[८५] **'अन्तर्यन्तुं नियन्तुं शीलं यस्य सोऽयमन्तर्यामी'**=जो सब प्राणी और अप्राणीरूप जगत् के भीतर व्यापक होके सबका नियमन करता है, इसलिये उस परमेश्वर का नाम **'अन्तर्यामी'** है।

[८६] **'यो धर्मे राजते स धर्मराजः'**=जो धर्म में ही प्रकाशमान और अधर्म से रहित [है, तथा] धर्म का ही प्रकाश करता है, इसलिये उस परमेश्वर का नाम **'धर्मराज'** है।

[८७] **(यमु उपरमे)** इस धातु से 'यम' शब्द बना है। **'यः सर्वान् प्राणिनो नियच्छति स यमः'**=जो सब प्राणियों के कर्मफल देने की व्यवस्था करता और सब अन्यायों से पृथक् रहता है, इसलिये उस परमेश्वर का नाम **'यम'** है।

[८८] **(भज सेवायाम्)** इस धातु से 'भग', और इससे मतुप् करने से 'भगवान्' शब्द सिद्ध होता है। **'भगः सकलैश्वर्यं सेवनं वा विद्यते यस्य स भगवान्'**=जो समग्र ऐश्वर्य से युक्त वा भजने के योग्य है, इसलिये उस ईश्वर का नाम **'भगवान्'** है।

[८९] **(मन ज्ञाने)** इस धातु से 'मनु' शब्द बनता है। **'यो मन्यते स मनुः'**=जो मनन अर्थात् विज्ञानशील और मानने योग्य है, इसलिये उस ईश्वर का नाम **'मनु'** है।

[९०] **(पॄ पालन-पूरणयोः)** इस धातु से 'पुरुष' शब्द सिद्ध हुआ है। **'यः स्वव्याप्त्या चराऽचरं जगत् पृणाति पूरयति वा स पुरुषः'**=जो [अपनी व्याप्ति से] सब [चराचर] जगत् में पूर्ण हो रहा है, इसलिये उस परमेश्वर का नाम **'पुरुष'** है।

[९१] **(डुभृञ् धारण-पोषणयोः)** 'विश्व' पूर्वक इस धातु से 'विश्वम्भर' शब्द सिद्ध होता है। **'यो विश्वं बिभर्ति धरति पुष्णाति वा स विश्वम्भरो जगदीश्वरः'**= जो जगत् का धारण और पोषण करता है, इसलिये उस परमेश्वर का नाम **'विश्वम्भर'** है।

[९२] **(कल संख्याने)** इस धातु से 'काल' शब्द बना है। **'कलयति संख्याति सर्वान् पदार्थान् स कालः'**=जो जगत् के सब पदार्थों और जीवों की संख्या करता है, इसलिये परमेश्वर का नाम **'काल'** है।

[९३] **(शिष्लृ विशेषणे)** इस धातु से 'शेष' शब्द सिद्ध होता है। **'यः शिष्यते स शेषः'**=जो उत्पत्ति और प्रलय से शेष अर्थात् बचा रहता है, इसलिये उस परमात्मा का नाम **'शेष'** है।

[९४] **(आप्लृ व्याप्तौ)** इस धातु से 'आप्त' शब्द सिद्ध होता है। **'यः सर्वान् धर्मात्मन आप्नोति वा सर्वैर्धर्मात्मभिः- आप्यते छलादिरहितः स आप्तः'**=जो सत्योपदेशक, सकल विद्यायुक्त, सब धर्मात्माओं को प्राप्त होता है और [सब] धर्मात्माओं से प्राप्त होने योग्य है, तथा छल-कपटादि से रहित है, इसलिये उस परमात्मा का नाम **'आप्त'** है।

[९५] **(डुकृञ् करणे)** 'शम्' पूर्वक इस धातु से 'शङ्कर' शब्द सिद्ध हुआ है। **'यः शं कल्याणं सुखं करोति स शङ्करः'**= जो कल्याण अर्थात् सुख का करनेहारा है, इससे उस ईश्वर का नाम **'शङ्कर'** है।

[९६] 'महत्' शब्द पूर्वक 'देव' शब्द से **'महादेव'** शब्द सिद्ध होता है। **'यो महतां देवः स महादेवः'** जो महान् देवों का देव अर्थात् विद्वानों का भी विद्वान् है, और सूर्यादि पदार्थों का प्रकाशक है, इसलिये उस परमात्मा का नाम **'महादेव'** है।

[९७] **(प्रीञ् तर्पणे कान्तौ च)** इस धातु से 'प्रिय' शब्द सिद्ध होता है। **'यः प्रीणाति प्रीयते वा स प्रियः'**=जो सब धर्मात्माओं, मुमुक्षुओं और शिष्टों को प्रसन्न करता और सबको कामना करने के योग्य है, इसलिये उस ईश्वर का नाम **'प्रिय'** है।

[९८] **(भू सत्तायाम्)** 'स्वयं' पूर्वक इस धातु से 'स्वयम्भू' शब्द सिद्ध होता है। **'यः स्वयं भवति स स्वयम्भूः-ईश्वरः'**=जो आप से आप ही है,

किसी से कभी उत्पन्न नहीं हुआ है, इससे उस परमात्मा का नाम **'स्वयम्भू'** है।

[९९] **(कु शब्दे)** इस धातु से 'कवि' शब्द सिद्ध होता है। **'यः कौति शब्दयति सर्वा विद्याः स कविः-ईश्वरः'**=जो सब विद्याओं का वेत्ता और वेदों द्वारा उनका उपदेष्टा भी है, इसलिये उस परमेश्वर का नाम **'कवि'** है।

[१००] **(शिवु कल्याणे)** इस धातु से 'शिव' शब्द सिद्ध होता है। **'बहुल-मेतन्निदर्शनम्'**=[धातुपाठे चुरादिगणे] इससे 'शिवु' धातु माना जाता है, **"यः मङ्गल-मयो जीवानां मङ्गलकारी च सः शिवः"**=जो [स्वयं] कल्याणस्वरूप [है] और [सबके] कल्याण का करनेहारा है, इसलिये उस परमात्मा का नाम **'शिव'** है।

ये सौ नाम परमेश्वर के लिखे हैं; परन्तु इनसे भिन्न भी परमात्मा के असंख्य नाम हैं। क्योंकि जैसे परमेश्वर के अनन्त गुण, कर्म, स्वभाव हैं, वैसे उसके अनन्त नाम हैं। उनमें से प्रत्येक गुण, कर्म और स्वभाव का एक-एक नाम है। इससे ये मेरे लिखे नाम समुद्र के सामने बिन्दुवत् हैं; क्योंकि वेदादि शास्त्रों में परमात्मा के असंख्य गुण, कर्म, स्वभाव व्याख्यात किये हैं। उनके पढ़ने-पढ़ाने से [उनका] बोध हो सकता है, और अन्य पदार्थों का ज्ञान भी उन्हीं को पूरा हो सकता है जो वेदादि शास्त्रों को पढ़ते हैं।

[मङ्गलाचरण-विचार]

(प्रश्न) जैसे अन्य ग्रन्थकार लोग आदि, मध्य और अन्त में मङ्गलाचरण करते हैं, वैसे आपने कुछ भी न लिखा, न किया?

(उत्तर) ऐसा हमको करना योग्य नहीं; क्योंकि जो आदि, मध्य और अन्त में मङ्गल करेगा तो उसके ग्रन्थ में आदि तथा मध्य और मध्य तथा अन्त के बीच में जो कुछ लेख होगा, वह अमङ्गल ही रहेगा। इसलिये—

"मङ्गलाचरणं शिष्टाचारात् फलदर्शनाच्छ्रुतितश्चेति"

यह सांख्यशास्त्र का वचन है। [अ॰ ५।सू॰ १]

इसका यह अभिप्राय है कि ईश्वर की जो वेदोक्त, न्याय, पक्षपातरहित, सत्य आज्ञा है; उसी का यथावत् सर्वत्र और सदा आचरण करना 'मङ्गलाचरण' कहाता है। ग्रन्थ के आरम्भ से लेके समाप्तिपर्यन्त सत्याचार का करना ही मङ्गलाचरण है, न कि कहीं मङ्गल और कहीं अमङ्गल लिखना। देखिये, महाशय महर्षियों के लेख को—

"यान्यनवद्यानि कर्माणि तानि सेवितव्यानि, नो इतराणि॥"

यह तैत्तिरीयोपनिषद् का वचन है। [१।११]

हे सन्तानो! जो अनवद्य=अनिन्दनीय अर्थात् सत्य, धर्मयुक्त कर्म हैं, वे ही तुमको करने योग्य हैं, अधर्मयुक्त नहीं।

[आधुनिक मङ्गलाचरण का खण्डन]

इसलिये जो आधुनिक ग्रन्थों वा टीका-कारकों के **'श्रीगणेशाय नमः'**, **'सीतारामाभ्यां नमः'**, **'राधाकृष्णाभ्यां नमः'**, **'श्रीगुरुचरणारविन्दाभ्यां नमः'**, **'हनुमते नमः'**, **'दुर्गायै नमः'**, **'वटुकाय नमः'**, **'भैरवाय नमः'**, **'शिवाय नमः'**, **'सरस्वत्यै नमः'**, **'नारायणाय नमः'** इत्यादि लेख देखने में आते हैं, उनको बुद्धिमान् लोग, वेद और शास्त्रों से विरुद्ध होने से मिथ्या ही समझते हैं। क्योंकि वेद और ऋषि-मुनियों के ग्रन्थों में कहीं ऐसा 'मङ्गलाचरण' देखने में नहीं आता

और आर्ष ग्रन्थों में **'ओम्'** तथा **'अथ'** शब्द तो देखने में आता है। देखो—

'अथ शब्दानुशासनम्'। अथेत्ययं शब्दोऽधिकारार्थः प्रयुज्यते।'

यह व्याकरणमहाभाष्य [पस्पशाह्निक के आरम्भ का],

'अथातो धर्मजिज्ञासा'। अथेत्यानन्तर्ये वेदाध्ययनानन्तरम्।

यह पूर्वमीमांसा [१। १ का],

'अथातो धर्मं व्याख्यास्यामः'।

अथेति धर्मकथनानन्तरं धर्मलक्षणं विशेषेण व्याख्यास्यामः।

यह वैशेषिकदर्शन [१। १ का],

'अथ योगानुशासनम्'। अथेत्ययमधिकारार्थः।

यह योगशास्त्र [१। १ का],

'अथ त्रिविधदुःखात्यन्तनिवृत्तिरत्यन्त पुरुषार्थः'=सांसारिक-विषयभोगानन्तरं

त्रिविधदुःखात्यन्तनिवृत्त्यर्थः प्रयत्नः कर्त्तव्यः।

यह सांख्यशास्त्र [१। १ का वचन है],

'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा'=**'चतुष्टयसाधन सम्पत्त्यनन्तरं ब्रह्म जिज्ञास्यम्।'**

यह वेदान्त [१। १ का]।

'ओमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीत'।

यह छान्दोग्योपनिषद् [१।१।१ का],

'ओमित्येतदक्षरमिद७ सर्वं तस्योपव्याख्यानम्'।

यह माण्डूक्योपनिषद् के आरम्भ का वचन है [१];

ऐसे ही अन्य ऋषि-मुनियों के ग्रन्थों में **'ओम्'** और **'अथ'** शब्द लिखे हैं। वैसे ही **'अग्नि', 'इट्', 'अग्नि', 'ये त्रिषप्ताः परियन्ति'** ये शब्द चारों वेदों के आदि में लिखे हैं; **'श्रीगणेशाय नमः'** इत्यादि शब्द कहीं नहीं। और जो वैदिक लोग वेदों के आरम्भ में **'हरिः ओम्'** लिखते और पढ़ते हैं, यह पौराणिकों और तान्त्रिक लोगों की मिथ्या कल्पना से सीखे हैं। वेदादि शास्त्रों में **'हरि'** शब्द 'आदि' में कहीं नहीं है। इसलिये **'ओम्'** वा **'अथ'** शब्द ही ग्रन्थ के आदि में लिखना चाहिये।

यह किञ्चिन्मात्र ईश्वर [-नामों] के विषय में लिखा, अब इसके आगे शिक्षा के विषय में लिखा जायगा।

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिकृते सत्यार्थप्रकाशे
सुभाषाविभूषिते, ईश्वरनामविषये
प्रथमः समुल्लासः सम्पूर्णः॥१॥

अथ द्वितीयसमुल्लासारम्भः

अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामः

सम्पूर्ण सत्यार्थप्रकाश

Click now

[इस समुल्लास में बाल-शिक्षा के विषय में लिखेंगे]

[भाग्यवान् सन्तान]

“मातृमान् पितृमानाचार्यवान्”, “आचार्यवान् पुरुषो वेद।”

ये शतपथब्राह्मण [और छान्दोग्य उप०] के वचन हैं।

[शतपथ ब्राह्मण का० १४ । प्रपा० ६ । ब्रा० १० । कं० २; छान्दोग्य उप० ६ । १४ । २]

वस्तुतः जब तीन उत्तम शिक्षक अर्थात् एक माता, दूसरा पिता और तीसरा आचार्य होवे, तभी मनुष्य ज्ञानवान् होता है। वह कुल धन्य! वह सन्तान बड़ा भाग्यवान्! जिसके माता और पिता धार्मिक और विद्वान् हों। जितना माता से सन्तानों को उपदेश और उपकार पहुँचता है, उतना किसी से नहीं। जितना माता सन्तानों पर प्रेम [और] उनका हित करना चाहती है, उतना अन्य कोई नहीं करता। इसीलिए **‘मातृमान्’** अर्थात् **‘प्रशस्ता धार्मिकी विदुषी माता विद्यते यस्य स मातृमान्’**। धन्य वह

माता है कि जो गर्भाधान से लेकर जब तक पूरी विद्या न हो तब तक सुशीलता का उपदेश करे!

[गर्भाधान के पूर्व और पश्चात् के कर्तव्य]

माता और पिता को अति उचित है कि गर्भाधान के पूर्व, मध्य और पश्चात् दुर्गन्धयुक्त, रूक्ष, बुद्धिनाशक, नशीले पदार्थों को छोड़के, जिनसे शान्ति, आरोग्य, बल, बुद्धि, पराक्रम और सुशीलता से सभ्यता को प्राप्त करें, वैसे घृत, दुग्ध, मिष्ट, अन्नपान आदि श्रेष्ठ पदार्थों का सेवन करें कि जिससे रज-वीर्य भी दोषों से रहित होकर अत्युत्तम गुणयुक्त हों।

[उत्तम सन्तान प्राप्त करने की विधि]

जैसा ऋतुगमन का विधि अर्थात् रजोदर्शन के पाँचवें दिवस से लेके सोलहवें दिवस तक ऋतुदान देने का समय है, उनमें से प्रथम के चार दिन त्याज्य हैं। रहे १२ दिन, उनमें एकादशी और त्रयोदशी को छोड़के बाकी १० रात्रियों में गर्भाधान करना उत्तम है। और रजोदर्शन के दिन से लेके १६वीं रात्रि के पश्चात् समागम न करना चाहिये। पुनः जब तक ऋतुदान का पूर्वोक्त समय न आवे तब तक और गर्भस्थिति के पश्चात् एक वर्ष तक संयुक्त न हों, जब तक कि दोनों के शरीर में आरोग्य और परस्पर-प्रसन्नता न हो, और किसी प्रकार का शोक न हो। जैसा **चरक** और **सुश्रुत** में भोजन-छादन का विधान और **मनुस्मृति** में स्त्री-पुरुष की प्रसन्नता की रीति लिखी है, उसी प्रकार करें और वर्तें। गर्भाधान के पश्चात् स्त्री को बहुत सावधानी से भोजन-छादन करना चाहिए। पश्चात् एक वर्ष पर्यन्त स्त्री पुरुष का सङ्ग न करे। बुद्धि, बल, रूप, आरोग्य,

पराक्रम, शान्ति आदि गुणकारक द्रव्यों का ही सेवन स्त्री करती रहै कि जब तक सन्तान का जन्म न हो।

[जन्मकाल और उसके पश्चात् के कर्तव्य]

जब जन्म हो, तब नाड़ीछेदन करके, अच्छे सुगन्धियुक्त जल से बालक को स्नान, और स्त्री को भी स्नान करा, सुगन्धियुक्त घृतादि का होम [करे] और स्त्री के स्नान-भोजन का यथायोग्य प्रबन्ध करे कि जिससे बालक और स्त्री का शरीर क्रमशः आरोग्यवान् और पुष्ट होता जाये। ऐसा पदार्थ उसकी माता वा धायी खावे कि जिससे दूध में भी उत्तम गुण प्राप्त हों। प्रसूता का दूध छः दिन तक बालक को पिलावे। तदनन्तर धायी पिलाया करे। परन्तु धायी को उत्तम पदार्थों का खान-पान माता-पिता करावें। **जो कोई दरिद्र हो, धायी को न रख सकें तो वे गाय वा बकरी के दूध में उत्तम ओषधियां जो कि बुद्धि, पराक्रम, आरोग्य करनेहारी हों, उनको शुद्ध जल में भिजा, औटा, छानके दूध के बराबर जल मिलाके बालक को पिलावें।** जन्म के पश्चात् बालक और बालक की माता को दूसरे स्थान [पर] कि जहाँ का वायु शुद्ध हो, वहाँ रक्खें; सुगन्धित तथा दर्शनीय पदार्थ भी रक्खें। और उस देश में भ्रमण कराना उचित है कि जहाँ का वायु शुद्ध हो। **और जहाँ धायी, गाय, बकरी आदि का दूध न मिल सके, वहाँ जैसा उचित समझें, वैसा करें।** क्योंकि प्रसूता स्त्री के शरीर के अंश से बालक का शरीर होता है, इसी से स्त्री प्रसव-समय निर्बल हो जाती है, इसलिये प्रसूता स्त्री दूध न पिलावे। दूध रोकने के लिये स्तन के छिद्र पर उस ओषधी का लेप करे, जिससे दूध

स्रवित न हो। ऐसे करने से दूसरे महीने में पुनरपि युवती हो जाती है। तब तक पुरुष ब्रह्मचर्य से वीर्य का निग्रह रक्खे। इस प्रकार जो स्त्री वा पुरुष करेंगे, उनके उत्तम सन्तान, दीर्घायु, बल, पराक्रम की वृद्धि होती ही रहेगी कि जिससे सब सन्तान भी उत्तम बल-पराक्रमयुक्त, दीर्घायु, धार्मिक होंगे। स्त्री योनिसङ्कोच, शोधन और पुरुष वीर्य का स्तम्भन करे। पुनः सन्तान जितने होंगे वे भी सब उत्तम होंगे।

[पाँच वर्ष तक माता द्वारा शिक्षा]

बालकों को माता सदा उत्तम शिक्षा करे, जिससे सन्तान सभ्य हो और किसी अङ्ग से कुचेष्टा न करने पावे। जब बोलने लगे, तब उसकी माता बालक की जिह्वा जिस प्रकार कोमल होकर स्पष्ट उच्चारण कर सके, वैसा उपाय करे कि जो जिस वर्ण का स्थान, प्रयत्न अर्थात् जैसे 'प' इसका ओष्ठ स्थान और स्पृष्ट प्रयत्न कि दोनों ओष्ठों को मिला कर बोलना। इसके विना शुद्धोच्चारण [अर्थात्] ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत अक्षरों को ठीक-ठीक नहीं बोल सकता। मधुर, गम्भीर सुस्वर; अक्षर, मात्रा, पद, वाक्य, संहिता, अवसान भिन्न-भिन्न श्रवण होवे। जब वह कुछ-कुछ बोलने और समझने लगे तब सुन्दर वाणी और बड़े-छोटे, मान्य पिता-माता, राजा, विद्वान् आदि से भाषण; उनसे वर्त्तमान और उनको पास बैठने आदि की भी शिक्षा करें कि जिससे कहीं उनका अयोग्य व्यवहार न होके, सर्वत्र प्रतिष्ठा हुआ करे। जैसे सन्तान जितेन्द्रिय, विद्याप्रिय और सत्सङ्ग में रुचि-कर्त्ता होवे, वैसा प्रयत्न करते रहें। व्यर्थ क्रीडा, रोदन, हास्य, लड़ाई, हर्ष, शोक, किसी पदार्थ में लोलुपता, ईर्ष्या,

द्वेषादि न करें। उपस्थेन्द्रिय का स्पर्श विना निमित्त न करें, क्योंकि इसके स्पर्श और मर्दन से वीर्य की क्षीणता, नपुंसकता [होती है और] हस्त में दुर्गन्ध भी होता है। सदा सत्यभाषण, शौर्य, धैर्य, प्रसन्नवदनता आदि गुणों की प्राप्ति जिस प्रकार हो, करावें।

[पिता द्वारा प्रारम्भिक शिक्षा]

जब पाँच-पाँच वर्ष के लड़का-लड़की हों तब देवनागरी अक्षरों का अभ्यास करावें, अन्यदेशीय भाषाओं के अक्षरों का भी। उसके पश्चात् जिनसे अच्छी शिक्षा, विद्या, धर्म, परमेश्वर, माता, पिता, आचार्य, विद्वान्, अतिथि, राजा, प्रजा, कुटुम्ब, बन्धु, भगिनी, भृत्य आदि से कैसे-कैसे वर्तना, इन बातों के मन्त्र, श्लोक, सूत्र, गद्य, पद्य भी अर्थ-सहित कण्ठस्थ करावें। जिससे सन्तान किसी धूर्त के बहकाने में न आवे। और जो-जो विद्या-धर्म-विरुद्ध भ्रान्तिजाल में गिरानेवाले व्यवहार हैं, उनका भी उपदेश कर दें; जिससे भूत-प्रेत आदि मिथ्या बातों पर विश्वास न हो—

[भूत-प्रेत शब्द का अर्थ]

गुरोः प्रेतस्य शिष्यस्तु पितृमेधं समाचरन्।
प्रेतहारैः समं तत्र दशरात्रेण शुद्ध्यति॥

यह मनुस्मृति का श्लोक है [अ० ५ । श्लोक ६५]

अर्थ— 'जब गुरु का प्राणान्त हो, तब मृतकशरीर जिसका नाम **'प्रेत'** है, उसका दाह करनेहारा शिष्य प्रेतहार अर्थात् मृतक को उठाने वालों के साथ दशवे दिन शुद्ध होता है।'

और जब उस शरीर का दाह हो चुका, तब उसका नाम **'भूत'** होता है अर्थात् वह अमुकनामा पुरुष था। जितने उत्पन्न हो वर्त्तमान में आके न रहें, भूतस्थ होने से उनका नाम **'भूत'** है। ऐसा ब्रह्मा से लेके आज पर्यन्त के विद्वानों का सिद्धान्त है। परन्तु **जिसको शङ्का, कुसङ्ग, कुसंस्कार होता है, उसको भय और शङ्कारूप भूत, प्रेत, शाकिनी, डाकिनी आदि अनेक भ्रमजाल दुःखदायक होते हैं।**

[उन्माद आदि रोगों का भूत-प्रेतादि नाम धरना]

देखो, जब कोई प्राणी मरता है, तब उसका जीव पाप-पुण्य के वश होकर, परमेश्वर की व्यवस्था से दुःख-सुख के फल भोगने के अर्थ जन्मान्तर धारण करता है। क्या इस अविनाशी परमेश्वर की व्यवस्था का कोई भी नाश कर सकता है? अज्ञानी लोग **'वैद्यकशास्त्र'** वा **'पदार्थविद्या'** के पढ़ने-सुनने और विचार से रहित होकर सन्निपातज्वरादि शारीर और उन्मादादि मानस रोगों का नाम भूत-प्रेतादि धरते हैं। उनका औषधसेवन और पथ्यादि उचित व्यवहार न करके, उन धूर्त्त, पाखण्डी, महामूर्ख, अनाचारी, स्वार्थी, शूद्र, म्लेच्छादि पर भी विश्वासी होकर अनेक प्रकार के ढोंग, छल-कपट और उच्छिष्ट भोजन [करते हैं और] डोरा, धागा आदि मिथ्या मन्त्र-यन्त्र बाँधते-बँधवाते फिरते हैं। अपने धन का नाश, सन्तान आदि की दुर्दशा [कर] और रोगों को बढ़ाकर दुःख देते रहते हैं।

[भूत-प्रेत-निवारणार्थ ढोंग]

जब **'आँख के अन्धे और गाँठ के पूरे'**, उन दुर्बुद्धियों, पापीयों, स्वार्थियों के पास जाकर पूछते हैं कि "महाराज! इस लड़के, लड़की, स्त्री वा पुरुष को न जाने क्या हो गया है?"

तब वे बोलते हैं कि "इसके शरीर में बड़ा भूत-प्रेत, भैरव वा शीतला आदि देवी आ गई है, जब तक तुम इसका उपाय न करोगे, तब तक ये न छूटेंगे, और प्राण भी ले लेंगे। जो तुम मलीदा वा इतनी भेंट दो, तो हम मन्त्र, जप, पुरश्चरण से झाड़के इनको निकाल दें।"

तब वे अन्धे और उसके सम्बन्धी बोलते हैं कि "महाराज! चाहे हमारा सर्वस्व जाओ, परन्तु इसको अच्छा कर दीजिए।"

तब तो उनकी बन पड़ती है। वे धूर्त्त कहते हैं—"अच्छा, लाओ इतनी सामग्री, इतनी दक्षिणा, देवता की भेंट, और ग्रहदान कराओ।" झांझ, मृदङ्ग, ढोल, थाली लेके, उसके सामने बजाते-गाते हैं और उनमें से एक पाखण्डी उन्मत्त होके नाच-कूदके कहता है कि "मैं इसका प्राण ही ले लूँगा।"

तब वे अन्धे उसके भी पगों में पड़ के कहते हैं—"आप जो चाहें, सो लीजिये; इसको बचाइये।"

तब वह धूर्त्त बोलता है—"मैं हनुमान् हूँ, लाओ मिठाई, तैल, सिन्दूर, सवा-मन का रोट और लाल लंगोट। मैं देवी वा भैरव हूँ, लाओ पाँच बोतल मद्य, वीस मुर्गीयां, पाँच बकरे, मिठाई और वस्त्र।"

जब वे कहते हैं कि—"जो चाहो सो लो", तब तो वह पागल बहुत नाचने-कूदने लगता है। परन्तु जो कोई बुद्धिमान् उसकी भेंट पाँच जूते, दण्डे, चपेटे, वा लातें मारे तो उसका हनुमान्, देवी और भैरव झट प्रसन्न होकर भाग जाते है; क्योंकि वह उनका केवल धनादि हरण करने के प्रयोजनार्थ ढोंग है।

[ग्रह-शान्ति का ढोंग]

और जब किसी ग्रहग्रस्त, ग्रहरूप, ज्योतिर्विदाभास के पास जाके कहते हैं—"हे महाराज! इसको क्या है?"

तब वह कहता है कि—"इसपर सूर्यादि क्रूर ग्रह चढ़े हैं। जो तुम इनकी शान्ति [के लिये] पाठ, पूजा, दान कराओ तो इसको सुख हो जाय, नहीं तो बहुत पीड़ित होगा और मर जाय तो भी आश्चर्य नहीं।"

उत्तर— कहिये ज्योतिर्वित्! जैसी यह पृथिवी जड़ है, वैसे ही सूर्यादि लोक हैं। वे ताप और प्रकाशादि से भिन्न कुछ भी नहीं कर सकते। क्या ये चेतन हैं, जो क्रोधित होके दुःख और शान्त होके सुख दे सकें?

प्रश्न—क्या जो इस संसार में राजा-प्रजा सुखी-दुःखी हो रहे हैं, यह ग्रहों का फल नहीं है?

उत्तर—नहीं, ये सब पाप-पुण्यों के फल हैं।

प्रश्न—तो क्या ज्योतिष-शास्त्र झूठा है?

उत्तर—नहीं, जो उसमें अङ्क, बीज, रेखा-गणितविद्या है, वह सब सच्ची; जो फल की लीला है, वह सब झूठी है।

[जन्म-पत्री-सम्बन्धी ढोंग]

प्रश्न—क्या जो यह जन्मपत्र है, सो निष्फल है?

उत्तर—हाँ, वह **'जन्मपत्र'** नहीं, किन्तु उसका नाम **'शोकपत्र'** रखना चाहिये। क्योंकि जब सन्तान का जन्म होता है, तब सबको आनन्द होता है। परन्तु वह आनन्द तब तक होता है कि जब तक जन्मपत्र बनके ग्रहों का फल न सुने। जब पुरोहित **'जन्मपत्र'** बनाने को कहता है तब उसके माता-पिता पुरोहित से कहते हैं—"महाराज! आप बहुत अच्छा **'जन्मपत्र'** बनाइये"। जो धनाढ्य हो तो बहुत-सी लाल-पीली रेखाओं से चित्र- विचित्र, और निर्धन हो तो साधारण रीति से जन्मपत्र बनाके सुनाने को आता है।

तब उसके मा-बाप आदि सुनने को ज्योतिषी जी के सामने बैठके कहते हैं—"इसका **'जन्मपत्र'** अच्छा तो है?"

ज्योतिषी कहता है—"जो है सो सुना देता हूँ, इसके जन्मग्रह बहुत अच्छे और मित्रग्रह भी अच्छे हैं, जिनका फल धनाढ्य और प्रतिष्ठावान् [होना है]। जिस सभा में जा बैठेगा, तो सबके ऊपर इसका तेज पड़ेगा, शरीर से आरोग्यवान् और राज्यमान्य भी होगा।"

इत्यादि बातें सुनके पिता आदि बोलते हैं—"वाह-वाह ज्योतिषी जी! आप बहुत अच्छे हो।"

ज्योतिषी जी समझते हैं कि इन बातों से कार्य सिद्ध नहीं होता। तब ज्योतिषी बोलता है कि—"ये ग्रह तो बहुत अच्छे हैं, परन्तु ये ग्रह क्रूर हैं अर्थात् फलाने-फलाने ग्रह के योग से ८ वें वर्ष में इसका मृत्यु-योग है।"

इसको सुनके माता-पितादि पुत्र के जन्म के आनन्द को छोड़के शोकसागर में डूबकर, ज्योतिषी जी से कहते हैं कि "महाराज जी! अब हम क्या करें?"

तब ज्योतिषी जी कहते हैं—"उपाय करो"।

गृहस्थ पूछता है—"क्या उपाय करें?"

ज्योतिषी जी कहते हैं कि "ऐसा-ऐसा दान करो, ग्रह के मन्त्र का जप कराओ। और नित्य ब्राह्मणों को भोजन कराओगे, तो अनुमान है कि नवग्रहों के विघ्न हट जायें!"

अनुमान शब्द इसलिये है कि जो मर जायेगा तो कहेंगे, 'हम क्या करें, परमेश्वर के ऊपर कोई नहीं है, हमने तो बहुत-सा यत्न किया और तुमने कराया, उसके कर्म ऐसे ही थे।' और जो बच जाय तो कहते हैं कि 'देखो! हमारे मन्त्र, देवता और ब्राह्मणों की कैसी शक्ति है! तुम्हारे लड़के को बचा दिया।' यहाँ यह बात होनी चाहिये कि जो उनके जप-पाठ से कुछ न हो, तो दूने-तिगुने रुपये उन धूर्तों से ले-लेने चाहियें, और बच जाय तो भी ले-लेने चाहियें; क्योंकि जैसे ज्योतिषियों ने कहा कि "इसके कर्म और परमेश्वर के नियम तोड़ने का सामर्थ्य किसी का नहीं", वैसे गृहस्थ भी कहें कि **"यह अपने कर्म और परमेश्वर के नियम से बचा है, तुम्हारे करने से नहीं"**। और तीसरे, गुरु आदि भी पुण्य-दान कराके आप ले-लेते हैं, तो उनको भी वही उत्तर देना, जो ज्योतिषियों को दिया था।

[शीतला-मन्त्र-तन्त्र-यन्त्र आदि का ढोंग]

अब रह गई शीतला और मन्त्र-तन्त्र-यन्त्र आदि। ये भी ऐसे ही ढोंग मचाते हैं। कोई कहता है कि जो हम मन्त्र पढ़के डोरा वा यन्त्र बना देवें, तो हमारे देवता और पीर उस मन्त्र-यन्त्र के प्रताप से उसको कोई विघ्न

नहीं होने देते। उनको वही उत्तर देना चाहिये कि 'क्या तुम मृत्यु, परमेश्वर के नियम और कर्मफल से भी बचा सकोगे? तुम्हारे इस प्रकार करने से भी कितने ही लड़के मर जाते हैं और तुम्हारे घर में भी मर जाते हैं, और क्या तुम मरण से बच सकोगे?' तब वे कुछ भी नहीं कह पाते। और वे धूर्त्त जान लेते हैं कि यहाँ हमारी दाल नहीं गलेगी।

इससे इन सब मिथ्या व्यवहारों को छोड़कर धार्मिक, सब देश के उपकारकर्त्ता, निष्कपटता से सबको विद्या पढ़ानेवाले, उत्तम विद्वान् लोगों का प्रत्युपकार करना [चाहिये], जैसा कि वे जगत् का उपकार करते हैं। इस काम को कभी न छोड़ना चाहिये। और [जो] जितनी लीला, रसायन, मारण, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण आदि करना कहते हैं, उनको भी महापामर समझना चाहिये; इत्यादि मिथ्या बातों का उपदेश बाल्यावस्था में ही सन्तानों के हृदय में डाल दें कि जिससे स्वसन्तानें किसी के भ्रमजाल में पड़के दुःख न पावें।

[वीर्य-रक्षा के लाभ, और वीर्य-नाश से हानि]

और वीर्य की रक्षा में आनन्द और नाश करने में दुःख-प्राप्ति भी जना देनी चाहिये। जैसे— 'देखो, जिसके शरीर में सुरक्षित वीर्य रहता है तब उसको, आरोग्य, बुद्धि, बल, पराक्रम बढ़के बहुत सुख की प्राप्ति होती है; इसके रक्षण की यही रीति है कि विषयों की कथा, विषयी लोगों का सङ्ग, विषयों का ध्यान, स्त्री का दर्शन, एकान्तसेवन, सम्भाषण और स्पर्श आदि कर्मों से ब्रह्मचारी लोग पृथक् रहकर उत्तम शिक्षा और

पूर्ण-विद्या को प्राप्त करते हैं, वैसे तुम भी रहकर उत्तम शिक्षा और पूर्ण-विद्या को प्राप्त करना। जिसके शरीर में वीर्य नहीं होता वह नपुंसक, महाकुलक्षणी और उसको प्रमेह रोग भी होता है। वह दुर्बल, निस्तेज, निर्बुद्धि [होकर] उत्साह, साहस, धैर्य, बल, पराक्रमादि गुणों से रहित होकर नष्ट हो जाता है। जो तुम सुशिक्षा, विद्या के ग्रहण और वीर्य की रक्षा करने में इस समय चूकोगे तो पुनः इस जन्म में तुमको यह अमूल्य समय प्राप्त नहीं हो सकेगा। जब तक हम लोग गृहकर्मों के करनेवाले जीते हैं, तब तक तुमको विद्या का ग्रहण [करना] और शरीर का बल बढ़ाना चाहिये।'

इसी प्रकार की अन्य-अन्य शिक्षा भी माता और पिता करें, इसीलिए **"मातृमान् पितृमान्"** शब्दों का ग्रहण उक्त वचन में किया है। अर्थात् जन्म से ५वें वर्ष तक बालकों को माता, ६ठे वर्ष से ८वें वर्ष तक पिता शिक्षा करे और ९मे वर्ष के आरम्भ में द्विज अपने सन्तानों का उपनयन करके **आचार्यकुल** में अर्थात् जहाँ पूर्ण विद्वान् [पुरुष] और पूर्ण विदुषी स्त्रियां शिक्षा और विद्यादान करनेवाले हों, वहाँ लड़कों और लड़कियों को भेज दें। और शूद्रादि वर्ण उपनयन किये विना, विद्याभ्यास के लिये गुरुकुल में भेज दें।

[सन्तानों के लालन में हानि, ताड़न में लाभ]

उन्हीं के सन्तान विद्वान्, सभ्य और सुशिक्षित होते हैं, जो पढ़ाने में सन्तानों का लाड़न कभी नहीं करते, किन्तु ताड़ना ही करते रहते हैं। इसमें **'व्याकरण महाभाष्य'** का प्रमाण है—

सामृतैः पाणिभिर्घ्नन्ति गुरवो न विषोक्षितैः।
लालनाश्रयिणो दोषास्ताडनाश्रयिणो गुणाः॥

[व्या० म० ८।१।८]॥

अर्थ— जो माता, पिता और आचार्य सन्तान और शिष्यों का ताड़न करते हैं, वे जानो अपने सन्तान और शिष्यों को अपने हाथ से अमृत पिला रहे हैं। और जो सन्तानों वा शिष्यों का लाड़न करते हैं, वे अपने सन्तानों और शिष्यों को विष पिलाके नष्ट-भ्रष्ट कर देते हैं। क्योंकि लाड़न से सन्तान और शिष्य दोषयुक्त तथा ताड़ना से गुणयुक्त होते हैं। और सन्तान और शिष्य लोग भी ताड़ना से प्रसन्न और लाड़न से अप्रसन्न सदा रहा करें। **परन्तु माता-पिता तथा अध्यापक लोग ईर्ष्या-द्वेष से ताड़न न करें, किन्तु ऊपर से भयप्रदान और भीतर से कृपादृष्टि रक्खें।**

[चोरी आदि के त्याग, और सत्याचार-ग्रहण की शिक्षा]

जैसे अन्य शिक्षा की, वैसे चोरी, जारी, आलस्य, प्रमाद, मादक-द्रव्य, मिथ्याभाषण, हिंसा, क्रूरता, ईर्ष्या, द्वेष, मोह आदि दोषों के छोड़ने और सत्याचार के ग्रहण करने की शिक्षा करें। क्योंकि जिस पुरुष ने जिसके

सामने एक वार चोरी, जारी, मिथ्याभाषणादि कर्म किया, उसकी प्रतिष्ठा उसके सामने मृत्युपर्यन्त नहीं होती। **जैसी हानि प्रतिज्ञा मिथ्या करनेवाले की होती है, वैसी अन्य किसी की नहीं। इससे जिसके साथ जैसी प्रतिज्ञा करे, उसके साथ वैसी ही पूरी करनी चाहिये,** अर्थात् जैसे किसी ने किसी से कहा कि 'मैं तुमसे वा तुम मुझसे अमुक समय में मिलूँगा, वा मिलना, अथवा अमुक वस्तु अमुक समय में तुमको मैं दूँगा', उसको वैसे ही पूरी करे, नहीं तो उसकी प्रतीति कोई भी न करेगा, इसलिये सदा सत्यप्रतिज्ञायुक्त सबको होना चाहिये।

[अभिमान से हानि]

किसी को अभिमान करना योग्य नहीं, क्योंकि—

"अभिमानः श्रियं हन्ति" यह किसी कवि का वचन है

[महाभारत, अनु० ३६। १७]॥

=जो अभिमान अर्थात् अहङ्कार है, वह सब शोभा और लक्ष्मी का नाश कर देता है, इसलिये अभिमान करना न चाहिये।

[छल-कपट-कृतघ्नता से हानि]

छल-कपट वा कृतघ्नता से अपना ही हृदय दुःखित होता है, तो दूसरे की क्या कथा कहनी! **'छल'** और **'कपट'** उसको कहते हैं, जो भीतर और, [तथा] बाहर और [हो तथा] दूसरे को मोह में डाल और दूसरे की हानि

पर ध्यान न देकर स्वप्रयोजन सिद्ध करना। **'कृतघ्नता'** उसको कहते हैं कि 'किसी के किये हुए उपकार को न मानना।'

[सामान्य व्यवहार की शिक्षा]

क्रोधादि दोष और कटुवचन को छोड़ शान्त और मधुर वचन ही बोले और बहुत बकवाद न करे। जितना बोलना चाहिये उससे न्यून वा अधिक न बोले। बड़ों को मान्य दे। उनके सामने उठकर [उनके पास] जाके प्रथम नमस्ते कहे। [उनको] उच्चासन पर बैठावे; उनके सामने उत्तमासन पर न बैठे। सभा में वैसे स्थान पर बैठे, जैसी अपनी योग्यता हो, और दूसरा कोई न उठावे। विरोध किसी से न करे। प्रसन्न होकर गुणों का ग्रहण और दोषों का त्याग रक्खे। सज्जनों का सङ्ग और दुष्टों का त्याग [करे]। **अपने माता, पिता और आचार्य की तन, मन से सेवा करे।**

[सुचरित के ग्रहण और दुश्चरित के त्याग का उपदेश]

"यान्यस्माकꣳ सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि नो इतराणि॥"

यह तैत्तिरीयोपनिषद् का वचन है [१। ११]॥

इसका यह अभिप्राय है कि माता, पिता, आचार्य अपने सन्तानों और शिष्यों को सदा सत्य उपदेश करें और यह भी कहें कि 'जो-जो हमारे धर्मयुक्त कर्म हैं, उन-उनका ग्रहण करो और जो-जो दुष्ट कर्म हों, उन-उनका त्याग कर दिया करो।' जो-जो सत्य जानें, उन-उन का प्रकाश और प्रचार करें। किसी पाखण्डी, दुष्टाचारी मनुष्य पर विश्वास न करें और जिस-जिस उत्तम कर्म के लिये माता, पिता और आचार्य आज्ञा देवें,

उस-उसका पालन करें। जो-जो, माता-पिता ने धर्म, विद्या, अच्छे आचरण के श्लोक, **'निघण्टु', 'निरुक्त', 'अष्टाध्यायी'** अथवा अन्य सूत्र वा वेदमन्त्र कण्ठस्थ कराये हों, उन-उनका अर्थ विद्यार्थियों को पुनः [-पुनः] विदित करावें। **जैसे 'प्रथम समुल्लास' में परमेश्वर का व्याख्यान किया है,** उसी प्रकार मानके, उसकी उपासना करें। जिस प्रकार आरोग्य, विद्या और बल प्राप्त हो, उसी प्रकार भोजन-छादन और व्यवहार करें-करावें अर्थात् **जितनी क्षुधा हो, उससे कुछ न्यून भोजन करें। मद्य, मांसादि के सेवन से अलग रहैं।** अज्ञात गम्भीर जल में प्रवेश न करें, क्योंकि जलजन्तु वा किसी अन्य पदार्थ से दुःख [हो सकता है], और जो तैरना न जाने तो डूब ही जा सकता है—

"नाविज्ञाते जलाशये" यह मनुस्मृति का वचन है [४। १२९]॥

=अविज्ञात जलाशय में प्रविष्ट होके स्नानादि न करें।

दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं जलं पिबेत्।
सत्यपूतां वदेद्वाचं मनःपूतं समाचरेत्॥

यह मनुस्मृति का वचन है [६। ४६]॥

अर्थ— नीचे दृष्टि कर, ऊँचे-नीचे स्थान को देखके चले, वस्त्र से छानके जल पीये, सत्य से पवित्र करके वचन बोले, मन से विचार के आचरण करे।

[शत्रु माता तथा वैरी पिता]

माता शत्रुः पिता वैरी येन बालो न पाठितः।
न शोभते सभामध्ये हंसमध्ये बको यथा॥

यह किसी कवि का वचन है
[चा० नी० २। ११]॥

वे माता और पिता अपने सन्तानों के पूर्ण शत्रु हैं जिन्होंने उनको विद्या की प्राप्ति न कराई। वे [सन्तान] विद्वानों की सभा में वैसे तिरस्कृत और कुशोभित होते हैं जैसे कि हंसों के बीच में बगुला।

[उपसंहार]

यही माता-पिता का कर्त्तव्यकर्म, परमधर्म और कीर्त्ति का काम है कि जो अपने सन्तानों को तन, मन, धन से विद्या, धर्म, सभ्यता और उत्तम शिक्षायुक्त करना।

यह बालशिक्षा [के विषय] में थोड़ा-सा लिखा, इतने से ही बुद्धिमान् लोग बहुत समझ लेंगे। [आगे तृतीय समुल्लास में ब्रह्मचर्याश्रम में अध्ययन-अध्यापन का प्रकार लिखा जायगा]

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिकृते सत्यार्थप्रकाशे
सुभाषाविभूषिते बालशिक्षाविषये
द्वितीयः समुल्लासः सम्पूर्णः॥२॥

अथ तृतीयसमुल्लासारम्भः

अथाऽध्ययनाऽध्यापनविधिं व्याख्यास्यामः॥

सम्पूर्ण सत्यार्थप्रकाश

Click now

अब तीसरे समुल्लास में पढ़ने-पढ़ाने का प्रकार लिखेंगे।

[माता-पिता-आचार्य का मुख्य कर्त्तव्य]

सन्तानों को उत्तम विद्या, शिक्षा, गुण, कर्म और स्वभाव-रूप आभूषणों का धारण कराना माता, पिता, आचार्य और सम्बन्धियों का मुख्य कर्म है। सोना, चांदी, हीरा, माणिक, मोती, मूँगा आदि रत्नों से युक्त आभूषणों के धारण कराने से मनुष्य का आत्मा सुभूषित कभी नहीं हो सकता; क्योंकि आभूषणों के धारण करने से केवल देहाभिमान, विषयासक्ति और चोर आदि [का] भय तथा मृत्यु का भी सम्भव है। संसार में देखने में आता है कि आभूषणों के योग से बालक-आदिकों का मृत्यु दुष्टों के हाथ से होता है।

[धन्य नर-नारी]

विद्याविलासमनसो धृतशीलशिक्षाः,
सत्यव्रता रहितमानमलापहाराः।
संसारदुःखदलनेन सुभूषिता ये,
धन्या नरा विहितकर्मपरोपकाराः॥

जिन पुरुषों का मन विद्या के विलास में तत्पर रहता, सुन्दर-शील-स्वभावयुक्त, सत्यभाषणादि नियमपालनयुक्त, और जो अभिमान-अपवित्रता से रहित, अन्य की मलिनता के नाशक, सत्योपदेश, विद्यादान से संसारी-जनों के दुःखों को दूर करने से सुभूषित, वेदविहित कर्मों से पराये उपकार करने में रत हैं, वे नर और नारी धन्य हैं। विना इनके किसी को शोभा प्राप्त नहीं होती।

[बालकों को नवम वर्ष में गुरुकुल में भेजें]

इसलिये आठ वर्ष के हों तभी लड़कों को लड़कों की और लड़कियों को लड़कियों की पाठशाला में भेज देवें। जो अध्यापक पुरुष वा स्त्रियां दुष्टाचारी हों, उनसे शिक्षा न दिलावें; किन्तु जो पूर्णविद्या -युक्त, धार्मिक हों, वे ही पढ़ाने और शिक्षा देने योग्य हैं। **द्विज अपने घर में लड़कों का यज्ञोपवीत और कन्याओं का भी यथायोग्य [यज्ञोपवीत] संस्कार करके, यथोक्त आचार्यकुल अर्थात् अपनी- अपनी पाठशाला में भेज दें।**

[गुरुकुल का स्थान और उसकी व्यवस्था]

विद्या पढ़ने का स्थान एकान्त देश में होना चाहिये और लड़कों और लड़कियों की वे पाठशालायें दो कोश एक-दूसरे से दूर होनी चाहियें। **जो वहाँ अध्यापिकायें और अध्यापक पुरुष वा नौकर-चाकर हों, वे कन्याओं की पाठशाला में सब स्त्रीयां, और पुरुषों की पाठशाला में पुरुष रहैं।**

स्त्रियों की पाठशाला में पाँच वर्ष का लड़का और लड़कों की पाठशाला में पाँच वर्ष की लड़की भी न जाने पावे, अर्थात् जब तक वे ब्रह्मचारी वा ब्रह्मचारिणी रहैं, तब तक स्त्री वा पुरुष का दर्शन, स्पर्शन, एकान्तसेवन, भाषण, विषयकथा, परस्परक्रीडा, विषय का ध्यान और संग, इन आठ प्रकार के मैथुनों से अलग रहैं। और अध्यापक लोग उनको इन बातों से बचावें, जिससे उत्तम विद्या, शिक्षा, शील स्वभाव, शरीर और आत्मा के बल से युक्त होके, आनन्द को नित्य बढ़ा सकें।

[राजा से रङ्क तक खान-पान-वस्त्र की समानता]

पाठशालाओं से एक योजन अर्थात् चार कोश दूर ग्राम वा नगर रहै। **सबको तुल्य वस्त्र, खान-पान, आसन दिये जायें, चाहे वह राजकुमार वा राजकुमारी हो, चाहे दरिद्र के सन्तान हों। सबको तपस्वी होना चाहिये।** उनके माता-पिता अपने सन्तानों से वा सन्तान अपने माता-पिताओं से न मिल सकें और न किसी प्रकार का पत्र-व्यवहार एक-दूसरे से कर सकें, जिससे संसारी चिन्ता से रहित होकर, केवल विद्या बढ़ाने की चिन्ता रक्खें। जब भ्रमण करने को जायें, तब उनके साथ अध्यापक रहैं, जिससे किसी प्रकार की कुचेष्टा न कर सकें और न आलस्य-प्रमाद करें।

[विद्याध्ययन के विषय में राजनियम और समाजनियम]

‘‘कन्यानां सम्प्रदानं च कुमाराणां च रक्षणम् ॥’’

यह मनुस्मृति का श्लोक है [७।१५२] ॥

इसका अभिप्राय यह है कि **इसमें राजनियम और जातिनियम होना चाहिये कि पाँचवें अथवा आठवें वर्ष से आगे अपने लड़कों और**

लड़कियों को घर में न रखके, पाठशाला में अवश्य भेज देवें। जो न भेजे, वह दण्डनीय हो।

[उपनयन वा गायत्री-मन्त्र का उपदेश]

प्रथम लड़कों का यज्ञोपवीत घर में हो और दूसरा पाठशाला में **'आचार्यकुल'** में हो। पिता, माता वा अध्यापक अपने लड़के- लड़कियों को **अर्थसहित गायत्रीमन्त्र** का उपदेश कर दें। वह मन्त्र है—

ओ३म्। भूर्भुवः स्वः। तत्संवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्यं धीमहि।
धियो यो नंः प्रचोदयांत्॥

[यजुः, ३६।३]

इस मन्त्र में जो प्रथम **'ओ३म्'** है, उसका अर्थ **प्रथम समुल्लास** में कर दिया है, वहीं से जान लेना। अब तीन महाव्याहृतियों के अर्थ संक्षेप से लिखते हैं— **'भूरिति वै प्राणः' 'यः प्राणयति चराऽचरं जगत् स भूः स्वयम्भूरीश्वरः'**=जो सब जगत् के जीवन का आधार, प्राण से भी प्रिय और स्वयम्भू है, उस प्राण का वाचक होके **'भूः'** परमेश्वर का नाम है। **'भुवरित्यपानः' 'यः सर्वं दुःखमपानयति सोऽपानः'**=जो सब दुःखों से रहित [है], जिसके संग से जीव सब दुःखों से छूट जाते हैं, इसलिये परमेश्वर का नाम **'भुवः'** है। **'स्वरिति व्यानः' 'यो विविधं जगद् व्यानयति व्याप्नोति स व्यानः'**=जो नानाविध जगत् में व्यापक होके सबका धारण करता है, इसलिये परमेश्वर का नाम **'स्वः'** है। ये तीनों वचन तैत्तिरीय आरण्यक के हैं [प्रपा० ७ । अनु० ५] ।

(सवितुः) 'यः सुनोत्युत्पादयति सर्वं जगत् स सविता तस्य'=जो सब जगत् का उत्पादक और सब ऐश्वर्यों का दाता है **(देवस्य) 'यो दीव्यति दीव्यते वा स देवः'**=जो सर्वसुखों का देनेहारा और जिसकी प्राप्ति की कामना सब करते हैं उस परमात्मा का जो **(वरेण्यम्) 'वर्तुमर्हम्'**=स्वीकार करने योग्य, अतिश्रेष्ठ **(भर्गः) 'शुद्धस्वरूपम्'** = शुद्धस्वरूप और पवित्र करनेवाला, चेतन, ब्रह्मस्वरूप है **(तत्)** उसी परमात्मा के स्वरूप को हमलोग **(धीमहि) 'धरेमहि'**=धारण करें। किस प्रयोजन के लिये कि **(यः)** जगदीश्वरः=जो सविता-देव परमात्मा **(नः) 'अस्माकम्'**=हमारी **(धियः) 'बुद्धीः'**= बुद्धियों को **(प्रचोदयात्) 'प्रेरयेत्'**=प्रेरणा करे अर्थात् बुरे कामों से छुड़ाकर अच्छे कामों में प्रवृत्त करे।

[भावार्थ]

'हे परमेश्वर! हे सच्चिदानन्दानन्तस्वरूप! हे नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभाव! हे कृपानिधे! हे न्यायकारिन्! हे अज निरञ्जन निर्विकार! हे सर्वान्तर्यामिन्! हे सर्वाधार-सर्वजगत्पितः सकल-जगदुत्पादक! हे अनादे विश्वम्भर सर्वव्यापिन्! हे करुणामृतवारिधे! सवितुर्देवस्य तव यदोंभूर्भुवः स्वर्वरेण्यं भर्गोऽस्ति तद्वयं धीमहि=दधीमहि=धरेमहि ध्यायेम वा। कस्मै प्रयोजनायेत्यत्राह—हे भगवन्! यः सविता देवः परमेश्वरो नः=अस्माकं धियः प्रचोदयात्, स एवास्माकं पूज्य उपासनीय इष्टदेवो भवतु, नातोऽन्यद्वस्तु भवत्तुल्यं भवतोऽधिकं च कञ्चित् कदाचिन्मन्यामहे।'

हे मनुष्यो! जो सब समर्थों में समर्थ, सच्चिदानन्दानन्तस्वरूप, नित्यशुद्ध-नित्यबुद्ध-नित्यमुक्त-स्वभाववाला, कृपासागर, ठीक-ठीक न्याय का करनेहारा, जन्ममरणादि क्लेशरहित, विकार-आकार रहित, सबके घट-घट का जाननेवाला, सबका धर्त्ता, पिता, उत्पादक, अनादि, विश्व का पोषण करनेहारा, [सर्वव्यापक, करुणारूप, अमृत का सागर] सकल ऐश्वर्ययुक्त, जगत् का निर्माता, शुद्धस्वरूप और जो प्राप्ति की कामना करने योग्य है, उस परमात्मा का जो शुद्ध, चेतन स्वरूप है, उसी को हम धारण करें। [किस प्रयोजन के लिये?] इस प्रयोजन के लिये कि वह परमेश्वर हमारे आत्मा और बुद्धियों का अन्तर्यामी-स्वरूप, हमको दुष्टाचार=अधर्मयुक्त मार्ग से हटाके, श्रेष्ठाचार=सत्य मार्ग में चलावे। उसको छोड़कर दूसरे किसी वस्तु का ध्यान हम लोग नहीं करें, क्योंकि न कोई उसके तुल्य और न अधिक है। वही हमारा पिता, राजा, न्यायाधीश और सब सुखों का देनेहारा है।

[स्नान, आचमन और प्राणायाम]

इस प्रकार **'गायत्रीमन्त्र'** का उपदेश करके सन्ध्योपासन की जो **स्नान, आचमन, प्राणायाम** आदि क्रियायें हैं, [उनको] सिखलावें।

प्रथम स्नान इसलिये है कि इससे शरीर के बाह्य अवयवों की शुद्धि, आरोग्य आदि होते हैं। इसमें प्रमाण—

अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति मनः सत्येन शुध्यति।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति॥

यह मनुस्मृति का श्लोक है [५ । १०९]॥

जल से शरीर के बाहर के अवयव, सत्याचरण से मन, विद्या और तप अर्थात् सब प्रकार के कष्ट भी सहके धर्म के ही अनुष्ठान करने से जीवात्मा, **ज्ञान अर्थात् पृथिवी से लेके परमेश्वर पर्यन्त पदार्थों के विवेक से बुद्धि अर्थात् दृढ़निश्चय पवित्र होता है।** इससे स्नान, संध्योपासन के पूर्व अवश्य करना चाहिये।

[प्राणायाम का लाभ]

दूसरा प्राणायाम, इसमें प्रमाण—

योगाङ्गानुष्ठानादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेकख्यातेः॥

यह योगशास्त्र का सूत्र है [२ । २८] ॥

जब मनुष्य [चौथा योगाङ्ग] प्राणायाम करता है तब प्रतिक्षण उत्तरोत्तर काल में अशुद्धि का नाश और ज्ञान का प्रकाश होता जाता है। जब तक मुक्ति न हो तब तक उसके आत्मा का ज्ञान बराबर बढ़ता जाता है।

दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा मलाः।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात् ॥

यह मनुस्मृति का श्लोक है [६ । ७१] ॥

जैसे अग्नि में तपाने से सुवर्णादि धातुओं के मल नष्ट होकर वे शुद्ध होती हैं, वैसे प्राणायाम करने से मन आदि इन्द्रियों के दोष क्षीण होकर [वे] निर्मल हो जाती हैं।

प्राणायाम का विधि—

प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां वा प्राणस्य।

यह योगशास्त्र का सूत्र है [१। ३४] ॥

जैसे, अत्यन्त वेग से वमन होकर अन्न-जल बाहर निकल जाता है, वैसे प्राण को बल से बाहर फेंकके बाहर ही यथाशक्ति रोक देवे। जब बाहर निकालना चाहै, तब मूलेन्द्रिय को ऊपर खींचके, वायु को बाहर फेंक दे। तब तक मूलेन्द्रिय को ऊपर खींच रक्खे, जब तक प्राण बाहर रहता है। इस प्रकार प्राण बाहर अधिक ठहर सकता है। जब घबराहट हो तब धीरे-धीरे भीतर वायु को लेके फिर [भीतर कुछ देर प्राण-वायु को रोककर] वैसे ही करता जाय, जितना सामर्थ्य और इच्छा हो। और **मन में 'ओ३म्' इसका जप करता जाय। इस प्रकार करने से आत्मा और मन की पवित्रता और स्थिरता होती है।**

एक **'बाह्यविषय'** अर्थात् बाहर ही प्राण को अधिक रोकना। दूसरा **'आभ्यन्तर'** अर्थात् भीतर जितना प्राण रोका जाय, उतना रोके। तीसरा **'स्तम्भवृत्ति'** अर्थात् एकदम जहाँ-का-तहाँ प्राण को यथाशक्ति रोक देना। चौथा **'बाह्याभ्यन्तराक्षेपी'** अर्थात् जब प्राण भीतर से बाहर निकलने लगे, तब उससे विरुद्ध, उसको न निकलने देने के लिये बाहर से भीतर ले और जब बाहर से भीतर आने लगे, तब भीतर से बाहर की ओर प्राण को धक्का देकर रोकता जाय। ऐसे एक-दूसरे के विरुद्ध क्रिया करें,

तो दोनों की गति रुककर प्राण अपने वश में होने से, मन और इन्द्रियां भी स्वाधीन हो जाती हैं। बल-पुरुषार्थ बढ़कर बुद्धि तीव्र, सूक्ष्मरूप हो जाती है कि जो बहुत कठिन और सूक्ष्म विषय को भी शीघ्र ग्रहण कर लेती है। इससे मनुष्य-शरीर में वीर्य वृद्धि को प्राप्त होकर स्थिर-बल, पराक्रम, जितेन्द्रियता [की प्राप्ति होने से] सब शास्त्रों को थोड़े ही काल में समझकर उपस्थित कर लेगा। **स्त्री भी इसी प्रकार योगाभ्यास करे।**

[सामान्यव्यवहार की शिक्षा देवें]

भोजन-छादन, बैठने-उठने, बोलने-चालने, बड़े-छोटे से यथायोग्य व्यवहार करने का उपदेश करें।

[सन्ध्योपासन=ब्रह्मयज्ञ की विधि]

सन्ध्योपासन, जिसे ब्रह्मयज्ञ भी कहते हैं। **'आचमन'**—उतने जल को हथेली में लेके, पंजा के मूल और मध्यदेश में ओष्ठ लगाके करे कि वह जल कण्ठ के नीचे हृदय तक पहुँचे; न उससे अधिक, न न्यून हो। उससे कण्ठस्थ कफ और पित्त की निवृत्ति थोड़ी-सी होती है। पश्चात् **'मार्जन'** अर्थात् मध्यमा और अनामिका अंगुली के अग्रभाग से नेत्रादि अङ्गों पर जल छिड़के। उससे आलस्य दूर होता है। जो आलस्य और जल प्राप्त न हो, तो न करे। पुनः समन्त्रक **प्राणायाम, [अघमर्षण] मनसा-परिक्रमण, उपस्थान** [और] पीछे परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना की रीति सिखलावे। पश्चात् **अघमर्षण** अर्थात् पाप करने की इच्छा भी कभी न करे। यह **सन्ध्योपासन** एकान्त देश में एकाग्रचित्त से करे—

अपां समीपे नियतो नैत्यकं विधिमास्थितः।
सावित्रीमप्यधीयीत गत्वारण्यं समाहितः॥

यह मनुस्मृति का श्लोक है [२।१०४]॥

जंगल में अर्थात् एकान्त देश में जा, सावधान होके, जल के समीप स्थित होके, नित्यकर्म को करता हुआ सावित्री अर्थात् गायत्रीमन्त्र का उच्चारण, अर्थज्ञान [पूर्वक] और उसके अनुसार अपने चाल- चलन को करे; परन्तु यह जप मन से करना उत्तम है।

सन्ध्या और अग्निहोत्र सायं-प्रातः दो ही कालों में करे। दो ही रात-दिन की सन्धिवेलायें हैं, अन्य नहीं। **न्यून-से-न्यून एक घण्टा पर्यन्त ध्यान अवश्य करे। जैसे समाधिस्थ होकर योगी लोग परमात्मा का ध्यान करते हैं, वैसे ही सन्ध्योपासन भी किया करे।**

[देवयज्ञ की विधि]

दूसरा **देवयज्ञ**—जो अग्निहोत्र और विद्वानों के संग-सेवादिक से होता है। अग्निहोत्र कर्म का दोनों सन्धिवेलाओं में अर्थात् सूर्योदय के पश्चात् और सूर्यास्त के पूर्व करने का समय है।

उसके लिये एक किसी धातु वा मिट्टी की, ऊपर १२ वा १६ अंगुल चौकोर, उतनी ही गहरी और नीचे ३ वा ४ अंगुल परिमाण से वेदी इस प्रकार बनावे अर्थात् ऊपर जितनी चौड़ी हो, उसकी चतुर्थांश नीचे

चौड़ी रहै। उसमें चन्दन, पलाश वा आम्रादि के श्रेष्ठ काष्ठों के टुकड़े उसी वेदी के परिमाण से बड़े-छोटे करके उसमें रक्खे। उसके मध्य अग्नि रखके पुनः उस पर समिधा अर्थात् पूर्वोक्त इंधन रख दे। एक प्रोक्षणीपात्र ऐसा, और तीसरा प्रणीतापात्र इस प्रकार का, और एक इस प्रकार की आज्यस्थाली अर्थात् घृत रखने का पात्र, और एक चमसा ऐसा, सोने, चाँदी वा काष्ठ का बनवाके, प्रणीता और प्रोक्षणी में जल तथा घृतपात्र में घृत रखके, घृत को तपा लेवे। प्रणीता जल रखने [के लिये], और प्रोक्षणी इसलिये है कि उससे हाथ धोने को जल लेना सुगम है। पश्चात् उस घी को अच्छी प्रकार देख लेवे। फिर यज्ञ के मन्त्रों से होम करे—

[**ओम् अग्नये स्वाहा** आदि चार....**“सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यःस्वाहा”** आदि चार और]

ओं भूरग्नये प्राणाय स्वाहा। ओं भुवर्वायवेऽपानाय स्वाहा। ओं स्वरादित्याय व्यानाय स्वाहा। ओं भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः स्वाहा ॥

[तुलना-तैत्ति० आर० १०।२]

इत्यादि अग्निहोत्र के **प्रत्येक मन्त्र को पढ़कर** एक-एक आहुति देवे और जो अधिक आहुतियां देनी हों तो—

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव। यद्भद्रं तन्न आ सुव॥

[यजुः, ३० । ३]।

इस मन्त्र और पूर्वोक्त **'गायत्रीमन्त्र'** से आहुतियां देवे।

'ओम्' 'भूः' और 'प्राण' आदि ये सब नाम परमेश्वर के हैं। इनके अर्थ कह चुके हैं। 'स्वाहा' शब्द का अर्थ यह है कि जैसा ज्ञान आत्मा में हो वैसा ही वाणी से बोले, विपरीत नहीं। **जैसे परमेश्वर ने सब प्राणियों के सुख के अर्थ इस सब जगत् के पदार्थ रचे हैं, वैसे मनुष्यों को भी परोपकार करना चाहिये।**

[होम से अनेक लाभ]

प्रश्न—होम से क्या उपकार होता है?

उत्तर—सब लोग जानते हैं कि दुर्गन्धियुक्त वायु और जल से रोग, रोग से प्राणियों को दुःख; और सुगन्धित वायु तथा जल से आरोग्य [प्राप्त होता है] और रोग के नष्ट होने से सुख प्राप्त होता है।

प्रश्न—चन्दनादि घिसके किसी को लगावे, वा घृतादि खाने को देवे तो बड़ा उपकार हो। अग्नि में डालके व्यर्थ नष्ट करना, बुद्धिमानों का काम नहीं।

उत्तर—जो तुम 'पदार्थविद्या' जानते, तो कभी ऐसी बात न कहते; क्योंकि किसी द्रव्य का अभाव नहीं होता। देखो, जहाँ होम होता है, वहाँ से दूर देश में स्थित पुरुष की नासिका से सुगन्ध का ग्रहण होता है, वैसे दुर्गन्ध का भी। इतने से ही समझ लो कि अग्नि में डाला हुआ पदार्थ सूक्ष्म होके, फैलके, वायु के साथ दूर देश में जाकर, दुर्गन्ध की निवृत्ति करता है।

प्रश्न—जब ऐसा ही है तो केशर, कस्तूरी, सुगन्धित पुष्प और अतर आदि के घर में रखने से वायु सुगन्धित होकर सुखकारक होगा।

उत्तर—उस सुगन्ध का वह सामर्थ्य नहीं है कि गृहस्थ-वायु को बाहर निकालकर, शुद्ध वायु का प्रवेश करा सके, क्योंकि उसमें भेदक-शक्ति नहीं है। और अग्नि का ही सामर्थ्य है कि उस वायु और दुर्गन्धयुक्त पदार्थों को छिन्न-भिन्न और हल्का करके, बाहर निकालकर, [वहां] पवित्र वायु का प्रवेश करा देता है।

प्रश्न—तो मन्त्र पढ़के होम करने का क्या प्रयोजन है?

उत्तर—मन्त्रों में वह व्याख्यान है कि जिससे होम करने के लाभ विदित हो जायें और मन्त्रों की आवृत्ति होने से कण्ठस्थ रहें। वेद-पुस्तकों का पठन-पाठन और रक्षा भी होवे।

प्रश्न—क्या इस होम करने के विना पाप होता है?

उत्तर—हाँ, क्योंकि **जिस मनुष्य के शरीर से जितना दुर्गन्ध उत्पन्न होके वायु और जल को बिगाड़ कर, रोगोत्पत्ति का निमित्त होने से, प्राणियों को दुःख प्राप्त कराता है, उतना ही पाप उस मनुष्य को होता है। इसलिये उस पाप के निवारणार्थ, उतना सुगन्ध वा उससे अधिक, वायु और जल में फैलाना चाहिये।** और खिलाने-पिलाने से उसी एक व्यक्ति को सुखविशेष होता है। जितना घृत और सुगन्धादियुक्त पदार्थ एक मनुष्य खाता है, उतने द्रव्य के होम से लाखों मनुष्यों का उपकार होता है। परन्तु **जो मनुष्य लोग घृतादि उत्तम पदार्थ न खावें, तो उनके शरीर और आत्मा के बल की उन्नति न हो सके, इससे अच्छे पदार्थ खिलाने-पिलाने भी चाहियें; परन्तु उससे होम करना अधिक उचित है,** इसलिये होम का करना अत्यावश्यक है।

[दैनिक आहुतियों की संख्या और द्रव्य-परिमाण]

प्रश्न—प्रत्येक मनुष्य कितनी आहुतियां करे? और एक-एक आहुति का कितना परिमाण है?

उत्तर—प्रत्येक मनुष्य सोलह-सोलह आहुतियां करें और छः-छः माशे घृतादि एक-एक आहुति का परिमाण न्यून-से- न्यून चाहिये। और जो इससे अधिक करे तो बहुत अच्छा है। इसीलिये आर्यवरशिरोमणि महाशय, ऋषि-महर्षि, राजे-महाराजे लोग बहुत-सा होम करते और

कराते थे। जब तक इस होम का प्रचार रहा, तब तक आर्यावर्त देश रोगों से रहित और सुखों से पूरित था। जो अब भी प्रचार हो, तो वैसा ही हो जाय।

[ब्रह्मचर्य में कर्त्तव्य दो यज्ञ]

ये दो यज्ञ अर्थात् एक **'ब्रह्मयज्ञ'**=जो पढ़ना-पढ़ाना, सन्ध्योपासन, ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना करना; दूसरा **'देवयज्ञ'**=जो अग्निहोत्र से लेके अश्वमेध पर्यन्त यज्ञ और विद्वानों का सेवा-संग करना [कहाता है]। परन्तु **ब्रह्मचर्य [आश्रम] में केवल ब्रह्मयज्ञ और अग्निहोत्र का ही करना होता है।**

[उपनयन कराने के अधिकारी]

ब्राह्मणस्त्रयाणां वर्णानामुपनयनं कर्त्तुमर्हति, राजन्यो द्वयस्य, वैश्यो वैश्यस्यैवेति, शूद्रमपि कुलगुणसम्पन्नं मन्त्रवर्जमनुपनीतमध्यापयेदित्येके॥

यह सुश्रुत के सूत्रस्थान के दूसरे अध्याय का वचन है [वचन ५]॥

ब्राह्मण तीनों वर्णों=ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य को; क्षत्रिय, क्षत्रिय और वैश्य को; तथा वैश्य, एक वैश्य वर्ण को यज्ञोपवीत कराके पढ़ा सकता है। जो कुलीन, शुभलक्षणयुक्त शूद्र हो तो उसको मन्त्रसंहिता छोड़के सब शास्त्र पढ़ावे। शूद्र पढ़े, परन्तु उसका उपनयन न करे; **यह मत अनेक आचार्यों का है।**

[ब्रह्मचर्य का काल]

इस विधि के पश्चात् पाँचवें वा आठवें वर्ष से लड़के लड़कों की पाठशाला में और कन्यायें कन्याओं की पाठशाला में जावें और निम्नलिखित नियमपूर्वक अध्ययन का आरम्भ करें—

षट्त्रिंशदाब्दिकं चर्यं गुरौ त्रैवैदिकं व्रतम्।
तदर्धिकं पादिकं वा ग्रहणान्तिकमेव वा॥

यह मनुस्मृति का श्लोक है [३।१]॥

अर्थ—आठवें वर्ष से आगे छत्तीसवें वर्ष पर्यन्त, अर्थात् एक-एक वेद के साङ्गोपाङ्ग पढ़ने में बारह-बारह [और बारह] वर्ष मिलके छत्तीस और आठ [प्रवेश से पूर्व के] मिलके चवालीस, अथवा अठारह वर्षों का ब्रह्मचर्य और आठ पूर्व के मिलके छब्बीस, वा नौ वर्षों [का ब्रह्मचर्य और आठ वर्ष पूर्व के मिलके सतरह वर्षों का] तथा जब तक विद्या पूर्ण ग्रहण न कर लेवे तब तक ब्रह्मचर्य रक्खे।

[तीन प्रकार का ब्रह्मचर्य]

पुरुषो वाव यज्ञस्तस्य यानि चतुर्विꣳशति वर्षाणि तत्प्रातःसवनं चतुर्विं-शत्यक्षरा गायत्री गायत्रं प्रातःसवनं तदस्य वसवोऽन्वायत्ताः प्राणा वाव वसव एते हीदꣳसर्वं वासयन्ति॥१॥
तं चेदेतस्मिन् वयसि किञ्चिदुपतपेत्स ब्रूयात्प्राणा वसव इदं मे प्रातःसवनं माध्यन्दिनꣳ सवनमनुसंतनुतेति माहं प्राणानां वसूनां मध्ये यज्ञो विलोप्सीयेत्युद्धैव तत एत्यगदो ह भवति॥२॥

अथ यानि चतुश्चत्वारिꣳशद्वर्षाणि तन्माध्यन्दिनꣳसवनं चतुश्चत्वारिꣳशदक्षरा त्रिष्टुप् त्रैष्टुभं माध्यंदिनꣳसवनं तदस्य रुद्रा अन्वायत्ताः प्राणा वाव रुद्रा एते हीदꣳसर्वꣳरोदयन्ति॥३॥
तं चेदेतस्मिन्वयसि किञ्चिदुपतपेत्स ब्रूयात्प्राणा रुद्रा इदं मे माध्यन्दिनꣳसवनं तृतीयसवनमनुसन्तनुतेति माहं प्राणानाꣳरुद्राणां मध्ये यज्ञो विलोप्सीयेत्युद्धैव तत एत्यगदो ह भवति॥४॥
अथ यान्यष्टाचत्वारिꣳशद्वर्षाणि तत् तृतीयसवनमष्टाचत्वारिꣳशदक्षरा जगती जागतं तृतीयसवनं तदस्यादित्या अन्वायत्ताः प्राणा वावादित्या एते हीदꣳसर्वमा-ददते॥५॥
तं चेदेतस्मिन् वयसि किञ्चिदुपतपेत्स ब्रूयात् प्राणा आदित्या इदं मे तृतीय-सवनमायुरनुसन्तनुतेति माहं प्राणानामादित्यानां मध्ये यज्ञो विलोप्सीयेत्युद्धैव तत एत्यगदो हैव भवति ॥६॥

यह छान्दोग्योपनिषद् का वचन है [३।१६।१-६]॥

ब्रह्मचर्य तीन प्रकार का होता है—कनिष्ठ, मध्यम और उत्तम। उनमें से **कनिष्ठ**—जो यह पुरुष अन्नरसमय देह, और पुरि अर्थात् देह में शयन करनेवाला जीवात्मा, यज्ञ अर्थात् अतीव शुभगुणों से सङ्गत और सत्कर्त्तव्य है। इसको आवश्यक है कि २४ वर्ष पर्यन्त जितेन्द्रिय अर्थात् ब्रह्मचारी रहकर वेदादि- विद्या और सुशिक्षा का ग्रहण करे। और विवाह करके भी लम्पटता न करे, तो उसके शरीर में प्राण बलवान् होकर सब शुभगुणों के वास करानेवाले होते हैं॥१॥

इस प्रथम वय में जो उसको विद्याभ्यास में संतप्त करे और वह आचार्य वैसा ही उपदेश किया करे और ब्रह्मचारी ऐसा निश्चय रक्खे कि जो मैं प्रथम अवस्था में ठीक-ठीक ब्रह्मचर्य से रहूँगा तो मेरा शरीर और आत्मा आरोग्यवान्, बलवान् होके, शुभगुणों को वसानेवाले मेरे प्राण होंगे। हे मनुष्यो! तुम इस प्रकार से सुखों का विस्तार करो, जो मैं ब्रह्मचर्य का लोप न करूँ। **२४ वर्ष के पश्चात् गृहाश्रम करूँगा तो प्रसिद्ध है कि रोगरहित रहूँगा और आयु भी मेरा ७० वा ८० वर्ष तक रहेगा॥२॥**

मध्यम ब्रह्मचर्य यह है—जो मनुष्य ४४ वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचारी रहकर वेदाभ्यास करता है, उसके प्राण, इन्द्रियां, अन्तःकरण और आत्मा बलयुक्त होके, सब दुष्टों को रुलानेवाले और श्रेष्ठों का पालन करनेहारे होते हैं॥३॥

जो मैं इसी प्रथम वय में, जैसा आप कहते हैं, कुछ तपश्चर्या करूँ, तो मेरे ये रुद्ररूप प्राणयुक्त यह मध्यम ब्रह्मचर्य सिद्ध होगा। हे ब्रह्मचारी लोगो! तुम इस ब्रह्मचर्य को बढ़ाओ। जैसे मैं इस ब्रह्मचर्य का लोप न करके यज्ञस्वरूप होता हूँ और उसी आचार्यकुल से आता और रोगरहित होता हूँ। जैसा कि यह ब्रह्मचारी अच्छा काम करता है, वैसा तुम किया करो॥४॥

उत्तम ब्रह्मचर्य ४८ वर्ष पर्यन्त का तीसरे प्रकार का होता है। जैसे ४८ अक्षर की जगती [होती है], वैसे जो ४८ वर्ष पर्यन्त यथावत् ब्रह्मचर्य

करता है, उसके प्राण अनुकूल होकर सकल विद्याओं का ग्रहण करते हैं॥५॥

जो आचार्य और माता-पिता अपने सन्तानों को प्रथम वय में विद्या और गुणग्रहण के लिये तपस्वी कर और उसी का उपदेश करें और वे सन्तान आप-ही-आप **अखण्डित ब्रह्मचर्य-सेवन से तीसरे उत्तम ब्रह्मचर्य का सेवन करके पूर्ण अर्थात् चार-सौ वर्ष पर्यन्त आयु को बढ़ावें, वैसे तुम भी बढ़ाओ।** क्योंकि जो मनुष्य इस ब्रह्मचर्य को प्राप्त होकर उसका लोप नहीं करते, वे सब प्रकार के रोगों से रहित होकर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को प्राप्त होते हैं॥६॥

[शरीर की चार अवस्था]

चतस्रोऽवस्थाः शरीरस्य वृद्धिर्यौवनं सम्पूर्णता किञ्चित्
परिहाणिश्चेति। आषोडशाद्-वृद्धिः। आपञ्चविंशतेर्यौवनम्।
आचत्वारिंशतः सम्पूर्णता। ततः किञ्चित् परिहाणिश्चेति॥

[तुलना—'सुश्रुत संहिता', सूत्रस्थान ३५ । २९]

पञ्चविंशे ततो वर्षे पुमान् नारी तु षोडशे।
समत्वागतवीर्यौ तौ जानीयात्कुशलो भिषक्॥

यह सुश्रुत के सूत्रस्थान का वचन है [३५ । १३]॥

इस शरीर की चार अवस्थायें हैं। एक **'वृद्धि'**—जो १६वें वर्ष से लेके २५वें वर्ष पर्यन्त धातुओं की बढ़ती [होती है। दूसरी **'यौवन'**—जो २६वें वर्ष से लेकर [चालीसवें वर्ष तक होती है] तीसरी **'सम्पूर्णता'**—जो

[इकतालीसवें] वर्ष से लेके अड़तालीसवें वर्ष पर्यन्त सब धातुओं की पुष्टि होती है। चौथी **'किञ्चित्परिहाणि'**—जब सब साङ्गोपाङ्ग शरीरस्थ सकल धातुयें पुष्ट होके पूर्णता को प्राप्त होते हैं, तदनन्तर जो धातु बढ़ता है वह शरीर में नहीं रहता, किन्तु स्वप्न, प्रस्वेदादि द्वारा बाहर निकल जाता है। [वह ६०-७० वर्ष तक 'परिहाणि' अवस्था है। अतः] वही ४०वां वर्ष उत्तम समय विवाह का है, उत्तमोत्तम तो अड़तालीसवें वर्ष में विवाह करना है।

[विवाहार्थी स्त्री वा पुरुष के ब्रह्मचर्यकाल की तुलना]

प्रश्न—क्या यह ब्रह्मचर्य का नियम स्त्री वा पुरुष दोनों का तुल्य ही है?

उत्तर—नहीं। जो २५ वर्षपर्यन्त पुरुष ब्रह्मचर्य करे, तो १६ सोलह वर्षपर्यन्त कन्या। जो पुरुष तीस वर्षपर्यन्त ब्रह्मचारी रहै, तो स्त्री १७ वर्ष; जो पुरुष छत्तीस वर्ष रहै, तो स्त्री १८ वर्ष; जो पुरुष ४० वर्षपर्यन्त ब्रह्मचर्य करे, तो स्त्री २० वर्ष; जो पुरुष ४४ वर्षपर्यन्त ब्रह्मचर्य करे, तो स्त्री २२ वर्ष; जो पुरुष ४८ वर्षपर्यन्त ब्रह्मचर्य करे, तो स्त्री २४ चौबीस वर्षपर्यन्त ब्रह्मचर्य सेवन रक्खे; अर्थात् ४८ वें वर्ष से आगे पुरुष और २४ वें वर्ष से आगे स्त्री को ब्रह्मचर्य न रखना चाहिये; परन्तु **यह नियम विवाह करने वाले पुरुषों और स्त्रियों का है।**

और जो विवाह करना ही न चाहें, वे मरणपर्यन्त ब्रह्मचारी रह सकते हों तो भले ही रहैं, परन्तु यह काम पूर्णविद्या वाले, जितेन्द्रिय और

निर्दोष योगी स्त्री और पुरुष का है। यह बड़ा कठिन काम है कि जो काम के वेग को थांभके, इन्द्रियों को अपने वश में रखना।

[पढ़ने-पढ़ानेवालों के नियम]

ऋतं च स्वाध्यायप्रवचने च। सत्यं च स्वाध्यायप्रवचने च। तपश्च स्वाध्यायप्रवचने च। दमश्च स्वाध्यायप्रवचने च। शमश्च स्वाध्यायप्रवचने च। अग्नयश्च स्वाध्यायप्रवचने च। अग्निहोत्रं च स्वाध्यायप्रवचने च। अतिथयश्च स्वाध्यायप्रवचने च। मानुषं च स्वाध्यायप्रवचने च। प्रजा च स्वाध्यायप्रवचने च। प्रजनश्च स्वाध्यायप्रवचने च। प्रजातिश्च स्वाध्यायप्रवचने च।

यह तैत्तिरीयोपनिषद् का वचन है [शिक्षावल्ली, अनुवाक ९]।

ये पढ़ने-पढ़ानेवालों के नियम हैं— **(ऋतं०)** यथार्थ आचरण से पढ़ें और पढ़ावें, **(सत्यं०)** सत्याचार से सत्यविद्याओं को पढ़े और पढ़ावें, **(तपः०)** तपस्या अर्थात् धर्मानुष्ठान करते हुए वेदादि शास्त्रों को पढ़े और पढ़ावे, **(दमः०)** बाह्य इन्द्रियों को बुरे आचरणों से रोकके पढ़ें और पढ़ाते जायें, **(शमः०)** अर्थात् मन की वृत्ति को सब प्रकार के दोषों से हटाके पढ़ते-पढ़ाते जायें, **(अग्नयः०)** आहवनीयादि अग्नि और विद्युत् आदि को जानके पढ़ते-पढ़ाते जायें, और **(अग्निहोत्रं०)** अग्निहोत्र करते हुए पठन और पाठन करें-करावें, **(अतिथयः०)** अतिथियों की सेवा करते हुए पढ़े और पढ़ावे, **(मानुषं०)** मनुष्यसम्बन्धी व्यवहारों को यथायोग्य करते हुए पढ़ते और पढ़ाते रहें, **(प्रजा०)** अर्थात् सन्तान और राज्य का पालन करते हुए पढ़ते-पढ़ाते जायें, **(प्रजनः०)** वीर्य की रक्षा और वृद्धि करते

हुए पढ़ते-पढ़ाते जायें, **(प्रजातिः०)** अर्थात् अपने सन्तान और शिष्य का पालन करते हुए पढ़ते-पढ़ाते जायें।

[यम-नियमों का सब सेवन करें]

यमान् सेवेत सततं न नियमान् केवलान् बुधः।
यमान्पतत्यकुर्वाणो नियमान् केवलान् भजन्॥

यह मनुस्मृति का श्लोक है [४। २०४] ॥

यम पाँच प्रकार के होते हैं—

अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः॥

यह योगदर्शन का वचन है [२।३०] ।

अर्थात **(अहिंसा)** वैरत्याग, **(सत्य)** सत्य ही मानना, सत्य ही बोलना और सत्य ही करना, **(अस्तेय)** अर्थात् मन-वचन-कर्म से चोरी-त्याग, **(ब्रह्मचर्य)** अर्थात् उपस्थेन्द्रिय का संयम, **(अपरिग्रहः)** अत्यन्त लोलुपता-स्वत्वाभिमान-रहित होना; **[यमाः]** इन पाँच **यमों** का सेवन सदा करें।

नियम—

शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः॥

यह योगशास्त्र का वचन है [२।३२] ।

(शौच) अर्थात् स्नानादि से पवित्रता, **(सन्तोष)** सम्यक् प्रसन्न होकर निरुद्यम रहना सन्तोष नहीं, किन्तु पुरुषार्थ जितना हो सके उतना करना; हानि-लाभ में हर्ष वा शोक न करना, **(तपः)** अर्थात् कष्टसेवन से भी धर्मयुक्त कर्मों का अनुष्ठान [करना], **(स्वाध्याय)** पढ़ना-पढ़ाना, **(ईश्वरप्रणिधानानि)** ईश्वर की भक्तिविशेष से आत्मा को [उसके] अर्पित रखना; **[नियमाः]** ये पाँच **नियम** कहाते हैं।

यमों के विना, केवल इन नियमों का सेवन न करे, किन्तु इन दोनों का ही सेवन किया करे। जो यमों का सेवन छोड़के, केवल नियमों का सेवन करता है, वह उन्नति को प्राप्त नहीं होता, किन्तु अधोगति अर्थात् संसार में गिरा रहता है।

[अत्यन्त कामातुरता और निष्कामता दोनों त्याज्य]

कामात्मता न प्रशस्ता न चैवेहास्त्यकामता।
काम्यो हि वेदाधिगमः कर्मयोगश्च वैदिकः॥

मनुस्मृति [२।२]॥

अत्यन्त कामातुरता और निष्कामता किसी के लिये भी श्रेष्ठ नहीं, क्योंकि जो कामना न करे तो वेदों का ज्ञान और वेदविहित कर्त्तव्यादि उत्तम कर्म किसी से न हो सकें। इसलिये—

[ब्राह्मण-शरीर बनाने के साधन]

स्वाध्यायेन व्रतैर्होमैस्त्रैविद्येनेज्यया सुतैः।
महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः ॥

यह मनुस्मृति का श्लोक है [२।२८]।

(स्वाध्यायेन) सकल विद्या पढ़ने-पढ़ाने, **(व्रतैः)** ब्रह्मचर्य, सत्यभाषणादि नियम पालने, **(होमैः)** अग्निहोत्रादि होम, सत्य का ग्रहण, असत्य का त्याग और सत्य-विद्याओं का दान देने, **(त्रैविद्येन)** वेदस्थ कर्म-उपासना-ज्ञान-विद्याओं के ग्रहण, **(इज्यया)** पक्षेष्ट्यादि करने, **(सुतैः)** सुसन्तानोत्पत्ति, **(महायज्ञैः)** ब्रह्म, देव, पितृ, वैश्वदेव और अतिथियों के सेवनरूप पंचमहायज्ञ और **(यज्ञैः)** अग्निष्टोमादि तथा **'शिल्पविद्या'**- विज्ञानादि यज्ञों के सेवन से **[इयं तनुः ब्राह्मी क्रियते]** यह शरीर 'ब्राह्मी' अर्थात् वेद और परमेश्वर की भक्ति का आधाररूप 'ब्राह्मण का शरीर' बनता है। इतने साधनों के विना **'ब्राह्मणशरीर'** नहीं बन सकता।

[इन्द्रियों के संयम से लाभ और असंयम से हानि]

इन्द्रियाणां विचरतां विषयेष्वपहारिषु।
संयमे यत्नमातिष्ठेद् विद्वान् यन्तेव वाजिनाम्॥

मनु० [२।८८]॥

जैसे विद्वान् सारथि घोड़ों को नियम में रखता है, वैसे [मनुष्य] मन और आत्मा को, खोटे कामों में खैंचनेवाले विषयों में विचरती हुई इन्द्रियों के निग्रह में प्रयत्न सब प्रकार से करे। क्योंकि—

इन्द्रियाणां प्रसङ्गेन दोषमृच्छत्यसंशयम्।
सन्नियम्य तु तान्येव ततः सिद्धिं नियच्छति॥

मनु० [२।९३]॥

जीवात्मा इन्द्रियों के वश में होके बड़े-बड़े दोषों को निश्चित प्राप्त होता है; और जब इन्द्रियों को अपने वश में करता है, तभी सिद्धि को प्राप्त होता है।

[भाव की शुद्धि आवश्यक]

वेदास्त्यागश्च यज्ञाश्च नियमाश्च तपांसि च।
न विप्रदुष्टभावस्य सिद्धिं गच्छन्ति कर्हिचित्॥

मनु० [२।९७]॥

जो दुष्टाचारी=अजितेन्द्रिय पुरुष है, उसके वेद, त्याग, यज्ञ, नियम और तप तथा अन्य अच्छे काम कभी सिद्धि को प्राप्त नहीं होते।

[स्वाध्याय में अनध्याय नहीं]

वेदोपकरणे चैव स्वाध्याये चैव नैत्यके।
नानुरोधोऽस्त्यनध्याये होममन्त्रेषु चैव हि॥१॥
नैत्यके नास्त्यनध्यायो ब्रह्मसत्रं हि तत्स्मृतम्।
ब्रह्माहुतिहुतं पुण्यमनध्यायवषट्कृतम्॥२॥

मनु० [२।१०५-१०६]॥

वेद के पढ़ने-पढ़ाने, सन्ध्योपासनादि पंचमहायज्ञों के करने और होममन्त्रों में अनध्याय और निरोध अर्थात् अननुष्ठान [=अनुष्ठान का त्याग और निषेध] नहीं होता, क्योंकि नित्यकर्म में अनध्याय नहीं होता॥१॥

जैसे श्वास-प्रश्वास सदा लिये जाते हैं, बन्द नहीं किये जाते, वैसे नित्यकर्म प्रतिदिन करना चाहिये; किसी दिन न छोड़ना [चाहिये], **क्योंकि अनध्याय में भी अग्निहोत्रादि उत्तम कर्म किये हुए पुण्यरूप होते हैं।**

जैसे झूठ बोलने में सदा पाप और सत्य बोलने में सदा पुण्य होता है, वैसे ही बुरे कर्म करने में सदा अनध्याय और अच्छे कर्म करने में सदा स्वाध्याय ही होता है॥२॥

[वृद्धजनों की सेवा के फल]

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्द्धन्ते, आयुर्विद्या यशो बलम्॥

मनु० [२।१२१] ॥

जो सदा नम्र, सुशील, विद्वान् और वृद्धों की सेवा करता है, उसके आयु, विद्या, कीर्ति और बल; ये चार सदा बढ़ते रहते हैं। और जो ऐसा नहीं करते, उनके आयु आदि चार नहीं बढ़ते।

[वाणी और मन की शुद्धि आवश्यक]

अहिंसयैव भूतानां कार्यं श्रेयोऽनुशासनम्।
वाक् चैव मधुरा श्लक्ष्णा प्रयोज्या धर्ममिच्छता॥१॥
यस्य वाङ्मनसी शुद्धे सम्यग्गुप्ते च सर्वदा।
स वै सर्वमवाप्नोति वेदान्तोपगतं फलम्॥२॥

मनु० [२।१५९-१६०]॥

विद्वान् और विद्यार्थियों को योग्य है कि वैरबुद्धि छोड़के सब मनुष्यों को कल्याण के मार्ग का उपदेश करें; और उपदेष्टा सदा मधुर, सुशीलतायुक्त वाणी बोले। जो धर्म की उन्नति चाहे, वह सदा सत्य में चले और सत्य का ही उपदेश करे ॥१॥

जिस मनुष्य के वाणी और मन शुद्ध तथा सुरक्षित सदा रहते हैं; वही सब 'वेदान्त'= 'सब वेदों के सिद्धान्तरूप फल' को प्राप्त होता है॥२॥

[सम्मान की इच्छा का त्याग]

सम्मानाद् ब्राह्मणो नित्यमुद्विजेत विषादिव।
अमृतस्येव चाकाङ्क्षेदवमानस्य सर्वदा॥

मनु० [२।१६२]॥

वही ब्राह्मण समग्र वेद और परमेश्वर को जानता है, जो प्रतिष्ठा से विष के तुल्य सदा डरता है; और अपमान की इच्छा अमृत के समान किया करता है।

अनेन क्रमयोगेन संस्कृतात्मा द्विजः शनैः।
गुरौ वसन् सञ्चिनुयाद् ब्रह्माधिगमिकं तपः॥

मनु० [२।१६४]॥

इसी प्रकार से कृतोपनयन द्विज ब्रह्मचारी कुमार और ब्रह्मचारिणी कन्या धीरे-धीरे वेदार्थ के ज्ञानरूप उत्तम तप को बढ़ाते चले जायें।

[वेदाध्ययन के त्याग से शूद्रत्व की प्राप्ति]

योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम्।
स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः॥

मनु० [२ । १६८]

जो वेद को न पढ़के अन्यत्र श्रम किया करता है, वह अपने पुत्र-पौत्र-सहित शूद्रभाव को शीघ्र ही प्राप्त हो जाता है।

[ब्रह्मचारी के विशेष कर्त्तव्य]

वर्जयेन्मधुमांसञ्च गन्धं माल्यं रसान् स्त्रियः।
शुक्तानि यानि सर्वाणि प्राणिनां चैव हिंसनम्॥१॥
अभ्यङ्गमञ्जनं चाक्ष्णोरुपानच्छत्रधारणम्।
कामं क्रोधं च लोभं च नर्त्तनं गीतवादनम्॥२॥
द्यूतं च जनवादं च परिवादं तथानृतम्।
स्त्रीणां च प्रेक्षणालम्भमुपघातं परस्य च॥३॥
एकः शयीत सर्वत्र न रेतः स्कन्दयेत् क्वचित्।
कामाद्धि स्कन्दयन् रेतो हिनस्ति व्रतमात्मनः॥४॥

मनु० [२ । १७७-१८०] ॥

ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणी मद्य, मांस, गन्ध, माला, रस, स्त्री और पुरुष का [पारस्परिक] संग, सब खाटाइयां, प्राणियों की हिंसा॥१॥

अङ्गों का मर्दन, विना निमित्त उपस्थेन्द्रिय का स्पर्श, आँखों में अञ्जन, जूते और छत्र का धारण, काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, शोक, ईर्ष्या, द्वेष और नाच-गान, बाजा बजाना॥२॥

द्यूत, जिस किसी की कथा, निन्दा, मिथ्याभाषण, स्त्रियों का दर्शन-आश्रय, दूसरे की हानि आदि कुकर्मों को सदा छोड़ देवें॥३॥

सर्वत्र एकाकी सोवे, वीर्य स्खलित कभी न करे। **जो कामना से वीर्य स्खलित कर दे, तो जानो कि अपने ब्रह्मचर्य-व्रत का नाश कर दिया॥४॥**

[आचार्य का शिष्य को उपदेश]

वेदमनूच्याचार्योऽन्तेवासिनमनुशास्ति। सत्यं वद। धर्मं चर। स्वाध्यायान्मा प्रमदः। आचार्याय प्रियं धनमाहृत्य प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सीः। सत्यान्न प्रमदितव्यम्। धर्मान्न प्रमदितव्यम्। कुशलान्न प्रमदितव्यम्। भूत्यै न प्रमदितव्यम्। स्वाध्याय-प्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्॥१॥

देवपितृकार्याभ्यां न प्रमदितव्यम्। मातृदेवो भव। पितृदेवो भव॥ आचार्यदेवो भव। अतिथिदेवो भव। यान्यनवद्यानि कर्माणि तानि सेवितव्यानि नो इतराणि। यान्यस्माकꣳसुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि नो इतराणि॥२॥

ये के चास्मच्छ्रेयांसो ब्राह्मणास्तेषां त्वयासनेन प्रश्वसितव्यम्। श्रद्धया देयम्। अश्रद्धया देयम्। श्रिया देयम्। ह्रिया देयम्। भिया देयम्। संविदा देयम्॥३॥

अथ यदि ते कर्मविचिकित्सा वा वृत्तविचिकित्सा वा स्यात्। ये तत्र ब्राह्मणाः समदर्शिनो युक्ता अयुक्ताः अलूक्षा धर्मकामाः स्युः, यथा ते तत्र वर्त्तेरन्, तथा तत्र वर्त्तेथाः। एष आदेशः, एष उपदेशः, एषा वेदोपनिषत्। एतदनुशासनम्। एवमुपासितव्यम्। एवमु चैतदुपास्यम्॥४॥

यह तैत्तिरीयोपनिषद् का वचन है। [१ । ११]।

आचार्य, अन्तेवासी अर्थात् अपने शिष्य को और [और आचार्या अपनी] शिष्या को इस प्रकार उपदेश करे कि तू सदा सत्य बोल, धर्माचरण कर, प्रमादरहित होके पढ़-पढा, पूर्ण ब्रह्मचर्य से समस्त विद्याओं को ग्रहण [करके] और आचार्य के लिये प्रिय धन देकर, विवाह करके सन्तानोत्पत्ति कर। प्रमाद से सत्य को कभी मत छोड़, प्रमाद से धर्म का त्याग मत कर, प्रमाद से आरोग्य और चतुराई को मत छोड़, [प्रमाद से, उत्तम ऐश्वर्य की वृद्धि को मत छोड़], प्रमाद से पढ़ने और पढ़ाने को कभी मत छोड़॥१॥

देव=विद्वान् और माता-पितादि की सेवा में प्रमाद मत कर। जैसे विद्वान् का सत्कार करे, उसी प्रकार माता, पिता, आचार्य और अतिथि की सेवा सदा किया कर। जो अनिन्दित धर्मयुक्त कर्म हैं, उन सत्यभाषणादि को किया कर, उनसे भिन्न मिथ्या-भाषणादि कभी मत कर। जो हमारे सुचरित्र अर्थात् धर्मयुक्त कर्म हों, उनका ग्रहण कर और जो हमारे पापाचरण [हों], उनको कभी मत कर॥२॥

जो कोई हमारे मध्य में उत्तम विद्वान् और धर्मात्मा ब्राह्मण हैं, उन्हीं के समीप बैठ और उन्हीं का विश्वास किया कर। श्रद्धा से देना, अश्रद्धा से देना, शोभा से देना, लज्जा से देना, भय से देना और प्रतिज्ञा से भी देना चाहिये॥३॥

जब कभी तुझको कर्म वा शील तथा उपासना-ज्ञान में किसी प्रकार का संशय उत्पन्न हो, तो जो वे समदर्शी= पक्षपातरहित, योगी, अयोगी, आर्द्रचित्त, धर्म की कामना करनेवाले धर्मात्मा जन हों, जैसे वे धर्ममार्ग में वर्तें, वैसे तू उसमें वर्ता कर। यही आदेश=आज्ञा, यही उपदेश, यही वेद की उपनिषत् और यही शिक्षा है। इसी प्रकार वर्तना और अपना चाल-चलन सुधारना चाहिये॥४॥

[सर्वथा कामना-त्याग की असम्भवता]

अकामस्य क्रिया काचिद् दृश्यते नेह कर्हिचित्।
यद्यद्धि कुरुते किञ्चित् तत्तत्कामस्य चेष्टितम्॥१॥

मनु० [२।४]॥

मनुष्य को निश्चय करना चाहिये कि निष्काम पुरुष में नेत्र का संकोच-विकास होना भी सर्वथा असम्भव है, इससे यह सिद्ध होता है कि [मनुष्य] जो-जो कुछ भी करता है, वह-वह चेष्टा कामना के विना नहीं है॥१॥

[आचार का महत्त्व]

आचारः परमो धर्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त्त एव च।
तस्मादस्मिन्त्सदा युक्तो नित्यं स्यादात्मवान् द्विजः॥२॥
आचाराद्विच्युतो विप्रो न वेदफलमश्नुते।
आचारेण तु संयुक्तः सम्पूर्णफलभाग्भवेत्॥३॥

मनु० [१।१०८-१०९]॥

कहने, सुनने-सुनाने, पढ़ने-पढ़ाने का फल यही है कि वेद और वेदानुकूल स्मृतियों में प्रतिपादित धर्म का आचरण करना। इसलिये धर्माचार में सदा युक्त रहै॥२॥

क्योंकि जो धर्माचरण से रहित है, वह वेदप्रतिपादित धर्मजन्य सुखरूप फल को प्राप्त नहीं हो सकता और जो विद्या पढ़के धर्माचरण करता है, वही सम्पूर्ण सुख को प्राप्त होता है॥३॥

[वेद का निन्दक नास्तिक]

योऽवमन्येत ते मूले हेतुशास्त्राश्रयाद् द्विजः।
स साधुभिर्बहिष्कार्यो नास्तिको वेदनिन्दकः॥४॥

मनु० [२।११]॥

जो वेद और वेदानुकूल आप्त पुरुषों के किये शास्त्रों का अपमान करता है, उस वेदनिन्दक नास्तिक को जाति, पङ्क्ति और देश से बाह्य कर देना चाहिये॥४॥ क्योंकि—

[धर्म का चतुर्विध लक्षण]

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम्॥५॥

मनु० [२।१२]॥

वेद=श्रुति, स्मृति=वेदानुकुल आप्तोक्त **'मनुस्मृति'**-आदि शास्त्र; सत्पुरुषों का आचार=जो सनातन अर्थात् वेद द्वारा परमेश्वरोक्त-प्रतिपादित कर्म, और अपने आत्मा का प्रिय अर्थात् जिसको आत्मा चाहता है, जैसा कि सत्यभाषण, ये चार धर्म के लक्षण हैं; अर्थात्

इन्हीं से धर्माधर्म का निश्चय होता है। **जो पक्षपातरहित न्याय, सत्य का ग्रहण, असत्य का सर्वथा परित्यागरूप आचार है, उसी का नाम 'धर्म' और उससे विपरीत जो पक्षपातसहित अन्यायाचरण, सत्य का त्याग और असत्य का ग्रहणरूप कर्म है, उसी को 'अधर्म' कहते हैं॥५॥**

[धर्मज्ञान में वेद परम प्रमाण]

अर्थकामेष्वसक्तानां धर्मज्ञानं विधीयते।
धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः॥६॥

मनु० [२।१३]॥

जो पुरुष अर्थ=सुवर्ण, रत्न आदि और काम=स्त्रीसेवनादि में नहीं फसे हैं, उन्हीं को धर्म का ज्ञान प्राप्त होता है। जो धर्म के ज्ञान की इच्छा करें, वे वेद द्वारा धर्म का निश्चय करें; क्योंकि **धर्म-अधर्म का निश्चय विना वेद के ठीक-ठीक नहीं होता ॥६॥**

[क्षत्रिय आदि को पढ़ाने में ब्राह्मण का भी कल्याण]

इस प्रकार आचार्य अपने शिष्य को उपदेश करे।

और विशेषकर राजा, इतर क्षत्रिय, वैश्य और उत्तम शूद्र जनों को भी विद्या का अभ्यास अवश्य करावें। क्योंकि जो ब्राह्मण हैं, वे ही केवल विद्याभ्यास करें और क्षत्रियादि न करें, तो विद्या, धर्म, राज्य और धन आदि की बढ़ती कभी नहीं हो सकती। क्योंकि ब्राह्मण तो केवल पढ़ने-पढ़ाने और क्षत्रियादि से जीविका को प्राप्त होके जीवन धारण कर सकते हैं। जीविका के आधीन [होने से], और क्षत्रियादि के आज्ञादाता

और यथावत् परीक्षक दण्डदाता न होने से, ब्राह्मणादि सब वर्ण छल-कपट में फसके, विद्याभ्यास, धर्म को छोड़ पाखण्ड में ही फस जाते हैं।

और जब क्षत्रियादि विद्वान् होते हैं, तब ब्राह्मण भी अधिक विद्याभ्यास [करते हैं] और धर्मपथ में चलते हैं और उन क्षत्रियादि विद्वानों के सामने पाखण्ड, झूठा व्यवहार भी नहीं कर सकते। और जब क्षत्रियादि अविद्वान् होते हैं, तो वे जैसा अपने मन में आता है, वैसा ही करते-कराते हैं। इसलिये ब्राह्मण भी अपना कल्याण चाहें तो क्षत्रियादि को वेदादि सत्यशास्त्रों का अभ्यास अधिक प्रयत्न से करावें। क्योंकि क्षत्रियादि ही विद्या, धर्म, राज्य और लक्ष्मी की वृद्धि करनेहारे हैं। वे कभी भिक्षावृत्ति नहीं करते, इसलिये वे विद्या-व्यवहार में पक्षपाती भी नहीं हो सकते। और **जब सब वर्णों में विद्या-सुशिक्षा होती है, तब कोई भी पाखण्डरूप, अधर्मयुक्त मिथ्या- व्यवहार को नहीं चला सकता।**

इससे क्या सिद्ध हुआ कि क्षत्रियादि को नियम में चलानेवाले ब्राह्मण और संन्यासी, तथा ब्राह्मण और संन्यासी को सुनियम में चलानेवाले क्षत्रियादि ही होते हैं। इसलिये सब वर्णों के स्त्री- पुरुषों में विद्या और धर्म का प्रचार अवश्य होना चाहिये।

[सत्याऽसत्य की पाँच प्रकार से परीक्षा]

अब जो-जो पढ़ना-पढ़ाना हो, वह-वह अच्छी प्रकार परीक्षा करके होना योग्य है। परीक्षा पाँच प्रकार से होती है—

एक—जो-जो ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव और वेदों के अनुकूल हो, वह-वह 'सत्य' और उसके विरुद्ध 'असत्य' है।

दूसरी—जो-जो सृष्टिक्रम के अनुकूल वह-वह 'सत्य' और जो-जो सृष्टिक्रम के विरुद्ध है, वह सब 'असत्य' है। जो कोई कहे—''विना माता-पिता के योग से लड़का उत्पन्न हुआ'', ऐसा कथन सृष्टिक्रम के विरुद्ध होने से असत्य है।

तीसरी—'आप्त' अर्थात् जो धार्मिक, विद्वान्, सत्यवादी, निष्कपटियों के संग [और] उनके उपदेश के अनुकूल है वह-वह 'ग्राह्य', और जो-जो विरुद्ध है वह-वह 'अग्राह्य' है।

चौथी—अपने आत्मा की पवित्रता और विद्या के अनुकूल, अर्थात् जैसे अपने को सुख प्रिय और दुःख अप्रिय है, वैसे सर्वत्र समझ लेना कि मैं भी किसी को दुःख वा सुख दूँगा, तो वह भी अप्रसन्न और प्रसन्न होगा।

और **पाँचवीं**—आठों प्रमाण अर्थात् प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, ऐतिह्य, अर्थापत्ति, सम्भव और अभाव।

[प्रत्यक्षादि प्रमाणों के लक्षण]

इनमें से **प्रत्यक्ष** [आदि] के लक्षणादि में जो-जो नीचे सूत्र लिखेंगे, वे-वे सब 'न्यायशास्त्र' के प्रथम और द्वितीय अध्याय के जानो। [प्रथम **प्रत्यक्ष**—]

इन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्नं ज्ञानमव्यपदेश्यमव्यभिचारि व्यवसायात्मकं प्रत्यक्षम्॥

न्याय०, अध्याय १॥ आह्निक १॥ सूत्र ४॥

जो श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, जिह्वा और घ्राण का शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध के साथ अव्यवहित अर्थात् आवरणरहित सम्बन्ध होता है, और इन्द्रियों के साथ मन और मन के साथ आत्मा के संयोग से जो ज्ञान उत्पन्न होता है, उसको **'प्रत्यक्ष'** कहते हैं। परन्तु जो **(अव्यपदेश्यम्)** अर्थात् संज्ञा-संज्ञी के सम्बन्ध से उत्पन्न होता है वह, वह ज्ञान न हो । जैसे, किसी ने किसी से कहा कि 'तू जल ले आ' वह लाके, उसके पास धरके, बोला कि "यह जल है"। परन्तु वहाँ 'ज, ल' इन दो अक्षरों की संज्ञा को, न लाने, और न मंगवाने वाला देख सकता है; किन्तु जिस पदार्थ का नाम 'जल' है, वही 'प्रत्यक्ष' होता है। और जो शब्द से ज्ञान उत्पन्न होता है, वह 'शब्दप्रमाण' का विषय है। **'(अव्यभिचारि)'** जैसे किसी ने रात्रि में खम्भे को देखके [उसके] पुरुष [होने] का निश्चय कर लिया। जब दिन में उसको देखा, तो रात्रि का पुरुष-ज्ञान नष्ट होकर, स्तम्भ-ज्ञान रहा। ऐसे विनाशी ज्ञान का नाम 'व्यभिचारी' है। **(व्यवसायात्मकम्)** — किसी ने दूर से नदी की बालू देखके कहा कि 'वहाँ वस्त्र सूख रहे हैं, 'जल है वा और कुछ है?' 'वह देवदत्त खड़ा है वा यज्ञदत्त?' जब तक एक निश्चय न हो, तब तक वह प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं है; किन्तु जो अव्यपदेश्य, अव्यभिचारी और निश्चयात्मक ज्ञान है, उसी को **'प्रत्यक्ष'** कहते हैं।

दूसरा **अनुमान**—

अथ तत्पूर्वकं त्रिविधमनुमानं पूर्ववच्छेषवत्सामान्यतोदृष्टं च॥

न्याय०, अ० १। आ० १ । सू०५॥

जो प्रत्यक्षपूर्वक अर्थात् जिसका कोई एक देश वा सम्पूर्ण द्रव्य किसी स्थान वा काल में प्रत्यक्ष हुआ हो, उसका दूर देश से सहचारी वा एक देश के प्रत्यक्ष होने से अदृष्ट अवयवी का ज्ञान होने को **'अनुमान'** कहते हैं। जैसे, पुत्र को देखके पिता का, पर्वतादि में धूम को देखके अग्नि का, जगत् में सुख-दुःख देखके पूर्वजन्म का ज्ञान होता है।

वह अनुमान तीन प्रकार का है। एक, **'पूर्ववत्'**—जहाँ कारण को देखके कार्य का ज्ञान हो, वह 'पूर्ववत्' है। जैसे बद्दलों को देखके वर्षा का, विवाह को देखके सन्तानोत्पत्ति का, पढ़ते हुए विद्यार्थियों को देखके विद्या होने का निश्चय होता है, इत्यादि। दूसरा, **'शेषवत्'**— अर्थात् जहाँ कार्य को देखके कारण का ज्ञान हो। जैसे, नदी के प्रवाह की बढ़ती देखके ऊपर हुई वर्षा का, पुत्र को देखके पिता का, सृष्टि को देखके 'अनादि कारण' का, सृष्टि में 'रचना-विशेष' देखके कर्त्ता ईश्वर का, सुख-दुःख देखके पुण्य-पाप के आचरण का ज्ञान होता है, इसी को 'शेषवत्' कहते हैं। तीसरा, **'सामान्यतोदृष्ट'**—जो कोई किसी का कार्य-कारण न हो, परन्तु किसी प्रकार का साधर्म्य एक दूसरे के साथ हो। जैसे कोई भी विना चले दूसरे स्थान को नहीं जा सकता, वैसे ही दूसरों का भी

स्थानान्तर में जाना विना गमन के कभी नहीं हो सकता। **'अनुमान'** शब्द का अर्थ यही है कि **'अनु'** अर्थात् **'प्रत्यक्षस्य पश्चान्मीयते ज्ञायते येन तदनुमानम्'**=जो प्रत्यक्ष के पश्चात् उत्पन्न हो; जैसे, धूम को प्रत्यक्ष देखे विना अदृष्ट अग्नि का ज्ञान कभी नहीं हो सकता।

तीसरा **उपमान**—

प्रसिद्धसाधर्म्यात् साध्यसाधनमुपमानम्॥

न्याय०, अ० १॥ आ० १॥ सू० ६॥

जो प्रसिद्ध=प्रत्यक्ष साधर्म्य से साध्य अर्थात् सिद्ध करने योग्य ज्ञान की सिद्धि करने का साधन हो, उसको **'उपमान'** कहते हैं। **'उपमीयते येन तदुपमानम्'**= जैसे किसी ने किसी भृत्य से कहा कि "तू देवदत्त के साथी विष्णुमित्र को बुला ला।" वह बोला कि "मैंने उसको कभी नहीं देखा"। उसके स्वामी ने उससे कहा कि "जैसा यह देवदत्त है, वैसा ही विष्णुमित्र है;" वा "जैसी यह गाय है, वैसा ही गवय अर्थात् रोजा=नीलगाय होती है"। जब वह वहाँ गया और देवदत्त के सदृश जिसको देखा, निश्चय जान लिया कि 'यही विष्णुमित्र है', उसको ले आया; अथवा किसी जंगल में जिस पशु को गाय के तुल्य देखा, उसको जान लिया कि इसी का नाम 'गवय' है।

चौथा **शब्दप्रमाण**—

आप्तोपदेशः शब्दः॥

न्याय, अ० १ । आ० १। सू०७॥

जो आप्त अर्थात् पूर्ण विद्वान्, धर्मात्मा, परोपकारप्रिय, सत्यवादी, पुरुषार्थी, जितेन्द्रिय पुरुष जैसा अपने आत्मा में जानता हो और जिससे सुख पाया हो, उसी के कथन की इच्छा से प्रेरित [होकर] सब मनुष्यों के कल्याणार्थ उपदेष्टा हो, अर्थात् जितने पृथिवी से लेके परमेश्वर-पर्यन्त पदार्थ [हैं उनका] ज्ञान प्राप्त होकर उपदेष्टा होता है, जो ऐसे पुरुष [के उपदेश], और पूर्ण आप्त परमेश्वर के उपदेश 'वेद' हैं, उन्हीं को **'शब्दप्रमाण'** जानो।

न चतुष्ट्वमैतिह्यार्थापत्तिसम्भवाभावप्रामाण्यात्॥

न्याय०, अ० २। आ० २। सू० १॥

[अर्थ—प्रमाण केवल चार ही नहीं हैं, क्योंकि ऐतिह्य, अर्थापत्ति, सम्भव और अभाव इनको भी प्रमाण माना है। अतः प्रमाण आठ हैं।]

पांचवां **ऐतिह्य**—

[इतिहासो नाम वृत्तम्=] जो **'इति ह'** अर्थात् इस प्रकार का था, उसने इस प्रकार किया। अर्थात् किसी के जीवन-चरित्र का नाम **'ऐतिह्य'** है।

छठा **अर्थापत्ति**—

‘अर्थादापद्यते सा अर्थापत्तिः’ [=“जो एक बात किसी ने कही हो उससे विरुद्ध दूसरी बात समझी जावे” वह अर्थापत्ति कहाती है] केनचिदुच्यते—**‘सत्सु घनेषु वृष्टिः, सति कारणे कार्यं भवतीति’। किमत्र प्रसज्यते—‘असत्सु घनेषु-वृष्टिः, असति कारणे च कार्यं न भवतीति’**= जैसे किसी ने किसी से कहा कि ‘बद्दल के होने से वर्षा और कारण के होने से कार्य उत्पन्न होता है’। इससे, विना कहे यह दूसरी बात सिद्ध होती है कि ‘विना बद्दल वर्षा और विना कारण के कार्य कभी नहीं हो सकता।’

सातवाँ **सम्भव**—

‘सम्भवति यस्मिन् स सम्भवः’=[जिस कार्य की सृष्टिक्रमानुकूल और युक्ति-प्रमाण से होने की संभावना हो, वह ‘संभव’ है, जैसे-] कोई कहे कि ‘माता- पिता के सङ्ग के विना सन्तानोत्पत्ति [हुई], किसी ने मृतक जिलाये, पहाड़ उठाये, समुद्र में पत्थर तैराये, चन्द्रमा के टुकड़े किये, परमेश्वर का अवतार हुआ, मनुष्य के सींग देखे और वन्ध्या के पुत्र और पुत्री का विवाह किया’, इत्यादि सब बातें असम्भव हैं। क्योंकि ये सब बातें सृष्टिक्रम के विरुद्ध हैं, और जो बात सृष्टिक्रम के अनुकूल हो, वही **‘सम्भव’** है।

आठवाँ **अभाव—**

'न भवति यस्मिन् सोऽभावः'= [जिस कार्य में होने का भाव न हो वह 'अभाव' है] जैसे किसी ने किसी से कहा कि 'हाथी ले आ' वह वहाँ हाथी का 'अभाव' देखकर, जहाँ हाथी था, वहाँ से ले आया।

ये आठ प्रमाण [हैं]। इनमें से जो शब्द में ऐतिह्य और अनुमान में अर्थापत्ति, सम्भव और अभाव की गणना करें, तो चार प्रमाण रह जाते हैं। इन पाँच प्रकार की परीक्षाओं से मनुष्य सत्यासत्य का निश्चय कर सकता है, अन्यथा नहीं।

[द्रव्य-गुणादि के ज्ञान से मोक्ष-प्राप्ति]

धर्मविशेषप्रसूताद् द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमवायानां पदार्थानां साधर्म्यवैधर्म्याभ्यां तत्त्वज्ञानान्निःश्रेयसम्॥

वै०, अ० १। आ० १। सू० ४॥

मनुष्य धर्म के यथायोग्य अनुष्ठान करने से पवित्र होकर **'साधर्म्य'** अर्थात् जो तुल्य धर्म है, जैसे—पृथिवी जड़ और जल भी जड़; **'वैधर्म्य'** अर्थात् [जो विपरीत धर्म है, जैसे—] पृथिवी कठोर और जल कोमल; इसी प्रकार से **'द्रव्य'**, **'गुण'**, **'कर्म'**, **'सामान्य'**, **'विशेष'** और **'समवाय'** इन छः पदार्थों के तत्त्वज्ञान अर्थात् स्वरूपज्ञान से **'निःश्रेयसम्'**=मोक्ष को प्राप्त होता है।

[द्रव्यों की गणना]

पृथिव्यापस्तेजो वायुराकाशं कालो दिगात्मा मन इति द्रव्याणि।

वै०, अ० १। आ० १। सू० ५।

पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, काल, दिशा, आत्मा और मन ये नव **'द्रव्य'** हैं।

क्रियागुणवत् समवायिकारणमिति द्रव्यलक्षणम्॥

वै०, अ० १। आ० १ । सू० १५ ॥

[द्रव्य का लक्षण]

'क्रियाश्च गुणाश्च विद्यन्ते यस्मिँस्तत् क्रियागुणवत्'=जिसमें क्रिया, गुण और केवल गुण भी रहें, उसको **'द्रव्य'** कहते हैं। उनमें से पृथिवी, जल, तेज, वायु, मन और आत्मा ये छः द्रव्य क्रिया और गुणवाले हैं। तथा आकाश, काल और दिशा ये तीन गुणवाले तो हैं, किन्तु क्रिया-वाले नहीं। **(समवायि०) 'समवेतुं शीलं यस्य तत् समवायि, प्राग्वृत्तित्वं कारणं, समवायि च तत्कारणं च समवायिकारणम्' 'लक्ष्यते येन तल्लक्षणम्'**=जो मिलने के स्वभावयुक्त, कार्य से कारण पूर्वकालस्थ हो, उसको **'समवायिकारण'** कहते हैं। जिससे लक्ष्य जाना जाय; जैसे, आँख से रूप जाना जाता है, उसको **'लक्षण'** कहते हैं।

[पृथिव्यादि भूत द्रव्यों के लक्षण वा गुण]

रूपरसगन्धस्पर्शवती पृथिवी॥

वै०, अ० २। आ० १। स० १॥

जिसमें रूप, रस, गन्ध और स्पर्श है, वह **'पृथिवी'** कहाती है।

व्यवस्थितः पृथिव्यां गन्धः॥

वै० । अ० २। आ० २। सू० ३॥

पृथिवी में **गन्ध** गुण स्वाभाविक है और रूप, रस और स्पर्श [क्रमशः] अग्नि, जल और वायु के योग से हैं। वैसे ही जल में रस, अग्नि में रूप, वायु में स्पर्श और आकाश में शब्द स्वाभाविक [गुण] है।

रूपरसस्पर्शवत्य आपो द्रवाः स्निग्धाः॥

वै०, अ० २। आ० १। सु० २॥

रूप, रस और स्पर्शवान्, द्रवीभूत और कोमल है, सो **'जल'** कहाता है। परन्तु जल का स्वाभाविक गुण **'रस'** [है]; तथा रूप और स्पर्श [क्रमशः] अग्नि और वायु के योग से हैं।

अप्सु शीतता॥

वै०, अ० १। आ० २। सू० ५ ॥

और **'जल'** में शीतलत्व गुण भी स्वाभाविक है।

तेजो रूपस्पर्शवत्॥

वै०, अ० २। आ० १ । सू० ३॥

जो रूप और स्पर्शवाला है, वह **'तेज'** है; परन्तु इसमें रूप स्वाभाविक और स्पर्श वायु के योग से है।

स्पर्शवान् वायुः॥

वै०, अ० २। आ० १। सू० ४॥

स्पर्श गुणवाला **'वायु'** है; परन्तु इसमें भी उष्णता, शीतता [क्रमशः] तेज और जल के योग से है।

त आकाशे न विद्यन्ते॥

वै०, अ० २। आ० १। सू० ५॥

रूप, रस, गन्ध और स्पर्श आकाश में नहीं हैं; किन्तु **'शब्द'** ही **आकाश** का गुण है।

निष्क्रमणं प्रवेशनमित्याकाशस्य लिङ्गम्॥

वै०, अ० २। आ० १। सू० २० ॥

जिसमें प्रवेश और निकलना होता है, वह **'आकाश'** का लिङ्ग है।

कार्यान्तराप्रादुर्भावाच्च शब्दः स्पर्शवतामगुणः॥

वै०, अ० २। आ० १। सू० २५ ।

अन्य पृथिवी आदि कार्यों से प्रकट न होने से 'शब्द', स्पर्श गुणवाली भूमि आदि का गुण नहीं है; किन्तु शब्द आकाश का ही गुण है।

[काल का लक्षण]

अपरस्मिन् परं युगपच्चिरं क्षिप्रमिति काललिङ्गानि॥

वै०, अ० २। आ० २। सू० ६॥

जिसमें [**अपरस्मिन्-परम्**] अपर, पर, **(युगपत्)** एक वार, **(चिरम्)** विलम्ब, **(क्षिप्रम्)** शीघ्र इत्यादि प्रयोग होते हैं, **[काल०]** उसको **'काल'** कहते हैं।

नित्येष्वभावाद्-अनित्येषु भावात् कारणे कालाख्येति॥

वै०, अ० २। आ० २। सू० ९॥

जो नित्य पदार्थों में न हो और अनित्यों में हो, इसीलिये कारण में ही **'काल'** संज्ञा है।

[दिक्=दिशा का लक्षण और भेद]

इत इदमिति यतस्तद्दिश्यं लिङ्गम्॥

वै०, अ० २। आ० २। सू० १०॥

'यहां से यह पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर, ऊपर, नीचे', जिसमें यह व्यवहार होता है, उसको **'दिशा'** कहते हैं।

आदित्यसंयोगाद् भूतपूर्वाद् भविष्यतो भूताच्च प्राची॥

वै०, अ० २। आ० २। सू० १४।

जिस ओर प्रथम आदित्य का संयोग हुआ, है, और होगा, उसको 'पूर्व' दिशा कहते हैं; और जहाँ अस्त हो, उसको 'पश्चिम'। पूर्वाभिमुख मनुष्य के दाहिनी ओर 'दक्षिण' और बाईं ओर 'उत्तर' दिशा कहाती है।

एतेन दिगन्तरालानि व्याख्यातानि॥

वै०, अ० २। आ० २। सू० १६॥

इससे जो पूर्व-दक्षिण के बीच दिशा है उसको **'आग्नेयी'**, दक्षिण-पश्चिम के बीच को **'नैर्ऋती'**, पश्चिम-उत्तर के बीच को **'वायवी'** और उत्तर-पूर्व के बीच को **'ऐशानी'** दिशा कहते हैं।

[आत्मा के लिङ्ग]

इच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदुःखज्ञानान्यात्मनो लिङ्गमिति॥

न्याय०, अ० १। आ० १। सू० १०॥

जिसमे **(इच्छा)** राग, **(द्वेष)** वैर, **(प्रयत्न)** पुरुषार्थ, सुख, दुःख, **(ज्ञानानि)** जानना गुण हों, **[आत्मनः लिङ्गम्]** वह जीवात्मा [है]। वैशेषिक में इतना विशेष है—

प्राणाऽपाननिमेषोन्मेषजीवनमनोगतीन्द्रियान्तरविकाराः सुखदुःख-इच्छाद्वेषप्रयत्नाश्चात्मनो लिङ्गानि॥

वै०, अ० ३। आ० २। सू०४॥

(प्राण) भीतर से वायु को निकालना, **(अपान)** बाहर से वायु को भीतर लेना, **(निमेष)** आँख को नीचे ढांकना, **(उन्मेष)** आँख को ऊपर उठाना, **(जीवन)** प्राण का धारण करना, **(मनः)** मनन=विचार अर्थात् ज्ञान, **(गति)** यथेष्ट गमन करना, **(इन्द्रिय)** इन्द्रियों को विषयों में चलाना, उनसे विषयों का ग्रहण करना, **(आन्तर-विकाराः)** क्षुधा, तृषा, ज्वर, पीड़ा आदि विकारों का होना, **[सुखदुःख०]** सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष और प्रयत्न ये सब **[आत्मनः लिङ्गानि]** **'आत्मा'** के लिङ्ग अर्थात् कर्म और गुण हैं।

[मन का लिङ्ग]

युगपज्ज्ञानानुत्पत्तिर्मनसो लिङ्गम्॥

न्याय०, अ० १। आ० १। सू० १६॥

जिससे एक काल में दो पदार्थों का ग्रहण-ज्ञान नहीं होता, उसको **'मन'** कहते हैं।

यह द्रव्य का स्वरूप और लक्षण कहा। अब **'गुण'** को कहते हैं—

[गुणों की गणना]

रूपरसगन्धस्पर्शाः संख्याः परिमाणानि पृथक्त्वं संयोग-विभागौ परत्वाऽपरत्वे बुद्धयः सुखदुःखे-इच्छाद्वेषौ प्रयत्नाश्च गुणाः॥

वै०, अ० १। आ० १। सू० ६॥

रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, गुरुत्व, द्रवत्व, स्नेह, संस्कार, धर्म, अधर्म और शब्द ये २४ **गुण** कहाते हैं।

(रूप) नेत्र से जिसका ग्रहण हो वह, **(रस)** जीभ से जिस मिष्टादि अनेक प्रकार का ग्रहण होता है वह, **(गन्ध)** नासिका से जिसका ग्रहण हो वह, **(स्पर्श)** त्वचा से जिसका ग्रहण होता है वह, **(संख्या)** एक-द्वि इत्यादि जिससे पदार्थों की गणना होती है वह, **(परिमाणानि)** जिससे तोल अर्थात् हल्का वा भारी विदित होता है, **(पृथक्त्वम्)** एक दूसरे से अलग होना, **(संयोग)** एक दूसरे के साथ मिलना, **(विभाग)** एक मिले हुए के अनेक टुकड़े होना, **(परत्व)** इससे यह परे है, **(अपरत्व)** उससे यह उरे है, **(बुद्धि)** ज्ञान, **(सुख)** आनन्द, **(दुःख)** क्लेश, **(इच्छा)** राग, **(द्वेष)** विरोध, वैर, **(प्रयत्न)** अनेक प्रकार का बल-पुरुषार्थ, [और **(च)** 'च' से] **(गुरुत्व)** भारीपन, **(द्रवत्व)** पिघल जाना, **(स्नेह)** प्रीति और चिकनापन, **(संस्कार)** दूसरे के योग से वासना का होना, **(धर्म)** न्यायाचरण और कठिनत्वादि, **(अधर्म)** अन्यायाचरण और कठिनता से विरुद्ध कोमलता और शब्द। ये चौबीस गुण हैं। [शब्द का लक्षण यह है—]

श्रोत्रोपलब्धिबुद्धिनिर्ग्राह्यः प्रयोगेणाऽभिज्वलित आकाशदेशः शब्दः॥

महाभाष्य [१।१।१]॥

जिसकी श्रोत्रों से प्राप्ति हो और जिसका बुद्धि से ग्रहण हो, और जो प्रयोग से प्रकाशित हो, और आकाश जिसका देश हो, वह **'शब्द'** कहाता है।

द्रव्याश्रय्यगुणवान् संयोगविभागेष्वकारणमनपेक्ष इति गुणलक्षणम्॥

वै०, अ० १ । आ० १ । सू० १६॥

'गुण' उसको कहते हैं कि जो द्रव्य के आश्रय रहै, अन्य गुण को धारण न करे, संयोग और विभाग में कारण न हो, अनपेक्ष अर्थात् एक दूसरे की अपेक्षा न करे, उनका नाम **'गुण'** है।

[कर्म के भेद और लक्षण]

उत्क्षेपणमवक्षेपणमाकुञ्चनं प्रसारणं गमनमिति कर्माणि॥

वै०, अ० १ । आ० १। सू० ७॥

(उत्क्षेपणम्) ऊपर को चेष्टा करना, **(अवक्षेपणम्)** नीचे को चेष्टा करना, **(आकुञ्चनम्)** सङ्कोच करना, **(प्रसारणम्)** फैलाना, **(गमनम्)** समभाग में गति करना अर्थात् चलना, आना-जाना, घूमना आदि होते हैं, **[इति कर्माणि]** इनको **कर्म** कहते हैं। इनका लक्षण—

एकद्रव्यमगुणं संयोगविभागेष्वनपेक्षकारणमिति कर्मलक्षणम्॥

वै०, अ० १ । आ० १। सू० १७॥

'एक द्रव्यमाश्रय आधारो यस्य तदेकद्रव्यम्, न विद्यते गुणो यस्य यस्मिंस्तदगुणम्, संयोगेषु विभागेषु चाऽपेक्षारहितं कारणं तत्कर्मलक्षणम्' अथवा **'यत् क्रियते तत्कर्म, लक्ष्यते येन तल्लक्षणम्, कर्मणो लक्षणं कर्मलक्षणम्'**=एक द्रव्य के आश्रित, गुणों से रहित, संयोग और विभाग होने में [जो] अपेक्षारहित कारण हो, उसको **'कर्म'** कहते हैं।

[सामान्य द्रव्य का निर्देश]

द्रव्यगुणकर्मणां द्रव्यं कारणं सामान्यम्॥

वै०, अ० १ । आ० १। सू० १८॥

जो कार्य-द्रव्य, गुण और कर्मों का 'कारण-द्रव्य' है, वह **'सामान्य'** द्रव्य है।

द्रव्याणां द्रव्यं कार्यं सामान्यम्॥

वै०, अ० १। आ० १। सू० २३॥

जो द्रव्यों का 'कार्यद्रव्य' है, वह कार्यपन से सब कार्यों में 'सामान्य' है।

[सामान्य विशेष]

द्रव्यत्वं गुणत्वं कर्मत्वञ्च सामान्यानि विशेषाश्च॥

वै०, अ० १ । आ० २ । सू० ५॥

द्रव्यों में द्रव्यपन, गुणों में गुणपन, कर्मों में कर्मपन ये सब **'सामान्य'** और **'विशेष'** कहाते हैं। क्योंकि द्रव्यों में द्रव्यत्व सामान्य, और गुणत्व [तथा] कर्मत्व से द्रव्यत्व विशेष है। इसी प्रकार सर्वत्र जानना।

सामान्यं विशेष इति बुद्ध्यपेक्षम्॥

वै० अ० १। आ० २। सू० ३॥

'सामान्य' और 'विशेष', बुद्धि की अपेक्षा से सिद्ध होते हैं। जैसे—मनुष्य व्यक्तियों में 'मनुष्यत्व' सामान्य और पशुत्वादि से विशेष [है]। तथैव स्त्रीत्व और पुरुषत्व है। इनमें ब्राह्मणत्व, क्षत्रियत्व, वैश्यत्व, शूद्रत्व भी विशेष हैं। ब्राह्मण व्यक्तियों में ब्राह्मणत्व सामान्य और क्षत्रियादि से विशेष है, इसी प्रकार सर्वत्र जानो।

[समवाय का लक्षण]

इहेदमिति यतः कार्यकारणयोः सः समवायः॥

वै०, अ० ७। अ० २। सू० २६॥

इसमें यह [आश्रित है], जैसे—द्रव्य में क्रिया, गुणी में गुण, व्यक्ति में जाति, अवयवी में अवयव; कारण में कार्य; और क्रिया-क्रियावान, गुण-गुणी, जाति- व्यक्ति, कार्य-कारण, अवयव-अवयवी, इनका नित्य सम्बन्ध होने से **'समवाय'** [सम्बन्ध] कहाता है। और जो दूसरा द्रव्यों का परस्पर सम्बन्ध होता है, वह संयोगी अर्थात् अनित्य सम्बन्ध है।

[साधर्म्य वैधर्म्य]

द्रव्यगुणयोः सजातीयारम्भकत्वं साधर्म्यम्॥

वै०, अ० १ । आ० १। सू० ९॥

जो द्रव्य और गुण का समानजातीयक कार्य का आरम्भ होता है, उसको **'साधर्म्य'** कहते हैं। जैसे पृथिवी में जड़त्व धर्म और घटादि कार्योत्पादकत्व स्वसदृश धर्म है, वैसे जल में भी जड़त्व और हिम आदि स्वसदृश कार्य का आरम्भ, पृथिवी के साथ जल का और जल के साथ पृथिवी का तुल्य धर्म है। और **'द्रव्यगुणयोर्विजातीयारम्भकत्वं वैधर्म्यम्'**=यह विदित हुआ कि जो द्रव्य और गुण का विरुद्ध धर्म और कार्य का आरम्भ है, उसको **'वैधर्म्य'** कहते हैं, जैसे पृथिवी में कठिनत्व, शुष्कत्व और गन्धवत्त्व धर्म जल से विरुद्ध और जल का द्रवत्व, कोमलता और रसगुणयुक्तता पृथिवी से विरुद्ध है।

[कार्य-कारण सम्बन्ध]

कारणभावात् कार्यभावः॥

वै०, अ० ४। आ० १। सू० ३॥

कारण के होने से ही कार्य होता है।

कारणाऽभावात् कार्याऽभावः॥

वै०, अ० १। आ० २। सू० १॥

कारण के न होने से, कार्य कभी नहीं होता।

न तु कार्याभावात् कारणाभावः॥

वै०, अ० १। आ० २। सू० २॥

कार्य के अभाव से, कारण का अभाव नहीं होता।

कारणगुणपूर्वकः कार्यगुणो दृष्टः॥

वै०, अ० २। आ० १ । सू० २४॥

जैसे कारण में गुण होते हैं, वैसे ही कार्य में होते हैं।

परिमाण दो प्रकार का है—

अणुमहदिति तस्मिन्विशेषभावाद् विशेषाभावाच्च॥

वै०, अ० ७। आ० १ । सू० ११॥

(अणु) सूक्ष्म, **(महत्)** बड़ा, ये सापेक्ष हैं। जैसे, 'त्रसरेणु' लिक्षा से छोटा और 'द्व्यणुक' से बड़ा है, तथा पहाड़ पृथिवी से छोटे [और] वृक्षों से बड़े हैं।

[सत्ता का लक्षण]

सदिति यतो द्रव्यगुणकर्मसु सा सत्ता॥

वै०, अ० १ । आ० २। सू० ७॥

जो द्रव्य, गुण और कर्मों में **'सत्'** शब्द अन्वित रहता है, अर्थात् **'सत्-द्रव्यम्, सत्-गुणः, सत्-कर्म'**=सत् द्रव्य, सत् गुण, सत् कर्म अर्थात् वर्त्तमान कालवाची शब्द का अन्वय सबके साथ रहता है, [वह धर्म **'सत्ता'** है]।

[महासमान्य]

भावोऽनुवृत्तेरेव हेतुत्वात्सामान्यमेव॥

वै०, अ० १। आ० २। सू० ४॥

जो सबके साथ अनुवर्त्तमान होने से सत्तारूप भाव है, सो सत्ता **'महासामान्य'** कहाती है।

यह क्रम भावरूप द्रव्यों का है।

[अभाव के ५ भेद]

और जो **अभाव** है, वह पाँच प्रकार का होता है। पहला—

क्रियागुणव्यपदेशाभावात्प्रागसत्॥

वै०, अ० ९ । आ० १। सू० १॥

जो क्रिया और गुण के विशेष निमित्त के प्राक् अर्थात् पूर्व [वह कार्यरूप पदार्थ] **'असत्'**=न था; जैसे, घट, वस्त्रादि उत्पत्ति के पूर्व नहीं थे। इसका नाम **'प्रागभाव'** [है]। दूसरा—

सदसत्॥

वै०, अ० ९। आ० १ । सू० २॥

जो होके न रहै । जैसे, घट उत्पन्न होके नष्ट हो जाय, यह **'प्रध्वंसाभाव'** कहाता है। तीसरा—

सच्चासत्॥

वै०, अ० ९। आ० १। सू० ४॥

जो होवे और न होवे। जैसे **'अगौरश्वोऽनश्वो गौः'**=यह घोड़ा गाय नहीं और गाय घोड़ा नहीं। अर्थात् घोड़े में गाय का और गाय में घोड़े का अभाव है, और गाय में गाय, घोड़े में घोड़े का भाव है। यह **'अन्योऽन्याभाव'** कहाता है। चौथा—

यच्चान्यदसदतस्तदसत्॥

वै०, अ० ९। आ० १। सू० ५॥

जो पूर्वोक्त तीनों अभावों से भिन्न है, उसको **'अत्यन्ताभाव'** कहते हैं। जैसे— 'नरशृङ्ग' अर्थात् मनुष्य का सींग, 'खपुष्प'=आकाश का फूल और 'वन्ध्यापुत्र'=वन्ध्या का पुत्र, इत्यादि। पाँचवाँ—

नास्ति घटो गेहे-इति सतो घटस्य गेहसंसर्गप्रतिषेधः॥

वै०, अ० ९ । आ० १। सूत्र १०॥

घर में घड़ा नहीं अर्थात् अन्यत्र है, घर के साथ घड़े का सम्बन्ध नहीं है [यह **संसर्गाभाव** है] । ये पाँच **'अभाव'** कहाते हैं।

[अविद्या के हेतु]

इन्द्रियदोषात्संस्कारदोषाच्चाविद्या॥

वै०, अ० ९ । आ० २। सू० १०॥

इन्द्रियों और संस्कारों के दोषों से **'अविद्या'** उत्पन्न होती है।

तद् दुष्टं ज्ञानम्॥

वै०, अ० ९ । आ० २। सू० ११॥

जो दुष्ट ज्ञान अर्थात् विपरीत ज्ञान है, उसको **'अविद्या'** कहते हैं।

अदुष्टं विद्या॥

वै०, अ० ९ । आ० २। सू० १२॥

जो अदुष्ट अर्थात् यथार्थ ज्ञान है, उसको **'विद्या'** कहते हैं।

[पृथिव्यादि-गुणों के नित्य अनित्य भेद]

पृथिव्यादिरूपरसगन्धस्पर्शा द्रव्यानित्यत्वादनित्याश्च॥२॥
एतेन नित्येषु नित्यत्वमुक्तम्॥३॥

वै०, अ० ७। आ० १ । सू० २-३॥

जो कार्यरूप पृथिव्यादि पदार्थ और उनमें रूप, रस, गन्ध, स्पर्श गुण हैं, ये सब द्रव्यों के अनित्य होने से अनित्य हैं। और जो इनके कारणरूप पृथिव्यादि नित्य द्रव्यों में गन्धादि गुण हैं, वे 'नित्य' हैं।

[नित्य का लक्षण]

सत्-अकारणवत्-नित्यम्॥

वै०, अ० ४। आ० १। सू० १॥

जो विद्यमान हो और जिसका कारण कोई भी न हो, वह **'नित्य'** है अर्थात्— **'सत्कारणवत्-अनित्यम्'**=जो कारण- वाले कार्यरूप द्रव्य-गुण हैं, वे **'अनित्य'** कहाते हैं।

[लैङ्गिक ज्ञान के भेद]

अस्येदं कार्यं कारणं संयोगि-विरोधि-समवायि चेति लैङ्गिकम्॥

वै०, अ० ९ । आ० २। सू० १॥

इसका यह कार्य वा कारण है, इत्यादि 'समवायी', 'संयोगी', 'एकार्थ-**समवायी'** और 'विरोधी' यह चार प्रकार का लैङ्गिक अर्थात् लिङ्ग-लिङ्गी के सम्बन्ध से [होनेवाला] ज्ञान होता है। **(समवायि—)** जैसे आकाश परिमाणवाला है, **(संयोगि—)** जैसे शरीर त्वचावाला है, इत्यादि का नित्य संयोग है, **(एकार्थ-समवायि'—)** एक अर्थ में दो का रहना, जैसे कार्य 'रूप', 'स्पर्श' कार्य का लिङ्ग अर्थात् जनानेवाला है, **(विरोधि)**—जैसे हुई भई वृष्टि होनेवाली वृष्टि का **विरोधी** लिङ्ग है।

'व्याप्ति'—

नियतधर्मसाहित्यमुभयोरेकतरस्य वा व्याप्तिः॥२९॥
निजशक्त्युद्भवमित्याचार्याः॥३१॥
आधेयशक्तियोग इति पञ्चशिखः॥३२॥

सांख्यशास्त्र [अ० ५। सू०] २९, ३१, ३२॥

जो साध्य-साधन अर्थात् सिद्ध करने योग्य और जिससे सिद्ध किया जाय, उन दोनों अथवा एक साधनमात्र का, निश्चित धर्म का सहचार है, उसी को **'व्याप्ति'** कहते हैं। जैसे धूम और अग्नि का सहचार है॥२९॥

तथा व्याप्य जो धूम उसकी निजशक्ति से उत्पन्न होता है अर्थात् जब देशान्तर में दूर धूम जाता है, तब विना अग्नि के योग के भी धूम स्वयं रहता है, उसी का नाम व्याप्ति है, अर्थात् अग्नि के छेदन, भेदन, सामर्थ्य से जलादि पदार्थ धूमरूप में प्रकट होते हैं॥३१॥

जैसे महत्तत्त्वादि में प्रकृत्यादि की व्यापकता, बुद्ध्यादि में व्याप्यता धर्म के सम्बन्ध का नाम व्याप्ति है, अथवा आधेय जो आधार के आश्रय रहै उसकी शक्ति के योग का नाम व्याप्ति है। वैसे शक्ति आधेयरूप और शक्तिमान् आधाररूप का सम्बन्ध है॥३२॥

[ग्रन्थों की परीक्षा करके पढ़ें-पढ़ावें]

इत्यादि शास्त्रों के 'प्रमाण'-आदि से परीक्षा करके पढ़ें और पढ़ावें। अन्यथा **विद्यार्थियों को** सत्य-बोध कभी नहीं हो सकता। जिस-जिस ग्रन्थ को पढ़ावें, उस-उसकी पूर्वोक्त प्रकार से परीक्षा करके जो-[जो] सत्य ठहरे, वह-वह ग्रन्थ पढावें। जो-जो इन परीक्षाओं से विरुद्ध हों, उन-उन ग्रन्थों को न पढ़ें-न पढ़ावें। क्योंकि—

लक्षणप्रमाणाभ्यां वस्तुसिद्धिः॥

[न्यायभाष्य ३।१।२८]

लक्षण जैसा कि **'गन्धवती पृथिवी'** [न्याय०, वा० भा० ३।१।२८] =जो पृथिवी है, वह गन्धवाली है। ऐसे लक्षण और प्रत्यक्षादि प्रमाण, इनसे सब सत्यासत्य और पदार्थों का निर्णय हो जाता है। इसके विना कुछ भी नहीं होता।

अथ पठनपाठनविधिः

अब पढ़ने-पढ़ाने का प्रकार लिखते हैं—

[वर्णोच्चारण-शिक्षा]

प्रथम पाणिनिमुनिकृत **'शिक्षा'** जो कि सूत्ररूप है, उसकी रीति से अर्थात् इस अक्षर का यह स्थान, यह प्रयत्न, यह करण है, जैसे—'प' इसका

ओष्ठ स्थान, स्पृष्ट प्रयत्न और प्राण तथा जीभ की क्रिया करना 'करण' कहाता है; इसी प्रकार यथायोग्य सब अक्षरों का उच्चारण माता, पिता, आचार्य सिखलावें।

[व्याकरण—अष्टाध्यायी-महाभाष्य]

तदनन्तर व्याकरण अर्थात् प्रथम **अष्टाध्यायी** के सूत्रों का पाठ, जैसे—**'वृद्धिरादैच्'** [अष्टा० अ० १। पा० १। सू० १] फिर पदच्छेद जैसे—'वृद्धिः, आत्, +ऐच्; पश्चात्। समास **'आच्च ऐच्च आदैच्';** फिर अर्थ—**'आदैचां वृद्धिसंज्ञा क्रियते'**=आ, ऐ, औ की वृद्धि संज्ञा है। **'तः परो यस्मात्स तपरः, तादपि परस्तपरः'**=तकार जिससे परे और जो तकार से भी परे हो, वह तपर कहाता है। इससे सिद्ध हुआ कि जो आकार से परे त् और तकार से परे 'ऐच्' दोनों 'तपर' हैं। 'तपर' का प्रयोजन यह है कि ह्रस्व और प्लुत की वृद्धि संज्ञा न हुई। उदाहरण—

'भागः', यहाँ 'भज्' धातु से परे 'घञ्' प्रत्यय के 'घ्, ञ' की इत्संज्ञा होके, लोप हो गया। पश्चात् 'भज् अ' यहां जकार के पूर्व भकारस्थ अकार के स्थान में 'आ' वृद्धि हुई तो 'भाज्'। पुनः 'ज्' को ग् होकर, अकार के साथ मिलके 'भागः'। ऐसा प्रयोग हुआ।

'अध्यायः'—यहाँ अधिपूर्वक 'इङ्' धातु के ह्रस्व इकार के स्थान में 'घञ्' प्रत्यय परे होने पर 'ऐ' वृद्धि और उसको 'आय्' होकर मिलके 'अध्यायः' [हुआ]।

'नायकः'—यहाँ 'नीञ्' धातु के दीर्घ ईकार के स्थान में 'ण्वुल्' प्रत्यय परे होने पर, 'ऐ' वृद्धि और उसको 'आय' होकर, मिलके 'नायकः' [हुआ]।

और **'स्तावकः'**—यहाँ 'स्तु' धातु से 'ण्वुल्' प्रत्यय होकर **धातु** के ह्रस्व उकार को 'औ' वृद्धि, और उसको 'आव्' आदेश होकर अकार में मिल गया, तो 'स्तावकः' [हुआ]।

[कारकः] 'कृञ्' धातु से आगे 'ण्वुल्' प्रत्यय, उसके 'ण, ल्' की इत्संज्ञा होके लोप, 'वु' के स्थान में 'अक' आदेश और ऋकार के स्थान में 'आर्' वृद्धि होकर 'कारकः' सिद्ध हुआ।

और जो-जो सूत्र आगे-पीछे के जिस प्रयोग में लगें, उनका सब कार्य बतलाता जाय और सिलेट अथवा लकड़ी के पट्टे पर लिख दिखला-दिखलाके, कच्चारूप धरके, जैसे—'भज+घञ्+सु' इस प्रकार धरके। प्रथम धातु के अकार का लोप, पश्चात् घकार और ञ् का लोप होकर 'भज्+अ+सु' ऐसा रहा, फिर अ को आकार वृद्धि और ज् के स्थान में ग् होने से 'भाग्+अ+सु', पुनः अकार में मिल जाने से 'भाग+सु' रहा, अब उकार की इत्संज्ञा, सु के स्थान में रुँ होकर 'भाग+रुँ' हुआ, फिर उकार की इत्संज्ञा लोप हो जाने के पश्चात् 'भागर्' ऐसा रहा, अब रेफ के स्थान में (:) विसर्जनीय होकर पुनः 'भागः' यह रूप सिद्ध हुआ।

जिस-जिस सूत्र से जो-जो कार्य होता है, उस-उस को पढ़-पढाके, लिख-लिखवाके कार्य करता-कराता जाय। इस प्रकार पढ़ने-पढ़ाने से बहुत शीघ्र दृढ़ बोध होता है।

एक वार इसी प्रकार **'अष्टाध्यायी'** पढ़ाके **'धातुपाठ'** अर्थसहित और दश लकारों के रूप तथा प्रक्रियासहित सूत्रों के उत्सर्ग अर्थात् सामान्यसूत्र जैसे—**'कर्मण्यम्'** [अष्टा० ३। २। १]=कर्म उपपद लगा हो तो सब धातुमात्र से अण् प्रत्यय हो, जैसे—**'कुम्भकारः'**। पश्चात् अपवाद सूत्र जैसे—**'आतोऽनुपसर्गे कः'** [अष्टा० ३। २। ३]= उपसर्गभिन्न कर्म उपपद लगा हो तो आकारान्त धातु से 'क' प्रत्यय होवे। अर्थात् जो बहुव्यापक जैसा कि कर्मोपपद लगा हो तो सब धातुओं से 'अण्' प्राप्त होता है, उससे विशेष अर्थात् अल्प विषय, उसी पूर्व सूत्र के विषय में से आकारान्त धातु को 'क' प्रत्यय ने ग्रहण कर लिया। जैसे 'उत्सर्ग' के विषय में 'अपवाद' सूत्र की प्रवृत्ति होती है, वैसे अपवाद के विषय में 'उत्सर्ग' की प्रवत्ति नहीं होती। जैसे **चक्रवर्त्ती** राजा के राज्य में माण्डलिक और भूमिदारों की प्रवृत्ति होती है, वैसे माण्डलिक राजादि के राज्य में **चक्रवर्त्ती** की प्रवृत्ति नहीं होती। इस प्रकार पाणिनि महर्षि ने सहस्र श्लोकों के बीच में अखिल शब्द, अर्थ और सम्बन्धों की विद्या प्रतिपादित कर दी है।

'धातुपाठ' के पश्चात् **'उणादिगण'** [=उणादिकोश] के पढ़ाने में सर्व-सुबन्त का विषय अच्छी प्रकार पढ़ाके, पुनः दूसरी वारे शङ्का,

समाधान, वार्त्तिक, कारिका, परिभाषा की घटनापूर्वक **'अष्टाध्यायी'** की द्वितीयानुवृत्ति पढ़ावें।

तदनन्तर **'महाभाष्य'** पढ़ावें। अर्थात् जो बुद्धिमान्, पुरुषार्थी, निष्कपटी, विद्यावृद्धि के चाहनेवाले नित्यप्रति पढ़ें-पढ़ावें, तो **डेढ़ वर्ष में 'अष्टाध्यायी'** और **डेढ़ वर्ष में 'महाभाष्य'** पढ़के, **तीन वर्षों में** पूर्ण वैयाकरण होकर, वैदिक और लौकिक शब्दों का व्याकरण से बोध होकर, पुनः अन्य शास्त्रों को शीघ्र सहज में पढ़-पढ़ा सकते हैं। किन्तु जैसा बड़ा परिश्रम व्याकरण में होता है, वैसा श्रम अन्य शास्त्रों में नहीं करना पड़ता।

[अनार्ष ग्रन्थों के अध्ययन से हानि]

और जितना बोध इनके पढ़ने से **तीन वर्षों में** होता है, उतना बोध कुग्रन्थों— सारस्वतचन्द्रिका, कौमुदी, मनोरमादि के पढ़ने से पचास वर्षों में भी नहीं हो सकता; क्योंकि जो महाशय, महर्षि लोगों ने सहजता से महान् विषय अपने ग्रन्थों में प्रकाशित किया है, वैसा इन क्षुद्राशय मनुष्यों के कल्पित ग्रन्थों में क्योंकर हो सकता है? **महर्षि लोगों का आशय, जहाँ तक हो सके वहाँ तक सुगम और जिसके ग्रहण में समय थोड़ा लगे, इस प्रकार का होता है। और क्षुद्राशय लोगों की मनसा ऐसी होती है कि जहाँ तक बने, वहाँ तक कठिन रचना करनी, जिसको बड़े परिश्रम से पढ़के अल्प लाभ उठा सकें, जैसे-'पहाड़ का खोदना, कौड़ी का लाभ होना।' और आर्ष ग्रन्थों का पढ़ना ऐसा है कि 'एक गोता लगाना, बहुमूल्य मोतियों का पाना।'**

[व्याकरण के पश्चात् पठनीय ग्रन्थ]

व्याकरण को पढ़के यास्कमुनिकृत **'निघण्टु'** और **'निरुक्त' छः** वा **आठ महीनों में** सार्थक पढ़ें और पढ़ावें । अन्य नास्तिककृत **'अमरकोश'**-आदि में अनेक वर्ष व्यर्थ न खोवें। तदनन्तर पिङ्गलाचार्यकृत **'छन्दोग्रन्थ'** जिससे वैदिक-लौकिक छन्दों का परिज्ञान, नवीन रचना और श्लोक बनाने की रीति भी यथावत् सीखें। इस ग्रन्थ और श्लोकों की रचना तथा प्रस्तार को **चार महीनों में** सीख पढ़-पढ़ा सकते हैं। और **'वृत्तरत्नाकर'** आदि अल्पबुद्धिप्रकल्पित ग्रन्थों में अनेक वर्ष न खोवें।

[पठनीय साहित्य-ग्रन्थ]

तत्पश्चात् **'मनुस्मृति', 'वाल्मीकि- रामायण'** और **महाभारत** के उद्योगपर्वान्तर्गत **'विदुरनीति'** आदि अच्छे प्रकरण, जिनसे दुष्ट व्यसन दूर हों और उत्तमता, सभ्यता प्राप्त हो, उनको काव्यरीति अर्थात् पदच्छेद, पदार्थोक्ति, अन्वय, विशेष्य, विशेषण और भावार्थ को अध्यापक लोग जनावें और विद्यार्थी लोग जानते जायें। इनको **एक वर्ष के** भीतर पढ़ लें।

[षड्दर्शन एवं उपनिषद्]

तदनन्तर **'पूर्वमीमांसा', 'वैशेषिक', 'न्याय', 'योग', 'सांख्य'** और **'वेदान्त'** अर्थात् जहाँ तक बन सके, वहाँ तक **ऋषिकृत व्याख्यासहित** अथवा **उत्तम विद्वानों की सरल-व्याख्यायुक्त** छः शास्त्रों को पढ़ें-पढ़ावें। परन्तु **'वेदान्तसूत्रों'** के पढ़ने के पूर्व **ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय, छान्दोग्य** और **बृहदारण्यक इन**

दश उपनिषदों को पढ़ें। छः शास्त्रों के सूत्रों को भाष्यवृत्ति-सहित **दो वर्षों के भीतर पढ़ावें और पढ़ लेवें।**

[ब्राह्मण ग्रन्थों के साथ वेदों का अध्ययन]

तत्पश्चात् **छः वर्षों के भीतर** चारों ब्राह्मण अर्थात् **'ऐतरेय', 'शतपथ', 'साम'** और **'गोपथ'** ब्राह्मणों के सहित चारों वेदों को स्वर, शब्द-अर्थ-सम्बन्ध तथा क्रियासहित पढ़ना योग्य है। इसमें प्रमाण—

[अर्थ न जाननेवाले की निन्दा और अर्थज्ञ की प्रशंसा]

स्थाणुरयं भारहारः किलाभूदधीत्य वेदं न विजानाति योऽर्थम्।
योऽर्थज्ञ इत्सकलं भद्रमश्नुते नाकमेति ज्ञानविधूतपाप्मा॥

यह निरुक्त में मन्त्र है [१।१८; शांखायन ब्राह्मण १४]।

जो वेद को स्वर और पाठमात्र पढ़के अर्थ नहीं जानता वह, जैसे वृक्ष डाली, पत्ते, फल, फूल [आदि का], और पशु अन्य धान्य आदि का भार उठाता है, वैसे भारवाह अर्थात् भार [मात्र] का उठानेवाला है। और जो वेद को पढ़ता और उसका यथावत् अर्थ जानता है, वही ज्ञान से पापों को छोड़, पवित्र धर्माचरण के प्रताप से सम्पूर्ण आनन्द को प्राप्त होके, देहान्त के पश्चात् **'सर्वानन्द'** को प्राप्त होता है।

उत त्वः पश्यन्न ददर्श वाचमुत त्वः शृण्वन्न शृणोत्येनाम्।
उतो त्वस्मै तन्वं वि सस्रे जायेव पत्य उशती सुवासाः॥

ऋ०, म० १० । सूक्त ७१। मं० ४॥

जो अविद्वान् हैं, वे सुनते हुए नहीं सुनते, देखते हुए नहीं देखते, बोलते हुए नहीं बोलते अर्थात् अविद्वान् लोग इस विद्या-वाणी के रहस्य को नहीं जान सकते। किन्तु जो शब्द, अर्थ और सम्बन्ध का जाननेवाला है, उसके लिये, जैसे सुन्दर वस्त्र-आभूषण धारण कर, अपने पति की कामना करती हुई स्त्री अपने शरीर और स्वरूप का प्रकाश पति के सामने करती है, वैसे विद्या विद्वान् के लिये अपने स्वरूप का प्रकाश करती है, अविद्वानों के लिये नहीं।

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्यस्मिन्देवा अधि विश्वे निषेदुः।
यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त इमे समासते॥

ऋ०, म० १। सूक्त १६४। मं० ३९॥

जिस व्यापक, अविनाशी, सर्वोत्कृष्ट परमेश्वर में सब विद्वान् और पृथिवी, सूर्य आदि सब लोक स्थित हैं, कि जिसमें सब वेदों का मुख्य तात्पर्य है, उस ब्रह्म को जो नहीं जानता, क्या वह **'ऋग्वेद'**-आदि से कुछ सुख को प्राप्त हो सकता है? नहीं-नहीं। किन्तु **जो वेदों को पढ़के, धर्मात्मा, योगी होकर उस ब्रह्म को जानते हैं, वे सब परमेश्वर में स्थित होके, मुक्तिरूपी परमानन्द को प्राप्त होते हैं। इसलिये जो कुछ पढ़ना वा पढ़ाना हो, वह अर्थज्ञानसहित [होना] चाहिये।**

[उपवेद]

इस प्रकार सब वेदों को पढ़के, **'आयुर्वेद'** अर्थात् जो **'चरक'**, **'सुश्रुत'** आदि ऋषि- मुनि-प्रणीत वैद्यक-शास्त्र हैं, उनको अर्थ, क्रिया, शस्त्र,

छेदन-भेदन, लेप, चिकित्सा, निदान, औषध, पथ्य, शरीर, देश, काल और वस्तु के गुण-ज्ञानपूर्वक ४ **चार वर्षों के भीतर** पढ़ें-पढ़ावें।

तदनन्तर **'धनुर्वेद'** अर्थात् जो राज्यसम्बन्धी काम करना है, इसके दो भेद— एक, निज राजपुरुषसम्बन्धी और दूसरा, प्रजासम्बन्धी होता है। राजकार्य में सब सभाओं [के अध्यक्ष और] सेना के अध्यक्ष शस्त्रास्त्रविद्या, नाना प्रकार के व्यूहों का अभ्यास अर्थात् जिसको आजकल 'क़वायद' कहते हैं, जो कि शत्रुओं से लड़ाई के समय में क्रिया करनी होती है, उनको यथावत् सीखें। और जो-जो प्रजा के पालन और वृद्धि करने का प्रकार है, उनको सीखके, न्यायपूर्वक सब प्रजा को प्रसन्न रक्खें, दुष्टों को यथायोग्य दण्ड और श्रेष्ठों के पालन का प्रकार सब प्रकार सीख लें। इस राजविद्या को **दो-दो वर्षों में** सीखकर **'गान्धर्ववेद'** कि जिसको गानविद्या कहते हैं; उसमें स्वर, राग, रागिणी, समय, ताल, ग्राम, तान, वादित्र, नृत्य, गीत आदि को **[चार वर्षों में]** यथावत् सीखें; परन्तु मुख्य करके **'सामवेद'** का गान वादित्र-वादन-पूर्वक सीखें। और **'नारदसंहिता'** आदि जो-जो आर्ष ग्रन्थ हैं, उनको पढ़ें; परन्तु भड़ुवों, वेश्याओं और वैरागियों के विषयासक्तिकारक और गर्दभ-शब्दवत् व्यर्थ आलाप कभी न करें।

'अर्थवेद' कि जिसको शिल्पविद्या कहते हैं, उसको पदार्थगुण-विज्ञान, क्रिया, कौशल, नानाविध पदार्थों का निर्माण, पृथिवी से लेके

आकाशपर्यन्त की विद्या को और अर्थ अर्थात् जो ऐश्वर्य को बढ़ानेवाला है, उस विद्या को **[चार वर्षों में]** यथावत् सीख के,

[ज्योतिश्शास्त्र]

दो वर्षों में ज्योतिषशास्त्र **'सूर्यसिद्धान्तादि'** जिसमें बीजगणित, अङ्क, भूगोल, खगोल और भूगर्भविद्या है, उसको यथावत् सीखें। तत्पश्चात् सब प्रकार की हस्तक्रिया, यन्त्रकला आदि को सीखें, परन्तु जितने ग्रह, नक्षत्र, जन्मपत्र, राशि, मुहूर्त आदि के फल के विधायक ग्रन्थ हैं, उनको झूठ समझके कभी न पढ़ें और न पढ़ावें।

ऐसा प्रयत्न पढ़ने और पढ़ानेवाले करें कि जिससे तीस वा इकत्तीस वर्षों के भीतर **समग्र विद्या**, उत्तम शिक्षा प्राप्त होके मनुष्य लोग कृतकृत्य होकर सदा आनन्द में रहैं। **जितनी विद्या इस रीति से तीस वा इकत्तीस वर्षों में हो सकती है, उतनी अन्य प्रकार से शत वर्षों में भी नहीं हो सकती।**

ऋषिप्रणीत ग्रन्थों को इसलिये पढ़ना चाहिये कि वे बड़े विद्वान्, सर्वशास्त्रवित् और धर्मात्मा थे और अनृषि अर्थात् जो अल्प-शास्त्र पढ़े हैं और जिनका आत्मा पक्षपातसहित है, उनके बनाये हुए ग्रन्थ भी वैसे ही हैं।

[षड्दर्शनों के प्रामाणिक भाष्य]

'पूर्वमीमांसा' पर व्यासमुनिकृत व्याख्या, **'वैशेषिक'** पर गोतममुनिकृत प्रशस्त- पादभाष्य, गोतममुनिकृत **'न्यायसूत्र'** पर वात्स्यायनमुनिकृत

भाष्य, पतञ्जलिमुनिकृत **'[योग] सूत्र'** पर व्यासमुनिकृत भाष्य, कपिलमुनिकृत **'सांख्यसूत्र'** पर भागुरिमुनिकृत भाष्य, व्यासमुनिकृत **'वेदान्तसूत्र'** पर वात्स्यायनमुनिकृत भाष्य अथवा बौधायनमुनिकृत भाष्य वृत्तिसहित पढ़ें-पढ़ावें। इत्यादि सूत्रों को **'कल्प'** अङ्ग में भी गिनना चाहिये।

[स्वत:प्रमाण और परत:प्रमाण ग्रन्थ]

जैसे **'ऋग्'**, **'यजुः'**, **'साम'** और **'अथर्व'** चारों वेद ईश्वरकृत हैं, वैसे **'ऐतरेय'**, **'शतपथ'**, **'साम'** और **'गोपथ'** चारों **ब्राह्मण**; शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निघण्टु-निरुक्त, छन्द और ज्योतिष ये छः वेदों के अङ्ग, **'मीमांसा'** -आदि छः शास्त्र वेदों के **उपाङ्ग**, **'आयुर्वेद'**, **'धनुर्वेद'**, **'गान्धर्ववेद'** और **'अर्थवेद'** ये चार वेदों के **उपवेद** इत्यादि सब ऋषि-मुनियों के किये ग्रन्थ हैं। **इनमें भी जो-जो वेदविरुद्ध प्रतीत हो, उस-उस को छोड़ देना; क्योंकि वेद ईश्वरकृत होने से निर्भ्रान्त, स्वत:प्रमाण [है] अर्थात् वेद का प्रमाण वेद से ही होता है। ब्राह्मणादि सब ग्रन्थ परत:प्रमाण अर्थात् इनका प्रमाण वेदाधीन है।** वेद की विशेष व्याख्या **'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका'** में देख लीजिये और इस ग्रन्थ में भी आगे लिखेंगे।

[पठन-पाठन में परित्याग के योग्य ग्रन्थ]

अब जो **परित्याग के योग्य ग्रन्थ** हैं उनका परिगणन संक्षेप से किया जाता है। अर्थात् जो-जो नीचे ग्रन्थ लिखेंगे, वह-वह जालग्रन्थ समझना चाहिये। **व्याकरण** में कातन्त्र, सारस्वतचन्द्रिका, मुग्धबोध, कौमुदी, शेखर, मनोरमादि। **कोशों** में अमरकोशादि। **छन्दोग्रन्थों** में

वृत्तरत्नाकरादि। **शिक्षा** में **'अथ शिक्षा प्रवक्ष्यामि पाणिनीयं मतं यथा'** इत्यादि। **ज्योतिष** में शीघ्रबोध, मुहूर्त्तचिन्तामणि आदि। **काव्यों** में नायिकाभेद, कुवलयानन्द, रघुवंश, माघ, किरातार्जुनीयादि। **मीमांसा** में धर्मसिन्धु, व्रतार्कादि। **वैशेषिक** में तर्कसंग्रहादि। **न्याय** में जागदीशी आदि। **योग** में हठप्रयोग-दीपिकादि। **सांख्य** में सांख्यतत्त्वकौमुद्यादि। **वेदान्त** में योगवासिष्ठ, पञ्चदश्यादि। **वैद्यक** में शार्ङ्गधरादि। **स्मृतियों** में एक **मनुस्मृति** को छोड़, इसके प्रक्षिप्त श्लोक और अन्य सब स्मृतियां; सब तन्त्र ग्रन्थ, सब पुराण, सब उपपुराण, तुलसीदासकृत भाषारामायण, रुक्मिणीमङ्गल-आदि और सर्व-भाषा-ग्रन्थ। ये सब कपोलकल्पित मिथ्या ग्रन्थ हैं।

[इतिहास-पुराण-विचार]

प्रश्न—क्या इन ग्रन्थों में कुछ भी सत्य नहीं?

उत्तर—थोड़ा सत्य तो है, परन्तु इसके साथ बहुत-सा असत्य भी है। इससे **'विषसम्पृक्तान्नवत् त्याज्याः'**=जैसे अत्युत्तम अन्न [भी] विष से युक्त होने से छोड़ने योग्य होता है, वैसे ये ग्रन्थ हैं।

प्रश्न—क्या आप पुराण, इतिहास को नहीं मानते?

उत्तर—हाँ, मानते हैं; परन्तु सत्य को मानते हैं, मिथ्या को नहीं।

प्रश्न—कौन सत्य और कौन मिथ्या है?

उत्तर—ब्राह्मणानीतिहासानु पुराणानि कल्पान् गाथा नाराशंसीरिति॥

यह गृह्यसूत्रादि का वचन है। [तुलना-आश्व० गृ० सू०, अ० ३। कं० ३। व १-२; तैत्ति० आ०, प्रपा० २। अनु० ९]

जो **'ऐतरेय'**, **'शतपथ'**-आदि ब्राह्मण लिख आये, उन्हीं के इतिहास, पुराण, कल्प, गाथा और नाराशंसी पाँच नाम हैं; **'श्रीमद्भागवत'-आदि** का नहीं।

प्रश्न—जो त्याज्य ग्रन्थों में सत्य है, उसका ग्रहण क्यों नहीं करते?

उत्तर—जो-जो उनमें सत्य है, सो-सो वेदादि सत्यशास्त्रों का है और मिथ्या उनके घर का है। वेदादि सत्य-शास्त्रों के स्वीकार में सब सत्य का ग्रहण हो जाता है। जो कोई इन मिथ्या ग्रन्थों से सत्य का ग्रहण करना चाहे, तो मिथ्या भी उनके गले लिपट जाय। इसलिये **'असत्यमिश्रं सत्यं दूरतस्त्याज्यमिति'**= असत्य से युक्त ग्रन्थस्थ सत्य को भी वैसे छोड़ देना चाहिये जैसे विषयुक्त अन्न को।

[हमारा मत वेद है]

प्रश्न—तुम्हारा क्या मत है?

उत्तर—वेद, अर्थात् जो-जो वेद में करने और छोड़ने की शिक्षा की है, उस-उसको हम यथावत् करना [और] छोड़ना मानते हैं। जिसलिये

वेद हमको मान्य है, इसलिये हमारा मत वेद है; ऐसा ही मानकर सब मनुष्यों को, विशेषतः आर्यों को, ऐकमत्य होकर रहना चाहिये।

[छः शास्त्रों में अविरोध]

प्रश्न—जैसे सत्यासत्य और एक-दूसरे ग्रन्थों का परस्परविरोध है, वैसे अन्य शास्त्रों में भी है। जैसे कि सृष्टिविषय में छः शास्त्रों का विरोध है—**'मीमांसा'** कर्म से, **'वैशेषिक'** काल से, **'न्याय'** परमाणु से, **'योग'** पुरुषार्थ से, **'सांख्य'** प्रकृति से और **'वेदान्तशास्त्र'** ब्रह्म से सृष्टि की उत्पत्ति मानता है; क्या यह विरोध नहीं है?

उत्तर—नहीं। प्रथम तो विना **'सांख्य'** और **'वेदान्त'** के, दूसरे चार शास्त्रों में सृष्टि की उत्पत्ति प्रसिद्ध नहीं लिखी। और इनमें विरोध भी नहीं, क्योंकि तुमको विरोध- अविरोध का ज्ञान नहीं। मैं तुमसे पूछता हूँ कि विरोध किस स्थल में होता है? क्या एक विषय में अथवा भिन्न-भिन्न विषयों में?

प्रश्न—एक विषय में अनेक का परस्परविरुद्ध कथन हो, उसको विरोध कहते हैं। यहाँ भी सृष्टि एक ही विषय है।

उत्तर—क्या विद्या एक है वा दो?

[प्रश्न—] एक है।

[उत्तर—] जो एक है, तो व्याकरण, वैद्यक, ज्योतिष आदि का भिन्न-भिन्न विषय क्यों है? जैसे एक विद्या में अनेक विद्याओं के अवयवों का एक-दूसरे से भिन्न प्रतिपादन होता है, वैसे ही **'सृष्टिविद्या'** के भिन्न-भिन्न छः अवयवों का छः शास्त्रों में प्रतिपादन करने से इनमें कुछ भी विरोध नहीं । जैसे घड़े के बनने में कर्म, समय, मिट्टी, विचार, संयोग-वियोगादि का पुरुषार्थ, प्रकृति के गुण और कुम्भार (=कुम्हार) कारण है, वैसे ही सृष्टि का जो कर्म कारण है उसकी व्याख्या **'मीमांसा'** में, समय की व्याख्या **'वैशेषिक'** में, उपादान कारण की व्याख्या **'न्याय'** में, पुरुषार्थ की व्याख्या **'योग'** में, तत्त्वों के अनुक्रम से परिगणन की व्याख्या **'सांख्य'** में, और निमित्तकारण जो परमेश्वर है उसकी व्याख्या **'वेदान्तशास्त्र'** में है। इससे कुछ भी विरोध नहीं। जैसे **'वैद्यकशास्त्र'** में निदान, चिकित्सा, औषधि-दान और पथ्य के प्रकरण भिन्न भिन्न कथित हैं, परन्तु सबका सिद्धान्त 'रोग की निवृत्ति' है। वैसे ही सृष्टि के छः कारण हैं। इनमें से एक- एक कारण की व्याख्या एक-एक शास्त्रकार ने कही है। इसलिये इनमें कुछ भी विरोध नहीं। **इसकी विशेष व्याख्या सृष्टिप्रकरण में कहेंगे।**

[पढ़ने-पढ़ाने में विघ्नरूप कर्म]

जो विद्या पढ़ने-पढ़ाने के विघ्न हैं, उनको छोड़ देवें। जैसे कुसङ्ग अर्थात् दुष्ट विषयी जनों का संग; दुष्टव्यसन= जैसे मद्यादि सेवन और वेश्यागमनादि; **बाल्यावस्था में विवाह अर्थात् पच्चीसवें वर्ष से पूर्व पुरुष और सोहलवें वर्ष से पूर्व स्त्री का विवाह हो जाना;** पूर्ण ब्रह्मचर्य न होना; राजा, माता, पिता और विद्वानों का प्रेम वेदादि शास्त्रों के प्रचार

में न होना; अतिभोजन, अतिजागरण करना; पढ़ने-पढ़ाने, परीक्षा लेने वा देने में आलस्य वा कपट करना; विद्या का सर्वोपरि लाभ न समझना; ब्रह्मचर्य से वीर्य, बल, बुद्धि, पराक्रम, आरोग्य, राज्य, धन की वृद्धि न मानना; ईश्वर का ध्यान छोड़ अन्य पाषाणादि- जड़मूर्त्ति के दर्शन-पूजन में व्यर्थ काल खोना; माता, पिता, अतिथि, आचार्य, और विद्वान् इन सत्यमूर्त्तिमानों की सेवा और सत्संग न करना; वर्णाश्रम के धर्म को छोड़ ऊर्ध्वपुण्ड्र, त्रिपुण्ड्र, तिलक, कंठी, माला धारण; एकादशी, त्रयोदशी आदि व्रत करना; काश्यादि तीर्थ और राम, कृष्ण, नारायण, शिव, भगवती, गणेशादि के नामस्मरण से पाप दूर होने का विश्वास; पाखण्डियों के उपदेश से विद्या पढ़ने में अश्रद्धा का होना; विद्या, धर्म, योग, परमेश्वर की उपासना के विना, मिथ्या 'पुराण'-नामक **'भागवत'**-आदि की कथादि से मुक्ति का मानना; लोभ से धनादि में प्रवृत्ति होकर विद्या में प्रीति न रखना; इधर-उधर व्यर्थ घूमते रहना, इत्यादि मिथ्या व्यवहारों में फसके ब्रह्मचर्य और विद्या के लाभ से रहित होकर रोगी और मूर्ख बने रहते हैं।

आजकल के सम्प्रदायी और स्वार्थी ब्राह्मण आदि जो दूसरों को विद्या-सत्संग से हटा और अपने जाल में फसाके उनका तन, मन, धन नष्ट कर देते हैं, और सोचते हैं कि जो क्षत्रियादि वर्ण पढ़कर विद्वान् हो जायेंगे, तो हमारे पाखण्डजाल से छूट और हमारे छल को जानकर हमारा अपमान करेंगे। **इत्यादि विघ्नों को राजा और प्रजा दूर करके, अपने**

लड़कों और लड़कियों को विद्वान् करने के लिये तन, मन, धन से प्रयत्न किया करें।

[स्त्री-शुद्रों को भी वेदाध्ययन का अधिकार]

प्रश्न—क्या स्त्री और शूद्र भी वेद पढ़ें ? जो ये पढ़ेंगे तो हम फिर क्या करेंगे? और इनके पढ़ने में प्रमाण भी नहीं है, जैसे यह निषेध है—

"स्त्रीशूद्रौ नाधीयातामिति श्रुतेः"=स्त्री और शूद्र न पढ़ें, यह श्रुति है।

[गौतम धर्मसूत्र प्रक० २। अ० ३। सू० ४; वेदान्तदर्शन शांकरभाष्य २ । ३।४]

उत्तर—सब स्त्रियों और पुरुषों अर्थात् मनुष्यमात्र को [वेद] पढ़ने का अधिकार है। और तुम कुए में पड़ो। और यह 'श्रुति' तुम्हारी कपोलकल्पना से हुई है, किसी प्रामाणिक ग्रन्थ की नहीं। और सब मनष्यों के वेदों के पढ़ने-सुनने के अधिकार का प्रमाण **'यजुर्वेद'** के छब्बीसवें अध्याय में दूसरा मन्त्र है—

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः।
ब्रह्मराजन्याभ्याꣳशूद्राय चार्य्याय च स्वाय चारणाय॥

[यजुः०, अ० २६ । २]॥

अर्थ—परमेश्वर कहता है कि **(यथा)** जैसे मैं **(जनेभ्यः)** सब मनुष्यों के लिए, **(इमाम्)** इस, **(कल्याणीम्)** कल्याण अर्थात् संसार और मुक्ति

के सुख देनेहारी, **(वाचम्) 'ऋग्वेद'**-आदि चारों वेदों की वाणी का, **(आवदानि)** उपदेश करता हूँ, वैसे तुम भी किया करो।

[प्रश्न] यहाँ कोई ऐसा प्रश्न करे कि जन शब्द से द्विजों का ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि स्मृत्यादि ग्रन्थों में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य का ही वेदों के पढ़ने का अधिकार लिखा है; स्त्री और शूद्रादि का नहीं ।

उत्तर—(ब्रह्मराजन्याभ्यां) इत्यादि, देखो! परमेश्वर स्वयं कहता है कि हमने ब्राह्मण, क्षत्रिय, **(अर्याय)** वैश्य, **(शुद्राय)** शूद्र और **(स्वाय)** अपने भृत्य वा स्त्री-आदि **(अरणाय)** और अतिशूद्रादि के लिये भी वेदों का प्रकाश किया है; अर्थात् **सब मनुष्य वेदों को पढ़-पढ़ा और सुन-सुनाकर विज्ञान को बढ़ाके, अच्छी बातों का ग्रहण और बुरी बातों का त्याग करके दुःखों से छूटकर, आनन्द को प्राप्त हों।**

कहिये, अब तुम्हारी बात मानें वा परमेश्वर की? परमेश्वर की बात अवश्य माननीय है। इतने पर भी जो कोई इसको न मानेगा, वह **'नास्तिक'** कहावेगा, क्योंकि **'नास्तिको वेदनिन्दकः'** [मनु० २।११]= वेदों का निन्दक और न माननेवाला **'नास्तिक'** कहाता है।

क्या परमेश्वर शूद्रों का भला करना नहीं चाहता? क्या ईश्वर पक्षपाती है कि वेदों के पढ़ने-सुनने का शूद्रों के लिये निषेध और द्विजों के लिये विधि करे? जो परमेश्वर का अभिप्राय शूद्रादि के

पढ़ाने-सुनाने का न होता, तो इनके शरीर में वाक् और श्रोत्र-इन्द्रिय क्यों रचता? परमात्मा ने जैसे पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, चन्द्र, सूर्य और अन्नादि पदार्थ सबके लिये बनाये हैं, वैसे ही वेद भी सबके लिये प्रकाशित किये हैं। और जहाँ कहीं निषेध किया है, उसका यह अभिप्राय है कि जिसको पढ़ने-पढ़ाने से कुछ भी न आवे, वह निर्बुद्धि और मूर्ख होने से 'शूद्र' कहाता है। उसका पढ़ना- पढ़ाना व्यर्थ है।

[कन्याओं के ब्रह्मचर्यपूर्वक वेदाध्ययन में प्रमाण]

और **जो स्त्रियों के पढ़ने का निषेध करते हो, वह तुम्हारी मूर्खता, स्वार्थता और निर्बुद्धिता का प्रभाव है।** देखो ! वेद में कन्याओं के पढ़ने का प्रमाण—

ब्रह्मचर्येण कन्याउंयुवानं विन्दते पतिम् ॥

अथर्व०, अनु० ३। प्र० २४ । कां० ११ । मं० १८

जैसे लड़के ब्रह्मचर्य-सेवन से पूर्ण विद्या और सुशिक्षा को प्राप्त होके युवती विदुषी, अपने अनुकूल, प्रिय, सदृश स्त्रियों के साथ विवाह करते हैं, वैसे **(कन्या)** कुमारी **(ब्रह्मचर्येण)** ब्रह्मचर्य-सेवन से वेदादि शास्त्रों को पढ़, पूर्ण विद्या और उत्तम शिक्षा को प्राप्त युवती होके, पूर्ण युवावस्था में अपने सदृश, प्रिय, विद्वान्, **(युवानम्-पतिम्)** और पूर्ण युवावस्थायुक्त पुरुष को **(विन्दते)** प्राप्त होवे। इसलिये **स्त्रियों को भी ब्रह्मचर्य और विद्या का ग्रहण अवश्य करना चाहिये।**

प्रश्न—क्या स्त्री-लोग भी वेदों को पढ़ें?

उत्तर—अवश्य, देखो श्रौतसूत्रादि में—

इमं मन्त्रं पत्नी पठेत्।

[तुलना, शांखा० श्रौत० १। १५ । १३ आदि]

अर्थ—स्त्री यज्ञ में इस मन्त्र को पढ़े। जो वेदादि-शास्त्रों को न पढ़ी होवे, तो यज्ञ में स्वरसहित मन्त्रों का उच्चारण और संस्कृतभाषण कैसे कर सके?

भारतवर्ष की स्त्रियों में भूषणरूप गार्गी आदि वेदादि-शास्त्रों को पढ़के पूर्ण विदुषी हुई थीं, यह **'शतपथब्राह्मण'** में स्पष्ट लिखा है [बृह०उप० ३।६।१; ३।८।१] भला, जो पुरुष विद्वान् और स्त्री अविदुषी और स्त्री विदुषी और पुरुष अविद्वान् हो तो नित्यप्रति घर में देवासुर-संग्राम मचा रहै, फिर सुख कहाँ? इसलिये जो स्त्रियां न पढ़ें, तो कन्याओं की पाठशाला में अध्यापिका क्योंकर हो सकें? तथा राजकार्य, न्यायाधीशत्वादि, गृहाश्रम का कार्य जो पति को स्त्री और स्त्री को पति प्रसन्न रखना, घर के सब काम स्त्री के आधीन रहना, इत्यादि काम विना विद्या के कभी अच्छे प्रकार से और ठीक नहीं हो सकते।

देखो, आर्यावर्त के राजपुरुषों की स्त्रियाँ 'धनुर्वेद' अर्थात् युद्धविद्या भी अच्छी प्रकार जानती थी; क्योंकि जो न जानती होती, तो कैकेयी आदि दशरथ आदि के साथ युद्ध में क्योंकर जा सकती, और युद्ध कर सकती? इसलिये ब्राह्मणी को सब विद्यायें, क्षत्रिया को सब विद्यायें और युद्ध तथा राजविद्या विशेषतः, वैश्या को व्यवहार-विद्या और शूद्रा को पाकादि सेवा की विद्या अवश्य पढ़नी चाहिये।

[स्त्री-पुरुषों के न्यूनतम अध्ययनीय विषय]

जैसे पुरुषों को व्याकरण, धर्म और अपने व्यवहार की विद्या कम-से-कम अवश्य पढ़नी चाहिये, वैसे स्त्रियों को भी व्याकरण, धर्म, वैद्यक, गणित, शिल्प-विद्या तो अवश्य ही सीखनी चाहिये। क्योंकि इनके सीखे विना सत्यासत्य का निर्णय; पति-आदि से अनुकूल वर्त्तमान, यथायोग्य सन्तानोत्पत्ति, और उनका पालन-वर्द्धन और सुशिक्षा करना, घर के सब कार्यों को जैसा चाहिये वैसा करना-कराना, **'वैद्यकविद्या'** से औषधवत् अन्न-पान बनाना और बनवाना नहीं कर सकती; जिससे घर में रोग कभी न आवे और सब लोग सदा आनन्दित रहैं। **'शिल्पविद्या'** के जाने विना घर का बनवाना, वस्त्र- आभूषण आदि का बनाना-बनवाना, **'गणितविद्या'** के विना सबका हिसाब समझना-समझाना, **'वेदादिशास्त्र विद्या'** के विना ईश्वर और धर्म को न जानके, अधर्म से कभी नहीं बच सकते।

इसलिये वे ही धन्य और कृतकृत्य हैं कि जो ब्रह्मचर्य, उत्तम शिक्षा और विद्या से अपने सन्तानों के शरीर और आत्मा के पूर्ण बल को

बढ़ावें। जिससे वे सन्तान माता, पिता, पति, सास, श्वसुर, राजा, प्रजा, पड़ोसी, इष्टमित्र और सन्तानादि से यथायोग्य धर्म से वर्तें।

[विद्यारूपी अक्षय कोष]

यही कोश अक्षय है। इसको जितना व्यय करे, उतना ही बढ़ता जाय; अन्य सब कोश व्यय करने से घट जाते हैं और दायभागी भी निज भाग ले लेते हैं; और विद्याकोश का चोर वा दायभागी कोई भी नहीं हो सकता। इस कोश की रक्षा और वृद्धि करनेवाला विशेषतः राजा, और प्रजा भी है।

कन्यानां सम्प्रदानं च कुमाराणां च रक्षणम्॥

मनु० [७।१५२] ॥

राजा को योग्य है कि सब कन्याओं और लड़कों को उक्त समय से उक्त समय तक ब्रह्मचर्य में रखके विद्वान कराना। जो कोई इस आज्ञा को न माने, तो उसके माता-पिता को दण्ड देना चाहिये। अर्थात् **राजा की आज्ञा से आठ वर्ष के पश्चात् लड़का वा लड़की किसी के घर में न रहने पावे, किन्तु वे आचार्यकुल में रहैं। जब तक समावर्तन का समय न आवे, तब तक विवाह न होने पावें।**

[विद्या का दान सर्वश्रेष्ठ]

सर्वेषामेव दानानां ब्रह्मदानं विशिष्यते।
वार्यन्नगोमहीवासस्तिलकाञ्चनसर्पिषाम्॥

मनु० [४।२३३]॥

संसार में जितने दान हैं अर्थात् जल, अन्न, गौ, पृथिवी, वस्त्र, तिल, सुवर्ण और घृतादि, इन **सब दानों से 'वेदविद्या' का दान अतिश्रेष्ठ है।**

इसलिये जिससे जितना बन सके उतना प्रयत्न तन-मन-धन से विद्या की वृद्धि में किया करें। जिस देश में यथायोग्य ब्रह्मचर्य, विद्या और वेदोक्त धर्म का प्रचार होता है, वही देश सौभाग्यवान् होता है।

यह ब्रह्मचर्याश्रम की शिक्षा संक्षेप से लिखी गई। इसके आगे चौथे समुल्लास में समावर्तन, विवाह और गृहाश्रम की शिक्षा लिखी जायगी।

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिकृते सत्यार्थप्रकाशे सुभाषाविभूषिते शिक्षाविषये तृतीयः समुल्लासः सम्पूर्णः॥३॥

अथ चतुर्थसमुल्लासारम्भः

अथ समावर्तनविवाहगृहाश्रमविधिं वक्ष्यामः

सम्पूर्ण सत्यार्थप्रकाश

Click now

[अब समावर्तन, विवाह और गृहाश्रम की शिक्षा के विषय में लिखेंगे]

[गृहस्थाश्रम का अधिकारी]

वेदानधीत्य वेदौ वा वेदं वाऽपि यथाक्रमम्।
अविप्लुतब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममाविशेत्॥१॥

मनु० [३।२]

जब यथावत् ब्रह्मचर्य आचार्यानुकूल वर्तकर, धर्म से चारों वेदों, तीन, दो वा एक वेद को सांगोपांग पढ़के, जिसका ब्रह्मचर्य खण्डित न हुआ हो वह पुरुष और स्त्री गृहाश्रम में प्रवेश करे॥१॥

तं प्रतीतं स्वधर्मेण ब्रह्मदायहरं पितुः।
स्रग्विणं तल्प आसीनमर्हयेत्प्रथमं गवा॥२॥

मनु० [३।३]

जो स्वधर्म अर्थात् जो आचार्य और शिष्य का यथावत् धर्म है उससे युक्त, पिता= जनक वा अध्यापक से ब्रह्मदाय अर्थात् विद्यारूप भाग का ग्रहण और माला का धारण करनेवाला [स्नातक समावर्तन के समय,] प्रथम,

पलंग पर बैठे हुए अपने आचार्य का गोदान से सत्कार करे। [वहीं विवाहसंस्कार करते समय] वैसे लक्षणयुक्त विद्यार्थी को कन्या का पिता भी गोदान से सत्कृत करे॥२॥

गुरुणानुमतः स्नात्वा समावृत्तो यथाविधि।
उद्वहेत द्विजो भार्यां सवर्णां लक्षणान्विताम्॥३॥

मनु० [३।४]

गुरु की आज्ञा ले, स्नान कर, गुरुकुल से अनुक्रमपूर्वक आके ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अपने वर्णानुकूल सुन्दर लक्षणयुक्त कन्या से विवाह करे॥३॥

[विवाह-योग्य कन्या]

असपिण्डा च या मातुरसगोत्रा च या पितुः।
सा प्रशस्ता द्विजातीनां दारकर्मणि मैथुने॥४॥

मनु० [३।५]

जो कन्या, माता के कुल की छः पीढ़ियों में न हो और पिता के गोत्र की न हो, उस कन्या से विवाह करना उचित है॥४॥

इसका यह प्रयोजन है कि—

परोक्षप्रिया इव हि देवाः प्रत्यक्षद्विषः॥

शतपथ० [शत० ब्रा०, १४।१।११।२; बृह० उप० ६। २ । २]

यह निश्चित बात है कि जैसी परोक्ष पदार्थ में प्रीति होती है, वैसी प्रत्यक्ष में नहीं। जैसे, किसी ने मिश्री के गुण सुने हों और खाई न हो तो उसका मन उसी में लगा रहता है; [और] जैसे, किसी परोक्ष व्यक्ति की प्रशंसा सुनकर मिलने की उत्कट इच्छा होती है; वैसे ही **दूरस्थ अर्थात् जो अपने गोत्र वा माता के कुल में निकट सम्बन्ध की न हो, उसी कन्या से वर का विवाह होना चाहिये।**

निकट [विवाह में दोष] और दूर विवाह करने में गुण ये हैं—

(१) **एक**—जो बालक बाल्यावस्था से निकट रहते; परस्पर क्रीड़ा, लड़ाई और प्रेम करते; एक- दूसरे के गुण, दोष, स्वभाव, बाल्यावस्था के 'विपरीत आचरण' को जानते; और जो नंगे भी एक दूसरे को देखते हैं, उनका परस्पर विवाह होने से प्रेम कभी नहीं हो सकता।

(२) **दूसरा**—जैसे पानी में पानी मिलने से विलक्षण गुण नहीं होता, वैसे एक गोत्र, पितृ वा मातृ-कुल में विवाह होने में धातुओं के अदल-बदल नहीं होने से उन्नति नहीं होती।

(३) **तीसरा**—जैसे दूध में मिश्री वा शुण्ठी [आदि] ओषधियों का योग होने से उत्तमता होती है, वैसे ही भिन्न गोत्र में, पितृ-मातृ-कुल से पृथक् वर्त्तमान स्त्री-पुरुषों का विवाह होना उत्तम है।

(४) **चौथा**—जैसे एक देश में रोगी हो, वह दूसरे देश में वायु और खान-पान के बदलने से रोगरहित होता है, वैसे ही दूर-देशस्थों के विवाह होने में उत्तमता है।

(५) **पाँचवां**—निकट सम्बन्ध करने में, एक-दूसरे के निकट होने में सुख-दुःख का भान और विरोध होना भी सम्भव है, दूर-देशस्थों में नहीं। और दूरस्थों के विवाह में दूर-दूर प्रेम की डोरी लम्बी बढ़ जाती है, निकटस्थ विवाह में नहीं।

(६) **छठा**—दूर-दूर देश के वर्त्तमान और पदार्थों की प्राप्ति भी दूर सम्बन्ध होने में सहजता से हो सकती है, निकट विवाह होने में नहीं। इसीलिये—

"दुहिता दुर्हिता दूरेहिता'', भवतीति ।

[निरुक्त ३।४]

'निरुक्त' में लिखा है कि कन्या का 'दुहिता' नाम इस कारण से है कि इसका विवाह दूर [गोत्र और] देश में होने से हितकारी होता है, निकट करने में नहीं।

(७) **सातवां**—कन्या के पितृकुल में दारिद्र्य होने का भी सम्भव है, क्योंकि जब-जब कन्या पितृकुल में आवेगी, तब-तब उसको कुछ-न-कुछ देना ही होगा।

(८) **आठवां**—कोई निकट होने से एक दूसरे को अपने-अपने पितृकुल से सहाय का घमण्ड और जब कुछ भी दोनों में वैमनस्य होगा, तब स्त्री झट ही पिता के कुल में चली जायगी। एक दूसरे की निन्दा अधिक होगी और विरोध भी; क्योंकि प्रायः स्त्रियों का स्वभाव तीक्ष्ण और मृदु होता है। **इत्यादि कारणों से पिता के एक- गोत्र, माता की छः पीढ़ी और समीप देश में विवाह करना अच्छा नहीं।**

[विवाह-सम्बन्ध के अयोग्य कुल]

महान्त्यपि समृद्धानि गोऽजाविधनधान्यतः।
स्त्रीसम्बन्धे दशैतानि कुलानि परिवर्जयेत्॥१॥

मनु० [३।६]

चाहे कितने ही गाय, अजा, [भेड़], हाथी, घोड़े, धन, धान्य, राज्य, श्री आदि से समृद्ध कुल हों, तो भी विवाह-सम्बन्ध में निम्नलिखित दश कुलों का त्याग कर दे—॥१॥

हीनक्रियं निष्पुरुषं निश्छन्दो रोमशार्शसम्।
क्षय्यामयाव्यपस्मारिश्वित्रिकुष्ठिकुलानि च॥२॥

मनु० [३।७]

जो कुल सत्क्रियाओं से हीन, सत्पुरुषों से रहित, वेदाध्ययन से विमुख [हो, जिसके] शरीर पर बड़े-बड़े लोम [हों उस] और बवासीर, क्षयी, दमा, खांसी, आमाशय, मिरगी, श्वेतकुष्ठ और गलितकुष्ठ-युक्त कुलों की कन्या वा वर के साथ विवाह न होना चाहिये; **क्योंकि ये सब दुर्गुण और**

रोग विवाह करनेवाले के कुल में भी प्रविष्ट हो जाते हैं। इसलिये उत्तम कुलों के लड़कों और लड़कियों का आपस में विवाह होना चाहिये॥२॥

नोद्वहेत्कपिलां कन्यां नाऽधिकाङ्गीं न रोगिणीम्।
नालोमिकां नातिलोमां न वाचाटां न पिङ्गलाम्॥३॥

मनु० [३।८]

न पीले वर्णवाली, न अधिकाङ्गी अर्थात् पुरुष से लम्बी-चौड़ी अधिक बलवाली, न रोगयुक्त, न लोमरहित, न बहुत लोमवाली, न बकवाद करनेहारी और [न पीले-] भूरे नेत्रवाली॥३॥

नर्क्षवृक्षनदीनाम्नीं नान्त्यपर्वतनामिकाम्।
न पक्ष्यहिप्रेष्यनाम्नीं न च भीषणनामिकाम्॥४॥

मनु० [३।९]

ऋक्ष अर्थात् अश्विनी, भरणी, रोहिणीदेई, रेवतीबाई, चित्तारी आदि नक्षत्र नामवाली; तुलसिया, गेंदा, गुलाबा, चंपा, चमेली आदि वृक्ष नामवाली; गङ्गा, जमुना आदि नदी नामवाली; चाण्डाली आदि अन्त्य नामवाली; विन्ध्या, हिमालया, पार्वती आदि पर्वत नामवाली; कोकिला, मैना, श्येनी आदि पक्षी नामवाली; नागी, भुजङ्गा आदि सर्प नामवाली; माधोदासी, मीरादासी आदि प्रेष्य नामवाली और भीमा, भयङ्करी, काली, चण्डिका आदि भीषण नामवाली कन्या के साथ विवाह न करना चाहिये; क्योंकि ये नाम कुत्सित और अन्य पदार्थों के भी हैं ॥४॥ किन्तु—

अव्यङ्गाङ्गीं सौम्यनाम्नीं हंसवारणगामिनीम्।
तनुलोमकेशदशनां मृद्वङ्गीमुद्वहेत्स्त्रियम्॥५॥

मनु० [३।१०]

जिसके सरल-सूधे अङ्ग हों, विरुद्ध न हों; जिसका नाम सुन्दर अर्थात् यशोदा, सुखदा आदि हो; हंस और हथिनी के तुल्य जिसकी चाल हो; [जो] सूक्ष्म लोम, केश और दाँतयुक्त हो और जिसके सब अङ्ग कोमल हों; वैसी स्त्री के साथ विवाह करना चाहिये॥५॥

[विवाह-योग्य वय और उसके भेद]

प्रश्न—विवाह का समय और प्रकार कौन-सा अच्छा है?

उत्तर—सोलहवें वर्ष से लेके चौवीसवें वर्ष तक कन्या और पच्चीसवें वर्ष से लेके अड़तालीसवें वर्ष तक पुरुष का विवाह समय 'उत्तम' है। इसमें जो सोलह और पच्चीस में विवाह करे तो 'निकृष्ट', अठारह-वीस की स्त्री, तीस-पैंतीस वा चालीस वर्ष के पुरुष का 'मध्यम', चौवीस वर्ष की स्त्री और अड़तालीस वर्ष के पुरुष का विवाह 'उत्तम' है। **जिस देश में इसी प्रकार विवाह का श्रेष्ठ विधि और ब्रह्मचर्य, विद्याभ्यास अधिक होता है, वह देश सुखी [होता है] और जिस देश में ब्रह्मचर्य-विद्या-ग्रहणरहित, बाल्यावस्था [में] और अयोग्यों का विवाह होता है, वह देश दुःख में डूब जाता है।** क्योंकि ब्रह्मचर्य [और] विद्या के ग्रहणपूर्वक विवाह के सुधार से ही सब बातों का सुधार और बिगड़ने से बिगाड़ हो जाता है।

[कल्पित गौरी, रोहणी आदि संज्ञाओं का खण्डन]

प्रश्न— अष्टवर्षा भवेद् गौरी नववर्षा च रोहिणी।
दशवर्षा भवेत्कन्या तत ऊर्ध्वं रजस्वला॥१॥
माता चैव पिता तस्या ज्येष्ठो भ्राता तथैव च।
त्रयस्ते नरकं यान्ति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम्॥२॥

ये श्लोक पाराशरी [७।६, ८] और शीघ्रबोध में लिखे हैं [१।५४, ६५]।

अर्थ—कन्या की आठवें वर्ष में गौरी, **नवें** वर्ष रोहिणी, **दशवें** वर्ष कन्या और उसके आगे 'रजस्वला' संज्ञा हो जाती है॥१॥

दशवें वर्ष तक विवाह न करके, रजस्वला कन्या को माता, पिता और उसका बड़ा भाई, ये तीनों [घर में स्थित] देखके नरक में गिरते हैं॥२॥

उत्तर— ब्रह्मोवाच

एकक्षणा भवेद् गौरी द्विक्षणेयं तु रोहिणी।
त्रिक्षणा सा भवेत्कन्या ह्यत ऊर्ध्वं रजस्वला॥१॥
माता पिता तथा भ्राता मातुलो भगिनी स्वका।
सर्वे ते नरकं यान्ति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम्॥२॥

यह सद्योनिर्मित ब्रह्मपुराण का वचन है।

अर्थ—जितने समय में परमाणु एक पलटा खावे, उतने समय को क्षण कहते हैं। जब कन्या जन्मे तब एक क्षण में गौरी, दूसरे क्षण में रोहिणी, तीसरे में कन्या और चौथे में रजस्वला हो जाती है॥१॥

उस रजस्वला को [घर में स्थित] देखके उसके माता, पिता, भाई, मामी और बहिन सब नरक को जाते हैं॥२॥

प्रश्न—ये श्लोक प्रमाण नहीं।

उत्तर—क्यों प्रमाण नहीं? जो ब्रह्मा जी के श्लोक प्रमाण नहीं, तो तुम्हारे भी प्रमाण नहीं हो सकते।

प्रश्न—वाह-वाह! पराशर और काशीनाथ का भी प्रमाण नहीं करते?

उत्तर—वाह जी वाह! क्या तुम ब्रह्मा जी का प्रमाण नहीं करते? पराशर [और] काशीनाथ से ब्रह्मा जी बड़े नहीं है? जो तुम ब्रह्मा जी के श्लोकों को नहीं मानते, तो हम भी पराशर [और] काशीनाथ के श्लोकों को नहीं मानते।

प्रश्न—तुम्हारे श्लोक असम्भव होने से प्रमाण नहीं, क्योंकि सहस्रों क्षण जन्म समय में ही बीत जाते हैं, तो विवाह कैसे हो सकता है? और उस समय विवाह करने का कुछ फल भी नहीं दीखता।

उत्तर—जो हमारे श्लोक असम्भव हैं, तो तुम्हारे भी असम्भव हैं। क्योंकि **आठवें, नवें** और **दशवें** वर्ष में भी विवाह करना **निष्फल** है। क्योंकि सोलहवें वर्ष के पश्चात् चौबीसवें वर्षपर्यन्त विवाह होने से पुरुष का वीर्य परिपक्व, शरीर बलिष्ठ, स्त्री का गर्भाशय पूरा और शरीर भी बलयुक्त होने से सन्तान उत्तम होते हैं*। जैसे आठवें वर्ष की कन्या में सन्तानोत्पत्ति का होना असम्भव है, वैसे ही 'गौरी', 'रोहिणी' नाम देना भी अयुक्त है। यदि गौरी कन्या न हो, किन्तु काली हो, तो उसका नाम 'गौरी' रखना व्यर्थ है।

और **'गौरी'** महादेव की स्त्री, **'रोहिणी'** वसुदेव की स्त्री थी। उसको तुम पौराणिक लोग मातृसमान मानते हो। जब कन्यामात्र में **'गौरी'** आदि की भावना करते हो, तो फिर उनसे विवाह करना कैसे सम्भव और धर्मयुक्त हो सकता है? इसलिये तुम्हारे और हमारे दो-दो श्लोक मिथ्या ही हैं। क्योंकि जैसे हमने **'ब्रह्मोवाच'** करके श्लोक बना लिये हैं, वैसे वे भी श्लोक पराशर आदि के नाम से अपने मतलब-सिन्धु लोगों ने बना लिये हैं। इसलिये इन सबका प्रमाण छोड़के वेदों के प्रमाण से सब काम किया करो। देखो, मनुस्मृति में—

त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत कुमार्यृतुमती सती।
ऊर्ध्वं तु कालादेतस्माद्विन्देत सदृशं पतिम्॥

मनु० [९।९०]

* उचित समय से न्यून आयुवाले स्त्री-पुरुष को गर्भाधान के लिए मुनिवर धन्वन्तरि जी सुश्रुत में निषेध करते हैं—

ऊनषोडशवर्षायामप्राप्तः पञ्चविंशतिम्।
यद्याधत्ते पुमान् गर्भं कुक्षिस्थः स विपद्यते॥१॥
जातो वा न चिरञ्जीवेज्जीवेद्वा दुर्बलेन्द्रियः।
तस्मादत्यन्तबालायां गर्भाधानं न कारयेत्॥२॥

[सुश्रुत, शारीरस्थान, अ० १०। श्लोक ४७, ४८]

अर्थ—सोलह वर्ष से न्यून वयवाली स्त्री में, पच्चीस वर्ष से न्यून आयुवाला पुरुष जो गर्भ का स्थापन करे तो वह कुक्षिस्थ हुआ गर्भ विपत्ति को प्राप्त होता अर्थात् पूर्ण काल तक गर्भाशय में रहकर उत्पन्न नहीं होता ॥१॥

अथवा उत्पन्न हो तो चिरकाल तक न जीवे वा जीवे तो दुर्बलेन्द्रिय होवे। इस कारण से अतिबाल्यावस्था वाली स्त्री में गर्भ स्थापित न करे॥२॥

ऐसे-ऐसे शास्त्रोक्त नियम और सृष्टिक्रम को देखने और बुद्धि से विचारने से यही सिद्ध होता है कि १६ वर्ष से न्यून स्त्री और २५ वर्ष से न्यून आयुवाला पुरुष कभी गर्भाधान करने के योग्य नहीं होता। इन नियमों से विपरीत जो करते हैं, वे दुःखभागी होते हैं।

—[दयानन्द सरस्वती]

[शीघ्र विवाह की इच्छुक] कन्या रजस्वला हुए पीछे तीन वर्षपर्यन्त पति की खोज करके अपने तुल्य पति को प्राप्त होवे। जब प्रतिमास रजोदर्शन होता है तो तीन वर्षों में ३६ वार रजस्वला हुए पश्चात् विवाह करना योग्य है, इससे पूर्व नहीं।

काममामरणात्तिष्ठेद् गृहे कन्यर्तुमत्यपि।
न चैवैनां प्रयच्छेत्तु गुणहीनाय कर्हिचित्॥

मनु० [९।८९]

चाहे लड़का-लड़की मरणपर्यन्त कुमारे रहैं, परन्तु असदृश अर्थात् परस्पर-विरुद्ध गुण-कर्म-स्वभाववालों का विवाह कभी न होना चाहिये। इससे सिद्ध हुआ कि न पूर्वोक्त समय से पूर्व, और [न] असदृशों का विवाह होना योग्य है।

[लड़का-लड़की की प्रसन्नता से विवाह]

प्रश्न—विवाह करना माता-पिता के आधीन होना चाहिये वा लड़के-लड़की के आधीन रहै?

उत्तर—लड़के-लड़की के आधीन विवाह होना उत्तम है। जो माता-पिता विवाह करना कभी विचारें, तो भी लड़के-लड़की की प्रसन्नता के विना न होना चाहिये; क्योंकि एक दूसरे की प्रसन्नता से विवाह होने में विरोध बहुत कम होता है और सन्तान उत्तम होते हैं। अप्रसन्नता के विवाह में नित्य क्लेश ही रहता है। विवाह में मुख्य प्रयोजन वर और कन्या का है, माता-पिता का नहीं; क्योंकि जो उनमें

परस्पर प्रसन्नता रहै, तो उन्हीं को सुख और विरोध में उन्हीं को दुःख होता है। और—

सन्तुष्टो भार्यया भर्त्ता भर्त्रा भार्या तथैव च।
यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम्॥

मनु० [२।६०]

जिस कुल में स्त्री से पुरुष और पुरुष से स्त्री सदा प्रसन्न रहती है, उसी कुल में आनन्द, लक्ष्मी और कीर्त्ति निवास करती है, और जहाँ विरोध-कलह होता है, वहाँ दुःख, दरिद्रता और निन्दा निवास करती है।

[स्वयंवर विवाह की श्रेष्ठता]

इसलिये जैसी स्वयंवर की रीति आर्यावर्त में परम्परा से चली आती है, वही विवाह उत्तम है। **जब स्त्री-पुरुष विवाह करना चाहें, तब विद्या, विनय, शील, रूप, आयु, बल, कुल, शरीर का परिमाणादि यथायोग्य होना चाहिये। जब तक इनका मेल नहीं होता, तब तक विवाह में कुछ भी सुख नहीं होता और न बाल्यावस्था में विवाह करने से सुख होता [है]।**

[युवावस्था में विवाह करने में प्रमाण]

युवां सुवासाः परिंवीत आगात्स उ श्रेयांन्भवति जायंमानः।
तं धीरांसः कवय उन्नंयन्ति स्वाध्योऽ मनंसा देवयन्तंः॥१॥

ऋ०, म० ३। सूक्त ८। मं० ४॥

आ धेनवों धुनयन्तामशिंश्वीः सबर्दुघाः शशया अप्रंदुग्धाः।
नव्यांनव्या युवतयो भवंन्तीर्महद्देवानांमसुरत्वमेकंम्॥२॥

ऋ०, म० ३। सूक्त० ५५। मं० १६॥

पूर्वीरहं शरदः शश्रमाणा दोषावस्तोरुषसो जरयन्तीः।
मिनाति श्रियं जरिमा तनूनामप्यू नु पत्नीर्वृषणो जगम्युः ॥३॥

ऋ०, म० १। सूक्त १७९ । मं० १॥

जो पुरुष (**परिवीतः**) सब ओर से यज्ञोपवीत [पूर्वक] ब्रह्मचर्य-सेवन से उत्तम शिक्षा और विद्या से युक्त, (**सुवासाः**) सुन्दर वस्त्र धारण किया हुआ ब्रह्मचर्ययुक्त (**युवा**) विद्याग्रहण कर पूर्ण जवान होके गृहाश्रम में, (**आगात्**) आता है, (**सः**) वही दूसरे=विद्याजन्म में, (**जायमानः**) प्रसिद्ध होकर, (**श्रेयान्**) अतिशय शोभायुक्त, मङ्गलकारी, (**भवति**) होता है, (**स्वाध्यः**) अच्छे प्रकार ध्यानयुक्त, (**मनसा**) विज्ञान से, (**देवयन्तः**) विद्यावृद्धि की कामनायुक्त, (**धीरासः**) धैर्ययुक्त, (**कवयः**) विद्वान् लोग, (**तम्**) उसी पुरुष को, (**उन्नयन्ति**) उन्नतिशील करके प्रतिष्ठित करते हैं। और जो ब्रह्मचर्यधारण, विद्या, उत्तम शिक्षा का ग्रहण किये विना अथवा बाल्यावस्था में विवाह करते हैं, वे स्त्री-पुरुष नष्ट-भ्रष्ट होकर विद्वानों में अप्रतिष्ठा को प्राप्त होते हैं॥१॥

जो (**अप्रदुग्धाः**) किसी ने दुही न हों, उन (**धेनवः**) गौओं के समान, (**अशिश्वीः**) बाल्यावस्था से रहित, (**सबर्दुघाः**) सब प्रकार के उत्तम व्यवहारों को पूर्ण करनेहारी, (**शशयाः**) कुमारावस्था का उल्लङ्घन करनेहारी, (**नव्यानव्याः**) नवीन-नवीन शिक्षा और अवस्था से पूर्ण, (**भवन्तीः**) वर्त्तमान, (**युवतयः**) पूर्ण युवावस्थास्थ स्त्रियाँ, (**देवानाम्**)

ब्रह्मचर्य-सुनियमों से पूर्ण विद्वानों के, (**एकम्**) अद्वितीय, (**महत्**) बड़े, (**असुरत्वम्**) प्रज्ञा-शास्त्रशिक्षा-युक्त, प्रज्ञा में रमण के भावार्थ को प्राप्त होती हुई, जवान पतियों को प्राप्त होके, (**आधुनयन्ताम्**) गर्भधारण करें।

कभी भूलके भी बाल्यावस्था में पुरुष का मन से भी ध्यान न करें, क्योंकि यही कर्म इस लोक और परलोक के सुख का साधन है। **बाल्यावस्था में विवाह से जितना पुरुष का नाश [होता है] उससे अधिक स्त्री का नाश होता है॥२॥**

जैसे (**नु**) शीघ्र, (**शश्रमाणाः**) अत्यन्त श्रम करनेहारे (**वृषणः**) वीर्य सींचने में समर्थ पूर्ण युवावस्थायुक्त पुरुष, (**पत्नीः**) युवावस्थास्थ, हृदय को प्रिय स्त्रियों को, (**जगम्युः**) प्राप्त होकर, पूर्ण शतवर्ष वा उससे अधिक आयु को आनन्द से भोगते और पुत्र-पौत्रादि से संयुक्त रहते रहैं, वैसे स्त्री-पुरुष सदा वर्त्तें। जैसे (**पूर्वीः**) पूर्व वर्त्तमान (**शरदः**) शरद् ऋतुओं, और (**जरयन्तीः**) वृद्धावस्था को प्राप्त करानेवाली (**उषसः**) प्रातःकाल की वेलाओं को (**दोषाः**) रात्री, और (**वस्तोः**) दिन (**तनूनाम्**) शरीरों की (**श्रियम्**) शोभा को (**जरिमा**) अतिशय वृद्धपन [करके] बल और शोभा को (**मिनाति**) दूर कर देता है, वैसे (**अहम्**) मैं स्त्री वा पुरुष, (**उ**) अच्छे प्रकार, (**अपि**) निश्चय करके ब्रह्मचर्य से विद्या, शिक्षा, शरीर और आत्मा के बल और युवावस्था को प्राप्त होके ही विवाह करूँ। इससे विरुद्ध करना, वेदविरुद्ध होने से सुखदायक विवाह कभी नहीं होता॥३॥

जब तक इसी प्रकार सब ऋषि-मुनि, राजा-महाराजा आर्य-लोग ब्रह्मचर्य से विद्या पढ़के ही, स्वयंवर विवाह करते थे, तब तक इस देश की सदा उन्नति होती जाती थी। जब से यह ब्रह्मचर्य से विद्या का न पढ़ना, बाल्यावस्था में पराधीन अर्थात् माता-पिता के आधीन विवाह होने लगा, तब से क्रमशः आर्यावर्त देश की हानि ही होती चली आई है। इससे इस दुष्ट काम को छोड़के, सज्जन लोग पूर्वोक्त प्रकार से स्वयंवर विवाह किया करें; सो विवाह वर्णानुक्रम से करें। और **वर्णव्यवस्था गुण-कर्म के आधीन होनी चाहिये।**

[वर्णव्यवस्था गुण-कर्म-स्वभावानुसार]

प्रश्न—क्या जिनके माता-पिता ब्राह्मणी-ब्राह्मण हों, वही ब्राह्मण होते हैं? और जिसके माता-पिता अन्यवर्णस्थ हों, वे कभी ब्राह्मण हो सकते हैं?

उत्तर—हाँ, बहुत-से हो गये, होते हैं और होंगे भी। जैसे, **'छान्दोग्य उपनिषद्'** में जाबाल ऋषि अज्ञातकुल से, **'महाभारत'** में विश्वामित्र क्षत्रिय वर्ण से और मातङ्ग ऋषि चाण्डाल कुल से ब्राह्मण हो गये थे [ऐसा वर्णित है]। **अब भी जो उत्तम विद्या-स्वभाववाला है, वही ब्राह्मण के योग्य और मूर्ख [=अशिक्षित] शूद्र के योग्य होता है, और वैसा ही आगे भी होगा।**

[ब्राह्मण-शरीर बनाने के साधन]

प्रश्न—भला, जो रज-वीर्य से शरीर हुआ है, वह बदलकर दूसरे वर्ण के योग्य कैसे हो सकता है?

उत्तर—रज-वीर्य के योग से ब्राह्मण-शरीर नहीं होता। किन्तु—

स्वाध्यायेन जपैः होमैस्त्रैविद्येनेज्यया सुतैः।
महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः॥

मनु० [२।२८]

इसका अर्थ पूर्व कर आये हैं और यहाँ भी संक्षेप से करते हैं—(**स्वाध्यायेन**) पढ़ने-पढ़ाने, (**जपैः**) विचार करने-कराने, [**होमैः**] नानाविध होम के अनुष्ठान, [**त्रैविद्येन**] सम्पूर्ण वेदों को शब्द-अर्थ-सम्बन्ध, स्वरोच्चारण-सहित पढ़ने-पढ़ाने, (**इज्यया**) पौर्णमासी इष्टि आदि के करने, (**सुतैः**) पूर्वोक्त विधिपूर्वक धर्म से सन्तानोत्पत्ति, (**महायज्ञैश्च**) पूर्वोक्त ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ, वैश्वदेवयज्ञ और अतिथियज्ञ, (**यज्ञैश्च**) अग्निष्टोमादि यज्ञ, विद्वानों का संग, सत्कार, सत्यभाषण, परोपकारादि सत्कर्म [करने से] और सम्पूर्ण **'शिल्पविद्या'** आदि पढ़के दुष्टाचार छोड़ श्रेष्ठाचार में वर्तने से (**इयम्**) यह (**तनुः**) शरीर (**ब्राह्मी**) ब्राह्मण का (**क्रियते**) किया जाता है। क्या इस श्लोक को तुम नहीं मानते?

[**प्रश्न**—] मानते हैं।

[**उत्तर**—] फिर क्यों रज-वीर्य के योग से वर्णव्यवस्था मानते हो?

[प्रश्न—] मैं अकेला नहीं मानता, किन्तु बहुत लोग परम्परा से ऐसा ही मानते हैं। क्या तुम परम्परा का भी खण्डन करोगे?

उत्तर— नहीं। परन्तु तुम्हारी उलटी समझ को नहीं मानके, खण्डन भी करते हैं।

प्रश्न—हमारी उलटी और तुम्हारी सूधी समझ है, इसमें क्या प्रमाण है?

उत्तर— यही प्रमाण है कि जो तुम पाँच-सात पीढ़ियों के वर्त्तमान को **'सनातन'** व्यवहार मानते हो और हम वेद तथा सृष्टि के आरम्भ से आज पर्यन्त को परम्परा मानते हैं। देखो, जिसका पिता श्रेष्ठ उसका पुत्र दुष्ट, और जिसका पुत्र श्रेष्ठ उसका पिता दुष्ट तथा कहीं दोनों श्रेष्ठ अथवा दुष्ट देखने में आते हैं। इसलिये तुम लोग भ्रम में पडे हो। देखो, मनु महाराज ने क्या कहा है—

येनास्य पितरो याता येन याताः पितामहाः।
तेन यायात्सतां मार्गं तेन गच्छन्न रिष्यते॥

मनु० [४।१७८]

अर्थ—जिस मार्ग से इसके पिता, पितामह चले हों, उसी मार्ग में सन्तान भी चलें, परन्तु **सताम्**=जो सत्पुरुष पिता-पितामह हों, उनके मार्ग में चलें; और जो पिता, पितामह दुष्ट हों, तो उनके मार्ग में कभी न चलें।

क्योंकि सत्पुरुषों और धर्मात्मा पुरुषाओं के मार्ग में चलने से दुःख कभी नहीं होता। इसको तुम मानते हो वा नहीं?

[प्रश्न—] हाँ-हाँ, मानते हैं।

[उत्तर—] और देखो, **जो परमेश्वर- प्रकाशित वेदोक्त बात [है] वही सनातन है और जो उसके विरुद्ध है, वह सनातन कभी नहीं हो सकती।** ऐसा ही सब लोगों को मानना चाहिये वा नहीं?

[प्रश्न—] अवश्य चाहिये।

[उत्तर—] जो ऐसा न माने, उससे कहो कि किसी का पिता दरिद्र हो और उसका पुत्र धनाढ्य होवे, तो क्या अपने पिता की दरिद्रावस्था के अभिमान से धन को फेंक देवे? क्या जिसका पिता अन्धा हो, उसका पुत्र भी अपनी आँखों को फोड़ लेवे? जिसका पिता कुकर्मी हो, क्या उसका पुत्र भी कुकर्म ही करे? नहीं-नहीं; किन्तु **जो-जो पुरुषों के उत्तम कर्म हों, उनका सेवन और दुष्ट कर्मों का त्याग कर देना सबको अत्यावश्यक है।**

[जन्म से वर्णव्यवस्था में दोष]

जो कोई रज-वीर्य के योग से वर्णाश्रम-व्यवस्था माने और गुण-कर्मों के योग से न माने, तो उससे पूछना चाहिये कि जो कोई [ब्राह्मणवर्णस्थ] अपने वर्ण को छोड़ नीच [वर्ण], अन्त्यज अथवा

कृश्चीन, मुसलमान हो गया हो, उसको भी ब्राह्मण क्यों नहीं मानते? यहाँ यही कहोगे कि उसने ब्राह्मण के कर्म छोड़ दिये, इसलिये वह ब्राह्मण नहीं है। इससे यह भी सिद्ध होता है कि जो ब्राह्मणादि के उत्तम कर्म करते हैं वे ही ब्राह्मणादि, और जो नीच [वर्ण] भी उत्तम वर्ण के गुण-कर्म- स्वभाववाला होवे तो उसको भी उत्तम वर्ण में, और जो उत्तम वर्णस्थ होके नीच [वर्ण के] कर्म करे तो उसको नीच-वर्ण में गिनना अवश्य चाहिये।

['ब्राह्मणोऽस्य-'मन्त्र का अर्थ]

प्रश्न— ब्राह्मणोऽस्य मुखंमासीद् बाहू रांजन्यः कृतः।
ऊरू तदंस्य यद्वैश्यंः पद्भ्याᳬ शूद्रो अंजायत॥

यह यजुर्वेद के ३१वें अध्याय का ११वाँ मन्त्र है।

इसका यह अर्थ है कि ब्राह्मण ईश्वर के 'मुख', क्षत्रिय "बाहू", वैश्य "ऊरू'' और शूद्र 'पगों' से उत्पन्न हुआ है। इसलिये जैसे मुख, न 'बाहु' आदि, और 'बाहु' आदि न मुख होते हैं, इसी प्रकार ब्राह्मण न क्षत्रियादि और क्षत्रियादि न ब्राह्मण हो सकते हैं।

उत्तर—इस मन्त्र का अर्थ जो तुमने किया, वह ठीक नहीं; क्योंकि यहाँ पुरुष अर्थात् निराकार, व्यापक परमात्मा की अनुवृत्ति आती है। जब वह निराकार है, तो उसके मुखादि अङ्ग नहीं हो सकते, जो मुखादि अङ्गवाला हो, वह पुरुष अर्थात् व्यापक नहीं और जो व्यापक नहीं, वह सर्वशक्तिमान्, जगत् का स्रष्टा, धर्त्ता, प्रलयकर्त्ता, जीवों के पुण्य-पापों

को जानके व्यवस्था करनेहारा, सर्वज्ञ, अजन्मा, मृत्युरहित आदि विशेषणवाला नहीं हो सकता। इसलिये इसका यह अर्थ है कि जो (**अस्य**) पूर्ण व्यापक परमात्मा की सृष्टि में मुख के सदृश सबमें मुख्य उत्तम हो, वह (**ब्राह्मणः**) ब्राह्मण; (**बाहू**)—

'बाहुर्वै बलम्, बाहुर्वै वीर्यम्' शतपथब्राह्मण

[तुलना—५।३।३ । १७; ५।४।१।१; ६।२।३।३३; १३।१।११।५]

=बल, वीर्य का नाम 'बाहु' है, वह जिसमें अधिक हो सो (**राजन्यः**) क्षत्रिय, (**ऊरू**) कटि के अधोभाग और जानु के उपरिस्थ भाग का नाम 'ऊरू' है। जो सब पदार्थों, सब देशों में 'ऊरु' के बल से जावे-आवे, प्रवेश करे, वह (**वैश्यः**) वैश्य, और (**पद्भ्याम् शूद्रः**) जो पग के अर्थात् **नीच** अङ्ग के सदृश [और] मूर्खतादि गुणवाला हो, वह शूद्र है। अन्यत्र **'शतपथ ब्राह्मण'** -आदि में भी इस मन्त्र का ऐसा ही अर्थ किया है। जैसे—

'यस्मादेते मुख्या मुखतो ह्यसृज्यन्त।' —इत्यादि।

[शत० ब्रा०, ६।१।१। १०; तैत्ति० सं० ७।१।१।४]

जिससे ये मुख्य हैं, इससे मुख से उत्पन्न हुए, ऐसा कथन संगत होता है। अर्थात् जैसे मुख सब अङ्गों में श्रेष्ठ है, वैसे पूर्ण विद्या और उत्तम गुण-कर्म-स्वभाव से युक्त होने से मनुष्यजाति में ब्राह्मण उत्तम कहाते हैं।

जब परमेश्वर के निराकार होने से मुखादि अंग ही नहीं हैं, तो मुख आदि से उत्पन्न होना असम्भव है, जैसे कि वन्ध्या स्त्री के पुत्र का विवाह होना!

और जो मुखादि अङ्गों से ब्राह्मणादि उत्पन्न होते, तो उपादान कारण के सदृश ब्राह्मणादि की आकृति अवश्य होती। जैसा मुख का आकार गोलमोल है, वैसे ही उनके शरीर भी गोलमोल होने चाहियें। क्षत्रियों के शरीर भुजाओं के सदृश, वैश्यों के ऊरुओं के तुल्य और शूद्रों के शरीर पग के समान आकारवाले होते, [किन्तु] ऐसे नहीं हैं। और जो कोई तुमसे प्रश्न करेगा कि 'जो-जो मुखादि से उत्पन्न हुए हैं, उनकी ब्राह्मणादि संज्ञा होनी चाहिये', परन्तु तुम्हारी नहीं; क्योंकि जैसे [और] सब लोग गर्भाशय से उत्पन्न होते हैं, वैसे तुम भी होते हो। तुम मुखादि से उत्पन्न न होकर ब्राह्मणादि संज्ञा का अभिमान करते हो? [तो तुमसे कुछ भी उत्तर न बन पड़ेगा] इसलिये तुम्हारा कहा अर्थ व्यर्थ है, और जो हमने अर्थ किया है, वह सच्चा है।

[वर्ण-परिवर्तन में प्रमाण]

ऐसा ही अन्यत्र भी कहा है, जैसा—

शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम्।
क्षत्रियाज्जातमेवन्तु विद्याद्वैश्यात्तथैव च॥

मनु० [१०। ६५]

जो शूद्रकुल में उत्पन्न होके ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के सदृश गुण-कर्म-स्वभाववाला हो, तो वह **'शूद्र'** ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य हो

जाय। वैसे ही जो ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के कुल में उत्पन्न हुआ हो और उसके गुण-कर्म- स्वभाव शूद्र के सदृश हों, तो शूद्र हो जाये। वैसे ही क्षत्रिय, [वा] वैश्य के कुल में उत्पन्न होके ब्राह्मण वा शूद्र के समान होने से, ब्राह्मण और शूद्र भी हो जाता है। अर्थात् **चारों वर्णों में जिस-जिस वर्ण के सदृश जो-जो पुरुष वा स्त्री हो, वह-वह उसी वर्ण में गिनी जावे।**

धर्मचर्यया जघन्यो वर्णः पूर्वं पूर्वं वर्णमापद्यते जातिपरिवृत्तौ॥१॥
अधर्मचर्यया पूर्वो वर्णो जघन्यं जघन्यं वर्णमापद्यते जातिपरिवृत्तौ॥२॥

ये आपस्तम्ब [धर्मसूत्र] के सूत्र हैं [प्रश्न २। प० ५। कं० ११। सूत्र १०-११]

धर्माचरण से, निकृष्ट वर्ण अपने से उत्तम वर्णों को प्राप्त होता है और वह उसी वर्ण में गिना जावे कि जिस-जिस के योग्य होवे॥१॥

वैसे अधर्माचरण से, पूर्व अर्थात् उत्तम वर्णवाला मनुष्य अपने से नीचेवाले वर्णों को प्राप्त होता है और वह उसी वर्ण में गिना जावे कि जिस-जिस के योग्य होवे॥२॥

जैसे पुरुष जिस-जिस वर्ण के योग्य होता है, वैसे ही स्त्रियों की भी [वर्ण-] व्यवस्था समझनी चाहिये।

इससे क्या सिद्ध हुआ कि इस प्रकार होने से सब वर्ण अपने-अपने गुण-कर्म- स्वभावयुक्त होकर शुद्धता के साथ रहते हैं, अर्थात् ब्राह्मणवर्ण में कोई क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र के सदृश न रहेगा और क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र वर्ण भी शुद्ध रहेंगे अर्थात् **वर्णसंकरता** प्राप्त न होगी। इससे किसी वर्ण की निन्दा वा अयोग्यता भी न होगी।

प्रश्न—जो किसी के एक ही पुत्र वा पुत्री हो, वह दूसरे वर्ण में प्रविष्ट हो जाय तो उसके मा-बाप की सेवा कौन करेगा और वंशच्छेदन भी हो जायगा, इसकी क्या व्यवस्था होनी चाहिये?

उत्तर—न किसी की सेवा का भङ्ग और न वंशच्छेदन होगा, क्योंकि उनको अपने लड़के-लड़कियों के बदले स्ववर्ण के योग्य दूसरे सन्तान, **विद्यासभा और राजसभा की व्यवस्था से मिलेंगे,** इसलिये कुछ भी अव्यवस्था नहीं होगी।

[वर्णनिश्चय का समय]

यह गुण-कर्मों से वर्णों की व्यवस्था कन्याओं की सोलहवें वर्ष और पुरुषों की पच्चीसवें वर्ष की परीक्षा में नियत करनी चाहिये और इसी क्रम से अर्थात् ब्राह्मण का ब्राह्मणी, क्षत्रिय का क्षत्रिया, वैश्य का वैश्या और शूद्र का शुद्रा के साथ विवाह होना चाहिये। तभी अपने-अपने वर्णों के कर्म और परस्पर प्रीति भी यथायोग्य रहेगी।

[चारों वर्णों के कर्म और गुण]

इन चारों वर्णों के कर्त्तव्य-कर्म और गुण ये हैं।

[ब्राह्मण के—]

अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा।
दानं प्रतिग्रहश्चैव ब्राह्मणानामकल्पयत्॥१॥

मनु० [१।८८]

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्मस्वभावजम्॥२॥

भगवद्गीता [१८।४२]

ब्राह्मण के पढ़ना-पढ़ाना, यज्ञ करना- कराना, दान लेना-देना, ये छः कर्म हैं, परन्तु **'प्रतिग्रहः प्रत्यवरः'** मनु० [१० । १०९] =अर्थात् प्रतिग्रह=दान लेना नीच [=निम्न] कर्म है॥१॥

(शमः) मन से बुरे काम की इच्छा भी न करनी और उसको अधर्म में कभी प्रवृत्त न होने देना, **(दमः)** श्रोत्र और चक्षु आदि इन्द्रियों को अन्यायाचरण से रोककर धर्म में चलाना, **(तपः)** सदा ब्रह्मचारी= जितेन्द्रिय होके धर्मानुष्ठान करना। **(शौचम्)—**

अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति मनः सत्येन शुध्यति।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति॥

मनु० [५ । १०९]

=जल से बाहर के अङ्ग, सत्याचार से मन, विद्या और धर्मानुष्ठान से जीवात्मा और ज्ञान से बुद्धि पवित्र होती है। भीतर के रागद्वेषादि दोष और

बाहर के मलों को दूर कर शुद्ध रहना अर्थात् सत्यासत्य के विवेकपूर्वक सत्य के ग्रहण और असत्य के त्याग से 'निश्चय' पवित्र होता है।

(क्षान्तिः) अर्थात् निन्दा-स्तुति, सुख-दुःख, शीत-उष्ण, क्षुधा-तृषा, हानि-लाभ, मान-अपमान आदि में हर्ष-शोक छोड़के धर्म में दृढ़-निश्चय रहना, **(आर्जवम्)** कोमलता, निरभिमानी सरल- स्वभाव रखना; कुटिलतादि दोष छोड़ देना, **(ज्ञानम्)** सब वेदादि-शास्त्रों को साङ्गोपाङ्ग पढ़के पढ़ाने का सामर्थ्य, विवेक=सत्यासत्य का निर्णय, जो वस्तु जैसा हो अर्थात् जड़ को जड़, चेतन को चेतन जानना और मानना, **(विज्ञानम्)** पृथिवी से लेके परमेश्वर-पर्यन्त पदार्थों को विशेषता से जानकर उनसे यथायोग्य उपयोग लेना, **(आस्तिक्यम्)** कभी वेद, ईश्वर, मुक्ति, पूर्व-परजन्म, धर्म, विद्या, सत्सङ्ग, माता, पिता, आचार्य और अतिथियों की सेवा को न छोड़ना और निन्दा कभी न करना; **[ब्रह्मकर्म स्वभावजम्]** ये पन्द्रह कर्म और गुण ब्राह्मणवर्णस्थ मनुष्यों में अवश्य होने चाहियें॥२॥

क्षत्रिय—

प्रजानां रक्षणं दानमिज्याऽध्ययनमेव च।
विषयेष्वप्रसक्तिश्च क्षत्रियस्य समासतः॥१॥

मनु० [१।८९]

शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम्।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम्॥२॥

[भगवद्]गीता [१८।४३]

[प्रजानां रक्षणम्] न्याय से प्रजा की रक्षा अर्थात् पक्षपात छोड़के, श्रेष्ठों का सत्कार और दुष्टों का तिरस्कार करना, सब प्रकार से सब का पालन, **(दानम्)** विद्या, धर्म की प्रवृत्ति और सुपात्रों की सेवा में धनादि पदार्थों का व्यय करना, **(इज्या)** अग्निहोत्रादि यज्ञ करना वा कराना, **(अध्ययनम्)** वेदादि शास्त्रों का पढ़ना तथा पढ़ाना-पढ़वाना, और **(विषयेष्वप्रसक्तिः)** विषयों में न फस कर, जितेन्द्रिय रहके, सदा शरीर और आत्मा से बलवान् रहना॥१॥

(शौर्यम्) सैकड़ों-सहस्रों से भी युद्ध करने में अकेले को भय न होना, **(तेजः)** सदा तेजस्वी, दीनतारहित, प्रगल्भ, दृढ़ रहना, **(धृतिः)** धैर्यवान् होना, **(दाक्ष्यम्)** राज्य और प्रजासम्बन्धी व्यवहार और सब शास्त्रों में अति चतुर होना, **(युद्धे)** युद्ध में भी दृढ़-निःशङ्क रहके **[अपलायनम्]** उससे कभी न हटना, न भागना अर्थात् इस प्रकार से लड़ना कि जिससे निश्चित विजय होवे। आप बचे; जो भागने से वा शत्रुओं को धोखा देने से जीत होती हो तो ऐसा ही करना, **(दानम्)** दानशीलता रखना, **(ईश्वरभावः)** पक्षपातरहित होके सबके साथ यथायोग्य वर्तना; विचारके देना, प्रतिज्ञा पूरी करना, उसको कभी भंग होने न देना; **[क्षात्रं कर्म०]** ये ग्यारह क्षत्रियवर्ण के कर्म और गुण हैं॥२॥

वैश्य—

पशूनां रक्षणं दानमिज्याऽध्ययनमेव च।
वणिक्पथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषिमेव च॥१॥

मनु० [१।९०]

(पशूनां रक्षणम्) गाय आदि पशुओं का पालन-वर्द्धन करना, **(दानम्)** विद्या, धर्म की वृद्धि करने-कराने के लिये धनादि का व्यय करना, **(इज्या)** अग्निहोत्रादि यज्ञों का करना, **(अध्ययनम्)** वेदादि-शास्त्रों को पढ़ना, **(वणिक्पथम्)** सब प्रकार के व्यापार करना, **(कुसीदम्)** एक सैंकड़े में चार आना, छः, आठ, बारह, सोलह वा वीस आनों से अधिक ब्याज और मूल से दूना अर्थात् एक रुपया दिया हो तो सौ वर्ष में भी दो रुपये से अधिक न लेना और न देना, **(कृषिम्)** खेती करना, **[वैश्यस्य]** ये वैश्य के गुण, कर्म हैं।

शूद्र—

एकमेव हि शूद्रस्य प्रभुः कर्म समादिशत्।
एतेषामेव वर्णानां शुश्रूषामनसूयया॥

मनु० [१।९१]

शूद्र को योग्य है कि निन्दा, ईर्ष्या, अभिमान आदि दोषों को छोड़के, ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्यों की सेवा यथावत् करना और उसी से अपना जीवन [निर्वाह] करना। यही एक शूद्र का कर्म, गुण है।

[गुण-कर्म-स्वभावानुसार वर्ण व्यवस्था से लाभ]

ये संक्षेप से वर्णों के गुण और कर्म लिखे। **जिस-जिस पुरुष में जिस-जिस वर्ण के गुण-कर्म हों, [उसको] उस-उस वर्ण का अधिकार देना। ऐसी व्यवस्था रखने से सब मनुष्य उन्नतिशील होते हैं। क्योंकि उत्तम वर्णों को भय होगा कि जो हमारे सन्तान मूर्खत्वादि दोषयुक्त होंगे तो शूद्र हो जायेंगे और सन्तान भी डरते रहेंगे कि जो हम उत्तम चालचलन और विद्या-युक्त न होंगे, तो शूद्र होना पड़ेगा। और नीच-वर्णों को उत्तम वर्णस्थ होने के लिये उत्साह बढ़ेगा।**

[किस वर्ण को क्या अधिकार देना]

विद्या और धर्म के प्रचार का अधिकार ब्राह्मण को देना, क्योंकि वे पूर्णविद्यावान् और धार्मिक होने से उस काम को यथायोग्य कर सकते हैं। क्षत्रियों को राज्य के अधिकार देने से कभी राज्य की हानि वा विघ्न नहीं हो सकता। पशुपालनादि का अधिकार वैश्यों को ही होना योग्य है, क्योंकि वे इस काम को अच्छे प्रकार कर सकते हैं। **शूद्र को सेवा का अधिकार इसलिये है कि वह विद्यारहित=मूर्ख होने से, विज्ञानसम्बन्धी काम कुछ भी नहीं कर सकता, किन्तु शरीर के काम सब कर सकता है। इस प्रकार वर्णों को अपने-अपने अधिकार में प्रवृत्त करना राजादि का काम है।**

विवाहों के लक्षण

ब्राह्मो दैवस्तथैवार्षः प्राजापत्यस्तथाऽऽसुरः।
गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमोऽधमः॥

मनु० [३॥ २१]

[आच्छाद्य चार्चयित्वा च श्रुतिशीलवते स्वयम्।
आहूय दानं कन्याया ब्राह्मो धर्मः प्रकीर्तितः॥
यज्ञे तु वितते सम्यग्-ऋत्विजे कर्म कुर्वते।
अलंकृत्य सुतादानं दैवं धर्मं प्रचक्षते॥
एकं गोमिथुनं द्वे वा वरादादाय धर्मतः।
कन्याप्रदानं विधिवदार्षो धर्मः स उच्यते॥
सहोभौ चरतां धर्ममिति वाचाऽनुभाष्य च।
कन्याप्रदानमभ्यर्च्य प्राजापत्यो विधिः स्मृतः॥
ज्ञातिभ्यो द्रविणं दत्त्वा कन्यायै चैव शक्तितः।
कन्याप्रदानं स्वाच्छन्द्यात्-आसुरो धर्म उच्यते॥
इच्छयाऽन्योन्यसंयोगः कन्यायाश्च वरस्य च।
गान्धर्वः स तु विज्ञेयः, मैथुन्यः कामसम्भवः॥
हत्त्वा छित्त्वा च भित्वा च क्रोशन्तीं रुदतीं गृहात्।
प्रसह्य कन्याहरणं राक्षसो विधिरुच्यते॥
सुप्तां मत्तां प्रमत्तां वा रहो यत्रोपगच्छति।
स पापिष्ठो विवाहानां पैशाचश्चाष्टमोऽधमः॥]

[मनु०३.२७-३४]

विवाह आठ प्रकार का होता है। एक ब्राह्म, दूसरा दैव, तीसरा आर्ष, चौथा प्राजापत्य, पांचवाँ आसुर, छठा गान्धर्व, सातवाँ राक्षस, आठवाँ पैशाच। इन विवाहों की यह व्यवस्था है कि जो वर, कन्या दोनों यथावत् ब्रह्मचर्य से पूर्ण विद्वान्, धार्मिक और सुशील हों, उनका परस्पर-प्रसन्नता से विवाह होना, **'ब्राह्म'** कहाता है। विस्तृत यज्ञ [का आयोजन] करके, ऋत्विक् के कर्म करते हुए जामाता को अलङ्कारयुक्त कन्या का देना **'दैव'।** वर से कुछ लेके, विवाह होना **'आर्ष'।** दोनों का विवाह [गृहस्थ-] धर्म की वृद्धि के अर्थ होना **'प्राजापत्य'।** वर और कन्या को कुछ देके विवाह होना **'आसुर'।** अनियम, असमय किसी कारण से दोनों की इच्छापूर्वक वर- कन्या का परस्पर संयोग होना **'गान्धर्व'।** लड़ाई करके बलात्कार [से] अर्थात् छीन-झपट वा कपट से कन्या का ग्रहण करना **'राक्षस'।** शयन करती, वा नशा की हुई वा पागल कन्या से बलात्कार [पूर्वक] संयोग करना **'पैशाच'** [विवाह है]।

इन सब विवाहों में ब्राह्मविवाह सर्वोत्कृष्ट; दैव [और प्राजापत्य] **मध्यम;** आर्ष, आसुर, और गान्धर्व **निकृष्ट,** राक्षस **अधम** और पैशाच **महाभ्रष्ट** हैं। इसलिये यही निश्चय रखना चाहिये कि कन्या और वर का विवाह के पूर्व एकान्त में मेल न होना चाहिये, क्योंकि **युवावस्था में स्त्री-पुरुष का एकान्तवास दूषणकारक है।**

[विवाह से पूर्व का कार्य]

परन्तु जब कन्या वा कुमार के विवाह का समय हो अर्थात् जब एक वर्ष वा छः महीने ब्रह्मचर्याश्रम और विद्या पूरी होने में शेष रहैं, तब उन कन्या,

और उन कुमारों का प्रतिबिम्ब अर्थात् जिसको 'फोटोग्राफ' कहते हैं अथवा प्रतिकृति उतारके कन्याओं की अध्यापिकाओं के पास कुमारों की और लड़कों के अध्यापकों के पास लड़कियों की प्रतिकृति भेज देवें।

जिस-जिसका रूप मिल जाये, उस-उसके इतिहास अर्थात् जो जन्म से लेके उस दिन पर्यन्त जन्मचरित्र का पुस्तक हो, उसको अध्यापक लोग मंगवाके देखें। जब दोनों के गुण-कर्म-स्वभाव सदृश हों, तब जिस-जिस के साथ जिस-जिस का विवाह होना योग्य समझें, उस-उस कुमार और कन्या का प्रतिबिम्ब और इतिहास कन्या और कुमार के हाथ में देवें और कहैं कि इसमें जो तुम्हारा अभिप्राय हो, सो हमको विदित कर देना।

[विवाह कहाँ पर होवे]

जब उन दोनों का निश्चय परस्पर विवाह करने का हो जाय, तब उन दोनों का समावर्तन एक ही समय में होवे। जो वे दोनों अध्यापकों के सामने विवाह करना चाहें, तो वहाँ, नहीं तो कन्या के माता-पिता के घर में विवाह होना योग्य है। जब वे समक्ष हों, तब उन अध्यापकों वा कन्या के माता-पिता आदि भद्रपुरुषों के सामने उन दोनों की आपस में बातचीत=शास्त्रार्थ कराना और जो कुछ गुप्त व्यवहार पूछें सो भी सभा में लिखके, एक-दूसरे के हाथ में देकर प्रश्नोत्तर कर लेवें।

जब दोनों का दृढ़ प्रेम विवाह करने में हो जाय, तब से उनके खान-पान का उत्तम प्रबन्ध होना चाहिये कि जिससे उनका शरीर जो पूर्व ब्रह्मचर्य

और विद्याध्ययनरूप तपश्चर्या और कष्ट से दुर्बल होता है, वह चन्द्रमा की कला के समान बढ़के थोड़े ही दिनों में पुष्ट हो जाये।

[विवाह एवं गर्भाधान]

पश्चात् जिस दिन कन्या रजस्वला होकर जब शुद्ध हो, तब वेदी और मण्डप रचके, अनेक सुगन्धियुक्त द्रव्यों और घृतादि का होम करें तथा अनेक विद्वान् पुरुषों और स्त्रियों का यथायोग्य सत्कार करें। पश्चात् जिस दिन ऋतुदान देना योग्य समझें, उसी दिन '**संस्कार-विधिस्थ**' विवाह-विधि के अनुसार सब कर्म करके, मध्यरात्रि वा दश बजे अतिप्रसन्नता से सबके सामने पाणिग्रहणपूर्वक विवाह के विधि को पूरा करके, एकान्तसेवन करें। पुरुष जो वीर्यस्थापन और स्त्री वीर्याकर्षण का विधि है, उसी के अनुसार दोनों करें। जहाँ तक बने, वहाँ तक ब्रह्मचर्य के वीर्य को व्यर्थ न जाने दें; क्योंकि उस वीर्य-रज से जो शरीर उत्पन्न होता है, वह अपूर्व उत्तम सन्तान होता है। जब वीर्य का गर्भाशय में गिरने का समय हो, उस समय स्त्री-पुरुष दोनों स्थिर और नासिका के सामने नासिका, नेत्र के सामने नेत्र अर्थात् सूधा शरीर और अत्यन्त प्रसन्न रहें, डिगें नहीं। पुरुष अपने शरीर को ढीला छोड़े और स्त्री वीर्यप्राप्ति के समय अपान वायु को ऊपर खेंच, योनि को ऊपर संकोच कर, वीर्य का ऊपर आकर्षण करके, गर्भाशय में स्थित करे। पश्चात् दोनों शुद्ध जल से स्नान करें।*

* यह बात रहस्य की है, इसलिये इतने से ही समग्र बातें समझ लेनी चाहियें, विशेष लिखना उचित नहीं। **[दयानन्द सरस्वती]**

गर्भस्थिति होने का परिज्ञान विदुषी स्त्री को तो उसी समय हो जाता है, परन्तु इसका निश्चय महीनाभर के पश्चात् रजस्वला न होने पर, सबको हो जाता है। सोंठ, केशर, असगन्ध, सफेद इलायची और सालममिश्री डालके गर्म करके प्रथम ही रक्खे हुए ठण्डे दूध को यथारुचि दोनों पीके, अलग-अलग अपनी-अपनी शय्या में शयन करें। यही विधि जब-जब गर्भाधान-क्रिया करें, तब-तब करना उचित है।

जब महीना-भर में रजस्वला न होने से गर्भस्थिति का निश्चय हो जाय, तब से एक वर्ष पर्यन्त स्त्री-पुरुष का समागम कभी न होना चाहिये; क्योंकि ऐसे न होने से सन्तान उत्तम और दूसरा सन्तान भी श्रेष्ठ नहीं होता, वीर्य व्यर्थ जाता, दोनों का आयु घट जाता [है] और अनेक प्रकार के रोग होते हैं। परन्तु ऊपर से भाषणादि प्रेमयुक्त-व्यवहार अवश्य रखना चाहिये।

[गर्भकाल के कर्त्तव्य]

पुरुष वीर्य की स्थिति, और स्त्री गर्भ की रक्षा और भोजन-छादन इस प्रकार का करे कि जिससे पुरुष का वीर्य स्वप्न में भी नष्ट न हो और गर्भ में बालक का शरीर अत्युत्तम रूप, लावण्य, पुष्टि, बल, पराक्रमयुक्त होकर दशवें महीने में जन्म होवे। विशेषतः उसकी रक्षा चौथे महीने से और अतिविशेषत: आठवें महीने से आगे करनी चाहिये। गर्भवती स्त्री कभी रेचक, रूक्ष, मादकद्रव्य, बुद्धि और बलनाशक पदार्थों के भोजनादि का सेवन न करे। किन्तु घी, दूध, उत्तम चावल, गेहूँ, मूंग, उर्द आदि अन्न-पान और देश-काल का भी सेवन युक्तिपूर्वक करे। गर्भ [काल] में

दो संस्कार—एक चौथे महीने में **'पुंसवन'** और दूसरा आठवें महीने में **'सीमन्तोन्नयन'** विधि के अनुकूल करे।

[जातकर्म और पश्चात् के कर्त्तव्य]

जब सन्तान का जन्म हो, तब स्त्री और लड़के के शरीर की रक्षा बहुत सावधानी से करे। अर्थात् शुण्ठीपाक अथवा सौभाग्यशुण्ठीपाक प्रथम ही बनवाकर रक्खे। तत्पश्चात् नाड़ीछेदन—बालक की नाभि के जड़ में एक कोमल सूत से बांध, चार अंगुल छोड़ के, ऊपर से काट डाले। उसको ऐसा बांधे कि जिससे शरीर से रुधिर का एक बिन्दु भी न जाने पावे। उस समय सुगन्धियुक्त उष्ण जल, जो कि किञ्चित् उष्ण रहा हो, उसी से स्त्री स्नान करे और बालक को भी स्नान करावे। पश्चात् उस स्थान को शुद्ध करके उसके द्वार के भीतर सुगन्ध्यादियुक्त घृतादि का होम करे। तत्पश्चात् सन्तान के कान में पिता **'वेदोऽसीति'** अर्थात् 'तेरा नाम वेद है' सुनाकर सोने की शलाका से घी और सहत को लेके, सन्तान के जीभ पर **'ओ३म्'** अक्षर लिखकर, मधु और घृत को उसी शलाका से चटावे। पश्चात् उसकी माता को दे देवे। **जो दूध पीना चाहे, तो उसकी माता पिलावे। जो उसकी माता के दूध न हो, तो किसी और स्त्री की परीक्षा करके, उसका दूध पिलवावे।** पश्चात् दूसरी शुद्ध कोठरी वा कमरे में कि जहाँ का वायु शुद्ध हो, उसमें सुगन्धित घी का होम प्रातः और सायं किया करे और उसी में प्रसूता स्त्री तथा बालक को रक्खे। छः दिन तक माता का दूध पीये और स्त्री भी अपने शरीर की पुष्टि के अर्थ अनेक प्रकार के उत्तम भोजन करे और योनिसंकोचादि भी करे।

छठे दिन स्त्री बाहर निकले। और सन्तान को दूध पिलाने के लिये कोई धायी रक्खे। उसको खान-पान अच्छा करावे। वह सन्तान को दूध पिलाया करे और पालन भी करे। परन्तु उसकी माता लड़के पर पूर्ण दृष्टि रक्खे कि किसी प्रकार का अनुचित व्यवहार उसके पालन में न हो। स्त्री दूध बन्द करने के अर्थ स्तन के अग्रभाग पर ऐसा लेप करे कि जिससे दूध स्रवित न हो। उसी प्रकार खान-पान का व्यवहार भी यथायोग्य रक्खे। पश्चात् **'नामकरणादि संस्कार' 'संस्कारविधि'** की रीति से यथाकाल करता जाय। पश्चात् जब दूसरे महीने बाद रजस्वला हो, तब शुद्ध होने पर उसी प्रकार ऋतुदान देवे।

[गृहस्थी होते हुए भी ब्रह्मचारी]

ऋतुकालाभिगामी स्यात् स्वदारनिरतः सदा॥

मनु० [३।४५]

ब्रह्मचार्येव भवति यत्र तत्राश्रमे वसन्॥

मनु० [३।५०]

जो अपनी ही स्त्री से प्रसन्न और ऋतुगामी होता है, **वह गृहस्थ भी ब्रह्मचारी के सदृश है।**

[स्त्री-पुरुष परस्पर प्रसन्न रहें]

सन्तुष्टो भार्यया भर्त्ता भर्त्रा भार्या तथैव च।
यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम्॥१॥
यदि हि स्त्री न रोचेत पुमांसं न प्रमोदयेत्।
अप्रमोदात्पुनः पुंसः प्रजनं न प्रवर्त्तते॥२॥
स्त्रियां तु रोचमानायां सर्वं तद्रोचते कुलम्।

तस्यां त्वरोचमानायां सर्वमेव न रोचते॥३॥

मनु० [३।६०-६२]

जिस कुल में भार्या से भर्त्ता और पति से पत्नी अच्छे प्रकार प्रसन्न रहती है, उसी कुल में सब सौभाग्य और ऐश्वर्य निवास करते हैं। जहाँ कलह होता है, वहाँ दौर्भाग्य और दारिद्र्य स्थिर होता है॥१॥

जो स्त्री पति से प्रीति और पति को प्रसन्न नहीं करती, तो पति के अप्रसन्न होने से काम उत्पन्न नहीं होता॥२॥

स्त्री की प्रसन्नता में सब कुल प्रसन्न होता है और उसकी अप्रसन्नता में सब अप्रसन्न अर्थात् दु:खदायक हो जाता है॥३॥

[नारी सत्कार के योग्य है]

पितृभिर्भ्रातृभिश्चैताः पतिभिर्देवरैस्तथा।
पूज्या भूषयितव्याश्च बहुकल्याणमीप्सुभिः॥१॥
यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राऽफलाः क्रियाः॥२॥
शोचन्ति जामयो यत्र विनश्यत्याशु तत्कुलम्।
न शोचन्ति तु यत्रैता वर्धते तद्धि सर्वदा॥३॥
तस्मादेताः सदा पूज्या भूषणाच्छादनाशनैः।
भूतिकामैर्नरैर्नित्यं सत्कारेषुत्सवेषु च॥४॥

मनु० [३।५५-५७,५९]

पिता, भाई, पति और देवर इनको सत्कारपूर्वक भूषणादि से प्रसन्न रक्खें, जिनको बहुत कल्याण की इच्छा हो, वे ऐसा करें॥१॥

जिस घर में स्त्रियों का सत्कार होता है, उसमें विद्यायुक्त सन्तान होके, देवसंज्ञा धराके, आनन्द से क्रीड़ा करते हैं और जिस घर में स्त्रियों का सत्कार नहीं होता, वहाँ सब क्रियायें निष्फल हो जाती हैं॥२॥

जिस घर वा कुल में स्त्रियां शोकातुर होकर दुःख पाती हैं, वह कुल शीघ्र नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है और जिस घर वा कुल में स्त्रियां आनन्द, उत्साह और प्रसन्नता से भरी हुई रहती हैं, वह कुल सर्वदा बढ़ता रहता है॥३॥

इसलिये ऐश्वर्य की कामना करनेहारे मनुष्यों को योग्य है कि सत्कार और उत्सव के समयों में भूषण, वस्त्र और भोजनादि से स्त्रियों का नित्यप्रति सत्कार करें॥४॥

['पूजा' शब्द का अर्थ]

यह बात सदा ध्यान में रखनी चाहिये कि 'पूजा' का अर्थ सत्कार है और दिन-रात में जब-जब प्रथम मिलें वा पृथक् हों, तब-तब प्रीतिपूर्वक 'नमस्ते' एक दूसरे को करें।

[गृहिणी के कर्त्तव्य]

सदा प्रहृष्टया भाव्यं गृहकार्येषु दक्षया।
सुसंस्कृतोपस्करया व्यये चामुक्तहस्तया॥

मनु० [५। १५०]

स्त्री को योग्य है कि अतिप्रसन्नता से घर के कामों में चतुराईयुक्त [रहै], सब पदार्थों का उत्तम संस्कार और घर की शुद्धि [रक्खे], और व्यय में अत्यन्त उदार सदा न [रहै] अर्थात् सब चीजें पवित्र और पाक इस प्रकार बनावे वा बनवावे जो औषधरूप होकर घर, शरीर वा आत्मा में रोग को न आने देवें। जो-जो व्यय हो उसका हिसाब यथावत् रखके, पति आदि को सुना दिया करे। घर के नौकर-चाकरों से यथायोग्य काम लेवे। घर के किसी काम को बिगड़ने न देवे।

[ये ७ पदार्थ सब स्थानों से प्राप्त करे]

स्त्रियो रत्नान्यथो विद्या धर्मः शौचं सुभाषितम्।
विविधानि च शिल्पानि समादेयानि सर्वतः॥

मनु० [२।२४०]

उत्तम स्त्री, नाना प्रकार के रत्न, विद्या, धर्म, पवित्रता, श्रेष्ठभाषण और नाना प्रकार की **'शिल्पविद्या'** अर्थात् कारीगरी, सब मनुष्य, सब देशों और सब मनुष्यों से ग्रहण करें।

[लोक में व्यवहार ऐसा करे]

सत्यं ब्रूयात्प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्।
प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः॥१॥
भद्रं भद्रमिति ब्रूयाद् भद्रमित्येव वा वदेत्।
शुष्कवैरं विवादं च न कुर्यात्केनचित्सह॥२॥

मनु० [४।१३८-१३९]

सदा प्रिय सत्य, दूसरे का हितकारक बोले, अप्रिय सत्य अर्थात् काणे को काणा न बोले, अनृत अर्थात् झूठ दूसरे को प्रसन्न करने के अर्थ, न बोले॥१॥

सदा भद्र अर्थात् सबके हितकारी वचन बोला करे। जो-जो दूसरे का हितकारक हो, और [चाहे वह] बुरा भी माने, तथापि कहे विना न रहै। शुष्कवैर अर्थात् विना अपराध किसी के साथ विरोध वा विवाद न करे॥२॥

[हितकारी वचन अप्रिय होने पर भी अवश्य कहे]

पुरुषा बहवो राजन् सततं प्रियवादिनः।
अप्रियस्य तु पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः॥

महाभारत, उद्योगपर्व, विदुरनीति [अ० ३७। श्लोक १५]

विदुर जी कहते हैं कि हे 'धृतराष्ट्र ! इस संसार में दूसरे को निरन्तर प्रसन्न करने के लिये प्रिय बोलनेवाले खुशामदी लोग बहुत हैं, परन्तु सुनने में अप्रिय विदित हो और वह कल्याण करनेवाला वचन हो, उसको कहने और सुननेवाला पुरुष दुर्लभ है।' क्योंकि **सत्पुरुषों को योग्य है कि मुख के सामने दूसरे का दोष कहना और अपना दोष सुनना, परोक्ष में दूसरे के गुण सदा कहना। और दुष्टों की यही रीति है कि सम्मुख में गुण कहना और परोक्ष में दोषों का प्रकाश करना। जब तक मनुष्य दूसरे से अपने दोष नहीं सुनता वा कहनेवाला नहीं कहता तब तक मनुष्य दोषों से छूटकर, गुणी नहीं होता।**

[निन्दा-स्तुति का लक्षण]

कभी किसी की निन्दा न करे। जैसे—**'गुणेषु दोषारोपणमसूया'** और **'दोषेषु गुणारोपणमसूया', 'गुणेषु गुणारोपणं दोषेषु दोषारोपणं च स्तुतिः'**=गुणों में दोष और दोषों में गुण लगाना **'निन्दा'**, और गुणों में गुण, दोषों में दोषों का कथन करना **'स्तुति'** कहाती है। अर्थात् मिथ्याभाषण का नाम **'निन्दा'** और सत्यभाषण का नाम **'स्तुति'** है।

[वेद और शास्त्रों का नित्य स्वाध्याय करना]

बुद्धिवृद्धिकराण्याशु धन्यानि च हितानि च।
नित्यं शास्त्राण्यवेक्षेत निगमांश्चैव वैदिकान्॥१॥
यथा यथा हि पुरुषः शास्त्रं समधिगच्छति।
तथा तथा विजानाति विज्ञानं चास्य रोचते॥२॥

मनु० [४।१९-२०]

जो बुद्धि, धन और हित की शीघ्र वृद्धि करनेहारे शास्त्र और वेद हैं, उनको नित्य सुनें और सुनावें। जो ब्रह्मचर्याश्रम में पढ़े हों, उनको स्त्री-पुरुष नित्य विचारा और पढ़ाया करें॥१॥

क्योंकि मनुष्य जैसे-जैसे शास्त्रों को यथावत् जानता है, वैसे-वैसे उसका विज्ञान बढ़ता जाता है और उसी में रुचि भी बढ़ती रहती है॥२॥

[दैनिक पञ्चमहायज्ञ]

ऋषियज्ञं देवयज्ञं भूतयज्ञं च सर्वदा।
नृयज्ञं पितृयज्ञं च यथाशक्ति न हापयेत्॥१॥

[मनु० ४।२१]

अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम्।
होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम्॥२॥

मनु० [३।७०]

स्वाध्यायेनार्चयेतर्षीन् होमैर्देवान् यथाविधि।
पितॄन् श्राद्धैश्च नॄनन्नैर्भूतानि बलिकर्मणा॥३॥

मनु० [३।८१]

दो यज्ञ ब्रह्मचर्य में लिख आये, वे अर्थात् **एक [ऋषियज्ञ=ब्रह्मयज्ञ]**—वेदादि- शास्त्रों का पढ़ना-पढ़ाना, सन्ध्योपासन, योगाभ्यास।

दूसरा देवयज्ञ—विद्वानों का संग, सेवा, पवित्रता, दिव्य गुणों का धारण, दातृत्व, विद्या की उन्नति [और अग्निहोत्र] करना है। ये दोनों यज्ञ सायं-प्रात: करने होते हैं।

[सन्ध्या अग्निहोत्र का काल]

सायंसायं गृहपतिर्नो अग्निः प्रातः प्रातः सौमनसस्य दाता॥१॥
प्रातः प्रातर्गृहपतिर्नो अग्निः सायंसायं सौमनसस्य दाता॥२॥

अथर्व० कां० १९ । अनु० ७ । मं० ३, ४ ॥ [१९।५५।३-४]

तस्मादहोरात्रस्य संयोगे ब्राह्मणः सन्ध्यामुपासीत।

[तुलना-षड्विंश ब्राह्मण प्रपा० ४ खं० ५]

उद्यन्तमस्तं यान्तमादित्यमभिध्यायन्॥३॥

ब्राह्मण [तैत्ति० आ०, प्रपा० २। अनु० २]॥

न तिष्ठति तु यः पूर्वां नोपास्ते यस्तु पश्चिमाम्।
स साधुभिर्बहिष्कार्यः सर्वस्माद् द्विजकर्मणः॥४॥

मनु० [२।१०३]

जो सन्ध्या-सन्ध्या-काल में होम होता है, वह हुत द्रव्य प्रात:काल तक वायुशुद्धि द्वारा सुखकारी होता है॥१॥

जो अग्नि में प्रातः-प्रात:-काल में होम किया जाता है, वह हुत-द्रव्य सायंकाल- पर्यन्त वायु की शुद्धि द्वारा बल, बुद्धि और आरोग्यकारक होता है॥२॥

इसलिये दिन और रात्रि के सन्धिकालों में अर्थात् सूर्योदय और सूर्यास्त के समय में परमेश्वर का ध्यान और अग्निहोत्र अवश्य करना चाहिये॥३॥

और जो ये दोनों काम सायं और प्रात:काल में न करे, उसको सज्जन लोग सब द्विजों के कर्मों से बाहर निकाल देवें, अर्थात् उसको शूद्रवत् समझें॥४॥

प्रश्न—त्रिकाल-सन्ध्या क्यों नहीं करनी [चाहिये]?

उत्तर—तीन समय में सन्धि नहीं होती, प्रकाश और अन्धकार की सन्धि भी सायं-प्रातः दो ही वेलाओं में होती है। जो इसको न मानकर मध्याह्नकाल में तीसरी सन्ध्या करना माने, वह मध्यरात्रि में भी क्यों न करे ? जो मध्यरात्रि में भी करना चाहे, तो प्रहर-प्रहर, घड़ी-घड़ी, पल-पल और क्षण-क्षण की सन्धि में सन्ध्योपासन किया करे। जो ऐसा

[करना] भी चाहे, तो हो ही नहीं सकता। और किसी शास्त्र का मध्याह्न-सन्ध्या में प्रमाण भी नहीं। इसलिये दोनों कालों में सन्ध्या और अग्निहोत्र करने चाहियें, तीसरे काल में नहीं। और जो तीन काल होते हैं, वे भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान के भेद से हैं, सन्धियों के भेद से नहीं।

तीसरा 'पितृयज्ञ' अर्थात् जिसमें **देव**=जो विद्वान्, **ऋषि**=जो पढ़ने-पढ़ानेहारे, **पितर**= जो माता-पिता आदि वृद्ध ज्ञानियों और परम योगियों की सेवा करनी [होती है]। पितृयज्ञ के दो भेद हैं—एक **'श्राद्ध'** और दूसरा **'तर्पण'**। श्राद्ध अर्थात् 'श्रत्' सत्य का नाम है, **'श्रत्सत्यं दधाति यया क्रियया सा श्रद्धा, श्रद्धया यत्क्रियते तच्छ्राद्धम्'**=जिससे सत्य का ग्रहण किया जाय, उसको 'श्रद्धा' और जो-जो श्रद्धा से सेवारूप कर्म किये जायें, उनका नाम **'श्राद्ध'** है। **'तृप्यन्ति तर्पयन्ति येन पितृन् तत्तर्पणम्'**=जिस-जिस कर्म से तृप्त अर्थात् विद्यमान मातादि पितर प्रसन्न हों और प्रसन्न किये जायें, उसका नाम **'तर्पण'** [है], परन्तु **यह कर्म जीवितों के लिये है, मृतकों के लिये नहीं।**

[अथ देवतर्पणम्]

प्रश्न—इस कर्म में किस-किस की सेवा करनी चाहिये?

उत्तर— ओं ब्रह्मादयो देवास्तृप्यन्ताम्। ब्रह्मादिदेवपत्न्यस्तृप्यन्ताम्।

ब्रह्मादिदेवसुतास्तृप्यन्ताम्। ब्रह्मादिदेवगणास्तृप्यन्ताम्। इति देवतर्पणम्।

'विद्वाꣳसो हि देवाः'

यह शतपथ ब्राह्मण का वचन है [३।५।६।१०]।

जो विद्वान् हैं, उन्हीं को **'देव'** कहते हैं। जो साङ्गोपाङ्ग चार वेदों के जानने वाले हों, उनका नाम **'ब्रह्मा',** और जो उनसे न्यून पढ़े हों उनका नाम **'देव'** अर्थात् विद्वान् है; उनके सदृश विदुषी उनकी स्त्री **'ब्रह्माणी'** और **'देवी'**, उनके तुल्य पुत्र और शिष्य तथा उनके सदृश उनके गण अर्थात् सेवक हों, जो उनकी सेवा करना है, उसका नाम **'श्राद्ध'** और **'तर्पण'** है।

अथर्षितर्पणम्

ओं मरीच्यादय ऋषयस्तृप्यन्ताम्।
मरीच्याद्यृषिपत्न्यस्तृप्यन्ताम्।
मरीच्याद्यृषिसुतास्तृप्यन्ताम्।
मरीच्याद्यृषिगणास्तृप्यन्ताम्॥
इति ऋषितर्पणम्।

जो ब्रह्मा के प्रपौत्र मरीचिवत् विद्वान् होकर पढ़ावें और जो उनके सदृश विद्यायुक्त उनकी स्त्रियाँ कन्याओं को विद्यादान देवें, उनके तुल्य पुत्र और

शिष्य तथा उनके समान उनके सेवक हों, उनका सेवन-सत्कार करना **'ऋषितर्पण'** है।

अथ पितृतर्पणम्

ओं सोमसदः पितरस्तृप्यन्ताम्। अग्निष्वात्ताः पितरस्तृप्यन्ताम्। बर्हिषदः पितरस्तृप्यन्ताम्। सोमपाः पितरस्तृप्यन्ताम्। हविर्भुजः पितरस्तृप्यन्ताम्। आज्यपाः पितरस्तृप्यन्ताम्। [सुकालिनः पितरस्तृप्यन्ताम्।] यमादिभ्यो नमः यमादींस्तर्पयामि। पित्रे स्वधा नमः पितरं तर्पयामि। पितामहाय स्वधा नमः पितामहं तर्पयामि। [प्रपितामहाय स्वधा नमः प्रपितामहं तर्पयामि।] मात्रे स्वधा नमो मातरं तर्पयामि। पितामह्यै स्वधा नमः पितामहीं तर्पयामि। [प्रपितामह्यै स्वधा नमः प्रपितामहीं तर्पयामि।] स्वपत्न्यै स्वधा नमः स्वपत्नीं तर्पयामि। सम्बन्धिभ्यः स्वधा नमः सम्बन्धिनस्तर्पयामि। सगोत्रेभ्यः स्वधा नमः सगोत्राँस्तर्पयामि॥
इति पितृतर्पणम्॥

[यजुः अ० १९॥ मनु० अ० ३ के आधार पर ऊहित॥]

(सोमसदः) **'ये सोमे जगदीश्वरे पदार्थविद्यायां च सीदन्ति ते सोमसदः'**=जो परमात्मा और **'पदार्थ-विद्या'** में निपुण हों, वे 'सोमसद्'। **'यैरग्नेर्विद्युतो विद्या गृहीता ते अग्निष्वात्ताः'**=जो अग्नि अर्थात् विद्युदादि पदार्थों के जाननेवाले हों, वे 'अग्निष्वात्त'। **'ये बर्हिषि**

उत्तमे व्यवहारे सीदन्ति ते बर्हिषदः'=जो उत्तम विद्यावृद्धियुक्त व्यवहार में स्थित हों, वे 'बर्हिषद्'। **'ये सोममैश्वर्यमोषधीरसं वा पान्ति पिबन्ति वा ते सोमपाः'**=जो ऐश्वर्य के रक्षक और महौषधि रस का पान करने से रोगरहित और अन्य के ऐश्वर्य के रक्षक [और] औषधों को देके रोगनाशक हों, वे 'सोमपा'। **'ये हविर्होतुमत्तुमर्हं भुञ्जते भोजयन्ति वा ते हविर्भुजः'**=जो मादक, हिंसाजनित द्रव्यों को छोड़के, [अग्निहोत्र से अन्न-जल आदि की शुद्धि करके] भोजन करने-करानेहारे हों, वे 'हविर्भुज्'। **'य आज्यं ज्ञातुं प्राप्तुं वा योग्यं रक्षन्ति वा पिबन्ति ते'**=जो जानने के योग्य वस्तु के रक्षक और घृत-दुग्धादि खाने और पीनेहारे हों, वे 'आज्यपा'। **'शोभनः कालो विद्यते येषान्ते सुकालिनः'** =जिनका धर्म के करने का अच्छा और सुखरूप समय हो, वे 'सुकालिन्'। **'ये दुष्टान् यच्छन्ति निगृह्णन्ति ते यमा न्यायाधीशाः'**=जो दुष्टों को दण्ड और श्रेष्ठों का पालन करनेहारे हों, न्यायकारी हों, वे 'यम'। **'यः पाति सः पिता'**=जो सन्तानों का अन्न और सत्कार से रक्षक वा जनक हो, वह 'पिता'। **'पितुः पिता पितामहः, पितामहस्य पिता प्रपितामहः'**=जो पिता का पिता हो, वह 'पितामह' और जो पितामह का पिता हो, वह 'प्रपितामह'। **'या मानयति सा माता'**=जो अन्न और सत्कारों से सन्तानों का मान्य करे, वह 'माता'। **'या पितुर्माता [सा] पितामही, पितामहस्य च माता प्रपिता-मही'**=जो पिता की माता हो वह 'पितामही', और पितामह की माता हो वह 'प्रपितामही'। **अपनी स्त्री** तथा **भगिनी, सम्बन्धी** और **एक गोत्र** के तथा अन्य कोई **भद्र पुरुष** वा **वृद्ध** हों, उन सबको अत्यन्त श्रद्धा से उत्तम अन्न-वस्त्र, सुन्दर

यान आदि देकर अच्छे प्रकार जो तृप्त करना अर्थात् जिस-जिस कर्म से उनका आत्मा तृप्त और शरीर स्वस्थ रहै, उस-उस कर्म से प्रीतिपूर्वक उनकी सेवा करना, वह **'श्राद्ध'** और **'तर्पण'** कहाता है॥

चौथा [बलि-] वैश्वदेव— अर्थात् जब भोजन सिद्ध हो तब जो कुछ भोजनार्थ बने, उसमें से खट्टा, लवणान्न और क्षार को छोड़के घृत-मिष्ट-युक्त अन्न लेकर चूल्हे से अग्नि लेकर, अलग धर, निम्नलिखित मन्त्रों से आहुतियां और भाग करे—

वैश्वदेवस्य सिद्धस्य गृह्येऽग्नौ विधिपूर्वकम्।
आभ्यः कुर्याद्देवताभ्यो ब्राह्मणो होममन्वहम्॥

मनु० [३।८४]

जो पाकशाला में भोजनार्थ अन्न सिद्ध हो, उसका दिव्य गुणों के अर्थ, उसी पाकाग्नि में निम्नलिखित मन्त्रों से विधिपूर्वक होम नित्य करे—

[बलिवैश्वदेव]-होम के मन्त्र—

ओम्- अग्नये स्वाहा। सोमाय स्वाहा। अग्निषोमाभ्यां स्वाहा। विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा। धन्वन्तरये स्वाहा। कुह्वै स्वाहा। अनुमत्यै स्वाहा। प्रजापतये स्वाहा। सह द्यावापृथिवीभ्यां स्वाहा। स्विष्टकृते स्वाहा॥

[मनु० ३।८५-८६ के आधार पर]

एक-एक मन्त्र पढ़के एक-एक आहुति देवे। पश्चात् भाग अर्थात् थाली में वा भूमि पर पत्ता आदि रखकर [उन पर] पूर्वादि दिशा के अनुक्रम से इन मन्त्रों से भाग रखे।

ओं सानुगायेन्द्राय नमः। सानुगाय यमाय नमः। सानुगाय वरुणाय नमः। सानुगाय सोमाय नमः। मरुद्भ्यो नमः। अद्भ्यो नमः। वनस्पतिभ्यो नमः। श्रियै नमः। भद्रकाल्यै नमः। ब्रह्मपतये नमः। वास्तुपतये नमः। विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः। दिवाचरेभ्यो भूतेभ्यो नमः। नक्तञ्चारिभ्यो भूतेभ्यो नमः। सर्वात्मभूतये नमः॥

[मनु० ३।८७-९१ के आधार पर]

इन भागों को, जो कोई अतिथि हो तो उसको जिमा देवे अथवा जो उस समय अतिथि उपस्थित न हो तो अग्नि में छोड़ देवे। इसके अनन्तर लवणान्न अर्थात् दाल, भात, शाक, रोटी आदि लेकर छः भाग भूमि में [पत्तल, बर्तन आदि के ऊपर] धरे। इसमें प्रमाण—

शुनां च पतितानां च श्वपचां पापरोगिणाम्।
वायसानां कृमीणां च शनकैर्निर्वपेद् भुवि॥

मनु० [३।९२]

इस प्रकार '**श्वभ्यो नमः, पतितेभ्यो नमः, श्वपग्भ्यो नमः, पापरोगिभ्यो नमः, वायसेभ्यो नमः, कृमिभ्यो नमः**' धरकर पश्चात् किसी दुःखी बुभुक्षित प्राणी अथवा कुत्ते, कौवे आदि को दे देवे।

यहां "नमः" शब्द का अर्थ अन्न अर्थात् कुत्ते, पापी, चंडाल, पापरोगी, कौवे और कृमि अर्थात् चींटी आदि को अन्न देना, यह **'मनुस्मृति'** आदि का विधि है।

हवन करने का प्रयोजन यह है कि पाकशालास्थ वायु का शुद्ध होना और जो अज्ञात-अदृष्ट जीवों की हत्या होती है, उसका प्रत्युपकार कर देना।

पांचवाँ अतिथिसेवा [यज्ञ]—'अतिथि' धार्मिक, सत्योपदेशक, सबके उपकारक पूर्ण विद्वान् [और] सर्वत्र घूमनेवाले संन्यासी होते हैं। उनका आसन, खान-पान, नम्रतादि से सत्कार करके, उनसे सत्संग कर, अपूर्व विद्याओं को जाने। समय पाके गृहस्थ और राजादि भी अतिथि हो सकते हैं। परन्तु—

पाखण्डिनो विकर्मस्थान् वैडालवृत्तिकान् शठान्।
हैतुकान् बकवृत्तींश्च वाङ्मात्रेणापि नार्चयेत्॥

मनु० [४।३०]

(पाखण्डिनः) वेदनिन्दक, वेदविरुद्ध आचरण करनेहारे **(विकर्मस्थान्)** जो वेदविरुद्ध कर्म का कर्त्ता= मिथ्याभाषणादियुक्त, **[वैडालवृत्तिकान्]** जैसे विडाला छिपके, स्थिर रह, ताक, कूद-झपटके, मूषे आदि प्राणियों को मार अपना पेट भरता है, वैसे जनों का नाम 'वैडालवृत्तिक',

(शठान्) अर्थात् हठी, दुराग्रही, अभिमानी, आप जाने नहीं और दूसरे का कहा माने नहीं, **(हैतुकान्)** कुतर्की, व्यर्थ बकनेवाले जैसे कि आजकल के वेदान्ती 'हम ब्रह्म हैं, जगत् मिथ्या है, वेदादि-शास्त्र और ईश्वर भी कल्पित है' इत्यादि बकवाद करनेवाले, **(बकवृत्तींश्च)** जैसे बक एक पैर उठा ध्यानावस्थित के समान होकर झट मच्छी के प्राण हरके अपना स्वार्थ सिद्ध करता है, वैसे आजकल के वैरागी और खाखी आदि हठी, दुराग्रही, वेदविरोधी हैं, ऐसों का **[वाङ्मात्रेणापि नार्चयेत्]** वाणीमात्र से भी सत्कार न करे। क्योंकि इनका सत्कार करने से वे बढ़के सब संसार को अधर्मयुक्त कर देते हैं। आप तो अवनति के काम करते ही हैं, परन्तु साथ में सेवकों को भी अविद्यारूपी महासागर में डुबा देते हैं।

इन पाँच महायज्ञों का फल—

ब्रह्मयज्ञ के करने से विद्या, शिक्षा, धर्म, सभ्यता आदि शुभगुणों की वृद्धि होती है।

'अग्निहोत्र' से वायु, वृष्टि, जल की शुद्धि होकर, ओषधियाँ शुद्ध होती हैं। शुद्ध वायु का श्वास और स्पर्श [प्राप्त होता है], खान-पान से आरोग्य, बुद्धि, बल, पराक्रम बढ़के धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का अनुष्ठान निर्विघ्नता से पूरा होता है। इसीलिये इसको 'देवयज्ञ' कहते हैं कि यह वायु आदि पदार्थों को दिव्य कर देता है।

'पितृयज्ञ' का फल—[प्रथम] जब वह माता-पिता और ज्ञानियों की सेवा करेगा, तब उसका ज्ञान बढ़ेगा। उससे सत्यासत्य का निर्णय करके सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग करके, सुखी रहेगा। दूसरा **कृतज्ञता** अर्थात् जैसी सेवा माता- पिता और आचार्य ने सन्तानों और शिष्यों की किई है, उसका बदला देना उचित ही है।

बलिवैश्वदेव का भी फल जो पूर्व कह आये, वही है।

[अतिथियज्ञ—] जब तक उत्तम अतिथि जगत् में नहीं होते, तब तक उन्नति भी नहीं होती। उनके सब देशों में घूमने, सत्योपदेश करने से, पाखण्ड की वृद्धि नहीं होती और सर्वत्र गृहस्थों को सहज से सत्य-विज्ञान की प्राप्ति होती रहती है और मनुष्यमात्र में एक ही धर्म स्थिर रहता है। विना अतिथियों के सन्देहनिवृत्ति नहीं होती, संदेहनिवृत्ति के विना दृढनिश्चय भी नहीं होता, दृढनिश्चय के विना सुख कहां?

[गृहस्थ के सामान्य कर्त्तव्य]

ब्राह्म मुहूर्त्ते बुध्येत धर्मार्थौ चानुचिन्तयेत्।
कायक्लेशाँश्च तन्मूलान् वेदतत्त्वार्थमेव च॥

मनु० [४ । ९२]

रात्रि के चौथे प्रहर अथवा चार घड़ी रात से उठे। आवश्यक कार्य करके धर्म और अर्थ, शरीर के रोगों का निदान और परमात्मा का ध्यान करे। कभी अधर्म का आचरण न करे। क्योंकि—

नाधर्मश्चरितो लोके सद्यः फलति गौरिव।
शनैरावर्त्तमानस्तु कर्त्तुर्मूलानि कृन्तति॥

मनु० [४ । १७२]

किया हुआ अधर्म निष्फल कभी नहीं होता। परन्तु जिस समय अधर्म करता है, उसी समय फल भी नहीं होता, इसलिये अज्ञानी लोग अधर्माचरण से नहीं डरते। परन्तु निश्चय जानो कि वह अधर्माचरण धीरे-धीरे तुम्हारे सुख के मूलों को काटता चला जाता है। इस क्रम से—

अधर्मेणैधते तावत्ततो भद्राणि पश्यति।
ततः सपत्नान् जयति समूलस्तु विनश्यति॥

मनु० [४ । १७४]

जैसे तालाब के बन्ध को तोड़ जल चारों ओर फैल जाता है, वैसे अधर्मात्मा मनुष्य भी धर्म की मर्यादा छोड़, मिथ्याभाषण, कपट, **पाखण्ड अर्थात् रक्षा करनेवाले वेदों का खण्डन,** और विश्वासघातादि कर्मों से पराये पदार्थों को लेकर प्रथम बढ़ता है, पश्चात् धनादि ऐश्वर्य से खान-पान, वस्त्र-आभूषण, यान-स्थान, मान-प्रतिष्ठा को प्राप्त होता है। अन्याय से शत्रुओं को भी जीतता है; पश्चात् शीघ्र नष्ट हो जाता है। **जैसे जड़-काटा हुआ वृक्ष नष्ट हो जाता है, वैसे अधर्मी नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है।** इसलिये—

सत्यधर्मार्यवृत्तेषु शौचे चैवारमेत्सदा।
शिष्यांश्च शिष्याद्धर्मेण वाग्बाहूदरसंयतः॥

मनु० [४।१७५]

[मनुष्य] **वेदोक्त सत्यधर्म अर्थात् पक्षपातरहित होकर सत्य का ग्रहण और असत्य के परित्याग न्यायरूप वेदोक्त धर्मादि;** 'आर्यवृत्त' अर्थात् उत्तम पुरुषों के गुण, कर्म, स्वभाव और पवित्रता में ही सदा रमण करे। वाणी, बाहू, उदर आदि अंगों का संयम अर्थात् उनको धर्म में चलाता हुआ, धर्म से शिष्यों को शिक्षा किया करे।

[ऋत्विजादि के साथ कभी झगड़ा न करे]

ऋत्विक्पुरोहिताचार्यैर्मातुलातिथिसंश्रितैः।
बालवृद्धातुरैर्वैद्यैर्ज्ञातिसम्बन्धिबान्धवैः॥१॥
मातापितृभ्यां यामिभिर्भ्रात्रा पुत्रेण भार्यया।
दुहित्रा दासवर्गेण विवादं न समाचरेत्॥२॥

मनु० [४।१७९-१८०]

(ऋत्विक्) यज्ञ का करनेहारा, **(पुरोहित)** सदा उत्तम चालचलन की शिक्षा का कर्त्ता, **(आचार्यैः)** विद्या पढ़ानेहारा, **(मातुल-)** मामा, **(अतिथि-)** अर्थात् जिसकी कोई आने-जाने की निश्चित तिथि न हो, **(संश्रितैः)** अपने आश्रित, **(बाल-)** बालक, **(वृद्ध-)** बुड्ढे, **(आतुरैः)** पीड़ित, **(वैद्यैः)** आयुर्वेद का ज्ञाता, **(ज्ञाति-)** स्वगोत्र वा स्ववर्णस्थ, **(सम्बन्धि-)** सास, श्वशुर आदि, **(बान्धवैः)** मित्र॥१॥

[मातापितृभ्याम्] माता, पिता, **(यामिभिः)** बहिन **(भ्रात्रा)** भ्राता, **(पुत्रेण)** पुत्र **(भार्यया)** स्त्री, **(दुहित्रा)** कन्या और **(दासवर्गेण)** सेवक

लोगों से **[विवादं न समाचरेत्]** विवाद अर्थात् विरुद्ध लड़ाई-बखेड़ा कभी न करे॥२॥

[दान के अयोग्य]

अतपास्त्वनधीयानः प्रतिग्रहरुचिर्द्विजः।
अम्भस्यश्मप्लवेनेव सह तेनैव मज्जति॥

मनु० [४।१९०]

एक—**(अतपाः)** ब्रह्मचर्य, सत्यभाषणादि तपरहित, दूसरा—**(अनधीयानः)** विना पढ़ा हुआ, **तीसरा—(प्रतिग्रहरुचिः)** अत्यन्त सुखार्थ दूसरों से दान लेनेवाला, ये तीनों **[अम्भस्यश्म०]** जैसे पत्थर की नौका से समुद्र में तरनेवाले के समान, अपने दुष्ट कर्मों के साथ ही दुःख-सागर में डूबते हैं। वे तो डूबते ही हैं, परन्तु दाताओं को भी साथ डुबा लेते हैं॥

त्रिष्वप्येतेषु दत्तं हि विधिनाप्यर्जितं धनम्।
दातुर्भवत्यनर्थाय परत्रादातुरेव च॥

मनु० [४।१९३]

जो **धर्म से प्राप्त हुए धन का,** इन तीनों को देना है; वह दान-दाता का नाश इसी जन्म और लेनेवाले का नाश परजन्म में करता है।

जो वे ऐसे हों, तो क्या हो—

यथा प्लवेनौपलेन निमज्जत्युदके तरन्।
तथा निमज्जतोऽधस्तादज्ञौ दातृप्रतीच्छकौ॥

मनु० [४।१९४]

जैसे पत्थर की नौका में बैठके जल में तरनेवाला डूब जाता है, वैसे अज्ञानी दाता और ग्रहीता दोनों अधोगति अर्थात् दुःख को प्राप्त होते हैं।

पाखण्डियों के लक्षण—

धर्मध्वजी सदालुब्धश्छाद्मिको लोकदम्भकः।
वैडालव्रतिको ज्ञेयो हिंस्त्रः सर्वाभिसन्धकः॥१॥
अधोदृष्टिर्नैष्कृतिकः स्वार्थसाधनतत्परः।
शठो मिथ्याविनीतश्च बकव्रतचरो द्विजः॥२॥

मनु० [४।१९५-१९६]

(धर्मध्वजी) [जो] धर्म कुछ भी न करे, परन्तु धर्म के नाम से लोगों को ठगे, **(सदालुब्धः)** सर्वदा लोभ से युक्त, **(छाद्मिकः)** कपटी, **(लोकदम्भकः)** [जो] संसारी मनुष्यों के सामने अपनी बड़ाई के गपोड़े मारा करे, **(हिंस्त्रः)** प्राणियों का घातक, अन्य से वैरबुद्धि रखनेवाला, **(सर्वाभिसन्धकः)** [जो] सब अच्छे और बुरों से भी मेल रक्खे, उसको **[वैडालव्रतिकः ज्ञेयः]** वैडालव्रतिक अर्थात् विडाले के समान धूर्त्त [और] नीच समझो॥१॥

(अधोदृष्टिः) कीर्त्ति के लिये नीचे दृष्टि रक्खे, **(नैष्कृतिकः)** ईर्ष्यक=किसी ने उसका पैसाभर अपराध किया हो, तो उसका बदला

प्राण तक लेने को तत्पर रहै, **(स्वार्थसाधनतत्परः)** चाहे कपट, अधर्म, विश्वासघात क्यों न हो, अपना प्रयोजन साधने में चतुर, **(शठः)** चाहे अपनी बात झूठी क्यों न हो, परन्तु हठ कभी न छोड़े, **(मिथ्याविनीतः)** झूठ-मूठ ऊपर से शील, सन्तोष और साधुता दिखलावे, उसको **(बकव्रत०)** बगुले के समान नीच समझो। ऐसे-ऐसे लक्षणों वाले **पाखण्डी** होते हैं, उनका विश्वास वा सेवा कभी न करें॥२॥

[धर्मसंचय का प्रकार और धर्म का फल]

धर्मं शनैः सञ्चिनुयाद् वल्मीकमिव पुत्तिकाः।
परलोकसहायार्थं सर्वलोकान्यपीडयन्॥१॥
नामुत्र हि सहायार्थं पिता माता च तिष्ठतः।
न पुत्रदारा न ज्ञातिर्धर्मस्तिष्ठति केवलः॥२॥
एकः प्रजायते जन्तुरेक एव प्रलीयते।
एको नु भुङ्क्ते सुकृतमेक एव च दुष्कृतम्॥३॥

[मनु० ४।२३८ । २४०]

एकः पापानि कुरुते फलं भुङ्क्ते महाजनः।
भोक्तारो विप्रमुच्यन्ते कर्त्ता दोषेण लिप्यते॥४॥

[महाभारत, उद्योगपर्व, प्रजागरपर्व १, अ० ३३, श्लोक ४१]

मृतं शरीरमुत्सृज्य काष्ठलोष्ठसमं क्षितौ।
विमुखा बान्धवा यान्ति धर्मस्तमनुगच्छति॥५॥

मनु० [४।२४१]

स्त्री और पुरुष को चाहिये कि जैसे पुत्तिका अर्थात् दीमक, वल्मीक अर्थात् बांबी को बनाती है, वैसे सब भूतों को पीडा न देकर, **परलोक अर्थात् परजन्म के सुखार्थ** धीरे-धीरे धर्म का संचय करे॥१॥

क्योंकि परलोक में न माता, न पिता, न पुत्र, न स्त्री, न ज्ञाति सहाय कर सकते हैं, किन्तु एक धर्म ही सहायक होता है॥२॥

देखिये, अकेला ही जीव जन्म पाता और मरण को प्राप्त होता, अकेला ही धर्म के फल सुख और अधर्म के दुःखरूप फल को भोगता है॥३॥

यह भी समझ लो कि कुटुम्ब में एक पुरुष पाप करके पदार्थ लाता है, और महाजन अर्थात् सब कुटुम्ब उसको भोगता है, भोगनेवाले दोषभागी नहीं होते, किन्तु अधर्म का कर्त्ता ही दोष का भागी होता है॥४॥

जब कोई किसी का सम्बन्धी मर जाता है, उसको लकड़े और मिट्टी के ढेले के समान भूमि में छोड़कर, पीठ दे, बन्धुवर्ग विमुख होकर चले जाते हैं, कोई उसके साथ जानेवाला नहीं होता, किन्तु एक धर्म ही उसका सङ्गी होता है॥५॥

[धर्माचरण से मुक्ति की प्राप्ति]

तस्माद्धर्मं सहायार्थं नित्यं संचिनुयाच्छनैः।
धर्मेण हि सहायेन तमस्तरति दुस्तरम्॥१॥
धर्मप्रधानं पुरुषं तपसा हतकिल्विषम्।

परलोकं नयत्याशु भास्वन्तं खशरीरिणम्॥२॥

मनु० [४ । २४२-२४३]

उस हेतु से परलोक अर्थात् परमसुख और परजन्म के सहायार्थ नित्य धर्म का सञ्चय धीरे-धीरे करता जाय; क्योंकि धर्म के ही सहाय से बड़े-बड़े दुस्तर दुःखसागर को जीव तर सकता है॥१॥

किन्तु जो पुरुष धर्म को ही प्रधान समझता [है], जिसका धर्म के अनुष्ठान से कर्त्तव्य- पाप [=क्रियमाण पाप-कर्म की वृत्ति] दूर हो गया उसको, प्रकाशस्वरूप और आकाश जिसका शरीरवत् है, उस परलोक अर्थात् परमदर्शनीय परमात्मा को, धर्म ही शीघ्र प्राप्त कराता है॥२॥ इसलिये—

[सदाचार का फल]

दृढकारी मृदुर्दान्तः क्रूराचारैरसंवसन्।
अहिंस्रो दमदानाभ्यां जयेत्स्वर्गं तथाव्रतः॥१॥
वाच्यार्था नियताः सर्वे वाङ्मूला वाग्विनिःसृताः।
तांस्तु यः स्तेनयेद्वाचं स सर्वस्तेयकृन्नरः॥२॥
आचाराल्लभते ह्यायुराचारादीप्सिताः प्रजाः।
आचाराद्धनमक्षय्यमाचारो हन्त्यलक्षणम्॥३॥

मनु० [४।२४६, २५६, १५६]

सदा दृढ़कारी, कोमलस्वभाव, जितेन्द्रिय और हिंसक, क्रूर, दुष्टाचारी पुरुषों से पृथक् रहनेहारा, धर्मात्मा, मन को जीतकर और विद्यादि दान से सुख को प्राप्त होवे॥१॥

परन्तु यह भी ध्यान में रक्खे कि जिस वाणी में सब अर्थ अर्थात् व्यवहार निश्चित होते हैं, वह वाणी ही उनका मूल [है], और वाणी से ही सब व्यवहार सिद्ध होते हैं; उस वाणी को जो चोरता अर्थात् मिथ्याभाषण करता है, वह सब चोरी आदि पापों का करनेवाला है॥२॥

इसलिये मिथ्याभाषणादि रूप अधर्म को छोड़, जिस धर्माचार अर्थात् ब्रह्मचर्य, जितेन्द्रियता से पूर्ण आयु और धर्माचार से उत्तम प्रजा, धर्माचार से अक्षय धन को प्राप्त होता है और जो धर्माचार दुष्ट-लक्षणों का नाश करता है, उस आचरण को सदा किया करे॥३॥ क्योंकि—

[दुराचार का फल]

दुराचारो हि पुरुषो लोके भवति निन्दितः।
दुःखभागी च सततं व्याधितोऽल्पायुरेव च॥

मनु० [४।१५७]

जो दुष्टाचारी पुरुष है, वह संसार में सज्जनों के मध्य में निन्दा को प्राप्त [होता है। वह] निरन्तर दुःख का भोगनेहारा और अनेक प्रकार के रोगों से अल्पायु होकर शीघ्र नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है। इसलिये ऐसा प्रयत्न करे—

[सुख-दुःख का लक्षण]

यद्यत्परवशं कर्म तत्तद्यत्नेन वर्जयेत्।
यद्यदात्मवशं तु स्यात् तत्तत्सेवेत यत्नतः॥१॥
सर्वं परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम्।
एतद्विद्यात्समासेन लक्षणं सुखदुःखयोः॥२॥

मनु० [४।१५९, १६०]

जो-जो पराधीन कर्म हो उस-उस का प्रयत्न से त्याग और जो-जो स्वाधीन कर्म हो उस-उस का प्रयत्न के साथ सेवन करे॥१॥

क्योंकि जो-जो पराधीनता है वह-वह सब दुःख और जो-जो स्वाधीनता है वह-वह सब सुख [है] । यही संक्षेप से सुख और दुःख का लक्षण जानना चाहिये॥२॥

[पति-पत्नी सब कार्य सहयोग से करें]

परन्तु जो एक-दूसरे के आधीन काम है, वह-वह आधीनता से ही करना चाहिये, जैसे कि स्त्री और पुरुष का एक-दूसरे के आधीन व्यवहार; अर्थात् स्त्री पुरुष का और पुरुष स्त्री का परस्पर प्रियाचरण=अनुकूल रहना, व्यभिचार वा विरोध कभी न करना, पुरुष की आज्ञानुकूल घर के काम स्त्री [के] और [स्त्री की आज्ञानुकूलता से] बाहर के काम पुरुष के आधीन रहना, दुष्ट व्यसन में फसने से एक-दूसरे को रोकना [आदि]। अर्थात् यही निश्चय जानना [कि] जब विवाह होवे तब स्त्री के हाथ पुरुष और पुरुष के हाथ स्त्री बिक चुकी अर्थात् स्त्री और पुरुष के साथ हाव-भाव, नखाग्र-शिखा-पर्यन्त जो कुछ हैं वह वीर्यादि एक-दूसरे के आधीन हो जाता है। **स्त्री वा पुरुष [पारस्परिक] प्रसन्नता के विना कोई भी व्यवहार न करें।** इनमें बड़े अप्रियकारक व्यभिचार, वेश्या-परपुरुष- गमनादि काम हैं। इनको दोनों छोड़के अपने पति के साथ स्त्री और स्त्री के साथ पति सदा प्रसन्न रहें। **स्त्री का पूजनीय देव पति और पुरुष की पूजनीय अर्थात् सत्कार करने योग्य देवी स्त्री है।**

[ब्राह्मण-ब्राह्मणी के कर्त्तव्य]

जो ब्राह्मणवर्णस्थ हों, तो पुरुष लड़कों को पढ़ावें और सुशिक्षा करें तथा सुशिक्षिता स्त्रियां लड़कियों को पढ़ावें। नानाविध उपदेश और वक्तृत्व करके उनको विद्वान् करें। **जब तक गुरुकुल में रहैं, तब तक माता-पिता के समान अध्यापकों को समझें और अध्यापक अपने सन्तानों के समान शिष्यों को समझें।**

[पण्डित का लक्षण]

पढ़ानेहारे अध्यापक और अध्यापिकायें कैसे होने चाहियें—

आत्मज्ञानं समारम्भस्तितिक्षा धर्मनित्यता।
यमर्था नापकर्षन्ति स वै पण्डित उच्यते॥१॥
निषेवते प्रशस्तानि निन्दितानि न सेवते।
अनास्तिकः श्रद्दधान एतत्पण्डितलक्षणम्॥२॥
क्षिप्रं विजानाति चिरं शृणोति, विज्ञाय चार्थं भजते न कामात्।
नासम्पृष्टो ह्युपयुङ्क्ते परार्थे, तत्प्रज्ञानं प्रथमं पण्डितस्य॥३॥
नाप्राप्यमभिवाञ्छन्ति नष्टं नेच्छन्ति शोचितुम्।
आपत्सु च न मुह्यन्ति नराः पण्डितबुद्धयः॥४॥
प्रवृत्तवाक् चित्रकथ ऊहवान् प्रतिभानवान्।
आशु ग्रन्थस्य वक्ता च यः स पण्डित उच्यते॥५॥
श्रुतं प्रज्ञानुगं यस्य प्रज्ञा चैव श्रुतानुगा।
असंभिन्नार्यमर्यादः पण्डिताख्यां लभेत सः॥६॥

ये सब महाभारत, उद्योगपर्व, विदुरप्रजागर के श्लोक हैं

[अध्याय ३३ । १६ से पूर्व तथा १६, १७, २२, २३, २८, २९]।

अर्थ—जिसको आत्मज्ञान [हो]; सम्यक्-आरम्भ अर्थात् जो निकम्मा-आलसी कभी न रहै; सुख-दुःख, हानि- लाभ, मान-अपमान, निन्दा-स्तुति में हर्ष- शोक कभी न करे; धर्म में ही नित्य निश्चित रहै; जिसके मन को उत्तम-उत्तम पदार्थ अर्थात् विषय-सम्बन्धी वस्तुयें आकर्षित न कर सकें, वही पण्डित कहाता है॥१॥

जो सदा धर्मयुक्त कर्मों का सेवन [करे]; अधर्मयुक्त कामों का त्याग [रक्खे]; ईश्वर, वेद, सत्याचार की निन्दा न करनेहारा; ईश्वर आदि में अत्यन्त श्रद्धालु हो; यह पण्डित का कर्त्तव्याकर्त्तव्य कर्म है॥२॥

जो कठिन विषय को भी शीघ्र जान सके; बहुत कालपर्यन्त शास्त्रों को पढ़े, सुने और विचारे। जो कुछ जाने उसको परोपकार में प्रयुक्त करे, अपने स्वार्थ के लिये कोई काम न करे, विना पूछे वा विना योग्य- समय जाने दूसरे के अर्थ में सम्मति न दे, वह प्रथम प्रज्ञान पण्डित को होना चाहिये॥३॥

जो प्राप्ति के अयोग्य की इच्छा कभी न करे, नष्ट हुए पदार्थ पर शोक न करे; आपत्काल में मोह को प्राप्त न [हो] अर्थात् व्याकुल न हो; वह बुद्धिमान् पण्डित है॥४॥

जिसकी वाणी सब विद्याओं और प्रश्नोत्तर करने में अतिनिपुण, विचित्र-शास्त्रों के प्रकरणों का वक्ता; यथायोग्य तर्कवान् और स्मृतिमान्, ग्रन्थों के 'यथार्थ' अर्थ का शीघ्र वक्ता हो, वह पण्डित कहाता है॥५॥

जिसकी प्रज्ञा सुने हुए सत्य अर्थ के अनुकूल और जिसका श्रवण बुद्धि के अनुसार हो, जो कभी आर्य अर्थात् श्रेष्ठ धार्मिक पुरुषों की मर्यादा का छेदन न करे, वह **'पण्डित'** संज्ञा को प्राप्त होवे॥६॥

जहाँ ऐसे-ऐसे सजन स्त्री-पुरुष पढ़ानेवाले होते हैं, वहाँ विद्या, धर्म और उत्तमाचार की वृद्धि होकर, प्रतिदिन आनन्द ही बढ़ता रहता है।

[मूढ़ के लक्षण]

पढ़ाने में अयोग्य [अध्यापक] और मूर्ख के लक्षण—

अश्रुतश्च समुन्नद्धो दरिद्रश्च महामनाः।
अर्थांश्चाऽकर्मणा प्रेप्सुर्मूढ इत्युच्यते बुधैः॥१॥
अनाहूतः प्रविशति ह्यपृष्टो बहु भाषते।
अविश्वस्ते विश्वसिति मूढचेता नराधमः॥२॥

ये श्लोक भी महाभारत, उद्योगपर्व, विदुरप्रजागर के हैं [अध्याय ३३ । ३०, ३६]।

अर्थ—जिसने कोई शास्त्र न पढ़ा-न सुना, [और] अतीव घमण्डी, दरिद्र होकर बड़े- बड़े मनोरथ करनेहारा, विना कर्म से पदार्थों की प्राप्ति की इच्छा करनेवाला हो, उसी को बुद्धिमान् लोग 'मूढ़' कहते हैं॥१॥

जो विना बुलाये सभा वा किसी के घर में प्रविष्ट हो, उच्च आसन पर बैठना चाहे, विना पूछे सभा में बहुत-सा बके, विश्वास के अयोग्य वस्तु वा मनुष्य में विश्वास करे, वही 'मूढ़' और सब मनुष्यों में 'नीच मनुष्य' कहाता है॥२॥

जहां ऐसे पुरुष अध्यापक, उपदेशक और गुरु माननीय होते हैं, वहां अविद्या, अधर्म, असभ्यता, कलह, विरोध और फूट बढ़के दुःख ही बढ़ता जाता है।

[विद्यार्थियों के सात दोष]

अब विद्यार्थियों के लक्षण—

आलस्यं मदमोहौ च चापलं गोष्ठिरेव च।
स्तब्धता चाभिमानित्वं तथाऽत्यागित्वमेव च।
एते वै सप्त दोषाः स्युः सदा विद्यार्थिनां मताः॥१॥
सुखार्थिनः कुतो विद्या नास्ति विद्यार्थिनः सुखम्।
सुखार्थी वा त्यजेद्विद्यां विद्यार्थी वा त्यजेत्सुखम्॥२॥

ये भी [महाभारत] विदुरप्रजागर के श्लोक हैं [अध्याय ४० । ५, ६]।

(आलस्यम्) शरीर और बुद्धि में जड़ता, **नशा-मोह**=किसी वस्तु में फसावट, चपलता, और इधर-उधर की व्यर्थ कथा करना-सुनना, पढ़ते-पढ़ाते रुक जाना, अभिमानी, अत्यागी होना, ये सात दोष विद्यार्थियों में होते हैं॥१॥

जो ऐसे हैं उनको विद्या कभी नहीं आती।
सुख भोगने की इच्छा करनेवाले को विद्या कहां? और विद्या पढ़नेवाले को सुख कहां? इसलिये विषयसुखार्थी विद्या को और विद्यार्थी विषयसुख को छोड़ दे। ऐसे किये विना विद्या कभी नहीं हो सकती॥२॥

[विद्या किसे प्राप्त होती है?]

और ऐसे को विद्या होती है—

सत्ये रतानां सततं दान्तानामूर्ध्वरेतसाम्।
ब्रह्मचर्यं दहेद्राजन् सर्वपापान्युपासितम्॥१॥

[महाभारत, अनुशासन पर्व अ० ७५, श्लोक ३७-३८]

जो सदा सत्याचार में प्रवृत्त, जितेन्द्रिय [हों] और जिनका वीर्य अधःस्खलित कभी न हो, उन्हीं का ब्रह्मचर्य सच्चा [है] और वे ही विद्वान् होते हैं॥१॥

[अध्यापक और विद्यार्थियों के कर्त्तव्य]

इसलिये शुभलक्षणयुक्त, अध्यापकों और विद्यार्थियों को होना चाहिये। अध्यापक लोग ऐसा यत्न किया करें, जिससे विद्यार्थी लोग सत्यवादी,

सत्यमानी, सत्यकारी, सभ्य, जितेन्द्रिय [और] सुशीलतादि शुभगुणयुक्त [होकर] शरीर और आत्मा का पूर्ण बल बढ़ाके समग्र वेदादि-शास्त्रों में विद्वान् हों। सदा उनकी कुचेष्टा छुड़ाने [में] और विद्या बढ़ाने में चेष्टा किया करें और विद्यार्थी लोग सदा जितेन्द्रिय, शान्त, पढ़ानेहारों में प्रिय, विचारशील, परिश्रमी होकर ऐसा पुरुषार्थ करें, जिससे पूर्ण विद्या, पूर्ण आयु, पूर्ण धर्मात्मता [बढ़ाना] और पुरुषार्थ करना आ जाय, इत्यादि ब्राह्मण-वर्णस्थों के काम हैं।

[क्षत्रिय और वैश्य के कर्म]

क्षत्रियों के कर्म राजधर्म में कहेंगे।

जो **वैश्य** हों, वे ब्रह्मचर्यादि से **'वेदादि-विद्या'** पढ़, विवाह करके, **नाना** देशों की भाषायें, नाना प्रकार के व्यापार की रीति, उनके भाव जानना; बेचना-खरीदना, द्वीप-द्वीपान्तरों में लाभार्थ जाना-आना, लाभार्थ काम का आरम्भ करना, पशुपालन और खेती की उन्नति चतुराई से करनी-करानी, धन को बढ़ाना, **विद्या और धर्म की उन्नति में व्यय करना,** सत्यवादी, निष्कपटी होकर सत्यता से सब व्यापार करना [आदि करें]। सब वस्तुओं की रक्षा ऐसे करनी, जिससे कोई नष्ट न होने पावे।

[शूद्र के कर्म]

शूद्र सब सेवाओं में चतुर, **'पाकविद्या'** में निपुण [हो], अतिप्रेम से द्विजों की सेवा और उन्हीं से अपनी उपजीविका करे। **और द्विज-लोग इसके खान-पान, वस्त्र, स्थान, विवाहादि में जो कुछ व्यय हो, सब कुछ देवें, अथवा मासिक कर देवें।**

[चारों वर्णों के पारस्परिक कर्त्तव्य]

चारों वर्ण परस्पर प्रीति, उपकार, सज्जनता, सुख-दुःख, हानि-लाभ में ऐकमत्य रहकर राज्य और प्रजा की उन्नति में तन-मन-धन व्यय करते रहैं।

[स्त्री-पुरुष चिरकाल तक दूर-दूर न रहें]

स्त्री और पुरुष का वियोग कभी न होना चाहिये। क्योंकि—

पानं दुर्जनसंसर्गः पत्या च विरहोऽटनम्।
स्वप्नोऽन्यगेहवासश्च नारीसन्दूषणानि षट्॥१॥

[मनु० ९।१३]

मद्य, भांग आदि मादक द्रव्यों का पीना; दुष्ट पुरुषों का संग; पति से वियोग; अकेली जहां-तहां व्यर्थ, पाखण्डी आदि के दर्शन-मिस से फिरती रहना और पराये घर में शयन वा वास करना; ये छः स्त्री को दूषित करनेवाले दुर्गुण हैं; **और ये पुरुषों के भी हैं।**

पति और स्त्री का वियोग दो प्रकार का होता है—[प्रथम], कहीं कार्यार्थ देशान्तर में जाना; और दूसरा, मृत्यु से वियोग होना। इनमें से प्रथम का उपाय यही है कि दूर देश में यात्रार्थ जावे तो स्त्री को भी साथ रक्खे। इसका प्रयोजन यह है कि बहुत समय तक वियोग न रहना चाहिये।

[बहु-विवाह-सम्बन्धी विचार]

प्रश्न—स्त्री और पुरुष के बहु-विवाह होने योग्य हैं वा नहीं?

उत्तर—युगपत् न अर्थात् एक समय में नहीं।

प्रश्न—क्या समयान्तर में अनेक विवाह भी होने चाहियें?

उत्तर—हां, जैसे—

या स्त्री त्वक्षतयोनिः स्याद् गतप्रत्यागतापि वा।
पौनर्भवेन भर्त्रा सा पुनः संस्कारमर्हति॥१॥

[मनु० ९ । १७६]

जिस स्त्री वा पुरुष का पाणिग्रहणसंस्कार-मात्र हुआ हो और संयोग न हुआ हो अर्थात् अक्षतयोनि स्त्री [और] अक्षतवीर्य पुरुष हो तो उस स्त्री वा पुरुष का अन्य पुरुष वा स्त्री से पुनर्विवाह होना चाहिये। और शूद्रवर्ण में चाहे कैसा ही हो, पुनर्विवाह हो सकता है, किन्तु ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य वर्णों में क्षतयोनि स्त्री [और] क्षतवीर्य पुरुष का पुनर्विवाह न होना चाहिये।

[पुनर्विवाह में दोष और उससे बचने के उपाय]

प्रश्न—पुनर्विवाह में क्या दोष हैं?

उत्तर—(पहला) स्त्री-पुरुष में प्रेम न्यून होना। क्योंकि जब चाहे तब पुरुष को स्त्री और स्त्री को पुरुष छोड़ कर दूसरे के साथ सम्बन्ध कर ले।

(दूसरा) जब स्त्री वा पुरुष, पति [वा] स्त्री के मरने के पश्चात् दूसरा विवाह करना चाहेंगे, तब पूर्व-पति वा प्रथम-स्त्री के पदार्थों को उड़ा ले जाना और उनके कुटुम्बवालों का उनसे झगड़ा करना।

(तीसरा) बहुत-से भद्रकुलों का नाम वा चिह्न भी न रहकर, उनके पदार्थ छिन्न- भिन्न हो जाना।

(चौथा) पातिव्रत्य और स्त्रीव्रत धर्म नष्ट होना।

इत्यादि दोषों के अर्थ द्विजों में पुनर्विवाह वा अनेक विवाह कभी न होने चाहियें।

प्रश्न—जब वंशच्छेदन हो जायगा, तब उसका कुल भी नष्ट हो जायगा। और स्त्री-पुरुष व्याभिचारादि कर्म करके गर्भपातनादि बहुत-से दुष्ट कर्म करेंगे। इसलिये पुनर्विवाह का होना अच्छा है।

उत्तर—नहीं; क्योंकि जो स्त्री-पुरुष ब्रह्मचर्य में स्थित रहना चाहें, तो कोई भी उपद्रव न होगा। और जो कुल की परम्परा रखने के लिये कोई स्वजाति का लड़का गोद ले लेंगे, उससे कुल चलेगा और व्यभिचार भी न होगा। **और जो ब्रह्मचर्य न रख सकें तो नियोग करके सन्तानोत्पत्ति कर लें।**

[पुनर्विवाह और नियोग में भेद]

प्रश्न—पुनर्विवाह और नियोग में क्या भेद है?

उत्तर—(पहला) जैसे विवाह करने में कन्या अपने पिता का घर छोड़ पति के घर को प्राप्त होती है और पिता से विशेष सम्बन्ध नहीं रहता; किन्तु विधवा स्त्री उसी विवाहित पति के घर में रहती है।

(दूसरा) उसी विवाहिता स्त्री के लड़के उसी विवाहित पति के दायभागी होते हैं। और विधवा स्त्री के लड़के वीर्यदाता के न पुत्र कहलाते, न उसका गोत्र होता, और न उसका स्वत्व उन लड़कों पर रहता [है], किन्तु वे मृतपति के पुत्र बजते, उसी का गोत्र रहता और उसी के पदार्थों के दायभागी होकर उसी के घर में रहते हैं।

(तीसरा) विवाहित स्त्री-पुरुष को परस्पर-सेवा और पालन करना आवश्यक है, और नियुक्त स्त्री-पुरुष का [ऐसा] कुछ भी सम्बन्ध नहीं रहता।

(चौथा) विवाहित स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध मरणपर्यन्त रहता है और नियुक्त स्त्री-पुरुष का कार्यसिद्धि के पश्चात् छूट जाता है।

(पांचवां) विवाहित स्त्री-पुरुष आपस में गृह के कार्यों की सिद्धि करने में यत्न किया करते हैं और नियुक्त स्त्री-पुरुष अपने-अपने घर के काम किया करते हैं।

[विवाह और नियोग के नियमों में भेद]

प्रश्न—विवाह और नियोग के नियम एक-से हैं, वा पृथक्-पृथक्?

उत्तर—कुछ थोड़ा-सा भेद है। जितने पूर्व कह आये, और दूसरा यह कि विवाहित स्त्री-पुरुष एक पति और एक ही स्त्री मिलके दश सन्तान तक उत्पन्न कर सकते हैं और नियुक्त स्त्री-पुरुष दो वा चार से अधिक सन्तानोत्पत्ति नहीं कर सकते। अर्थात् जैसे कुमार-कुमारी का ही विवाह होता है, वैसे जिसकी स्त्री वा पुरुष मर जाता है, उन्हीं का नियोग होता है, कुमार-कुमारी का नहीं। जैसे विवाहित स्त्री-पुरुष सदा सङ्ग में रहते हैं, वैसे नियुक्त स्त्री-पुरुष का व्यवहार नहीं, किन्तु विना ऋतुदान के समय एकत्र न हों। जो स्त्री अपने लिये नियोग करे, तो जब दूसरा गर्भ रहै, उसी दिन से स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध छूट जाय। और जो पुरुष अपने लिये करे तो भी दूसरा गर्भ रहने से सम्बन्ध छूट जाय। परन्तु वही नियुक्त स्त्री दो-तीन वर्ष पर्यन्त उन सन्तानों का पालन करके नियुक्त पुरुष को दे देवे। ऐसे एक विधवा स्त्री दो अपने लिये और दो-दो अन्य चार नियुक्त पुरुषों के लिये सन्तान कर सकती है और एक मृतस्त्रीक-पुरुष भी दो अपने लिये और दो-दो अन्य-अन्य चार विधवाओं के लिये सन्तान उत्पन्न कर सकता है। ऐसे मिलकर दश-दश सन्तानोत्पत्ति की आज्ञा वेद में है। जैसे—

[दश सन्तानोत्पत्ति तक की वेद में आज्ञा]

इमां त्वमिंन्द्र मीढ्वः सुपुत्रां सुभगां कृणु।
दशांस्यां पुत्राना धेंहि पतिंमेकादशं कृधि॥

ऋ०, म० १० । सूक्त ८५ । मं० ४५ ॥

हे **(मीढ्वः, इन्द्र०)** वीर्यसेचन में समर्थ ऐश्वर्ययुक्त पुरुष ! तू इस विवाहित स्त्री वा विधवा स्त्रियों को श्रेष्ठ पुत्र और सौभाग्य-युक्त कर। इस विवाहित स्त्री में दश पुत्र उत्पन्न कर और ग्यारहवीं स्त्री को मान। हे स्त्रि ! तू भी विवाहित पुरुष वा नियुक्त पुरुषों से दश सन्तान उत्पन्न कर और ग्यारहवाँ पति को समझ।

वेद की इस आज्ञा से ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यवर्णस्थ स्त्री और पुरुष दश-दश सन्तान से अधिक उत्पन्न न करें; क्योंकि अधिक करने से सन्तान निर्बल, निर्बुद्धि, अल्पायु होते हैं और स्त्री तथा पुरुष भी निर्बल, अल्पायु और रोगी होकर वृद्धावस्था में बहुत-से दुःख पाते हैं।

[नियोग व्यभिचार के समान नहीं?]

प्रश्न—यह नियोग की बात व्यभिचार के समान दीखती है।

उत्तर—जैसे विना विवाहितों का व्यभिचार होता है, वैसे विना नियुक्तों का व्यभिचार कहाता है। इससे यह सिद्ध हआ कि जैसे नियम से विवाह होने पर व्यभिचार नहीं कहाता, तो नियमपूर्वक नियोग होने से व्यभिचार न कहावेगा। जैसे दूसरे की लड़की का दूसरे के लड़के के साथ शास्त्रोक्त विधिपूर्वक विवाह होने पर समागम में

व्यभिचार, पाप वा लज्जा नहीं होती, वैसे ही वेदशास्त्रोक्त नियोग में व्यभिचार, पाप, वा लज्जा न माननी चाहिये।

प्रश्न—है तो ठीक, परन्तु यह वेश्या के सदृश कर्म दीखता है।

उत्तर—नहीं, क्योंकि वेश्या के समागम में कोई निश्चित पुरुष वा कोई नियम नहीं है और नियोग में विवाह के समान नियम हैं। जैसे दूसरे को लड़की देने, दूसरे के साथ समागम करने में विवाहपूर्वक लज्जा नहीं होती, वैसे ही नियोग में भी न होनी चाहिये। क्या जो व्यभिचारी पुरुष वा स्त्री होते हैं, वे विवाह होने पर भी कुकर्म से बचते हैं?

प्रश्न—हमको नियोग की बात में पाप मालूम पड़ता है।

उत्तर—जो नियोग की बात में पाप मानते हो तो विवाह में पाप क्यों नहीं मानते? पाप तो नियोग के रोकने में है। क्योंकि **ईश्वर के सृष्टिक्रमानुकूल स्त्री-पुरुष के स्वाभाविक व्यवहार रुक ही नहीं सकते; सिवाय वैराग्यवान्, पूर्णविद्वान् योगियों के। क्या गर्भपातनरूप भ्रूणहत्या और विधवा स्त्रियों और मृतस्त्रीक-पुरुषों के महासन्ताप को पाप नहीं गिनते हो?** क्योंकि जब तक वे युवावस्था में हैं, [तब तक] मन में सन्तानोत्पत्ति और विषय की चाहना होनेवालों को, किसी राजव्यवहार वा जातिव्यवहार से रुकावट होने से, गुप्त-गुप्त कुकर्म बुरी चाल से होते रहते हैं। **इस व्यभिचार और कुकर्म के रोकने का एक**

यही श्रेष्ठ उपाय है कि जो जितेन्द्रिय रह सकें, वे विवाह वा नियोग भी न करें तो ठीक है। परन्तु जो ऐसे नहीं हैं, उनका विवाह और आपत्काल में नियोग अवश्य होना चाहिये। इससे व्यभिचार का न्यून होना, प्रेम से उत्तम सन्तान होकर मनुष्यों की वृद्धि होना सम्भव है, और गर्भहत्या सर्वथा छूट जाती है। **नीच पुरुषों से उत्तम स्त्रियों और वेश्यादि नीच स्त्रियों से उत्तम पुरुषों का व्यभिचाररूप कुकर्म, उत्तम कुल में कलंक, वंश का उच्छेद, स्त्री-पुरुषों का सन्ताप और गर्भहत्यादि कुकर्म विवाह और नियोग से निवृत्त होते हैं, इसलिये नियोग करना चाहिये।**

[नियोग के नियम]

प्रश्न—नियोग में क्या-क्या बातें होनी चाहियें?

उत्तर—जैसे प्रसिद्धि से विवाह [होता है], वैसे ही प्रसिद्धि से नियोग [होना चाहिये]। जैसे विवाह में भद्र पुरुषों की अनुमति और कन्या-वर की प्रसन्नता होती है, वैसे नियोग में भी होती है। अर्थात् जब स्त्री- पुरुष का नियोग होना हो, तब अपने कुटुम्ब में पुरुषों-स्त्रियों के सामने [प्रकट करें कि] **"हम दोनों नियोग सन्तानोत्पत्ति के लिये करते हैं। जब नियोग का नियम पूरा होगा, तब हम संयोग न करेंगे। जो अन्यथा करें तो पापी, और जाति वा राज के दण्डनीय हों। महीने-महीने में एकवार गर्भाधान का कर्म करेंगे, गर्भ रहे पश्चात् एक वर्ष पर्यन्त पृथक् रहेंगे।"**

प्रश्न—नियोग अपने वर्ण में होना चाहिये वा अन्य वर्णस्थ के साथ भी?

उत्तर—अपने वर्ण में वा अपने से उत्तमवर्णस्थ पुरुष के साथ। अर्थात् वैश्या स्त्री वैश्य, क्षत्रिय और ब्राह्मण के साथ, क्षत्रिया क्षत्रिय और ब्राह्मण के साथ, ब्राह्मणी ब्राह्मण के साथ नियोग कर सकती है। इसका तात्पर्य यह है कि वीर्य सम वा उत्तम वर्ण का [होना] चाहिये, अपने से नीचे के वर्ण का नहीं। **स्त्री और पुरुष की सृष्टि का यही प्रयोजन है कि धर्म से अर्थात् वेदोक्त रीति से विवाह वा नियोग से सन्तानोत्पत्ति करना।**

[नियोग की क्या आवश्यकता है?]

प्रश्न—पुरुष को नियोग करने की क्या आवश्यकता है, क्योंकि वह दूसरा विवाह कर लेगा।

उत्तर—हम लिख आये हैं [कि] द्विजों में स्त्री और पुरुष का एक वार ही विवाह होना वेदादि-शास्त्रों में लिखा है, द्वितीय वार नहीं। कुमार और कुमारी का ही विवाह होने में न्याय [है], और विधवा स्त्री के साथ कुमार पुरुष और कुमारी स्त्री के साथ मृतस्त्रीक-पुरुष का विवाह होने में अन्याय अर्थात् अधर्म है। जैसे विधवा स्त्री के साथ कुमार पुरुष विवाह नहीं किया चाहता, वैसे ही विवाह और स्त्री से समागम किये हुए पुरुष के साथ विवाह करने की इच्छा कुमारी भी न करेगी। जब विवाह किये हुए पुरुष का कोई कुमारी कन्या [ग्रहण न करेगी] और विधवा स्त्री का ग्रहण कोई कुमार पुरुष न करेगा, तब पुरुष और स्त्री को नियोग करने

की आवश्यकता होगी। और यही धर्म है कि जैसे के साथ वैसे का ही सम्बन्ध होना चाहिये।

[नियोग में प्रमाण]

प्रश्न—जैसे विवाह में वेदादि-शास्त्रों का प्रमाण है, वैसे नियोग में प्रमाण है वा नहीं?

उत्तर—इस विषय में बहुत प्रमाण हैं, देखो और सुनो—

कुहं स्विद्दोषा कुह वस्तोंरश्विना कुहांभिपित्वं कंरतः कुहोंषतुः।
को वां शयुत्रा विधवेंव देवरं मर्यं न योषां कृणुते सधस्थ आ॥१॥

ऋ०, म० १० । सूक्त ४० । मं० २॥

उदींर्ष्व नार्यभि जींवलोकं गतासुंमेतमुपं शेष एहिं।
हस्तग्राभस्यं दिधिषोस्तवेदं पत्युंर्जनित्वमभि सं बंभूथ॥२॥

ऋ०, म० १० । सूक्त १८ । मं० ८॥

हे **(अश्विना)** स्त्री-पुरुषो! जैसे **(देवरं विधवेव)** देवर को विधवा और **(योषा मर्यं न)** विवाहिता स्त्री अपने पति को **(सधस्थे)** समान स्थान शय्या में एकत्र होकर सन्तानों को **(आ कृणुते)** सब प्रकार से उत्पन्न करती है, वैसे तुम दोनों स्त्री पुरुष **(कुहस्विद्दोषा)** कहां रात्रि और **(कुह वस्तः)** कहां दिन में वसे थे? **(कुहाभिपित्वम्)** कहां पदार्थों की प्राप्ति **(करतः)** की? और **(कुहोषतुः)** किस समय कहां वास करते थे? **(को वां शयुत्रा)** तुम्हारा शयनस्थान कहां है? तथा कौन वा किस देश के रहने

वाले हो? इससे यह सिद्ध हुआ कि **देश-विदेश में स्त्री-पुरुष संग में ही रहैं।** और विवाहित पति के समान नियुक्त पति को ग्रहण करके विधवा स्त्री भी सन्तानोत्पत्ति कर लेवे॥१॥

['देवर' शब्द का अर्थ]

प्रश्न—जिस विधवा का देवर अर्थात् पति का छोटा भाई न हो तो नियोग किसके साथ करे?

उत्तर—देवर के साथ। परन्तु देवर शब्द का अर्थ जैसा तुम समझे हो, वैसा नहीं [है]। देखो, **'निरुक्त'** में—

"देवरः कस्माद् द्वितीयो वर उच्यते॥"

निरुक्त, अ० ३। खण्ड १५॥

'देवर' उसको कहते हैं कि जो विधवा का दूसरा पति होता है, चाहे छोटा भाई वा बड़ा भाई, अथवा अपने वर्ण वा अपने से उत्तम वर्ण वाला हो; जिससे नियोग करे, उसी का नाम **'देवर'** है॥१॥

हे **(नारि)** विधवे! तू **(एतं गतासुम्)** इस मरे हुए पति की आशा छोड़के **(शेषे)** बाकी पुरुषों में से **(अभिजीवलोकम्)** जीते हुए दूसरे पति को **(उपैहि)** प्राप्त हो और **(उदीर्ष्व)** इस बात का विचार और निश्चय रख कि जो **(हस्तग्राभस्य दिधिषोः)** तुझ विधवा के पुनः पाणिग्रहण करनेवाले नियुक्त पति के सम्बन्ध के लिये नियोग होगा तो **(इदम्)** यह **(जनित्वम्)** जना हुआ बालक उसी नियुक्त **(पत्युः)** पति का होगा और

जो तू अपने लिये नियोग करेगी तो यह सन्तान **(तव)** तेरा होगा; ऐसे निश्चययुक्त **(अभि सम् बभूथ)** हो, और नियुक्त पुरुष भी इसी नियम का पालन करे॥२॥

अदेंवृघ्न्यपंतिघ्नीहैधिं शिवा पशुभ्यंः सुयामां सुवर्चाः।
प्रजावंती वीरसूर्देवृकांमा स्योनेमग्निं गार्हंपत्यं सपर्य॥

अथर्व०, कां० १४। [प्रपा० २९ सूक्त २।] अनु० २। मं० १८॥

हे **(अपतिघ्नि-अदेवृघ्नि)** पति और देवर को दुःख न देनेवाली स्त्रि! तू **(इह)** इस गृहाश्रम में, **(पशुभ्यः)** पशुओं के लिये, **(शिवा)** कल्याण करनेहारी, **(सुयमा)** अच्छे प्रकार धर्मनियम में चलने [वाली] **(सुवर्चाः)** रूप और सर्वशास्त्रविद्यायुक्त, **(प्रजावती)** उत्तम-पुत्र-पौत्रादि-सहित, **(वीरसूः)** शूरवीर पुत्रों को जनने, **(देवृकामा)** देवर की कामना करने **(स्योना)** और सुख देने हारी, पति वा देवर को, **(एधि)** प्राप्त होके, **(इमम्)** इस, **(गार्हपत्यम्)** गृहस्थसम्बन्धी, **(अग्निम्)** अग्निहोत्र को, **(सपर्य)** सेवन किया कर।

"तामनेन विधानेन निजो विन्देत देवरः॥"

मनु० [९।६९]

जो अक्षतयोनि स्त्री विधवा हो जाय, तो पति का निज छोटा भाई भी उससे विवाह कर सकता है।

[नियोग की सीमा]

प्रश्न—एक स्त्री वा पुरुष कितने नियोग कर सकते हैं? और विवाहित [एवं] नियुक्त पतियों का नाम क्या होता है?

उत्तर— सोमः प्रथमो विविदे गन्धर्वो विविद उत्तरः।
तृतीयो अग्निष्टे पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजाः॥

ऋ०, म० १० । सूक्त ८५ । मं० ४०॥

हे स्त्रि! जो **(ते)** तेरा **(प्रथमः)** पहिला विवाहित **(पतिः)** पति तुझको **(विविदे)** प्राप्त होता है, उसका नाम **(सोमः)** सुकुमारतादि गुणयुक्त होने से 'सोम'; जो दूसरा नियोग होने से **(विविदे)** प्राप्त होता है, वह **(गन्धर्वः)** स्त्री से [दूसरा] सम्भोग करने से 'गन्धर्व'; जो **(तृतीय उत्तरः)** दो के पश्चात् तीसरा पति होता है, वह **(अग्निः)** अत्युष्णतायुक्त होने से 'अग्नि' संज्ञक; और जो **(ते)** तेरे **(तुरीयः)** चौथे से लेके ग्यारहवें [पुरुष के रूप में अपने पति को मानने] तक नियोग में पति होते हैं, वे **(मनुष्यजाः)** 'मनुष्य' नाम से कहाते हैं। जैसे **(इमां त्वमिन्द्र०)** इस मन्त्र में [निर्देश है कि] ग्यारहवें पुरुष [के रूप में अपने पति को मानने] तक स्त्री नियोग कर सकती है, वैसे पुरुष भी ग्यारहवीं स्त्री [के रूप में अपनी पत्नी को मानने] तक नियोग कर सकता है।

प्रश्न—'एकादश' शब्द से [अपने विवाहित पति से उत्पन्न] दश पुत्र और ग्यारहवां [अपने] पति को क्यों न गिनें?

उत्तर—जो ऐसा अर्थ करोगे तो **'विधवेव देवरम्'** [ऋग्० १०। ४०। २] **'देवरः कस्माद् द्वितीयो वर उच्यते'** [निरुक्त ३।१५] **'अदेवृघ्नि'** [अथर्व० १४ । २ । १८] और **'गन्धर्वो विविद उत्तरः'** [ऋग्० १० । ८५ । ४०] इत्यादि वेदप्रमाणों से विरुद्धार्थ होगा; क्योंकि तुम्हारे अर्थ से [तो] दूसरा पति ही प्राप्त नहीं हो सकेगा [जबकि इनमें दूसरे, तीसरे, चौथे नियुक्त पति का स्पष्ट उल्लेख है]।

[नियोग आपद्धर्म है]

देवराद्वा सपिण्डाद्वा स्त्रिया सम्यङ्नियुक्तया।
प्रजेप्सिताधिगन्तव्या सन्तानस्य परिक्षये॥१॥
ज्येष्ठो यवीयसो भार्यां यवीयान्वाग्रजस्त्रियम्।
पतितौ भवतो गत्वा नियुक्तावप्यनापदि॥२॥
औरसः क्षेत्रजश्चैव०॥३॥

मनु० [९।५९, ५८, १५९]

इत्यादि मनु जी ने लिखा है कि **(सपिण्ड)** अर्थात् पति की छः पीढ़ियों में पति का छोटा वा बड़ा भाई अथवा स्ववर्णस्थ तथा अपने से उत्तम वर्णस्थ पुरुष से विधवा स्त्री का नियोग होना चाहिये। परन्तु **जो वह मृतस्त्रीक-पुरुष और विधवा स्त्री सन्तानोत्पत्ति की इच्छा करती हो, तो नियोग होना उचित है। और जब सन्तान का सर्वथा क्षय हो, तब नियोग होवे॥१॥**

जो आपत्काल के विना अर्थात् सन्तानों के होने की इच्छा न होने पर, बड़े भाई की स्त्री से छोटे का और छोटे की स्त्री से बड़े भाई का नियोग होकर

सन्तानोत्पत्ति हो जाने पर भी, पुनः वे नियुक्त भी आपस में समागम करें तो पतित हो जायें; अर्थात् एक नियोग में दूसरे पुत्र के गर्भ रहने तक नियोग की अवधि है, इसके पश्चात् समागम न करें॥२॥

और जो दोनों के लिये नियोग हुआ हो, तो चौथे गर्भ तक, अर्थात् पूर्वोक्त रीति से दश सन्तान तक हो सकते हैं। पश्चात् विषयासक्ति गिनी जाती है, इससे वे पतित गिने जाते हैं। और जो विवाहित स्त्री पुरुष भी दशवें गर्भ से अधिक समागम करें, तो कामी और निन्दित होते हैं। अर्थात् **विवाह वा नियोग सन्तानों के ही अर्थ किये जाते हैं, पशुवत् कामक्रीड़ा के लिये नहीं।**

[पति के जीवित रहते भी नियोग हो सकता है]

प्रश्न—नियोग मरे पीछे ही होता है वा पति के जीते भी?

उत्तर—जीते भी होता है—

“अ॒न्यमिंच्छस्व सुभगे॒ पतिं॒ मत्॥"

ऋ०, म० १० । सूक्त १० । [मन्त्र १०]॥

जब पति सन्तानोत्पत्ति में असमर्थ होवे, तब अपनी स्त्री को आज्ञा देवे कि हे 'सुभगे! =सौभाग्य की इच्छा करनेहारी स्त्री तू **(मत्)** मुझ से **(अन्यम्)** दूसरे पति की **(इच्छस्व)** इच्छा कर, क्योंकि अब मुझसे सन्तानोत्पत्ति न हो सकेगी।' तब स्त्री दूसरे से नियोग करके सन्तानोत्पत्ति करे, परन्तु उस विवाहित महाशय पति की सेवा में तत्पर

रहै। वैसे ही स्त्री भी जब रोगादि दोषों से ग्रस्त होकर सन्तानोत्पत्ति में असमर्थ होवे, तब अपने पति को आज्ञा देवे कि हे स्वामी! आप मुझसे सन्तानोत्पत्ति की इच्छा छोड़के, किसी दूसरी विधवा स्त्री से नियोग करके सन्तानोत्पत्ति कीजिये।

[नियोग में इतिहास की साक्षी]

जैसे कि पाण्डु राजा की स्त्री कुन्ती और माद्री आदि ने किया। और जैसे व्यास जी ने चित्राङ्गद और विचित्रवीर्य के मर जाने के पश्चात् उस अपने भाई [विचित्रवीर्य] की स्त्रियों से नियोग करके अम्बिका में धृतराष्ट्र और अम्बालिका में पाण्डु और दासी में विदुर की उत्पत्ति की, इत्यादि इतिहास भी इस बात में प्रमाण हैं।

प्रोषितो धर्मकार्यार्थं प्रतीक्ष्योऽष्टौ नरः समाः।
विद्यार्थं षड् यशोऽर्थं वा कामार्थं त्रींस्तु वत्सरान्॥१॥
वन्ध्याष्टमेऽधिवेद्याब्दे दशमे तु मृतप्रजा।
एकादशे स्त्रीजननी सद्यस्त्वप्रियवादिनी॥२॥

मनु० [९ । ७६, ८१]

विवाहित स्त्री, जो विवाहित पति धर्म के अर्थ परदेश गया हो तो आठ वर्ष, विद्या और कीर्ति के लिये गया हो तो छः, और धनादि कामना के लिये गया हो तो तीन वर्ष तक वाट देखके, पश्चात् नियोग करके सन्तानोत्पत्ति कर ले। जब विवाहित पति आवे, तब नियुक्त पति छूट जावे॥१॥

वैसे ही पुरुष के लिये भी नियम है। जब विवाह से आठवें वर्ष तक स्त्री को गर्भ न रहे, वन्ध्या हो तो आठवें, सन्तान होकर मर जायें तो दशवें, जब-जब हो तब-तब कन्या हो और पुत्र न होवे तो ग्यारहवें, और जो स्त्री अप्रिय बोलने वाली होवे, तो तुरन्त उसको छोड़के दूसरी स्त्री से नियोग करके, सन्तानोत्पत्ति कर लेवे। वैसे ही जो पुरुष अत्यन्त दुःखदायक हो तो स्त्री को उचित है कि तुरन्त उसको छोड़के दूसरे पुरुष से नियोग कर सन्तानोत्पत्ति करके, उसी विवाहित पति के दायभागी सन्तान कर लेवे॥२॥

इत्यादि प्रमाण और युक्तियों से स्वयंवर विवाह और नियोग से अपने-अपने कुल की उन्नति करें।

जैसे 'औरस' अर्थात् विवाहित पति से उत्पन्न हुआ पुत्र, पिता के पदार्थों का स्वामी होता है, वैसे ही 'क्षेत्रज' अर्थात् नियोग से उत्पन्न हुए पुत्र भी मृतपिता के दायभागी होते हैं।

[रज वीर्य को अमूल्य समझें]

अब इस पर स्त्री और पुरुष को ध्यान रखना चाहिये कि वीर्य और रज को अमूल्य समझें। जो कोई इस अमूल्य पदार्थ को परस्त्री, वेश्या वा दुष्ट पुरुषों के संग में खोते हैं, वे महामूर्ख कहाते हैं; क्योंकि किसान वा माली मूर्ख होकर भी, अपने खेत वा वाटिका के विना, अन्यत्र बीज नहीं बोते। जो कि साधारण बीज का और मूर्ख का यह वर्त्तमान है, तो जो [शिक्षित होकर भी] सर्वोत्तम मनुष्यशरीररूप वृक्ष के बीज को कुक्षेत्र वा वेश्या में

बोता है, वह महामूर्ख कहाता है, क्योंकि उसका फल उसको नहीं मिलता। और

'आत्मा वै जायते पुत्रः'

यह ब्राह्मणग्रन्थ का वचन है।

[तुलना—शत० ब्रा०, कां० १४। प्रपा० ७ । ब्रा० ५। कं० २६]

अङ्गांदङ्गात्सम्भंवसि हृदयादधिं जायसे।
आत्मासि पुत्र मा मृथाः स जींव शरदः शतम्॥१॥

यह सामवेद [के ब्राह्मण] का मन्त्र है॥

[सामब्रा०, मन्त्रपर्व, प्रपा० १ । खं० ५। कं० १७ का पूर्वार्द्ध और १८ का उत्तरार्द्ध]

हे पुत्र! तू अङ्ग-अङ्ग से उत्पन्न हुए वीर्य से और हृदय से उत्पन्न होता है, इसलिये तू मेरा आत्मा है, मुझसे पूर्व न मरना, किन्तु सौ वर्ष तक जी। जिससे ऐसे-ऐसे महात्मा महाशयों का शरीर उत्पन्न होता है, उसको वेश्यादि दुष्टक्षेत्र में बोना, वा दुष्टबीज अच्छे क्षेत्र में बुवाना, महापाप का काम है।

[विवाह आवश्यक कृत्य है]

प्रश्न—विवाह क्यों करना [चाहिये]? क्योंकि इससे स्त्री और पुरुष को बन्धन में पड़के बहुत संकोच करना और दुःख भोगना पड़ता है। इसलिये जिसके साथ [जब तक] जिसकी प्रीति हो तब तक वे मिले रहें, जब प्रीति छूट जाय तो छोड़ देवें।

उत्तर—यह पशु-पक्षियों का व्यवहार है, मनुष्यों का नहीं। जो मनुष्यों में विवाह का नियम न रहै, तो गृहाश्रम के अच्छे व्यवहार सब नष्ट-भ्रष्ट हो जायें। कोई किसी से भय वा लज्जा न करे। वृद्धावस्था में कोई किसी की सेवा भी नहीं करे और महाव्यभिचार बढकर सब रोगी, निर्बल और अल्पायु होकर शीघ्र-शीघ्र मर जायें। कोई किसी के पदार्थ का स्वामी वा दायभागी न हो सके और न किसी का किसी पदार्थ पर दीर्घकाल-पर्यन्त स्वत्व रहै, इत्यादि दोषों के निवारणार्थ विवाह अवश्य होना चाहिये।

प्रश्न—जब एक विवाह होगा, एक पुरुष की एक स्त्री और एक स्त्री का एक पुरुष रहेगा, तब स्त्री गर्भवती वा स्थिररोगिणी, अथवा पुरुष दीर्घरोगी हो और दोनों की युवावस्था हो; उनसे न रहा जाय, तो फिर क्या करें?

उत्तर—इसका प्रत्युत्तर वहां 'नियोग- विषय' में दे चुके हैं। और जब गर्भवती स्त्री से एक वर्ष पर्यन्त समागम न करने के समय में पुरुष से न रहा जाय, तो किसी विधवा से नियोग कर, उसके लिये पुत्रोत्पत्ति कर दे, परन्तु वेश्यागमन वा व्यभिचार कभी न करे।

[गृहस्थ के कुछ अन्य कर्त्तव्य]

जहाँ तक हो सके वहाँ तक, अप्राप्त वस्तु की इच्छा, प्राप्त का रक्षण और रक्षित की वृद्धि और बढ़े हुए धन का व्यय देशोपकार में किया करें। सब प्रकार के अर्थात् पूर्वोक्त रीति से अपने-अपने वर्णाश्रम के व्यवहारों को अत्युत्साह, प्रयत्न, तन-मन-धन से किया करें। **अपने**

माता, पिता, सास, श्वशुर की अत्यन्त शुश्रूषा किया करें। मित्र, पड़ोसी, राजा, विद्वान्, वैद्य और सत्पुरुषों से प्रीति रखें और दुष्टों से उपेक्षा रखके अर्थात् घृणा छोड़कर उनको सुधारने का प्रयत्न किया करें। जहां तक बने वहां तक, प्रेम से अपने सन्तानों को विद्वान् और सुशिक्षित करने-कराने में धनादि को लगावें। धर्म से सब व्यवहार करके मोक्ष का साधन भी किया करें कि जिसकी प्राप्ति से परमानन्द होवे। ऐसे श्लोकों को न मानें—

पतितोऽपि द्विजः श्रेष्ठः, न च शूद्रो जितेन्द्रियः।
निर्दुग्धा चापि गौः पूज्या न च दुग्धवती खरी॥१॥

[तुलना-भाषा पाराशरी अ०८। श्लो० ३३ ॥ पराशरस्मृति अ० ८। श्लो० ३२]

अश्वालम्भं गवालम्भं संन्यासं पलपैत्रिकम्।
देवराच्च सुतोत्पत्तिं कलौ पञ्च विवर्जयेत्॥२॥

[तुलना-पारस्कर गृह्यसू० कां०१। कं० ३ के गदाधर भाष्य में उद्धृत श्लोक से]

नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीबे च पतिते पतौ।
पञ्चस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते॥३॥

ये कपोलकल्पित पाराशरी के श्लोक हैं। [भाषा पाराशरी अ० ४। श्लो० ३०]

जो दुष्ट कर्मकारी द्विज को श्रेष्ठ, और श्रेष्ठ कर्मकारी शूद्र को नीच मानें तो इससे परे पक्षपात, अन्याय, अधर्म दूसरा अधिक कौन-सा

होगा? क्या जैसे दूध देनेवाली वा न देनेवाली गाय गोपालों को पालनीय होती है, वैसे कुंभार= (कुम्हार) आदि को गधी पालनीय नहीं होती? और यह दृष्टान्त भी विषम है, क्योंकि द्विज और शूद्र मनुष्य जाति, गाय और गधी भिन्न जाति हैं। कथञ्चित् पशु जाति से दृष्टान्त का एकदेश दार्ष्टान्त में मिल भी जावे, तो भी इसका आशय अयुक्त होने से यह श्लोक विद्वानों के द्वारा माननीय कभी नहीं हो सकता॥१॥

जब अश्वालम्भ अर्थात् घोड़े को मारके अथवा गाय को मारके होम करना ही वेदविहित नहीं है, तो उसका कलियुग में निषेध करना वेदविरुद्ध क्यों नहीं? जो कलियुग में इस नीच कर्म का निषेध माना जाय, तो त्रेता आदि में विधि आ जाय। तो इससे ऐसे दुष्ट काम का श्रेष्ठ युग में होना सर्वथा असंभव है। और जिस संन्यास का वेदादि में विधि है, उसका निषेध करना निर्मूल है। **जब मांस का निषेध है तो सर्वदा ही निषेध है।** जब देवर से पुत्रोत्पत्ति करनी वेदों में लिखी है तो यह श्लोककर्त्ता क्यों भूंषता है?॥२॥

यदि **(नष्टे)** अर्थात् पति किसी देश-देशान्तर को चला गया हो, [और] घर में स्त्री नियोग कर लेवे, उसी समय विवाहित पति आ-जाय, तो वह किसकी स्त्री हो? कोई कहे कि विवाहित पति की। हमने माना, परन्तु ऐसी व्यवस्था **'पाराशरी'** में तो नहीं लिखी। क्या स्त्री के पांच ही आपत् समय हैं ? रोगी पड़ा हो, लड़ाई हो गई हो, इत्यादि आपत्काल पाँच से भी अधिक हैं। इसलिये ऐसे-ऐसे श्लोकों को कभी न मानना चाहिये॥३॥

[वेदविरुद्ध वचन अमान्य हैं]

प्रश्न—क्यों जी! तुम पराशर मुनि के वचन को भी नहीं मानते?

उत्तर—चाहे किसी का वचन हो, परन्तु वेद के विरुद्ध होने से नहीं मानते। और यह तो पराशर का वचन भी नहीं है। क्योंकि जैसे **'ब्रह्मोवाच, वसिष्ठ उवाच, राम उवाच, शिव उवाच, देव्युवाच'** इत्यादि श्रेष्ठों का नाम लिखके ग्रन्थरचना इसलिये करते हैं कि सर्वमान्य के नाम से इन ग्रन्थों को सब संसार मान लेवे और हमारी पुष्कल जीविका होवे। **कुछ प्रक्षिप्त श्लोकों को छोड़के मनुस्मृति ही वेदानुकूल है, अन्य स्मृतियाँ नहीं।** ऐसे ही अन्य जालग्रन्थों की भी व्यवस्था समझ लो।

[गृहाश्रम की श्रेष्ठता]

प्रश्न—गृहाश्रम सबसे छोटा, वा बड़ा है?

उत्तर—अपने-अपने कर्मों में सब बड़े हैं। परन्तु—

यथा नदीनदाः सर्वे सागरे यान्ति संस्थितिम्।
तथैवाश्रमिणः सर्वे गृहस्थे यान्ति संस्थितिम्॥१॥
यथा वायुं समाश्रित्य वर्त्तन्ते सर्वजन्तवः।
तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्त्तन्ते सर्व आश्रमाः॥२॥
यस्मात्त्रयोऽप्याश्रमिणो दानेनान्नेन चान्वहम्।
गृहस्थेनैव धार्यन्ते तस्माज्ज्येष्ठाश्रमो गृही॥३॥
स संधार्यः प्रयत्नेन स्वर्गमक्षयमिच्छता।

सुखं चेहेच्छता नित्यं योऽधार्यो दुर्बलेन्द्रियैः॥४॥

मनु० [६। ९०॥ ३। ७७-७९]

अर्थ—जैसे नदी और बड़े-बड़े नद तब तक भ्रमते ही रहते हैं, जब तक समुद्र को प्राप्त नहीं होते, वैसे गृहस्थ के ही आश्रय से सब आश्रम स्थिर रहते हैं॥१॥

[जैसे वायु के आश्रय से सब जीवों का वर्त्तमान सिद्ध होता है, वैसे ही गृहस्थ आश्रय से ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और संन्यासी, अर्थात् सब आश्रमस्थों का निर्वाह होता है।] विना इस आश्रम के किसी आश्रम का कोई व्यवहार सिद्ध नहीं होता॥२॥

जिससे ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और संन्यासी तीन आश्रमस्थों को दान और अन्नादि देके प्रतिदिन गृहस्थ ही धारण करता है, इससे गृहस्थ ज्येष्ठाश्रम है, अर्थात् सब व्यवहारों में धुरन्धर कहाता है [॥३॥]

इसलिये जो अक्षय मोक्ष और संसार के सुख की इच्छा करता हो, वह प्रयत्न से गृहाश्रम का धारण करे। **जो गृहाश्रम दुर्बलेन्द्रिय अर्थात् भीरु और निर्बल पुरुषों से धारण करने [के] अयोग्य है,** उसको अच्छे प्रकार धारण करे॥४॥

इसलिये जितना कुछ व्यवहार संसार में है उसका आधार गृहाश्रम है। जो यह गृहाश्रम न होता, तो सन्तानोत्पत्ति के न होने से ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्यासाश्रम कहाँ से हो सकते [हैं]? जो कोई गृहाश्रम की निन्दा करता है, वही निन्दनीय है, और जो प्रशंसा करता है वही प्रशंसनीय है। परन्तु तभी गृहाश्रम में सुख होता है कि जब स्त्री और पुरुष दोनों परस्पर प्रसन्न, विद्वान्, पुरुषार्थी और सब प्रकार के व्यवहारों के ज्ञाता हों। इसलिये गृहाश्रम के सुख का मुख्य कारण ब्रह्मचर्य और पूर्वोक्त स्वयंवर विवाह है।

यह संक्षेप से समावर्तन, विवाह और गृहाश्रम के विषय में शिक्षा लिख दी। इसके आगे वानप्रस्थ और संन्यास के विषय में लिखा जायगा।

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिकृते सत्यार्थप्रकाशे
सुभाषाविभूषिते समावर्त्तनविवाहगृहाश्रमविषये
चतुर्थः समुल्लासः सम्पूर्णः॥४॥

अथ पञ्चमसमुल्लासारम्भः

अथ वानप्रस्थ-संन्यासविधिं वक्ष्यामः

सम्पूर्ण सत्यार्थप्रकाश

Click now

[अब वानप्रस्थ और संन्यास-विधि का वर्णन करेंगे]

[वानप्रस्थ का काल]

ब्रह्मचर्याश्रमं समाप्य गृही भवेत् गृही भूत्वा वनी भवेद्वनी भूत्वा प्रव्रजेत्॥

शत० कां० १४॥ [तुलना—
(शतपथ शाखापरक) जाबालोपनिषद् खण्ड ४]

मनुष्यों को उचित है कि ब्रह्मचर्याश्रम को समाप्त करके गृहस्थ, गृहस्थ होकर वानप्रस्थ और वानप्रस्थ होके संन्यासी होवें, अर्थात् यह अनुक्रम से आश्रम का विधान है।

एवं गृहाश्रमे स्थित्वा विधिवत्स्नातको द्विजः।
वने वसेत्तु नियतो यथावद्विजितेन्द्रियः॥१॥
गृहस्थस्तु यदा पश्येद् वलीपलितमात्मनः।
अपत्यस्यैव चापत्यं तदारण्यं समाश्रयेत्॥२॥

सन्त्यज्य ग्राम्यमाहारं सर्वं चैव परिच्छदम्।
पुत्रेषु भार्यां निःक्षिप्य वनं गच्छेत्सहैव वा॥३॥
अग्निहोत्रं समादाय गृह्यं चाग्निपरिच्छदम्।
ग्रामादरण्यं निःसृत्य निवसेन्नियतेन्द्रियः॥४॥
मुन्यन्नैर्विविधैर्मेध्यैः शाकमूलफलेन वा।
एतानेव महायज्ञान्निर्वपेद्विधिपूर्वकम्॥५॥

मनु० [६। १-५]

इस प्रकार स्नातक अर्थात् ब्रह्मचर्यपूर्वक गृहाश्रम का कर्त्ता द्विज अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य गृहाश्रम में ठहरकर निश्चितात्मा [होके] और यथावत् इन्द्रियों को जीतके वन में वसें॥१॥

परन्तु जब गृहस्थ के शिर के श्वेत केश [हो जायें] और त्वचा ढीली हो जाय, और लड़के का लड़का भी होवे, तब वन में जाके वसे॥२॥

ग्राम के सब आहारों, वस्त्रादि सब उत्तमोत्तम पदार्थों को छोड़, पुत्रों के पास स्त्री को रख, वा अपने साथ लेके वन में निवास करे॥३॥

सांगोपांग अग्निहोत्र को लेके ग्राम से निकल, दृढ़ेन्द्रिय होकर, अरण्य में जाके वसे॥४॥

नाना प्रकार के सामा आदि अन्न, सुन्दर शाक, मूल, फल, कन्दादि से पूर्वोक्त पञ्चमहायज्ञों को करे और उसी से अतिथिसेवा और आप भी निर्वाह करे॥५॥

[वानप्रस्थ के कर्तव्य]

स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्याद्दान्तो मैत्रः समाहितः।
दाता नित्यमनादाता सर्वभूतानुकम्पकः॥१॥
अप्रयत्नः सुखार्थेषु ब्रह्मचारी धराशयः।
शरणेष्वममश्चैव वृक्षमूलनिकेतनः॥२॥

मनु० [६। ८, २६]

स्वाध्याय अर्थात् पढ़ने-पढ़ाने में नित्य युक्त, जितात्मा, सबका मित्र, इन्द्रियों का दमनशील, विद्यादि का दान देनेहारा और सबपर दयालु [होवे], किसी से कुछ भी पदार्थ न लेवे, इस प्रकार सदा वर्त्तमान करे॥१॥

शरीर के सुख के लिये अति-प्रयत्न न करे, ब्रह्मचारी रहै अर्थात् अपनी स्त्री साथ हो तथापि उससे विषयचेष्टा कुछ न करे। भूमि में सोवे। अपने आश्रितों [और] स्वकीय पदार्थों में ममता न करे, वृक्ष के मूल में वसे॥२॥

तपःश्रद्धे ये ह्युपवसन्त्यरण्ये, शान्ता विद्वांसो भैक्षचर्यां चरन्तः।
सूर्यद्वारेण ते विरजाः प्रयान्ति, यत्राऽमृतः स पुरुषो ह्यव्ययात्मा॥१॥

मुण्डक० १। खं० २। मं० ११॥

जो शान्त, विद्वान् लोग वन में तप, धर्मानुष्ठान और सत्य की श्रद्धा करके भिक्षाचरण करते हुए जंगल में वसते हैं, जहाँ नाशरहित हानि-लाभ-रहित पूर्णपुरुष परमात्मा है, वहाँ वे निर्मल होकर प्राणद्वार से उस परमात्मा को प्राप्त होके आनन्दित हो जाते हैं॥१॥

अभ्या दंधामि समिधमग्नें व्रतपते त्वयिं।
व्रतं चं श्रद्धां चोपैंमीन्धे त्वां दीक्षितोऽअहम्॥१॥

यजुर्वेदे, अध्याये २०। मं० २४॥

वानप्रस्थ को उचित है कि **'मैं अग्नि में होम करके दीक्षित होकर व्रत, सत्याचरण और श्रद्धा को प्राप्त होऊँ',** ऐसी इच्छा करके वानप्रस्थ होवे। नाना प्रकार की तपश्चर्या, सत्सङ्ग, योगाभ्यास और सुविचार से ज्ञान और पवित्रता प्राप्त करे॥१॥

पश्चात् जब संन्यास के ग्रहण की इच्छा हो तब स्त्री को पुत्रों के पास भेज देवे, फिर संन्यास ग्रहण करे॥१॥

इति संक्षेपेण वानप्रस्थविधिः

अथ संन्यासविधिः

[संन्यास का काल]

वनेषु च विहृत्यैवं तृतीयं भागमायुषः।
चतुर्थमायुषो भागं त्यक्त्वा सङ्गान् परिव्रजेत्॥१॥

मनु० [६। ३३]

इस प्रकार वनों में आयु का तीसरा भाग अर्थात् पच्चीस वर्ष रहके, पचासवें वर्ष से पचहत्तरवें वर्ष पर्यन्त वानप्रस्थ होके, आयु के चौथे भाग में संगों को छोड़के 'परिव्राट्' अर्थात् संन्यासी हो जावे।

प्रश्न—गृहाश्रम और वानप्रस्थाश्रम न करके संन्यासाश्रम करे, उसको पाप होता है, वा नहीं?

उत्तर—होता है, और नहीं भी होता।

प्रश्न—यह दो प्रकार की बात क्यों कहते हो?

उत्तर—दो प्रकार की नहीं; क्योंकि **जो बाल्यावस्था में विरक्त होकर विषयों में फसे वह महापापी, और जो न फसे वह महापुण्यात्मा सत्पुरुष है।**

[संन्यास-ग्रहण के तीन पक्ष]

यदहरेव विरजेत्तदहरेव प्रव्रजेत्।
वनाद्वा गृहाद्वा ब्रह्मचर्यादेव प्रव्रजेत्॥

ये ब्राह्मणग्रन्थ के वचन हैं। [तुलना—जाबालोपनिषत् खं० ४]

जिस दिन वैराग्य प्राप्त हो, उसी दिन [ब्रह्मचर्य वा], घर वा वन से संन्यास ग्रहण कर लेवे। पहला पक्ष क्रमसंन्यास का [आरम्भ में] कहा। और [द्वितीय पक्ष यह है कि] इसमें विकल्प है अर्थात् वानप्रस्थ न करे, गृहस्थाश्रम से ही संन्यास ग्रहण करे। और तृतीय पक्ष यह है कि जो पूर्ण विद्वान्, जितेन्द्रिय, विषय-भोग की कामना से रहित, परोपकार करने की इच्छा से युक्त पुरुष हो, वह ब्रह्मचर्याश्रम से ही संन्यास लेवे। और वेदादि में भी—

“[यद्देवाः] यतयः०" [ऋग्०, १०। ७२। ७] [तथा] **"ब्राह्मणस्य विजानतः०”** [भगवद्गीता २। ४६] इत्यादि पदों से संन्यास का विधान है, परन्तु—

[निरर्थक संन्यास]

नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो नासमाहितः।
नाशान्तमानसो वापि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात्॥

कठ०, अ०१। वल्ली २। मं० २३

जो दुराचार से पृथक् नहीं, जिसको [जीवन में] शान्ति नहीं, जिसका आत्मा योगी नहीं, और जिसका मन शान्त नहीं है, वह संन्यास लेके भी प्रज्ञान से परमात्मा को प्राप्त नहीं होता। इसलिए—

[संन्यासी के कर्त्तव्य]

यच्छेद्वाङ्मनसी प्राज्ञस्तद्यच्छेद् ज्ञान आत्मनि।
ज्ञानमात्मनि महति नियच्छेत् तद्यच्छेच्छान्त आत्मनि॥

कठ०, अ०१। वल्ली ३। मं० १३॥

बुद्धिमान् संन्यासी वाणी और मन को अधर्म से रोके, उनको ज्ञान और आत्मा में लगावे, और उस ज्ञान और स्वात्मा को परमात्मा में लगावे और उस विज्ञान को शान्तस्वरूप आत्मा में स्थिर करे।

परीक्ष्य लोकान् कर्मचितान् ब्राह्मणो निर्वेदमायान्नास्त्यकृतः कृतेन।
तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्॥

मुण्डक०, [१] खंड २। मं० १२॥

सब लौकिक भोगों को कर्म से संचित हुए देखकर ब्राह्मण अर्थात् संन्यासी वैराग्य को प्राप्त होवे। क्योंकि 'अकृत' अर्थात् न किया हुआ परमात्मा, 'कृत' अर्थात् केवल कर्म से प्राप्त नहीं होता। इसलिये अर्पण के अर्थ हाथ में कुछ लेके वेदवित् और परमेश्वर को जाननेवाले गुरु के पास उसके विज्ञान के लिये जावे, जाके सब सन्देहों की निवृत्ति करे;

[किनका सङ्ग न करे]

परन्तु सदा इनका संग छोड़ देवे कि—

अविद्यायामन्तरे वर्त्तमानाः स्वयं धीराः पण्डितं मन्यमानाः।
जङ्घन्यमानाः परियन्ति मूढा अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः॥१॥
अविद्यायां बहुधा वर्त्तमाना वयं कृतार्था इत्यभिमन्यन्ति बालाः।
यत्कर्मिणो न प्रवेदयन्ति रागात्तेनातुराः क्षीणलोकाश्च्यवन्ते॥२॥

मुण्डक॰, [१] खण्ड २। मं॰ ८-९॥

जो अविद्या के भीतर खेल रहे और अपने को धीर और पण्डित मानते हैं, वे नीच गति को जानेहारे मूढ़, जैसे **'अंधे के पीछे अन्धे दुर्दशा को प्राप्त होते हैं',** वैसे दुःखों को पाते हैं॥१॥

जो बहुधा अविद्या में रमण करनेवाले बालबुद्धि 'हम कृतार्थ हैं' ऐसा मानते हैं, जिनको केवल कर्मकाण्डी-लोग राग से मोहित होकर नहीं जान और जना सकते, वे आतुर होके जन्ममरणरूप दुःख में गिरे रहते हैं॥२॥ इसलिये—

[संन्यास का फल]

वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः, संन्यासयोगाद्यतयः शुद्धसत्त्वाः।
ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले, परामृताः परिमुच्यन्ति सर्वे॥

मुण्डक॰, ३ खण्ड २। मं॰ ६॥

जो वेदान्त अर्थात् परमेश्वर प्रतिपादक वेदमन्त्रों के अर्थज्ञान और आचार में अच्छे प्रकार निश्चित, संन्यासयोग से शुद्धान्तःकरण संन्यासी होते हैं, वे परमेश्वर में मुक्ति-सुख को प्राप्त हो, भोग के पश्चात् जब मुक्ति में सुख की अवधि पूरी हो जाती है, तब वहाँ से छूटकर संसार में आते हैं। मुक्ति के विना दुःख का नाश नहीं होता है। क्योंकि—

न वै सशरीरस्य सतः प्रियाप्रिययोरपहतिरस्त्यशरीरं वाव सन्तं न प्रियाप्रिये स्पृशतः॥

छान्दोग्य०, [उप०, प्रपा० ८। खं० १२। प्रवाक १]

जो देहधारी है, वह सुख-दुःख की प्राप्ति से पृथक् कभी नहीं रह सकता और जो शरीररहित जीवात्मा मुक्ति में सर्वव्यापक परमेश्वर के साथ शुद्ध होकर रहता है, तब उसको सांसारिक सुख-दुःख प्राप्त नहीं होता। इसलिये—

[त्रिविध एषणाओं का परित्याग]

पुत्रैषणायाश्च वित्तैषणायाश्च लोकैषणायाश्च व्युत्थायाथ भिक्षाचर्यं चरन्ति॥

शत० कां० १४ [शत० ब्रा०, कां० १४
प्रपा० ३। ब्रा० ४। कं० १; बृह० उप० ३। ५। १]॥

पुत्रादि के मोह से; लाभ, धन से भोग वा मान्य; लोक में प्रतिष्ठा से अलग होके संन्यासी लोग भिक्षुक होकर रात-दिन मोक्ष के साधनों में तत्पर रहते हैं।

प्राजापत्यां निरूप्येष्टिं तस्यां सर्ववेदसं हुत्वा ब्राह्मणः प्रव्रजेत्॥१॥

यजुर्वेदब्राह्मणे, [न्याय दर्शन ४। १। ६१ पर वात्स्यायन भाष्य]॥

प्राजापत्यां निरूप्येष्टिं सर्ववेदसदक्षिणाम्।
आत्मन्यग्नीन्समारोप्य ब्राह्मणः प्रव्रजेद् गृहात्॥२॥
यो दत्त्वा सर्वभूतेभ्यः प्रव्रजत्यभयं गृहात्।
तस्य तेजोमया लोका भवन्ति ब्रह्मवादिनः॥३॥

मनु॰ [६। ३८-३९]॥

प्रजापति अर्थात् परमेश्वर की प्राप्ति के अर्थ इष्टि अर्थात् यज्ञ करके, उसमें यज्ञोपवीत, शिखादि चिह्नों को छोड़, आहवनीयादि पांच अग्नियों को प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान इन पांच प्राणों में आरोपित करके ब्रह्मवित् ब्राह्मण घर से निकलकर संन्यासी हो जावे॥१-२॥

जो सब भूत=प्राणिमात्र को अभयदान देकर घर से निकलके संन्यासी होता है, उस ब्रह्मवादी अर्थात् परमेश्वरप्रकाशित **'वेदोक्त-धर्मादि विद्याओं'** के उपदेश करनेवाले संन्यासी के लिये प्रकाशमय अर्थात् मुक्ति का आनन्दस्वरूप लोक प्राप्त होता है॥३॥

[संन्यासी का विशेष धर्म]

प्रश्न—संन्यासियों का क्या धर्म है?

उत्तर—धर्म तो पक्षपातरहित न्यायाचरण, सत्य का ग्रहण, असत्य का परित्याग, ईश्वर की वेदोक्त आज्ञा का पालन, परोपकार,

सत्यभाषणादि-लक्षण सब आश्रमियों का अर्थात् सब मनुष्यमात्र का एक ही है, परन्तु संन्यासी का विशेष धर्म यह है कि—

दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं जलं पिबेत्।
सत्यपूतां वदेद्वाचं मनःपूतं समाचरेत्॥१॥
क्रुद्धयन्तं न प्रतिक्रुध्येदाक्रुष्टः कुशलं वदेत्।
सप्तद्वारावकीर्णां च न वाचमनृतां वदेत्॥२॥
अध्यात्मरतिरासीनो निरपेक्षो निरामिषः।
आत्मनैव सहायेन सुखार्थी विचरेदिह॥३॥
क्लृप्तकेशनखश्मश्रुः पात्री दण्डी कुसुम्भवान्।
विचरेन्नियतो नित्यं सर्वभूतान्यपीडयन्॥४॥
इन्द्रियाणां निरोधेन रागद्वेषक्षयेण च।
अहिंसया च भूतानाममृतत्वाय कल्पते॥५॥
दूषितोऽपि चरेद्धर्मं यत्र तत्राश्रमे रतः।
समः सर्वेषु भूतेषु न लिङ्गं धर्मकारणम्॥६॥
फलं कतकवृक्षस्य यद्यप्यम्बुप्रसादकम्।
न नामग्रहणादेव तस्य वारि प्रसीदति॥७॥
प्राणायामा ब्राह्मणस्य त्रयोऽपि विधिवत्कृताः।
व्याहृतिप्रणवैर्युक्ता विज्ञेयं परमं तपः॥८॥
दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा मलाः।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात्॥९॥
प्राणायामैर्दहेद्दोषान् धारणाभिश्च किल्बिषम्।

प्रत्याहारेण संसर्गान् ध्यानेनानीश्वरान् गुणान्॥१०॥
उच्चावचेषु भूतेषु दुर्ज्ञेयामकृतात्मभिः।
ध्यानयोगेन संपश्येद् गतिमस्यान्तरात्मनः॥११॥
अहिंसयेन्द्रियासङ्गैर्वैदिकैश्चैव कर्मभिः।
तपसश्चरणैश्चोग्रैस्साधयन्तीह तत्पदम्॥१२॥
यदा भावेन भवति सर्वभावेषु निःस्पृहः।
तदा सुखमवाप्नोति प्रेत्य चेह च शाश्वतम्॥१३॥
चतुर्भिरपि चैवैतैर्नित्यमाश्रमिभिर्द्विजैः।
दशलक्षणको धर्मः सेवितव्यः प्रयत्नतः॥१४॥
धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥१५॥
अनेन विधिना सर्वांस्त्यक्त्वा सङ्गञ्छनैः शनैः।
सर्वद्वन्द्वविनिर्मुक्तो ब्रह्मण्येवावतिष्ठते॥१६॥

मनु॰ अ॰ ६। [श्लोक ४६, ४८, ४९, ५२, ६०, ६६, ६७, ७०-७३, ७५, ८०, ९१, ९२, ८१]

जब संन्यासी मार्ग में चले, तब इधर-उधर न देखकर, नीचे पृथिवी पर दृष्टि रखके चले। सदा वस्त्र से छानके जल पीये, **निरन्तर सत्य ही बोले, सर्वदा मन से विचारके सत्य का ग्रहण करे असत्य को छोड़ देवे॥१॥**

जब कहीं उपदेश वा संवादादि में कोई संन्यासी पर क्रोध करे अथवा निन्दा करे, तो संन्यासी को उचित है कि उस पर आप कभी क्रोध न

करे किन्तु सदा उसके कल्याणार्थ उपदेश करे। एक मुख के, दो नासिका के, दो आँखों के और दो कानों के छिद्रों में बिखरी हुई वाणी को, किसी कारण से मिथ्या कभी न बोले॥२॥

अपने आत्मा और परमात्मा में स्थिर, अपेक्षारहित, मद्य-मांसादि वर्जित होकर, आत्मा के ही सहाय्य से सुखार्थी होकर, इस संसार में धर्म और विद्या के बढ़ाने में उपदेश के लिये सदा विचरता रहै॥३॥

केश, नख, दाढ़ी, मूंछ का छेदन करवावे, सुन्दर पात्र, दण्ड और कुसुम्भ आदि से रंगे हुए वस्त्रों को ग्रहण करके निश्चितात्मा [होकर], सब भूतों को पीड़ा न देते हुए सर्वत्र विचरे॥४॥

इन्द्रियों को अधर्माचरण से रोक, राग-द्वेष को छोड़, सब प्राणियों से निर्वैर वर्तकर, मोक्ष के लिये सामर्थ्य बढ़ाया करे॥५॥

कोई संसार में उसको दूषित वा भूषित करे तो भी, जिस किसी आश्रम में वर्तता हुआ पुरुष अर्थात् संन्यासी, सब प्राणियों में पक्षपातरहित होकर, स्वयं धर्मात्मा [रहते हुए] और अन्यों को धर्मात्मा करने में प्रयत्न किया करे। **और यह अपने मन में निश्चित जाने कि [केवल] दण्ड, कमण्डलु और काषायवस्त्र आदि चिह्न-धारण करना ही धर्म का कारण नहीं है। सब मनुष्यादि प्राणियों की सत्योपदेश और विद्यादान से उन्नति करना संन्यासी का मुख्य कर्म है**॥६॥

क्योंकि, यद्यपि निर्मली वृक्ष का फल पीसके गदरे जल में डालने से जल का शोधक होता है, तदपि विना डाले उसके नामकथन वा श्रवणमात्र से जल शुद्ध नहीं होता॥७॥

इसलिये ब्राह्मण अर्थात् ब्रह्मवित् संन्यासी को उचित है कि ओङ्कारपूर्वक सातव्याहृतियों से विधिपूर्वक प्राणायाम, जितनी शक्ति हो उतने करे, परन्तु तीन से न्यून कभी न करे, यही संन्यासी का परमतप है॥८॥

क्योंकि, जैसे अग्नि में तपाने और गलाने से धातुओं के मल नष्ट हो जाते हैं, वैसे ही प्राणों के निग्रह से मन आदि इन्द्रियों के दोष भस्मीभूत हो जाते हैं॥९॥

इसलिये संन्यासी लोग नित्यप्रति प्राणायामों से आत्मा, अन्तःकरण और इन्द्रियों के दोषों [को], धारणाओं से पापों [को], प्रत्याहार से संगदोषों [को]; ध्यान से अनीश्वर के गुणों को अर्थात् हर्ष, शोक और अविद्यादि जीव के दोषों को भस्मीभूत करें॥१०॥

जो अयोगी, अविद्वानों के द्वारा जानने के अयोग्य है, इसी ध्यानयोग से, उस अन्तर्यामी परमात्मा की व्याप्ति और परमात्मा तथा आत्मा की गति को छोटे-बड़े पदार्थों में देखे॥११॥

सब भूतों से निर्वैरता से, इन्द्रियों के दुष्ट विषयों के त्याग [से], वेदोक्त कर्म और अत्युग्र तपश्चरण से, इस संसार में मोक्षपद को पूर्वोक्त संन्यासी ही सिद्ध कर और करा सकते हैं, अन्य कोई नहीं॥१२॥

जब संन्यासी सब भावों में अर्थात् पदार्थों में निःस्पृह=कांक्षारहित और सब बाहर-भीतर के व्यवहारों में भाव से पवित्र होता है, तभी इस देह में, और मरण पाके 'निरन्तर सुख' को प्राप्त होता है॥१३॥

इसलिये ब्रह्मचारियों, गृहस्थों, वानप्रस्थियों और संन्यासियों को योग्य है कि प्रयत्न से दशलक्षणयुक्त निम्नलिखित धर्म का सेवन नित्य करें—॥१४॥

पहला लक्षण—**(धृतिः)** सदा धैर्य रखना। दूसरा—**(क्षमा)** जो कि निन्दा-स्तुति, मान-अपमान, हानि-लाभ, आदि दुःखों में भी सहनशील रहना। तीसरा—**(दमः)** मन को सदा धर्म में प्रवृत्त कर, अधर्म से रोक देना अर्थात् अधर्म करने की इच्छा भी न उठे। चौथा—**(अस्तेयम्)** चोरीत्याग अर्थात् विना आज्ञा और छल-कपट, विश्वासघात और किसी व्यवहार [-विरुद्ध] तथा वेदविरुद्ध उपदेश से परपदार्थ का ग्रहण करना 'चोरी' और उसको छोड़ देना 'साहुकारी' कहाती है। पांचवां—**(शौचम्)** राग-द्वेष, पक्षपात छोड़के भीतर की, और जल, मृत्तिका-मार्जन आदि से बाहर की पवित्रता रखनी। छठा—**(इन्द्रियनिग्रहः)** अर्थात् अधर्माचरणों से रोकके, इन्द्रियों को धर्म में ही सदा चलाना। सातवाँ—**(धीः)**

मादकद्रव्य, बुद्धिनाशक अन्य-पदार्थ, दुष्टों का संग, आलस्य-प्रमाद आदि को छोड़के, श्रेष्ठ पदार्थों का सेवन, सत्पुरुषों का संग, योगाभ्यास, धर्माचरण, ब्रह्मचर्य आदि शुभकर्मों से बुद्धि का बढ़ाना। आठवाँ—**(विद्या)** पृथिवी से लेके परमेश्वर-पर्यन्त [पदार्थों का] यथार्थज्ञान और उनसे यथायोग्य उपकार लेना। इससे विपरीत अविद्या है। नववाँ—**(सत्यम्)** जैसा आत्मा में वैसा मन में, जैसा मन में वैसा वाणी में, जैसा वाणी में वैसा कर्म में वर्तना; जैसा जो पदार्थ हो उसको वैसा ही समझना, बोलना, करना। तथा दशवां—**(अक्रोधः)** क्रोधादि दोषों को छोड़के शान्ति-आदि गुणों का ग्रहण करना, **[दशकं धर्मलक्षणम्]** दशवां लक्षण धर्म का है। **इस दशलक्षणयुक्त पक्षपातरहित-न्यायाचरण-धर्म का सेवन चारों आश्रमवाले करें। और इसी वेदोक्त धर्म में ही आप चलना और दूसरों को समझाकर चलाना संन्यासियों का विशेष धर्म है॥१५॥**

इसी प्रकार से धीरे-धीरे सब संग-दोषों को छोड़, हर्ष-शोकादि सब द्वन्द्वों से विमुक्त होकर, संन्यासी ब्रह्म में ही अवस्थित होता है॥१६॥

संन्यासियों का मुख्य कर्म यही है कि गृहस्थादि आश्रमस्थों को सब प्रकार के व्यवहारों का सत्य निश्चय करा, अधर्म-व्यवहारों से छुड़ा, सब संशयों का छेदन कर, सत्यधर्मयुक्त व्यवहारों में प्रवृत्ति कराया करें॥

[संन्यास-ग्रहण का अधिकार]

प्रश्न—संन्यासग्रहण करना ब्राह्मण का ही धर्म है, वा क्षत्रियादि का भी?

उत्तर—ब्राह्मण को ही अधिकार है। **क्योंकि जो सब वर्णों में पूर्ण विद्वान्, धार्मिक, परोपकारप्रिय मनुष्य है, उसी का 'ब्राह्मण' नाम है। विना पूर्णविद्या, धर्म, परमेश्वर की निष्ठा और वैराग्य के संन्यास-ग्रहण करने में संसार का विशेष उपकार नहीं हो सकता।** इसीलिये **लोकश्रुति** है कि ब्राह्मण को संन्यास का अधिकार है, अन्य को नहीं। यह मनु का प्रमाण भी है कि—

एष वोऽभिहितो धर्मो ब्राह्मणस्य चतुर्विधः।
पुण्योऽक्षयफलः प्रेत्य राजधर्मं निबोधत॥

मनु॰ [६। ९७]

यह मनु जी कहते हैं कि हे ऋषियों ! यह चार प्रकार [का] अर्थात् ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास-आश्रम करना ब्राह्मण का धर्म है। यहां वर्त्तमान में पुण्यस्वरूप और शरीर छोड़े पश्चात् मुक्तिरूप अक्षय आनन्द का देनेवाला **'संन्यास-धर्म'** है। इसके आगे **'राजाओं का धर्म'** तुम मुझसे सुनो। इससे यह सिद्ध हुआ कि संन्यासग्रहण का अधिकार **मुख्य करके** ब्राह्मण का है, और क्षत्रियादि का ब्रह्मचर्याश्रम [आदि का] है।

[संन्यासाश्रम की आवश्यकता]

प्रश्न—संन्यासग्रहण की आवश्यकता क्या है?

उत्तर—जैसे शरीर में शिर की आवश्यकता है, वैसे आश्रमों में संन्यास की आवश्यकता है; क्योंकि इसके विना विद्या, धर्म कभी नहीं बढ़ सकते

और दूसरे आश्रमस्थों को विद्याग्रहण, गृहकृत्य और तपश्चर्यादि का सम्बन्ध होने से अवकाश बहुत कम मिलता है। पक्षपात छोड़कर वर्तना दूसरे आश्रमस्थों को दुष्कर है। संन्यासी सर्वतोमुक्त होकर जगत् का जैसा उपकार करता है, वैसा अन्य आश्रमी नहीं कर सकता। क्योंकि संन्यासी को जितना अवकाश सत्यविद्या से पदार्थों के विज्ञान की उन्नति का मिलता है, उतना अन्य आश्रमी को नहीं मिल सकता। परन्तु जो ब्रह्मचर्य से संन्यासी होकर जगत् को सत्यशिक्षा करके [उसकी] जितनी उन्नति कर सकता है, उतनी गृहस्थ और वानप्रस्थ आश्रम करके संन्यासाश्रमी नहीं कर सकता।

प्रश्न—संन्यासग्रहण करना ईश्वर के अभिप्राय से विरुद्ध है, क्योंकि ईश्वर का अभिप्राय मनुष्यों की बढ़ती करने में है। जब गृहाश्रम नहीं करेगा तो उससे सन्तान ही न होंगे। जब संन्यासाश्रम ही मुख्य है और उसको सब मनुष्य [ग्रहण] करें तो मनुष्यों का मूलोच्छेदन हो जायगा।

उत्तर—अच्छा, विवाह करके भी बहुतों के सन्तान नहीं होते, अथवा होकर शीघ्र नष्ट हो जाते हैं, फिर वह भी ईश्वर के अभिप्राय से विरुद्ध करनेवाला हुआ। जो तुम कहो कि—

"यत्ने कृते यदि न सिध्यति कोऽत्र दोषः"

यह किसी कवि का वचन है।

[पञ्चतन्त्र, मित्रभेद कथा ४, श्लोक २१७]

=जो यत्न करने से भी कार्य सिद्ध न हो तो इसमें [हमारा] कोई भी दोष नहीं, तो हम तुमसे पूछते हैं कि गृहाश्रम से बहुत-से सन्तान होकर, आपस में विरुद्धाचरण कर लड़ मरें तो हानि कितनी बड़ी होती है? **समझ के विरोध से लड़ाई बहुत होती है।** जब एक संन्यासी वेदोक्तधर्म के उपदेश से परस्पर प्रीति उत्पन्न करावेगा तो लाखों मनुष्यों को बचा देगा। सहस्रों गृहस्थों के तुल्य मनुष्यों की बढ़ती करेगा। **सब मनुष्य संन्यासग्रहण कर ही नहीं सकते, क्योंकि सबकी विषयासक्ति कभी नहीं छूट सकेगी। जो-जो संन्यासियों के उपदेश से धार्मिक मनुष्य होंगे, वे सब जानो संन्यासियों के पुत्र-तुल्य हैं।**

[क्या संन्यासी कुछ भी कार्य न करें]

प्रश्न—संन्यासी लोग कहते हैं कि हमको कुछ कर्त्तव्य नहीं। अन्न-वस्त्र लेकर आनन्द में रहना, अविद्यारूप संसार से माथापच्ची क्यों करनी? अपने को ब्रह्म मानकर सन्तुष्ट रहना, कोई आकर पूछे तो उसको भी वैसा ही उपदेश करना कि 'तू भी ब्रह्म है, तुझको पाप-पुण्य नहीं लगता, क्योंकि शीत-उष्ण शरीर [के], क्षुधा-तृषा प्राण [के], और सुख-दुःख मन के धर्म हैं, जगत् मिथ्या है और जगत् के व्यवहार भी सब कल्पित अर्थात् झूठे हैं, इसलिये इनमें फसना बुद्धिमानों का काम नहीं; जो कुछ पाप-पुण्य होता है, वह देह और इन्द्रियों का धर्म है, आत्मा का नहीं', इत्यादि। और आपने और ही संन्यास का धर्म कहा। अब हम किसको सच्चा मानें?

उत्तर—क्या उनको अच्छे कर्म भी कर्त्तव्य नहीं? देखो!

"वैदिकैश्चैव कर्मभिः"

मनु० [६। ७५]।

मनु जी ने 'वैदिक कर्म' जो कि धर्मयुक्त सत्य-कर्म हैं, वे संन्यासियों के लिए भी अवश्य करने लिखे हैं। क्या भोजन- छादनादि कर्म वे छोड़ सकेंगे? जब ये कर्म नहीं छूटते तो उत्तम कर्म छोड़ने से क्या वे पतित नहीं होगें? जब गृहस्थों से अन्न-वस्त्रादि लेते हैं और उनका उपकार नहीं करते तो क्या वे महापापी नहीं होंगे? जैसे आंख से देखना, कान से सुनना न हो, तो आंख और कान का होना व्यर्थ है। **वैसे ही जो संन्यासी सत्योपदेश और वेदादि- सत्यशास्त्रों का विचार-प्रचार नहीं करते, तो वे भी जगत् में व्यर्थ, भाररूप हैं।**

और जो 'अविद्यारूप संसार से माथापच्ची क्यों करनी' आदि लिखते और कहते हैं, वैसे उपदेश करनेवाले ही मिथ्यारूप, पापी और पाप के बढ़ानेहारे हैं।

[जीव और ब्रह्म एक नहीं]

जो कुछ शरीरादि से कर्म किये जाते हैं, वे सब आत्मा के ही हैं और उनका फल भोगनेवाला भी आत्मा है।

जो जीव को ब्रह्म बतलाते हैं, वे अविद्यानिद्रा में सोते हैं। क्योंकि 'जीव' अल्प, अल्पज्ञ और 'ब्रह्म' सर्वव्यापक, सर्वज्ञ है। ब्रह्म नित्य-शुद्ध-मुक्त-स्वभावयुक्त है, और जीव कभी बद्ध, कभी मुक्त रहता है। ब्रह्म को सर्वव्यापक, सर्वज्ञ होने से भ्रम वा अविद्या कभी नहीं होती,

और जीव को कभी विद्या और कभी अविद्या होती है। ब्रह्म जन्म-मरण, दुःख को कभी नहीं प्राप्त होता और जीव प्राप्त होता है। इसलिये उनका वह उपदेश मिथ्या है।

[संन्यास-सम्बन्धी प्रचलित भ्रान्तियों का निराकरण]

प्रश्न—"संन्यासी सर्वकर्मविनाशी" [होते हैं], और अग्नि तथा धातु को स्पर्श नहीं करते। यह बात सच्ची है वा नहीं?

उत्तर—नहीं। **"सम्यङ् नित्यमास्ते यस्मिन् यद्वा सम्यङ् न्यस्यन्ति दुःखानि कर्माणि येन स संन्यासः, स प्रशस्तो विद्यते यस्य स संन्यासी"**=जो ब्रह्म और उसकी आज्ञा में [नित्य भलीभांति] उपविष्ट अर्थात् स्थित [होना] और जिससे दुष्ट-कर्मों का त्याग किया जाय, [वह संन्यास और] वह उत्तम स्वभाव जिसमें हो, वह **'संन्यासी'** कहाता है। इससे सुकर्मों का कर्त्ता और दुष्ट-कर्मों का विनाश करनेवाला 'संन्यासी' कहाता है।

[संन्यासी का होना आवश्यक है]

प्रश्न—अध्यापन और उपदेश गृहस्थ किया करते हैं, पुनः संन्यासी का क्या प्रयोजन है?

उत्तर—सत्योपदेश सब आश्रमी करें और सुनें, परन्तु जितना अवकाश और निष्पक्षपातता संन्यासी को होती है, उतनी गृहस्थों को नहीं। हां, जो ब्राह्मण हैं, उनका यही काम है कि पुरुष पुरुषों को और स्त्रीयाँ स्त्रियों को सत्योपदेश [किया करें] और पढ़ाया करें। जितना भ्रमण का

अवकाश संन्यासी को मिलता है, उतना गृहस्थ ब्राह्मणादिकों को कभी नहीं मिल सकता। **जब ब्राह्मण वेदविरुद्ध आचरण करें तब उनका नियन्ता संन्यासी ही होता है।** इसलिये संन्यास का होना उचित है।

[जन-लाभार्थ संन्यासी एकत्र अधिक भी ठहरे]

प्रश्न—'एकरात्रिं वसेद् ग्रामे'

[तुलना—नारदपरिव्राजकोपनिषद् उपदेश ४। १४]

इत्यादि वचनों से संन्यासी को एकत्र एकरात्रि-मात्र रहना [चाहिये], अधिक निवास न करना चाहिये।

उत्तर—यह बात थोड़े-से अंश में तो अच्छी है कि एकत्रवास करने से जगत् का उपकार अधिक नहीं हो सकता और अस्थानान्तर का भी अभिमान होता है, राग-द्वेष भी अधिक होता है, परन्तु जो विशेष उपकार एकत्र रहने से होता हो, तो रहै। जैसे, **जनक** राजा के यहां चार-चार महीने तक **पञ्चशिखादि** और अन्य संन्यासी कितने ही वर्षों तक निवास करते थे। और 'एकत्र न रहना' यह बात आजकल के पाखण्डी सम्प्रदायियों ने बनाई है, क्योंकि जो संन्यासी एकत्र अधिक रहेगा तो हमारा पाखण्ड खण्डित होकर अधिक न बढ़ सकेगा।

[संन्यासी को धनादि देना]

प्रश्न— यतीनां काञ्चनं दद्यात्ताम्बूलं ब्रह्मचारिणाम्।
चौराणामभयं दद्यात्स नरो नरकं व्रजेत्॥

[तुलना—लघु पराशरस्मृति अ० १। श्लोक ५१]

इत्यादि वचनों का अभिप्राय यह है कि संन्यासियों को जो सुवर्ण दान दे, तो दाता को नरक प्राप्त होवे।

उत्तर—यह बात भी वर्णाश्रमविरोधी, सम्प्रदायी और स्वार्थसिन्धु-वाले पौराणिकों की कल्पी हुई है, क्योंकि संन्यासियों को धन मिलेगा तो वे हमारा खण्डन बहुत कर सकेंगे और हमारी हानि होगी तथा वे हमारे अधीन भी न रहेंगे। और जब भिक्षादि-व्यवहार हमारे आधीन रहेगा तो डरते रहेंगे। **जब मूर्ख और स्वार्थियों को दान देने में अच्छा समझते हैं तो विद्वान् और परोपकारी संन्यासियों को देने में कुछ भी दोष नहीं हो सकता।** देखो—

विविधानि च रत्नानि विविक्तेषूपपादयेत्॥

मनु० [तुलना—अ० ११। श्लोक ६]

=नाना प्रकार के रत्न, सुवर्णादि धन विविक्त अर्थात् संन्यासियों को देवे।

और पूर्वोक्त श्लोक भी अनर्थक है, क्योंकि संन्यासियों को सुवर्ण देने से यजमान नरक को जावेगा, तो चांदी, मोती, हीरा आदि देने से स्वर्ग को जायगा।

प्रश्न—ये पण्डित जी इसका पाठ बोलते-बोलते भूल गये। यह ऐसा है कि **"यतिहस्ते धनं दद्यात्"** अर्थात् जो संन्यासियों के हाथ में धन देता है, वह नरक में जाता है।

उत्तर—यह भी वचन [किसी] अविद्वान् ने कपोलकल्पना से रचा है; क्योंकि जो हाथ में धन देने से दाता नरक को जाय, तो पग पर धरने वा गठरी बांधकर देने से स्वर्ग को जायगा। इसलिये ऐसी कल्पना मानने योग्य नहीं। **हां, यह बात तो है कि जो संन्यासी योगक्षेम से अधिक रक्खेगा तो चोरादि से पीड़ित और मोहित भी हो जायगा;** परन्तु जो विद्वान् है, वह अयुक्त व्यवहार कभी न करेगा, न मोह में फसेगा। क्योंकि वह प्रथम गृहाश्रम में अथवा ब्रह्मचर्य में, सब भोग और सब देख चुका है। और जो ब्रह्मचर्य से [संन्यासी] होता है, वह पूर्ण वैराग्ययुक्त होने से कभी कहीं नहीं फसता है।

[क्या श्राद्ध में संन्यासी का आना हानिकर है?]

प्रश्न—लोग कहते हैं कि श्राद्ध में संन्यासी आवे वा [उसको कोई] जिमावे तो उसके पितर भाग जायें और नरक में गिरें।

उत्तर—प्रथम तो मरे हुए पितरों का आना और किया हुआ श्राद्ध मरे हुए पितरों को पहुँचना ही असम्भव [है, तथा] वेद और युक्ति-विरुद्ध होने से मिथ्या है। और जब आते ही नहीं तो भाग कौन जायेंगे? जब अपने पाप-पुण्य के अनुसार ईश्वर की व्यवस्था से मरण के पश्चात् जीव जन्म लेते हैं, तो उनका आना कैसे हो सकता है? इसलिये यह भी बात पेटार्थी पुराणियों और वैरागियों की मिथ्या कल्पी हुई है। हां, यह तो ठीक है कि जहां संन्यासी जायेंगे, वहां यह मृतक-श्राद्ध करना [आदि] पाखण्ड वेदादि-शास्त्रों से विरुद्ध होने से दूर भाग जायगा।

[ब्रह्मचर्य से संन्यास लेने का अधिकारी]

प्रश्न—जो ब्रह्मचर्य से संन्यास लेवेगा, उसका निर्वाह कठिनता से होगा और 'काम' का रोकना भी अति कठिन है, इसलिये गृहाश्रमी और वानप्रस्थ होकर जब वृद्ध हो जाय, तभी संन्यास लेना अच्छा है।

उत्तर—जो निर्वाह न कर सके, इन्द्रियों को न रोक सके, वह ब्रह्मचर्य से संन्यास न लेवे; परन्तु जो रोक सके वह क्यों न लेवे? जिस पुरुष ने विषय के दोष और वीर्यसंरक्षण के गुण जाने हैं, वह विषयासक्त कभी नहीं होता और उसका वीर्य विचाराग्नि का इन्धनवत् है, अर्थात् उसी में व्यय हो जाता है। जैसे वैद्य और औषधों की आवश्यकता रोगी के लिये है, नीरोगी के लिये नहीं; **वैसे जिस पुरुष वा स्त्री का विद्या, धर्म-वृद्धि और सब संसार का उपकार करना ही प्रयोजन हो, वह विवाह न करे, जैसे पञ्चशिख-आदि पुरुष और गार्गी आदि स्त्रियां हुई थीं। इसलिये संन्यासी का होना अधिकारियों के लिये उचित है और जो अनधिकारी संन्यास ग्रहण करेगा तो आप डूबेगा, औरों को भी डुबावेगा।**

[सम्राट् और परिव्राट् की तुलना]

जैसे ‘सम्राट्’ सर्वोपरि चक्रवर्ती राजा होता है, वैसे ही ‘परिव्राट्’ संन्यासी होता है। प्रत्युत राजा अपने देश में वा सम्बन्धियों में सत्कार पाता है, और संन्यासी सर्वत्र पूजित होता है।

विद्वत्त्वं च नृपत्वं च नैव तुल्यं कदाचन।
स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान् सर्वत्र पूज्यते॥१॥

यह चाणक्यनीतिशास्त्र का श्लोक है [३]।

विद्वान् और राजा कभी तुल्य नहीं होते; क्योंकि राजा अपने ही देश में मान पाता है और विद्वान सर्वत्र प्रतिष्ठा पाता है॥१॥

[चारों आश्रमों के कर्त्तव्यों का संक्षेप से कथन]

इसलिये विद्या पढ़ने, सुशिक्षा लेने और बलवान् होने आदि के लिये **ब्रह्मचर्य**; सब प्रकार के उत्तम व्यवहार सिद्ध करने के अर्थ **गृहस्थ;** विचार, ध्यान और ज्ञान बढ़ाने और तपश्चर्या करने के लिये **वानप्रस्थ;** और वेदादि-सत्यशास्त्रों का प्रचार, धर्म-व्यवहार का ग्रहण और दुष्टव्यवहार का त्याग, सत्योपदेश और सबको निःसंदेह करने आदि के लिये **संन्यास** आश्रम है। परन्तु **जो इस संन्यास के मुख्य-धर्म सत्योपदेशादि नहीं करते, वे पतित और नरकगामी हैं। इससे संन्यासियों को उचित है कि सदा सत्योपदेश, शङ्का-समाधान, वेदादि- सत्यशास्त्रों का अध्यापन और वेदोक्त धर्म की वृद्धि प्रयत्न से करके सब संसार की उन्नति किया करें।**

[वैरागी, गुसाईं खाखी आदि संन्यासी नहीं]

प्रश्न—जो संन्यासी से अन्य साधु, वैरागी, गोसांई, खाखी आदि हैं, वे भी संन्यासाश्रम में गिने जायेंगे, वा नहीं?

उत्तर—नहीं; क्योंकि उनमें संन्यास का एक भी लक्षण नहीं। वे वेदविरुद्ध मार्ग में प्रवृत्त होकर वेद से अधिक अपने सम्प्रदाय के आचार्यों के वचन

मानते और अपने ही मत की प्रशंसा करते [हैं]। मिथ्या-प्रपञ्च में फसकर अपने स्वार्थ के लिये दूसरों को अपने-अपने मत में फसाते हैं। सुधार करना तो दूर रहा, उसके बदले संसार को बहकाकर अधोगति को प्राप्त कराते और अपना प्रयोजन साधते हैं; इसलिये उनको संन्यासाश्रम में नहीं गिन सकते, किन्तु ये स्वार्थाश्रमी तो पक्के हैं; इसमें कुछ संदेह नहीं।

संन्यासी आप धर्म में चलें और सब संसार को चलाते रहैं, जिससे आप और सब संसार इस लोक अर्थात् इस जन्म में, परलोक अर्थात् परजन्म में स्वर्ग अर्थात् सुख का भोग किया करें।

यह संन्यास-आश्रम की शिक्षा संक्षेप से लिखी। अब इसके आगे राजधर्मों को लिखेंगे।

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिकृते सत्यार्थप्रकाशे
सुभाषाविभूषिते वानप्रस्थसंन्यासाश्रमविषये
पञ्चमः समुल्लासः सम्पूर्णः॥५॥

अथ षष्ठसमुल्लासारम्भः

अथ राजधर्मान् व्याख्यास्यामः

सम्पूर्ण सत्यार्थप्रकाश
Click now

[अब राजा के धर्मों का वर्णन किया जायगा]

[क्षत्रिय का कर्त्तव्य—सबकी रक्षा]

राजधर्मान् प्रवक्ष्यामि यथावृत्तो भवेन्नृपः।
संभवश्च यथा तस्य सिद्धिश्च परमा यथा॥१॥
ब्राह्मं प्राप्तेन संस्कारं क्षत्रियेण यथाविधि।
सर्वस्यास्य यथान्यायं कर्त्तव्यं परिरक्षणम्॥२॥

मनु॰ [७। १-२]॥

अब मनु जी ऋषियों से कहते हैं कि चारों वर्णों और चारों आश्रमों के व्यवहार-कथन के पश्चात् राजधर्मों को कहेंगे कि जिस प्रकार का राजा होना चाहिये, और जैसे इसके होने का सम्भव तथा जैसे इसको परमसिद्धि प्राप्त होवे, वह प्रकार सब कहते हैं॥१॥

कि जैसा परम विद्वान् ब्राह्मण होता है, **वैसा सुशिक्षित-विद्वान् होकर** क्षत्रिय को योग्य है कि इस सब राज्य की रक्षा न्याय से यथावत् करे॥२॥

कैसे कर सकता है, उसका प्रकार यह है—

[तीन सभाओं का निर्माण]

त्रीणि राजाना विदथे पुरूणि परि विश्वानि भूषथः सदांसि॥

ऋ०, म० ३। सूक्त ३८। मं० ६॥

ईश्वर उपदेश करता है कि **(राजाना)** राजा और प्रजा के पुरुष मिलके **(विदथे)** सुखप्राप्ति और विज्ञानवृद्धिकारक राजा- प्रजा के सम्बन्धरूप व्यवहार में **(त्रीणि सदांसि)** तीन सभायें अर्थात् विद्यार्यसभा, धर्मार्यसभा और राजार्यसभा नियत करके **(पुरूणि)** बहुत प्रकार के **(विश्वानि)** समग्र प्रजासम्बन्धी मनुष्यादि प्राणियों को **(परि-भूषथः)** **सब ओर से विद्या, स्वातन्त्र्य, धर्म, सुशिक्षा और धनादि से अलंकृत करें।**

तं सभा च समितिश्च सेना च॥१॥

अथर्व०, कां० १५। अनु० २। व० ९। मं० २॥ [काण्ड १५। सूक्त ९। मन्त्र २]

सभ्य सभां मे पाहि ये च सभ्याः सभासदः॥२॥

अथर्व०, कां० १९। अनु० ७। व० ५५। मं० ६॥ [कां० १९। सू० ५५। मं० ६]

(तम्) उस राजधर्म का, **(सभा च)** तीनों सभायें **(समितिश्च)** संग्रामादि की व्यवस्था[-पक समिति] और **(सेना च)** सेना, मिलकर पालन करें॥१॥

सभाध्यक्ष राजा को योग्य है कि राजा सब सभासदों को आज्ञा दे कि हे **(सभ्य)** सभा के योग्य मुख्य-सभासद् ! तू **(मे)** मेरी **(सभाम्)** सभा की धर्मयुक्त व्यवस्था का **(पाहि)** पालन कर, **(ये च)** और जो **(सभ्याः)** सभा के योग्य **(सभासदः)** सभासद् हैं, वे भी सभा की व्यवस्था का पालन किया करें॥२॥

[राजवर्ग की पूर्ण स्वतन्त्रता से हानि]

इसका अभिप्राय यह है कि [किसी] एक को स्वतन्त्र राज्य का अधिकार न देना चाहिये किन्तु राजा जो सभापति, तदधीन सभा, सभाधीन राजा, राजा और सभा प्रजा के आधीन, और प्रजा राजसभा के आधीन रहै। यदि ऐसा न करोगे तो:—

राष्ट्रमेव विश्याहन्ति तस्माद्राष्ट्री विशं घातुकः।
विशमेव राष्ट्रायाद्यां करोति तस्माद्राष्ट्री विशमत्ति न पुष्टं पशुं मन्यत इति॥१॥

शत०, ब्रा०, का० १३। [प्रपा०] २। ब्रा० ३। [कं० ७-८]॥

जो प्रजा से स्वतन्त्र-स्वाधीन राजवर्ग रहै, तो राजपुरुष **(राष्ट्रमेव विश्याहन्ति)** राज्य में प्रवेश करके प्रजा का नाश किया करें। जिसलिये अकेला राजा स्वाधीन वा उन्मत्त होके **(राष्ट्री विशं घातुकः)** प्रजा का नाशक होता है अर्थात् **(विशमेव राष्ट्रायाद्यां करोति)** वह राजा प्रजा को खाये जाता=अत्यन्त पीड़ित करता है, **इसलिये किसी एक को राज्य में स्वाधीन न करना चाहिये। [न पुष्टं पशुं मन्यते]** जैसे—सिंह वा

मांसाहारी पुष्ट पशु को मार कर खा लेते हैं, वैसे **(राष्ट्री विशमत्ति)** स्वतन्त्र राजा प्रजा का नाश करता है अर्थात् किसी को अपने से अधिक न होने देता है। श्रीमानों को लूट-खूँट, अन्याय से दण्ड लेके अपना प्रयोजन पूरा करेगा॥१॥ इसलिये—

[सभापति होने के योग्य व्यक्ति]

इन्द्रों जयाति न परां जयाता अधिराजो राजंसु राजयातै।
चर्कृत्य ईड्यो वन्द्यंश्चोपसद्यों नमस्यो भवेह॥१॥

अथर्व०, कां० ६। अनु० १०। व० ९८। मं० १॥ [कां० ६। सू० ९८। मं० १]

हे मनुष्यो! जो **(इह)** इस मनुष्यों के समुदाय में **(इन्द्रः)** परम-ऐश्वर्य का कर्त्ता, शत्रुओं को **(जयाति)** जीत सके **(न पराजयातै)** जो शत्रुओं से पराजित न हो **(राजसु)** राजाओं में **(अधिराजः)** सर्वोपरि विराजमान **(राजयातै)** प्रकाशमान हो **(चर्कृत्यः)** सभापति होने के अत्यन्त योग्य **(ईड्यः)** प्रशंसनीय गुण-कर्म-स्वभाव-युक्त **(वन्द्यः)** सत्करणीय **(चोपसद्यः)** समीप जाने और शरण लेने योग्य **(नमस्यः)** सबका माननीय **(भव)** होवे, उसी को सभापति राजा करें॥१॥

इमं देंवाऽअसपत्नꣳ सुंवध्वं महते क्षत्रायं महते ज्यैष्ठ्यांय महते जानंराज्यायेन्द्रंस्येन्द्रियायं०॥२॥

यजुः०, अ० ९। मं० ४०॥

हे **(देवाः)** विद्वानो ! राजा-प्रजा-जनो ! तुम **(इमम्)** इस प्रकार के पुरुष को **(महते क्षत्राय)** बड़े चक्रवर्ति-राज्य **(महते ज्यैष्ठ्याय)** सबसे बड़े

होने **(महते जानराज्याय)** बड़े-बड़े विद्वानों से युक्त राज्य पालने, और **(इन्द्रस्येन्द्रियाय)** परम ऐश्वर्ययुक्त राज्य और धन के पालन के लिये **(असपत्नꣳसुवध्वम्)** सम्मति करके सर्वत्र पक्षपातरहित, पूर्णविद्या-विनययुक्त, सबके मित्र सभापति राजा को सर्वाधीश मानके, सब भूगोल को शत्रुरहित करो॥२॥ और—

[सेना उत्तम शस्त्रास्त्रों से सदा सन्नद्ध रहे]

स्थि॒रा वः॑ स॒न्त्वायु॑धा परा॒णुदे॑ वी॒ळू उ॒त प्र॑ति॒ष्कभे॑।
यु॒ष्माक॑मस्तु॒ तवि॑षी॒ पनी॑यसी॒ मा मर्त्य॑स्य मा॒यिनः॑॥३॥

ऋ०, म० १। सूक्त ३९। मं० २॥

ईश्वर उपदेश करता है कि हे राजपुरुषो ! **(वः)** तुम्हारे **(आयुधाः)** आग्नेयादि अस्त्र, शतघ्नी=तोप, भुशुण्डी=बन्दूक, धनुष-बाण, असि=तलवार आदि शस्त्र; शत्रुओं का **(पराणुदे)** पराजय करने **(उत प्रतिष्कभे)** और [उनको] रोकने के लिये **(वीळू)** प्रशंसित और **(स्थिरा)** दृढ़ **(सन्तु)** हों **(युष्माकम्)** और तुम्हारी **(तविषी)** सेना **(पनीयसी)** प्रशंसनीय **(अस्तु)** होवे कि जिससे तुम सदा विजयी होओ, परन्तु **(मा मर्त्यस्य मायिनः)** जो निन्दित=अन्यायरूप काम करता है, उसके लिये पूर्व चीजें न हों। अर्थात् **जब तक मनुष्य धार्मिक रहते हैं तभी तक राज्य बढ़ता रहता है और जब दुष्टाचारी होते हैं तब नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है।**

[तीनों सभाओं के अधिकारी वा सभासद् कैसे हों]

महाविद्वानों को विद्यासभा-अधिकारी, धार्मिक विद्वानों को धर्मसभा-अधिकारी और प्रशंसनीय धार्मिक पुरुषों को राजसभा के सभासद् और उन सब में जो उत्तम पुरुष हो, उसको राजा='सभा का पति' रूप मानके सब प्रकार से उन्नति करें। तीनों सभाओं की सम्मति से राजनीति के उत्तम नियम [बांधे] और नियमों के आधीन सब लोग वर्तें। सबके हितकारक कामों में सम्मति करें। सर्वहित करने के लिये परतन्त्र और धर्मयुक्त कामों में जो-जो निज के काम हैं, उन-उन में स्वतन्त्र रहैं।

[सभापति के गुण]

पुनः, उस सभापति के गुण कैसे हों?—

इन्द्राऽनिलयमार्काणामग्नेश्च वरुणस्य च।
चन्द्रवित्तेशयोश्चैव मात्रा निर्हृत्य शाश्वतीः॥१॥
तपत्यादित्यवच्चैष चक्षूंषि च मनांसि च।
न चैनं भुवि शक्नोति कश्चिदप्यभिवीक्षितुम्॥२॥
सोऽग्निर्भवति वायुश्च सोऽर्कः सोमः स धर्मराट्।
स कुबेरः स वरुणः स महेन्द्रः प्रभावतः॥३॥

मनु० [७। ४,६-७]॥

वह सभेश राजा **'इन्द्र'**=विद्युत् के तुल्य शीघ्र ऐश्वर्यकर्त्ता, **[अनिल=] 'वायु'** के समान सबका प्राणवत् प्रिय और हृदय की बात जाननेहारा, **'यम'**=पक्षपातरहित- न्यायाधीश के समान वर्तनेवाला, **[अर्क=] 'सूर्य'**

के समान न्याय, धर्म, विद्या का प्रकाशक, अन्धकार अर्थात् अविद्या-अन्याय का निरोधक, **'अग्नि'** के समान दुष्टों को भस्म करनेहारा, **'वरुण'** अर्थात् बांधनेवाले के सदृश दुष्टों को अनेक प्रकार से बाँधनेवाला, **'चन्द्र'** के तुल्य श्रेष्ठ पुरुषों को आनन्ददाता, **[वित्तेश=] 'धनाध्यक्ष'** के समान कोशों का पूर्ण करनेवाला **'सभापति'** होवे॥१॥

जो सूर्यवत् प्रतापी, सबके बाह्य [चक्षु आदि अंगों] और भीतरी मन को अपने तेज से तपानेहारा, जिसको पृथिवी पर करड़ी दृष्टि से देखने को कोई भी समर्थ न हो॥२॥

और जो अपने प्रभाव से अग्नि, वायु, सूर्य, सोम, धर्मप्रकाशक, धनवर्द्धक, दुष्टों का बन्धनकर्त्ता, बड़े ऐश्वर्यवाला होवे, वही 'सभाध्यक्ष'= **'सभेश'** होवे॥३॥

[सच्चा राजा=दण्ड]

सच्चा राजा कौन है—

स राजा पुरुषो दण्डः स नेता शासिता च सः।
चतुर्णामाश्रमाणां च धर्मस्य प्रतिभूः स्मृतः॥१॥
दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वा दण्ड एवाभिरक्षति।
दण्डः सुप्तेषु जागर्ति दण्डं धर्मं विदुर्बुधाः॥२॥
समीक्ष्य स धृतः सम्यक् सर्वा रञ्जयति प्रजाः।
असमीक्ष्य प्रणीतस्तु विनाशयति सर्वतः॥३॥

दुष्येयुः सर्ववर्णाश्च भिद्येरन्सर्वसेतवः।
सर्वलोकप्रकोपश्च भवेद्दण्डस्य विभ्रमात्॥४॥
यत्र श्यामो लोहिताक्षो दण्डश्चरति पापहा।
प्रजास्तत्र न मुह्यन्ति नेता चेत्साधु पश्यति॥५॥
तस्याहुः संप्रणेतारं राजानं सत्यवादिनम्।
समीक्ष्यकारिणं प्राज्ञं धर्मकामार्थकोविदम्॥६॥
तं राजा प्रणयन्सम्यक् त्रिवर्गेणाभिवर्द्धते।
कामात्मा विषमः क्षुद्रो दण्डेनैव निहन्यते॥७॥
दण्डो हि सुमहत्तेजो दुर्धरश्चाकृतात्मभिः।
धर्माद्विचलितं हन्ति नृपमेव सबान्धवम्॥८॥
सोऽसहायेन मूढेन लुब्धेनाकृतबुद्धिना।
न शक्यो न्यायतो नेतुं सक्तेन विषयेषु च॥९॥
शुचिना सत्यसन्धेन यथाशास्त्रानुसारिणा।
प्रणेतुं शक्यते दण्डः सुसहायेन धीमता॥१०॥

मनु॰ अ॰ ७। [१७-१९, २४-२८, ३०-३१]॥

जो दण्ड है, वही [राज] पुरुष, [वही] राजा; वही न्याय का प्रचारकर्त्ता, और सबका शासनकर्त्ता, वही चारों वर्णों और आश्रमों के धर्म का 'प्रतिभू' अर्थात् जामिन है॥१॥

वही प्रजा का शासनकर्त्ता, सब प्रजा का रक्षक [है और] सोते हुए प्रजास्थ मनुष्यों में जागता है, इसीलिये बुद्धिमान् लोग दण्ड को ही 'धर्म' कहते हैं॥२॥

जो दण्ड अच्छे प्रकार विचार से धारण किया जाय तो वह सब प्रजा को आनन्दित कर देता है और जो विना विचारे चलाया जाय तो सब ओर से राजा का विनाश कर देता है॥३॥

विना दण्ड के सब वर्ण दूषित और सब मर्यादायें छिन्न-भिन्न हो जायें। दण्ड के यथावत् न होने से सब लोगों का प्रकोप हो जावे॥४॥

जहाँ कृष्णवर्ण रक्तनेत्र भयङ्कर पुरुष के समान, पापों का नाश करनेहारा दण्ड विचरता है, वहां प्रजा मोह को प्राप्त न होके आनन्दित होती है, यदि [वह] दण्ड का चलानेवाला पक्षपातरहित **विद्वान्** हो तो॥५॥

जो उस दण्ड का चलानेवाला सत्यवादी; विचारके करनेहारा; बुद्धिमान्; धर्म-अर्थ और काम की सिद्धि करने में **पण्डित** राजा है; उसी को उस **'दण्ड का चलानेहारा'** विद्वान् लोग कहते हैं॥६॥

जो राजा दण्ड को अच्छे प्रकार चलाता है; वह धर्म-अर्थ और काम की सिद्धि से बढ़ाता है; और जो विषय में लम्पट, टेढ़ा, ईर्ष्या करनेहारा, क्षुद्र, नीचबुद्धि, न्यायाधीश-राजा होता है, वह दण्ड से ही मारा जाता है॥७॥

जो दण्ड बड़ा तेजोमय है, उसको अविद्वान्, अधर्मात्मा धारण नहीं कर सकता, [जब अधर्मात्मा उसको धारण करता है] तब वह दण्ड धर्म से रहित उस राजा का ही कुटुम्बसहित नाश कर देता है॥८॥

क्योंकि जो आप्त पुरुषों के सहाय्य, विद्या-सुशिक्षा से रहित, विषयों में आसक्त मूढ़ है, वह न्याय से दण्ड को चलाने में समर्थ कभी नहीं हो सकता॥९॥

और जो पवित्र-आत्मा, सत्याचार [युक्त] और सत्पुरुषों का सङ्गी, **'नीतिशास्त्र'** के अनुकूल यथावत् चलनेहारा, श्रेष्ठ पुरुषों के सहाय्य से युक्त बुद्धिमान् है, वही न्यायरूपी दण्ड को चलाने में समर्थ होता है॥१०॥
इसलिये—

[राजा, परिषद् और पारिषद की योग्यता]

सैनापत्यं च राज्यं च दण्डनेतृत्वमेव च।
सर्वलोकाधिपत्यं च वेदशास्त्रविदर्हति॥१॥
दशावरा वा परिषद् यं धर्मं परिकल्पयेत्।
त्र्यवरा वापि वृत्तस्था तं धर्मं न विचालयेत्॥२॥
त्रैविद्यो हैतुकस्तर्की नैरुक्तो धर्मपाठकः।
त्रयश्चाश्रमिणः पूर्वे परिषत्स्याद्दशावरा॥३॥
ऋग्वेदविद्यजुर्विच्च सामवेदविदेव च।
त्र्यवरा परिषज्ज्ञेया धर्मसंशयनिर्णये॥४॥
एकोऽपि वेदविद्धर्मं यं व्यवस्येद् द्विजोत्तमः।

स विज्ञेयः परो धर्मो नाज्ञानामुदितोऽयुतैः॥५॥
अव्रतानाममन्त्रणां जातिमात्रोपजीविनाम्।
सहस्रशः समेतानां परिषत्त्वं न विद्यते॥६॥
यं वदन्ति तमोभूता मूर्खा धर्ममतद्विदः।
तत्पापं शतधा भूत्वा तद्वक्तृननुगच्छति॥७॥

मनु॰ [१२। १००, ११०-११५]॥

सब सेना और सेनापतियों के ऊपर [मुख्य सेनापति का अधिकार], राज्याधिकार, दण्ड देने की व्यवस्था के सब कार्यों का अधिकार, और सबके ऊपर वर्त्तमान सर्वाधीश राजा-अधिकार, **इन चारों अधिकारों में सम्पूर्ण वेद-शास्त्रों में प्रवीण, पूर्ण विद्यावाले, धर्मात्मा, जितेन्द्रिय, सुशील जनों को स्थापित करना चाहिये। अर्थात् मुख्य सेनापति, मुख्य राज्याधिकारी, मुख्य न्यायाधीश, प्रधान अर्थात् राजा, ये चारों सब विद्याओं में पूर्ण विद्वान् होने चाहियें॥१॥**

न्यून से न्यून दश विद्वानों अथवा बहुत न्यून हों तो तीन विद्वानों की सभा जैसी व्यवस्था करे, उस 'धर्म' अर्थात् व्यवस्था का उल्लङ्घन कोई भी न करे॥२॥

इस सभा में चारों वेद [के तीन विद्वान, **'हैतुकः'**=कारण-अकारण का ज्ञाता], 'न्यायशास्त्र', 'निरुक्त', 'धर्मशास्त्र' आदि के वेत्ता विद्वान् सभासद् हों, [और तीन आश्रमी हों] परन्तु वे ब्रह्मचारी, गृहस्थ और

वानप्रस्थ हों। तब वह सभा [कहाती है] कि जिसमें दश विद्वानों से न्यून न होने चाहियें॥३॥

और जिस सभा में ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद के जाननेवाले तीन सभासद् होके [धर्म=कानूनसम्बन्धी] व्यवस्था करें, उस सभा की निर्णय की हुई व्यवस्था का भी कोई उल्लङ्घन न करे॥४॥

यदि एक अकेला सब वेदों का जाननेहारा द्विजों में उत्तम संन्यासी जिस धर्म की व्यवस्था करे, वही श्रेष्ठ धर्म है, किन्तु अज्ञानियों के सहस्रों, लाखों करोड़ों [मनुष्य भी] मिलके जो कुछ व्यवस्था करें, उसको कभी न मानना चाहिये॥५॥

जो ब्रह्मचर्य-सत्यभाषणादि-व्रत और **'वेदविद्या'** वा विचार से रहित, जन्ममात्र से शूद्रवत् वर्त्तमान हैं, उन सहस्रों मनुष्यों के मिलने से भी सभा नहीं कहाती॥६॥

अविद्यायुक्त=मूर्ख, वेदों के न जाननेवाले मनुष्य जिस धर्म को कहैं, उसको कभी न मानना चाहिये; क्योंकि जो मूर्खों के कहे हुए धर्म के अनुसार चलते हैं तो उनके पीछे सैकड़ों प्रकार के पाप लग जाते हैं॥७॥

इसलिये तीनों [सभाओं] अर्थात् **विद्यासभा, धर्मसभा** और **राज्यसभा** में मूर्खों की कभी भरती न करें; किन्तु **सदा विद्वान् और धार्मिक पुरुषों का स्थापन करें।** और सब लोग ऐसे हों—

[राजा और सभासद् जितेन्द्रिय होवें]

त्रैविद्येभ्यस्त्रयीं विद्यां दण्डनीतिं च शाश्वतीम्।
आन्वीक्षिकीं चात्मविद्यां वार्त्तारम्भाँश्च लोकतः॥१॥
इन्द्रियाणां जये योगं समातिष्ठेद्दिवानिशम्।
जितेन्द्रियो हि शक्नोति वशे स्थापयितुं प्रजाः॥२॥
दश कामसमुत्थानि तथाष्टौ क्रोधजानि च।
व्यसनानि दुरन्तानि प्रयत्नेन विवर्जयेत्॥३॥

[१० कामज और ८ क्रोधज दुर्गुण]

कामजेषु प्रसक्तो हि व्यसनेषु महीपतिः।
वियुज्यतेऽर्थधर्माभ्यां क्रोधजेष्वात्मनैव तु॥४॥
मृगयाक्षो दिवास्वप्नः परीवादः स्त्रियो मदः।
तौर्यत्रिकं वृथाट्या च कामजो दशको गणः॥५॥
पैशुन्यं साहसं द्रोह ईर्ष्यासूयार्थदूषणम्।
वाग्दण्डजं च पारुष्यं क्रोधजोऽपि गणोऽष्टकः॥६॥
द्वयोरप्येतयोर्मूलं यं सर्वे कवयो विदुः।
तं यत्नेन जयेल्लोभं तज्जावेतावुभौ गणौ॥७॥
पानमक्षाः स्त्रियश्चैव मृगया च यथाक्रमम्।
एतत्कष्टतमं विद्याच्चतुष्कं कामजे गणे॥८॥
दण्डस्य पातनं चैव वाक्पारुष्यार्थदूषणे।

क्रोधजेऽपि गणे विद्यात्कष्टमेतत्त्रिकं सदा॥९॥
सप्तकस्यास्य वर्गस्य सर्वत्रैवानुषङ्गिणः।
पूर्वं पूर्वं गुरुतरं विद्याद् व्यसनमात्मवान्॥१०॥
व्यसनस्य च मृत्योश्च व्यसनं कष्टमुच्यते।
व्यसन्यधोऽधो व्रजति स्वर्यात्यव्यसनी मृतः॥११॥

मनु॰ [७। ४३-५३]॥

राजा और राजसभा के सभासद् तब हो सकते हैं कि जब चारों वेदों की **'कर्म-उपासना-ज्ञान-विद्याओं'** के जाननेवालों से तीनों विद्यायें, सनातन **'दण्डनीति', 'न्यायविद्या', 'आत्मविद्या'** अर्थात् परमात्मा के गुण-कर्म-स्वभाव-स्वरूप को यथावत् जाननेरूप **'ब्रह्मविद्या'** और लोक से **'वार्ताओं का आरम्भ=कहना और पूछना'** सीखकर सभासद् वा सभापति हो सकें॥१॥

सब सभासद् और सभापति इन्द्रियों को जीतके अर्थात् अपने वश में रखके सदा धर्म में वर्तें और अधर्म से हटे-हटाये रहें। इसलिये रात-दिन नियत समय में योगाभ्यास भी करते रहैं। क्योंकि जो जितेन्द्रिय कि अपनी इन्द्रियों [और] जो मन, प्राण और शरीर [रूप] प्रजा है, इसको जीते विना बाहर की प्रजा को अपने वश में स्थापित करने में समर्थ कभी नहीं हो सकता॥२॥

दृढ़ोत्साही होकर जो काम से दश और क्रोध से आठ दुष्ट व्यसन कि जिनमें फसा हुआ मनुष्य कठिनता से निकल सके, उनको प्रयत्न से छोड़ और छुड़ा देवे॥३॥

क्योंकि जो राजा काम से उत्पन्न हुए दश दुष्ट व्यसनों में फसता है, वह अर्थ अर्थात् राज्य-धनादि और धर्म से रहित हो जाता है। और जो क्रोध से उत्पन्न हुए आठ बुरे व्यसनों में फसता है, वह शरीर से भी रहित हो जाता है॥४॥

काम से उत्पन्न हुए व्यसन—मृगया खेलना; **'अक्ष'**=द्यूत अर्थात् जुआ, चौपड़ खेलना आदि; दिन में सोना; काम-कथा वा दूसरे की निन्दा किया करना; स्त्रियों का अति सङ्ग; मादकद्रव्य=मद्य, अफीम, भाँग, गांजा, चरस आदि का सेवन; गाना-बजाना-नाचना=नाच करना वा करवाना और सुनना-देखना; वृथा इधर-उधर घूमते फिरना, ये दश कामोत्पन्न व्यसन हैं॥५॥

क्रोध से उत्पन्न व्यसन—'पैशुन्यम्' अर्थात् चुग़ली करना; **[साहसम्=]** बलात्कार=किसी की स्त्री से बलात् बुरा काम करना; **[द्रोहः=]** द्रोह रखना; **'ईर्ष्या'** अर्थात् दूसरे की बड़ाई वा उन्नति देख-सुन जला करना; **असूया**=दोषों में गुण, गुणों में दोषारोपण करना; **'अर्थदूषणम्'** अर्थात् अधर्मयुक्त बुरे कामों में धनादि का व्यय करना; **[वाग्दण्डजम्=]** कठोर वचन बोलना [च] और **[पारुष्यम्=]** विना

अपराध करड़ वा अधिक दण्ड देना; **[क्रोधजः०]** ये आठ दुर्गुण क्रोध से उत्पन्न होते हैं॥६॥

जिसे सब विद्वान् लोग कामजों और क्रोधजों का मूल जानते हैं कि जिससे ये सब दुर्गुण मनुष्य को प्राप्त होते हैं, उस लोभ को प्रयत्न से छोड़े॥७॥

कामज व्यसनों में बड़े दुर्गुण— एक—मद्यादि मादक द्रव्यों का सेवन; दूसरा—पासों से जुआ खेलना आदि; तीसरा—स्त्रियों का विशेष सङ्ग; चौथा—मृगया खेलना; चे चार महादुष्ट व्यसन हैं और कामजों में अत्यन्त दुःखदायक दोष हैं॥८॥

और क्रोधजों में—विना अपराध दण्ड देना, कठोर वचन बोलना और धनादि का अन्याय में खर्च करना, ये तीन क्रोध से उत्पन्न हुए बड़े दुःखदायक दोष हैं॥९॥

जो ये सात दुर्गुण दोनों कामज और क्रोधज दोषों में गिने हैं, इनमें से पूर्व-पूर्व अर्थात् व्यर्थ व्यय से कठोर वचन, कठोर वचन से अन्याय से दण्ड देना, इससे मृगया खेलना, इससे स्त्रियों का अत्यन्त सङ्ग, इससे जुआ अर्थात् द्यूत खेलना और इससे भी **मद्यादि सेवन करना बड़ा भारी दुष्ट व्यसन है॥१०॥**

इसमें यह निश्चय है कि **दुष्ट व्यसन में फसने से मर जाना अच्छा है;** क्योंकि जो दुष्टाचारी पुरुष है, यदि वह अधिक जीयेगा तो अधिक-अधिक पाप करके नीच-नीच गति अर्थात् अधिक-अधिक दुःख को प्राप्त होता जायगा और जो किसी व्यसन में नहीं फसा, वह मर भी जायगा तो भी सुख को प्राप्त होगा। इसलिये विशेषतः राजा और सब मनुष्यों को उचित है कि कभी मृगया और मद्यपानादि दुष्ट कामों में न फसें और दुष्ट व्यसनों से पृथक् होकर, धर्मयुक्त गुण-कर्म-स्वभावों में सदा वर्तके अच्छे-अच्छे काम किया करें॥११॥

[मन्त्रिगण कैसे होने चाहिएँ]

राजसभासद् और मन्त्री कैसे होने चाहियें—

मौलान् शास्त्रविदः शूरान् लब्धलक्ष्यान्कुलोद्गतान्।
सचिवान्सप्त चाष्टौ वा कुर्वीत सुपरीक्षितान्॥१॥
अपि यत्सुकरं कर्म तदप्येकेन दुष्करम्।
विशेषतोऽसहायेन किन्नु राज्यं महोदयम्॥२॥
तैः सार्द्धं चिन्तयेन्नित्यं सामान्यं सन्धिविग्रहम्।
स्थानं समुदयं गुप्तिं लब्धप्रशमनानि च॥३॥
तेषां स्वं स्वमभिप्रायमुपलभ्य पृथक्-पृथक्।
समस्तानाञ्च कार्येषु विदध्याद्धितमात्मनः॥४॥
अन्यानपि प्रकुर्वीत शुचीन् प्रज्ञानवस्थितान्।
सम्यगर्थसमाहर्तॄनमात्यान्सुपरीक्षितान्॥५॥
निवर्त्तेतास्य यावद्भिरितिकर्तव्यता नृभिः।

तावतोऽतन्द्रितान् दक्षान् प्रकुर्वीत विचक्षणान्॥६॥
तेषामर्थे नियुञ्जीत शूरान् दक्षान् कुलोद्गतान्।
शुचीनाकरकर्मान्ते भीरूनन्तर्निवेशने॥७॥

[सुयोग्य दूत की नियुक्ति]

दूतं चैव प्रकुर्वीत सर्वशास्त्रविशारदम्।
इङ्गिताकारचेष्टज्ञं शुचिं दक्षं कुलोद्गतम्॥८॥
अनुरक्तः शुचिर्दक्षः स्मृतिमान् देशकालवित्।
वपुष्मान्वीतभीर्वाग्मी दूतो राज्ञः प्रशस्यते॥९॥

मनु० ७। [५४-५७, ६०-६४]॥

स्वराज्य=स्वदेश में उत्पन्न हुए, वेदादि शास्त्रों के जाननेहारे, शूरवीर, जिनका लक्ष्य अर्थात् विचार निष्फल न हो, और कुलीन, अच्छे प्रकार परीक्षित, सात वा आठ उत्तम, धार्मिक, चतुर 'सचिवान्' अर्थात् मन्त्रियों को करे॥१॥

क्योंकि विशेषकर, सहायक के विना, जो सुगम कर्म है वह भी, एक के करने में कठिन हो जाता है, जब ऐसा है तो महान् राज्यकर्म एक से कैसे हो सकता है ? इसलिये **[किसी] एक को राजा [बनाना] और एक की बुद्धि पर राज्य के कार्य को निर्भर रखना बहुत ही बुरा काम है॥२॥**

इससे सभापति को उचित है कि नित्यप्रति उन राज्यकर्मों में कुशल विद्वान् मन्त्रियों के साथ, सामान्य करके किसी से **(सन्धिम्)** मित्रता, किसी से **(विग्रहम्)** विरोध, **(स्थानम्)** स्थिति=समय को देखके चुपचाप रहना, अपने राज्य की रक्षा करके बैठे रहना, **(समुदयम्)** जब अपना उदय अर्थात् वृद्धि हो तब दुष्ट शत्रु पर चढ़ाई करना, **(गुप्तिम्)** मूल राज्य, सेना, कोश आदि की रक्षा, **(लब्ध-प्रशमनानि)** जो-जो देश प्राप्त हो, उस-उसमें शान्तिस्थापन=उपद्रवरहित करना, इन छः गुणों का विचार नित्यप्रति किया करे॥३॥

विचार ऐसे करना कि उस सभासदों के अपने-अपने विचारों और अभिप्राय को पृथक्-पृथक् सुनकर, बहुपक्षानुसार, कार्यों में जो कार्य अपना और अन्य का हितकारक हो, वह करने लगना॥४॥

अन्य भी पवित्रात्मा, बुद्धिमान्, निश्चितबुद्धि, पदार्थों के संग्रह करने में अतिचतुर, सुपरीक्षित मन्त्री करे॥५॥

जितने मनुष्यों से राज्यकार्य सिद्ध हो सके, उतने आलस्यरहित, बलवान् और बड़े चतुर, प्रधान पुरुषों को अधिकारी अर्थात् नौकर रक्खे॥६॥

इनके आधीन शूरवीर, बलवान्, कुलोत्पन्न, पवित्र भृत्यों को बड़े-बड़े कर्मों में नियुक्त करे और भीरु=डरपुकनों को भीतर के कर्मों में नियुक्त करे॥७॥

प्रशंसित कुल में उत्पन्न, चतुर, पवित्र, हावभाव और चेष्टा से भीतर हृदय [की] और भविष्यत् में होनेवाली बात को जाननेहारे, सब शास्त्रों में विशारद=चतुर **'दूत'** को भी रक्खे॥८॥

वह ऐसा हो कि राज्यकार्य में अत्यन्त उत्साह-प्रीतियुक्त, निष्कपटी=पवित्रात्मा, चतुर, बहुत समय की बात को भी न भूलनेवाला, देश और कालानुकूल वर्त्तमान का कर्त्ता, सुन्दर रूपयुक्त, निर्भय और बड़ा वक्ता हो, वही राजा का 'दूत' होने में प्रशस्त है॥९॥

[अमात्य, नृप और दूत के अधिकार]

किस-किस को क्या-क्या अधिकार देवे—

अमात्ये दण्ड आयत्तो दण्डे वैनयिकी क्रिया।
नृपतौ कोशराष्ट्रे च दूते सन्धिविपर्ययौ॥१॥
दूत एव हि संधत्ते भिनत्त्येव च संहतान्।
दूतस्तत्कुरुते कर्म भिद्यन्ते येन मानवाः॥२॥
बुद्ध्वा च सर्वं तत्त्वेन परराजचिकीर्षितम्।
तथा प्रयत्नमातिष्ठेद्यथात्मानं न पीडयेत्॥३॥

[दुर्गों के भेद और उनका उपयोग]

धन्वदुर्गं महीदुर्गमब्दुर्गं वार्क्षमेव वा।
नृदुर्गं गिरिदुर्गं वा समाश्रित्य वसेत्पुरम्॥४॥
एकः शतं योधयति प्राकारस्थो धनुर्धरः।
शतं दशसहस्राणि तस्माद् दुर्गं विधीयते॥५॥

तत्स्यादायुधसम्पन्नं धनधान्येन वाहनैः।
ब्राह्मणैः शिल्पिभिर्यन्त्रैर्यवसेनोदकेन च॥६॥
तस्य मध्ये सुपर्याप्तं कारयेद् गृहमात्मनः।
गुप्तं सर्वर्तुकं शुभ्रं जलवृक्षसमन्वितम्॥७॥
तदध्यास्योद्वहेद्भार्यां सवर्णां लक्षणान्विताम्।
कुले महति सम्भूतां हृद्यां रूपगुणान्विताम्॥८॥

[पुरोहित और ऋत्विज् का वरण]

पुरोहितं प्रकुर्वीत वृणुयादेव चर्त्विजः।
तेऽस्य गृह्याणि कर्माणि कुर्य्युर्वैतानिकानि च॥९॥

—मनु० [७। ६५-६६,६८,७०,७४-७८]॥

अमात्य को दण्डाधिकार, दण्ड में विनय-क्रिया अर्थात् जिससे अन्यायरूप दण्ड न होने पावे, राजा के आधीन कोश और राज्यकार्य, तथा सभा के आधीन सब कार्य और दूत के आधीन किसी से मेल वा विरोध करने का अधिकार देवे॥१॥

दूत उसको कहते हैं जो फूट में मेल और मिले हुए शत्रुओं को फोड़-तोड़ देवे। दूत वह कर्म करे जिससे शत्रुओं में फूट पड़े॥२॥

वह सभापति और सब सभासद् वा दूत आदि यथार्थ से दूसरे विरोधी राजा के राज्य का अभिप्राय जानके वैसा प्रयत्न करें कि जिससे अपने को पीड़ा न हो॥३॥

इसके लिये सुन्दर जङ्गल, धन-धान्ययुक्त देश में **(धन्वदुर्गम्)** मरुभूमि में निर्मित **(महीदुर्गम्)** मट्टी से किया हुआ **(अब्दुर्गम्)** जल से घेरा हुआ **(वार्क्षम्)** अर्थात् चारों ओर वन [और] **(नृदुर्गम्)** चारों ओर सेना रहे [वैसा] **(गिरिदुर्गम्)** अर्थात् चारों ओर पहाड़ों के बीच में **दुर्गम्**=कोट बनाके इसके मध्य में नगर बनावे॥४॥

और नगर के चारों ओर **प्राकार**=प्रकोट बनावे, क्योंकि उसमें स्थित हुआ एक वीर धनुर्धारी, शस्त्रयुक्त पुरुष सौ के साथ [युद्ध कर सकता है] और सौ, दश हजार के साथ युद्ध कर सकते हैं, इसलिये दुर्ग का बनाना उत्तम है॥५॥

वह दुर्ग शस्त्रास्त्रों, धन-धान्य, वाहनों, ब्राह्मणों=जो पढ़ाने-उपदेश करनेहारे हों, **(शिल्पिभिः)** कारीगरों, यन्त्रों, नाना प्रकार की कलाओं, **(यवसेन०)** चारा, घास और जल आदि से सम्पन्न अर्थात् परिपूर्ण हो॥६॥

उसके मध्य में जल-वृक्ष-पुष्पादियुक्त, सब प्रकार से रक्षित, सब ऋतुओं में सुखकारक, श्वेतवर्ण, जिसमें सब राजकार्यों का निर्वाह हो, वैसा अपने लिये घर बनवावे॥७॥

इतना अर्थात् **ब्रह्मचर्य से विद्या पढ़के,** यहाँ तक राज्यकार्य करके, रूप-गुण= सौन्दर्य युक्त, हृदय को प्रिय, बड़े उत्तम कुल में उत्पन्न, सुन्दर

लक्षणयुक्त, अपने क्षत्रियवर्ण की कन्या जोकि विद्यादि गुण-कर्म-स्वभाव में अपने सदृश हो, **उस एक ही स्त्री से विवाह करे। दूसरी सब स्त्रियों को अगम्या समझकर दृष्टि से भी न देखे॥८॥**

पुरोहित और ऋत्विजों का स्वीकार इसलिये करे कि वे अग्निहोत्र और पक्षेष्टि आदि सब [धर्मानुष्ठान रूप] राजघर के कर्म किया करें, और आप सर्वदा राज्यकार्य में तत्पर रहै अर्थात् **यही राजा का सन्ध्योपासनादि कर्म है जो रात-दिन राज्यकार्य में प्रवृत्त रहना और कोई राज्य का काम बिगड़ने न देना॥९॥**

[विविध अध्यक्षों की नियुक्ति]

सांवत्सरिकमाप्तैश्च राष्ट्रादाहारयेद् बलिम्।
स्याच्चाम्नायपरो लोके वर्त्तेत पितृवन्नृषु॥१॥
अध्यक्षान्विविधान्कुर्यात् तत्र तत्र विपश्चितः।
तेऽस्य सर्वाण्यवेक्षेरन् नृणां कार्याणि कुर्वताम्॥२॥
आवृत्तानां गुरुकुलाद्विप्राणां पूजको भवेत्।
नृपाणामक्षयो ह्येष निधिर्ब्राह्मो विधीयते॥३॥

[संग्राम-सम्बन्धी नियम]

समोत्तमाधमै राजा त्वाहूतः पालयन् प्रजाः।
न निवर्तेत संग्रामात् क्षात्रं धर्ममनुस्मरन्॥४॥
आहवेषु मिथोऽन्योन्यं जिघांसन्तो महीक्षितः।
युध्यमानाः परं शक्त्या स्वर्गं यान्त्यपराङ्मुखाः॥५॥
न च हन्यात्स्थलारूढं न क्लीबं न कृताञ्जलिम्।

न मुक्तकेशं नासीनं न तवास्मीति वादिनम्॥६॥
न सुप्तं न विसन्नाहं न नग्नं न निरायुधम्।
नायुध्यमानं पश्यन्तं न परेण समागतम्॥७॥
नायुधव्यसनप्राप्तं नार्तं नातिपरिक्षतम्।
न भीतं न परावृत्तं सतां धर्ममनुस्मरन्॥८॥
यस्तु भीतः परावृत्तः सङ्ग्रामे हन्यते परैः।
भर्त्तुर्यद्दुष्कृतं किञ्चित्तत्सर्वं प्रतिपद्यते॥९॥
यच्चास्य सुकृतं किञ्चिदमुत्रार्थमुपार्जितम्।
भर्त्ता तत्सर्वमादत्ते परावृत्तहतस्य तु॥१०॥
रथाश्वं हस्तिनं छत्रं धनं धान्यं पशून्स्त्रियः।
सर्वद्रव्याणि कुप्यं च यो यज्जयति तस्य तत्॥११॥
राज्ञश्च दद्युरुद्धारमित्येषा वैदिकी श्रुतिः।
राज्ञा च सर्वयोधेभ्यो दातव्यमपृथग्जितम्॥१२॥

मनु० [७। ८०-८२, ८७, ८९, ९१-९७]

प्रजा से वार्षिक कर आप्तपुरुषों के द्वारा ग्रहण करे और **जो सभापतिरूप राजा आदि प्रधान पुरुष हैं वे सब [और] सभा, वेदानुकूल होकर प्रजा के साथ पिता के समान वर्तें॥१॥**

उस राज्यकार्य में विविध प्रकार के विद्वान्-अध्यक्षों को सभा नियत करे। उनका यही [देखना] काम है कि जितने-जितने जिस-जिस काम में राजपुरुष हों, वे नियमानुसार वर्त्तकर, यथावत् काम करते हैं वा नहीं। जो

यथावत् करें तो उनका सत्कार और जो विरुद्ध करें तो उनको यथावत् दण्ड किया करें॥२॥

जो राजाओं का सदा वेदप्रचाररूप अक्षय-कोष है, इसके प्रचार के लिये, जो कोई यथावत् ब्रह्मचर्य से वेदादि-शास्त्रों को पढ़कर गुरुकुल से आवे, उसका सत्कार राजसभा यथावत् करे, और उनका भी, जिनके पढ़ाये हुए वे विद्वान् होवें। इस बात के करने से राज्य में विद्या की उन्नति होकर [राज्य की] अत्यन्त उन्नति होती है॥३॥

जब कभी प्रजा का पालन करनेवाले राजा को कोई अपने से छोटा, तुल्य और उत्तम [राजा] संग्राम में आह्वान करे तो क्षत्रियों के धर्म का स्मरण करके, संग्राम में जाने से कभी निवृत्त न हो, अर्थात् बड़ी चतुराई के साथ उनसे युद्ध करे, जिससे अपना विजय हो॥४॥

जो संग्रामों में एक दूसरे को हनन करने की इच्छा करते हुए राजा लोग, जितना अपना सामर्थ्य हो, विना डर, पीठ न दिखा, युद्ध करते हैं, वे सुख को प्राप्त होते हैं। इससे [युद्ध से] विमुख कभी न हों, किन्तु कभी-कभी शत्रु को जीतने के लिये उनके सामने से छिप जाना उचित है; क्योंकि जिस प्रकार से शत्रु को जीत सके, वैसे काम करें। जैसे सिंह क्रोध से सामने आकर शस्त्राग्नि में शीघ्र भस्म हो जाता है, वैसे मूर्खता से नष्ट-भ्रष्ट न हो जावें॥५॥

युद्ध-समय में न इधर-उधर खड़े, न नपुंसक, न हाथ जोड़े हुए, न जिसके शिर के बाल खुल गये हों, न बैठे हुए, न 'मैं तेरे शरण हूं' ऐसे [कहने वाले को] को॥६॥

न सोते [हुए] न मूर्छा को प्राप्त हुए, न नग्न हुए, न आयुध से रहित, न युद्ध करते हुओं को देखनेवालों, न युद्ध न करते हुए, न शत्रु के साथी [को]॥७॥

न आयुध के प्रहार से पीड़ा को प्राप्त हुए, न दुःखी, न अत्यन्त घायल, न डरे हुए और न पलायन करते हुए पुरुष को, सत्पुरुषों के धर्म का स्मरण करते हुए योद्धा लोग कभी मारें।

किन्तु उनको पकड़कर, जो अच्छे हों [उनको] बन्दीगृह में रखे और भोजन-आच्छादन यथावत् देवे। और जो घायल हुए हों, उनकी औषधादि विधिपूर्वक करे। न उनको चिड़ावे, न दुःख देवे। जो उनके योग्य काम हो, [उनसे] करावे। **इसपर विशेष ध्यान रक्खे कि स्त्री, बालक, वृद्ध और आतुर तथा शोकयुक्त पुरुषों पर शस्त्र कभी न चलावे। उनके लड़के-बालों को अपने सन्तानों के सदृश पाले, और स्त्रियों को भी पाले। उनको अपनी मा, बहिन और कन्या के समान समझे; कभी विषयासक्ति की दृष्टि से भी न देखे। जब राज्य अच्छे प्रकार जम जाय और जिनसे पुनः युद्ध करने की शङ्का न हो, उनको सत्कारपूर्वक छोड़कर अपने- अपने घर वा देश को भेज देवे** और

जिनसे भविष्यत् काल में विघ्न होना सम्भव हो, उनको सदा कारागार में रक्खे॥८॥

और जो डरा और पलायन अर्थात् भागा हुआ भृत्य शत्रुओं से मारा जाय; वह उसके स्वामी के अपराध को प्राप्त होकर दण्डनीय होवे॥९॥

जो भागा हुआ मारा जाय, उसका सब पुण्यफल [=अच्छे कार्य से प्राप्त या अर्जित सुख-वैभव] उसके स्वामी को प्राप्त होता है। और भागे हुए की जो प्रतिष्ठा है वह सब नष्ट हो जाय अर्थात् जो उसकी प्रतिष्ठा [=सम्मानपूर्ण पद या स्थिति] है, जिससे इस लोक और परलोक में [=मर जाने पर उसका] यश होनेवाला था, उसको उसका स्वामी वापस ले ले [=छीन ले]। वह प्रतिष्ठा उसको प्राप्त हो, जिसने धर्म से यथावत् युद्ध किया हो॥१०॥

इस व्यवस्था को कभी न तोड़े कि लड़ाई में जिस-जिस सिपाही ने जो-जो रथ, घोड़े, हाथी, छत्र, धन-धान्य अन्य गाय आदि पशु और स्त्रियां तथा अन्य प्रकार के सब द्रव्य और घी, तैल आदि के कुप्पे जीते हों, वही उस-उसका ग्रहण करे॥११॥

परन्तु सेनास्थजन भी उन जीते हुए पदार्थों में से सोलहवां भाग राजा को देवें और राजा भी सेनास्थ पुरुषों, योद्धाओं को उस धन में से जो कि सबने मिलकर जीता हो, सोलहवां भाग अवश्य देवे॥

और **जो कोई युद्ध में मर गया हो, उसकी स्त्री और सन्तान को उसका भाग देवे और उसकी स्त्री तथा असमर्थ लड़कों का यथावत् पालन करे। जब उसके लड़के समर्थ हो जायें तब उनको यथायोग्य अधिकार देवे।** जो कोई अपने राज्य की रक्षा, वृद्धि, प्रतिष्ठा, विजय और आनन्दवृद्धि की इच्छा रखता हो, वह इस मर्यादा का उल्लङ्घन कभी न करे॥१२॥

[चार प्रकार का पुरुषार्थ]

अलब्धं चैव लिप्सेत लब्धं रक्षेत्प्रयत्नतः।
रक्षितं वर्द्धयेच्चैव वृद्धं पात्रेषु निःक्षिपेत्॥१॥
[एतच्चतुर्विधं विद्यात् पुरुषार्थप्रयोजनम्।
अस्य नित्यमनुष्ठानं सम्यक्कुर्यादतन्द्रितः॥२॥]
अलब्धमिच्छेद्दण्डेन लब्धं रक्षेदवेक्षया।
रक्षितं वर्द्धयेद् वृद्ध्या वृद्धं पात्रेषु निःक्षिपेत्॥३॥
अमाययैव वर्तेत न कथञ्चन मायया।
बुध्येतारिप्रयुक्तां च मायां नित्यं स्वसंवृतः॥४॥
नास्य छिद्रं परो विद्याच्छिद्रं विद्यात्परस्य तु।
गूहेत्कूर्म इवाङ्गानि रक्षेद्विवरमात्मनः॥५॥
बकवच्चिन्तयेदर्थान् सिंहवच्च पराक्रमेत्।
वृकवच्चावलुम्पेत शशवच्च विनिष्पतेत्॥६॥

[डाकू, लुटेरों को वश में करे]

एवं विजयमानस्य येऽस्य स्युः परिपन्थिनः।
तानानयेद्वशं सर्वान् सामादिभिरुपक्रमैः॥७॥

[यदि ते तु न तिष्ठेयुरुपायैः प्रथमैस्त्रिभिः।
दण्डेनैव प्रसह्यैताँश्छनकैर्वशमानयेत्॥८॥]
यथोद्धरति निर्दाता कक्षं धान्यं च रक्षति।
तथा रक्षेन्नृपो राष्ट्रं हन्याच्च परिपन्थिनः॥९॥

[प्रजा को कभी पीड़ा न देवे]

मोहाद्राजा स्वराष्ट्रं यः कर्षयत्यनवेक्षया।
सोऽचिराद् भ्रश्यते राज्याज्जीविताच्च सबान्धवः॥१०॥
शरीरकर्षणात्प्राणाः क्षीयन्ते प्राणिनां यथा।
तथा राज्ञामपि प्राणाः क्षीयन्ते राष्ट्रकर्षणात्॥११॥

[सुव्यवस्थित शासन-पद्धति]

राष्ट्रस्य संग्रहे नित्यं विधानमिदमाचरेत्।
सुसंगृहीतराष्ट्रो हि पार्थिवः सुखमेधते॥१२॥
द्वयोस्त्रयाणां पञ्चानां मध्ये गुल्ममधिष्ठितम्।
तथा ग्रामशतानां च कुर्य्याद्राष्ट्रस्य संग्रहम्॥१३॥
ग्रामस्याधिपतिं कुर्य्याद्दशग्रामपतिं तथा।
विंशतीशं शतेशं च सहस्रपतिमेव च॥१४॥
ग्रामदोषान्त्समुत्पन्नान् ग्रामिकः शनकैः स्वयम्।
शंसेद् ग्रामदशेशाय दशेशो विंशतीशिने॥१५॥
विंशतीशस्तु तत्सर्वं शतेशाय निवेदयेत्।
शंसेद् ग्रामशतेशस्तु सहस्रपतये स्वयम्॥१६॥
तेषां ग्राम्याणि कार्याणि पृथक्कार्याणि चैव हि।
राज्ञोऽन्यः सचिवः स्निग्धस्तानि पश्येदतन्द्रितः॥१७॥

नगरे नगरे चैकं कुर्यात्सर्वार्थचिन्तकम्।
उच्चैः स्थानं घोररूपं नक्षत्राणामिव ग्रहम्॥१८॥

[गुप्तचरों द्वारा सब वृत्तान्त जाने]

स तानुपरिक्रामेत् सर्वानेव सदा स्वयम्।
तेषां वृत्तं परिणयेत् सम्यग्राष्ट्रेषु तच्चरैः॥१९॥

[दुष्ट राजकर्मचारियों को कठोर दण्ड]

राज्ञो हि रक्षाधिकृताः परस्वादायिनः शठाः।
भृत्या भवन्ति प्रायेण तेभ्यो रक्षेदिमाः प्रजाः॥२०॥
ये कार्यिकेभ्योऽर्थमेव गृह्णीयुः पापचेतसः।
तेषां सर्वस्वमादाय राजा कुर्यात्प्रवासनम्॥२१॥

मनु॰, ७। [९९-[१००], १०१, १०४-१०७-[१०८], ११०-११७, १२०-१२४]॥

राजा और राजसभा अलब्ध की प्राप्ति की इच्छा और प्राप्त की प्रयत्न से रक्षा करे; रक्षित को बढ़ावे और **बढ़े हुए धन को वेदविद्या, धर्म के प्रचार, विद्यार्थीयों, वेदमार्गोपदेशकों असमर्थों तथा अनाथों के पालन में लगावे॥१॥**

इस चार प्रकार के 'पुरुषार्थ' के प्रयोजन को जाने और आलस्य छोड़कर इसका भलीभाँति नित्य अनुष्ठान करे॥२॥

दण्ड से अप्राप्त की प्राप्ति की इच्छा, नित्य देखने से प्राप्त की रक्षा [करे, और] रक्षित को वृद्धि अर्थात् ब्याज आदि से बढ़ावे और बढ़े हुए धन को पूर्वोक्त मार्ग में नित्य व्यय करे॥३॥

कदापि किसी के साथ छल से न वर्ते किन्तु निष्कपट होकर सबसे वर्त्ताव रक्खे और नित्यप्रति अपनी रक्षा करके, शत्रु के किये हुए छल को जानके [उसको] निवृत्त करे॥४॥

कोई शत्रु अपने छिद्र अर्थात् निर्बलता को न जान सके और स्वयं शत्रु के छिद्रों को जानता रहे, जैसे कछुआ अपने अङ्गों को गुप्त रखता है, वैसे शत्रु के प्रवेश करने के छिद्र को गुप्त रक्खे॥५॥

जैसे बगुला ध्यानावस्थित होकर मच्छी पकड़ने को ताकता है, वैसे अर्थसंग्रह का विचार किया करे, जिस प्रकार द्रव्य और बल की वृद्धि हो। शत्रु को जीतने के लिये सिंह के समान पराक्रम करे। चीते के समान छिपकर शत्रुओं को पकड़े और समीप में आये बलवान् शत्रुओं से सस्सा के समान दूर भाग जाय, और पश्चात् उनको छल से पकड़े॥६॥

इस प्रकार विजय करनेवाले सभापति के राज्य में जो परिपन्थी अर्थात् विरोधी- विद्रोही हों, उनको **(साम)** अर्थात् मिला लेना, **(दाम)** कुछ देकर **(भेद)** फोड़-तोड़ करके वश में करे॥७॥

और जो इनसे वश में न हों तो अतिकठिन **'दण्ड'** से वश में करे॥८॥

जैसे धान्य का निकालनेवाला छिलकों को अलगकर धान्य की रक्षा करता अर्थात् टूटने नहीं देता है, वैसे राजा, शत्रुओं को मारे और राज्य की रक्षा करे॥९॥

जो राजा मोह से, अविचार से [अन्यायपूर्वक कर ग्रहण करके] अपने राज्य को दुर्बल करता है, वह राज्य और अपने बन्धुसहित जीवने से शीघ्र नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है॥१०॥

जैसे प्राणियों के प्राण, शरीरों का कर्षण करने से क्षीण हो जाते हैं, वैसे ही प्रजा को दुर्बल करने से राजाओं के 'प्राण' अर्थात् बल-आदि, बन्धुओओं सहित नष्ट हो जाते हैं॥११॥

इसलिये राजा और राजसभा राजकार्य की सिद्धि के लिये ऐसा यत्न करें कि जिससे राजकार्य यथावत् सिद्ध हों। जो राजा राज्यपालन में तत्पर रहता है, उसका सुख सदा बढ़ता जाता है॥१२॥

इसलिये दो तीन, पांच और सौ ग्रामों के बीच में एक **'राज-स्थान'** रक्खें, जिसमें यथायोग्य भृत्य और कामदार रखके राज्य के सब कार्य पूरे करे॥१३॥

एक-एक ग्राम में एक-एक [अध्यक्ष] पुरुष को रक्खे, उन्हीं दश ग्रामों के ऊपर दूसरा, उन्हीं वीस ग्रामों के ऊपर तीसरा, उन्हीं सौ ग्रामों के ऊपर चौथा और उन्हीं सहस्र ग्रामों के ऊपर पांचवां [अध्यक्ष] पुरुष रक्खे॥

अर्थात् जैसे आजकल एक ग्राम में एक पटवारी, उन्हीं दश ग्रामों पर एक थाना और उन दो थानों पर एक बड़ा थाना और उन पांच थानों पर एक तहसील और दश तहसीलों पर एक ज़िला नियत किया है। **यह वही अपने मनु आदि के धर्मशास्त्रों से राजनीति का प्रकार लिया है**॥१४॥

इसी प्रकार प्रबन्ध करके आज्ञा देवे कि वह एक-एक ग्राम का पति, ग्रामों में नित्यप्रति जो-जो दोष उत्पन्न हों, उनको गुप्तता से 'दश ग्रामों के पति' को विदित कर दे और वह 'दश-ग्रामाधिपति' उसी प्रकार दश ग्रामों का वर्त्तमान 'वीस ग्रामों के स्वामी' को नित्यप्रति जना देवे। और 'वीस ग्रामों का अधिपति' वीस ग्रामों के वर्त्तमान को 'शतग्रामाधिपति' को नित्यप्रति निवेदन करे। वैसे ही 'सौ ग्रामों का पति' सौ ग्रामों के वर्त्तमान को आप 'सहस्राधिपति' अर्थात् 'हजार ग्रामों के स्वामी' को प्रतिदिन जनाया करे॥

अर्थात् वे एक-एक ग्राम के दश अधिपति दश ग्रामों के अधिपति को, और दश-दश ग्रामों के दोनों अधिपति 'वीस ग्रामों के स्वामी' को, और वीस-वीस ग्रामों के पांच अधिपति 'सौ ग्रामों के अध्यक्ष' को, सौ-सौ ग्रामों के दश अधिपति 'सहस्त्रग्रामों के अधिष्ठाता' को दिन- प्रतिदिन का

वर्त्तमान जनावें। और वे सहस्र-सहस्र ग्रामों के दश अधिपति 'दशसहस्र ग्रामों के अधिपति' को, और वे दश-दश हजार ग्रामों के दश अधिपति 'लक्षग्रामों की राजसभा' को प्रतिदिन का वर्त्तमान जनाया करें। और वे सब राजसभायें 'महाराजसभा' अर्थात् सार्वभौम-चक्रवर्त्ती-महाराजसभा में सब भूगोल का वर्त्तमान जनाया करें॥१५-१६॥

और दश-दश सहस्र ग्रामों पर एक-एक [अर्थात्] दो सभापति वैसे [नियत] करे जिनमें से एक राजसभा में हो, और दूसरा 'अध्यक्ष' आलस्य छोड़कर सब न्यायाधीशादि राजपुरुषों के कामों को सदा घूमकर देखता रहै॥१७॥

बड़े-बड़े नगरों में विचार करनेवाली सभा का सुन्दर, उच्च और विशाल, जैसा कि चन्द्रमा है, वैसा एक-एक घर बनावे। उसमें बड़े-बड़े विद्यावृद्ध कि जिन्होंने विद्या से सब प्रकार की परीक्षा की हो, वे बैठकर विचार किया करें। **जिन नियमों से राजा और प्रजा की उन्नति हो, वैसे-वैसे नियम और विद्या प्रकाशित किया करें॥१८॥**

जो नित्य घूमनेवाला सभापति हो, उसके आधीन सब गुप्तचर अर्थात् दूतों को रक्खे, जो राजपुरुषों और प्रजापुरुषों के साथ नित्य सम्बन्ध रखते हों, और वे भिन्न-भिन्न जाति [=समुदाय] के रहैं। उनसे सब राज [-पुरुषों] और प्रजा-पुरुषों के सब दोष और गुण गुप्तरीति से जाना करे।

जिनका अपराध हो उनको दण्ड और जिनका गुण हो उनकी प्रतिष्ठा सदा किया करे॥१९॥

[राजा द्वारा प्रजा की रक्षा के लिये नियुक्त अधिकारी प्रायः प्रजाओं के धन का हरण करनेवाले हो जाते हैं। उन धूर्त लोगों से राजा अपनी प्रजाओं की रक्षा करे।]

राजा, जिनको प्रजा की रक्षा का अधिकार देवे, वे धार्मिक, सुपरीक्षित, विद्वान्, कुलीन हों। शठ और परपदार्थ हरनेवाले चोर-डाकुओं को भी दुष्टकर्म से बचाने के लिये राज्य के नौकर करके, उन्हीं रक्षा करनेवाले विद्वानों के आधीन रखके, उनसे अपनी प्रजा की रक्षा यथावत् करे॥२०॥

जो राजपुरुष अन्याय से वादी-प्रतिवादी से गुप्त धन लेके पक्षपात से अन्याय करें, उनका सर्वस्वहरण करके, यथायोग्य दण्ड देकर, ऐसे देश में रक्खे कि पुनः जहां से लौटकर न आ सकें, और इस बात को देख-सुनके दूसरे राजपुरुष भी इस दुष्ट काम से बचे रहैं। क्योंकि यदि उसको दण्ड न दिया जाय तो उसको देखके अन्य राजपुरुष भी ऐसे दुष्ट कर्म करने लग जायें और दण्ड दिया जाय तो बचे रहैं॥

परन्तु जितने से उन राजपुरुषों का योगक्षेम भलीभाँति हो और जिससे वे धनाढ्य भी हों, उतना धन वा भूमि राज्य की ओर से मासिक वा एक वार मिला करे; और जब वृद्ध हों, उनको भी आधा मिला करे। परन्तु यह

ध्यान में रक्खे कि जब तक वे जीयें तब तक वह जीविका बनी रहै, पश्चात् नहीं। परन्तु उनके सन्तानों का सत्कार वा नौकरी उनके गुण के अनुसार अवश्य देवे। और जिसके बालक जब तक असमर्थ हों और उसकी स्त्री जीती हो, तो उन सबके निर्वाहार्थ राज्य की ओर से यथायोग्य धन मिला करे। परन्तु जो उसकी स्त्री वा लड़के कुकर्मी हो जायें तो कुछ भी न मिले, ऐसी नीति राजा बराबर रक्खे॥२१॥

[कर-ग्रहण का प्रकार]

यथा फलेन युज्येत राजा कर्त्ता च कर्मणाम्।
तथाऽवेक्ष्य नृपो राष्ट्रे कल्पयेत् सततं करान्॥१॥
यथाऽल्पाऽल्पमदन्त्याद्यं वार्योकोवत्सषट्पदाः।
तथाऽल्पाऽल्पो ग्रहीतव्यो राष्ट्राद्राज्ञाब्दिकः करः॥२॥
नोच्छिन्द्यादात्मनो मूलं परेषां चातितृष्णया।
उच्छिन्दन् ह्यात्मनो मूलमात्मानं ताँश्च पीडयेत्॥३॥
तीक्ष्णश्चैव मृदुश्च स्यात् कार्यं वीक्ष्य महीपतिः।
तीक्ष्णश्चैव मृदुश्चैव राजा भवति सम्मतः॥४॥

[चोर डाकुओं से प्रजा की रक्षा]

एवं सर्वं विधायेदमितिकर्त्तव्यमात्मनः।
युक्तश्चैवाप्रमत्तश्च परिरक्षेदिमाः प्रजाः॥५॥
विक्रोशन्त्यो यस्य राष्ट्राद्ह्रियन्ते दस्युभिः प्रजाः।
सम्पश्यतः सभृत्यस्य मृतः स न तु जीवति॥६॥
क्षत्रियस्य परो धर्मः प्रजानामेव पालनम्।
निर्दिष्टफलभोक्ता हि राजा धर्मेण युज्यते॥७॥

मनु०, अ० ७। [१२८-१२९,१३९-१४०,१४२-१४४]॥

जैसे राजा और कर्मों का कर्त्ता राजपुरुष और प्रजाजन सुखरूप फल से युक्त होवें, वैसे विचार करके राजा तथा राजसभा राज्य में **'कर'** स्थापन करे॥१॥

जैसे जोंक, बछड़ा और भमरा थोड़े-थोड़े भोग्य पदार्थ को ग्रहण करते हैं, वैसे राजा प्रजा से थोड़ा-थोड़ा वार्षिक कर लेवे॥२॥

अतिलोभ से अपने और दूसरों के सुख के मूल को उच्छिन्न अर्थात् नष्ट कदापि न करे क्योंकि जो व्यवहार और सुख के मूल का छेदन करता है, वह अपने को और उनको पीड़ा ही देता है॥३॥

जो महीपति कार्य को देखकर तीक्ष्ण और कोमल भी होवे, वह दुष्टों पर तीक्ष्ण और श्रेष्ठों पर कोमल रहने से अतिमाननीय होता है॥४॥

इस प्रकार सब राज्य का प्रबन्ध करके सदा इसमें युक्त और प्रमादरहित होकर राजा अपनी प्रजा का पालन निरन्तर करे॥५॥

भृत्यसहित देखते हुए जिस राजा के राज्य से डाकू लोग रोती, विलाप करती प्रजा के पदार्थों और प्राणों को हरते रहते हैं, वह जानो

भृत्य-अमात्यसहित मृतक है, जीता नहीं; और महादुःख को पानेवाला है॥६॥

इसलिये **राजाओं का 'प्रजा का पालन ही करना ही' परमधर्म है।** और जो **मनुस्मृति** के सप्तमाध्याय में **'कर'** लेना लिखा है, और जैसा सभा नियत करे, उसका भोक्ता राजा धर्म से युक्त होकर सुख पाता है, इससे विपरीत दुःख को प्राप्त होता है॥७॥

[राजा की दिनचर्या; मन्त्रियों से मन्त्रणा]

उत्थाय पश्चिमे यामे कृतशौचः समाहितः।
हुताग्निर्ब्राह्मणांश्चार्च्य प्रविशेत्स शुभां सभाम्॥१॥
तत्र स्थितः प्रजाः सर्वाः प्रतिनन्द्य विसर्जयेत्।
विसृज्य च प्रजाः सर्वा मन्त्रयेत्सह मन्त्रिभिः॥२॥
गिरिपृष्ठं समारुह्य प्रासादं वा रहोगतः।
अरण्ये निःशलाके वा मन्त्रयेदविभावितः॥३॥
यस्य मन्त्रं न जानन्ति समागम्य पृथग्जनाः।
स कृत्स्नां पृथिवीं भुङ्क्ते कोशहीनोऽपि पार्थिवः॥४॥

मनु॰, अ० ७ [१४५-१४८]॥

जब पिछली प्रहर रात्रि रहै तब उठ, शौच [आदि से निवृत्त] और सावधान होकर परमेश्वर का ध्यान, **अग्निहोत्र**, धार्मिक विद्वानों का सत्कार और भोजन करके, सभा में प्रवेश करे॥१॥

वहाँ [बैठ] वा खड़ा रहकर जो प्रजाजन उपस्थित हों, उनको मान्य दे। फिर उनको विदा करके, मुख्यमन्त्री के साथ राज्यव्यवस्था का विचार करे॥२॥

पश्चात् उनके साथ घूमने को चला जाय। पर्वत के शिखर अथवा एकान्त घर वा जङ्गल जिसमें एक शलाका भी न हो, वैसे एकान्त स्थान में बैठकर, विरुद्ध भावना को छोड़, मन्त्रियों के साथ विचार करे॥३॥

जिस राजा के गूढ़ विचार को [मन्त्रियों से भिन्न] अन्य जन [उनसे घुल-] मिलकर नहीं जान सकते अर्थात् जिसका विचार गम्भीर, शुद्ध, परोपकारार्थ सदा गुप्त रहै, वह धनहीन भी राजा सब पृथिवी का राज्य करने में समर्थ होता है। इसलिये अपने मन से एक भी काम न करे कि जब तक सभासदों की अनुमति न हो॥४॥

[सन्धि-विग्रहादि ६ उपायों का प्रयोग]

आसनं चैव यानं च सन्धिं विग्रहमेव च।
कार्यं वीक्ष्य प्रयुञ्जीत द्वैधं संश्रयमेव च॥१॥
सन्धिं तु द्विविधं विद्याद्राजा विग्रहमेव च।
उभे यानासने चैव द्विविधः संश्रयः स्मृतः॥२॥
समानयानकर्मा च विपरीतस्तथैव च।
तदात्वायतिसंयुक्तः सन्धिर्ज्ञेयो द्विलक्षणः॥३॥
स्वयंकृतश्च कार्यार्थमकाले काल एव वा।
मित्रस्य चैवापकृते द्विविधो विग्रहः स्मृतः॥४॥

एकाकिनश्चात्ययिके कार्ये प्राप्ते यदृच्छया।
संहतस्य च मित्रेण द्विविधं यानमुच्यते॥५॥
क्षीणस्य चैव क्रमशो दैवात्पूर्वकृतेन वा।
मित्रस्य चानुरोधेन द्विविधं स्मृतमासनम्॥६॥
बलस्य स्वामिनश्चैव स्थितिः कार्यार्थसिद्धये।
द्विविधं कीर्त्यते द्वैधं षाड्गुण्यगुणवेदिभिः॥७॥
अर्थसम्पादनार्थं च पीड्यमानस्य शत्रुभिः।
साधुषु व्यपदेशार्थं द्विविधः संश्रयः स्मृतः॥८॥
यदावगच्छेदायत्यामाधिक्यं ध्रुवमात्मनः।
तदात्वे चाल्पिकां पीडां तदा सन्धिं समाश्रयेत्॥९॥
यदा प्रहृष्टा मन्येत सर्वास्तु प्रकृतीर्भृशम्।
अत्युच्छ्रितं तथात्मानं तदा कुर्वीत विग्रहम्॥१०॥
यदा मन्येत भावेन हृष्टं पुष्टं बलं स्वकम्।
परस्य विपरीतं च तदा यायाद्रिपुं प्रति॥११॥
यदा तु स्यात्परिक्षीणो वाहनेन बलेन च।
तदासीत प्रयत्नेन शनकैः सान्त्वयन्नरीन्॥१२॥
मन्येतारिं यदा राजा सर्वथा बलवत्तरम्।
तदा द्विधा बलं कृत्वा साधयेत्कार्यमात्मनः॥१३॥
यदा परबलानां तु गमनीयतमो भवेत्।
तदा तु संश्रयेत् क्षिप्रं धार्मिकं बलिनं नृपम्॥१४॥
निग्रहं प्रकृतीनां च कुर्याद् योऽरिबलस्य च।
उपसेवेत तं नित्यं सर्वयत्नैर्गुरुं यथा॥१५॥

यदि तत्रापि सम्पश्येद् दोषं संश्रयकारितम्।
सुयुद्धमेव तत्रापि निर्विशङ्कः समाचरेत्॥१६॥

मनु॰ [७। १६१-१७६]॥

[राजा के षड्गुण और उनके भेद—]

सब राजादि राजपुरुषों को यह बात लक्ष्य में रखने योग्य है [कि]—जो **(आसनम्)** स्थिरता [=शान्त होकर बैठे रहना] **(यानम्)** शत्रु से लड़ने के लिये जाना, **(सन्धिम्)** उनसे मेल कर लेना, **(विग्रहम्)** दुष्ट शत्रुओं से लड़ाई करना, **(द्वैधम्)** दो प्रकार की सेना करके स्वविजय कर लेना, **(संश्रयम्)** और निर्बलता में दूसरे प्रबल राजा का आश्रय लेना, ये छः प्रकार के कर्म [हैं]। कार्य को विचारकर उसमें [स्वयं को] यथायोग्य युक्त करना चाहिये॥१॥

राजा, जो सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव और संश्रय दो-दो प्रकार के होते है, उनको यथावत् जाने॥२॥

(सन्धि—) तदात्व=तात्कालिक और आयति=भविष्य के लाभ की इच्छा से, किसी राजा से सन्धि करके उससे मिलकर एक साथ किसी शत्रु पर आक्रमण करना **'समानयानकर्मा'**, और शत्रु पर पृथक्-पृथक आक्रमण करना **'असमानयानकर्मा'**, यह दो प्रकार की **'सन्धि'** जाननी चाहिये॥३॥

(विग्रह—) कार्यसिद्धि के लिये उचित समय वा अनुचित समय में स्वयं किया [विरोध=युद्ध] वा मित्र [राजा] का अपराध करने वाले शत्रु के साथ [किया] 'विरोध', यह दो प्रकार का [विग्रह] जानना चाहिये॥४॥

(यान—) अकस्मात् शत्रु राजा पर कोई आपत्ति आ जाने पर एकाकी वा मित्र राजा के साथ मिलके शत्रु की ओर [युद्धार्थ] जाना, यह दो प्रकार का 'गमन' [=यान] कहाता है॥५॥

[आसन—] [दैवी विपत्ति के कारण] स्वयं वा किसी [पूर्वकृत बुरे कर्म के बुरे फल के कारण जब किसी राजा का बल आदि] क्षीण हो जाय अर्थात् निर्बल हो जाय [तब उसको] अथवा मित्र राजा के कहने पर शत्रु राजा को एकस्थान पर घेरकर बैठ रहना, यह दो प्रकार का **'आसन'** कहाता है॥६॥

[द्वैध—] कार्यसिद्धि के लिये सेनापतियों और सेना के दो विभाग करके विजय करना, दो प्रकार का **'द्वैध'** कहाता है॥७॥

[संश्रय—] एक, किसी [शत्रु द्वारा पीड़ित किये जाने पर उस तात्कालिक पीड़ा की निवृत्ति आदि] की सिद्धि के लिये किसी बलवान् राजा वा किसी महात्मा की शरण लेना, [दूसरा, भविष्य के लिए किसी बलवान् राजा की शरण ग्रहण करना, जिससे भविष्य में किसी] शत्रु से पीड़ित न हो। यह दो प्रकार का **'आश्रय लेना'** कहाता है॥८॥

[सन्धि आदि षड्गुणों के प्रयोग का उचित समय—]

[सन्धि—] जब यह जान ले कि इस समय शत्रु से सन्धि करने से थोड़ी पीड़ा [वा हानि] प्राप्त होगी, और पश्चात् [युद्ध] करने से अपनी वृद्धि और विजय अवश्य होगा, तब शत्रु से मेल करके उचित समय तक धीरज करे॥९॥

[विग्रह—] जब अपनी सब प्रजा वा सेना [को] अत्यन्त प्रसन्न, उन्नतिशील और [शत्रु की सेना आदि से] श्रेष्ठ जाने, वैसा अपने को भी समझे, तभी शत्रु से विग्रह=युद्ध कर लेवे॥१०॥

[यान—] जब अपने बल अर्थात् सेना को हर्ष और पुष्टि-युक्त जाने, और शत्रु का बल अपने से विपरीत=निर्बल जाने, तब शत्रु की ओर युद्ध करने के लिये जावे॥११॥

[आसन—] जब [राजा अपनी] सेना=बल, वाहनों से क्षीण हो जाय तब शत्रुओं को प्रयत्न से धीरे-धीरे शान्त करता हुआ अपने स्थान पर [चुप होकर] बैठा रहै॥१२॥

[द्वैधीभाव—] जब राजा, शत्रु [के आक्रमण] को अत्यन्त बलवान् जाने तब द्विगुणा वा दो विभागों में सेना को करके अपना [विजय] कार्य सिद्ध करे॥१३॥

[संश्रय—] जब [राजा निश्चयपूर्वक यह] समझ लेवे कि अब शीघ्र शत्रुओं की चढ़ाई मुझ पर होगी, [और मेरा पराजय अवश्य होगा], तब किसी धार्मिक बलवान् राजा का आश्रय शीघ्र ले लेवे॥१४॥

जो राजा, जिसकी प्रजा और जिसकी सेना का और जिसके शत्रु के बल का निग्रह करे अर्थात् नियन्त्रित करे, दुर्बल राजा उसकी सेवा सब यत्नों से गुरु के सदृश नित्य किया करे॥१५॥

[दुर्बल राजा] जिसका आश्रय लेवे, उस सेवित पुरुष के भी [आश्रय वा] कर्मों में यदि दोष देखे, तो [उसके आश्रय को छोड़कर फिर] निःशङ्क होकर युद्ध को ही अच्छे प्रकार से करे॥१६॥

जो धार्मिक राजा हो, उससे विरोध कभी न करे किन्तु उससे सदा मेल रक्खे, और जो [राजा] प्रबल दुष्ट हो, उसी को जीतने के लिये ये पूर्वोक्त प्रयोग करने उचित हैं।

[मित्र उदासीन तथा शत्रुओं को बढ़ने न दे]

सर्वोपायैस्तथा कुर्यान्नीतिज्ञः पृथिवीपतिः।
यथास्याभ्यधिका न स्युर्मित्रोदासीनशत्रवः॥१॥
आयतिं सर्वकार्याणां तदात्वं च विचारयेत्।
अतीतानां च सर्वेषां गुणदोषौ च तत्त्वतः॥२॥
आयत्यां गुणदोषज्ञस्तदात्वे क्षिप्रनिश्चयः।
अतीते कार्यशेषज्ञः शत्रुभिर्नाभिभूयते॥३॥

यथैनं नाभिसंदध्युर्मित्रोदासीनशत्रवः।
तथा सर्वं संविदध्यादेष सामासिको नयः॥४॥

मनु० ७, [१७७-१८०]॥

नीति को जाननेवाला पृथिवीपति राजा, जिस प्रकार उसके मित्र, उदासीन और शत्रु अधिक न हों, ऐसे सब उपायों से वर्ते॥१॥

सब कार्यों का वर्त्तमान में कर्त्तव्य, और भविष्यत् में जो-जो करना चाहिये, और जो काम कर चुके, उन सबके गुण-दोषों को यर्थाथता से विचारे॥२॥

पश्चात् दोषों के निवारण और गुणों की स्थिरता में यत्न करे। जो राजा भविष्यत् अर्थात् आगे करनेवाले कर्मों में गुण-दोषों का ज्ञाता, वर्त्तमान में तुरन्त निश्चय का कर्त्ता, और किये हुए कार्यों में शेष कर्त्तव्य को जानता है, वह शत्रुओं से पराजय को प्राप्त कभी नहीं होता॥३॥

राजपुरुष, [और] विशेषतः सभापति राजा सब प्रकार से ऐसा प्रयत्न करें कि जिस प्रकार राजा-आदि जनों के मित्र, उदासीन और शत्रु, [उनको] वश में करके अन्यथा न करावें। ऐसे मोह में कभी न फसे। यही संक्षेप से 'नय' अर्थात् राजनीति कहाती है॥४॥

[युद्धार्थ प्रस्थान से पूर्व के कार्य]

कृत्वा विधानं मूले तु यात्रिकं च यथाविधि।
उपगृह्यास्पदं चैव चारान् सम्यग्विधाय च॥१॥

संशोध्य त्रिविधं मार्गं षड्विधं च बलं स्वकम्।
सांपरायिककल्पेन यायादरिपुरं शनैः॥२॥
शत्रुसेविनि मित्रे च गूढे युक्ततरो भवेत्।
गतप्रत्यागते चैव स हि कष्टतरो रिपुः॥३॥

[विविध प्रकार के व्यूहों की रचना]

दण्डव्यूहेन तन्मार्गं यायात्तु शकटेन वा।
वराहमकराभ्यां वा सूच्या वा गरुडेन वा॥४॥
यतश्च भयमाशङ्केत् ततो विस्तारयेद् बलम्।
पद्मेन चैव व्यूहेन निविशेत सदा स्वयम्॥५॥
सेनापतिबलाध्यक्षौ सर्वदिक्षु निवेशयेत्।
यतश्च भयमाशङ्केत् प्राचीं तां कल्पयेद्दिशम्॥६॥
गुल्मांश्च स्थापयेदाप्तान् कृतसंज्ञान् समन्ततः।
स्थाने युद्धे च कुशलानभीरूनविकारिणः॥७॥
संहतान् योधयेदल्पान् कामं विस्तारयेद् बहून्।
सूच्या वज्रेण चैवैतान् व्यूहेन व्यूह्य योधयेत्॥८॥
स्यन्दनाश्वैः समे युध्येदनूपे नौद्विपैस्तथा।
वृक्षगुल्मावृते चापैरसिचर्मायुधैः स्थले॥९॥
प्रहर्षयेद् बलं व्यूह्य ताँश्च सम्यक् परीक्षयेत्।
चेष्टाश्चैव विजानीयादरीन् योधयतामपि॥१०॥
उपरुध्यारिमासीत राष्ट्रं चास्योपपीडयेत्।
दूषयेच्चास्य सततं यवसान्नोदकेन्धनम्॥११॥
भिन्द्याच्चैव तडागानि प्राकारपरिखास्तथा।

समवस्कन्दयेच्चैनं रात्रौ वित्रासयेत्तथा॥१२॥

[पराजित शत्रु के साथ यथायोग्य व्यवहार करे]

प्रमाणानि च कुर्वीत तेषां धर्मान्यथोदितान्।
रत्नैश्च पूजयेदेनं प्रधानपुरुषैः सह॥१३॥
आदानमप्रियकरं दानञ्च प्रियकारकम्।
अभीप्सितानामर्थानां काले युक्तं प्रशस्यते॥१४॥

मनु॰ ७ [१८४-१९२, १९४-१९६, २०३-२०४]॥

जब राजा शत्रुओं के साथ युद्ध करने को जावे तब अपने राज्य की रक्षा और यात्रा की सब सामग्री का प्रबन्ध यथाविधि करके, सब सेना, यान, वाहन, शस्त्रास्त्रादि पूर्ण लेकर, सर्वत्र दूतों अर्थात् चारों ओर के समाचारों को देनेवाले पुरुषों का गुप्त स्थापन करके, शत्रुओं की ओर युद्ध करने को जावे॥१॥

तीन प्रकार के मार्गों अर्थात् एक स्थल (भूमि) को, दूसरा जल=समुद्र वा नदियों को, तीसरा आकाशमार्ग को शुद्ध बनाकर, भूमिमार्ग पर रथ, अश्व, हाथी से; जल में नौका और आकाश में विमानादि यानों से जावे। और पैदल, रथ, हाथी-घोड़े, शस्त्र-अस्त्र और खान-पानादि सामग्री को यथावत् साथ ले, 'बल'-आदि को पूर्ण करके, किसी निमित्त को प्रसिद्ध करके, शत्रु के नगर के समीप धीरे-धीरे जावे॥२॥

जो भीतर से शत्रु से मिला हो और अपने साथ भी ऊपर से मित्रता रक्खे, गुप्तता से शत्रु को भेद देवे, उसके आने-जाने में, उससे बात करने में

अत्यन्त सावधानी रक्खे; क्योंकि **'भीतर शत्रु, ऊपर मित्र'** पुरुष को बड़ा शत्रु समझना चाहिये॥३॥

सब राजपुरुषों को युद्ध करने की विद्या सिखावे और आप सीखे, तथा अन्य प्रजाजनों को सिखावे। जो पूर्व शिक्षित योद्धा होते हैं, वे ही अच्छे प्रकार लड़ना-लड़ाना जानते हैं। जब शिक्षा करे तब **(दण्डव्यूहेन)** दण्डे के समान सेना को चलावे, **(शकटेन)** जैसे शकट अर्थात् गाड़ी के समान, **(वराह-)** जैसे सुअर एक दूसरे के पीछे दौड़ते जाते और कभी-कभी सब मिलकर झुण्ड हो जाते हैं, वैसे **(मकराभ्याम्)** जैसे मगर पानी में चलते हैं, वैसे सेना को बनावे, **(सूच्या)** जैसे सूई का अग्रभाग सूक्ष्म पश्चात् स्थूल और उससे सूत्र स्थूल होता है, वैसी शिक्षा से सेना को बनावे, **[गरुडेन]** और जैसे नीलकण्ठ ऊपर-नीचे झपट मारता है, इस प्रकार सेना को बनाकर लड़ावे॥४॥

जिधर से भय विदित हो उसी ओर सेना को फैलावे। सेना के सब पतियों को चारों ओर रखके **'पद्मव्यूह'** अर्थात् चारों ओर सेनाओं को पद्म के आकार में रखके मध्य में आप रहै॥५॥

सेनापति और बलाध्यक्ष अर्थात् आज्ञा देनेवाले और सेना के साथ लड़ने-लड़ानेवाले वीरों को आठों दिशाओं में रक्खे। जिस ओर से [शत्रु से] लड़ाई होती हो, उसी ओर सब सेना का मुख रक्खे। परन्तु दूसरी ओर भी

पक्का प्रबन्ध रक्खे। नहीं तो पीछे वा पार्श्व से शत्रु की घात होना सम्भव होता है॥६॥

जो गुल्म अथार्त् दृढ़ स्तम्भों के तुल्य, **'युद्धविद्या'** से सुशिक्षित, धार्मिक, स्थित होने और युद्ध करने में चतुर, भयरहित [हों], और जिनके मन में किसी प्रकार का विकार न हो, उनको सेना के चारों ओर रक्खे॥७॥

जो थोड़े पुरुषों से बहुतों के साथ युद्ध करना हो तो मिलकर लड़ावे और काम पड़े तो उन्हीं को झट फैला दे। जब नगर, दुर्ग वा शत्रु की सेना में प्रविष्ट होकर युद्ध करना हो तो तब **'सूचीव्यूह'** अथवा **'वज्रव्यूह'** जैसे दुधारा खड्ग, [होता है वैसे] दोनों ओर युद्ध करते जायें और प्रविष्ट भी होते चलें। वैसे अनेक प्रकार के व्यूह अर्थात् सेना को बनाकर लड़ावे। जो सामने शतघ्नी=तोपें, वा भुशुण्डी=बन्दूकें छूट रही हों, तो **'सर्पव्यूह'** अर्थात् सर्प के तुल्य सोते-सोते चले जायें, जब तोपों के पास पहुंचें तब उनको मार वा पकड़ तोपों का मुख शत्रुओं की ओर फेर, उन्हीं तोपों और बन्दूकों से उनको मारें; अथवा वृद्ध पुरुषों को तोपों के मुख के सामने घोड़ों पर सवार करा आगे दौड़ावें, जो शत्रुओं को मारें, उनके पीछे अच्छे-अच्छे सवार रहैं; एक वार धावा कर शत्रु की सेना को छिन्न-भिन्न कर पकड़ लें, अथवा भगा दें॥८॥

जो समभूमि में युद्ध करना हो तो रथों, घोड़ों और पदातियों से; और जो समुद्र में युद्ध करना हो तो नौकाओं से; और थोड़े जल में हाथियों पर;

वृक्षों और झाड़ियों में बाणों से तथा स्थल-बालू में तलवारों और ढालों से युद्ध करे-करावें॥९॥

जिस समय युद्ध होता हो, उस समय लड़नेवालों को उत्साहित और हर्षित करे। और जब युद्ध बन्द हो जाय तब जिससे शौर्य और युद्ध में उत्साह हो, वैसे वक्तृत्वों से सबके चित्त को बढ़ावे। अपने से भी अधिक लड़नेवालों को खान-पान, अस्त्र- शस्त्र-सहाय्य और औषधादि से प्रसन्न रक्खे। व्यूह के विना लड़ाई न करे-न करावे; लड़ती हुई अपनी सेना की चेष्टा को देखा करे कि ठीक-ठीक लड़ती है वा कपट रखती है॥१०॥

किसी समय उचित समझे तो शत्रु को चारों ओर से घेरकर रोक रक्खे और उसके राज्य को पीड़ित करे। शत्रु के चारा, अन्न, जल और इन्धन को दूषित वा नष्ट कर दे॥११॥

शत्रु के तालाब, नगर के प्रकोट और खाई को तोड़-फोड़ दे। रात्रि में उनको त्रास=भय देकर जीतने का उपाय करे॥१२॥

जीतकर उनके साथ प्रमाण अर्थात् प्रतिज्ञादि लिखा लेवे। और जो उचित समय समझे तो उसी के वंशस्थ किसी धार्मिक पुरुष को राजा करदे और उससे लिखा लेवे कि **'तुमको हमारी आज्ञा के अनुकूल अर्थात् जैसी धर्मयुक्त राजनीति है, उसके अनुसार चलके न्याय से प्रजा का पालन करना होगा',** ऐसे उपदेश करे। और ऐसे पुरुष उसके पास रक्खे

कि जिससे पुनः उपद्रव न हो। और जो हार जाय, उसका सत्कार प्रधान पुरुषों के साथ मिलकर रत्नादि उत्तम पदार्थों के दान से करे और ऐसा न करे कि जिससे उसका योगक्षेम भी न हो। जो उसको कैद करे तो भी उस राजा का सत्कार यथायोग्य रक्खे, जिससे वह हारने के शोक से रहित होकर आनन्द में रहै॥१३॥

क्योंकि संसार में दूसरे का पदार्थ ग्रहण करना अप्रीति और देना प्रीति का कारण है, और विशेष करके समय पर उचित क्रिया करना और उस पराजित के मनोवाञ्छित पदार्थों का देना बहुत उत्तम है। और कभी उसको चिड़ावे नहीं, न ठट्ठा करे, न उसके सामने 'हमने तुझको पराजित किया है' ऐसा कहै। किन्तु 'आप हमारे भाई हैं' इत्यादि मान्य-प्रतिष्ठा सदा रक्खे॥१४॥

[लाभदायक मित्र]

हिरण्यभूमिसम्प्राप्त्या पार्थिवो न तथैधते।
यथा मित्रं ध्रुवं लब्ध्वा कृशमप्यायतिक्षमम्॥१॥
धर्मज्ञं च कृतज्ञं च तुष्टप्रकृतिमेव च।
अनुरक्तं स्थिरारम्भं लघुमित्रं प्रशस्यते॥२॥

[कष्टदायक शत्रु]

प्राज्ञं कुलीनं शूरं च दक्षं दातारमेव च।
कृतज्ञं धृतिमन्तञ्च कष्टमाहुररिं बुधाः॥३॥
आर्यता पुरुषज्ञानं शौर्यं करुणवेदिता।
स्थौललक्ष्यं च सततमुदासीनगुणोदयः॥४॥

मनु॰ [७। २०८-२११]॥

मित्र का लक्षण—राजा सुवर्ण और भूमि की प्राप्ति से वैसा नहीं बढ़ता कि जैसे निश्चल प्रेमयुक्त भविष्यत् की बातों को सोचने और कार्य सिद्ध करनेवाले समर्थ मित्र अथवा दुर्बल मित्र को भी प्राप्त होके बढ़ता है॥१॥

धर्म को जानने, कृतज्ञ=किये हुए उपकार को सदा माननेवाले, प्रसन्न-स्वभाव, अनुरागी, स्थिरारम्भी, लघु=छोटे भी मित्र को प्राप्त होकर प्रशंसित होता है॥२॥

सदा इस बात को दृढ़ रक्खे कि बुद्धिमान्, कुलीन, शूरवीर, चतुर, दाता, किये हुए को जाननेहारे और धैर्यवान् पुरुष को शत्रु कभी न बनावे; क्योंकि जो ऐसे को शत्रु बनावेगा, वह दुःख पावेगा॥३॥

उदासीन का लक्षण—जिसमें प्रशंसित गुणयुक्तता, अच्छे-बुरे मनुष्यों का ज्ञान, शूरवीरता और करुणा भी [हो]; स्थूललक्ष्य अर्थात् ऊपर-ऊपर की बातें को निरन्तर बनाया करे, वह **'उदासीन'** कहाता है॥४॥

एवं सर्वमिदं राजा सह सम्मन्त्र्य मन्त्रिभिः।
व्यायाम्याप्लुत्य मध्याह्ने भोक्तुमन्तःपुरं विशेत्॥१॥

मनु० [७। २१६]॥

पूर्वोक्त प्रातःकाल-समय उठ, शौचादि, [से निवृत्त होकर व्यायामशाला में जा व्यायाम और स्नान आदि दिनचर्या करे। फिर] सन्ध्योपासन [कर

और] अग्निहोत्र कर वा करा; सब मन्त्रियों से विचार कर, सभा में जा [तत्पश्चात् मध्याह्न-भोजन के लिये अन्तःपुर में प्रवेश करे। भोजनोपरान्त विश्राम करके यथासमय] सेना में जा, सब भृत्यों और सेनाध्यक्षों के साथ मिल, उनको हर्षित कर, नाना प्रकार की व्यूहशिक्षा अर्थात् कवायद कर-करा, सब घोड़े, हाथी, गाय आदि स्थानों, शस्त्रों और अस्त्रों के कोश अर्थात् आयुधालय, धन के कोशों को देख, सब पर दृष्टि नित्यप्रति देकर जो कुछ उनमें खोट हो उनको निकाल, व्यायामशाला में जा व्यायाम करके, [सायंकालीन] भोजन के लिये 'अन्तःपुर' अर्थात् पत्नी आदि के निवासस्थान में प्रवेश करे। और भोजन सुपरीक्षित, बुद्धि-बल-पराक्रम-वर्द्धक, रोगविनाशक, अनेक प्रकार के अन्न, व्यञ्जन, पान आदि सुगन्धित, मिष्टादि अनेक रसयुक्त उत्तम करे कि जिससे सदा सुखी रहै। इस प्रकार सब राज्य के कार्यों की उन्नति किया करे॥१॥

प्रजा से कर लेने का प्रकार—

पञ्चाशद्भाग आदेयो राज्ञा पशुहिरण्ययोः।
धान्यानामष्टमो भागः षष्ठो द्वादश एव वा॥

मनु०, अ० ७। [१३०]॥

जो व्यापार करनेवाले वा शिल्पी को सुवर्ण चांदी [एवं पशु] का जितना लाभ हो उसमें से पचासवां भाग, चावल आदि अन्नों में छठा, आठवां वा बारहवां भाग लिया करे॥

और जो धन लेवे तो भी उस प्रकार लेवे कि **जिससे किसान आदि खाने-पीने और धन से रहित होकर दुःख न पावें।**

[राजा और प्रजा का सम्बन्ध]

क्योंकि प्रजा के धनाढ्य, आरोग्यवान् [होने और] खान-पान आदि से सम्पन्न रहने पर राजा की बड़ी उन्नति होती है। **प्रजा को अपने सन्तान के सदृश सुख देवे और प्रजा अपने पिता सदृश राजा और राजपुरुषों को जाने। यह बात ठीक है कि राजाओं के राजा किसान आदि परिश्रम करनेवाले हैं और राजा उनका रक्षक है। जो प्रजा न हो तो राजा किसका, और राजा न हो तो प्रजा किसकी कहावे? दोनों अपने-अपने काम में स्वतन्त्र और मिले हुए काम में प्रीति से परतन्त्र रहैं। प्रजा की साधारण सम्मति के विरुद्ध राजा वा राजपुरुष न हों, राजा की आज्ञा के विरुद्ध राजपुरुष वा प्रजा न चले, यह राजा का राजकीय निज काम अर्थात् जिसको 'पोलिटिकल' कहते हैं, संक्षेप से कह दिया।**

जो विशेष देखना चाहे, वह चारों **वेदों, मनुस्मृति, शुक्रनीति, महाभारत** आदि शास्त्रों में देखकर निश्चय करे।

[विवाद के १८ स्थान और उनका निर्णय]

और **जो प्रजा का न्याय करना है, वह व्यवहार 'मनुस्मृति' के अष्टम और नवमाध्याय आदि की रीति से करना चाहिये।** परन्तु यहां भी संक्षेप से लिखते हैं—

प्रत्यहं देशदृष्टैश्च शास्त्रदृष्टैश्च हेतुभिः।
अष्टादशसु मार्गेषु निबद्धानि पृथक् पृथक्॥१॥
तेषामाद्यमृणादानं निक्षेपोऽस्वामिविक्रयः।
संभूय च समुत्थानं दत्तस्यानपकर्म च॥२॥
वेतनस्यैव चादानं संविदश्च व्यतिक्रमः।
क्रयविक्रयानुशयो विवादः स्वामिपालयोः॥३॥
सीमाविवादधर्मश्च पारुष्ये दण्डवाचिके।
स्तेयं च साहसं चैव स्त्रीसङ्ग्रहणमेव च॥४॥
स्त्रीपुंधर्मो विभागश्च द्यूतमाह्वय एव च।
पदान्यष्टादशैतानि व्यवहारस्थिताविह॥५॥
एषु स्थानेषु भूयिष्ठं विवादं चरतां नृणाम्।
धर्मं शाश्वतमाश्रित्य कुर्यात्कार्यविनिर्णयम्॥६॥

[कभी भी धर्म का हनन न होने पावे]

धर्मो विद्धस्त्वधर्मेण सभां यत्रोपतिष्ठते।
शल्यं चास्य न कृन्तन्ति विद्धास्तत्र सभासदः॥७॥
सभां वा न प्रवेष्टव्यं वक्तव्यं वा समञ्जसम्।
अब्रुवन्विब्रुवन्वापि नरो भवति किल्बिषी॥८॥
यत्र धर्मो ह्यधर्मेण सत्यं यत्रानृतेन च।
हन्यते प्रेक्षमाणानां हतास्तत्र सभासदः॥९॥
धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः।
तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो मा नो धर्मो हतो वधीत्॥१०॥
वृषो हि भगवान्धर्मस्तस्य यः कुरुते ह्यलम्।

वृषलं तं विदुर्देवास्तस्माद्धर्मं न लोपयेत्॥११॥
एक एव सुहृद्धर्मो निधनेऽप्यनुयाति यः।
शरीरेण समं नाशं सर्वमन्यद्धि गच्छति॥१२॥
पादोऽधर्मस्य कर्त्तारं पादः साक्षिणमृच्छति।
पादः सभासदः सर्वान् पादो राजानमृच्छति॥१३॥
राजा भवत्यनेनास्तु मुच्यन्ते च सभासदः।
एनो गच्छति कर्त्तारं निन्दार्हो यत्र निन्द्यते॥१४॥

मनु॰ ८, [३-८, १२-१९]॥

सभा, राजा और राजपुरुष सब लोग **देशाचार और शास्त्रव्यवहार हेतुओं से** निम्नलिखित अठारह विवादास्पद मार्गों में विवादयुक्त कर्मों का निर्णय प्रतिदिन किया करें। और जो-जो नियम शास्त्रोक्त न पावें और उनके होने की आवश्यकता जानें तो उत्तमोत्तम नियम बांधें कि जिससे राजा और प्रजा की उन्नति हो॥१॥

अठारह मार्ग ये हैं—उनमें से १—**(ऋणादानम्)** किसी से ऋण लेने-देने का विवाद। २—**(निक्षेपः)** धरावट अर्थात् किसी ने किसी के पास पदार्थ धरा हो और मांगे पर न देना। ३—**(अस्वामिविक्रयः)** दूसरे के पदार्थ को दूसरा बेच लेवे। ४—**(संभूय च समुत्थानम्)** मिल- मिलाके किसी पर अत्याचार करना। ५—**(दत्तस्यानपकर्म च)** दिये हुए पदार्थ का न देना॥२॥

६—**(वेतनस्यैव चादानम्)** वेतन अर्थात् किसी की नौकरी में से ले लेना वा कम देना अथवा न देना। ७—**(संविदश्च व्यतिक्रमः)** प्रतिज्ञा से विरुद्ध वर्त्तना। ८—**(क्रयविक्रयानुशयः)** अर्थात् लेन-देन में झगड़ा होना। ९—**[विवादः स्वामिपालयोः]** पशु के स्वामी और पालनेवाले का झगड़ा॥३॥

१०—**[सीमा विवाद०]** सीमा का विवाद। ११—**[पारुष्ये दण्डवाचिके]** किसी को कठोर दण्ड देना, १२—कठोर वाणी का बोलना। १३—**[स्तेयम्]** चोरी और डाका मारना। १४—**[साहसम्]** किसी काम को बलात्कार से करना। १५—**[स्त्रीसंग्रहणम्]** किसी की स्त्री और पुरुष का व्यभिचार होना॥४॥

१६—**[स्त्रीपुंधर्मः]** स्त्री और पुरुष के धर्म में व्यतिक्रम होना। १७—**[विभागः]** अर्थात् दायभाग में वाद उठना। १८—**[द्यूतमाह्वयः]** द्यूत अर्थात् जड़पदार्थ और समाह्वय अर्थात् चेतन को दाव में धरके जुआ खेलना। ये अठारह प्रकार के परस्परविरुद्ध व्यवहार के स्थान हैं॥५॥

इन व्यवहारों में बहुत-सा विवाद करनेवाले पुरुषों के न्याय को सनातनधर्म का आश्रय करके किया करे, अर्थात् किसी का पक्षपात कभी न करे॥६॥

जिस सभा में अधर्म से घायल होकर धर्म उपस्थित होता है, उसके शल्य अर्थात् तीरवत् धर्म के कलङ्क=अधर्म का जो छेदन करते, **अर्थात् धर्मी को मान और अधर्मी को दण्ड नहीं मिलता, उस सभा में जितने सभासद् हैं, वे सब घायल के समान समझे जाते हैं॥७॥**

धार्मिक मनुष्य को योग्य है कि सभा में कभी प्रवेश न करे, और जो प्रवेश किया हो तो सत्य ही बोले। जो कोई सभा में अन्याय होते हुए को देखकर मौन रहै, अथवा सत्य-न्याय के विरुद्ध बोले, वह महापापी होता है॥८॥

जिस सभा में अधर्म से धर्म, असत्य से सत्य, सब सभासदों के देखते हुए मारा जाता है, उस सभा में सब मृतक के समान हैं; जानो उनमें कोई भी नहीं जीता [है]॥९॥

मरा हुआ धर्म मारनेवाले का नाश, और रक्षित किया हुआ धर्म रक्षक की रक्षा करता है; इसलिये धर्म का हनन कभी न करना, इस डर से कि मारा हुआ धर्म कभी भी हमको न मार डाले॥१०॥

जो सब ऐश्वर्यों को देनेवाला और सुखों की वर्षा करनेवाला धर्म है, जो उसका लोप करता है, उसी को विद्वान् लोग 'वृषल' अर्थात् शूद्र और नीच जानते हैं; इसलिये किसी मनुष्य को धर्म का लोप करना उचित नहीं॥११॥

इस संसार में एक धर्म ही सुहृद् है जो मृत्यु के पश्चात् भी साथ चलता है। और सब पदार्थ वा संगी, शरीर के नाश के साथ ही नाश को प्राप्त होते हैं, अर्थात् सबका संग छूट जाता है परन्तु धर्म का संग कभी नहीं छूटता॥१२॥

जब राजसभा में पक्षपात से अन्याय किया जाता है, वहां अधर्म के चार विभाग हो जाते हैं। उनमें से एक अधर्म के कर्त्ता [को], दूसरा साक्षी [को], तीसरा सभासदों [को] और चौथा पाद अधर्मी सभा के सभापति राजा को प्राप्त होता है॥१३॥

जिस सभा में निन्दा के योग्य की निन्दा [और] स्तुति के योग्य की स्तुति [होती है], दण्ड के योग्य को दण्ड और मान्य के योग्य का मान्य होता है, वहां राजा और सब सभासद् पाप से रहित और पवित्र हो जाते हैं; पाप के कर्त्ता को ही पाप प्राप्त होता है॥१४॥

[साक्षी कैसे व्यक्ति होने चाहिएँ]

साक्षी कैसे करने चाहियें?—

आप्ताः सर्वेषु वर्णेषु कार्याः कार्येषु साक्षिणः।
सर्वधर्मविदोऽलुब्धा विपरीतांस्तु वर्जयेत्॥१॥
स्त्रीणां साक्ष्यं स्त्रियः कुर्युर्द्विजानां सदृशा द्विजाः।
शूद्राश्च सन्तः शूद्राणामन्त्यानामन्त्ययोनयः॥२॥
साहसेषु च सर्वेषु स्तेयसङ्ग्रहणेषु च।

वाग्दण्डयोश्च पारुष्ये न परीक्षेत साक्षिणः॥३॥
बहुत्वं परिगृह्णीयात् साक्षिद्वैधे नराधिपः।
समेषु तु गुणोत्कृष्टान् गुणिद्वैधे द्विजोत्तमान्॥४॥

[दो प्रकार के साक्षी]

समक्षदर्शनात्साक्ष्यं श्रवणाच्चैव सिध्यति।
तत्र सत्यं ब्रुवन्साक्षी धर्मार्थाभ्यां न हीयते॥५॥
साक्षी दृष्टश्रुतादन्यद्विब्रुवन्नार्यसंसदि।
अवाङ्नरकमभ्येति प्रेत्य स्वर्गाच्च हीयते॥६॥
स्वभावेनैव यद् ब्रूयुस्तद् ग्राह्यं व्यावहारिकम्।
अतो यदन्यद्विब्रूयुर्धर्मार्थं तदपार्थकम्॥७॥

[न्यायाधीश और वकील द्वारा साक्षी से पूछताछ]

सभान्तः साक्षिणः प्राप्तानर्थिप्रत्यर्थिसन्निधौ।
प्राड्विवाकोऽनुयुञ्जीत विधिनाऽनेन सान्त्वयन्॥८॥
यद् द्वयोरनयोर्वेत्थ कार्येऽस्मिँश्चेष्टितं मिथः।
तद् ब्रूत सर्वं सत्येन युष्माकं ह्यत्र साक्षिता॥९॥
सत्यं साक्ष्ये ब्रुवन्साक्षी लोकानाप्नोति पुष्कलान्।
इह चानुत्तमां कीर्तिं वागेषा ब्रह्मपूजिता॥१०॥

[साक्षी सदा सत्य ही बोलें]

सत्येन पूयते साक्षी धर्मः सत्येन वर्द्धते।
तस्मात्सत्यं हि वक्तव्यं सर्ववर्णेषु साक्षिभिः॥११॥
आत्मैव ह्यात्मनः साक्षी गतिरात्मा तथात्मनः।
माऽवमंस्थाः स्वमात्मानं नृणां साक्षिणमुत्तमम्॥१२॥

यस्य विद्वान् हि वदतः क्षेत्रज्ञो नाभिशङ्कते।
तस्मान्न देवाः श्रेयांसं लोकेऽन्यं पुरुषं विदुः॥१३॥
एकोऽहमस्मीत्यात्मानं यत्त्वं कल्याण मन्यसे।
नित्यं स्थितस्ते हृद्येषः पुण्यपापेक्षिता मुनिः॥१४॥

मनु॰ [८।६३,६८,७२-७५,७८-८१,८३-८४,९६, ९१]॥

सब वर्णों में धार्मिक, विद्वान्, निष्कपटी, सब प्रकार धर्म को जाननेवाले, लोभरहित, सत्यवादियों को न्यायव्यवस्था में साक्षी करे। इनसे विपरीतों को कभी न करे॥१॥

स्त्रियों की साक्षी स्त्रियां, द्विजों के द्विज; शूद्रों के शूद्र और अन्त्यजों के अन्त्यज साक्षी हों॥२॥

जितने बलात्कार काम, चोरी, व्यभिचार, कठोर वचन, दण्डनिपातन रूप अपराध हैं, उनमें साक्षी की विशेष परीक्षा न करे, और [परीक्षा करना] अत्यावश्यक भी न समझे, क्योंकि ये सब काम गुप्त [रूप में] होते हैं॥३॥

दोनों ओर के साक्षियों में से बहुपक्षानुसार, तुल्य साक्षियों में उत्तम गुणी पुरुष के साक्ष्य के अनुकूल, और दोनों के साक्षी उत्तम गुणी और तुल्य हों तो **'द्विजोत्तम'** अर्थात् **ऋषि-महर्षियों और यतियों के साक्ष्य के अनुसार न्याय करे।**॥४॥

दो प्रकार से साक्षी होना सिद्ध होता है—एक साक्षात् देखने और दूसरा सुनने से। जब सभा में पूछें तब जो साक्षी सत्य बोलें, वे धर्महीन और दण्ड के योग्य न होवें। और जो साक्षी मिथ्या बोलें, वे यथायोग्य दण्डनीय हों॥५॥

जो साक्षी राजसभा वा उत्तम पुरुषों की किसी सभा में देखने और सुनने से विरुद्ध बोले; तो वह **'अवाङ्नरक'** अर्थात् जिह्वा के छेदन से दुःखरूप नरक को वर्त्तमान समय में प्राप्त होवे, और मरे पश्चात् सुख से हीन हो जाय॥६॥

साक्षी के उस वचन को मानना कि जो स्वभाव से ही व्यवहार-सम्बन्धी वचन बोले। उससे भिन्न, **'सिखाये हुये'** जो-जो वचन बोले, उन-उनको न्यायाधीश प्रमाण न करे॥७॥

अर्थी (=वादी) और प्रत्यर्थी (=प्रतिवादी) के सामने सभा के समीप प्राप्त हुए साक्षियों से न्यायाधीश और प्राड्विवाक अर्थात् वकील वा बैरिस्टर इस प्रकार से शान्तिपूर्वक पूछें—॥८॥

हे साक्षि-लोगो! इस कार्य में, इन दोनों के पारस्परिक कर्मों के विषय में जो तुम जानते हो, उसको सत्य के साथ बोलो; क्योंकि तुम्हारी इस कार्य में साक्षिता है॥९॥

क्योंकि जो साक्षी सत्य बोलता है, वह जन्मान्तर में उत्तम जन्म और उत्तम लोकान्तरों में जन्म को प्राप्त होके सुख भोगता है, इस जन्म वा परजन्म में उत्तम कीर्ति को प्राप्त होता है; क्योंकि जो यह वाणी है, वही वेदों में सत्कार और तिरस्कार का कारण लिखी है। जो सत्य बोलता है वह प्रतिष्ठित और मिथ्यावादी निन्दित होता है॥१०॥

सत्य बोलने से साक्षी पवित्र होता है, और सत्य ही बोलने से धर्म बढ़ता है; इससे सब वर्णों के साक्षियों को सत्य ही बोलना योग्य है॥११॥

आत्मा का साक्षी आत्मा, और आत्मा की गति आत्मा है; इसको जानके हे पुरुष ! तू सब मनुष्यों के उत्तम साक्षी अपने आत्मा का अपमान मत कर अर्थात् यही सत्यभाषण=जो कि तेरे आत्मा, मन, और वाणी में एक-सी बात है वह सत्य, और जो उससे विपरीत है, वह मिथ्याभाषण है॥१२॥

जिस बोलते हुए पुरुष का विद्वान् क्षेत्रज्ञ अर्थात् 'शरीर का जाननेहारा आत्मा' भीतर शङ्का को प्राप्त नहीं होता; उससे भिन्न विद्वान् लोग किसी को उत्तम पुरुष नहीं जानते॥१३॥

हे कल्याण की इच्छा करनेवाले पुरुष ! जो तू 'मैं अकेला हूं' इस प्रकार अपने आत्मा को समझता है, सो ठीक नहीं है; किन्तु जो दूसरा तेरे हृदय

में पुण्य-पाप का देखनेवाला मुनि अन्तर्यामी परमेश्वर स्थित है, उससे डरकर सदा सत्य बोला कर॥१४॥

[लोभादिवश झूठे साक्ष्य पर विविध दण्ड]

लोभान्मोहाद्भयान्मैत्रात्कामात्क्रोधात्तथैव च।
अज्ञानाद् बालभावाच्च साक्ष्यं वितथमुच्यते॥१॥
एषामन्यतमे स्थाने यः साक्ष्यमनृतं वदेत्।
तस्य दण्डविशेषाँस्तु प्रवक्ष्याम्यनुपूर्वशः॥२॥
लोभात्सहस्रं दण्ड्यस्तु मोहात्पूर्वं तु साहसम्।
भयाद् द्वौ मध्यमौ दण्ड्यौ मैत्रात्पूर्वं चतुर्गुणम्॥३॥
कामाद्दशगुणं पूर्वं क्रोधात्तु त्रिगुणं परम्।
अज्ञानाद् द्वे शते पूर्णे बालिश्याच्छतमेव तु॥४॥

[दण्ड के दश स्थान]

उपस्थमुदरं जिह्वा हस्तौ पादौ च पञ्चमम्।
चक्षुर्नासा च कर्णौ च धनं देहस्तथैव च॥५॥
अनुबन्धं परिज्ञाय देशकालौ च तत्त्वतः।
साराऽपराधौ चालोक्य दण्डं दण्ड्येषु पातयेत्॥६॥

[अधर्मयुक्त दण्ड किसी पर कभी न करे]

अधर्मदण्डनं लोके यशोघ्नं कीर्त्तिनाशनम्।
अस्वर्ग्यञ्च परत्रापि तस्मात्तत्परिवर्जयेत्॥७॥
अदण्ड्यान्दण्डयन् राजा दण्ड्यांश्चैवाप्यदण्डयन्।
अयशो महदाप्नोति नरकं चैव गच्छति॥८॥

[दण्डदान का क्रम]

वाग्दण्डं प्रथमं कुर्याद्धिग्दण्डं तदनन्तरम्।
तृतीयं धनदण्डं तु वधदण्डमतः परम्॥९॥

मनु० ८, [११८-१२१, १२५-१२९]॥

जो साक्षी लोभ, मोह, भय, मित्रता, काम, क्रोध, अज्ञान और बालकपन से जो साक्षी देवें, वह सब मिथ्या समझा जावे॥१॥

इनमें से किसी स्थान में साक्षी झूठ बोले तो उसको वक्ष्यमाण अनेकविध दण्ड किया करे-॥२॥

जो लोभ से झूठा साक्ष्य देवे तो उससे १५॥=) (पन्द्रह रुपये दश आने) दण्ड लेवे। और मोह से झूठा साक्ष्य देवे उससे ३।।।=)॥ (तीन रुपये साढ़े चौदह आने) दण्ड लेवे। जो भय से मिथ्या साक्ष्य देवे उससे १५॥=) (पन्द्रह रुपये दश आने) दण्ड लेवे। जो मित्रता से झूठा साक्ष्य देवे उससे १५॥=) (पन्द्रह रुपये दश आने) दण्ड लेवे॥३॥

जो [किसी] कामना से मिथ्या साक्ष्य देवे तो उससे ३९-) (उनतालीस रुपये एक आना) दण्ड लेवे और जो क्रोध से मिथ्या साक्ष्य दे तो उससे ४६॥।=) (छयालीस रुपये चौदह आने) दण्ड लेवे। अज्ञान से मिथ्या साक्ष्य देवे तो उससे ३=) (तीन रुपये दो आने) दण्ड लेवे और बालकपन से मिथ्या साक्ष्य देवे तो १॥-) (एक रुपया नौ आने) दण्ड लेवे॥४॥

दण्ड के उपस्थेन्द्रिय, उदर, जिह्वा, हाथ, पग, आंख, नाक, कान, धन और देह ये दश स्थान हैं कि जिन पर दण्ड दिया जाता है॥५॥

परन्तु जो-जो दण्ड लिखा है और लिखेंगे, जैसे लोभ से झूठा साक्ष्य देने में पन्द्रह रुपये दश आने दण्ड लिखा है; परन्तु जो वह अत्यन्त निर्धन हो तो उससे कम और धनाढ्य हो तो उससे दूना, तिगुना और चौगुना तक भी ले लेवे; अर्थात् जैसा देश, जैसा काल, जैसा पुरुष हो, उसका जैसा अपराध हो, वैसा ही दण्ड करे॥६॥

क्योंकि इस संसार में जो अधर्म से दण्ड करना है, वह पूर्व प्रतिष्ठा, वर्त्तमान और भविष्यत् में होनेवाली कीर्ति का नाश करनेहारा है; और परजन्म में भी दुःखदायक होता है, इसलिये अधर्मयुक्त दण्ड किसी पर न करे॥७॥

जो राजा दण्डनीयों को दण्ड नहीं देता और अदण्डनीयों को दण्ड देता है अर्थात् दण्ड देने योग्य को छोड़ देता है; वह जीता हुआ बड़ी निन्दा को और मरे पीछे बड़े दुःख को प्राप्त होता है। इसलिये जो अपराध करे उसको सदा दण्ड देवे और अनपराधी को दण्ड कभी न देवे॥८॥

प्रथम वाणी का दण्ड अर्थात् उसकी निन्दा, दूसरा 'धिक्' अर्थात् तुझको धिक्कार है 'तूने ऐसा बुरा काम क्यों किया?' तीसरा धनदण्ड अर्थात्

उससे धन लेना और [चौथा] वध दण्ड अर्थात् उसको कोड़े या बेंत से मारना वा शिर काट देना [चाहिये]॥९॥

[प्रत्येक अपराधी को दण्ड मिले]

येन येन यथाङ्गेन स्तेनो नृषु विचेष्टते।
तत्तदेव हरेत्तस्य प्रत्यादेशाय पार्थिवः॥१॥
पिताऽचार्यः सुहृन्माता भार्या पुत्रः पुरोहितः।
नादण्ड्यो नाम राज्ञोऽस्ति यः स्वधर्मे न तिष्ठति॥२॥

[अधिकारीभेद से दण्डभेद]

कार्षापणं भवेद्दण्ड्यो यत्रान्यः प्राकृतो जनः।
तत्र राजा भवेद्दण्ड्यः सहस्रमिति धारणा॥३॥
अष्टापाद्यन्तु शूद्रस्य स्तेये भवति किल्बिषम्।
षोडशैव तु वैश्यस्य द्वात्रिंशत्क्षत्रियस्य च॥४॥
ब्राह्मणस्य चतुःषष्टिः पूर्णं वापि शतं भवेत्।
द्विगुणा वा चतुःषष्टिस्तद्दोषगुणविद्धि सः॥५॥
ऐन्द्रं स्थानमभिप्रेप्सुर्यशश्चाक्षयमव्ययम्।
नोपेक्षेत क्षणमपि राजा साहसिकं नरम्॥६॥

[बलात् प्रजापीडक को कठोरतम दण्ड]

वाग्दुष्टात्तस्कराच्चैव दण्डेनैव च हिंसतः।
साहसस्य नरः कर्त्ता विज्ञेयः पापकृत्तमः॥७॥
साहसे वर्त्तमानं तु यो मर्षयति पार्थिवः।
स विनाशं व्रजत्याशु विद्वेषं चाधिगच्छति॥८॥
न मित्रकारणाद्राजा विपुलाद्वा धनागमात्।

समुत्सृजेत् साहसिकान्सर्वभूतभयावहान्॥९॥
गुरुं वा बालवृद्धौ वा ब्राह्मणं वा बहुश्रुतम्।
आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन्॥१०॥
नाततायिवधे दोषो हन्तुर्भवति कश्चन।
प्रकाशं वाऽप्रकाशं वा मन्युस्तन्मन्युमृच्छति॥११॥

[अतीव श्रेष्ठ शासक]

यस्य स्तेनः पुरे नास्ति नान्यस्त्रीगो न दुष्टवाक्।
न साहसिकदण्डघ्नौ स राजा शक्रलोकभाक्॥१२॥

मनु॰ [८। ३३४-३३८, ३४४-३४७, ३५०-३५१, ३८६]॥

चोर जिस प्रकार जिस-जिस अङ्ग से मनुष्यों में विरुद्ध चेष्टा करता है; उस-उस अङ्ग को सबकी शिक्षा के लिये राजा हरण अर्थात् छेदन कर दे॥१॥

चाहे पिता, आचार्य, मित्र, माता, स्त्री, पुत्र और पुरोहित क्यों न हो, जो स्वधर्म में स्थित नहीं रहता, वह राजा का अदण्ड्य नहीं होता; अर्थात् जब राजा न्यायासन पर बैठकर न्याय करे तब किसी का पक्षपात न करे किन्तु यथायोग्यत दण्ड देवे॥२॥

जिस अपराध में साधारण मनुष्य पर एक पैसा दण्ड हो, उसी अपराध में राजा को सहस्र पैसा दण्ड होवे; अर्थात् साधारण मनुष्य से राजा पर सहस्र-गुणा दण्ड होना चाहिये॥ दीवान अर्थात् राजा के मन्त्री को आठ-सौ गुणा, उससे न्यून को सात-सौ-गुणा और उससे

भी न्यून को छः-सौ-गुणा, वैसे ही उतरते-उतरते एक चपरासी अर्थात् भृत्य जो कि छोटे-से-छोटा राजपुरुष हो, उसको आठ-गुणा से कम दण्ड न होना चाहिये। क्योंकि यदि प्रजापुरुषों से राजपुरुषों को अधिक दण्ड न होवे तो राजपुरुष प्रजापुरुषों का नाश कर देवें। जैसे सिंह अधिक और बकरी थोड़े-से ही दण्ड से वश में आ जाती है। इसलिये राजा से लेकर छोटे-से-छोटे भृत्य तक राजपुरुषों को अपराध में प्रजा से अधिक दण्ड होना चाहिये॥३॥

वैसे ही जो कुछ विवेकी होकर चोरी करे, उस शूद्र को चोरी से आठ-गुणा, वैश्य को सोलह-गुणा, क्षत्रिय को बत्तीस गुणा॥४॥

ब्राह्मण को चौसठ-गुणा वा सौ-गुणा अथवा एक-सौ अट्ठाईस-गुणा दण्ड होना चाहिये; अर्थात् जिसका जितना ज्ञान और जितनी प्रतिष्ठा अधिक हो, उसको अपराध में उतना ही अधिक दण्ड होना चाहिये॥५॥

राज्य के अधिकारी, [तथा] धर्म और ऐश्वर्य की इच्छा करनेवाला राजा, बलात्कार के काम करनेवाले डाकुओं को दण्ड देने में एक क्षण भी देर न करें॥६॥

साहसिक पुरुष का लक्षण—दुष्ट वचन बोलने, चोरी करने, विना अपराध के दण्ड देनेवाले से भी साहस=बलात्कार के काम करनेवाला अतीव पापी=दुष्ट है॥७॥

जो राजा साहस में वर्त्तमान पुरुष को दण्ड न देकर सहन करता है, वह राजा शीघ्र ही नाश को प्राप्त होता है और राज्य में द्वेष उठता है॥८॥

न मित्रता [से], न पुष्कल धन की प्राप्ति से भी, राजा सब प्राणियों को दुःख देनेवाले साहसिक मनुष्य को बंधन-छेदन किये विना कभी न छोड़े॥९॥

चाहे गुरु हो, चाहे पुत्रादि बालक हों, चाहे पिता आदि वृद्ध, चाहे ब्राह्मण और चाहे बहुत शास्त्रों का श्रोता क्यों न हो; जो धर्म को छोड़ अधर्म में वर्तमान [हैं, और] दूसरों को विना अपराध मारनेवाले हैं, उनको विना विचारे मार डालना अर्थात् मारके पश्चात् विचार करना चाहिये॥१०॥

दुष्ट पुरुषों के मारने में हन्ता को पाप नहीं होता; चाहे प्रसिद्ध मारे चाहे अप्रसिद्ध, क्योंकि क्रोधी को क्रोध से मारना जानो क्रोध से क्रोध की लड़ाई है॥११॥

जिस राजा के राज्य में न चोर, न परस्त्रीगामी, न दुष्ट वचन का बोलनेहारा, न साहसिक=डाकू, और न दण्डघ्न अर्थात् राजा की आज्ञा का भङ्ग करनेवाला नहीं है, वह राजा अतीव श्रेष्ठ है॥१२॥

[व्यभिचारियों को कठोर दण्ड]

भर्त्तारं लङ्घयेद्या स्त्री स्वज्ञातिगुणदर्पिता।
तां श्वभिः खादयेद्राजा संस्थाने बहुसंस्थिते॥१॥
पुमांसं दाहयेत्पापं शयने तप्त आयसे।
अभ्यादध्युश्च काष्ठानि तत्र दह्येत पापकृत्॥२॥

मनु० [८। ३७१-३७२]॥

जो स्त्री अपनी जाति, गुण के घमण्ड से पति को छोड़ व्यभिचार करे, उसको बहुत स्त्रीयों और पुरुषों के सामने जीती हुई [को] राजा कुत्तों से कटवाकर मरवा डाले॥१॥

उसी प्रकार [जो] अपनी स्त्री को छोड़के परस्त्री वा वेश्यागमन करे, उस पापी को लोहे के पर्यङ्क (पलंग) को अग्नि से तपा, लाल कर उस पर सुलाके, जीते को बहुत पुरुषों के सम्मुख भस्म कर देवे॥२॥

प्रश्न—जो राजा वा राणी अथवा न्यायाधीश वा उसकी स्त्री व्याभिचारादि कुकर्म करे तो उसको कौन दण्ड देवे?

उत्तर—सभा। अर्थात् **उनको तो प्रजापुरुषों से भी अधिक दण्ड होना चाहिये।**

प्रश्न—राजादि उनसे दण्ड क्यों ग्रहण करेंगे?

उत्तर—राजा भी एक पुण्यात्मा, भाग्यशाली मनुष्य है। जब उसी को दण्ड न दिया जाय और वह दण्ड ग्रहण न करे तो दूसरे मनुष्य दण्ड को क्यों मानेंगे? **और जब सब प्रजा और प्रधान राज्याधिकारी और सभा धार्मिकता से दण्ड देना चाहें तो अकेला राजा क्या कर सकता है?** जो ऐसी व्यवस्था न हो तो राजा, प्रधान और सब समर्थ पुरुष अन्याय में डूबकर न्याय-धर्म को डुबाके सब प्रजा का नाश कर आप भी नष्ट हो जायें। अर्थात् उस श्लोक के अर्थ का स्मरण करो कि **न्याययुक्त दण्ड का ही नाम राजा और धर्म है,** जो उसका लोप करता है, उससे नीच पुरुष दूसरा कौन होगा?

प्रश्न—यह करड़ा-दण्ड होना उचित नहीं, क्योंकि मनुष्य किसी अङ्ग का बनानेहारा और जिलानेवाला नहीं है, इसलिये ऐसा दण्ड न देना चाहिये?

उत्तर—जो इसको करड़ा दण्ड जानते हैं, वे राजनीति को नहीं समझते, क्योंकि एक को इस प्रकार दण्ड होने से सब लोग बुरे काम करने से अलग रहेंगे और बुरे काम को छोड़कर धर्म-मार्ग में स्थित रहेंगे। इससे, सच पूछो तो यही है कि एक राई-भर भी यह दण्ड सबके भाग में न आवेगा। और जो सुगम-दण्ड दिया जाय तो दुष्ट काम बढ़कर होने लगें। जिसको तुम सुगम-दण्ड कहते हो वह करोड़ों गुणा अधिक होने से करोड़ों गुणा कठोर होता है; क्योंकि जब बहुत मनुष्य दुष्ट कर्म करेंगे तब थोड़ा-थोड़ा दण्ड भी देना पड़ेगा। अर्थात् जैसे एक को मन-भर दण्ड हुआ

और दूसरे को पाव-भर, तो 'पाव-भर अधिक एक मन दण्ड' होता है। तो [दोनों में से] प्रत्येक मनुष्य के भाग में आध-पाव वीस-सेर दण्ड होता है। ऐसे सुगम दण्ड को दुष्ट लोग क्या समझते हैं? जैसे एक को एक मन और १००० (सहस्र) मनुष्यों को पाव-पाव दण्ड हुआ तो ६ । (सवा छः) मन मनुष्य-जाति पर दण्ड होने से अधिक और यही करड़ा है, तथा वह [एक] मन दण्ड न्यून और सुगम होता है।

[जलीय मार्गों पर कराधान]

दीर्घाध्वनि यथादेशं यथाकालं तरो भवेत्।
नदीतीरेषु तद्विद्यात् समुद्रे नास्ति लक्षणम्॥१॥

[राजा के दैनिक काम]

अहन्यहन्यवेक्षेत कर्मान्तान्वाहनानि च।
आयव्ययौ च नियतावाकरान्कोषमेव च॥२॥
एवं सर्वानिमान् राजा व्यवहारान्समापयन्।
व्यपोह्य किल्बिषं सर्वं प्राप्नोति परमां गतिम्॥३॥

मनु० [८। ४०६, ४१९-४२०]॥

लम्बे मार्ग में, समुद्र की खाड़ियों वा नदीयों तथा बड़े नदों में जितना लम्बा देश हो, उतना **'कर'** स्थापन करे और महासमुद्र में निश्चित **'कर-स्थापन'** नहीं हो सकता किन्तु जैसा अनुकूल देखे कि जिससे राजा और बड़े-बड़े समुद्रों में नौकाओं को चलानेवाले दोनों लाभयुक्त हों, वैसी व्यवस्था करे।

परन्तु यह ध्यान में रखना चाहिये कि जो कहते हैं कि प्रथम जहाज नहीं चलते थे, वे झूठे हैं। और देश-देशान्तरों, द्वीप-द्वीपान्तरों में नौका से जानेवाले अपने प्रजास्थ पुरुषों की सर्वत्र रक्षा कर उनको किसी प्रकार का दुःख न होने देवे॥१॥

"नित्य-नित्य राजा, सब राजकर्मों में अपने अधिकारियों-अमात्यों की चेष्टा वा कर्म, वाहन, हस्ती, अश्व, रथ और नौकादिक, आय नाम पदार्थों का आना, व्यय नाम पदार्थों का खर्च, पदार्थों का समूह, शस्त्रों का समूह और धन का कोष, इनको यथावत् देखता रहै कि कोई पदार्थ वा कोई कर्म नष्ट वा अन्यथा न हो"॥२॥

राजा इस प्रकार सब व्यवहारों को यथावत् समाप्त करता-कराता हुआ, सब पापों से छूटके, परमगति=मोक्ष को प्राप्त होता है॥३॥

[अनुक्त विषयों में राजसभा नियम बनावे]

प्रश्न—संस्कृत में पूरी राजनीति है वा अधूरी?

उत्तर—पूरी है; क्योंकि जो-जो भूगोल में राजनीति चली और चलेगी वह-वह सब **'संस्कृत-विद्या'** से ली है। और जिनका प्रत्यक्ष लेख नहीं है, उनके लिये—

"प्रत्यहं लोकदृष्टैश्च शास्त्रदृष्टैश्च हेतुभिः॥"

मनु॰ [८। ३]॥

जो-जो नियम राजा और प्रजा के सुखकारक और धर्मयुक्त समझें, उन-उन नियमों को **'पूर्ण विद्वानों की राजसभा'** बांधा करे।

[बाल तथा बहुविवाह सर्वथा बन्द हों]

परन्तु इस पर नित्य ध्यान रक्खे कि जहां तक बन सके, वहां तक **बाल्यावस्था में विवाह न करने देवें। युवावस्था में भी दोनों की प्रसन्नता के विना विवाह न करना, न कराना, न करने देना। ब्रह्मचर्य का यथावत् सेवन करना-कराना। व्यभिचार और बहुविवाह को बन्द करें कि जिससे शरीर और आत्मा में पूर्ण बल सदा रहै।** क्योंकि जो केवल आत्मा का बल अर्थात् विद्या, ज्ञान बढ़ाये जायें और शरीर का बल नहीं, तो शरीर से बली एक ही पुरुष सैकड़ों ज्ञानियों और विद्वानों को जीत सकता है। और जो केवल शरीर का ही बल बढ़ाया जाय, आत्मा का नहीं, तो भी राज्य की उत्तम व्यवस्था, विना विद्या के कभी नहीं हो सकती। विना व्यवस्था के सब आपस में ही टूट-फूट, विरोध और लड़ाई-झगड़ा करके नष्ट-भ्रष्ट हो जायें। इसलिये शरीर और आत्मा के बल को सदा बढ़ाते रहना चाहिये।

[व्यभिचार और विषयासक्ति का त्याग]

जैसा बल और बुद्धि का नाशक व्यवहार व्यभिचार और अतिविषयासक्ति है, वैसा और कोई नहीं [है]। विशेषतः क्षत्रियों को दृढ़ाङ्ग और बलयुक्त होना चाहिये। क्योंकि जब वे ही विषयासक्त होंगे तो राजधर्म नष्ट ही हो जायगा।

[जैसा राजा वैसी उसकी प्रजा]

और इसपर भी ध्यान रक्खें कि **"यथा राजा तथा प्रजाः"** [चाणक्यनीति १३.८]। =जैसा राजा होता है वैसी ही उसकी प्रजा होती है। इसलिये राजा और राजपुरुषों को अति उचित है कि कभी दुष्टाचार न करें, किन्तु सब दिन धर्म, न्याय से वर्त्तकर सबके सुधार का दृष्टान्त बनें।

यह संक्षेप से राजधर्म का वर्णन यहां किया है। विशेष, **वेद, मनुस्मृति** के सप्तम-अष्टम और नवम अध्याय, **शुक्रनीति, विदुरप्रजागर** और **महाभारत** शान्तिपर्व के **'राजधर्म'** और **'आपद्धर्म'** आदि पुस्तकों में देखकर पूर्ण राजनीति को धारणकर माण्डलिक अथवा सार्वभौम चक्रवर्त्ती राज्य करें; और यही समझें कि—

वयम् **"अभूम प्रजापंतेः प्रजाः"**

यह यजुर्वेद का वचन है [१८। २९]

हम 'प्रजापति अर्थात् परमेश्वर की प्रजायें [हैं]' और परमात्मा हमारा राजा [है] और हम उसके किंकर=भृत्यवत् हैं। **वह कृपा करके अपनी सृष्टि में हमको राज्याधिकारी करे और हमारे हाथ से अपने सत्य-न्याय की प्रवृत्ति करावे।**

अब आगे 'ईश्वर' और 'वेद-विषय' में लिखा जायगा।

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिकृते सत्यार्थप्रकाशे
सुभाषाविभूषिते राजधर्मविषये
षष्ठः समुल्लासः सम्पूर्णः॥६॥

अथ सप्तमसमुल्लासारम्भः

[अथेश्वरवेदविषयं व्याख्यास्यामः]

सम्पूर्ण सत्यार्थप्रकाश

Click now

[अब ईश्वर और वेद के विषय में लिखेंगे]

[ईश्वर के गुणों का वर्णन]

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन्देवा अधि विश्वे निषेदुः।
यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति
य इत्तद्विदुस्त इमे समासते॥१॥

ऋ०, म० १। सूक्त १६४। मं० ३९॥

ईशा वास्यमिदꣳ सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः मा गृधः कस्य स्विद्धनम्॥२॥

यजुः, अ० ४०। मं० १॥

अहं भुवं वसुनः पूर्व्यस्पतिरहं धनानि सं जयामि शश्वतः।
मां हवन्ते पितरं न जन्तवोऽहं दाशुषे वि भजामि भोजनम्॥३॥

ऋ०, म० १०। सूक्त० ४८। मं० १॥

अहमिन्द्रो न परां जिग्य इद्धनं न मृत्यवेऽवं तस्थे कदां चन।
सोममिन्मां सुन्वन्तों याचता वसु न में पूरवः सख्ये रिंषाथन॥४॥

—ऋ०, म० १०। सूक्त ४८। मं० ५॥

अहं दां गृणते पूर्व्यं वस्वहं ब्रह्मं कृणवं मह्यं वर्धनम्।
अहं भुवं यजंमानस्य चोदिता यंज्वनः साक्षि विश्वंस्मिन्भरे॥५॥

ऋ०, म० १०। सूक्त ४९। मं० १॥

"ऋचो अक्षरे०" इस मन्त्र का अर्थ **'ब्रह्मचर्याश्रम की शिक्षा'** में लिख चुके हैं अर्थात् जो सब दिव्य गुण-कर्म-स्वभाव-विद्या-युक्त और जिसमें पृथिवी सूर्यादि लोक स्थित हैं और जो आकाश के समान व्यापक, सब देवों का देव परमेश्वर है; उसको जो मनुष्य न जानते, न मानते और उसका ध्यान नहीं करते, वे **'नास्तिक'** और **'दुःखी'** होते हैं। इसलिये उसी को जानकर मनुष्य सुखी होवें।

[क्या वेद में अनेक ईश्वर कहे हैं?]

प्रश्न—वेदों में ईश्वर अनेक हैं, इस बात को तुम मानते हो वा नहीं?

उत्तर—नहीं मानते; क्योंकि चारों वेदों में ऐसा कहीं नहीं लिखा जिससे अनेक ईश्वर सिद्ध हों, किन्तु यह तो लिखा है कि ईश्वर एक है।

['देवता' का अभिप्राय, और ३३ देवों की गणना]

प्रश्न—वेदों में जो अनेक देवता लिखे हैं, उसका क्या अभिप्राय है?

उत्तर—'देवता' दिव्य गुणों से युक्त होने के कारण कहाते हैं जैसी कि पृथिवी; परन्तु इसको कहीं ईश्वर वा उपासनीय नहीं माना है। देखो, इसी मन्त्र में कि 'जिसमें सब देवता स्थित हैं, वह जानने और उपासना करने योग्य ईश्वर है।' यह उनकी भूल है जो [इस मन्त्र में] देवता शब्द से ईश्वर का ग्रहण करते हैं। परमेश्वर देवों का देव होने से **'महादेव'** इसीलिये कहाता है कि वही सब जगत् का उत्पत्ति-स्थिति-प्रलय-कर्त्ता, न्यायाधीश, अधिष्ठाता है।

जो **"त्रयंस्त्रिंशता॰"** [यजु: १४। ३१] इत्यादि वेदों में प्रमाण हैं। इसकी व्याख्या **'शतपथ'** [कां० १४। प्रपा० ३। ब्रा० ७। कं० ४] में की है कि **तेंतीस देव** अर्थात् पृथिवी, [द्यौ=] जल, अग्नि, वायु, आकाश, चन्द्रमा, सूर्य और नक्षत्र सब सृष्टि के निवासस्थान होने से ये आठ **'वसु'** [कहाते हैं]। प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनञ्जय और जीवात्मा ये ग्यारह **'रुद्र'** इसलिये कहाते हैं कि जब शरीर को छोड़ते हैं तब रोदन करानेवाले होते हैं। संवत्सर के बारह महीने बारह **'आदित्य'** इसलिये हैं कि ये सबके आयु को लेते जाते हैं। बिजुली का नाम 'इन्द्र' इस हेतु से है कि वह परम-ऐश्वर्य का हेतु है। यज्ञ को 'प्रजापति' कहने का कारण यह है कि जिससे वायु, वृष्टि, जल, ओषधी की शुद्धि, विद्वानों का सत्कार और नाना प्रकार की **'शिल्पविद्या'** से प्रजा का पालन होता है। ये तेंतीस पूर्वोक्त गुणों के योग से 'देव' कहाते हैं। इनका स्वामी और सबसे बड़ा होने से परमात्मा चौंतीसवां उपास्यदेव 'शतपथ' के चौदहवें काण्ड में स्पष्ट लिखा है। इसी प्रकार अन्यत्र भी

लिखा है। जो ये इन शास्त्रों को देखते तो वेदों में अनेक ईश्वर मानने-रूप भ्रमजाल में गिरकर झूठा क्यों बकते॥१॥

हे मनुष्य! जो कुछ इस संसार में जगत् है, उस सबमें व्याप्त होकर [जो] उसका नियन्ता है, वह ईश्वर कहाता है; उससे डरकर तू अन्याय से किसी के धन की आकांक्षा मत कर। उस अन्याय के त्याग और न्यायाचरणरूप धर्म से अपने आत्मा से आनन्द को भोग॥२॥

ईश्वर सबको उपदेश करता है कि हे मनुष्यो! मैं ईश्वर सबके पूर्व विद्यमान, सब जगत् का पति हूँ, मैं सनातन जगत्-कारण और सब धनों का विजय करनेवाला और दाता हूँ; मुझ को ही सब जीव, जैसे पिता को सन्तान पुकारते हैं, वैसे पुकारें। मैं सबको सुख देनेहारे जगत् के लिये नाना प्रकार के भोजनों का विभाग, पालन के लिये करता हूँ॥३॥

मैं परमैश्वर्यवान्, सूर्य के समान सब जगत् का प्रकाशक हूँ। [मैं] कभी पराजय को प्राप्त नहीं होता और न कभी मृत्यु को प्राप्त होता हूँ। मैं ही जगत्-रूप धन का निर्माता हूँ। सब जगत् की उत्पत्ति करनेवाला मुझको ही जानो। हे जीवो! ऐश्वर्यप्राप्ति के यत्न करते हुए तुम लोग विज्ञानादि धन को मुझसे मांगो और तुम लोग मेरी मित्रता से अलग मत हो॥४॥

हे मनुष्यो! मैं सत्यभाषण-रूप स्तुति करनेवाले मनुष्य को सनातन ज्ञानादि धन को देता हूं, मैं ब्रह्म अर्थात् वेद का प्रकाश करनेहारा [हूँ] और

मुझको वह वेद यथावत् कहता [है], उससे सबके ज्ञान को मैं बढ़ाता [हूँ]। मैं सत्पुरुष का प्रेरक, यज्ञ करनेहारे को फलप्रदाता और इस विश्व में जो कुछ है उस सब **'कार्य'** का बनाने और धारण करनेवाला हूँ। इसलिये **तुम लोग मुझको छोड़ किसी दूसरे को मेरे स्थान में मत पूजो, मत मानो और मत जानो॥५॥**

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेकऽआसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम॥६॥

यह यजुर्वेद का मन्त्र है [१३। ४]॥

हे मनुष्यो! जो सृष्टि के पूर्व सब सूर्यादि तेजवाले लोकों का उत्पत्ति-स्थान, आधार और जो कुछ उत्पन्न हुआ था, है, और होगा, उसका स्वामी था, है, और रहेगा। वह पृथिवी से लेके सूर्यलोक-पर्यन्त सृष्टि को बनाके धारण कर रहा है। उस सुखस्वरूप परमात्मा की ही भक्ति जैसे हम करें, वैसे तुम लोग भी करो॥६॥

[ईश्वर-सिद्धि में प्रत्यक्षादि प्रमाण]

प्रश्न—आप ईश्वर-ईश्वर कहते हो, उसकी सिद्धि किस प्रकार करते हो?

उत्तर—सब प्रत्यक्षादि प्रमाणों से।

प्रश्न—ईश्वर में प्रत्यक्ष प्रमाण कभी नहीं घट सकता।

उत्तर—इन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्नं ज्ञानमव्यपदेश्यमव्यभिचारिव्यवसायात्मकं प्रत्यक्षम्॥

यह गौतम महर्षि कृत न्यायदर्शन का सूत्र है [१।१।४]।

जो श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, जिह्वा, घ्राण और मन का; शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, सुख-दुःख, सत्यासत्य विषयों के साथ सम्बन्ध होने से ज्ञान उत्पन्न होता है, उसको **'प्रत्यक्ष'** कहते हैं, परन्तु वह निर्भ्रम हो।

अब विचारना चाहिये कि इन्द्रियों और मन से गुणों का प्रत्यक्ष होता है, गुणी का नहीं। जैसे चारों त्वचा आदि इन्द्रियों से स्पर्श, रूप, रस और गन्ध का ज्ञान होने से, गुणी जो पृथिवी उसका **'आत्मायुक्त मन'** से प्रत्यक्ष किया जाता है, **वैसे इस प्रत्यक्ष सृष्टि में रचना-विशेष आदि [कर्म और] ज्ञानादि गुणों के प्रत्यक्ष होने से परमेश्वर का भी प्रत्यक्ष है।**

और जब आत्मा मन और मन इन्द्रियों को किसी विषय में लगाता अथवा चोरी आदि बुरी वा परोपकार आदि अच्छी बात के करने का जिस क्षण में आरम्भ करता है, उस समय जीव के इच्छा-ज्ञान-आदि, उसी इच्छित विषय पर झुक जाते हैं। उसी क्षण में आत्मा के भीतर से बुरे काम करने में भय, शङ्का और लज्जा तथा अच्छे कामों के करने में अभय, निःशङ्कता और आनन्दोत्साह उठता है। वह जीवात्मा की ओर से नहीं, किन्तु परमात्मा की ओर से है।

और जब शुद्धात्मा-शुद्धान्तःकरण से युक्त योगी, समाधिस्थ होकर, आत्मा और परमात्मा का विचार करने में तत्पर रहता है, तब उसको उसी समय दोनों प्रत्यक्ष होते हैं। जब परमेश्वर का प्रत्यक्ष होता है, तो अनुमानादि से परमेश्वर के ज्ञान होने में क्या सन्देह है? क्योंकि कार्य को देखके कारण का, नियमों को देखके नियन्ता का, सृष्टि को देखकर स्रष्टा का अनुमान होता है।

[ईश्वर का व्यापकत्व]

प्रश्न—ईश्वर व्यापक है वा किसी देश-विशेष में रहता है?

उत्तर—व्यापक है; क्योंकि जो एकदेश में रहता तो सर्वान्तर्यामी, सर्वज्ञ, सर्वनियन्ता, सबका स्रष्टा, सबका धर्त्ता और प्रलयकर्त्ता नहीं हो सकता। **अप्राप्त देश में कर्त्ता की क्रिया का [होना] असम्भव है।**

[ईश्वर दयालु और न्यायकारी है]

प्रश्न—परमेश्वर दयालु और न्यायकारी है, वा नहीं?

उत्तर—है।

प्रश्न—ये दोनों गुण परस्पर-विरुद्ध हैं। जो न्याय करे तो दया और दया करे तो न्याय छूट जाय। क्योंकि **'न्याय'** उसको कहते हैं कि जो कर्त्ता के कर्मों के अनुसार न अधिक, न न्यून सुख-दुःख पहुंचाना। और **'दया'** उसको कहते हैं कि जो अपराधी को विना दण्ड दिये छोड़ देना।

[न्याय और दया शब्दों पर विचार]

उत्तर—न्याय और दया का नाममात्र ही भेद है; क्योंकि जो न्याय से प्रयोजन सिद्ध होता है, वही दया से। दण्ड देने का प्रयोजन है कि मनुष्य अपराध करने से बन्द होकर दुःखों को प्राप्त न हों। **वही दया कहाती है कि जो 'पराये दुःखों का छुड़ाना।'** और जैसा अर्थ दया और न्याय का तुमने किया, वह ठीक नहीं, क्योंकि जिसने जैसा, जितना बुरा कर्म किया हो, उसको वैसा, उतना ही दण्ड देना **'न्याय'** है। और जो अपराधी को दण्ड न दिया जाय तो 'दया' का नाश हो जाय; क्योंकि एक अपराधी डाकू को छोड़ देने से सहस्रों धर्मात्मा पुरुषों को दुःख देना है। जब एक के छोड़ने से सहस्रों मनुष्यों को दुःख प्राप्त होता है, तब वह दया किस प्रकार हो सकती है? **'दया'** वही है कि उस डाकू को कैद कर पाप करने से बचाना डाकू पर दया, और [फिर] उस डाकू के [द्वारा मनुष्यों को] न मार सकने से अन्य सहस्रों मनुष्यों पर दया प्रकाशित होती है।

प्रश्न—फिर **'दया'** और **'न्याय'** दो शब्द क्यों हुए; क्योंकि जब दोनों का अर्थ एक ही है, तो दो शब्दों का होना व्यर्थ है? कोई एक शब्द रहता तो अच्छा होता। इसलिये दया और न्याय का एक प्रयोजन नहीं।

उत्तर—क्या एक अर्थ के अनेक नाम और एक नाम के अनेक अर्थ नहीं होते?

प्रश्न—होते हैं।

उत्तर—फिर तुमको शङ्का क्यों हुई?

प्रश्न—संसार में सुनते हैं, इसलिये।

उत्तर—संसार में सच्चा और झूठा दोनों सुने जाते हैं, उसका विचार से निश्चय करना अपना काम है। देखो, ईश्वर की पूर्ण दया यह है कि जिसने सब जीवों के प्रयोजन सिद्ध होने के अर्थ सब पदार्थ जगत् में उत्पन्न करके दान दे रक्खे हैं, इससे बड़ी दया दूसरी कौन-सी है? न्याय का फल, जगत् में सुख-दुःख की व्यवस्था, अधिकता-न्यूनता से दिखला रही है। इन दोनों का इतना ही भेद है कि जो मन में सबको सुख होने और दुःख छूटने की इच्छा और क्रिया करना है, [वह **'दया'**], और बाह्य चेष्टा अर्थात् बन्धन-छेदनादि यथायोग्य दण्ड देना **'न्याय'** कहाता है। **दोनों का एक ही प्रयोजन यह है कि सबको पाप और दुःखों से पृथक् करना।**

[ईश्वर निराकार है, साकार नहीं]

प्रश्न—ईश्वर साकार है, वा निराकार?

उत्तर—निराकार; क्योंकि जो साकार होता तो व्यापक नहीं हो सकता, जब व्यापक न होता तो सर्वज्ञता-आदि गुण भी न हो सकते; क्योंकि परिमित वस्तु में गुण-कर्म-स्वभाव भी परिमित रहते हैं, तथा शीत-उष्ण, क्षुधा-तृषा और रोग-दोष, छेदन-भेदन आदि से रहित नहीं हो सकता। इससे यही निश्चित है कि ईश्वर निराकार है। और जो साकार होता, तो उसके आकर को बनानेवाला दूसरा होना चाहिये। क्योंकि जो संयोग से

उत्पन्न होता है, उसको संयुक्त करनेवाला निराकार चेतन अवश्य होना चाहिये। जो कोई कहे कि ईश्वर ने स्वेच्छा से आप ही आप अपना शरीर बना लिया, तो [भी] वही सिद्ध हुआ कि शरीर के बनने के पूर्व [वह] निराकार था। इसलिये वह परमात्मा कभी शरीर धारण नहीं करता, किन्तु निराकार होने से सब जगत् को सूक्ष्म आकार से स्थूलाकार बनाता है।

['सर्वशक्तिमान्' शब्द का अर्थ]

प्रश्न—ईश्वर सर्वशक्तिमान् है, वा नहीं?

उत्तर—है; परन्तु 'सर्वशक्तिमान्' शब्द का अर्थ इतना ही है कि ईश्वर अपने काम अर्थात् सृष्टि-उत्पत्ति, पालन और प्रलय आदि और सब जीवों के पुण्य-पाप की यथायोग्य व्यवस्था करने में किंचित् भी किसी की सहायता नहीं लेता अर्थात् अपने अनन्त सामर्थ्य से ही अपने सब काम पूर्ण कर लेता है।

प्रश्न—हम तो ऐसा मानते हैं कि ईश्वर जो चाहे सो करे।

उत्तर—वह क्या और कैसा चाहता है? जो तुम कहो कि सब कुछ चाहता और कर सकता है, तो हम तुमसे पूछते हैं कि क्या परमेश्वर अपने को मार, अनेक ईश्वर बना, स्वयं अविद्वान् हो, चोरी-आदि पाप कर और दुःखी भी हो सकता है? जैसे ये काम ईश्वर के गुण-कर्म-स्वभाव से विरुद्ध हैं तो जो तुम्हारा कहना कि 'वह सब कुछ कर सकता है' यह

कभी नहीं घट सकता। इसीलिये **'सर्वशक्तिमान्'** शब्द का अर्थ जो हमने कहा, वही ठीक है।

[ईश्वर अनादि है]

प्रश्न—परमेश्वर सादि है, वा अनादि?

उत्तर—अनादि; अर्थात् जिसका आदि कोई कारण वा समय न हो, उसको 'अनादि' कहते हैं, इत्यादि **सब अर्थ प्रथम समुल्लास में कर दिये हैं, देख लीजिये।**

प्रश्न—परमेश्वर क्या चाहता है?

उत्तर—सबकी भलाई और सबके लिये सुख चाहता है, परन्तु स्वतन्त्रता के साथ; किसी को विना पाप किये पराधीन नहीं करता।

[ईश्वर-स्तुति-प्रार्थनोपासना का फल]

प्रश्न—परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना करनी चाहिये, वा नहीं?

उत्तर—करनी चाहिये।

प्रश्न—क्या स्तुति आदि करने से ईश्वर अपना नियम छोड़ स्तुति, प्रार्थना [और उपासना] करनेवाले के पाप छुड़ा देगा?

उत्तर—नहीं।

प्रश्न—तो फिर स्तुति, प्रार्थना, [और उपासना] क्यों करनी चाहिये?

उत्तर—उनके करने का फल अन्य ही है।

प्रश्न—क्या है?

उत्तर—**स्तुति** से ईश्वर में प्रीति [होना], उसके गुण-कर्म-स्वभाव से अपने गुण-कर्म-स्वभाव को सुधारना; **प्रार्थना** से निरभिमानता, उत्साह और सहाय्य का मिलना; **उपासना** से परब्रह्म से मेल और उसका साक्षात्कार होना।

[स्तुति के दो भेद=सगुण और निर्गुण स्तुति]

प्रश्न—इनको स्पष्ट करके समझाओ।

उत्तर—जैसे, **ईश्वर की स्तुति**—

स पर्य॑गाच्छु॒क्रम॑का॒यम॑व्र॒णम॑स्नावि॒रꣳ शु॒द्धमपा॑पविद्धम्।
क॒विर्म॑नी॒षी प॑रि॒भूः स्व॑य॒म्भूर्या॑थातथ्य॒तोऽर्था॒न्
व्य॒दधाच्छाश्व॒तीभ्य॒: समा॑भ्यः॥१॥

यजुः, अ॰ ४०। मं॰ ८॥

वह परमात्मा सब में व्यापक, शीघ्रकारी और अनन्त बलवान् [है]। जो शुद्ध, सर्वज्ञ, सबका अन्तर्यामी, सर्वोपरि विराजमान, सनातन, स्वयंसिद्ध

परमेश्वर अपनी जीवरूप सनातन अनादि प्रजा को अपनी सनातन विद्या से यथावत् अर्थों का बोध वेद द्वारा कराता है, यह **'सगुण-स्तुति'; अर्थात् जिस-जिस गुण से सहित परमेश्वर की स्तुति करना, वह सगुण [स्तुति है]।** और **(अकाय)** अर्थात् वह कभी शरीर धारण [नहीं करता] वा जन्म नहीं लेता, जिसमें छिद्र नहीं होता और जो नाड़ी आदि के बन्धन में नहीं आता, और कभी पापाचरण नहीं करता, जिसमें क्लेश, दुःख, अज्ञान कभी नहीं होता, इत्यादि **जिन-जिन राग-द्वेष आदि गुणों से पृथक् मानकर परमेश्वर की स्तुति करना है, वह 'निर्गुण-स्तुति' कहाती है।**

इसका फल यह है कि जैसे परमेश्वर के गुण-कर्म-स्वभाव हैं, वैसे गुण-कर्म- स्वभाव अपने भी करना। जैसे वह न्यायकारी है, तो आप भी न्यायकारी होवे। और जो केवल भाँड के समान परमेश्वर के गुणकीर्त्तन करता जाता और अपने चरित्र नहीं सुधारता, उसका स्तुति करना व्यर्थ है।

[कैसी प्रार्थना करनी चाहिए]

प्रार्थना—

यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते।
तया मामद्य मेधयाऽग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा॥१॥

यजुः, अ० ३२। मं० १४॥

तेजोऽसि तेजो मयि धेहि वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि।
बलमसि बलं मयि धेहि, ओजोऽस्योजो मयि धेहि।
मन्युरसि मन्युं मयि धेहि सहोऽसि सहो मयि धेहि॥२॥

यजुः, अ० १९। मं० ९॥

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति।
दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥३॥
येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः।
यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥४॥
यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु।
यस्मान्नऽऋते किं चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥५॥
येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परिगृहीतममृतेन सर्वम्।
येन यज्ञस्तायते सप्त होता तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥६॥
यस्मिन्नृचः साम यजूꣳषि यस्मिन्प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः।
यस्मिँश्चित्तꣳसर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥७॥
सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिनऽइव।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥८॥

यजुः, अ० ३४। मं० १-६॥

हे अग्ने=स्वप्रकाशस्वरूप परमेश्वर! आप स्वकृपा से, जिस बुद्धि की उपासना विद्वान्, ज्ञानी और योगी लोग करते हैं, उसी बुद्धि से युक्त 'बुद्धिमान्' हमको इसी वर्त्तमान समय में कीजिये॥१॥

आप प्रकाशस्वरूप हैं, कृपा कर मुझमें भी प्रकाश-स्थापन कीजिये। आप अनन्त पराक्रमयुक्त हैं, इसलिये मुझमें भी कृपा-कटाक्ष से पूर्ण पराक्रम को धरिये। आप अनन्त बलयुक्त हैं, इसलिये मुझमें भी बल धारण कराइये। आप अनन्त सामर्थ्ययुक्त हैं, मुझको भी पूर्ण सामर्थ्य दीजिये। आप दुष्ट कामों और दुष्टों पर क्रोधकारी हैं, मुझको भी वैसा ही कीजिये। आप निन्दा-स्तुति और स्व-अपराधियों का सहन करनेवाले हैं, कृपा से मुझको भी वैसा ही कीजिये॥२॥

हे दयानिधे! आपकी कृपा से, जो मेरा मन जागते हुए का दूर-दूर जाता, दिव्यगुणयुक्त रहता है, और वही सोते हुए मेरा मन सुषुप्ति को प्राप्त होता वा स्वप्न में दूर-दूर जाने के समान व्यवहार करता है; सब प्रकाशकों का प्रकाशक एक वह मेरा मन शिवसङ्कल्प अर्थात् अपने और दूसरे प्राणियों के अर्थ कल्याण का सङ्कल्प करनेहारा होवे, किसी की हानि करने की इच्छायुक्त कभी न होवे॥३॥

हे सर्वान्तर्यामी! जिससे कर्म करनेहारे धैर्ययुक्त विद्वान् लोग यज्ञ और युद्धादि में कर्म करते हैं; जो अपूर्व सामर्थ्ययुक्त, पूजनीय और प्रजा के भीतर रहनेवाला है, वह मेरा मन धर्म करने की इच्छायुक्त होकर अधर्म को सर्वथा छोड़ देवे॥४॥

जो उत्कृष्ट ज्ञान [-युक्त] और दूसरे को चेतानेहारा निश्चयात्मकवृत्ति है, और जो प्रजाओं में भीतर प्रकाशयुक्त और नाशरहित है; जिसके विना

कोई कुछ भी कर्म नहीं कर सकता, वह मेरा मन शुभ गुणों की इच्छा करके दुष्ट गुणों से पृथक् रहै॥५॥

हे जगदीश्वर! जिससे सब योगी लोग इन सब भूत, भविष्यत्, वर्त्तमान व्यवहारों को जानते, जो नाशरहित जीवात्मा को परमात्मा के साथ मिलाके सब प्रकार त्रिकालज्ञ करता है, जिसमें ज्ञान और क्रिया है; [जो] पाँच ज्ञानेन्द्रिय, बुद्धि और आत्मा-युक्त रहता है, उस योगरूप यज्ञ को जिससे बढ़ाते हैं, वह मेरा मन योग-विज्ञानयुक्त होकर अविद्यादि क्लेशों से अलग रहै॥६॥

हे परमविद्वन् परमेश्वर! आपकी कृपा से, जिस मेरे मन में, जैसे रथ के मध्य धुरे में आरे लगे रहते हैं, वैसे **'ऋग्वेद'**, **'यजुर्वेद'**, **'सामवेद'** [प्रतिष्ठित होते हैं], और जिसमें **'अथर्ववेद'** भी प्रतिष्ठित होता है; और जिसमें सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, प्रजा का साक्षी चित्त चेतन विदित होता है, वह मेरा मन अविद्या का अभाव कर विद्याप्रिय सदा रहै॥७॥

हे सर्वनियन्ता ईश्वर! जो मेरा मन रस्सी से घोड़ों के समान अथवा घोड़ों के नियन्ता सारथि के तुल्य मनुष्यों को अत्यन्त इधर-उधर डुलाता है; जो हृदय में प्रतिष्ठित, गतिमान् और अत्यन्त वेगवाला है, वह मेरा मन सब इन्द्रियों को अधर्माचरण से रोकके धर्मपथ में सदा चलाया करे, ऐसी कृपा मुझ पर कीजिये॥८॥

अग्ने नयं सुपथां रायेऽअस्मान् विश्वांनि देव वयुनांनि विद्वान्।
युयोध्युस्मज्जुंहुराणमेनो भूयिंष्ठां ते नमंऽउक्तिं विधेम॥१॥

यजु०, अ० ४०। मं० १६॥

हे सुख के दाता, स्वप्रकाशस्वरूप, सबको जाननेहारे परमात्मन्! आप हमको श्रेष्ठ मार्ग से सम्पूर्ण प्रज्ञानों को प्राप्त कराइये; और जो हममें कुटिल पापाचरणरूप मार्ग है, उससे पृथक् कीजिये। इसीलिये हम लोग नम्रतापूर्वक आपकी बहुत-सी स्तुति करते हैं कि आप हमको पवित्र करें।

यह सगुण प्रार्थना, और—

मा नों महान्तंमुत मा नोंऽअर्भकं मा नऽउक्षंन्तमुत मा नं ऽउक्षितम्।
मा नों वधीः पितरं मोत मातरंमा नंः प्रियास्तन्वो रुद्र रीरिषः॥१॥

यजु°, अ° १६। मं° १५॥

हे रुद्र=दुष्टों को पाप के दुःखरूप फल को देके रुलानेवाले परमेश्वर ! आप हमारे छोटे-बड़े जन, गर्भ, माता, पिता और प्रिय बन्धुवर्ग तथा [हमारे] शरीरों का हनन करने के लिये प्रेरित [किसी को] मत होने दीजिये, ऐसे मार्ग से हमको चलाइये जिससे हम आपके दण्डनीय न हों॥१॥

असतो मा सद् गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्माऽमृतं गमयेति॥

यह शतपथ ब्राह्मण का वचन है [१४। ३। १। ३०]॥

हे परमगुरो परमात्मन्! आप हमको असत् मार्ग से पृथक् कर सन्मार्ग में प्रवृत्त कीजिये। अविद्यान्धकार को छुड़ाके विद्यारूप सूर्य को प्राप्त कराइये और मृत्युरोग से पृथक् करके मोक्ष के आनन्दरूप अमृत को प्राप्त कराइये।

इस प्रकार निर्गुण-प्रार्थना कहाती है, अर्थात् जिस-जिस दोष वा दुर्गुण से परमेश्वर को पृथक् मानके, उससे अपने को भी अलग करने के लिये प्रार्थना की जाती है, **वह निषेधमुख होने से निर्गुण प्रार्थना [है]।**

जो मनुष्य जिस बात की प्रार्थना करता है, उसको वैसा ही वर्त्तमान करना चाहिये अर्थात् जैसे सर्वोत्तम बुद्धि की प्राप्ति के लिये परमेश्वर की प्रार्थना करे, उसके लिये जितना अपने से प्रयत्न हो सके, उतना किया करे; अर्थात् अपने पुरुषार्थ के उपरान्त **प्रार्थना** करनी योग्य है।

[ऐसी प्रार्थना कभी न करे]

ऐसी प्रार्थना कभी न करनी चाहिये और न परमेश्वर उसको स्वीकार करता है, जैसे—'हे परमेश्वर! आप मेरे शत्रुओं का नाश और मुझको सबसे बड़ा [कीजिये], मेरी ही प्रतिष्ठा [हो] और मेरे आधीन सब हो जायें' इत्यादि। क्योंकि जब दोनों शत्रु एक दूसरे के नाश के लिये प्रार्थना करें तो क्या परमेश्वर दोनों का नाश कर दे ? जो कोई कहै कि जिसका प्रेम अधिक [हो], उसकी प्रार्थना सफल हो जावे, तब हम कह सकते हैं

कि जिसका प्रेम न्यून हो, उसके शत्रु का भी न्यून नाश होना चाहिये। ऐसी मूर्खता की प्रार्थना करते-करते कोई ऐसी भी प्रार्थना करेगा—'हे परमेश्वर! आप हमको रोटी बनाकर खिलाइये, [हमारे] मकान में झाड़ू लगाइये, [हमारे] कपड़े धो दीजिये और [हमारी] खेती-बाड़ी भी कीजिये।'

[पुरुषार्थी की ही प्रार्थना सफल होती है]

इस प्रकार जो परमेश्वर के भरोसे आलसी होकर बैठते हैं, वे महामूर्ख हैं; क्योंकि **जो परमेश्वर की पुरुषार्थ करने की आज्ञा है, उसको जो कोई तोड़ेगा, वह सुख कभी न पावेगा॥** जैसे—

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतंꣳ समाः॥२॥

यजुः, अ० ४०। मं० २॥

परमेश्वर आज्ञा देता है कि मनुष्य सौ-वर्ष पर्यन्त और जब तक जीवे, तब तक कर्म करता हुआ ही जीने की इच्छा करे, आलसी कभी न हो।

देखो, सृष्टि के बीच में जितने प्राणी हैं अथवा अप्राणी हैं, वे सब अपने-अपने कर्म और यत्न करते ही रहते हैं। जैसे पिपीलिका आदि सदा प्रयत्न करते, पृथिवी आदि सदा घूमते और वृक्ष आदि सदा बढ़ते-घटते रहते हैं, वैसे यह दृष्टान्त मनुष्यों को भी ग्रहण करना योग्य है। जैसे पुरुषार्थ करते हुए पुरुष का सहाय्य दूसरा भी करता है, वैसे धर्म में पुरुषार्थी पुरुष का सहाय्य परमेश्वर भी करता है। जैसे काम करनेवाले

को भृत्य रखते हैं, अन्य को नहीं; देखने की इच्छा करने और नेत्रवाले को दिखलाते हैं, अन्धे को नहीं; **इसी प्रकार परमेश्वर भी सबके उपकार करने की प्रार्थना में सहायक होता है, हानिकारक कर्म में नहीं।** जो कोई 'गुड़ मीठा है' कहता रहै, उसको गुड़ वा उसका स्वाद प्राप्त कभी नहीं होता; और जो यत्न करता है उसको शीघ्र वा विलम्ब से गुड़ मिल ही जाता है।

अब तीसरी उपासना—

समाधिनिर्धूतमलस्य चेतसो निवेशितस्यात्मनि यत्सुखं लभेत्।
न शक्यते वर्णयितुं गिरा तदा, स्वयं तदन्तःकरणेन गृह्यते॥१॥

यह उपनिषद् का वचन है [मैत्रायणी उप० ४।९]॥

जिस पुरुष के, समाधियोग से अविद्यादि मल नष्ट हो गये हैं, आत्मस्थ होकर परमात्मा में चित्त जिसने लगाया है, उसको जो परमात्मा के योग का सुख होता है, वह वाणी से कहा नहीं जा सकता; क्योंकि उस आनन्द को जीवात्मा अपने अन्तःकरण से ग्रहण करता है।

[उपासना का अर्थ और उसके अङ्ग]

उपासना शब्द का अर्थ समीपस्थ होना है। अष्टाङ्गयोग से परमात्मा के समीपस्थ होने और उसको सर्वव्यापी, सर्वान्तर्यामी-रूप से प्रत्यक्ष करने के लिये जो-जो काम करना होता है, वह-वह सब करना चाहिये। अर्थात्—

अहिंसासत्याऽस्तेयब्रह्मचर्याऽपरिग्रहा यमाः॥

इत्यादि सूत्र पातञ्जल-योगशास्त्र के हैं।

[साधनपाद, सू० ३०]॥

जो उपासना का आरम्भ करना चाहै, उसके लिये यही आरम्भ है कि वह किसी से वैर न रक्खे, सर्वदा प्रीति करे; सत्य बोले, मिथ्या न बोले; चोरी न करे, सत्यव्यवहार करे; जितेन्द्रिय हो, लम्पट न हो; और निरभिमानी हो, अभिमान कभी न करे। ये पांच प्रकार के **'यम'** मिलके **'उपासना-योग'** का प्रथम अङ्ग है।

शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः॥

योगसूत्र [साधनपाद, सू० ३२]॥

राग-द्वेष छोड़ भीतर, और जलादि से बाहर पवित्र रहै। धर्म से पुरुषार्थ करने से लाभ में न प्रसन्नता और हानि में न अप्रसन्नता करे। प्रसन्न होकर, आलस्य छोड़, सदा पुरुषार्थ किया करे। सदा दुःख-सुखों को सहन और धर्म का ही अनुष्ठान करे, अधर्म का नहीं। सदा सत्यशास्त्रों को पढ़े-पढ़ावे, सत्पुरुषों का संग करे। और **'ओङ्कार' का जप और अर्थ-विचार किया करे।** अपने आत्मा को परमेश्वर के आज्ञानुकूल समर्पित कर देवे। इन पांच प्रकार के **'नियमों'** को मिलाके **'उपासनायोग'** का दूसरा अङ्ग कहाता है।

इसके आगे [के] छः अङ्ग **'योगशास्त्र'** वा **'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका'** * में देख लेवें।

जब उपासना करना चाहे, तब एकान्त शुद्ध देश में जाकर, आसन लगा, प्राणायाम कर, बाह्य विषयों से इन्द्रियों को रोक, मन को नाभि, हृदय, कण्ठ, नेत्र, शिखा, पीठ के मध्य हाड़ में किसी स्थान पर स्थिर कर, अपने आत्मा और परमात्मा का विवेचन करके, परमात्मा में मग्न होकर संयमी होवे।

[उपासना के दो भेद और उसका फल]

जब इन साधनों को करता है तब उसका आत्मा और अन्तःकरण पवित्र होकर सत्य से पूर्ण हो जाता है। नित्यप्रति ज्ञान-विज्ञान बढ़ाकर मुक्ति तक पहुँच जाता है। जो आठ प्रहर में एक घड़ी भर भी इस प्रकार ध्यान करता है, वह सदा उन्नति को प्राप्त हो जाता है।

वहां सर्वज्ञतादि गुणों के साथ परमेश्वर की उपासना करनी **'सगुण'**, और राग, द्वेष, रूप, रस, गन्ध, स्पर्शादि गुणों से पृथक् मान, अतिसूक्ष्म आत्मा के भीतर-बाहर व्यापक परमेश्वर में दृढ़ स्थित हो जाना **'निर्गुण-उपासना'** कहाती है।

---

* **'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका'** के 'उपासना विषय' में इनका वर्णन है।

इसका फल—जैसे शीत से आतुर पुरुष का अग्नि के पास जाने से शीत निवृत्त हो जाता है, वैसे परमेश्वर के समीप प्राप्त होने से जीवात्मा के सब दोष, दुःख छूटकर परमेश्वर के गुण-कर्म-स्वभाव के सदृश गुण-कर्म-स्वभाव पवित्र हो जाते हैं। इसलिये परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना अवश्य करनी चाहिये।

[ईश्वर का गुण भूल जाना कृतघ्नता है]

इससे इनका फल पृथक् होगा, परन्तु आत्मा का बल इतना बढ़ेगा [कि] वह पर्वत के समान दुःख प्राप्त होने पर भी न घबरावेगा और सबको सहन कर सकेगा। क्या यह छोटी बात है? और जो परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना नहीं करता, वह कृतघ्न और महामूर्ख भी होता है; क्योंकि जिस परमात्मा ने इस जगत् के सब पदार्थ जीवों को सुख के लिये दे रक्खे हैं, उसके गुण भूल जाना, ईश्वर को ही न मानना कृतघ्नता और मूर्खता है।

[हस्तादि से रहित ईश्वर काम कैसे करता है?]

प्रश्न—जब परमेश्वर के श्रोत्र, नेत्रादि इन्द्रियाँ नहीं हैं, फिर वह इन्द्रियों का काम कैसे कर सकता है?

उत्तर—अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः।
स वेत्ति विश्वं न च तस्यास्ति वेत्ता तमाहुरग्र्यं पुरुषं पुराणम्॥

यह उपनिषद् का वचन है [श्वेताश्वतर ३। १९]।

परमेश्वर के हाथ नहीं परन्तु अपनी शक्तिरूप हाथों से सबका रचन, ग्रहण करता [है], पग नहीं परन्तु व्यापक होने से सबसे अधिक वेगवान् [है], चक्षु के गोलक नहीं परन्तु सबको यथावत् देखता [है], श्रोत्र नहीं तथापि सबकी बातें सुनता [है], अन्तःकरण नहीं परन्तु सब जगत् को जानता है, और उसको अवधिसहित जाननेवाला कोई भी नहीं। उसी को सनातन, सबसे श्रेष्ठ, सबमें पूर्ण होने से **'पुरुष'** कहते हैं। वह इन्द्रियों और अन्तःकरण के विना अपने सब काम अपने सामर्थ्य से करता है।

[ईश्वर निष्क्रिय और निर्गुण नहीं]

प्रश्न—उसको बहुत से मनुष्य निष्क्रिय और निर्गुण कहते हैं।

उत्तर— न तस्य कार्यं करणं च विद्यते,
न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते।
परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते,
स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च॥

यह उपनिषद् का वचन है [श्वेताश्वरतर उप० ६। ८]।

परमात्मा से कोई तद्रूप कार्य और उसको करण अर्थात् साधकतम दूसरा अपेक्षित नहीं। न कोई उसके तुल्य और न अधिक है। सर्वोत्तम शक्ति अर्थात् जिसमें अनन्त ज्ञान, अनन्त बल और अनन्त क्रिया है, वह स्वाभाविक अर्थात् सहज उसमें सुनी जाती है। जो परमेश्वर निष्क्रिय होता तो जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय न कर सकता; इसलिये वह 'विभु' [है], तथापि चेतन होने से उसमें क्रिया भी है।

प्रश्न—जब वह क्रिया करता होगा तब अन्त-वाली क्रिया होती है, वा अनन्त?

उत्तर—जितने देश-काल में क्रिया करनी उचित समझता है उतने ही देश-काल में क्रिया करता है, न अधिक, न न्यून; क्योंकि वह विद्वान् है।

[ईश्वर का स्वरूप]

प्रश्न—परमेश्वर अपना अन्त जानता है वा नहीं? जानता है तो अनन्त नहीं, और जो नहीं जानता तो पूर्णज्ञानी नहीं?

उत्तर—जानता है, और परमात्मा पूर्णज्ञानी है; क्योंकि ज्ञान उसको कहते हैं कि जिससे जैसा का वैसा पदार्थ जाना जाय। जब परमेश्वर अनन्त है, तो उसको अनन्त ही जानना ज्ञान, और अनन्त को सान्त और सान्त को अनन्त जानना 'अज्ञान' अर्थात् 'भ्रम' कहाता है। **'यथार्थदर्शनं ज्ञानमिति'**= जो जैसा पदार्थ है, उसको वैसा ही जानना ज्ञान, और उससे उलटा 'अज्ञान' है। इसलिये—

क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः॥

योगसूत्र [समाधिपाद, सू० २४]॥

जो अविद्यादि क्लेश, कुशल-अकुशल, इष्ट-अनिष्ट और मिश्र फलदायक कर्मों की वासना से रहित है, वह सब जीवों से विशेष **'ईश्वर'** कहाता है।

प्रश्न—चेतन एक है, वा अनेक?

उत्तर—ईश्वर चेतन एक, और जीव चेतन अनेक हैं।

[क्या कपिलाचार्य अनीश्वरवादी हैं?]

प्रश्न—ईश्वरासिद्धेः॥१॥

प्रमाणाभावान्न तत्सिद्धिः॥२॥

सम्बन्धाभावान्नानुमानम्॥३॥

ये सांख्यशास्त्र के सूत्र हैं॥ [१। ९२; ५। १०; ५। ११]

प्रत्यक्ष से ईश्वर की सिद्धि नहीं होती॥१॥

क्योंकि जब उसकी सिद्धि में प्रत्यक्ष ही नहीं, तो अनुमानादि प्रमाण नहीं घट सकते॥२॥

और व्याप्ति-सम्बन्ध न होने से अनुमान भी नहीं हो सकता, पुनः प्रत्यक्ष-अनुमान के न होने से शब्द-प्रमाण आदि भी नहीं घट सकते। इस कारण ईश्वर की सिद्धि नहीं हो सकती॥३॥

उत्तर—यहाँ ईश्वर का निषेध नहीं है; किन्तु ईश्वर की सिद्धि में प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं है [यह केवल पूर्वपक्ष में कहा है], और न ईश्वर जगत् का उपादान कारण है, और पुरुष [=जीव] से विलक्षण अर्थात् सर्वत्र पूर्ण होने से परमात्मा का नाम भी **'पुरुष'** और शरीर में शयन करने से जीव

का भी नाम **'पुरुष'** है, [यह कहकर ईश्वर का अस्तित्व स्वीकार किया है]; क्योंकि इसी प्रकरण में कहा है—

प्रधानशक्तियोगाच्चेत्सङ्गापत्तिः॥१॥
सत्तामात्राच्चेत्सर्वैश्वर्य्यम्॥२॥
श्रुतिरपि प्रधानकार्यत्वस्य॥३॥

सांख्यसूत्र [५। ८-९, १२]॥

यदि **'पुरुष'** को प्रधानशक्ति का योग हो तो **'पुरुष'** में सङ्गापत्ति हो जाय। अर्थात् जैसे प्रकृति सूक्ष्म से मिलकर कार्यरूप में सङ्गत हुई है, वैसे परमेश्वर भी स्थूल हो जाय। इसलिये परमेश्वर जगत् का उपादान कारण नहीं, किन्तु **निमित्त कारण** है॥१॥

जो चेतन से जगत् की उत्पत्ति हो तो जैसा परमेश्वर समग्रैश्वर्ययुक्त है, वैसा संसार में भी सर्वैश्वर्य का योग होना चाहिये, सो नहीं है। इसलिये परमेश्वर जगत् का उपादान कारण नहीं, किन्तु **निमित्त कारण** है॥२॥

क्योंकि उपनिषद् भी प्रधान को ही जगत् का उपादान कारण कहती है॥३॥ जैसे—

अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः.प्रजाः सृजमानां सरूपाः॥

यह श्वेताश्वतर उपनिषद् का वचन है [अ० ४। मं० ५]।

जो जन्मरहित, सत्त्व-रज-तमोगुणरूप प्रकृति है, वही स्वरूपाकार से बहुत प्रजारूप हो जाती है; अर्थात् प्रकृति परिणामिनी होने से अवस्थान्तर हो जाती है और पुरुष अपरिणामी होने से वह अवस्थान्तर होकर दूसरे रूप में कभी नहीं प्राप्त होता, सदा कूटस्थ=निर्विकार रहता है, और प्रकृति सृष्टि में सविकार और प्रलय में निर्विकार रहती है।

इसीलिये जो कोई कपिलाचार्य को अनीश्वरवादी कहता है, जानो वही अनीश्वरवादी है, कपिलाचार्य नहीं;

[अन्य शास्त्रों में ईश्वर का प्रतिपादन]

तथा **'मीमांसा'** **'धर्म-धर्मी'** से ईश्वर [शब्द से] **'वैशेषिक'** और **'न्याय'** भी **'आत्म'** शब्द से अनीश्वरवादी नहीं; क्योंकि सर्वज्ञत्वादि धर्मयुक्त और **'अतति सर्वत्र व्याप्नोतीत्यात्मा'**=जो सर्वत्र व्यापक सब जीवों का आत्मा है, उसको **'मीमांसा'**, **'वैशेषिक'** और **'न्याय'** **'ईश्वर'** मानते हैं।

[ईश्वर कभी अवतार नहीं लेता]

प्रश्न—ईश्वर अवतार लेता है, वा नहीं?

उत्तर—नहीं, क्योंकि—

'अज एकंपात्०'॥ 'स पर्य्यगाच्छुक्रमंकायम्०॥'

ये दोनों यजुर्वेद के वचन हैं [३४। ५३ और ४०। ८]।

इत्यादि वचनों से [सिद्ध है कि] परमेश्वर न जन्म लेता और न कभी शरीरवाला होता है।

प्रश्न—यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥

भगवद्गीता [४। ७]॥

श्रीकृष्ण जी कहते हैं कि जब-जब धर्म का लोप होता है तब-तब मैं शरीर-धारण करता हूँ।

उत्तर—यह बात वेदविरुद्ध होने से प्रमाण नहीं। और ऐसा हो सकता है कि श्रीकृष्ण धर्मात्माओं और धर्म की रक्षा करना चाहते थे कि 'मैं युग-युग में जन्म लेके श्रेष्ठों की रक्षा और दुष्टों का नाश करूँ', तो कुछ दोष नहीं। क्योंकि **'परोपकाराय सतां विभूतयः'**=परोपकार के लिये सत्पुरुषों का तन, मन, धन होता है; तथापि इससे श्रीकृष्ण ईश्वर नहीं हो सकते।

प्रश्न—जो ऐसा है तो संसार में ईश्वर के चौवीस अवतार होते हैं, उनको अवतार क्यों मानते हैं?

उत्तर—वेदार्थ के न जानने [से], सम्प्रदायी लोगों के बहकाने [से] और अपने आप अविद्वान् होने से भ्रमजाल में फसके ऐसी-ऐसी अप्रामाणिक बातें करते और मानते हैं।

प्रश्न—जो ईश्वर अवतार न लेवे तो कंस-रावणादि दुष्टों का नाश कैसे हो सके?

उत्तर—प्रथम तो जो जन्मा है वह अवश्य मृत्यु को प्राप्त होता है। जो ईश्वर अवतार=शरीर धारण किये विना जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय करता है, उसके सामने कंस और रावण-आदि एक कीड़ी के समान भी नहीं। वह सर्वव्यापक होने से कंस-रावण-आदि के शरीरों में भी परिपूर्ण हो रहा है। जब चाहे उसी समय मर्मच्छेदन कर नाश कर सकता है। इस अनन्त-गुण-कर्म-स्वभावयुक्त परमात्मा को, एक क्षुद्र जीव को मारने के लिये जन्म-मरण-युक्त कहना, महामूर्खता का काम है।

और जो कोई कहै कि भक्तों के उद्धार के लिये जन्म लेता है तो भी सत्य नहीं, क्योंकि जो भक्तजन ईश्वर की आज्ञानुकूल चलते हैं, उनका उद्धार करने का पूरा सामर्थ्य ईश्वर में है। क्या ईश्वर के पृथिवी, सूर्य, चन्द्रादि जगत् को बनाने, धारण और प्रलय करने रूप कर्मों से, पुत्रोत्पत्ति, कंस-रावणादि का वध और गोवर्धनादि उठाना बड़े कर्म हैं? जो कोई इस सृष्टि में परमेश्वर के कर्मों का विचार करे तो **'न भूतो न भविष्यति'**=ईश्वर के सदृश न कोई हुआ, न है, न होगा, [ऐसा उसे ज्ञात हो जायेगा]।

और युक्ति से भी ईश्वर का जन्म सिद्ध नहीं होता। जैसे कोई अनन्त आकाश को कहे कि 'गर्भ में आया वा मुट्ठी में धर लिया', यह सच कभी

नहीं हो सकता, क्योंकि आकाश अनन्त और सबमें व्यापक है, इससे आकाश न भीतर आता, न बाहर जाता; वैसे ही परमेश्वर के अनन्त और सर्वव्यापक होने से उसका आना-जाना सिद्ध नहीं होता; क्योंकि आना वा जाना वहां हो सकता है, जब वहां वह न हो। क्या परमेश्वर गर्भ में व्यापक नहीं था, जो कहीं से [अन्दर] आया? और क्या बाहर नहीं था, जो भीतर से बाहर निकला? इसलिये परमेश्वर का जन्म-मरण कभी नहीं हो सकता। इसी प्रकार **'ईसा'** आदि भी 'ईश्वर के अवतार नहीं थे' ऐसा समझ लेना। क्योंकि राग-द्वेष, क्षुधा-तृषा, भय-शोक, दुःख-सुख, जन्म-मरण आदि गुणयुक्त होने से वे मनुष्य थे।

[ईश्वर पापों को कभी क्षमा नहीं करता]

प्रश्न—ईश्वर अपने भक्तों के पाप क्षमा करता है, वा नहीं?

उत्तर—नहीं; क्योंकि जो पाप क्षमा करे, तो उसका न्याय नष्ट हो जाय और सब मनुष्य महापापी हो जायें। क्योंकि क्षमा की बात सुनके ही उनको पाप करने में उत्साह और निर्भयता हो जाय। जैसे कोई राजा अपराधियों के अपराध को क्षमा करे तो वे अधिक-अधिक अपराध करने लगें। और जो अपराध नहीं करता है वह भी अपराध करने से न डरेगा। इसलिये सबकर्मों का यथावत् फल देना ईश्वर का काम है, क्षमा करना नहीं।

[जीव का स्वातन्त्र्य और पारतन्त्र्य]

प्रश्न—जीव स्वतन्त्र है, वा परतन्त्र?

उत्तर—अपने कर्त्तव्य कर्मों में स्वतन्त्र और ईश्वर की व्यवस्था में परतन्त्र है। **'स्वतन्त्रः कर्त्ता'** यह पाणिनीय व्याकरण का सूत्र है [अष्टा० १। ४। ५४] =जो स्वतन्त्र अर्थात् स्वाधीन है, वही कर्त्ता है।

प्रश्न—स्वतन्त्र किसको कहते हैं?

उत्तर—जिसके आधीन शरीर, प्राण, इन्द्रिय और अन्तःकरणादि हों, जो स्वतन्त्र है। जो स्वतन्त्र न हो तो उसको पाप-पुण्य का फल कभी नहीं प्राप्त हो सकता। क्योंकि जैसे भृत्य स्वामी की, और सेना सेनाध्यक्ष की आज्ञा से अथवा प्रेरणा से युद्ध में अनेक पुरुषों को मारके अपराधी नहीं होते, वैसे परमेश्वर की प्रेरणा और आधीनता से काम सिद्ध हों, तो जीव को पाप वा पुण्य न लगे। उस फल का भागी प्रेरक परमेश्वर होवे। स्वर्ग-नरक अर्थात् सुख-दुःख की प्राप्ति भी परमेश्वर को होवे। जैसे किसी मनुष्य ने शस्त्रविशेष से किसी को मार डाला, तो वही मारनेवाला पकड़ा जाता है, वही दण्ड पाता है; शस्त्र नहीं। वैसे ही पराधीन जीव पाप-पुण्य का भागी नहीं हो सकता। इसलिये अपने सामर्थ्यानुकूल कर्म करने में जीव स्वतन्त्र है, परन्तु जब वह पाप कर चुकता है, तब ईश्वर की व्यवस्था में पराधीन होकर पाप के फल भोगता है। इसलिये **कर्म करने में जीव स्वतन्त्र और पाप के दुःख रूप फल भोगने में परतन्त्र होता है।**

[जीव ईश्वरजन्य नहीं, वह कर्म करने में स्वतन्त्र है]

प्रश्न—जो परमेश्वर जीव को न बनाता, न सामर्थ्य देता तो जीव कुछ भी न कर सकता। इसलिये परमेश्वर की प्रेरणा से ही जीव कर्म करता है।

उत्तर—जीव उत्पन्न कभी न हुआ, अनादि है। जैसा ईश्वर और जगत् का उपादान कारण नित्य है [वैसे जीव भी है]। और जीव का शरीर तथा इन्द्रियों के गोलक परमेश्वर के बनाये हुए हैं, परन्तु वे सब जीव के आधीन हैं। जो कोई मन, कर्म, वचन से पाप-पुण्य करता है, वही भोगता है, ईश्वर नहीं। जैसे, किसी कारीगर ने पहाड़ से लोहा निकाला, उस लोहे को किसी व्यापारी ने लिया, उसकी दुकान से लोहार ने लेके तलवार बनाई, उससे किसी सिपाही ने तलवार ली, फिर उससे किसी को मार डाला। अब यहां जैसे, उस लोहे को उत्पन्न करनेवाले को, उससे लेनेवाले को, तलवार बनानेवाले और तलवार को पकड़कर राजा दण्ड नहीं देता, किन्तु जिसने तलवार से मारा, वही दण्ड पाता है। इसी प्रकार शरीरादि की उत्पत्ति करनेवाला परमेश्वर उसके कर्मों का भोक्ता नहीं होता, किन्तु जीव भोक्ता होता है। और जो परमेश्वर कर्म कराता होता तो कोई जीव पाप नहीं करता; क्योंकि **परमेश्वर पवित्र और धार्मिक होने से किसी जीव को पाप करने में प्रेरणा नहीं करता।** इसलिये जीव अपने कामों के करने में स्वतन्त्र है। जैसे जीव अपने कामों में स्वतन्त्र है, वैसे ही परमेश्वर भी अपने कर्मों में स्वतन्त्र है।

[जीव और ईश्वर का स्वरूप तथा गुण-कर्म-स्वभाव]

प्रश्न—जीव और ईश्वर का स्वरूप, गुण, कर्म और स्वभाव कैसा है?

उत्तर—दोनों चेतनस्वरूप हैं, स्वभाव दोनों का पवित्र, अविनाशी और धार्मिकता आदि है, परन्तु परमेश्वर के सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय [करना], सबको नियम में रखना, जीवों को पाप-पुण्यों के फल देना

आदि धर्मयुक्त कर्म हैं। और जीव के सन्तानोत्पत्ति, उनका पालन, **'शिल्पविद्या'** आदि अच्छे और बुरे कर्म हैं। ईश्वर के नित्य ज्ञान, आनन्द, अनन्त बल आदि गुण हैं। और जीव के—

इच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदुःखज्ञानान्यात्मनो लिङ्गम्॥

न्यायसूत्र [१। १। १०]॥

प्राणापाननिमेषोन्मेषजीवनमनोगतीन्द्रियान्तरविकाराः सुखदुःख इच्छाद्वेष-प्रयत्नाश्चात्मनो लिङ्गानि॥

वैशेषिकसूत्र [३। २। ४।]

दोनों सूत्रों में—**(इच्छा)** पदार्थों की प्राप्ति की अभिलाषा, **(द्वेष)** दुःखादि की अनिच्छा, वैर, **(प्रयत्न)** पुरुषार्थ, बल, **(सुख)** आनन्द, **(दुःख)** विलाप, अप्रसन्नता, **(ज्ञानानि)** विवेक, पहिचानना ये तुल्य हैं। परन्तु **'वैशेषिक'** में **(प्राण)** प्राण को बाहर निकालना, **(अपान)** प्राण को बाहर से भीतर को लेना, **(निमेष)** आंख मीचना, **(उन्मेष)** आंख को खोलना, **(जीवन)** प्राण का धारण करना, **(मन)** निश्चय, स्मरण और अहङ्कार करना, **(गति)** चलना, **(इन्द्रिय)** सब इन्द्रियों को चलाना, **(आन्तरविकाराः)** भिन्न-भिन्न क्षुधा- तृषा, हर्ष-शोकादि का होना। **ये जीवात्मा के गुण परमात्मा के [गुणों से] भिन्न हैं, इन्हीं से आत्मा की प्रतीति करनी [चाहिये]; क्योंकि वह स्थूल नहीं है।**

जब तक आत्मा देह में होता है तभी तक ये गुण प्रकाशित रहते हैं, और जब शरीर छोड़ चला जाता है तब ये गुण शरीर में नहीं रहते। जिसके होने से जो हों, और न होने से न हों, वे गुण उसी के होते हैं। जैसे दीप और सूर्यादि के होने से प्रकाशादि का होना, और न होने से न होना है, वैसे ही जीव और परमात्मा का विज्ञान गुणों के द्वारा होता है।

[ईश्वर के त्रिकालदर्शित्व की मीमांसा]

प्रश्न—परमेश्वर त्रिकालदर्शी है, इससे भविष्यत् की बातें जानता है। वह अपने ज्ञान से जैसा निश्चय करेगा, जीव वैसा ही करेगा, इससे जीव स्वतन्त्र नहीं। और जीव को ईश्वर दण्ड भी नहीं दे सकता; क्योंकि जैसा ईश्वर ने अपने ज्ञान से निश्चित किया है, वैसा ही जीव करता है।

उत्तर—ईश्वर को त्रिकालदर्शी कहना मूर्खता का काम है, क्योंकि जो होके न रहै, वह 'भूतकाल' और न होके होवे, वह 'भविष्यत्काल' कहाता है। क्या ईश्वर को कोई ज्ञान होके नहीं रहता तथा न होके होता है? इसलिये परमेश्वर का ज्ञान सदा एकरस, अखण्डित वर्त्तमान रहता है। भूत, भविष्यत् जीवों के लिये है। हां, **जीवों के कर्मों की अपेक्षा से त्रिकालज्ञता ईश्वर में है, स्वतः नहीं।** स्वतन्त्रता से जैसा कर्म जीव करता है, वैसा ही सर्वज्ञता से ईश्वर जानता है। और जैसा ईश्वर जानता है, वैसा जीव करता है अर्थात् भूत, भविष्यत्, वर्त्तमान के ज्ञान और फल देने में ईश्वर स्वतन्त्र और जीव किञ्चित् वर्त्तमान [के ज्ञान] और कर्म करने में स्वतन्त्र है। ईश्वर का अनादि ज्ञान होने से जैसा कर्म का ज्ञान है,

वैसा ही उसके दण्ड देने का भी ज्ञान अनादि है। दोनों ज्ञान उसके सत्य हैं। क्या 'कर्मज्ञान' सच्चा और 'दण्डज्ञान' मिथ्या कभी हो सकता है? इसलिये इसमें कोई भी दोष नहीं आता।

[जीव और ईश्वर का सम्बन्ध]

प्रश्न—जीव शरीर में [परमेश्वर से] विभु है, वा परिच्छिन्न?

उत्तर—परिच्छिन्न। जो विभु होता तो जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्ति, मरण-जन्म, संयोग- वियोग, जाना-आना कभी नहीं हो सकता। इसलिये जीव का स्वरूप अल्पज्ञ, अल्प अर्थात् सूक्ष्म है और परमेश्वर का अतीव सूक्ष्मात्सूक्ष्मतर, अनन्त, सर्वज्ञ और सर्वव्यापक-स्वरूप है। इसीलिये जीव और परमेश्वर का 'व्याप्य-व्यापक' सम्बन्ध है।

प्रश्न—जिस जगह में एक वस्तु होता है, उस जगह में दूसरा वस्तु नहीं रह सकता। इसीलिये जीव और ईश्वर का संयोग सम्बन्ध हो सकता है, व्याप्य-व्यापक नहीं।

उत्तर—यह नियम समान आकारवाले पदार्थों में घट सकता है, असमानाकृति में नहीं। जैसे लोहा स्थूल, [और] अग्नि सूक्ष्म होता है, इस कारण से लोहे में विद्युत्-अग्नि व्यापक होकर एक ही अवकाश में दोनों रहते हैं; वैसे जीव परमेश्वर से स्थूल और परमेश्वर-जीव से सूक्ष्म होने से परमेश्वर व्यापक और जीव व्याप्य है। जैसे यह व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध

जीव-ईश्वर का है, वैसा ही सेवक-सेव्य, आधार-आधेय, भृत्य-स्वामी, राजा-प्रजा और पुत्र-पिता आदि भी सम्बन्ध हैं।

प्रश्न—ब्रह्म और जीव जुदे हैं वा एक?

उत्तर—अलग-अलग हैं।

[ये वाक्य जीव ब्रह्म की एकता के बोधक नहीं]

प्रश्न—जो पृथक्-पृथक् हैं तो—**प्रज्ञानं ब्रह्म॥१॥** [ऐत०आर० २। ६॥ ऐत० उप० ३। ५। ३] **अहं ब्रह्मास्मि॥२॥** [बृह० उप०, १। ४। १०; शत० ब्रा० ४। ३। २। २१] **तत्त्वमसि॥३॥** [छान्दोग्य उप० ६। ८। ७] और **अयमात्मा ब्रह्म॥४॥** [माण्डूक्य० २; शत० ब्रा० १४। ४। ५। १४; सभी वाक्यांश द्रष्टव्य हैं—हयग्रीवोपनिषद् १ में] इन 'वेदों के महावाक्यों' का अर्थ क्या है?

उत्तर—ये वेदवाक्य ही नहीं हैं; किन्तु ब्राह्मण-ग्रन्थों के वचन हैं। और इनका नाम 'महावाक्य' कहीं सत्यशास्त्रों में नहीं लिखा।

अर्थ—ब्रह्म प्रकृष्ट ज्ञानस्वरूप है॥१॥

(अहम्) मैं **(ब्रह्म)** अर्थात् ब्रह्मस्थ **(अस्मि)** हूँ। यहां **'तात्स्थ्योपाधि'** है जैसे **'मञ्चाः क्रोशन्ति'**= मचान पुकारते हैं। मचान जड़ हैं, उनमें

पुकारने का सामर्थ्य नहीं, इसलिये मञ्चस्थ मनुष्य पुकारते हैं। इसी प्रकार यहां भी जानना।

कोई कहे कि ब्रह्मस्थ सब पदार्थ हैं, पुनः जीव को ब्रह्मस्थ कहने में क्या विशेष है? इसका उत्तर यह है कि **सब पदार्थ ब्रह्मस्थ हैं, परन्तु जैसा साधर्म्ययुक्त निकटस्थ जीव है, वैसा अन्य नहीं।** और जीव को ब्रह्म का ज्ञान [होता है], और मुक्ति में वह ब्रह्म के साक्षात्सम्बन्ध में रहता है, इसलिये जीव का ब्रह्म के साथ **'तात्स्थ्य'** वा **'तत्सहचरितोपाधि'** अर्थात् ब्रह्म का सहचारी जीव है। इससे जीव और ब्रह्म एक नहीं। जैसे कोई किसी से कहे कि मैं और यह एक हैं अर्थात् अविरोधी हैं, वैसे जो जीव समाधिस्थ होकर, परमेश्वर में प्रेमबद्ध होकर निमग्न होता है, वह कह सकता है कि मैं और ब्रह्म एक अर्थात् अविरोधी, एक अवकाशस्थ हैं। **जो जीव परमेश्वर के गुण-कर्म-स्वभाव के अनुकूल अपने गुण-कर्म-स्वभाव करता है, वही साधर्म्य से ब्रह्म के साथ एकता कह सकता है॥२॥**

['तत्वमसि' वाक्य पर विचार]

प्रश्न—अच्छा तो इसका अर्थ कैसा करोगे—**(तत्)** ब्रह्म **(त्वं)** तू जीव **(असि)** है। हे जीव ! **(त्वम्)** तू **(तत्)** वह ब्रह्म **(असि)** है।

उत्तर—तुम 'तत्' शब्द से क्या लेते हो?

[प्रश्न]—ब्रह्म।

[उत्तर]—ब्रह्म पद की अनुवृत्ति कहां से लाये?

[प्रश्न]—'सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयं ब्रह्म॥' इस पूर्व वाक्य से। [छान्दोग्य० उप० ६। २। १ का प्रश्नकर्त्ता द्वारा विकृत करके प्रस्तुत पाठ]

[उत्तर]—तुमने इस **'छान्दोग्य उपनिषद्'** का दर्शन भी नहीं किया। जो वह देखी होती तो ऐसा झूठ क्यों कहते? वहां **'ब्रह्म'** शब्द का पाठ ही नहीं है। किन्तु **'छान्दोग्य'** [६। २। १] में तो—

सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्॥ ऐसा पाठ है, वहां 'ब्रह्म' शब्द नहीं है।

प्रश्न—तो आप 'तत्' शब्द से क्या लेते हैं?

उत्तर—स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिद๗ सर्वं तत्सत्य๗ स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति॥

छान्दोग्य० [उप० ६। ८। ७]॥

=वह परमात्मा जानने योग्य है, जो यह अत्यन्त सूक्ष्म और इस सब जगत् और जीव का आत्मा है। वही सत्यस्वरूप और अपना आत्मा आप ही है। हे श्वेतकेतो ! प्रिय पुत्र ! **'तदात्मकस्तदन्तर्यामी त्वमसि'**=उस

परमात्मा अन्तर्यामी से तू युक्त है। यही अर्थ सब उपनिषदों से अविरुद्ध है। क्योंकि—

य आत्मनि तिष्ठन्नात्मनोऽन्तरो
यमात्मा न वेद यस्यात्मा शरीरम्।
य आत्मानमन्तरो यमयति स
तऽआत्मान्तर्याम्यमृतः॥

यह बृहदारण्यक का वचन है। [शत० ब्रा० १४। ३। ५। ३०; माध्यन्दिन बृह० उप० ३। ७। ३०]

महर्षि याज्ञवल्क्य गोतमवंशी उद्दालक आरुणि से कहते हैं कि "हे गौतम= उद्दालक! जो परमेश्वर आत्मा अर्थात् जीव में स्थित और जीवात्मा से भिन्न है, जिसको मूढ़ जीवात्मा नहीं जानता कि वह परमात्मा मुझमें व्यापक है। जिस परमेश्वर का जीवात्मा शरीर [-वत् है] अर्थात् जैसे शरीर में जीव रहता है, वैसे जीव में परमेश्वर व्यापक है। जीवात्मा से भिन्न रहकर [जो] जीव के पाप-पुण्यों का साक्षी होकर उनके फल जीव को देकर नियम में रखता है, वही अविनाशीस्वरूप तेरा भी अन्तर्यामी आत्मा अर्थात् तेरे भीतर व्यापक है, उसको तू जान"। इत्यादि वचनों का क्या अन्यथा अर्थ कर सकता है?॥३॥

['अयमात्मा ब्रह्म' वाक्य पर विचार]

"अयमात्मा ब्रह्म" अर्थात् समाधिदशा में जब योगी को परमेश्वर प्रत्यक्ष होता है तब वह कहता है कि 'यह जो मुझमें व्यापक है, वही ब्रह्म सर्वत्र

व्यापक है'। इसलिये जो आजकल के वेदान्ती जीव-ब्रह्म की एकता करते हैं वे **'वेदान्तशास्त्र'** को नहीं जानते॥४॥

[क्या ईश्वर ही जीवरूप में शरीर में प्रविष्ट है?]

प्रश्न—अनेन जीवेनात्मनानुप्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणि॥१॥

छान्दोग्य० [उप० ६। ३। २]

"तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्" ॥२॥

तैत्तिरीय॰ [उप०, ब्रह्मानन्दवल्ली अनु० ६]॥

परमेश्वर कहता है कि मैं जगत् और शरीर को रचकर जगत् में व्यापक और जीवरूप होके शरीर में प्रविष्ट होता हुआ नाम और रूप की व्याख्या करूं॥१॥

परमेश्वर उस जगत् और शरीर को बनाकर, उसमें वही प्रविष्ट हुआ॥२॥

इत्यादि श्रुतियों का अर्थ दूसरा कैसे कर सकोगे?

उत्तर—जो तुम पद, पदार्थ और वाक्यार्थ जानते तो ऐसा अनर्थ कभी न करते। क्योंकि यहां ऐसा समझो—एक 'प्रवेश' और दूसरा 'अनुप्रवेश' अर्थात् पश्चात् प्रवेश कहाता है। **परमेश्वर शरीर में प्रविष्ट हुए जीवों के साथ अनुप्रविष्ट के समान होकर वेद द्वारा सब नाम-रूपादि की विद्या को प्रकट करता है, और शरीर में जीव को प्रवेश करा, आप जीव के**

भीतर अनुप्रविष्ट हो रहा है। जो तुम **'अनु'** शब्द का अर्थ जानते, तो वैसा विपरीत अर्थ कभी न करते।

['चेतन' मात्र साधर्म्य से जीव और ब्रह्म एक नहीं]

प्रश्न—'सोऽयं देवदत्तो य उष्णकाले काश्यां दृष्टः, स इदानीं प्रावृट्-समये मथुरायां दृश्यते' अर्थात् जो देवदत्त मैंने उष्णकाल में काशी में देखा था, उसी को वर्षा-समय में मथुरा में देखता हूं। यहां वह काशी देश, उष्णकाल; यह मथुरा देश और वर्षाकाल को छोड़ कर शरीरमात्र में लक्ष्य करने से ही देवदत्त लक्षित होता है, वैसे इस **'भागत्यागलक्षणा'** से ईश्वर का परोक्ष देश, काल, माया, उपाधि और जीव का यह देश, काल, अविद्या और अल्पज्ञता उपाधि छोड़ चेतनमात्र में लक्ष्य देने से एक ही ब्रह्म वस्तु दोनों में लक्षित होता है। इस 'भागत्यागलक्षणा' अर्थात् कुछ ग्रहण करना और कुछ छोड़ देना, जैसा सर्वज्ञत्वादि वाच्यार्थ ईश्वर का और अल्पज्ञत्वादि वाच्यार्थ जीव का छोड़कर चेतनमात्र लक्ष्यार्थ का ग्रहण करने से **'अद्वैत-सिद्ध'** होती है। यहां क्या कह सकोगे?

उत्तर—प्रथम, तुम जीव और ईश्वर को नित्य मानते हो, वा अनित्य?

प्रश्न—इन दोनों को उपाधिजन्य कल्पित होने से अनित्य मानते हैं।

उत्तर—उस उपाधि को नित्य मानते हो, वा अनित्य?

[नवीन वेदान्तियों के ६ अनादि पदार्थों का खण्डन]

प्रश्न—हमारे मत में—

जीवेशौ च विशुद्धा चिद् विभेदस्तु तयोर्द्वयोः।
अविद्या तच्चितोर्योगः षडस्माकमनादयः॥१॥
कार्य्योपाधिरयं जीवः कारणोपाधिरीश्वरः।
कार्यकारणतां हित्वा पूर्णबोधोऽवशिष्यते॥२॥

ये ‘संक्षेपशारीरक’ और ‘शारीरकभाष्य’ में कारिकायें हैं।
[सिद्धान्तलेश संग्रह परि० १, पृष्ठ ६३ पर तथा द्वितीय श्लोक अनुभूति प्रकाश १। ६१में है।]

हम वेदान्ती छः पदार्थों अर्थात् एक जीव, दूसरा ईश्वर, तीसरा ब्रह्म, चौथा जीव और ईश्वर का विशेष भेद, पाँचवां अविद्या= अज्ञान, और छठा अविद्या और चेतन का योग, इनको अनादि मानते हैं॥

परन्तु एक ब्रह्म अनादि, अनन्त और अन्य पांच अनादि, सान्त हैं, जैसा कि **'प्रागभाव'** होता है। जब तक अज्ञान रहता है, तब तक ये पाँच रहते हैं। और इन पाँच का आदि विदित नहीं होता, इसलिये अनादि; और ज्ञान होने के पश्चात् नष्ट हो जाते हैं, इसलिये 'सान्त' अर्थात् नाशवाले कहाते हैं॥१-२॥

उत्तर—ये तुम्हारे दोनों श्लोक अशुद्ध हैं; क्योंकि अविद्या के योग के विना जीव और माया के योग के विना ईश्वर तुम्हारे मत में सिद्ध नहीं हो सकता। इससे **'तच्चितोर्योगः'** जो छठा पदार्थ तुमने गिना है, वह नहीं रहा; क्योंकि वह अविद्या, माया, जीव, ईश्वर में चरितार्थ हो गया और ब्रह्म, माया और अविद्या के योग के विना 'ईश्वर' नहीं बनता। फिर ईश्वर को अविद्या और ब्रह्म से पृथक् गिनना व्यर्थ है। इसलिये दो ही पदार्थ अर्थात् ब्रह्म और अविद्या तुम्हारे मत में सिद्ध हो सकते हैं, छः नहीं॥१॥

तथा आपका प्रथम **कार्योपाधि** और **कारणोपाधि** से जीव और ईश्वर का सिद्ध करना तब हो सकता है कि जब अनन्त, नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्तस्वभाव, सर्वज्ञ, सर्वव्यापक ब्रह्म में अज्ञान सिद्ध करें। जो उसके एक देश में स्वाश्रय और स्वविषयक अज्ञान अनादि सर्वत्र मानोगे तो सब ब्रह्म शुद्ध नहीं हो सकता। और जब एक देश में अज्ञान मानोगे तो वह परिच्छिन्न होने से इधर-उधर आता-जाता रहेगा। जहां-जहां जायगा, वहां-वहां का ब्रह्म अज्ञानी और जिस-जिस देश को छोड़ता जायगा, उस-उस देश का ब्रह्म ज्ञानी होता रहेगा, तो किसी देश के ब्रह्म को अनादि, शुद्धज्ञानयुक्त न कह सकोगे। और जो अज्ञान की सीमा में ब्रह्म है, वह अज्ञान को जानेगा। बाहर और भीतर के ब्रह्म के टुकड़े हो जायेंगे।

जो कहो कि 'टुकड़े हो जायें, तो ब्रह्म की क्या हानि है?' तो वह अखण्ड नहीं। और जो अखण्ड है, तो अज्ञानी नहीं। तथा ज्ञान का अभाव वा विपरीत ज्ञान भी गुण होने से किसी द्रव्य के साथ नित्य-सम्बन्ध से

रहेगा। यदि ऐसा है, तो समवायसम्बन्ध होने से अनित्य कभी नहीं हो सकता। और जैसे शरीर के एक देश में फोड़ा होने से सर्वत्र दुःख फैल जाता है, वैसे ही एक देश में अज्ञान, सुख-दुःख, क्लेशों की उपलब्धि होने से 'सब ब्रह्म' दुःखादि के अनुभव से युक्त होगा, और 'सब ब्रह्म' को शुद्ध न कह सकोगे। वैसे ही **'कार्योपाधि'** अर्थात् **'अन्तःकरण की उपाधि'** के योग से ब्रह्म को जीव मानोगे, तो हम पूछते हैं कि ब्रह्म व्यापक है वा परिच्छिन्न? जो कहो व्यापक और 'उपाधि-परिच्छिन्न' है अर्थात् एकदेशी और पृथक्-पृथक् है, तो अन्तःकरण चलता-फिरता है वा नहीं?

उत्तर—चलता-फिरता है।

प्रश्न—अन्तःकरण के साथ ब्रह्म भी चलता-फिरता है, वा स्थिर रहता है?

उत्तर—स्थिर रहता है।

प्रश्न—जब अन्तःकरण जिस-जिस देश को छोड़ता है, उस-उस देश का ब्रह्म अज्ञानरहित और जिस-जिस देश को प्राप्त होता है उस-उस देश का शुद्ध ब्रह्म अज्ञानी होता होगा, वैसे क्षण[-क्षण] में ज्ञानी और अज्ञानी ब्रह्म होता रहेगा। इससे मोक्ष और बन्ध भी क्षणभङ्गुर होगा। और जैसे अन्य के देखे का अन्य स्मरण नहीं कर सकता, वैसे कल की देखी-सुनी हुई बात वा वस्तु का ज्ञान नहीं रह सकता; क्योंकि जिस समय देखा-सुना

था, वह दूसरा देश और दूसरा काल [था], जिस समय स्मरण करता [है], वह दूसरा देश और [दूसरा] काल है।

जो कहो कि 'ब्रह्म एक है' तो [वह] सर्वज्ञ क्यों नहीं? जो कहो कि 'अन्तःकरण भिन्न-भिन्न हैं', इससे वह भी भिन्न-भिन्न हो जाता होगा, तो वह जड़ है; उसमें ज्ञान नहीं हो सकता। जो कहो कि न केवल ब्रह्म और न केवल अन्तःकरण को ज्ञान होता है, किन्तु अन्तःकरणस्थ **'चिदाभास'** को ज्ञान होता है, तो भी चेतन को ही अन्तःकरण द्वारा ज्ञान होता है, जैसे नेत्रद्वारा; पुनः वह अल्प, अल्पज्ञ क्यों है? इसलिये कारणोपाधि और कार्योपाधि के योग से ब्रह्म, जीव और ईश्वर नहीं बना सकोगे। किन्तु **'ईश्वर'** नाम ब्रह्म का है और ब्रह्म से भिन्न अनादि, अनुत्पन्न और अमृतस्वरूप जीव का नाम **'जीव'** है। जो तुम कहो कि जीव **'चिदाभास'** का नाम है, तो उसके क्षणभङ्गुर होने से वही 'प्रत्यभिज्ञा' का भङ्ग-दोष आया और 'अनिर्मोक्षापत्ति' भी आती है, क्योंकि जीव उत्पन्न होने से नष्ट हो जायगा, तो मोक्ष का सुख कौन भोगेगा? इसलिये ब्रह्म जीव और जीव ब्रह्म कभी न हुआ, न है और न होगा॥२॥

['अद्वैत' शब्द का अर्थ और उसकी सिद्धि]

प्रश्न—तो 'सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्'॥

छान्दोग्य॰ [उप॰ ६। २। १]॥

'अद्वैतसिद्धि' कैसे होगी? हमारे मत में तो ब्रह्म से पृथक् कोई सजातीय, विजातीय और स्वगत अवयवों के भेद न होने से एक ब्रह्म ही सिद्ध होता है। जब जीव दूसरा है तो **'अद्वैतसिद्धि'** कैसे हो सकती है?

उत्तर—इस भ्रम में पड़ क्यों डरते हो? विशेष्य-विशेषण विद्या का विचार करो कि उसका क्या फल है। जो कहो कि **'व्यावर्त्तकं विशेषणं भवतीति।'**= विशेषण भेदकारक होता है, तो इतना और भी मानो कि **'प्रवर्त्तकं प्रकाशकमपि विशेषणं भवतीति।'**=विशेषण प्रवर्त्तक और प्रकाशक धर्मवाला भी होता है। तो समझो कि **'अद्वैत'** विशेषण ब्रह्म का है। इसमें व्यावर्त्तक धर्म यह है कि [यह] **'द्वैत वस्तु'** अर्थात् जैसे अनेक जीव और तत्त्व हैं, उनसे ब्रह्म को पृथक् करता है। और विशेषण का प्रवर्त्तक और प्रकाशक धर्म यह है कि ब्रह्म के एक होने की प्रवृत्ति करता और प्रकाशक है, जैसे **"अस्मिन्नगरेऽद्वितीयो धनाढ्यो देवदत्तः, अस्यां सेनायामद्वितीयः शूरवीरो विक्रमसिंहः"**=किसी ने किसी से कहा कि 'इस नगर में अद्वितीय धनाढ्य देवदत्त और इस सेना में अद्वितीय शूरवीर विक्रमसिंह है।' इससे क्या सिद्ध हुआ कि देवदत्त के सदृश इस नगर में दूसरा धनाढ्य और इस सेना में विक्रमसिंह के समान दूसरा शूरवीर नहीं है, न्यून तो हैं। और पृथिवी आदि जड़ पदार्थ, पश्वादि और वृक्षादि भी हैं, उनका निषेध नहीं हो सकता। वैसे ही ब्रह्म के सदृश जीव वा प्रकृति नहीं है, किन्तु न्यून तो हैं।

इससे यह सिद्ध हुआ कि ब्रह्म सदा एक है और जीव तथा प्रकृतिस्थ तत्त्व अनेक हैं। उनसे भिन्नता कर ब्रह्म के एकत्व को सिद्ध करनेहारा **'अद्वैत'** वा **'अद्वितीय'** विशेषण है। इससे जीव वा प्रकृति का और कार्यरूप जगत् का अभाव और निषेध नहीं हो सकता, अपितु ये सब हैं; परन्तु ब्रह्म के तुल्य नहीं। इससे न अद्वैतसिद्धि [होती है] और न द्वैतसिद्धि की हानि होती है। घबराहट में मत पड़ो, सोचो और समझो।

[साधारण से साधर्म्य से एकता नहीं होती]

प्रश्न—ब्रह्म के सत्, चित्, आनन्द और जीव के अस्ति, भाति, प्रियरूप से एकता होती है। फिर क्यों खण्डन करते हो?

उत्तर—किञ्चित् साधर्म्य मिलने से एकता नहीं हो सकती। जैसे पृथिवी जड़ [और] दृश्य है, वैसे जल और अग्नि आदि भी जड़ और दृश्य हैं, इतने से एकता नहीं होती। इनमें 'वैधर्म्य' भेदकारक अर्थात् विरुद्ध धर्म, जैसे—गन्ध, रूक्षता, काठिन्य आदि गुण पृथिवी के; और रस, द्रवत्व, कोमलत्वादि धर्म जल [के] और रूप, दाहकत्वादि धर्म अग्नि के होने से एकता नहीं। जैसे मनुष्य और कीड़ी आंख से देखते, मुख से खाते, पग से चलते हैं तथापि मनुष्य की जाति, आकृति, दो पग [आदि की] और कीड़ी की जाति, आकृति, अनेक पग आदि की भिन्नता होने से एकता नहीं होती। वैसे परमेश्वर के अनन्त ज्ञान-आनन्द-बल-क्रिया, निर्भ्रान्तित्व और व्यापकता जीव से और जीव के अल्पज्ञान, अल्पबल, अल्पस्वरूप, सभ्रान्तित्व और परिच्छिन्नतादि गुण ब्रह्म से भिन्न होने से जीव और

परमेश्वर एक नहीं; क्योंकि इनका स्वरूप भी, परमेश्वर अतिसूक्ष्म और जीव उससे कुछ स्थूल होने से, भिन्न है।

[भय का कारण अद्वैत बुद्धि]

प्रश्न—"अथ....उदरमन्तरं कुरुते, अथ तस्य भयं भवति।"

[तैत्ति० उप०, ब्रह्म० अनु० ७]

"द्वितीयाद्वै भयं भवति॥"

यह बृहदारण्यक का वचन है [बृह० उप०, १। ४। २]।

जो ब्रह्म और जीव में थोड़ा भी भेद करता है, उसको भय प्राप्त होता है; क्योंकि दूसरे से ही भय होता है।

उत्तर—इसका अर्थ यह नहीं है, किन्तु जो जीव परमेश्वर का निषेध वा किसी एक देश-काल में परिच्छिन्न परमात्मा को माने, वा उसकी आज्ञा और गुण-कर्म-स्वभाव से विरुद्ध होवे, अथवा किसी दूसरे मनुष्य से वैर करे, उसको भय प्राप्त होता है। क्योंकि **'द्वितीय बुद्धि'** अर्थात् ईश्वर से मेरा और मुझसे ईश्वर का कुछ सम्बन्ध नहीं, तथा किसी मनुष्य से कहे कि 'तुझको मैं कुछ नहीं समझता, तू मेरा कुछ भी नहीं कर सकता', वा किसी की हानि करता और दुःख देता जाय, तो उसको उनसे भय होता है। और सब प्रकार का अविरोध हो तो वे 'एक' कहाते हैं। जैसे, संसार में कहते हैं कि 'देवदत्त, यज्ञदत्त और विष्णुमित्र एक हैं', अर्थात् अविरुद्ध हैं। **विरोध न रहने से सुख और विरोध से दुःख प्राप्त होता है।**

प्रश्न—ब्रह्म और जीव की, क्या सदा एकता रहती है वा अनेकता? और कभी दोनों मिलके एक भी होते हैं, वा नहीं?

उत्तर—अभी इसके पूर्व कुछ उत्तर दे दिया है, परन्तु साधर्म्य-अन्वयभाव से एकता होती है। जैसे—आकाश से मूर्त्त-द्रव्य जड़त्व होने से और कभी पृथक् न रहने से एकता, और आकाश के विभुत्व, सूक्ष्मत्व, अरूपत्व, अनन्तत्व आदि गुणों और मूर्त्त के परिच्छिन्नत्व, दृश्यत्व आदि वैधर्म्य से भेद होता है, अर्थात् जैसे पृथिव्यादि-द्रव्य आकाश से भिन्न कभी नहीं रहते; क्योंकि **'अन्वय'** अर्थात् अवकाश के विना मूर्त्त-द्रव्य कभी नहीं ठहर सकता और **'व्यतिरेक'** अर्थात् स्वरूप से भिन्न होने से पृथक्ता है; वैसे, ब्रह्म के व्यापक होने से जीव और पृथिवी आदि द्रव्य उससे अलग नहीं रहते और स्वरूप से एक भी नहीं होते। जैसे, घर के बनाने के पूर्व भिन्न-भिन्न देश में मट्टी, लकड़ी, लोहा आदि पदार्थ आकाश में ही रहते हैं। जब घर बन गया तब भी आकाश में हैं, और जब वह नष्ट हो गया अर्थात् उसके सब अवयव भिन्न-भिन्न देश में प्राप्त हो गये, तब भी आकाश में हैं; अर्थात् तीनों कालों में आकाश से भिन्न नहीं हो सकते, और स्वरूप से भिन्न होने से न कभी एक थे, न हैं, और होंगे। इसी प्रकार जीव तथा सब संसार के पदार्थ परमेश्वर में व्याप्य होने से परमात्मा से तीनों कालों में न भिन्न [रहते हैं] और स्वरूप से भिन्न होने से एक भी कभी नहीं होते।

आजकल के वेदान्तियों की दृष्टि काणे पुरुष के समान अन्वय की ओर पड़के, व्यतिरेकभाव से छूट, विरुद्ध हो गई है। कोई भी ऐसा द्रव्य नहीं है कि जिसमें सगुणता-निर्गुणता, अन्वय-व्यतिरेक, साधर्म्य-वैधर्म्य और विशेष्य-विशेषण भाव न हो।

[ईश्वर सगुण भी है, और निर्गुण भी]

प्रश्न—परमेश्वर सगुण है, वा निर्गुण?

उत्तर—दोनों प्रकार [का] है।

प्रश्न—भला, एक मियान में दो तलवारें कभी रह सकती हैं? एक पदार्थ में सगुणता और निर्गुणता कैसे रह सकती हैं?

उत्तर—जैसे जड़ के 'रूप'-आदि गुण हैं और चेतन के 'ज्ञान'-आदि गुण जड़ में नहीं हैं, वैसे चेतन में 'इच्छा'-आदि गुण हैं और जड़ के 'रूप'-आदि गुण नहीं हैं। इसलिये **'यद् गुणैः सह वर्त्तमानं तत्सगुणम्' 'गुणेभ्यो यन्निर्गतं पृथग्भूतं तन्निर्गुणम्'**=जो गुणों से सहित वह 'सगुण' और जो गुणों से रहित वह 'निर्गुण' कहाता है। अपने-अपने स्वाभाविक गुणों से सहित और दूसरे विरोधी के गुणों से रहित होने से सब पदार्थ सगुण और निर्गुण हैं। कोई भी ऐसा पदार्थ नहीं है कि जिसमें केवल सगुणता वा केवल निर्गुणता हो, किन्तु एक में ही सगुणता और निर्गुणता सदा रहती है। वैसे ही परमेश्वर अपने अनन्त ज्ञान-बल-आदि

गुणों से सहित होने से **'सगुण'** और 'रूप'-आदि जड़ के तथा द्वेष-दुःख-आदि जीव के गुणों से पृथक् होने से **'निर्गुण'** कहाता है।

[निराकार को निर्गुण और साकार को सगुण कहना ठीक नहीं]

प्रश्न—संसार में निराकार को निर्गुण और साकार को सगुण कहते हैं। अर्थात् जब परमेश्वर जन्म नहीं लेता, तब 'निर्गुण' और जब अवतार लेता है, तब 'सगुण' कहाता है।

उत्तर—यह कल्पना केवल अज्ञानियों और अविद्वानों की है। जिनको विद्या नहीं होती, वे पशु के समान यथा-तथा बर्ड़ाया करते हैं। जैसे सन्निपात-ज्वरयुक्त मनुष्य अण्ड-बण्ड बकता है, अविद्वानों के कहे वा लेख को वैसे ही व्यर्थ समझना चाहिये।

[ईश्वर न रागी है, और न विरक्त]

प्रश्न—परमेश्वर रागी है, वा विरक्त?

उत्तर—दोनों में नहीं; क्योंकि **'राग'** अपने से भिन्न उत्तम पदार्थों में होता है, सो परमेश्वर से कोई पदार्थ पृथक् वा उत्तम नहीं है; इसलिये उसमें **'राग'** का सम्भव नहीं। **और जो प्राप्त को छोड़ देवे, उसको 'विरक्त' कहते हैं।** ईश्वर व्यापक होने से किसी पदार्थ को छोड़ ही नहीं सकता, इसलिये **'विरक्त'** भी नहीं।

[ईश्वर में इच्छा का संभव नहीं]

प्रश्न—ईश्वर में इच्छा है, वा नहीं?

उत्तर—वैसी इच्छा नहीं [जैसी जीवों में होती है]; क्योंकि इच्छा भी अप्राप्त, उत्तम और जिसकी प्राप्ति से सुख-विशेष होवे, [उसकी होती है]। तो ईश्वर में इच्छा [कैसे] हो सके? न [उसे] कोई अप्राप्त पदार्थ [है], न कोई उससे उत्तम [है], और पूर्ण सुखयुक्त होने से सुख की अभिलाषा भी उसे नहीं [है]। इसलिये ईश्वर में **'इच्छा'** का तो सम्भव नहीं, किन्तु **'ईक्षण'** अर्थात् सब प्रकार की विद्या का दर्शन और सब सृष्टि का करना कहाता है, वह 'ईक्षण' है। इत्यादि संक्षिप्त विषयों से ही सज्जन लोग बहुत विस्तरण कर लेंगे।

[वेद ईश्वर से प्रकाशित हुए]

अब संक्षेप से ईश्वर का विषय लिखकर **वेद का विषय** लिखते हैं—

यस्मा॒दृचो॒ अ॒पात॑क्ष॒न् यजु॒र्यस्मा॑द॒पाक॑षन्।
सामा॑नि॒ यस्य॒ लोमा॑न्यथर्वाङ्गि॒रसो॒ मुखं॑
स्क॒म्भं तं ब्रू॑हि कत॒मः स्वि॑दे॒व सः॥

अथर्व॰, कां॰ १०। प्रपा॰ २३। अनु॰ ४। मं॰ २० [कां० १०। सू० ७। मं० २०]॥

जिस परमात्मा से **'ऋग्वेद'**, **'यजुर्वेद'**, **'सामवेद'** और **'अथर्ववेद'** प्रकाशित हुए हैं, वह कौन-सा देव है?

इसका उत्तर—जो सबको उत्पन्न करके धारण कर रहा है, वह परमात्मा है।

स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः॥

यजुः, अ॰ ४०। मं॰ ८॥

जो स्वयम्भू, सर्वव्यापक, शुद्ध, सनातन, निराकार परमेश्वर है, वह सनातन जीवरूप प्रजा के कल्याणार्थ यथावत् रीतिपूर्वक वेद द्वारा सब विद्याओं का उपदेश करता है।

प्रश्न—परमेश्वर को आप निराकार मानते हो वा साकार?

उत्तर—निराकार मानते हैं।

[जीवों को अन्तर्यामीरूप से वेदोपदेश]

प्रश्न—जब निराकार है, तो **'वेदविद्या'** का उपदेश विना मुख के [और] वर्णोच्चारण के, कैसे हो सका होगा, क्योंकि वर्णों के उच्चारण में तालु-आदि स्थान, जिह्वा का प्रयत्न अवश्य होना चाहिये?

उत्तर—परमेश्वर को, सर्वशक्तिमान् और सर्वव्यापक होने से, अपनी व्याप्ति से, जीवों को 'वेद विद्या' के उपदेश करने में कुछ भी मुख-आदि की अपेक्षा नहीं है; क्योंकि मुख-जिह्वा से उच्चारण दूसरे=भिन्न मनुष्य के लिये किया जाता है, अपने लिये कुछ भी नहीं। विना मुख जिह्वा के व्यापार करे मन में अनेक व्यवहारों का विचार और शब्दोच्चारण होता रहता है। कानों को अंगुलियों से मूंदके देखो, सुनो कि विना मुख-जिह्वा-तालु-आदि स्थानों के कैसे-कैसे शब्द हो रहे हैं! वैसे जीवों को

अन्तर्यामी-रूप से उपदेश किया हैं। **किन्तु केवल दूसरे को समझाने के लिये उच्चारण किया जाता है।** जब परमेश्वर निराकार, सर्वव्यापक है, तो अपनी विद्या का उपदेश जीवस्थ स्वरूप से जीवात्मा में प्रकाशित कर देता है। फिर वह मनुष्य अपने मुख से उच्चारण करके दूसरे को सुनाता है, इसलिये ईश्वर में यह दोष नहीं आता।

[किनके आत्मा में और कब वेदों का प्रकाश हुआ]

प्रश्न—किनके आत्मा में [और] कब वेदों का प्रकाश किया?

उत्तर—अग्नेर्ऋग्वेदो वायोर्यजुर्वेदः सूर्यात्सामवेदः॥

शत० [ब्रा० ११। ४। २। ३]॥

प्रथम अर्थात् सृष्टि के आदि में परमात्मा ने अग्नि, वायु, आदित्य और अङ्गिरा ऋषियों के आत्माओं में एक-एक वेद का प्रकाश किया।

[चार ऋषियों से ब्रह्मा को वेद प्राप्त हुए]

प्रश्न—यो वै ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै॥

यह उपनिषद् का वचन है [श्वेताश्वतर उप० ६। १८]॥

इस वचन से [ज्ञात होता है कि] ब्रह्मा जी के हृदय में वेदों का उपदेश किया है। फिर अग्नि-आदि ऋषियों के आत्माओं में क्यों कहा?

उत्तर—ब्रह्मा के आत्मा में अग्नि आदि के द्वारा स्थापित कराया। देखो, **'मनुस्मृति'** में क्या लिखा है—

अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम्।
दुदोह यज्ञसिद्ध्यर्थमृग्यजुःसामलक्षणम्॥

मनु० [१। २३]॥

=जिस परमात्मा ने 'आदि-सृष्टि' में मनुष्यों को उत्पन्न करके अग्नि आदि चारों ऋर्षियों के द्वारा चारों वेद ब्रह्मा को प्राप्त कराये और उस ब्रह्मा ने अग्नि, वायु, आदित्य और अङ्गिरा से **'ऋग्', 'यजुः', 'साम'** और **'अथर्ववेद'** का ग्रहण किया।

प्रश्न—उन चारों [के आत्माओं] में ही में वेदों का प्रकाश किया, अन्य में नहीं। इससे ईश्वर पक्षपाती होता है।

उत्तर—वे ही चार सब जीवों से अधिक पवित्रात्मा थे। अन्य उनके सदृश नहीं थे।

इसलिये **'पवित्र-विद्या'** का उन्हीं [के आत्माओं] में प्रकाश किया।

[वेदों का प्रकाश संस्कृत में ही क्यों?]

प्रश्न—किसी देश-भाषा में वेदों का प्रकाश न करके संस्कृत में क्यों किया?

उत्तर—जो किसी देश-भाषा में प्रकाश करता तो ईश्वर पक्षपाती होता; क्योंकि जिस देश की भाषा में प्रकाश करता, उनको सुगमता और

विदेशियों को कठिनता वेदों के पढ़ने-पढ़ाने में होती। इसलिये संस्कृत में ही प्रकाश किया, जो किसी देश की भाषा नहीं। और **वेदों की भाषा अन्य सब देशभाषाओं का कारण है, उसी में वेदों का प्रकाश किया।** जैसे ईश्वर की पृथिवी आदि सृष्टि सब देशों और देशवालों के लिये एक-सी और सब **'शिल्पविद्या'** का कारण है, वैसे परमेश्वर की विद्या की भाषा भी एक-सी होनी चाहिये कि सब देशवालों को पढ़ने-पढ़ाने में तुल्य परिश्रम होने से ईश्वर पक्षपाती नहीं होता; और सब भाषाओं का कारण भी है।

[वेदों के ईश्वरकर्तृत्व में प्रमाण]

प्रश्न—वेद ईश्वरकृत हैं, अन्यकृत नहीं। इसमें क्या प्रमाण [है]?

उत्तर—(१) जैसा ईश्वर पवित्र, सर्वविद्यावित्, शुद्ध-गुण-कर्म-स्वभाव, न्यायकारी, दयालु आदि गुणवाला है, जिस पुस्तक में ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव के अनुकूल वैसा कथन हो, वह ईश्वरकृत [है], अन्य नहीं।

(२) और जिसमें सृष्टिक्रम, प्रत्यक्षादि प्रमाणों, आप्तों के और पवित्रात्माओं के व्यवहार से विरुद्ध कथन न हो, वह ईश्वरोक्त पुस्तक [है]।

(३) जैसा ईश्वर का निर्भ्रम ज्ञान है, जिस पुस्तक में वैसे भ्रान्तिरहित ज्ञान का प्रतिपादन हो, वह ईश्वरोक्त [है]।

(४) जैसा परमेश्वर है और जैसा सृष्टिक्रम रक्खा है वैसा ही ईश्वर, सृष्टि, कार्य-कारण और जीव का प्रतिपादन जिसमें होवे, वह परमेश्वरोक्त पुस्तक होता है।

(५) और जो प्रत्यक्षादि प्रमाण-विषयों से अविरुद्ध [हों और] शुद्धात्मा के स्वभाव से विरुद्ध न हों, इस प्रकार के वेद ही हैं; अन्य **बाइबल, कुरान** आदि पुस्तकें नहीं। **इसकी स्पष्ट व्याख्या बाइबल और कुरान के प्रकरण में [क्रमशः] तेरहवें और चौदहवें समुल्लास में की जायगी।**

[विना ईश्वरीय ज्ञान के स्वतः विद्वत्ता सम्भव नहीं]

प्रश्न—वेद की ईश्वर से [प्रकट] होने की आवश्यकता कुछ भी नहीं, क्योंकि मनुष्य लोग क्रमशः ज्ञान बढ़ाते जाकर पश्चात् पुस्तक भी बना लेंगे।

उत्तर—कभी नहीं बना सकते; क्योंकि विना कारण के कार्योत्पत्ति का होना असम्भव है। जैसे, जंगली मनुष्य सृष्टि को देखकर भी विद्वान् नहीं होते और जब उनको कोई शिक्षक मिल जाये तो विद्वान् हो जाते हैं, और अब भी किसी से पढ़े विना कोई भी विद्वान् नहीं होता। इस प्रकार परमात्मा जो उन आदि-सृष्टि के ऋषियों को **'वेदविद्या'** न पढ़ाता और वे अन्य को न पढ़ाते, तो सब लोग अविद्वान् ही रह जाते। जैसे, किसी के बालक को जन्म से एकान्त देश में, अविद्वानों वा पशुओं में रख देवे, तो वह जैसा संग है वैसा ही हो जायेगा। इसका दृष्टान्त जंगली भील आदि हैं।

जब तक आर्यावर्त से शिक्षा नहीं गई थी, तब तक मिश्र, यवन (=यूनान) और यूरोप-देश आदिस्थ मनुष्यों में कुछ भी विद्या नहीं हुई थी। और यूरोप के कोलम्बस आदि पुरुष अमेरिका में जब तक नहीं गये थे, तब तक वे भी सहस्रों, लाखों, करोड़ों वर्षों से मूर्ख अर्थात् विद्याहीन थे। अब पुनः शिक्षा पाने से विद्वान् हो गये हैं। वैसे ही परमात्मा से सृष्टि के आदि में विद्या-शिक्षा की प्राप्ति से उत्तरोत्तर काल में विद्वान् होते आये [हैं]।

स एषः पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्॥

यह योगसूत्र है [समाधिपाद, सू० २६]॥

=जैसे वर्त्तमान समय में हम लोग अध्यापकों से पढ़के ही विद्वान् होते हैं, वैसे परमेश्वर सृष्टि के आरम्भ में उत्पन्न हुए अग्नि आदि ऋषियों का गुरु अर्थात् पढ़ानेहारा है। क्योंकि **जैसे जीव सुषुप्ति और प्रलय में ज्ञानरहित हो जाते हैं, वैसे परमेश्वर नहीं होता,** उसका ज्ञान नित्य है। इसलिये यह निश्चित जानना चाहिये कि विना निमित्त से नैमित्तिक अर्थ सिद्ध कभी नहीं होता।

[अग्नि आदि को वेदार्थ किसने जनाया]

प्रश्न—वेद संस्कृत-भाषा में प्रकाशित हुए और वे अग्नि आदि ऋषि लोग उस संस्कृत-भाषा को नहीं जानते थे, फिर वेदों का अर्थ उन्होंने कैसे जाना?

उत्तर—परमेश्वर ने जनाया। और धर्मात्मा, योगी-महर्षि लोग जब-जब जिस-जिस के अर्थ की जानने की इच्छा करके ध्यानावस्थित हो परमेश्वर

के स्वरूप में समाधिस्थ हुए, तब-तब परमात्मा ने अभीष्ट मन्त्रों के अर्थ जनाये। जब बहुतों के आत्माओं में वेदार्थप्रकाश हुआ, तब ऋषि-मुनियों ने उस अर्थ और ऋषि- मुनियों के इतिहास-पूर्वक ग्रन्थ बनाये; उनका नाम ब्राह्मण अर्थात् 'ब्रह्म' जो वेद है उसका व्याख्यानग्रन्थ होने से 'ब्राह्मण' नाम हुआ। और—

"ऋषणां मन्त्रदृष्टयः", "मन्त्रान्सम्प्रादुः।"

निरुक्त [अ० ७। खं० ३ तथा अ० १। खं० २०]॥

जिस-जिस मन्त्रार्थ का दर्शन जिस-जिस ऋषि को हुआ, और जिसके पहले उस मन्त्र का अर्थ किसी ने प्रकाशित नहीं किया था, प्रथम ही जिसने किया, और दूसरों को पढ़ाया भी, इसलिये अद्यावधि उस-उस मन्त्र के साथ ऋषि का नाम स्मरणार्थ लिखा-लिखाया आता है। **जो कोई ऋषियों को मन्त्रकर्त्ता बतलावें, उनको मिथ्यावादी समझें। वे तो मन्त्रों के अर्थप्रकाशक हैं।**

[वेद-संज्ञा-विचार]

प्रश्न—वेद किन ग्रन्थों का नाम है?

उत्तर—'ऋक्', 'यजुः', 'साम' और **'अथर्व'** मन्त्रसंहिताओं का, अन्य का नहीं।

प्रश्न—मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्

[कात्यायनपरिशिष्ट प्रतिज्ञासूत्र १। १]

इत्यादि कात्यायन-आदि-कृत **'प्रतिज्ञासूत्र'**-आदि का अर्थ क्या करोगे?

उत्तर—देखो, संहिता-पुस्तकों के आरम्भ [और] अध्याय की समाप्ति में **'वेद'** यह शब्द सनातन से शब्द लिखा आता है और **'ब्राह्मण'**-पुस्तकों के आरम्भ वा अध्याय की समाप्ति में कहीं नहीं लिखा। और **'निरुक्त'** में—

इत्यपि निगमो भवति॥ [निरुक्त ५। ३,४]।

इति च ब्राह्मणम्॥ [निरुक्त ५। ४]।

छन्दोब्राह्मणानि च तद्विषयाणि॥

यह पाणिनीय सूत्र है [अष्टा० ४। २। ६५]

इससे भी स्पष्ट विदित होता है कि 'वेद' मन्त्रभाग और 'ब्राह्मण' व्याख्याभाग है। इसमें जो विशेष देखना चाहें तो मेरी बनाई **'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका'** में देख लीजिये। वहां [वर्णित] अनेक प्रमाणों के विरुद्ध होने से यह कात्यायन का वचन माननीय नहीं हो सकता है; क्योंकि, जो मानें तो वेद सनातन कभी नहीं हो सकें। क्योंकि **'ब्राह्मण'**-पुस्तकों में बहुत-से ऋषि-महर्षियों और राजा-आदि के इतिहास लिखे हैं; और इतिहास जिसका हो, उसके जन्म के पश्चात्

लिखा जाता है, वह ग्रन्थ भी उनके जन्मे पश्चात् होता है। वेदों में किसी का इतिहास नहीं, किन्तु जिस-जिस शब्द से विशेष विद्या का बोध होवे, उस-उस शब्द का प्रयोग किया है; किसी विशेष मनुष्य की संज्ञा वा विशेष कथा का प्रसंग वेदों में नहीं।

[वेदों की शाखा]

प्रश्न—वेदों की कितनी शाखायें हैं?

उत्तर—एक हजार एक सौ सत्ताईस।

प्रश्न—शाखायें क्या कहाती हैं?

उत्तर—व्याख्यान को **'शाखा'** कहते हैं।

[क्या शाखाएँ वेद का अवयव हैं?]

प्रश्न—संसार में विद्वान् लोग वेद के अवयवभूत-विभागों को शाखा मानते हैं?

उत्तर—तनिक-सा विचार करो तो ठीक, क्योंकि जितनी शाखायें हैं वे **'आश्वलायन'** आदि ऋषियों के नाम से प्रसिद्ध हैं और मन्त्रसंहितायें परमेश्वर के नाम से प्रख्यात हैं। जैसे चारों वेदों को परमेश्वरकृत मानते हैं, वैसे **'आश्वलायन'** आदि शाखाओं को उस-उस ऋषिकृत मानते हैं। और सब शाखाओं में मन्त्रों के प्रतीक धरके व्याख्या करते हैं। जैसे, **'तैत्तिरीय शाखा'** में **"इषे त्वोर्जे त्वा, इति"** [यजु० १। १] इत्यादि प्रतीकें धरके

व्याख्यान किया है और वेदसंहिताओं में किसी का प्रतीक नहीं धरा। इसलिये परमेश्वरकृत चारों वेद मूल वृक्ष और **'आश्वलायन-आदि'** सब शाखायें ऋषि-मुनिकृत हैं, परमेश्वरकृत नहीं। जो इसकी विशेष व्याख्या देखना चाहे, वह **'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका'** में देख लेवे।

जैसे माता-पिता अपने सन्तानों पर कृपादृष्टि कर उन्नति चाहते हैं, वैसे ही परमात्मा ने सब मनुष्यों पर कृपा करके वेदों को प्रकाशित किया है, जिससे मनुष्य अविद्यान्धकार, भ्रमजाल से छूटकर विद्या-विज्ञान-रूप सूर्य को प्राप्त होकर अत्यानन्द में रहैं और विद्या तथा सुखों की वृद्धि करते जायें।

[वेद की नित्यता-अनित्यता पर विचार]

प्रश्न—वेद नित्य हैं, वा अनित्य?

उत्तर—नित्य हैं; क्योंकि परमेश्वर के नित्य होने से उसके ज्ञानादि गुण भी नित्य हैं। जो नित्य पदार्थ हैं उनके गुण, कर्म, स्वभाव नित्य और अनित्य द्रव्य के अनित्य होते हैं।

प्रश्न—क्या यह पुस्तक भी नित्य हैं?

उत्तर—नहीं; क्योंकि पुस्तक तो कागज और स्याही के बने हैं, वे नित्य कैसे हो सकते हैं? **किन्तु जो शब्द, अर्थ और सम्बन्ध हैं, वे नित्य हैं।**

[सर्वज्ञ ईश्वर के विना वेदों की रचना सम्भव नहीं]

प्रश्न—ईश्वर ने उन ऋषियों को ज्ञान दिया होगा और उस ज्ञान से उन लोगों ने वेद बना लिये होंगे?

उत्तर—ज्ञान ज्ञेय के विना नहीं होता। गायत्री-आदि छन्दों, षड्ज-आदि और उदात्त-अनुदात्त-आदि स्वरों के ज्ञानपूर्वक गायत्री-आदि छन्दों के निर्माण करना, विना सर्वज्ञ के किसी का सामर्थ्य नहीं है कि इस प्रकार के सर्वज्ञानयुक्त शास्त्र बना सकें।

हाँ, वेदों को पढ़ने के पश्चात् **'व्याकरण', 'निरुक्त'** और **'छन्द'** आदि ग्रन्थ ऋषि-मुनियों ने विद्याओं के प्रकाश के लिये किये हैं। **जो परमात्मा वेदों का प्रकाश न करे, तो कोई कुछ भी न बना सके। इसलिये वेद परमेश्वरोक्त हैं। इन्हीं के अनुसार सब लोगों को चलना चाहिये और जो कोई किसी से पूछे कि तुम्हारा मत क्या है, तो यही उत्तर देना कि हमारा मत 'वेद' है अर्थात् जो कुछ वेदों में कहा है, हम उस सबको मानते हैं।**

अब इसके आगे सृष्टि के विषय में लिखेंगे। यह संक्षेप से ईश्वर और वेद-विषय में व्याख्यान किया है॥

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिकृते सत्यार्थप्रकाशे सुभाषाविभूषित ईश्वरवेदविषये सप्तमः समुल्लासः सम्पूर्णः॥७॥

अथाष्टमसमुल्लासारम्भः

अथ सृष्ट्युत्पत्तिस्थितिप्रलयविषयान् व्याख्यास्यामः

सम्पूर्ण सत्यार्थप्रकाश

Click now

[अब सृष्ट्युत्पत्ति-स्थिति-प्रलय-विषयों का वर्णन करेंगे]

[ब्रह्म से जगदुत्पत्ति में प्रमाण]

इयं विसृष्टिर्यत आबभूव यदि वा दधे यदि वा न।
यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन्सो अङ्ग वेद यदि वा न वेद॥१॥

ऋ०, म० १०। सूक्त १२९। मं० ७॥

तम आसीत्तमसा गूळ्हमग्रेऽप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम्।
तुच्छ्येनाभ्वपिहितं यदासीत्तपसस्तन्महिना जायतैकम्॥२॥

ऋ०, म० [१०]। सूक्त [१२९]। मं० [३]॥

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम॥३॥

ऋ०, म० १०। सूक्त १२९। मं० १॥

पुरुषऽएवेदꣳ सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति॥४॥

यजुः, अ० ३१। मं० २॥

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति।
यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति, तद्विजिज्ञासस्व, तद् ब्रह्मेति॥५॥

तैत्तिरीयोप० [भृगु० १]।

हे **(अङ्ग)** मनुष्य! जिससे यह विविध सृष्टि प्रकाशित हुई है, जो धारण और प्रलयकर्त्ता है, जो इस जगत् का स्वामी [है], जिस व्यापक में यह सब जगत् उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय को प्राप्त होता है, सो परमात्मा है; उसको तू जान और दूसरे को सृष्टिकर्त्ता मत मान॥१॥

यह सब जगत् सृष्टि से पहले अन्धकार से आवृत, रात्रि-रूप में [होने से] जानने के अयोग्य, तथा आकाश-रूप सब जगत् था **'तुच्छ्य'** अर्थात् अनन्त परमेश्वर के सामने एकदेशी, आच्छादित था। पश्चात् परमेश्वर ने अपने **महिना**=सामर्थ्य से कारणरूप से कार्यरूप कर दिया है॥२॥

हे मनुष्यो! जो सब सूर्यादि तेजस्वी पदार्थों का आधार [है], और जो यह जगत् हुआ, है, और होगा, उसका एक अद्वितीय पति परमात्मा इस जगत् की उत्पत्ति के पूर्व विद्यमान था। और जिसने पृथिवी से लेकर सूर्यपर्यन्त जगत् को उत्पन्न किया है, उस परमात्मा देव की प्रेम से हम भक्ति किया करें॥३॥

हे मनुष्यो! जो सबमें पूर्ण पुरुष [है], और जो नाशरहित कारण, और जीव का स्वामी [है], जो पृथिव्यादि जड़ और जीव से अतिरिक्त है, वही

पुरुष इस सब भूत, भविष्यत् और वर्तमानस्थ जगत् को बनानेवाला है॥४॥

जिस परमात्मा की रचना से ये सब पृथिव्यादि भूत उत्पन्न होते हैं, जिससे जीते और जिसमें प्रलय को प्राप्त होते हैं, वह 'ब्रह्म' है; उसको जानने की इच्छा करो॥५॥

"जन्माद्यस्य यतः॥"

शारीरकसूत्र अ० १। [पा० १]। सू० २॥

जिससे इस जगत् का जन्म, स्थिति और प्रलय होता [है], वही 'ब्रह्म' जानने के योग्य है।

[परमेश्वर जगत् का निमित्तकारण है, उपादानकारण नहीं]

प्रश्न—यह जगत् परमेश्वर से उत्पन्न हुआ है, वा अन्य से?

उत्तर—निमित्त कारण परमात्मा से उत्पन्न हुआ है, परन्तु इसका उपादान कारण प्रकृति है।

प्रश्न—क्या प्रकृति परमेश्वर ने उत्पन्न नहीं की?

उत्तर—नहीं, वह अनादि है।

प्रश्न—अनादि किसको कहते हैं? और कितने पदार्थ अनादि हैं?

उत्तर—जिसका कोई आदि कारण वा समय न हो, उसको 'अनादि' कहते हैं। ईश्वर, जीव और जगत् का कारण, ये तीन 'अनादि' हैं?

[ईश्वर, जीव और प्रकृति के अनादित्व में प्रमाण]

प्रश्न—इसमें क्या प्रमाण है?

उत्तर— **द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परि षस्वजाते। तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभि चाकशीति॥१॥**

ऋ०, म० १। सूक्त १६४। मं० २०॥

शाश्वतीभ्यः समाभ्यः॥२॥

यजुः० अ० ४०। मं० ८॥

अर्थ—(द्वा) जो ब्रह्म और जीव दोनों **(सुपर्णा)** चेतनता और पालनादि गुणों से कुछ सदृश हैं **(सयुजा)** व्याप्य-व्यापक भाव से संयुक्त [हैं] **(सखाया)** परस्पर मित्रतायुक्त, सनातन, अनादि हैं; और **(समानम्)** वैसा ही **(वृक्षम्)** अनादि, मूलरूप कारण और शाखारूप कार्ययुक्त वृक्ष अर्थात् जो स्थूल होकर प्रलय में छिन्न-भिन्न हो जाता है, वह तीसरा अनादि पदार्थ हैं; इन तीनों के गुण, कर्म, स्वभाव भी अनादि हैं। **(तयोरन्यः)** इन जीव और ब्रह्म में से एक जो जीव [है] वह इस वृक्षरूप संसार में **[पिप्पलम्]** पाप-पुण्य-रूप फलों को **(स्वाद्वत्ति)** अच्छे प्रकार भोगता है। और दूसरा परमात्मा कर्मों के फलों को **(अनश्नन् अन्यः)** न

भोगता हुआ **[अभि-चाकशीति]** चारों ओर अर्थात् भीतर-बाहर सर्वत्र प्रकाशमान हो रहा है। जीव से ईश्वर, ईश्वर से जीव और दोनों से प्रकृति भिन्न-स्वरूप है, और तीनों **'अनादि'** हैं॥१॥

(शाश्वती॰) अर्थात् अनादि, सनातन, जीवरूप प्रजा के लिये वेद द्वारा परमात्मा ने सब विद्याओं का बोध किया है॥२॥

अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां, बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः।
अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते, जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः॥

यह उपनिषद् का वचन है [श्वेताश्वतर उप॰। अ॰ ४। मं॰ ५]॥

प्रकृति, जीव और परमात्मा तीनों **'अज'** अर्थात् जिनका जन्म कभी नहीं होता=कभी ये जन्म नहीं लेते; अर्थात् ये तीन सब जगत् के कारण हैं, इनका कारण कोई नहीं। इस अनादि प्रकृति का भोग अनादि जीव करता हुआ फसता है और उसमें परमात्मा न फसता और न उसका भोग करता है।

[प्रकृति का स्वरूप]

ईश्वर और जीव का लक्षण **ईश्वर-विषय में कह आये।** अब प्रकृति का लक्षण लिखते हैं—

सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः प्रकृतेर्महान्
महतोऽहङ्कारोऽहङ्कारात् पञ्चतन्मात्राण्युभय-मिन्द्रियं
पञ्चतन्मात्रेभ्यः स्थूलभूतानि पुरुष इति पञ्चविंशतिर्गणः॥

यह सांख्यसूत्र है [अ० १। सू० ६१]

(सत्त्व-) शुद्ध, **(रजः)** मध्य, **(तमसाम्)** जाड्य अर्थात् जड़ता तीन वस्तुयें मिलकर जो एक संघात है, उसका नाम 'प्रकृति' है। उससे **'महत्तत्त्व'**=बुद्धि, उससे **'अहङ्कार'**, अहंकार से पांच **'तन्मात्रायें'**, सूक्ष्म-भूत और **'दश इन्द्रियां'** तथा ग्यारहवां **'मन'**, पांच तन्मात्राओं से पृथिव्यादि **'पांच भूत'** ये चौबीस, और पच्चीसवां **'पुरुष'** अर्थात् जीव और परमेश्वर है। इनमें से प्रकृति अविकारिणी; और महत्तत्त्व, अहङ्कार तथा पांच सूक्ष्म-भूत प्रकृति के कार्य और इन्द्रियों, मन तथा स्थूल-भूतों के कारण हैं। और पुरुष न किसी की प्रकृति=उपादानकारण और न किसी का कार्य है।

[जगत् का उपादानकारण प्रकृति है, ब्रह्म नहीं]

प्रश्न—"सदेव सोम्येदमग्र आसीत्॥१॥"

[छान्दोग्य-उप०, अ० ६। खं० २। मं० १]

"असद्वा इदमग्र आसीत्॥२॥"

[तैत्ति० उप०, ब्रह्म० वल्ली। अनु० ७]

"आत्मा-वा-इदमग्र आसीत्॥३॥"

[बृह० उप०, अ० १। ब्रा० ४। कं० १]

"ब्रह्म वा इदमग्र आसीत्॥४॥"

ये उपनिषदों के वचन हैं [बृह० १। ४। १०, ११]॥

हे श्वेतकेतो! यह जगत् सृष्टि के पूर्व— १.सत् २.असत् ३.आत्मा और ४. ब्रह्मरूप था। पश्चात्—

"तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेयेति॥१॥"

[छान्दोग्य-उप०, अ० ६। खं० २। मं० ३]

"सोऽकामयत बहु स्यां प्रजायेयेति॥२॥"

यह तैत्तिरीयोपनिषद् का वचन है [ब्रह्म० वल्ली। अनु० ६]॥

वही परमात्मा अपनी इच्छा से बहुरूप हो गया है॥१-२॥

"सर्वं खल्विदं ब्रह्म नेह नानास्ति किंचन॥३॥"

यह उपनिषद् का वचन है [निरालम्बोपनिषद् ११]॥

जो यह जगत् है, वह सब निश्चय करके ब्रह्म है। उसमें दूसरे नाना प्रकार के पदार्थ कुछ भी नहीं, किन्तु सब ब्रह्मरूप है॥३॥

उत्तर—क्यों इन वचनों का अनर्थ करते हो? क्योंकि उन्हीं उपनिषदों में—

सोम्यान्नेन शुङ्गेनापो मूलमन्विच्छ, अद्भिस्सोम्य शुङ्गेन तेजोमूलमन्विच्छ, तेजसा सोम्य शुङ्गेन सन्मूलमन्विच्छ, सन्मूलाः सोम्येमाः सर्वाः प्रजाः सदायतनाः सत्प्रतिष्ठाः॥

छान्दोग्य उपनिषद् [अ० ६। खं० ८। मं० ४]॥

'हे श्वेतकेतो! अन्नरूप पृथिवी-कार्य से 'जलरूप' मूल कारण को तू जान। कार्यरूप जल से 'तेजोरूप' मूल और तेजोरूप कार्य से 'सद्रूप' कारण जो नित्य प्रकृति है, उसको जान। यही सत्यस्वरूप प्रकृति सब जगत् का मूल, घर और स्थिति का स्थान है।' यह सब जगत् सृष्टि के पूर्व असत् के सदृश, आत्मा=ब्रह्म और प्रकृति में लीन होकर वर्त्तमान था, अभाव न था। और जो **"सर्वं खलु॰"** यह वचन [है यह] **'कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा, भानमती ने कुटबाँ जोड़ा'** ऐसी लीला का है। क्योंकि—

सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शान्त उपासीत॥

छान्दोग्य॰ [उप॰, प्र॰ ३। खं॰ १४। मं॰ १] और

"नेह नानास्ति किंचन॥"

कठोपनिषद् का वचन है। [कठोप॰ २। ४। ११]॥

जैसे शरीर के अङ्ग जब तक शरीर के साथ रहते हैं, तब तक काम के [होते हैं] और अलग होने से निकम्मे हो जाते हैं, वैसे ही **प्रकरणस्थ वाक्य सार्थक [होते हैं] और प्रकरण से अलग करने वा किसी अन्य के साथ जोड़ने से अनर्थक हो जाते हैं।** सुनो! इनका अर्थ यह है—

'हे जीव! तू उस ब्रह्म की उपासना कर, जिस ब्रह्म से जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय होते हैं; जिसके बनाने और धारण से यह सब जगत् विद्यमान हुआ है, वा ब्रह्म से सहचरित है, उसको छोड़ दूसरे की उपासना

न करनी [चाहिये]'। इस चेतनमात्र, अखण्डैकरस ब्रह्मस्वरूप में नाना वस्तुओं का मेल नहीं है, किन्तु ये सब पृथक्-पृथक् स्वरूप में परमेश्वर के आधार में स्थित हैं।

[जगत् की उत्पत्ति में तीन कारण]

प्रश्न—जगत् के कारण कितने होते हैं?

उत्तर—तीन। एक निमित्त, दूसरा उपादान, तीसरा साधारण। **'निमित्त कारण'** उसको कहते हैं कि जिसके बनाने से कुछ बने, न बनाने से न बने; आप स्वयं बने नहीं, दूसरे को प्रकारान्तर [रूप में] बना देवे।

दूसरा—**'उपादान कारण'** उसको कहते हैं जिसके विना कुछ न बने, वही अवस्थान्तर रूप होके बने और बिगड़े भी।

तीसरा—**'साधारण कारण'** उसको कहते हैं कि जो बनाने में साधन और साधारण निमित्त हो।

निमित्त कारण दो प्रकार के होते हैं। एक—सब सृष्टि को कारण से बनाने, धारने और प्रलय करने तथा सबकी व्यवस्था रखनेवाला **'मुख्य निमित्त कारण' परमात्मा।** दूसरा—परमेश्वर की सृष्टि में से पदार्थों को लेकर अनेकविध कार्यान्तर [रूप] बनानेवाला **'साधारण निमित्त कारण' जीव।**

उपादानकारण—'प्रकृति', 'परमाणु', जिसको सब संसार के बनाने की सामग्री कहते हैं, वह जड़ होने से आपसे-आप न बन और न बिगड़ सकती है किन्तु दूसरे के बनाने से बनती और दूसरे के बिगाड़ने से बिगड़ती है। कहीं-कहीं जड़ के निमित्त से जड़ भी बन और बिगड़ भी जाता है। जैसे, परमेश्वर के रचित बीज पृथिवी में गिरने और जल पाने से वृक्षाकार हो जाते हैं और अग्नि आदि जड़ के संयोग से बिगड़ भी जाते हैं। **परन्तु इनका नियमपूर्वक बनना वा बिगड़ना परमेश्वर और जीव के आधीन है।**

[साधारण कारण—] जब कोई वस्तु बनाई जाती है, तब जिन-जिन साधनों से अर्थात् ज्ञान, दर्शन, बल, दिशा, काल और आकाश आदि निराकर, हाथ और नाना प्रकार के साकार साधन आदि **'साधारण कारण'** [हैं]।

जैसे, घड़े को बनानेवाला कुम्हार निमित्त; मिट्टी उपादान; और दण्ड, चक्र आदि सामान्य निमित्त; दिशा, काल, आकाश, प्रकाश, आंख, हाथ, ज्ञान, क्रिया आदि निमित्त 'साधारण' और 'निमित्त कारण' भी होते हैं। इन तीन कारणों के विना कोई भी वस्तु नहीं बन सकती और न बिगड़ सकती [है]।

[क्या ईश्वर जगत् का अभिन्ननिमित्तोपादानकारण है?]

प्रश्न—नवीन वेदान्ती केवल परमेश्वर को ही जगत् का **'अभिन्न-निमित्तोपादान कारण'** मानते हैं—

"यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च।"

यह उपनिषद् का वचन है [मुण्डक-उप० १। ख० १। मं० ७]

जैसे मकड़ी बाहर से कोई पदार्थ नहीं लेती, अपने में से ही तन्तु निकाल जाला बनाकर आप ही उसमें खेलती है, वैसे ब्रह्म अपने में से जगत् को बना, आप जगदाकार बन, आप ही क्रीड़ा कर रहा है। सो ब्रह्म इच्छा और कामना करता हुआ कि 'मैं बहुरूप अर्थात् जगदाकार हो जाऊं', [इस] सङ्कल्पमात्र से सब जगद्रूप बन गया। क्योंकि—

आदावन्ते च यन्नास्ति वर्त्तमानेऽपि तत्तथा॥

यह माण्डूक्योपनिषद् पर कारिका है [माण्डूक्योपनिषत्कारिका, वैतथ्याख्य प्रकरण २।६, अलातशान्ताख्य प्रकरण ४।३१]

जो प्रथम न हो, अन्त में न रहै, वह वर्तमान में भी नहीं है। किन्तु सृष्टि के आदि में [अर्थात् सृष्टि-उत्पत्ति से पूर्व] जगत् न था, ब्रह्म था। प्रलय [अर्थात् सृष्टि के] अन्त में संसार न रहेगा, और केवल ब्रह्म रहेगा तो वर्त्तमान में सब जगत् ब्रह्म क्यों नहीं?

उत्तर—जो तुम्हारे कहने के अनुसार जगत् [का] उपादान कारण ब्रह्म होवे तो वह परिणामी, अवस्थान्तरयुक्त, विकारी हो जावे; और उपादानकारण के गुण-कर्म- स्वभाव कार्य में भी आते हैं—

कारणगुणपूर्वकः कार्यगुणो दृष्टः॥

वैशेषिकसूत्र [अ० २। आ० १। सू० २४]॥

उपादानकारण के सदृश कार्य में गुण होते हैं; तो ब्रह्म सच्चिदानन्द-स्वरूप [और] जगत् कार्यरूप से असत्, जड़ और आनन्दरहित [है]; ब्रह्म अज और जगत् उत्पन्न हुआ है; ब्रह्म अदृश्य और जगत् दृश्य है; ब्रह्म अखण्ड और जगत् खण्डरूप है। जो ब्रह्म से पृथिव्यादि कार्य उत्पन्न होवें, तो पृथिव्यादि कार्य के जड़ादि गुण ब्रह्म में भी होवें; अर्थात् जैसे पृथिव्यादि जड़ हैं, वैसे ब्रह्म भी जड़ हो जाय और जैसे परमेश्वर चेतन है, वैसे पृथिव्यादि 'कार्य' भी चेतन होने चाहियें। और जो मकड़ी का दृष्टान्त दिया, वह तुम्हारे मत का साधक नहीं किन्तु बाधक है; क्योंकि वह जड़रूप-शरीर तन्तु का उपादान और जीवात्मा निमित्तकारण है। और यह भी परमात्मा की अद्भुत रचना का प्रभाव है, क्योंकि अन्य जन्तु के शरीर से [कोई] जीव-तन्तु नहीं निकाल सकता। वैसे ही व्यापक ब्रह्म अपने भीतर व्याप्य प्रकृति और परमाणु कारण से स्थूल जगत् को बनाकर, बाहर स्थूलरूप कर, आप उसी में व्यापक रहके साक्षीभूत [और] आनन्दमय हो रहा है।

और जो परमात्मा ने **'ईक्षण'** अर्थात् दर्शन, विचार और कामना की कि मैं सब जगत् को बनाकर प्रसिद्ध होऊं, अर्थात् जब जगत् उत्पन्न होता है तभी जीवों के विचार, ज्ञान, ध्यान, उपदेश-श्रवण में परमेश्वर प्रसिद्ध और

बहुत स्थूल पदार्थों से सह वर्त्तमान होता है। जब प्रलय होता है तब परमेश्वर और मुक्त जीवों को छोड़के उसको कोई नहीं जानता।

और जो वह कारिका है वह भ्रममूलक है; क्योंकि सृष्टि के आदि अर्थात् प्रलय में [सृष्टि-उत्पत्ति के पूर्व] जगत् प्रसिद्ध नहीं था और सृष्टि के अन्त अर्थात् प्रलय के आरम्भ से जब तक दूसरी वार सृष्टि न होती तब तक भी जगत् का कारण सूक्ष्म होकर अप्रसिद्ध है। क्योंकि—

"तमं आसीत्तमंसा गूळ्हमग्रें॥१॥"

यह ऋग्वेद का वचन है [म० १०। सू० १२९। मं० ३]।

आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम्।
अप्रतर्क्यमविज्ञेयं प्रसुप्तमिव सर्वतः॥२॥

मनु० [१।५]॥

यह सब जगत् सृष्टि के पहले=प्रलय में अन्धकार से आवृत=आच्छादित था और प्रलयारम्भ के पश्चात् भी वैसा ही होता है। उस समय न किसी के जानने, न तर्क में लाने और न प्रसिद्ध चिह्नों से युक्त, न इन्द्रियों से जानने योग्य था, और न होगा; किन्तु वर्तमान में जाना जाता है [अर्थात्] प्रसिद्ध चिह्नों से युक्त जानने के योग्य होता [है] और यथावत् उपलब्ध है॥१-२॥

पुनः उस कारिकाकार ने वर्तमान में भी जगत् का अभाव लिखा, सो सर्वथा अप्रमाण है; क्योंकि जिसको 'प्रमाता' प्रमाणों से जानता और प्राप्त होता है, वह अन्यथा कभी नहीं हो सकता।

[सृष्टि-रचना का प्रयोजन]

प्रश्न—जगत् के बनाने में परमेश्वर का क्या प्रयोजन है?

उत्तर—नहीं बनाने में क्या प्रयोजन है?

प्रश्न—जो न बनाता तो आनन्द में बना रहता और जीवों को भी सुख-दुःख प्राप्त न होता।

उत्तर—ये आलसी और दरिद्र लोगों की बातें हैं, पुरुषार्थीयों की नहीं। और जीवों को प्रलय में क्या सुख वा दुःख है? [वे तो] प्रलय में 'निकम्मे' अर्थात् जैसे सुषुप्ति में पड़े रहते हैं, वैसे रहते हैं। जो सृष्टि के सुख-दुःख की तुलना की जाय तो सुख कई गुना अधिक होता है और बहुत-से पवित्रात्मा जीव मुक्ति के साधन कर मोक्ष के आनन्द को भी प्राप्त होते हैं। और प्रलय के पूर्व सृष्टि में जीवों के किये पाप-पुण्य-कर्मों का फल ईश्वर कैसे दे सकता और जीव क्योंकर भोग सकते? जो तुमसे कोई पूछे कि आँख के होने में क्या प्रयोजन है? तुम यही कहोगे कि 'देखना'; तो जो ईश्वर में जगत् की रचना करने का विज्ञान, बल और क्रिया है, उसका क्या प्रयोजन [है]? विना जगत् की उत्पत्ति करने के दूसरा कुछ भी न कह सकोगे। और परमात्मा के न्याय, धारण, दया आदि

गुण भी तभी सार्थक हो सकते हैं कि जब जगत् को बनावे। उसका अनन्त सामर्थ्य जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय और व्यवस्था करने से ही सफल है। **जैसे नेत्र का स्वाभाविक गुण देखना है, वैसे परमेश्वर का स्वाभाविक गुण जगत् की उत्पत्ति करके सब जीवों को असंख्य पदार्थ देकर परोपकार करना है।**

[कारण सदा कार्य से पूर्व होता है]

प्रश्न—बीज पहले है वा वृक्ष?

उत्तर—बीज; क्योंकि बीज, हेतु, निदान, निमित्त और कारण इत्यादि शब्द एकार्थवाचक हैं। कारण का नाम बीज होने से कार्य के प्रथम ही होता है।

['सर्वशक्तिमान्' का वास्तविक अर्थ]

प्रश्न—जब परमेश्वर सर्वशक्तिमान् है, तो वह कारण और जीव को भी उत्पन्न कर सकता है। जो नहीं कर सकता तो सर्वशक्तिमान् भी नहीं रह सकता?

उत्तर—सर्वशक्तिमान् शब्द का अर्थ पूर्व लिख आये हैं। परन्तु क्या सर्वशक्तिमान् वह कहाता है कि जो असम्भव बात को भी कर सके? जो असम्भव बात अर्थात् जैसा कारण के विना कार्य को कर सकता है, तो विना कारण दूसरे ईश्वर की उत्पत्ति कर और स्वयं मृत्यु को प्राप्त, जड़, दु:खी, अन्यायकारी, अपवित्र और कुकर्मी आदि हो सकता है वा नहीं? जो स्वाभाविक नियम अर्थात् जैसे अग्नि उष्ण, जल शीतल और

पृथिव्यादि सब जड़ों को विपरीत गुणवाले ईश्वर भी नहीं कर सकता। जैसे आप जड़ नहीं हो सकता, वैसे जड़ को चेतन भी नहीं कर सकता। और ईश्वर के नियम सत्य और पूरे हैं, इसलिये परिवर्तन नहीं कर सकता। इसलिये **'सर्वशक्तिमान्' का अर्थ इतना ही है कि परमात्मा विना किसी के सहाय के अपने सब कार्य पूर्ण कर सकता है।**

[ईश्वर निराकार है, साकार नहीं]

प्रश्न—ईश्वर साकार है वा निराकार? जो निराकार है तो विना हाथ आदि साधनों के जगत् को न बना सकेगा और जो साकार है तो कोई दोष नहीं आता।

उत्तर—ईश्वर निराकार है; जो साकार अर्थात् शरीरयुक्त है वह ईश्वर ही नहीं, क्योंकि जो परिच्छिन्न [स्वरूप], परिमित शक्तियुक्त, देश-काल-वस्तुओं में परिच्छिन्न, क्षुधा-तृषा, छेदन-भेदन, शीत- उष्ण, ज्वर-पीड़ा-आदि सहित होवे, उसमें सिवाय जीव के, ईश्वर के गुण कभी नहीं घट सकते। जैसे तुम और हम 'साकार' अर्थात् शरीरधारी हैं, इससे त्रसरेणु, अणु, परमाणु और प्रकृति को अपने वश में नहीं ला सकते और न उन सूक्ष्म पदार्थों को पकड़कर स्थूल बना सकते हैं; वैसे ही स्थूल देहधारी परमेश्वर भी उन सूक्ष्म पदार्थों से स्थूल जगत् नहीं बना सकता। जो परमेश्वर भौतिक इन्द्रियगोलक हस्त-पादादि अवयवों से रहित है, परन्तु उसकी अनन्तशक्ति, बल, पराक्रम हैं, वह उनसे सब काम करता है, जो जीव और प्रकृति से कभी न हो सकते। जब वह प्रकृति से भी

सूक्ष्म और उनमें व्यापक है, तभी उनको पकड़कर जगदाकार कर देता है, और सर्वगत होने से सबका धारण और प्रलय भी कर सकता है।

प्रश्न—जैसे मनुष्यादि के मा-बाप साकार हैं, उनके सन्तान भी साकार होते हैं, जो ये निराकार होते, तो इनके लड़के भी निराकार होते, वैसे परमेश्वर निराकार हो, तो उसका बनाया जगत् भी निराकार होना चाहिये?

उत्तर—यह तुम्हारा प्रश्न 'अविद्या के लड़के' के समान है; क्योंकि हम अभी कह चुके हैं कि परमेश्वर जगत् का उपादानकारण नहीं किन्तु निमित्तकारण है। और जो स्थूल होता है वह प्रकृति और परमाणु जगत् का उपादानकारण है; और वे सर्वथा निराकार नहीं किन्तु परमेश्वर से स्थूल और अन्य कार्य से सूक्ष्म आकार रखते हैं।

[असम्भव कार्य ईश्वर भी नहीं कर सकता]

प्रश्न—क्या कारण के विना परमेश्वर कार्य को नहीं कर सकता?

उत्तर—नहीं; क्योंकि जिसका 'अभाव' अर्थात् जो वर्तमान ही नहीं है, उसका 'भाव'=वर्तमान होना सर्वथा असम्भव है। जैसे कोई गपोड़ा हाँक दे कि 'मैंने वन्ध्या के पुत्र और पुत्री का विवाह देखा, वह नरशृङ्ग का धनुष [धारण किये था], और वे दोनों खपुष्प की माला पहरे हुए थे, मृगतृष्णिका के जल में स्नान करते और गन्धर्वनगर में रहते थे, वहां बद्दल के विना वर्षा, पृथिवी के विना सब अन्नों की उत्पत्ति होती थी,' आदि।

वैसे ही कारण के विना कार्य का होना असम्भव है। जैसे, कोई कहे कि—**"मम मातापितरौ न स्तः, अहमेव जातः।" "मम मुखे जिह्वा नास्ति वदामि च।"**=अर्थात् 'मेरे माता-पिता न थे, वैसे ही मैं उत्पन्न हुआ हूँ; मेरे मुख में जीभ नहीं है, परन्तु बोलता हूँ; बाम्बी में सर्प न था, निकल आया; मैं कहीं नहीं था, ये भी कहीं नहीं थे और हम सब जने आये हैं;' ऐसी असम्भव बात प्रमत्तगीत अर्थात् पागल लोगों की है।

[कारण का कारण नहीं होता]

प्रश्न—जो कारण के विना कार्य नहीं होता तो कारण का कारण कौन है?

उत्तर—जो केवल कारणरूप ही हैं, वे कार्य किसी के नहीं होते। और जो किसी का कारण और किसी का कार्य होता है, वह दूसरा [कारण-कार्य] कहाता है; जैसे, 'पृथिवी' घट और घर आदि का कारण और जल आदि का कार्य होता है, परन्तु जो आदिकारण प्रकृति है, वह अनादि है।

मूले मूलाभावादमूलं मूलम्॥

सांख्यसूत्र [अ० १। सू० ६७]॥

मूल का मूल अर्थात् कारण का कारण नहीं होता। इससे **'अकारण'** सब कार्यों का कारण होता है; क्योंकि किसी कार्य के आरम्भ-समय के पूर्व तीनों कारण अवश्य होते हैं। जैसे, कपड़े बनाने के पूर्व तन्तुवाय, रूई का सूत और नलिका आदि पूर्व वर्तमान होने से वस्त्र बनता है; **वैसे जगत्**

की उत्पत्ति के पूर्व परमेश्वर, प्रकृति, काल और आकाश तथा जीवों के अनादि होने से इस जगत् की उत्पत्ति होती है। यदि इनमें से एक भी न हो तो जगत् भी न हो।

[सृष्टि-रचना-विषयक विविध मतों पर विचार]

अत्र नास्तिका आहुः—

शून्यं तत्त्वं भावो विनश्यति वस्तुधर्मत्वाद्विनाशस्य॥१॥

सांख्यसूत्र [अ० १। सू० ४४]॥

अभावाद् भावोत्पत्तिर्नानुपमृद्य प्रादुर्भावात्॥२॥
ईश्वरः कारणं पुरुषकर्माफल्यदर्शनात्॥३॥
अनिमित्ततो भावोत्पत्तिः कण्टकतैक्ष्ण्यादिदर्शनात्॥४॥
सर्वमनित्यमुत्पत्तिविनाशधर्मकत्वात्॥५॥
सर्वं नित्यं पञ्चभूतनित्यत्वात्॥६॥
सर्वं पृथग् भावलक्षणपृथक्त्वात्॥७॥
सर्वमभावो भावेष्वितरेतराभावसिद्धेः॥८॥

न्यायसूत्र॥ अ॰ ४। आह्नि॰ १ [सू० १४, १९, २२, २५, २९, ३४, ३७]॥

[शून्य ही एकमात्र पदार्थ नहीं]

यहां **नास्तिक लोग** ऐसा कहते हैं कि—

[पहला नास्तिक कहता है—] 'शून्य' ही एक पदार्थ है। सृष्टि के पूर्व शून्य था, अन्त में शून्य होगा; क्योंकि जो 'भाव' है अर्थात् वर्त्तमान पदार्थ है, उसका अभाव होकर शून्य हो जायगा।

उत्तर—'शून्य' आकाश=अदृश्य अवकाश और बिन्दु को भी कहते हैं। शून्य जड़ पदार्थ [है]। इस शून्य में सब पदार्थ अदृश्य रहते हैं; जैसे, एक बिन्दु से रेखा, रेखाओं से वर्तुलाकार करने से भूमि-पर्वतादि ईश्वर की रचना से बनते हैं। और शून्य का जानने वाला शून्य नहीं होता॥१॥

[अभाव से भाव की उत्पत्ति नहीं होती]

दूसरा नास्तिक—अभाव से भाव की उत्पत्ति होती है। जैसे, बीज का मर्दन किये विना अंकुर उत्पन्न नहीं होता और बीज को तोड़कर देखें तो अंकुर का अभाव है। जब प्रथम अंकुर नहीं दीखता था तो अभाव से उत्पत्ति हुई।

उत्तर—जो बीज का उपमर्दन करता है, वह प्रथम ही बीज में था। जो न होता तो उत्पन्न कभी नहीं होता॥२॥

[कर्मानुसार ही फल मिलता है]

तीसरा नास्तिक कहता है, कि कर्मों का फल पुरुष के कर्म करने से नहीं प्राप्त होता। कितने ही कर्म निष्फल दीखने में आते हैं; इसलिये अनुमान किया जाता है कि कर्मों का फल प्राप्त होना ईश्वर के आधीन है। जिस कर्म का फल ईश्वर देना चाहे, देता है; जिस कर्म का फल देना नहीं चाहता, नहीं देता। इस बात से कर्मफल ईश्वराधीन है।

उत्तर—जो कर्म का फल ईश्वराधीन हो तो विना कर्म किये ईश्वर फल क्यों नहीं देता? इसलिये **जैसा कर्म मनुष्य करता है, वैसा ही फल ईश्वर देता है। इससे ईश्वर स्वतन्त्रता-पूर्वक पुरुष को कर्म का फल**

नहीं दे सकता, किन्तु जैसा कर्म जीव करता है, वैसा ही फल ईश्वर देता है॥३॥

[बिना कारण के कार्य नहीं होता]

चौथा नास्तिक कहता है, कि विना निमित्त के पदार्थों की उत्पत्ति होती है, जैसा कि बबूल आदि वृक्षों के काँटे तीक्ष्ण अणिवाले देखने में आते हैं। इससे विदित होता है कि जब-जब सृष्टि का आरम्भ होता है, तब-तब शरीरादि पदार्थ विना निमित्त के होते हैं।

उत्तर—जिससे पदार्थ उत्पन्न होता है, वही उसका निमित्त है। विना बीज, कण्टकी वृक्ष के काँटे उत्पन्न क्यों नहीं होते?॥४॥

[सब पदार्थ अनित्य नहीं हैं]

पांचवाँ नास्तिक कहता है कि सब पदार्थ उत्पत्ति और विनाशवाले हैं, इसलिये सब अनित्य हैं—

श्लोकार्द्धेन प्रवक्ष्यामि यदुक्तं ग्रन्थकोटिभिः।
ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः॥

यह किसी ग्रन्थ का श्लोक है [अष्टावक्रगीता ५, तुलना—शंकराचार्यकृत ब्रह्मनामावलीस्तोत्र २०]॥

नवीन वेदान्ती लोग पांचवें नास्तिक की कोटी में हैं, क्योंकि वे ऐसा कहते हैं कि करोड़ों ग्रन्थों का यह सिद्धान्त है—"ब्रह्म सत्य, जगत् मिथ्या और जीव ब्रह्म से भिन्न नहीं।"

उत्तर—जो सबकी अनित्यता नित्य है, तो सब अनित्य नहीं हो सकता।

प्रश्न—सबकी अनित्यता भी अनित्य है, जैसे अग्नि काष्ठों को नष्टकर आप भी नष्ट हो जाता है।

उत्तर—जो यथावत् उपलब्ध होता है उसका वर्त्तमान में अनित्यत्व और परमसूक्ष्म कारण की अनित्यता कभी नहीं हो सकती। जो वेदान्ती लोग ब्रह्म से जगत् की उत्पत्ति मानते हैं, तो ब्रह्म के सत्य होने से, उसका कार्य असत्य कभी नहीं हो सकता। जो स्वप्न, रज्जु, सर्पादिवत् कल्पित कहैं तो भी ठीक नहीं बन सकता; क्योंकि कल्पना गुण है, गुण से द्रव्य और द्रव्य से गुण पृथक् नहीं रह सकता। जब कल्पना का कर्त्ता नित्य है तो उसकी कल्पना भी नित्य होनी चाहिये, नहीं तो उसको भी अनित्य मानो; जैसे, स्वप्न विना देखे-सुने कभी नहीं आता। जो जाग्रत अर्थात् वर्त्तमान समय में सत्य पदार्थ हैं, उनके साक्षात् सम्बन्ध से प्रत्यक्षादि ज्ञान होने पर संस्कार अर्थात् उनका वासनारूप ज्ञान आत्मा में स्थित होता है, स्वप्न में उन्हीं को प्रत्यक्ष देखता है। जैसे, सुषुप्ति होने से बाह्य पदार्थों के ज्ञान के अभाव में भी बाह्य पदार्थ विद्यमान रहते हैं, वैसे प्रलय में भी कारण द्रव्य वर्त्तमान रहता है। जो संस्कार के विना स्वप्न होवे, तो जन्मान्ध को भी रूप का स्वप्न होवे। इसलिये वहां उनका ज्ञानमात्र है और बाहर सब पदार्थ वर्त्तमान हैं।

प्रश्न—जैसे जाग्रत के पदार्थ स्वप्न में और दोनों के सुषुप्ति में अनित्य हो जाते हैं, वैसे जाग्रत के पदार्थों को भी स्वप्न के तुल्य मानना चाहिये।

उत्तर—ऐसा कभी नहीं मान सकते; क्योंकि स्वप्न और सुषप्ति में बाह्य पदार्थों का अज्ञानमात्र होता है, अभाव नहीं। जैसे, किसी के पीछे की ओर बहुत-से पदार्थ अदृष्ट रहते हैं, उनका अभाव नहीं होता, वैसे ही स्वप्न और सुषुप्ति की बात है। इसलिये जो पूर्व कह आये कि ब्रह्म, जीव और जगत् का कारण अनादि, नित्य है; वही सत्य है॥५॥

[उत्पत्तिमान् पदार्थ नित्य नहीं होता]

छठा नास्तिक कहता है कि पांच भूतों के नित्य होने से सब जगत् नित्य है।

उत्तर—यह बात सत्य नहीं; क्योंकि जिन पदार्थों की उत्पत्ति और विनाश का कारण देखने में आता है, वे सब नित्य हों। तो सब स्थूल जगत्, शरीर तथा घट-पटादि पदार्थों को उत्पन्न और विनष्ट होते देखते ही हैं, इससे 'कार्य' को नित्य नहीं मान सकते॥६॥

[पृथक्-पृथक् पदार्थों में एक पदार्थ भी है]

सातवां नास्तिक कहता है कि सब पृथक्-पृथक् हैं, कोई एक पदार्थ नहीं है। जिस-जिस पदार्थ को हम देखते हैं, उनमें दूसरा एक पदार्थ कोई भी नहीं दीखता।

उत्तर—अवयवों में अवयवी, वर्त्तमानकाल, आकाश, परमात्मा और जाति पृथक्- पृथक् पदार्थ-समूहों में एक-एक हैं। उनसे पृथक् कोई पदार्थ नहीं हो सकता। इसलिये सब पृथक् पदार्थ नहीं, किन्तु स्वरूप से पृथक्-पृथक् हैं और पृथक्-पृथक् पदार्थों में एक पदार्थ भी है॥७॥

[सब पदार्थ अभावरूप नहीं हो सकते]

आठवां नास्तिक कहता है, कि सब पदार्थों में इतरेतर-अभाव की सिद्धि होने से सब अभावरूप हैं। जैसे **'अनश्वो गौः, अगौरश्वः'**=गाय घोड़ा नहीं और घोड़ा गाय नहीं, इसलिये सबको अभावरूप मानना चाहिये।

उत्तर—सब पदार्थों में इतरेतर-अभाव का योग हो, परन्तु **'गवि गौरश्वेऽश्वो भावरूपो वर्तत एव'**=गाय में गाय और घोड़े में घोड़े का भाव ही है, अभाव कभी नहीं हो सकता। जो पदार्थों का भाव न हो तो 'इतरेतराभाव' भी किसमें कहा जावे?॥८॥

[स्वभाव से जगत् की उत्पत्ति नहीं]

नौवां नास्तिक कहता है कि स्वभाव से सब जगत् की उत्पत्ति होती है। जैसे पानी, अन्न एकत्र हो सड़ने से कृमि उत्पन्न होते हैं और बीज, पृथिवी, जल के मिलने से घास, वृक्षादि और पाषाणादि उत्पन्न होते हैं। जैसे, समुद्र और वायु के योग से तरङ्ग; और तरङ्गों से समुद्रफेन; हल्दी, चूना और नींबू का रस मिलने से रोरी बनती है; वैसे सब जगत् तत्त्वों के स्वभाविक-गुणों से उत्पन्न हुआ है। इसका बनानेवाला कोई भी नहीं।

उत्तर—जो स्वभाव से जगत् की उत्पत्ति होवे तो विनाश कभी न होवे। और जो विनाश भी स्वभाव से मानो, तो उत्पत्ति न होगी। और जो द्रव्यों में दोनों स्वभाव युगपत् मानोगे तो उत्पत्ति और विनाश की व्यवस्था कभी न हो सकेगी। और जो 'निमित्त' के होने से उत्पत्ति और नाश मानोगे तो 'निमित्त' को उत्पत्ति और विनाश होनेवाले द्रव्यों से पृथक् मानना पड़ेगा। जो स्वभाव से उत्पत्ति और विनाश होता तो एक समय में ही उत्पत्ति और विनाश का होना सम्भव नहीं। जो स्वभाव से उत्पन्न होता हो, तो इस भूगोल के निकट में दूसरा भूगोल, चन्द्र-सूर्य आदि उत्पन्न क्यों नहीं होते?

और जिस-जिस के योग से जो-जो उत्पन्न होता है, वह-वह ईश्वर के उत्पन्न किये हुए बीज-अन्न-जलादि के संयोग से घास-वृक्ष और कृमि आदि उत्पन्न होते हैं, विना उनके नहीं। जैसे हल्दी, चूना और नींबू का रस दूर-दूर देश से आकर आप नहीं मिलते, किसी के मिलाने से मिलते हैं। उसमें भी यथायोग्य मिलाने से रोरी होती है, अधिक, न्यून वा अन्यथा करने से रोरी नहीं होती। वैसे ही प्रकृति, परमाणुओं को ज्ञान और युक्ति से परमेश्वर के मिलाये विना जड़ पदार्थ स्वयं कुछ भी कार्यसिद्धि के लिये विशेष पदार्थ नहीं बन सकते। इसलिये स्वभावादि से सृष्टि नहीं होती, किन्तु परमेश्वर की रचना से होती है॥९॥

[यह जगत् अनादि नहीं]

प्रश्न—इस जगत् का कर्ता न था, न है, और न होगा; किन्तु अनादि काल से यह जैसा का वैसा बना है। न कभी इसकी उत्पत्ति हुई, न कभी विनाश होगा।

उत्तर—विना कर्त्ता के कोई भी क्रिया [नहीं हो सकती], वा क्रियाजन्य पदार्थ नहीं बन सकता। जिन पृथिवी आदि पदार्थों में संयोग-विशेष से रचना दीखती है, वे अनादि कभी नहीं हो सकते; और जो संयोग से बनता है, वह संयोग के पूर्व नहीं होता और वियोग के अन्त में नहीं रहता। जो तुम इसको न मानो तो कठिन से कठिन पाषाण, हीरा और फौलाद आदि तोड़के, टुकड़े कर, गला, वा भस्म कर देखो कि इनमें परमाणु पृथक्-पृथक् मिले हैं वा नहीं? जो मिले हैं तो वे समय पाकर अलग-अलग भी अवश्य होते हैं॥

[जीव कभी ईश्वर नहीं हो सकता]

प्रश्न—अनादि ईश्वर कोई नहीं, किन्तु जो योगाभ्यास से अणिमादि ऐश्वर्य को प्राप्त होकर सर्वज्ञता-आदि गुणयुक्त **'केवल- ज्ञानी'** होता है, वही जीव **'ईश्वर'**, 'परमेश्वर' कहाता है।

उत्तर—जो अनादि ईश्वर जगत् का स्रष्टा न हो, तो साधनों से सिद्ध होनेवाले जीवों का आधार जीवनरूप जगत्, शरीर और इन्द्रियों के गोलक कैसे बनते? इनके विना जीव साधन ही न कर सकता। जब साधन न होते, तो सिद्ध कहां से होता?

जीव चाहे जैसा साधन कर सिद्ध होवे, तो भी ईश्वर, जो कि स्वयं सनातन, अनादि सिद्धि है, जिसमें अनन्त सिद्धियां हैं, उसके तुल्य कोई भी जीव नहीं हो सकता; क्योंकि जीव का परम-अवधि तक ज्ञान बढ़े, तो भी परिमित ज्ञान और सामर्थ्यवाला होता है; अनन्त ज्ञान और सामर्थ्यवाला कभी नहीं हो सकता। देखो, कोई भी योगी आज तक ईश्वरकृत सृष्टिक्रम को बदलनेहारा नहीं हुआ है, और न होगा। अनादि-सिद्ध परमेश्वर ने नेत्र से देखने और कानों से सुनने का जैसा निबन्ध किया है, इसको कोई भी योगी बदल नहीं सका है। [अतः कोई भी] **जीव, 'ईश्वर' कभी नहीं हो सकता।**

[प्रतिकल्प सृष्टि की समानता]

प्रश्न—कल्प-कल्पान्तरों में ईश्वर सृष्टि विलक्षण-विलक्षण बनाता है, अथवा एक-सी?

उत्तर—जैसी कि अब है, वैसी पहले थी और आगे होगी, भेद नहीं करता—

सूर्याचन्द्रमसौ धाता यंथापूर्वमंकल्पयत्।
दिवं च पृथिवीं चान्तरिंक्षमथो स्वंः॥१॥

ऋ०, म० १०। सूक्त १९०। मं० ३॥

(धाता) परमेश्वर ने जैसे पूर्व-कल्प में सूर्य, चन्द्र, विद्युत्, पृथिवी, अन्तरिक्ष, आदित्य बनाये थे, वैसे ही अब बनाये हैं; और आगे भी वैसे ही बनावेगा॥१॥

इसलिये परमेश्वर के काम विना भूल-चूक के होने से सदा एक-से ही हुआ करते हैं। जो अल्पज्ञ है और जिसका ज्ञान वृद्धि-क्षय को प्राप्त होता है, उसी के काम में भूल-चूक होती है, ईश्वर के काम में नहीं।

[सृष्टि के विषय में शास्त्रों में विरोध नहीं]

प्रश्न—सृष्टि-विषय में वेदादि-शास्त्रों का अविरोध है, वा विरोध?

उत्तर—अविरोध है।

प्रश्न—जो अविरोध है तो—

तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः, आकाशाद्वायुः, वायोरग्निः, अग्नेरापः, अद्भ्यः पृथिवी, पृथिव्या ओषधयः, ओषधिभ्योऽन्नम्, अन्नाद्रेतः, रेतसः पुरुषः, स वा एष पुरुषोऽन्नरसमयः॥

यह तैत्तिरीय उपनिषद् का वचन है [ब्रह्म० वल्ली। अनु० १]॥

उस परमेश्वर और प्रकृति से आकाश= अवकाश अर्थात् जो कारणरूप द्रव्य सर्वत्र फैल रहा था, उसको इकट्ठा करने से आकाश उत्पन्न-सा होता है। वास्तव में आकाश की उत्पत्ति नहीं होती; क्योंकि विना आकाश के प्रकृति और परमाणु कहाँ ठहर सकें? आकाश के पश्चात् वायु, वायु के पश्चात् अग्नि, अग्नि के पश्चात् जल, जल के पश्चात् पृथिवी, पृथिवी से ओषधि, ओषधियों से अन्न, अन्न से वीर्य, वीर्य से पुरुष अर्थात् शरीर उत्पन्न होता है।

यहां आकाशादि क्रम से, और **'छान्दोग्य'** में अग्न्यादि, **'ऐतरेय'** में जलादि क्रम से सृष्टि हुई मानी है। वेदों में कहीं पुरुष, कहीं हिरण्यगर्भ आदि से; **'मीमांसा'** में कर्म [से], **'वैशेषिक'** में काल [से], **'न्याय'** में परमाणु [से], **'योग'** में पुरुषार्थ [से], **'सांख्य'** में प्रकृति [से] और **'वेदान्त'** में ब्रह्म से सृष्टि की उत्पत्ति मानी है। अब किसको सच्चा और किसको झूठा मानें?

उत्तर—इसमें सब सच्चे [हैं], कोई झूठा नहीं। झूठा वह है जो विपरीत समझता है; क्योंकि परमेश्वर निमित्त और प्रकृति जगत् का उपादान कारण है। जब महाप्रलय होता है, उसके पश्चात् आकाशादि क्रम [से], और जब आकाश और वायु का प्रलय नहीं होता और अग्न्यादि का होता है [तब] अग्न्यादि क्रम से, और जब विद्युत्=अग्नि का भी प्रलय (नाश) नहीं होता तब जलादि क्रम से सृष्टि होती है, अर्थात् जिस-जिस प्रलय में जहाँ-जहाँ तक प्रलय होता है, वहाँ-वहाँ से सृष्टि की उत्पत्ति होती है।

'पुरुष' और 'हिरण्यगर्भ' आदि सब नाम परमेश्वर के ही हैं, **[यह] प्रथम समुल्लास में लिख भी आये हैं।**

शास्त्रों के अविरोध के विषय में भी पूर्व लिख आये हैं, परन्तु विरोध उसको कहते हैं कि एक कार्य में एक ही विषय पर विरुद्ध वाद होवे। छः शास्त्रों में अविरोध, देखो इस प्रकार है—

मीमांसा में—ऐसा कोई भी कार्य जगत् में नहीं होता कि जिसके बनाने में कर्मचेष्टा न की जाय।

वैशेषिक में—समय लगे विना, बने ही नहीं।

न्याय में—उपादानकारण न होने से कुछ भी नहीं बन सकता।

योग में—विद्या, ज्ञान, विचार न किया जाय, तो नहीं बन सकता।

सांख्य में—तत्त्वों का मेल न होने से, नहीं बन सकता। और—

वेदान्त में—बनानेवाला न बनावे, तो कोई भी पदार्थ उत्पन्न हो न सके।

इसलिये सृष्टि छः कारणों से बनती है। उन छः कारणों की व्याख्या एक-एक की एक-एक शास्त्र में है। इसलिये उनमें विरोध कुछ भी नहीं। जैसे छः पुरुष मिलके एक छप्पर उठाकर भित्तियों पर धरें, वैसे ही सृष्टिरूप एक कार्य की व्याख्या छः शास्त्रकारों ने मिलकर पूरी की है।

जैसे पांच अन्धों और एक मन्ददृष्टि को किसी ने हाथी का एक-एक देश बतलाया। फिर उनसे पूछा कि हाथी कैसा है? उनमें से एक ने कहा—खम्भे [जैसा], दूसरे ने कहा—सूप [जैसा], तीसरे ने कहा—मूसल [जैसा], चौथे ने कहा—झाड़ू [जैसा], पांचवें ने

कहा—चौतरे [जैसा], और छठे ने कहा—काला-काला चार खम्भों के ऊपर कुछ भैंसे-जैसा आकारवाला है।

इसी प्रकार आजकल के अनार्ष, नवीन ग्रन्थों के पढ़नेवालों और प्राकृत- भाषावालों ने ऋषिप्रणीत ग्रन्थ न पढ़कर, नवीन क्षुद्रबुद्धि-कल्पित संस्कृत और भाषाओं के ग्रन्थ पढ़कर, एक दूसरे की निन्दा में तत्पर होके झूठा झगड़ा मचाया है। इनका कथन बुद्धिमानों के वा अन्य के मानने योग्य नहीं। क्योंकि जो 'अन्धों के पीछे अन्धे चलें' तो दुःख क्यों न पावें? वैसे ही आजकल के अल्प-विद्यायुक्त, स्वार्थी, इन्द्रियाराम पुरुषों की लीला संसार का नाश करनेवाली है।

[कारण और कार्य तथा 'सृष्टि' का विवेचन]

प्रश्न—जब कारण के विना कार्य नहीं होता तो कारण का कारण क्यों नहीं?

उत्तर—अरे भोले भाइयो! कुछ अपनी बुद्धि को काम में क्यों नहीं लाते? देखो, संसार में दो ही पदार्थ होते हैं, एक कारण दूसरा कार्य। जो कारण है, वह [उस समय] कार्य नहीं, और जो जिस समय कार्य है, वह कारण नहीं। जब तक मनुष्य सृष्टि को यथावत् नहीं समझता, तब तक उसको यथावत् ज्ञान प्राप्त नहीं होता—

नित्यायाः सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्थायाः प्रकृतेरुत्पन्नानां परम-सूक्ष्माणां पृथक् पृथग्वर्त्तमानानां तत्त्वपरमाणूनां प्रथमः संयोगारम्भः संयोगविशेषाद-वस्थान्तरस्य स्थूलाकारप्राप्तिः सृष्टिरुच्यते॥

अनादि, नित्यस्वरूप सत्त्व, रजस् और तमोगुणों की एकावस्थारूप प्रकृति से उत्पन्न जो परमसूक्ष्म, पृथक्-पृथक् तत्त्वावयव विद्यमान हैं, उन्हीं का प्रथम ही जो संयोग का आरम्भ है, और [उन] संयोग-विशेषों से अवस्थान्तर [होकर] दूसरी-दूसरी अवस्था को सूक्ष्म से स्थूल-स्थूल बनते-बनाते विचित्ररूप बनी है। इसी से यह संसर्ग होने से 'सृष्टि' कहाती है।

भला, जो प्रथम संयोग में मिलने और मिलाने-वाला पदार्थ है, जो संयोग का आदि और वियोग का अन्त अर्थात् जिसका विभाग नहीं हो सकता, वह **'कारण'** और जो संयोग के पीछे बनता और वियोग के पश्चात् वैसा नहीं रहता, वह **'कार्य'** कहाता है। जो उस कारण का कारण, कार्य का कार्य, कर्त्ता का कर्त्ता, साधन का साधन और साध्य का साध्य कहता है, वह देखता [हुआ] अन्धा, सुनता [हुआ] बहिरा और जानता हुआ मूढ़ है। क्या आँख की आँख, दीपक का दीपक और सूर्य का सूर्य कभी हो सकता है? **जो जिससे उत्पन्न होता है वह 'कारण', और जो उत्पन्न होता है वह 'कार्य' है; और जो कारण को कार्यरूप बनानेहारा है, वह 'कर्त्ता' कहाता है।**

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः॥

भगवद्गीता [अ० २। श्लोक १७]॥

कभी **'असत्'** का भाव=वर्त्तमान और **'सत्'** का अभाव=अवर्त्तमान, नहीं होता। इन दोनों का निर्णय तत्त्वदर्शी लोगों ने जाना है। अन्य पक्षपाती, आग्रही, मलिनात्मा, अविद्वान् लोग इस बात को सहज में कैसे जान सकते हैं? क्योंकि **जो मनुष्य, विद्वान्, सत्सङ्गी होकर पूरा विचार नहीं करता, वह सदा भ्रमजाल में पड़ा रहता है। धन्य हैं वे पुरुष कि जो सब विद्याओं के सिद्धान्तों को जानते हैं और जानने के लिये परिश्रम करते हैं, जानकर अन्यों को निष्कपटता से जनाते हैं!** इससे जो कोई कारण के विना सृष्टि मानता है, वह कुछ भी नहीं जानता।

[सृष्टि की रचना]

जब सृष्टि का समय आता है, तब परमात्मा उन परमसूक्ष्म पदार्थों को इकट्ठा करता है। उसकी प्रथम अवस्था में जो परमसूक्ष्म प्रकृतिरूप कारण से कुछ स्थूल होता है, उसका नाम **'महत्तत्त्व'**, और जो उससे कुछ स्थूल होता है, उसका नाम **'अहङ्कार'**, और अहङ्कार से भिन्न- भिन्न पांच **'सूक्ष्मभूत'**; श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, जिह्वा, घ्राण **'पांच ज्ञानेन्द्रियाँ'**; वाक्, हस्त, पाद, उपस्थ और गुदा ये पांच **'कर्म-इन्द्रियां'** हैं और ग्यारहवां **'मन'** [ये] कुछ स्थूल उत्पन्न होते हैं। और उन **'पञ्चतन्मात्राओं'** से अनेक स्थूल- अवस्थाओं को प्राप्त होते हुए क्रम से **'पांच स्थूलभूत'** जिनको हमलोग प्रत्यक्ष देखते हैं, उत्पन्न होते हैं। उनसे नाना प्रकार की

औषधियां, वृक्ष आदि, उनसे अन्न, अन्न से वीर्य और वीर्य से शरीर होता है। **परन्तु आदि-सृष्टि मैथुनी सृष्टि नहीं होती,** क्योकि जब परमात्मा स्त्री-पुरुषों के शरीर बनाकर, उनमें जीवों का संयोग कर देता है, तदनन्तर मैथुनी सृष्टि चलती है।

देखो! शरीर में किस प्रकार की ज्ञानपूर्वक सृष्टि रची है कि जिसको विद्वान् लोग देखकर आश्चर्य मानते हैं। भीतर हाड़ों का जोड़; नाड़ियों का बन्धन; मांस का लेपन; चमड़ी का ढक्कन; प्लीहा, यकृत्, फेफड़ा पंखा-कला का स्थापन; रुधिरशोधन- प्रचालन; विद्युत् का स्थापन; जीव का संयोजन; शिरोरूप मूलरचन; लोम-नखादि का स्थापन; आँख की अतीव सूक्ष्म शिराओं का तारवत् ग्रन्थन; इन्द्रियों के मार्गों का प्रकाशन; जीव के जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति अवस्थाओं के भोगने के लिये स्थानविशेषों का निर्माण; सब धातुओं का विभागीकरण; कला-कौशल-स्थापनादि अद्भुत सृष्टि को विना परमेश्वर के कौन कर सकता है? इसके अतिरिक्त नाना प्रकार के रत्नों-धातुओं से जड़ित भूमि; विविध प्रकार के वटवृक्ष आदि के बीजों में अति सूक्ष्मरचना; असंख्य रक्त, हरित, श्वेत, पीत, कृष्ण, चित्र, मध्यरूपों से युक्त पत्र, पुष्प, फल, मूल-निर्माण; मिष्ट, क्षार, कटुक, कषाय, तिक्त, अम्लादि विविध रस; सुगन्धादियुक्त पत्र, पुष्प, फल, अन्न, कन्द, मूलादि-रचन; अनेकानेक करोड़ों भूगोल, सूर्य, चन्द्रादि लोक- निर्माण, धारण, भ्रामण, नियमों में रखना आदि परमेश्वर के विना कोई भी नहीं कर सकता।

जब कोई किसी पदार्थ को देखता है, तो दो प्रकार का ज्ञान उत्पन्न होता है। एक—जैसा वह पदार्थ है [उसका ज्ञान] और दूसरा—उसकी रचना देखकर बनानेवाले का ज्ञान, जैसे किसी पुरुष ने सुन्दर आभूषण जंगल में पाया। देखा, तो विदित हुआ कि यह सुवर्ण का है और किसी बुद्धिमान् कारीगर ने बनाया है। इसी प्रकार इस नाना प्रकार [की] सृष्टि में विविध रचनायें, [इसके] बनानेवाले **'परमेश्वर'** को सिद्ध करती है।

[सृष्टि की आदि में मनुष्योत्पत्ति कब और कैसे]

प्रश्न—मनुष्य की सृष्टि प्रथम हुई, वा पृथिवी आदि की?

उत्तर—पृथिवी आदि की; क्योंकि पृथिव्यादि के विना मनुष्य की स्थिति और पालन नहीं हो सकता।

प्रश्न—सृष्टि के आदि में एक-दो मनुष्य उत्पन्न किये थे, वा अनेक?

उत्तर—अनेक; क्योंकि जिन जीवों के कर्म ऐश्वरी सृष्टि में उत्पन्न होने के थे, उनका जन्म ईश्वर ने आदिसृष्टि में किया क्योंकि—

"साध्या ऋषयश्च ये"॥
"ततो मनुष्या अजायन्त"

यह यजुर्वेद [और उसके ब्राह्मण] में लिखा है।

[यजु० ३१। ९; शत० ब्रा० कां० १४। प्रपा० १। ब्रा० २ कं० ५]

इन प्रमाणों से यही निश्चय है कि आदि में अनेक अर्थात् सैकड़ों-सहस्रों मनुष्य उत्पन्न हुए। और सृष्टि में देखने से भी निश्चित होता है कि मनुष्य अनेक मा-बाप के सन्तान हैं।

प्रश्न—आदि सृष्टि में मनुष्य आदि की बाल्य, युवा वा वृद्ध-अवस्था में सृष्टि हुई थी, अथवा तीनों में?

उत्तर—युवावस्था में; क्योंकि जो बालक उत्पन्न करता, तो उनके पालन के लिये दूसरे मनुष्य आवश्यक होते, और वृद्धावस्था में बनाता, तो मैथुनी-सृष्टि न होती। इसलिये युवावस्था में सृष्टि की है।

[सृष्टि प्रवाह से अनादि है]

प्रश्न—कभी सृष्टि का प्रथमारम्भ है, वा नहीं?

उत्तर—नहीं। जैसे दिन के पूर्व रात और रात के पूर्व दिन तथा दिन के पीछे रात और रात के पीछे दिन बराबर चला आता है, इसी प्रकार सृष्टि के पूर्व प्रलय और प्रलय के पूर्व सृष्टि तथा सृष्टि के पीछे प्रलय और प्रलय के आगे सृष्टि, [यह] अनादिकाल से चक्र चला आता है। इसका आदि वा अन्त नहीं। किन्तु जैसे दिन वा रात का आरम्भ और अन्त देखने में आता है, उसी प्रकार सृष्टि और प्रलय का आदि-अन्त होता रहता है। क्योंकि जैसे परमात्मा, जीव, जगत् का कारण, ये तीन स्वरूप से अनादि हैं, वैसे जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय प्रवाह से अनादि हैं। जैसे, नदी का प्रवाह वैसा ही दीखता है, कभी सूख जाता, कभी नहीं दीखता, फिर

बरसात में दीखता और उष्णकाल में नहीं दीखता, ऐसे व्यवहारों को प्रवाहरूप जानना चाहिये। जैसे परमेश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव अनादि हैं, वैसे ही उसके जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय करना भी अनादि हैं। जैसे कभी ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव का आरम्भ और अन्त नहीं, उसी प्रकार उसके कर्त्तव्य-कर्मों का भी आरम्भ और अन्त नहीं।

[कर्मानुसार विविध योनियाँ]

प्रश्न—ईश्वर ने किन्हीं जीवों को मनुष्य जन्म; किन्हीं को सिंह-आदि क्रूर जन्म; किन्हीं को हिरण, गाय आदि पशु [जन्म]; किन्हीं को वृक्ष-आदि, किन्हीं को कृमि, कीट, पतङ्ग-आदि जन्म दिये हैं। इससे परमात्मा में पक्षपात आता है।

उत्तर—पक्षपात नहीं आता; क्योंकि उन जीवों के पूर्व-सृष्टि में किये हुए कर्मों के अनुसार व्यवस्था करने से। जो कर्म के विना जन्म देता, तो पक्षपात आता।

[मनुष्यों की प्रथम सृष्टि]

प्रश्न—मनुष्यों की आदि-सृष्टि किस स्थल में हुई?

उत्तर—**'त्रिविष्टप'** अर्थात् जिसको **'तिब्बत'** कहते हैं।

प्रश्न—आदि-सृष्टि में एक जाति थी, वा अनेक?

उत्तर—एक मनुष्यजाति थी, पश्चात्—

"विजांनीह्यार्यान् ये च दस्यंवः"।

यह ऋग्वेद का वचन है [१। ५१। ८]॥

श्रेष्ठों का नाम आर्य, विद्वान्, देव; और दुष्टों का 'दस्यु' अर्थात् डाकू, मूर्ख और अनाड़ी नाम होने से 'आर्य' और 'दस्यु' दो नाम हुए। [उसके पश्चात्—]

"उत शूद्र-उतार्ये"

अथर्ववेद का वचन है [१९। ६२। १]।

आर्यों में पूर्वोक्त प्रकार से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चार भेद हुए। विद्वानों का नाम 'आर्य' और द्विज, मूर्खों [=विद्यारहितों] का नाम 'शूद्र' और 'अनार्य' अर्थात् 'अनाड़ी' नाम हुआ।

[आर्यों का भारत में आगमन]

प्रश्न—फिर वे यहां कैसे आये?

उत्तर—जब आर्य और दस्युओं में अर्थात् विद्वान् जो देव, अविद्वान् जो असुर, उनमें सदा लड़ाई-बखेड़ा हुआ किया। जब बहुत उपद्रव होने लगा, तब आर्य लोग सब भूगोल में उत्तम इस भूमि के खण्ड को जानकर यहीं आकर बसे। इसी से इस देश का नाम **'आर्यावर्त'** हुआ।

[आर्यावर्त्त की प्राचीन सीमा]

प्रश्न—आर्यावर्त की अवधि कहां तक है?

उत्तर—आसमुद्रात्तु वै पूर्वादासमुद्रात्तु पश्चिमात्।
तयोरेवान्तरं गिर्योरार्यावर्तं विदुर्बुधाः॥१॥
सरस्वतीदृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम्।
तं देवनिर्मितं देशमार्यावर्तं प्रचक्षते॥२॥

मनु॰ [२। २२; १७]॥

उत्तर में हिमालय, दक्षिण में विन्ध्याचल, पूर्व और पश्चिम में समुद्र॥१॥

तथा सरस्वती पश्चिम में 'अटक' नदी, जो उत्तर के पहाड़ों से निकलके [अपने से] दक्षिण के समुद्र की खाड़ी [अर्थात् पश्चिमी समुद्र] में मिली है। और पूर्व में 'दृषद्वती' जो नेपाल के पूर्व भाग पहाड़ से निकलके, बङ्गाले के और आसाम के पूर्व और ब्रह्मा के पश्चिम ओर होकर [अपने से] दक्षिण के समुद्र [अर्थात् पूर्वी समुद्र] में मिली है, जिसको 'ब्रह्मपुत्रा' कहते हैं। **हिमालय की मध्यरेखा से दक्षिण और पहाड़ों के भीतर और रामेश्वर-पर्यन्त विन्ध्याचल के भीतर जितने देश हैं, उन सबको 'आर्यावर्त' कहते हैं।** यह देश 'देवनिर्मित आर्यावर्त' इसलिये कहाता है कि 'देव' अर्थात् नाम विद्वानों ने बसाया और आर्यजनों के निवास करने से **'आर्यावर्त'** कहाया है॥२॥

प्रश्न—प्रथम इस देश का नाम क्या था और इसमें कौन बसते थे?

उत्तर—इसके पूर्व इस देश का नाम कोई भी नहीं था और न कोई आर्यों के पूर्व इस देश में बसते थे। क्योंकि आर्य लोग सृष्टि के आदि में कुछ काल के पश्चात् **तिब्बत से सूधे** इसी देश में आकर बसे थे।

[आर्य-दस्यु-युद्ध]

प्रश्न—कोई कहते हैं कि ये लोग **ईरान** से आये। इसी से इन लोगों का नाम 'आर्य' हुआ है। इनके पूर्व यहां जंगली लोग बसते थे कि जिनको असुर' और 'राक्षस' कहते थे। आर्य लोग अपने को देवता बतलाते थे और उनका जब संग्राम हुआ, उसका नाम **'देवासुर-संग्राम'** कथाओं में ठहराया।

उत्तर—यह बात सर्वथा झूठ है। क्योंकि—

"वि जांनीह्यार्यान् ये च दस्यंवो बर्हिष्मंते रन्धया शासंदव्रतान्॥"

ऋ०, म० १। सूक्त ५१। मं० ८॥

"उत शूद्र-उतार्ये॥"

यह भी अथर्ववेद का प्रमाण है [कां० १९। सूक्त ६२। मं० १]॥

हम लिख चुके हैं कि 'आर्य' नाम धार्मिक, विद्वान्, आप्त पुरुषों का और इनसे विपरीत जनों का नाम 'दस्यु' अर्थात् डाकू, दुष्ट, अधार्मिक और अविद्वान् है। तथा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य द्विजों का नाम 'आर्य' और शूद्र का नाम 'अनार्य' अर्थात् 'अनाड़ी' है।

जब वेद यह कहता है तो दूसरे विदेशियों के कपोलकल्पित [कथन] को बुद्धिमान् लोग कभी नहीं मान सकते। और देवासुर-संग्राम में आर्यवर्तीय अर्जुन तथा महाराजे दशरथ आदि जो कि हिमालय पहाड़ [के क्षेत्र] में आर्य=विद्वानों और दस्युओं, म्लेच्छों, असुरों का जो युद्ध हुआ था, उसमें 'देवों' अर्थात् आर्यों की रक्षा और असुरों का पराजय करने को सहायक हुए थे। इससे यही सिद्ध होता है कि आर्यावर्त के बाहर चारों ओर जो हिमालय के पूर्व, आग्नेय, दक्षिण, नैर्ऋत, पश्चिम, वायव्य, उत्तर, ईशान [दिशाओं के] देशों में जो मनुष्य रहते हैं उन्हीं का नाम 'असुर' सिद्ध होता है; क्योंकि वे जब-जब हिमालय-प्रदेशस्थ आर्यों पर लड़ने को चढ़ाई करते थे, तब-तब यहां के राजे- महाराजे लोग उन्हीं उत्तर आदि [दिशा के] देशों में आर्यों के सहायक होते थे। और जो श्री रामचन्द्र जी से दक्षिण में युद्ध हुआ है, उसका नाम **'देवासुर-संग्राम'** नहीं है, किन्तु उसको **'राम-रावण'** अथवा **'आर्य और राक्षसों का संग्राम'** कहते हैं।

किसी संस्कृत ग्रन्थ में वा इतिहास में नहीं लिखा कि आर्य लोग **ईरान** से आये और यहां के जंगलियों को, लड़कर, जय पाके, निकालके, इस देश के राजा हुए। पुनः विदेशियों का लेख माननीय कैसे हो सकता है? और—

म्लेच्छवाचश्चार्यवाचः सर्वे ते दस्यवः स्मृताः॥१॥

मनु॰ [१०। ४५]॥

"म्लेच्छदेशस्त्वतः परः॥२॥"

मनु॰ [२। २३]॥

जो आर्यावर्त देश से भिन्न देश हैं, वे **'दस्युदेश'** और **'म्लेच्छदेश'** कहाते हैं। इससे भी यह सिद्ध होता है कि आर्यावर्त से भिन्न पूर्व [के] देशों से लेकर ईशान, उत्तर, वायव्य और पश्चिम [के] देशों में रहने वालों का नाम 'दस्यु' और 'म्लेच्छ' तथा 'असुर' है। और नैर्ऋत, दक्षिण तथा आग्नेय दिशाओं में आर्यावर्त देश से भिन्न [देशों में] रहनेवाले मनुष्यों का नाम 'राक्षस' है।

और आर्यावर्त की सूध पर नीचे रहनेवालों का नाम **'नाग'** और उस देश का नाम **'पाताल'** इसलिये कहते हैं कि वह देश आर्यवर्तीय मनुष्यों के 'पाद' अर्थात् पगों के तले है। और उनके 'नागवंशी', अर्थात् नाग नामवाले पुरुष के वंश के राजा होते थे। उसी [के वंश] की **'उलूपी'** राजकन्या से अजुर्न का विवाह हुआ था, **अर्थात् इक्ष्वाकु से लेकर कौरवों-पाण्डवों तक सर्व-भूगोल में आर्यों का राज्य रहा और वेदों का थोड़ा-थोड़ा प्रचार आर्यावर्त से भिन्न देशों में भी रहता रहा।** इसमें यह प्रमाण है कि ब्रह्मा का पुत्र विराट्, विराट् का मनु, मनु के मरीची-आदि दश, इनके स्वायंभुवादि सात राजा और उनके सन्तान इक्ष्वाकु आदि राजा जो आर्यावर्त के प्रथम राजा हुए, जिन्होंने यह आर्यवर्त बसाया है।

[भारत में विदेशी शासन का कारण]

अब अभाग्योदय से और आर्यों के आलस्य, प्रमाद, परस्पर के विरोध से अन्य देशों का राज्य करने की तो कथा ही क्या कहनी,

किन्तु आर्यावर्त में भी आर्यों का अखण्ड, स्वतन्त्र, स्वाधीन, निर्भय राज्य इस समय नहीं है। जो कुछ है सो भी विदेशियों के पादाक्रान्त हो रहा है। कुछ थोड़े राजा स्वतन्त्र हैं। दुर्दिन जब आता है तब देशवासियों को अनेक प्रकार का दुःख भोगना पड़ता है।

[स्वराज्य की महत्ता]

कोई कितना ही करे, परन्तु जो स्वदेशीय राज्य होता है, वह सर्वोपरि उत्तम होता है। अथवा मतमतान्तर के आग्रहरहित, अपने और पराये का पक्षपातशून्य, प्रजा पर पिता-माता के समान कृपा, न्याय और दया के साथ विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुखदायक नहीं है।

परन्तु भिन्न-भिन्न भाषा, पृथक्-पृथक् शिक्षा, अलग-अलग व्यवहार का विरोध छूटना अति दुष्कर है। विना इसके छूटे परस्पर का पूरा उपकार और अभिप्राय सिद्ध होना कठिन है। इसलिये जो कुछ वेदादिशास्त्रों में व्यवस्था वा [शास्त्रों में] इतिहास लिखे हैं, उसी का मान्य करना भद्रपुरुषों का काम है।

[सृष्टि-उत्पत्ति का काल]

प्रश्न—जगत् की उत्पत्ति में कितना समय व्यतीत हुआ?

उत्तर—एक अर्ब, छानवें करोड़, कई लाख और कई सहस्र वर्ष जगत् की उत्पत्ति और वेदों के प्रकाश होने में हुए हैं। इसका स्पष्ट व्याख्यान मेरी बनाई **'भूमिका'*** में लिखा है, देख लीजिये।

इत्यादि प्रकार सृष्टि के बनाने और बनने में हैं और यह भी है कि सबसे सूक्ष्म टुकड़ा अर्थात् जो काटा नहीं जाता, उसका नाम परमाणु, साठ परमाणुओं के मिले हुए का नाम अणु, दो अणु का एक द्व्यणुक जो कि स्थूल वायु है, तीन द्वयणुक का अग्नि, चार द्व्यणुक का जल, पाँच द्व्यणुक की पृथिवी। अथवा तीन द्व्यणुक का त्रसरेणु और उसका [लगभग] दूना होने से पृथिवी आदि दृश्य पदार्थ होते हैं। इसी प्रकार क्रम से मिलाकर भूगोल-आदि परमात्मा ने बनाये हैं।

[पृथिवी का धारक परमात्मा, शेष तथा उक्षा का सत्यार्थ]

प्रश्न—इसका धारण कौन करता है? कोई कहता है—**'शेष'** अर्थात् सहस्र फणवाले सर्प के शिर पर पृथिवी है। दूसरा कहता है कि—**'बैल** के सींग पर [है]'। तीसरा कहता है कि 'किसी पर नहीं।' चौथा कहता है कि 'वायु के आधार पर [है]'। पाँचवाँ कहता है कि 'सूर्य के आकर्षण से खैंची हुई अपने ठिकाने पर स्थित [है]'। छठा कहता है कि—'पृथिवी भारी होने से नीचे-नीचे आकाश में चली जाती है', इत्यादि में किस बात को सत्य मानें?

उत्तर—जो 'शेष=सर्प और बैल के सींग पर धरी हुई पृथिवी स्थित [है]', कहता है, उससे पूछना चाहिये कि 'सर्प और बैल के मा-बाप के जन्म समय किस पर थी? तथा सर्प और बैल आदि किस पर हैं?' बैल-वाले मुसलमान तो चुप ही कर जायेंगे। परन्तु सर्प वाले कहेंगे कि 'सर्प कूर्म पर, कूर्म जल पर, जल अग्नि पर, अग्नि वायु पर और वायु आकाश में ठहरा है।' उनसे पूछना चाहिये कि 'ये सब किस पर हैं?' तो अवश्य

कहेंगे कि 'परमेश्वर पर।' जब उनसे कोई पूछेगा कि 'शेष और बैल किसका बच्चा है?' तो कहेंगे कि 'शेष कश्यप-कद्रू का और बैल गाय का।' कश्यप मरीची [का], मरीची मनु [का], मनु विराट् [का], और विराट् ब्रह्मा का पुत्र; ब्रह्मा आदि सृष्टि का था। जब शेष का जन्म न हुआ था, उसके पहले पाँच पीढ़ीयां हो चुकी हैं, तब किसने धारण की थी? अर्थात् कश्यप के जन्म-समय में पृथिवी किस पर थी? तो **'तेरी चुप, मेरी भी चुप'** और लड़ने लग जायेंगे। अर्थात् इसका सच्चा अभिप्राय यह है कि जो 'बाकी' रहता है, उसको 'शेष' कहते हैं। सो किसी कवि ने **'शेषाधारा पृथिवीत्युक्तम्'**=पृथिवी 'शेष के आधार पर है' ऐसा कहा—दूसरे ने उसके अभिप्राय को न समझकर सर्प की मिथ्या कल्पना कर ली। परन्तु जिसलिये परमेश्वर उत्पत्ति और प्रलय से बाकी अर्थात् पृथक् रहता है, इसी से उसको **'शेष'** कहते हैं और उसी के आधार पर पृथिवी है—

"सत्येनोत्तंभिता भूमिः॥"

यह ऋग्वेद के मन्त्र का भाग है [१०। ८५। १]।

सत्य अर्थात् जो त्रैकाल्य-अबाध्य, जिसका कभी नाश नहीं होता, उस परमेश्वर ने भूमि आदि सब लोकों को धारण किया है।

---

* **'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका'** के 'वेदोत्पत्ति विषय' को देखो।

[दयानन्द सरस्वती]

"अनड्वान् दांधार पृथिवीमुत द्याम्॥"

यह भी अथर्ववेद का वचन है [अथर्व० ४। ११। १]॥

["उक्षा स द्यावांपृथिवी बिंभर्ति"]

[ऋग्वेद १०। ३१। ८]

इसी **'उक्षा'** शब्द को देखकर किसी ने **'बैल'** का ग्रहण किया होगा; क्योंकि **'उक्षा'** बैल का भी नाम है। परन्तु उस मूढ़ को यह विदित न हुआ कि इतने बड़े भूगोल के धारण करने का सामर्थ्य बैल मे कहां से आवेगा? इसलिये **'उक्षा'** वर्षा द्वारा भूगोल का सेचन करने से 'सूर्य' का नाम है। उसने अपने आकर्षण से पृथिवी को धारण किया है। परन्तु सूर्यादि का धारण करनेवाला विना परमेश्वर के दूसरा कोई भी नहीं है।

[सब लोक-लोकान्तरों का धारक ईश्वर ही है]

प्रश्न—इतने-इतने बड़े भूगोलों को परमेश्वर कैसे धारण कर सकता होगा?

उत्तर—जैसे अनन्त आकाश के सामने बड़े-बड़े भूगोल कुछ भी अर्थात् समुद्र के आगे जल के छोटे कण के तुल्य भी नहीं हैं, वैसे अनन्त परमेश्वर के सामने असंख्यात लोक एक परमाणु के तुल्य भी नहीं कह सकते। वह बाहर-भीतर सर्वत्र व्यापक अर्थात्—

विभूः प्रजासुं

यह यजुर्वेद का वचन है [३२। ८]।

=वह परमात्मा सब प्रजाओं में व्यापक होकर सबका धारण कर रहा है। जो वह ईसाईयों, मुसलमानों, पुराणियों के कथनानुसार [एकदेशी होता और] विभु न होता तो इस सब सृष्टि का धारण कभी नहीं कर सकता; क्योंकि विना प्राप्ति के किसी को कोई धारण नहीं कर सकता।

कोई कहै कि ये सब लोक परस्पर आकर्षण से धारण किये हुए होंगे, पुनः परमेश्वर के धारण करने की क्या अपेक्षा है? उनको यह उत्तर देना चाहिये कि यह सृष्टि अनन्त है, वा सान्त? जो अनन्त कहैं तो आकारवाला वस्तु अनन्त कभी नहीं हो सकता और जो सान्त कहैं तो उनकी परभाग-सीमा अर्थात् जिसके परे कोई भी दूसरा लोक नहीं है, वहां किसके आकर्षण से धारण होगा? जैसे समष्टि और व्यष्टि अर्थात् जब सब समुदाय का नाम वन रखते हैं तो 'समष्टि' कहाता है और एक-एक वृक्षादि की भिन्न-भिन्न गणना करें, तो 'व्यष्टि' कहाता है; वैसे सब भूगोलों को समष्टि गिन कर जगत् कहैं, तो सब जगत् का धारण और आकर्षण का कर्त्ता विना परमेश्वर के दूसरा कोई भी नहीं। इसलिये जो सब जगत् को रचता है, वही—

"स दा॑धार पृथि॒वीं द्यामु॒तेमाम्॥"

यह यजुर्वेद का वचन है [१३। ४]।

पृथिव्यादि प्रकाशरहित लोक-लोकान्तरों तथा सूर्यादि प्रकाशसहित लोकों और पदार्थों का रचन-धारण वही परमात्मा करता है जो सबमें व्यापक हो रहा है।

[पृथिवी का सूर्य के चारों ओर भ्रमण]

प्रश्न—पृथिव्यादि लोक घूमते हैं, वा स्थिर हैं?

उत्तर—घूमते हैं।

प्रश्न—कितने ही लोग कहते हैं कि सूर्य घूमता है और पृथिवी नहीं घूमती। दूसरे कहते हैं कि पृथिवी घूमती है, सूर्य नहीं घूमता। इसमें सत्य क्या माना जाय?

उत्तर—ये दोनों आधे झूठे हैं। क्योंकि वेद में लिखा है कि—

आयं गौः पृश्निरक्रमीदसंदन्मातरं पुरः। पितरं च प्रयन्त्स्वः॥

यजु॰, अ॰ ३। मं॰ ६॥

अर्थात् यह भूगोल जल के सहित सूर्य के चारों ओर आकाश में घूमता जाता है, अर्थात् सूर्य के चारों ओर इसलिये भूमि घूमा करती है।

आ कृष्णेन रजसा वर्त्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च।
हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन्॥

यजु॰, अ॰ ३३। मं॰ ४३॥

जो सविता अर्थात् सूर्य, वर्षादि का कर्त्ता, प्रकाशस्वरूप, तेजोमय, रमणीयस्वरूप के साथ वर्त्तमान, सब प्राणी-अप्राणियों में अमृतरूप वृष्टि वा किरण द्वारा अमृत का प्रवेश करा और सब मूर्तिमान् द्रव्यों को दिखलाता हुआ, सब लोकों के साथ आकर्षण गुण से सह वर्त्तमान, अपनी परिधि में घूमता रहता है, किन्तु किसी लोक के चारों ओर नहीं घूमता। वैसे ही एक-एक ब्रह्माण्ड में एक सूर्य प्रकाशक और दूसरे सब लोक-लोकान्तर प्रकाश्य हैं, जैसे—

"दिवि सोमो अधि श्रितः॥"

अथर्व०, कां० १४। [सू० १] अनु० १। मं० १॥

जैसे यह चन्द्रलोक सूर्य से प्रकाशित होता है, वैसे ही पृथिव्यादि लोक भी सूर्य के प्रकाश से ही प्रकाशित होते हैं। परन्तु रात और दिन सर्वदा वर्त्तमान रहते हैं, क्योंकि पृथिव्यादि लोक घूमकर उनका जितना भाग सूर्य के सामने आता-जाता है उतने में दिन [होता है] और जितना पृष्ठ में अर्थात् आड़ में होता जाता है, उतने में रात [होती है]। अर्थात् उदय, अस्त, संध्या, मध्याह्न, मध्यरात्रि आदि जितने कालावयव हैं, वे देश-देशान्तरों में सदा वर्त्तमान रहते हैं। जैसे, जब **आर्यावर्त** में सूर्योदय होता है, उसी समय **'पाताल'** अर्थात् **अमेरिका** में अस्त होता है और जब आर्यावर्त में अस्त होता है, तब पाताल-देश में उदय होता है। जब आर्यावर्त में मध्य दिन वा मध्य रात है, उसी समय **पाताल-देश** में मध्य रात और मध्य दिन रहता है।

[पृथिवी के भ्रमण में हेतु]

जो लोग कहते हैं कि सूर्य घूमता और पृथिवी नहीं घूमती, वे सब अज्ञ हैं; क्योंकि जो ऐसा होता तो कई सहस्रों वर्ष के दिन और रात होते। अर्थात् सूर्य का नाम **'ब्रध्नः'** [है, वह] पृथिवी से लाखों गुना बड़ा और करोड़ों कोश दूर है। जैसे, राई के सामने पहाड़ घूमे तो बहुत देर लगती और राई के घूमने में बहुत समय नहीं लगता, वैसे ही पृथिवी के घूमने से यथायोग्य रात-दिन होते हैं, सूर्य के घूमने से नहीं। और जो सूर्य को स्थिर कहते हैं, वे भी **ज्योतिर्विद्यावित्** नहीं; क्योंकि यदि सूर्य न घूमता होता तो एक राशि=स्थान से दूसरी 'राशि' अर्थात् स्थान को प्राप्त न होता। और गुरु पदार्थ विना घूमे आकाश में नियत स्थान पर कभी नहीं रह सकता। और जो जैनी आदि कहते हैं कि पृथिवी घूमती नहीं, किन्तु नीचे चली जाती है और दो सूर्य और दो चन्द्र केवल जम्बूद्वीप में बतलाते हैं, वे तो **'बारह लोटा गहरी भांग के नशे में निमग्न**' हैं; क्योंकि जो नीचे-नीचे चलती जाती तो चारों ओर वायु के चक्र न बनने से पृथिवी छिन्न-भिन्न होती और निम्न-स्थल पृथिवी में रहनेवालों को वायु का स्पर्श न होता, नीचेवालों को अधिक होता और एक-सी वायु की गति होती। और दो सूर्य-चन्द्र होते, तो रात और कृष्णपक्ष का होना ही नष्ट-भ्रष्ट होता। इसलिये एक भूमि के पास एक चन्द्र और अनेक चन्द्रों अनेक भूमियों के मध्य में एक सूर्य रहता है।

[अन्य लोकों में भी प्राणी है]

प्रश्न—सूर्य, चन्द्र और तारे क्या वस्तु हैं और उनमें **मनुष्य-आदि** सृष्टि है, वा नहीं?

उत्तर—ये सब भूगोल-लोक [हैं] और इनमें **मनुष्य-आदि** प्रजा भी रहती हैं, क्योंकि—

एतेषु हीदꣳ सर्वं वसु हितमेते हीदꣳ सर्वं वासयन्ते तद्यदिदꣳ सर्वं वासयन्ते तस्माद्वसव इति॥

शत० कां० १४ [प्रपा० ३। ब्रा० ७। कं० ४]॥

पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, चन्द्र, नक्षत्र और सूर्य **इनका 'वसु' नाम इसलिये है कि इन्हीं में सब पदार्थ और प्रजायें वसती हैं, और ये ही सबको वसाते हैं, इसलिये वास के=निवास करने के घर हैं,** इसलिये इनका नाम **'वसु'** है। जब पृथिवी के समान सूर्य, चन्द्र और नक्षत्र वसु हैं, पश्चात् उनमें इसी प्रकार प्रजा के होने में क्या सन्देह? और जैसे परमेश्वर का यह छोटा-सा लोक **मनुष्य-आदि सृष्टि** से भरा हुआ है, तो क्या ये सब लोक शून्य होंगे? परमेश्वर का कोई भी काम निष्प्रयोजन नहीं होता, तो क्या इतने असंख्य लोकों में **मनुष्य-आदि सृष्टि** न हो, तो सफल कभी हो सकता है? इसलिये सर्वत्र **मनुष्य-आदि सृष्टि** है।

[लोकान्तरों के प्राणियों में आकृति-भेद सम्भव]

प्रश्न—जैसे इस देश में **मनुष्य-आदि सृष्टि** के आकृति-अवयव हैं, वैसे ही अन्य लोकों में भी होंगे वा विपरीत होंगे?

उत्तर—कुछ-कुछ आकृति में भेद होने का सम्भव है, जैसे इस देश में चीने, हबशी और आर्यावर्त, यूरोप में अवयव और रङ्ग-रूप और आकृति

का भी थोड़ा-थोड़ा भेद होता है, इसी प्रकार लोक-लोकान्तरों में भी भेद होते हैं। परन्तु जिस जाति की जैसी सृष्टि इस देश में है, वैसी जाति की ही सृष्टि अन्य लोकों में भी है। जिस-जिस शरीर के प्रदेश में नेत्रादि अङ्ग हैं, उसी-उसी प्रदेश में लोकान्तर में भी उसी जाति के अवयव भी वैसे ही होते हैं। क्योंकि—

सूर्याचन्द्रमसौं धाता यंथापूर्वमंकल्पयत्।
दिवं च पृथिवीं चान्तरिंक्षमथो स्वंः॥

ऋ०, म० १०। सूक्त १९० [मं० ३]॥

धाता=परमात्मा ने जिस प्रकार के सूर्य, चन्द्र, द्यौ, भूमि, अन्तरिक्ष और तत्रस्थ सुख विशेष पदार्थ पूर्वकल्प में रचे थे, वैसे ही इस कल्प अर्थात् इस सृष्टि में रचे हैं, तथा सब लोक-लोकान्तरों में भी बनाये हैं। भेद किंचित्-मात्र नहीं होता।

[वेदों का प्रकाश अन्य लोकों में भी]

प्रश्न—जिन वेदों का इस लोक में **प्रकाश** है, उन्हीं वेदों का उन लोकों में भी **प्रकाश** है, वा नहीं?

उत्तर—उन्हीं का है। जैसे, एक राजा की राज्यव्यवस्था, नीति सब देशों में समान होती है, उसी प्रकार परमात्मा राजराजेश्वर की **वेदोक्त नीति** अपने सृष्टिरूप सब राज्य में एक-सी है।

[जीव और प्रकृति ईश्वर के अधीन हैं]

प्रश्न—जब ये जीव और प्रकृतिस्थ तत्त्व अनादि और ईश्वर के बनाये नहीं हैं, तो ईश्वर का अधिकार भी इन पर न होना चाहिये; क्योंकि सब स्वतन्त्र हुए?

उत्तर—जैसे राजा और प्रजा समकाल में होते हैं और राजा के आधीन प्रजा होती है, वैसे ही परमेश्वर के आधीन जीव और जड़ पदार्थ हैं। जब परमेश्वर सब सृष्टि का बनानेवाला, जीवों के कर्मफलों का देनेवाला, सबका यथावत् रक्षक और अनन्त सामर्थ्यवाला है, तो अल्पसामर्थ्य [जीव] और जड़ पदार्थ उसके आधीन क्यों न हों? इसलिये **जीव कर्म करने में स्वतन्त्र, परन्तु कर्मों के फल भोगने में ईश्वर की व्यवस्था से परतन्त्र हैं।** वैसे ही वह सर्वशक्तिमान् [परमेश्वर] सृष्टि, पालन और संहार सब विश्व का करता है।

इसके आगे विद्या, अविद्या, बन्ध और मोक्ष के विषय में लिखा जायगा। यह [सृष्टि-उत्पत्ति-स्थिति प्रलय-विषयक] आठवां समुल्लास पूरा हुआ।

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिकृते सत्यार्थप्रकाशे सुभाषाविभूषिते सृष्ट्युत्पत्तिस्थितिप्रलय-विषयेऽष्टमः समुल्लासः सम्पूर्णः॥८॥

अथ नवमसमुल्लासारम्भः

अथ विद्याऽविद्याबन्धमोक्षविषयान् व्याख्यास्यामः

सम्पूर्ण सत्यार्थप्रकाश

Click now

[अब विद्या-अविद्या-बन्ध-मोक्ष विषयों की व्याख्या करेंगे]

[विद्या और कर्म से मोक्ष की प्राप्ति]

विद्यां चाऽविंद्यां च यस्तद्वेदोभयंꣳ सह।
अविंद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतंमश्नुते॥

यजुः, अ० ४०। मं० १४॥

जो मनुष्य विद्या और अविद्या के स्वरूप को साथ ही साथ जानता है, वह **'अविद्या'** अर्थात् 'कर्म-उपासना' से मृत्यु को तरके **'विद्या'** अर्थात् यथार्थ ज्ञान से मोक्ष को प्राप्त होता है। [किन्तु वह 'कर्म-उपासना'-रूप 'अविद्या' अशुद्ध कर्म, अशुद्ध उपासना और मिथ्या ज्ञानयुक्त 'अविद्या' नहीं होनी चाहिये। उस मिथ्या ज्ञानयुक्त]

[बन्ध के कारणभूत 'अविद्या' का लक्षण]

अविद्या का लक्षण है—

अनित्याशुचिदुःखानात्मसु नित्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्या॥

यह योगसूत्र का वचन है [साधनपाद, सू० ५]

जो **'अनित्य'** संसार और देहादि में 'नित्य' अर्थात् जो कार्य-जगत् देखा-सुना जाता है, [वह] सदा रहेगा, सदा से है और योगबल से यही देवों का शरीर सदा रहता है, वैसी विपरीत-बुद्धि होना, अविद्या का प्रथमभाग है। **अशुचि** अर्थात् मलमय स्त्र्यादि के [शरीरों में] और मिथ्याभाषण, चोरी आदि अपवित्र में पवित्र-बुद्धि [करना], दूसरा; अत्यन्त विषयसेवनरूप **'दुःख'** में सुखबुद्धि [करना] आदि, तीसरा; **'अनात्मा'** में आत्मबुद्धि करना, अविद्या का चौथा भाग है। इस चार प्रकार के विपरीत ज्ञान को **'अविद्या'** कहते है।

[विद्या का लक्षण]

इससे विपरीत अर्थात् अनित्य में अनित्य और नित्य में नित्य, अपवित्र में अपवित्र और पवित्र में पवित्र, दुःख में दुःख, सुख में सुख, अनात्मा में अनात्मा और आत्मा में आत्मा का ज्ञान होना **'विद्या'** है। अर्थात् **‘वेत्ति यथावत् तत्त्वं पदार्थ-स्वरूपं यया सा विद्या, यया तत्त्वस्वरूपं न जानाति भ्रमादन्यस्मिन्नन्यन्निश्चिनोति साऽविद्या।’**=जिससे पदार्थों का यथार्थ स्वरूप बोध होवे, वह **'विद्या'** और जिससे तत्त्वस्वरूप न जान पड़े, अन्य में अन्य-बुद्धि होवे, वह **'अविद्या'** कहाती है।

[मन्त्रस्थ 'अविद्या' शब्द का अर्थ]

अर्थात् **'कर्म और उपासना'** 'अविद्या' इसलिये है कि यह बाह्य और आन्तर-क्रियाविशेष नाम है, ज्ञानविशेष का नहीं। इसी से मन्त्र में कहा है कि विना 'शुद्ध कर्म' और 'परमेश्वर की [शुद्ध] उपासना' के मृत्यु-दुःख से पार कोई नहीं होता, अर्थात् पवित्र कर्म, पवित्र-उपासना और पवित्र ज्ञान से ही मुक्ति और अपवित्र मिथ्याभाषणादि कर्म, पाषाणमूर्त्यादि की

उपासना और मिथ्याज्ञान से **'बन्ध'** होता है। कोई भी मनुष्य क्षणमात्र भी कर्म, उपासना और ज्ञान से रहित नहीं होता। इसलिये **धर्मयुक्त सत्य-भाषणादि कर्म करना और मिथ्याभाषणादि अधर्म को छोड़ देना मुक्ति का साधन है।**

[बन्ध-मोक्ष विषयक नवीन वेदान्त-मत की समीक्षा]

प्रश्न—मुक्ति किसको प्राप्त नहीं होती?

उत्तर—जो बद्ध है!

प्रश्न—बद्ध कौन है?

उत्तर—जो अधर्म-अज्ञान में फसा हुआ जीव है।

प्रश्न—बन्ध और मोक्ष स्वभाव से होता है, वा निमित्त से?

उत्तर—निमित्त से; क्योंकि जो स्वभाव से होता तो बन्ध और मुक्ति की निवृत्ति कभी नहीं होती।

प्रश्न— न निरोधो न चोत्पत्तिर्न बद्धो न च साधकः।
न मुमुक्षुर्न वै मुक्तिरित्येषा परमार्थता॥

यह माण्डूक्योपनिषद् पर कारिका है [गौडपादीयकारिका, प्रकरण २। कां० ३२]॥

जीव ब्रह्म होने से वस्तुतः जीव का निरोध अर्थात् न कभी आवरण में आता, न जन्म लेता, न बंधा है और न साधक अर्थात् न कुछ साधना करनेहारा है, न छूटने की इच्छा करता और न इसकी कभी मुक्ति है; क्योंकि जब परमार्थ से 'बन्ध' ही नहीं हुआ तो 'मुक्ति' क्या?

उत्तर—यह नवीन वेदान्तियों का कहना सत्य नहीं; क्योंकि जीव का स्वरूप अल्प होने से आवरण में आता, शरीर के साथ प्रकट होनेरूप जन्म लेता, पापरूप कर्मों के फलभोगरूप बन्धन में फसता, उसके छुड़ाने का साधन करता, दुःख से छूटने की इच्छा करता और दुःखों से छूटकर परमानन्द परमेश्वर को प्राप्त होकर मुक्ति को भी भोगता है।

[आत्मा के निर्लेपत्व का खण्डन]

प्रश्न—ये सब धर्म देह और अन्तःकरण के हैं, जीव के नहीं; क्योंकि जीव तो पाप-पुण्य से रहित साक्षीमात्र है। शीत-उष्ण-आदि शरीरादि के धर्म हैं, क्षुधा-तृषा प्राण के और हर्ष-शोक मन के धर्म हैं; आत्मा निर्लेप है।

उत्तर—देह और अन्तःकरण जड़ हैं, उनको शीतोष्ण की प्राप्ति और भोग नहीं है, जैसे पत्थर को शीत और उष्ण का भान वा भोग नहीं हैं। जो चेतन मनुष्यादि प्राणी उसको स्पर्श करते हैं, उन्हीं को शीत-उष्ण का भान और भोग होता है। वैसे [ही] प्राण भी जड़ हैं, न उनको भूख और न पिपासा [लगती है], किन्तु प्राणवाले जीव को क्षुधा-तृषा लगती है। वैसे ही मन भी जड़ है, न उसको हर्ष और न शोक हो सकता है, किन्तु मन से हर्ष-शोक, सुख-दुःख का भोग जीव करता है। जैसे बहिष्करण=श्रोत्रादि

इन्द्रियों से अच्छे-बुरे शब्दादि विषयों का ग्रहण करके जीव सुखी-दुःखी होता है, वैसे ही अन्तःकरण अर्थात् मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार से [क्रमशः] सङ्कल्प-विकल्प, निश्चय, स्मरण और अभिमान का करनेवाला जीव [सुखी-दुःखी होता] है। जैसे तलवार आदि किसी शस्त्र से किसी को मारने वा रक्षा करनेवाले कर्म का कर्त्ता दण्ड और मान्य का भागी होता है, तलवार नहीं होती; वैसे ही देहे, इन्द्रिय, अन्तःकरण और प्राणरूप साधनों से अच्छे-बुरे कर्मों का कर्त्ता जीव सुख-दुःख का भोक्ता होता है। जीव कर्मों का साक्षी नहीं, किन्तु कर्त्ता है। कर्मों का साक्षी तो एक परमात्मा है। जो कर्म का करनेवाला जीव है वही कर्मों में लिप्त होता है; वह साक्षी और ईश्वर नहीं है।

[जीव ब्रह्म का प्रतिबिम्ब नहीं]

प्रश्न—जीव ब्रह्म का प्रतिबिम्ब है। जैसे दर्पण के टूटने-फूटने से बिम्ब की कुछ हानि नहीं होती, उसी प्रकार अन्तःकरण में ब्रह्म का प्रतिबिम्ब जीव तब तक है कि जब तक वह **'अन्तःकरणोपाधि'** है। जब अन्तःकरण नष्ट हो गया, तब वह जीव मुक्त है।

उत्तर—यह बालकपन की बात है; क्योंकि प्रतिबिम्ब साकार का साकार में होता है। जैसे मुख और दर्पण आकारवाले हैं और पृथक् भी हैं। जो पृथक् न हो, तो भी प्रतिबिम्ब नहीं हो सकता। ब्रह्म निराकार, सर्वव्यापक होने से, उसका प्रतिबिम्ब नहीं हो सकता।

प्रश्न—देखो, गम्भीर, स्वच्छ, स्थिर जल में निराकार और व्यापक आकाश का आभास पड़ता है। इसी प्रकार स्वच्छ अन्तःकरण में परमात्मा का आभास है। इसलिये इसको **'चिदाभास'** कहते हैं।

उत्तर—यह बालबुद्धि का मिथ्या-प्रलाप है; क्योंकि आकाश दृश्य [ही] नहीं, तो उसको आंख से कोई भी नहीं देख सकता। जब आकाश से भी स्थूल वायु को आँख से [कोई] नहीं देख सकता, तो आकाश को क्योंकर देख सकेगा?

प्रश्न—यह जो ऊपर को नीला और धुंधला दीखता है, वह आकाश ही नीला [-धुंधला] दीखता है, वा नहीं?

उत्तर—नहीं।

प्रश्न—तो वह क्या है?

उत्तर—जल, पृथिवी और अग्नि के त्रसरेणु दीखते हैं। उसमें जो नीलता दीखती है वह अधिक जल जो वर्षता है सो वही नीला, जो धुंधलापन दीखता है वह पृथिवी से धूली [आकाश में] उड़कर वायु में घूमती है, वह दीखती है; और उसी का प्रतिबिम्ब जल वा दर्पण में दीखता है; आकाश का कभी नहीं।

[उपाधिभेद से ब्रह्म के ईश्वर और जीव नाम नहीं]

प्रश्न—जैसे घटाकाश, मठाकाश, मेघाकाश और महदाकाश के भेद-व्यवहार में होते हैं, वैसे ही ब्रह्म के ब्रह्माण्ड और अन्तःकरण-उपाधि के भेद से ईश्वर और जीव नाम होता हैं। जब घटादि नष्ट हो जाते हैं, तब महदाकाश ही कहाता है।

उत्तर—यह भी बात अविद्वानों की है; क्योंकि आकाश कभी छिन्न-भिन्न नहीं होता। व्यवहार में भी 'घड़ा लाओ' इत्यादि व्यवहार होते हैं, कोई नहीं कहता कि 'घड़े का आकाश' लाओ। इसलिये यह बात ठीक नहीं।

[ब्रह्म के कारण अन्तःकरणों में चैतन्य नहीं]

प्रश्न—जैसे समुद्र के बीच में मच्छी, कीड़े और आकाश के बीच में पक्षी आदि घूमते हैं, वैसे ही 'चिदाकाश' ब्रह्म में सब अन्तःकरण घूमते हैं। वे स्वयं तो जड़ हैं, परन्तु सर्वव्यापक परमात्मा की सत्ता से, जैसे कि अग्नि से लोहा [दाहयुक्त और प्रकाशमान होता है] वैसे चेतन हो रहे हैं। जैसे वे चलते-फिरते [हैं], और आकाश तथा ब्रह्म स्थिर है, वैसे जीव को ब्रह्म मानने में कोई भी दोष नहीं आता।

उत्तर—यह भी तुम्हारा दृष्टान्त सत्य नहीं; क्योंकि जो सर्वव्यापी ब्रह्म सब अन्तःकरणों में प्रकाशमान होकर जीव होता है, तो सर्वज्ञता-आदि गुण उसमें होते हैं वा नहीं? जो कहो कि आवरण होने से सर्वज्ञता नहीं होती, तो कहो कि ब्रह्म आवृत और खण्डित है वा अखण्डित? जो कहो कि अखण्डित है, तो बीच में कोई भी परदा नहीं हो सकता। जब परदा नहीं,

तो सर्वज्ञता क्यों नहीं? जो कहो कि अपने स्वरूप को भूलकर अन्तःकरण में ब्रह्म फस गया है, तो ब्रह्म 'नित्य-मुक्त' नहीं। और ब्रह्म अन्तःकरण के साथ चलता है वा नहीं? तो यही कहोगे कि नहीं। जब स्वयं नहीं चलता, तो अन्तःकरण जितना-जितना पूर्व-प्राप्त देश छोड़ता और आगे-आगे जहां-जहां सरकता जायगा, वहां-वहां का ब्रह्म भ्रान्त, अज्ञानी होता जायगा और जितना-जितना छूटता जायगा, वहां-वहां का ज्ञानी, पवित्र और मुक्त होता जायगा। इसी प्रकार सर्वत्र सृष्टि के ब्रह्म को अन्तःकरण बिगाड़ा करेंगे और बन्ध-मुक्ति भी क्षण-क्षण में हुआ करेगी। तुम्हारे कहे प्रमाणे वैसा होता, तो किसी जीव को पूर्व देखे-सुने का स्मरण न होता; क्योंकि जिस ब्रह्म ने देखा वह पृथक् रहा, और दूसरे देश में दूसरे ब्रह्म का सम्बन्ध होता है। जैसे लोहे में अग्नि का ही दाह और प्रकाश है लोहे का नहीं, वैसे अन्तःकरण में चेतनता ब्रह्म की है, जीव की अपनी नहीं; तो ब्रह्म ही कर्ता, भोक्ता, बद्ध और मुक्त हो जायगा; इसलिये जीव सब पृथक्-पृथक् हैं। ब्रह्म जीव, वा जीव ब्रह्म, एक कभी नहीं होते, सदा पृथक्-पृथक् हैं।

[ब्रह्म में अध्यारोप का खण्डन]

प्रश्न—यह सब **'अध्यारोप'**-मात्र है; अर्थात् अन्य वस्तु में अवस्तु का स्थापन करना **'अध्यारोप'** कहाता है, वैसे ही ब्रह्म-वस्तु में सब जगत् और इसके व्यवहार का 'अध्यारोप' करने से जिज्ञासु को बोध कराना होता है, वास्तव में सब ब्रह्म ही है।

उत्तर—'अध्यारोप' का करनेवाला कौन है?

प्रश्न—जीव।

उत्तर—जीव किसको कहते हैं?

प्रश्न—'अन्तःकरणावच्छिन्न चेतन' को।

उत्तर—'अन्तःकरणावच्छिन्न चेतन' दूसरा है, वा वही ब्रह्म है?

प्रश्न—वही ब्रह्म है।

उत्तर—तो क्या ब्रह्म ने ही अपने में जगत् की झूठी कल्पना कर ली?

प्रश्न—हो, ब्रह्म की इससे क्या हानि है?

उत्तर—जो मिथ्या कल्पना करता है, क्या वह झूठा नहीं होता?

प्रश्न—नहीं; क्योंकि जो मन, वाणी से कल्पित वा कथित है, वह सब झूठा है।

उत्तर—फिर मन, वाणी से झूठी कल्पना करने और मिथ्या बोलनेवाला ब्रह्म 'कल्पक' और मिथ्यावादी हुआ वा नहीं?

प्रश्न—हो, हमको इष्टापत्ति है।

उत्तर—वाह रे झूठे वेदान्तियो! तुमने सत्यस्वरूप, सत्यकाम, सत्यसङ्कल्प परमात्मा को भी मिथ्याचारी कर दिया। क्या यह तुम्हारी दुर्गति का कारण नहीं है? किस उपनिषद्, सूत्र वा वेद में लिखा है कि परमेश्वर मिथ्यासङ्कल्प और मिथ्यावादी है? क्योंकि जैसे 'किसी चोर ने कोतवाल को दण्ड दिया' अर्थात् **'उलटि चोर कोतवाल को दण्डे'** इस कहावत के सदृश तुम्हारी बात हुई। यह तो बात उचित है कि कोतवाल चोर को दण्डे, परन्तु यह बात विपरीत है कि चोर कोतवाल को दण्ड देवे। वैसे ही तुम 'मिथ्यासङ्कल्प' और मिथ्यावादी होकर, वही अपना दोष ब्रह्म में व्यर्थ लगाते हो। जो ब्रह्म मिथ्याज्ञानी, मिथ्यावादी, मिथ्याकारी होवे, तो सब अनन्त ब्रह्म वैसा ही हो जाय, क्योंकि वह एकरस है, सत्यस्वरूप, सत्यमानी, सत्यवादी और सत्यकारी है। ये सब दोष तुम्हारे हैं, ब्रह्म के नहीं।

जिसको तुम विद्या कहते हो वह अविद्या है और तुम्हारा **'अध्यारोप'** भी मिथ्या है, क्योंकि आप ब्रह्म न होकर अपने को ब्रह्म और ब्रह्म को जीव मानना, यह अविद्या और मिथ्याज्ञान नहीं तो क्या है? जो सर्वव्यापक है वह परिच्छिन्न, अज्ञानी [नहीं होता] और बन्ध में कभी नहीं गिरता; क्योंकि अज्ञानी, परिच्छिन्न, एकदेशी अल्प, अल्पज्ञ जीव होता है; सर्वज्ञ, सर्वव्यापी ब्रह्म नहीं।

[मुक्ति और बन्ध का विवेचन]

अब मुक्ति-बन्ध का वर्णन करते हैं—

प्रश्न—मुक्ति किसको कहते हैं?

उत्तर—‘मुञ्चन्ति पृथग्भवन्ति जना यस्यां सा मुक्तिः’=जिसमें छूट जाना हो, उसका नाम मुक्ति है।

प्रश्न—किससे छूट जाना?

उत्तर—जिससे छूटने की इच्छा सब जीव करते हैं।

प्रश्न—किससे छूटने की इच्छा करते हैं?

उत्तर—जिससे छूटना चाहते हैं।

प्रश्न—किससे छूटना चाहते हैं?

उत्तर—दुःख से।

प्रश्न—छूटकर किसको प्राप्त होते और कहां रहते हैं?

उत्तर—सुख को प्राप्त होते और ब्रह्म में रहते हैं।

[मुक्ति और बन्ध के कारण]

प्रश्न—मुक्ति और बन्ध किन-किन बातों से होते हैं?

उत्तर—परमेश्वर की आज्ञा पालना; अधर्म, अविद्या, कुसङ्ग, कुसंस्कार, बुरे व्यसनों से अलग रहना; और सत्यभाषण, परोपकार, विद्या, पक्षपातरहित न्याय, धर्म की वृद्धि करना। पूर्वोक्त प्रकार से परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना और 'उपासना' अर्थात् योगाभ्यास करना; विद्या पढ़ना-पढ़ाना और धर्म से पुरुषार्थ कर ज्ञान की उन्नति करना; [इनमें भी] सबसे उत्तम साधन उपासना अर्थात् जिसका नाम योगाभ्यास है उसको करना; और जो कुछ करे वह सब पक्षपातरहित न्याय धर्मानुसार ही करे, इत्यादि साधनों से **'मुक्ति'** [होती है]; और इनसे विपरीत ईश्वराज्ञा भङ्ग करना आदि कामों से **'बन्ध'** होता है।

[मुक्ति में जीव का ब्रह्म में लय नहीं]

प्रश्न—मुक्ति में जीव का लय होता है, वा विद्यमान रहता है?

उत्तर—विद्यमान रहता है।

प्रश्न—कहां रहता है?

उत्तर—ब्रह्म में।

प्रश्न—ब्रह्म कहां है? और वह मुक्त जीव एक ठिकाने रहता है, वा स्वेच्छाचारी होकर सर्वत्र विचरता है?

उत्तर—जो ब्रह्म सर्वत्र पूर्ण है, उसी में मुक्त जीव सर्वत्र अव्याहतगति [रहता है] अर्थात् उसको कहीं रुकावट नहीं [होती। वह] विज्ञान-आनन्द-पूर्वक स्वतन्त्र विचरता है।

[मुक्ति में जीव स्वाभाविक शक्तियों से आनन्द भोगता है]

प्रश्न—मुक्त जीव का स्थूल शरीर रहता है, वा नहीं?

उत्तर—नहीं रहता।

प्रश्न—फिर वह सुख अर्थात् आनन्द का भोग कैसे करता है?

उत्तर—उसके सत्य-सङ्कल्पादि स्वाभाविक-गुण-सामर्थ्य सब रहते हैं, भौतिक [शरीर] सङ्ग नहीं रहता। जैसे—

शृण्वन् श्रोत्रं भवति, स्पर्शयन् त्वग्भवति, पश्यन् चक्षुर्भवति, रसयन् रसना भवति, जिघ्रन् घ्राणं भवति, मन्वानो मनो भवति, बोधयन् बुद्धिर्भवति, चेतयँश्चित्तम्भवत्यहङ्कुर्वाणोऽहङ्कारो भवति॥

[तुलना—शतपथ कां० १४। १। २। १७॥ [छान्दोग्य-उप० अ० ८। खं० १२। प्रवाक ४-५]

मोक्ष में भौतिक शरीर वा इन्द्रियों के गोलक जीव के साथ नहीं रहते, किन्तु अपने स्वाभाविक शुद्ध गुण रहते हैं। जब सुनना चाहता है तब श्रोत्र, स्पर्श करना चाहता है तब त्वचा, देखने के सङ्कल्प से चक्षु, स्वाद के अर्थ रसना, गन्ध के लिये घ्राण, सङ्कल्प-विकल्प करते समय मन, निश्चय करने के लिये बुद्धि, स्मरण करने के लिये चित्त और अहङ्कार करने के अर्थ अहङ्काररूप अपनी शक्ति से जीवात्मा मुक्ति में हो जाता है और सङ्कल्प= 'इच्छामात्र शरीर' होता है। **जैसे शरीर के आधार में रहकर इन्द्रियों के गोलकों के द्वारा जीव स्वकार्य करता है, वैसे अपनी शक्ति से मुक्ति में सब आनन्द भोग लेता है।**

[चौबीस प्रकार के जीव के सामर्थ्य]

प्रश्न—उसकी शक्ति कै प्रकार की और कितनी है?

उत्तर—मुख्य एक प्रकार की शक्ति है; परन्तु बल, पराक्रम, आकर्षण, प्रेरणा, गति, भाषण, विवेचन, क्रिया, उत्साह, स्मरण, निश्चय, इच्छा, प्रेम, द्वेष, संयोग, विभाग, संयोजक, विभाजक, श्रवण, स्पर्शन, दर्शन, स्वादन और गन्धग्रहण तथा ज्ञान इस २४ चौवीस प्रकार के सामर्थ्ययुक्त जीव है। इससे मुक्ति में भी आनन्द की प्राप्ति [और] भोग करता है।

जो मुक्ति में जीव का लय होता, तो मुक्ति का सुख कौन भोगता? और जो जीव का लय मानते हैं, वे जीव के नाश को ही मुक्ति समझते हैं; वे तो महामूढ़ हैं। क्योंकि मुक्ति जीव की यह है कि दुःखों से छूटकर

आनन्दस्वरूप, सर्वव्यापक, अनन्त परमेश्वर में जीव का आनन्द में रहना। देखो, **'वेदान्त'**=शारीरक सूत्रों में—

[मुक्ति में जीव तथा मन आदि का अस्तित्व]

अभावं बादरिराह ह्येवम्।

[वेदान्त०, अ० ४। पा० ४। सू० १०]

जो बादरि, व्यास जी का पिता है, वह मुक्ति में [भौतिक सूक्ष्म शरीर, प्राणों और इन्द्रियों का अभाव मानता है और], जीव और उसके साथ मन का भाव मानता है; अर्थात् जीव और मन का लय पराशर जी नहीं मानते हैं। वैसे ही—

भावं जैमिनिर्विकल्पामननात्।

[वेदान्त०, अ० ४। पा० ४। सू० ११]॥

और जैमिनि आचार्य मुक्तपुरुष के, मन के समान सूक्ष्म शरीर, इन्द्रियों, प्राणों आदि को भी विद्यमान मानते हैं, अभाव नहीं।

द्वादशाहवदुभयविधं बादरायणोऽतः॥

[वेदान्त०, अ० ४। पा० ४। सू० १२]॥

व्यास मुनि मुक्ति में भाव और अभाव दोनों मानते हैं, अर्थात् दोष=अविद्यादि क्लेशों का अभाव और जीव, अन्तःकरण, आनन्द,

प्राणों, इन्द्रियों का शुद्ध भाव रहता है; अर्थात् शुद्ध सामर्थ्ययुक्त जीव मुक्ति में बना रहता है।

यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह।
बुद्धिश्च न विचेष्टते तामाहुः परमां गतिम्॥

यह उपनिषद् का वचन है [कठ० अ० २। वल्ली ६। मं० १०]

जब शुद्ध मन के साथ पाँच ज्ञानेन्द्रियां जीव के साथ रहती हैं और बुद्धि का निश्चय स्थिर होता है, उसको परमगति अर्थात् मोक्ष कहते हैं।

य आत्मा-अपहतपाप्मा विजरो विमृत्युर्विशोकोविजिघत्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्यसङ्कल्पः सोऽन्वेष्टव्यः स विजिज्ञासितव्यः ससर्वांश्च लोकानाप्नोति सर्वांश्च कामान् यस्तमात्मानमनुविद्य विजानातीति०॥

[छान्दोग्य-उप०, अ० ८। खं० ७। प्रवाक १]॥

स वा एष एतेन दैवेन चक्षुषा मनसैतान् कामान् पश्यन् रमते॥

[छान्दोग्य-उप०, अ० ८। खं० १२। प्रवाक ५]

य एते ब्रह्मलोके तं वा एतं देवा आत्मानमुपासते तस्मात्तेषांꣳ सर्वे च लोका आत्ताः सर्वे च कामाः स सर्वांश्च लोकानाप्नोति सर्वांश्च कामान् यस्तमात्मानमनुविद्य विजानातीति०॥

[छान्दोग्य-उप०, अ० ८। खं० १२। प्रवाक ६]॥

मघवन्मर्त्यं वा इदꣳ शरीरमात्तं मृत्युना तदस्याऽमृतस्याऽशरीरस्यात्मनोऽधिष्ठानमात्तो वै सशरीरः प्रियाप्रियाभ्यां न वै सशरीरस्य सतः प्रियाप्रिययोरपहतिरस्त्यशरीरं वाव सन्तं न प्रियाप्रिये स्पृशतः॥

[छान्दोग्य-उप०, अ० ८। खं० १२। प्रवाक १]॥

जो परमात्मा अपहतपाप्मा [है, और], सर्वपाप, जरा, मृत्यु, शोक, क्षुधा, पिपासा से रहित, सत्यकाम, सत्यसंकल्प है, उसकी खोज और उसी को जानने की इच्छा करनी चाहिये। जिस परमात्मा के सम्बन्ध से मुक्त जीव सब लोकों और सब कामों को प्राप्त होता है, जो परमात्मा को जानके मोक्ष के साधन और अपने को शुद्ध करना जानता है॥ सो यह मुक्ति को प्राप्त जीव शुद्ध-दिव्य नेत्र और शुद्ध मन से कामों को देखता, प्राप्त होता हुआ रमण करता है॥

जो ये ब्रह्मलोक अर्थात् दर्शनीय परमात्मा में स्थित होके मोक्ष-सुख को भोगते हैं, और उसी परमात्मा का जो कि सबका अन्तर्यामी आत्मा है, उसकी उपासना मुक्ति की प्राप्ति करनेवाले विद्वान् लोग करते हैं, उससे उनको सब लोक और सब काम प्राप्त होते हैं। अर्थात् जो-जो संकल्प करते हैं, वह-वह लोक और वह-वह काम प्राप्त होता है और **वे मुक्त जीव स्थूल शरीर छोड़कर सङ्कल्पमय शरीर से आकाश में, परमेश्वर में विचरते हैं;** क्योंकि जो शरीरवाले होते हैं, वे सांसारिक दुःख से रहित नहीं हो सकते॥

जैसे इन्द्र से प्रजापति ने कहा है कि 'हे परमपूजित धनयुक्त पुरुष! यह स्थूल शरीर मरणधर्मा है और जैसे सिंह के मुख में बकरी होवे, वैसे यह शरीर मृत्यु के मुख के बीच है। सो शरीर इस 'मरण और शरीर-रहित' जीवात्मा का निवासस्थान है। इसीलिये यह जीव सुख और दुःख से सदा ग्रस्त रहता है। क्योंकि शरीरसहित जीव की सांसारिक प्रसन्नता-अप्रसन्नता की निवृत्ति नहीं होती और **जो शरीररहित मुक्त जीवात्मा ब्रह्म में रहता है, उसको सांसारिक सुख-दुःख का स्पर्श भी नहीं होता, किन्तु सदा आनन्द में रहता है।**

[मुक्ति से पुनरावृत्ति]

प्रश्न—जीव मुक्ति को प्राप्त होकर पुनः जन्म-मरणरूप दुःख में कभी आते हैं, वा नहीं? क्योंकि—

न च पुनरावर्त्तते न च पुनरावर्त्तत इति॥

उपनिषद्वचनम् [छान्दोग्य-उप०, अ० ८। खं० १५। प्र० १]॥

अनावृत्तिः शब्दादनावृत्तिः शब्दात्॥

शारीरकसूत्र [वेदान्त०, अ० ४। पा० ४। सू० २२]॥

यद् गत्वा न निवर्त्तन्ते तद्धाम परमं मम॥

भगवद्गीता [अ० १५। श्लोक० ६]॥

इत्यादि वचनों से विदित होता है कि मुक्ति वही है जिससे निवृत्त होकर पुनः संसार में कभी नहीं आता।

उत्तर—यह बात ठीक नहीं; क्योंकि वेद में इस बात का निषेध किया है—

कस्यं नूनं कंतमस्यामृतांनां मनांमहे चारुं देवस्यं नामं।
को नों मह्या अदिंतये पुनंर्दात् पितरं च दृशेयं मातरं च॥१॥
अग्नेर्वयं प्रंथमस्यामृतांनां मनांमहे चारुं देवस्यं नामं।
स नों मह्या अदिंतये पुनंर्दात् पितरं च दृशेयं मातरं च॥२॥

ऋ०, म० १। सूक्त २४। मं० १-२॥

इदानीमिव सर्वत्र नात्यन्तोच्छेदः॥३॥

सांख्यसूत्र [अ० १। सू० १५९]॥

(प्रश्न)—हम लोग किसका नाम पवित्र जानें? कौन नाशरहित पदार्थों के मध्य में वर्त्तमान देव सदा प्रकाशस्वरूप है, हमको मुक्ति का सुख भुगाकर पुनः इस संसार में जन्म देता और माता तथा पिता का दर्शन कराता है?॥१॥

उत्तर—हम इस स्वप्रकाशस्वरूप, अनादि, सदा-मुक्त परमात्मा का नाम पवित्र जानें, जो हमको मुक्ति में आनन्द भुगाकर पृथिवी में पुनः माता-पिता के सम्बन्ध में जन्म देकर माता-पिता का दर्शन कराता है। वही परमात्मा इस प्रकार मुक्ति की व्यवस्था करता [है और] सबका स्वामी है॥२॥

जैसे इस समय बद्ध-मुक्त जीव हैं, वैसे ही सर्वदा रहते हैं। अत्यन्त विच्छेद, 'बन्ध' वा मुक्ति का कभी नहीं होता तथा बन्ध और मुक्ति सदा नहीं रहते॥३॥

प्रश्न—तदत्यन्तविमोक्षोऽपवर्गः।

[न्यायसूत्र, अ० १। आ० १। सू० २२]

दुःखजन्मप्रवृत्तिदोषमिथ्याज्ञानानामुत्तरोत्तरापाये तदनन्तरापायादपवर्गः॥

न्यायसूत्र, [अ० १। आ० १। सू० २]॥

जो दुःख का अत्यन्त विच्छेद होता है, वही 'मुक्ति' कहाती है।

क्योंकि मिथ्याज्ञान=अविद्या, लोभादि दोष, विषय-दुष्टव्यसनों में प्रवृत्ति, जन्म और दुःख के, [सूत्रोक्त क्रम से] उत्तर-उत्तर के छूटने पर पूर्व-पूर्व के निवृत्त होने से ही 'मोक्ष' होता है, जो कि सदा बना रहता है।

उत्तर—यह आवश्यक नहीं है कि **'अत्यन्त'** शब्द **'अत्यन्ताभाव'** का ही नाम होवे। जैसे **'अत्यन्तं दुःखमत्यन्तं सुखं चास्य वर्त्तते'**=अत्यन्त दुःख और अत्यन्त सुख इस मनुष्य को है। इससे यही विदित होता है कि इसको बहुत दुःख वा [बहुत] सुख है। इसी प्रकार यहां भी **'अत्यन्त'** शब्द का अर्थ जानना चाहिये।

[मुक्ति का काल]

प्रश्न—जो मुक्ति से भी जीव फिर आता है, तो वह कितने समय तक मुक्ति में रहता है?

उत्तर—ते ब्रह्मलोके ह परान्तकाले परामृतात् परिमुच्यन्ति सर्वे।

यह मुण्डक-उपनिषद् का वचन है [३। खं० २। मं ६]

वे मुक्तिप्राप्त लोग ब्रह्म में आनन्द को भोगके **'महाकल्प'** के पश्चात् पुनः मुक्ति-सुख को छोड़के संसार में आते हैं। इसकी संख्या यह है कि—तेंतालीस लाख बीस सहस्र वर्षों की एक **'चतुर्युगी'**, दो सहस्र चतुर्युगियों का एक **'अहोरात्र'**, ऐसे तीस अहोरात्रों का एक **'महीना'**, ऐसे बारह महीनों का एक **'वर्ष'**, ऐसे शत-वर्षों का **'परान्तकाल'** होता है। इसको **'गणित'** की रीति से यथावत् समझ लीजिये। इतना समय मुक्ति में सुख भोगने का है।

[मुक्ति से पुनरावृत्ति न होने में अनेक दोष]

प्रश्न—सब संसार और ग्रन्थकारों का यही मत है कि जिससे [जीव] पुनः जन्म-मरण में कभी न आवें, [उसका नाम ही मुक्ति है]

उत्तर—यह बात कभी नहीं हो सकती; क्योंकि प्रथम तो जीवों का सामर्थ्य, शरीरादि पदार्थ और साधन परिमित हैं, पुनः उनका फल अनन्त कैसे हो सकता है? अनन्त आनन्द को भोगने का असीम सामर्थ्य, कर्म और साधन जीवों में नहीं, इसलिये अनन्त सुख नहीं भोग सकते। जिनके साधन अनित्य हैं, उनका फल नित्य कभी नहीं हो सकता। और जो मुक्ति में से लौटकर कोई भी जीव इस संसार में न आवे, तो संसार का 'उच्छेद' अथार्त् जीव निश्शेष हो जाने चाहियें।

प्रश्न—जितने जीव मुक्त होते हैं, ईश्वर उतने नये जीव उत्पन्न करके संसार में रख देता है, इसलिये निश्शेष नहीं होते।

उत्तर—जो ऐसा होवे तो जीव अनित्य हो जायें; क्योंकि जिसकी उत्पत्ति होती है, उसका नाश अवश्य होता है। फिर तुम्हारे मतानुसार मुक्ति पाकर भी विनष्ट हो जायेंगे। [इस प्रकार] मुक्ति भी अनित्य हो गई। और मुक्ति के स्थान में बहुत-सा भीड़-भड़क्का हो जायगा; क्योंकि वहां आगम अधिक और व्यय कुछ भी नहीं होने से बढ़ती का पारावार न रहेगा।

और दुःख के अनुभव के विना, सुख कुछ भी नहीं हो सकता। जैसे कटु न हो, तो मधुर क्या? जो मधुर न हो, तो कटु क्या कहावे? क्योंकि एक स्वाद के दूसरे रस के विरुद्ध होने से दोनों की परीक्षा होती है। जैसे **कोई मनुष्य मीठा=मधुर ही खाता=पीता जाय, उसको वैसा सुख नहीं होता, जैसा सब प्रकार के रसों के भोगनेवाले को होता है।**

और जो ईश्वर अन्तवाले कर्मों का अनन्त फल देवे, तो उसका न्याय नष्ट हो जाय। जो जितना भार उठा सके, उतना उसपर धरना बुद्धिमानों का काम है। जैसे एक मन-भार उठानेवाले के शिर पर दश मन धरने से भार धरनेवाले की निन्दा होती है, वैसे अल्पज्ञ, अल्प-सामर्थ्य वाले जीव पर अनन्त सुख का भार धरना, ईश्वर के लिये ठीक नहीं।

और जो परमेश्वर नये जीव उत्पन्न करता है, तो जिस कारण से उत्पन्न होते हैं, वह चुक जायगा; क्योंकि चाहे कितना ही बड़ा धनकोश हो, परन्तु जिसमें व्यय है और आय नहीं, उसका कभी न कभी दिवाला निकल ही

जाता है। इसलिये यही व्यवस्था ठीक है कि मुक्ति में जाना, वहां से पुनः आना ही अच्छा है। क्या थोड़े कारावास से 'जन्म-कारावास' वा 'कालापानी' अथवा 'फांसी' को कोई अच्छा मानता है? जब वहां से आना ही न हो, तो 'जन्म-कारावास' से इतना ही अन्तर है कि वहां मजदूरी नहीं करनी पड़ती। **और ब्रह्म में लय होना [मानो] समुद्र में डूब मरना है।**

[जीव ईश्वर के सदृश कभी नहीं होता]

प्रश्न—जैसे परमेश्वर नित्यमुक्त, पूर्ण-सुखी है, वैसे ही जीव भी नित्यमुक्त और सुखी रहेगा तो कोई भी दोष न आवेगा।

उत्तर—परमेश्वर अनन्त-स्वरूप-सामर्थ्य- गुण-कर्म-स्वभाव-वाला है, इसलिये वह कभी अविद्या और दुःख-बन्धन में नहीं गिर सकता। जीव मुक्त होकर भी शुद्धस्वरूप, अल्पज्ञ और परिमित-गुण-कर्म- स्वभाववाला रहता है, [इसलिये वह] परमेश्वर के सदृश कभी नहीं होता।

[मुक्ति जन्म-मरण के सदृश नहीं]

प्रश्न—जब ऐसा है, तो मुक्ति भी जन्म-मरण के सदृश हुई। इसके लिये परिश्रम करना व्यर्थ है।

उत्तर—मुक्ति जन्म-मरण के सदृश नहीं; क्योंकि जब-तक ३६००० (छत्तीस सहस्र) वार [सृष्टि] उत्पत्ति और प्रलय का जितना समय होता है, उतने समय पर्यन्त जीवों का मुक्ति के आनन्द में रहना और दुःख का न होना, क्या छोटी बात है? जब आज खाते-पीते हो, कल भूख

लगनेवाली है, पुनः इसका उपाय क्यों करते हो? जब क्षुधा, तृषा, क्षुद्र धन, राज्य, प्रतिष्ठा, स्त्री, सन्तान आदि के लिये उपाय करना आवश्यक है, तो मुक्ति के लिये क्यों न करना? जैसे मरना अवश्य है, तो भी जीवन का उपाय किया जाता है, वैसे ही मुक्ति से लौटकर जन्म में आना है, तथापि उसका उपाय करना अत्यावश्यक है?

['साधन चतुष्टय' अर्थात् मुक्ति के चार साधन]

प्रश्न—मुक्ति के क्या-क्या साधन हैं?

उत्तर—कुछ साधन तो प्रथम लिख आये हैं, परन्तु विशेष उपाय ये हैं—**जो मुक्ति चाहे वह 'जीवन्मुक्त' अर्थात् जिन मिथ्याभाषणादि पाप-कर्मों का फल दुःख है उनको छोड़, सुखरूप फल को देनेवाले सत्यभाषणादि धर्माचरण अवश्य करे। जो कोई दुःख को छुड़ाना और सुख को प्राप्त होना चाहे, वह अधर्म को छोड़, धर्म अवश्य करे; क्योंकि दुःख का पापाचरण और सुख का 'धर्माचरण' मूल कारण है।**

[मुक्ति का प्रथम साधन-विवेक]

[१. पहला साधन, विवेक से सत्यासत्य निर्णय और पंचकोषादि-विवेचन—] सत्पुरुषों के संग से **'विवेक'** अर्थात् सत्यासत्य, धर्माधर्म, कर्त्तव्याकर्त्तव्य का निश्चय अवश्य करें, [उनको] पृथक्-पृथक् जानें; और 'शरीर' अर्थात् 'जीव के पंचकोषों' का विवेचन करें—

[पंचकोष-] एक—'अन्नमय'—जो त्वचा से लेकर अस्थिपर्यन्त का समुदाय पृथिवीमय है। **दूसरा—'प्राणमय'** जिसमें 'प्राण' अर्थात् जो भीतर से बाहर जाता, 'अपान' जो बाहर से भीतर आता, 'समान' जो नाभिस्थ होकर सर्वत्र शरीर में रस पहुँचाता, 'उदान' जिससे कंठस्थ अन्न-पान खैंचा जाता और बल-पराक्रम होता है, 'व्यान' जिससे सब शरीर में चेष्टा आदि कर्म जीव करता है। **तीसरा—'मनोमय'**—जिसमें मन के साथ अहङ्कार [और] वाक्, पाद, पाणि, पायु और उपस्थ पांच कर्म-इन्द्रियाँ हैं। **चौथा—'विज्ञानमय'** जिसमें बुद्धि, चित्त [और] श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, जिह्वा और नासिका ये पांच ज्ञान-इन्द्रियाँ [हैं], जिनसे जीव ज्ञानादि व्यवहार करता है। **पाँचवाँ—'आनन्दमयकोष'**= जिसमें प्रीति, प्रसन्नता, न्यून आनन्द, अधिकानन्द, 'ब्रह्म-आनन्द', और [उसका] आधाररूप= कारणरूप प्रकृति [=कारणशरीर] है। ये 'पांच कोष' कहाते हैं। इन्हीं से जीव सब प्रकार के कर्म, उपासना और ज्ञानादि व्यवहारों को करता है।

तीन अवस्थायें ये हैं—एक **'जागृत'** दूसरी **'स्वप्न'** और तीसरी **'सुषुप्ति'** अवस्था कहाती है।

तीन शरीर हैं—**एक—'स्थूल'** जो यह दीखता है। **दूसरा**—पांच प्राण, पांच ज्ञानेन्द्रिय, पांच सूक्ष्म-भूत और मन तथा बुद्धि इन सत्तरह तत्त्वों का समुदाय **'सूक्ष्मशरीर'** कहाता है। यह सूक्ष्मशरीर जन्ममरणादि में भी जीव के साथ रहता है। इसके **दो भेद** हैं— **एक 'भौतिक'** अर्थात् जो

सूक्ष्म-भूतों के अंशों से बना है। **दूसरा 'स्वाभाविक'** जो जीव का स्वाभाविक गुणरूप है। यह दूसरा [स्वाभाविक=] 'अभौतिक शरीर' मुक्ति में भी रहता है। इसी से जीव मुक्ति में सुख को भोगता है। **तीसरा कारण**—जिसमें सुषुप्ति अर्थात् गाढ़ निद्रा होती है, वह प्रकृतिरूप होने से सर्वत्र विभु और सब जीवों के लिये एक है। [किन्हीं के मत में इसका एक अन्य भेद] **चौथा 'तुरीय शरीर'** कहाता है—जिसमें जीव समाधि से परमात्मा के आनन्दस्वरूप में मग्न होते हैं। इसी समाधि-संस्कारजन्य 'शुद्ध शरीर' का पराक्रम मुक्ति में भी यथावत् सहायक रहता है।

इन सब कोषों और अवस्थाओं से जीव पृथक् है। क्योंकि जब मृत्यु होता है, तब सब कोई कहते हैं कि जीव निकल गया। यही जीव सबका प्रेरक, सबका धर्त्ता, साक्षी, कर्त्ता, भोक्ता कहाता है। जो कोई ऐसा कहे कि जीव कर्त्ता-भोक्ता नहीं, तो उसको जानो कि वह अज्ञानी, अविवेकी है; क्योंकि विना जीव के जो ये सब जड़ पदार्थ हैं, इनको सुख-दुःख का भोग वा पुण्य-पाप-कर्तृत्व कभी नहीं हो सकता। हां, इनके सम्बन्ध से जीव पुण्य-पापों का कर्त्ता और सुख-दुःखों का भोक्ता है।

जब इन्द्रियां अर्थों में, मन इन्द्रियों और आत्मा मन के साथ संयुक्त होकर प्राणों को प्रेरणा करके अच्छे वा बुरे कर्मों में लगता है, तभी वह बहिर्मुख हो जाता है। उसी समय भीतर से [अच्छे कर्मों में] आनन्द, उत्साह, निर्भयता और बुरे कर्मों में भय, शंका, लज्जा उत्पन्न होती है, वह अन्तर्यामी परमात्मा की शिक्षा है। जो कोई इस

शिक्षा के अनुकूल वर्तता है, वही मुक्तिजन्य सुखों को प्राप्त होता है और जो विपरीत वर्तता है, वह बन्धजन्य दुःख भोगता है।

[मुक्ति का द्वितीय साधन]

[२] **दूसरा साधन —'वैराग्य'** अर्थात् जो **विवेक** से सत्यासत्य को जाना हो, उसमें से सत्याचरण का ग्रहण और असत्याचरण का त्याग करना।

विवेक यह है कि जो पृथिवी से लेकर परमेश्वर-पर्यन्त पदार्थों को गुण-कर्म-स्वभाव से जानकर परमेश्वर की आज्ञा का पालन और उपासना में तत्पर होना, उससे विरुद्ध न चलना। सृष्टि से उपकार लेना [भी] **विवेक** कहाता है।

[मुक्ति का तृतीय साधन]

[३] तत्पश्चात् **तीसरा साधन—'षट्क सम्पत्ति'** अर्थात् छः प्रकार के कर्म करना। **एक—'शम'**=जिससे अपने आत्मा और अन्तःकरण को अधर्माचरण से हटाकर, धर्माचरण में सदा प्रवृत्त रखना। **दूसरा—'दम'**=जिससे श्रोत्रादि इन्द्रियों और शरीर को व्यभिचारादि बुरे कर्मों से हटाकर, जितेन्द्रियत्वादि शुभ कर्मों में प्रवृत्त रखना। **तीसरा—'उपरति'**=जिससे दुष्ट कर्म करनेवाले पुरुषों से सदा दूर रहना। **चौथा—'तितिक्षा'**=चाहे निन्दा- स्तुति, हानि-लाभ कितना ही क्यों न हो, परन्तु हर्ष-शोक को छोड़, मुक्तिसाधनों में सदा लगे रहना। **पाँचवाँ—'श्रद्धा'**=जो वेदादि सत्य-शास्त्रों और इनके बोध से पूर्ण आप्त विद्वान्, सत्योपदेष्टा महाशयों के वचनों पर विश्वास करना।

छठा—‘समाधान’=चित्त की एकाग्रता। ये छः मिलकर एक साधन तीसरा कहाता है।

[मुक्ति का चतुर्थ साधन]

[४] **चौथा [साधन]—‘मुमुक्षुत्व’** अर्थात् जैसे क्षुधा-तृषातुर को सिवाय अन्न-जल के दूसरा कुछ भी अच्छा नहीं लगता, वैसे विना मुक्ति के साधन और मुक्ति के, दूसरे में प्रीति न होना। **ये चार साधन हैं।**

[अनुबन्ध-चतुष्टय]

और **चार 'अनुबन्ध'** अर्थात् साधनों के पश्चात् ये कर्म करने होते हैं—

[प्रथम, अधिकारी—] इनमें से जो इन चार साधनों से युक्त पुरुष होता है, वही मोक्ष का **'अधिकारी'** होता है।

दूसरा, **‘सम्बन्ध’**—ब्रह्म की प्राप्तिरूप मुक्ति प्रतिपाद्य और वेदादि-शास्त्र- प्रतिपादक को यथावत् समझकर अन्वित करना।

तीसरा, **‘विषय’**—सब शास्त्रों का प्रतिपादन-विषय ब्रह्म और उसकी प्राप्तिरूप विषयवाले पुरुष का नाम विषयी है।

चौथा, **‘प्रयोजन’**—सब दुःखों की निवृत्ति और परमानन्द को प्राप्त होकर मुक्ति-सुख का होना। ये चार **'अनुबन्ध'** कहाते हैं।

[श्रवण-चतुष्टय]

तदनन्तर **‘श्रवणचतुष्टय’**—एक **‘श्रवण’** —जब कोई विद्वान् उपदेश करे तब शान्त [हो], ध्यान देकर सुनना। विशेषतः **'ब्रह्मविद्या'** के सुनने में अत्यन्त ध्यान देना चाहिये, क्योंकि यह सब विद्याओं में सूक्ष्म विद्या है। [उसको] सुनकर, दूसरा **‘मनन’**—एकान्त देश में बैठके सुने हुए का

विचार करना, जिस बात में शङ्का हो [उसको] पुनः पूछना, और सुनते समय भी वक्ता और श्रोता उचित समझें तो पूछना और समाधान करना। तीसरा **'निदिध्यासन'**—जब सुनने और मनन करने से निःसन्देह हो जाय तब समाधिस्थ होकर उस बात को ध्यान-योग से देखना-समझना कि वह जैसा सुना या विचारा था, वैसा है वा नहीं। चौथा **'साक्षात्कार'**—अर्थात् जैसा पदार्थ का स्वरूप, गुण और स्वभाव हो, वैसा याथातथ्य जान लेना। यह **'श्रवणचतुष्टय'** कहाता है।

[मुक्ति के अन्य साधन]

[अन्य साधन—] सदा **'तमोगुण'** अर्थात् क्रोध, मलीनता, आलस्य, प्रमाद, आदि; **'रजोगुण'** अर्थात् ईर्ष्या, द्वेष, काम, अभिमान, विक्षेप आदि दोषों से अलग होके **'सत्त्व'** अर्थात् शान्त प्रकृति, पवित्रता, विद्या, विचारशीलता आदि गुणों को धारण करे।

["मैत्री करुणामुदितोपेक्षाणाम्०"]

योगदर्शन १। ३३]

(मैत्री) सुखी जनों में मित्रता, **(करुणा)** दुःखी जनों पर दया, **(मुदिता)** पुण्यात्माओं से हर्षित होना, **(उपेक्षा)** दुष्टात्माओं में न प्रीति और न वैर करना।

नित्यप्रति न्यून से न्यून दो घण्टा-पर्यन्त मुमुक्षु ध्यान अवश्य करे, जिससे भीतर के मन आदि पदार्थ साक्षात् हों।

[आत्मा शरीर से पृथक् है]

देखो, अपने चेतनस्वरूप हैं; इसी से ज्ञानस्वरूप और मन के साक्षी हैं; क्योंकि जब मन शान्त, चञ्चल, आनन्दित वा विषादयुक्त होता है, उसको यथावत् देखते हैं। वैसे ही इन्द्रियों, प्राणों आदि का ज्ञाता, पूर्वदृष्ट के स्मरणकर्त्ता और एक काल में अनेक पदार्थों के वेत्ता, धारण-आकर्षण- कर्त्ता और सबसे पृथक् हैं। जो पृथक् न होते तो स्वतन्त्र कर्त्ता, इनके प्रेरक, अधिष्ठाता कभी नहीं हो सकते।

[पाँच प्रकार के क्लेश]

अविद्याऽस्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः पञ्च क्लेशाः।

योगशास्त्रे पाद २। सू॰ ३॥

इनमें से **'अविद्या'** का स्वरूप कह आये। पृथक् वर्त्तमान बुद्धि को आत्मा से भिन्न न समझना **'अस्मिता'**, सुख में प्रीति **'राग'**, दुःख में अप्रीति **'द्वेष'**, और सब प्राणिमात्र को यह इच्छा सदा रहती है [कि] 'मैं सदा शरीरस्थ रहूं, मरूं नहीं', इस मृत्यु-दुःख से त्रास **'अभिनिवेश'** कहाता है। **इन पांच क्लेशों को योगाभ्यास और विज्ञान से छुड़ाके, ब्रह्म को प्राप्त होके, मुक्ति के परमानन्द को भोगना चाहिये।**

[तथाकथित मुक्तियों की आलोचना]

प्रश्न—जैसी मुक्ति आप मानते हैं, वैसी अन्य कोई नहीं मानता। देखो, जैनी लोग मोक्षशिला और शिवपुर में जाके चुप-चाप बैठे रहना; ईसाई चौथे आसमान, जिसमें विवाह, लड़ाई [होना], बाजे-गाजे, वस्त्रादि-धारण से आनन्द भोगना; वैसे ही मुसलमान सातवें आसमान;

वाममार्गी श्रीपुर; शैव कैलाश; वैष्णव वैकुण्ठ और गोकुलिये गोसांई गोलोक आदि में जाकर उत्तम स्त्री, अन्न, पान, वस्त्र, स्थान आदि को प्राप्त होकर आनन्द में रहने को मुक्ति मानते हैं। पौराणिक लोग **सालोक्य**=ईश्वर के लोक में निवास, **सानुज्य**=छोटे भाई के सदृश ईश्वर के साथ रहना, [वा] **सारूप्य**=जैसी उपासनीय देव की आकृति है, वैसा बन जाना, **सामीप्य**=सेवक के समान ईश्वर के समीप रहना, **सायुज्य**= ईश्वर से संयुक्त हो जाना; ये चार प्रकार की मुक्ति मानते हैं। वेदान्ती लोग ब्रह्म में लय होने को मोक्ष समझते हैं।

उत्तर—जैनियों की बारहवें, ईसाइयों की तेरहवें और चौदहवें समुल्लास में मुसलमानों की मुक्ति आदि का विषय विशेषकर लिखेंगे। जो वाममार्गी श्रीपुर में जाकर लक्ष्मी के सदृश स्त्रियाँ, [प्राप्त होना] मद्य-मांसादि खाना-पीना, रंग-राग भोग करना मानते हैं, वह यहाँ से कुछ विशेष नहीं। वैसे ही महादेव और विष्णु के सदृश आकृतिवाले [तथा] पार्वती और लक्ष्मी के सदृश स्त्रीयुक्त होकर आनन्द भोगना [आदि को मुक्ति मानते हैं। वे] यहां के धनाढ्य राजाओं से अधिक इतना ही लिखते हैं कि 'वहां रोग न होंगे और युवावस्था रहेगी'। यह उनकी बात मिथ्या है; क्योंकि जहां भोग वहां रोग, जहां रोग वहाँ वृद्धावस्था अवश्य होती है।

और पौराणिकों से पूछना चाहिये कि जैसी तुम्हारी चार प्रकार की मुक्ति है, वैसी तो कृमि-कीट-पतङ्ग-पश्वादिकों को भी स्वतःसिद्ध [और] प्राप्त है; क्योंकि ये जितने लोक हैं वे सब ईश्वर के हैं, इन्हीं में सब जीव रहते हैं,

इसलिये **‘सालोक्य’** मुक्ति अनायास प्राप्त है। **‘सामीप्य’**— ईश्वर सर्वत्र व्याप्त होने से सब उसके समीप हैं, इसलिये ‘सामीप्य’ मुक्ति स्वतःसिद्ध है। **‘सानुज्य’**—जीव ईश्वर से सब प्रकार छोटा और चेतन होने से स्वतः बन्धुवत् है, इससे ‘सानुज्य’ मुक्ति भी विना प्रयत्न के सिद्ध है। और सब जीव सर्वव्यापक परमात्मा में व्याप्य होने से संयुक्त हैं, इससे **‘सायुज्य’** मुक्ति भी स्वतःसिद्ध है।

और जो अन्य साधारण 'नास्तिक लोग' मरने पर तत्त्वों में तत्त्व मिलने को मुक्ति मानते हैं, वह तो कुत्ते, गधे आदि को भी प्राप्त है।

ये मुक्तियां नहीं हैं किन्तु एक प्रकार का बन्धन हैं; क्योंकि ये लोग शिवपुर, मोक्षशिला, चौथे आसमान, सातवें आसमान, श्रीपुर, कैलाश, वैकुण्ठ, गोलोक को एकदेश में स्थान-विशेष मानते हैं। जो वे उन स्थानों से पृथक् हों, तो मुक्ति छूट जाय। इसीलिये जैसे **'बारह पत्थर के भीतर दृष्टिबन्ध'** होते हैं, उसके समान बन्धन में होंगे। **मुक्ति तो यही है कि जहां इच्छा हो वहां विचरे, कहीं अटके नहीं, न भय, न शङ्का, न दुःख होता है।** जो जन्म है वह 'उत्पत्ति' और मरना 'प्रलय' कहा है। समय पर [पुनः] जन्म लेते हैं।

[पूर्व जन्मों का स्मरण क्यों नहीं होता]

प्रश्न—जन्म एक है वा अनेक?

उत्तर—अनेक।

प्रश्न—जो अनेक हों, तो पूर्व जन्म और मृत्यु की बातों का स्मरण क्यों नहीं?

उत्तर—जीव अल्पज्ञ है, त्रिकालदर्शी नहीं, इसलिये स्मरण नहीं रहता। और जिस मन से ज्ञान करता है, वह भी एक समय में दो ज्ञान नहीं कर सकता। भला, पूर्व जन्म की बात तो दूर रहने दीजिये, इसी देह में जब गर्भ में जीव था, शरीर बना, पश्चात् जन्मा, पाँचवें वर्ष से पूर्व तक जो-जो बातें हुई हैं, उनका स्मरण क्यों नहीं कर सकता? और जाग्रत वा स्वप्न में बहुत-सा व्यवहार प्रत्यक्ष करके जब सुषुप्ति अर्थात् गाढ़ निद्रा होती है, तब जाग्रतादि के व्यवहार का स्मरण क्यों नहीं कर सकता? और तुमसे कोई पूछे कि बारह वर्ष के पूर्व तेरहवें वर्ष के पाँचवें महीने के नवमे दिन दस बजे पर पहली मिनट में तुमने क्या किया था? तुम्हारा मुख, हाथ, कान, शरीर किस ओर, किस प्रकार का था? और मन में क्या विचार था? जब इसी शरीर में ऐसा है, तो पूर्व-जन्म की बातों के स्मरण में शङ्का करना केवल लड़केपन की बात है।

और जो स्मरण नहीं होता है, इसी से जीव सुखी है; नहीं तो सब जन्मों के दुःखों को देख-देखकर दुखित होकर मर जाता। जो कोई पूर्व और पीछे जन्म के वर्तमान को जानना चाहे, तो भी नहीं जान सकता; क्योंकि जीव का ज्ञान और स्वरूप अल्प है। **यह बात ईश्वर के जानने योग्य है, जीव के नहीं।**

[पूर्वजन्म के विस्मृत कर्मों का फल देना निरर्थक नहीं]

प्रश्न—जब जीव को पूर्व [किये पापों] का ज्ञान नहीं और ईश्वर उनको दण्ड देता है, तो जीवों का सुधार नहीं हो सकता; क्योंकि यदि उनके पापकर्मों को जानकर दण्ड देवे [अर्थात्] उनको ज्ञान हो कि हमने अमुक काम किया था, उसी का यह फल है, तभी वे जीव उन बुरे कर्मों से बच सकें।

उत्तर—तुम ज्ञान कै प्रकार का मानते हो?

प्रश्न—प्रत्यक्षादि प्रमाणों से आठ प्रकार का।

उत्तर—तो तुम जन्म से लेकर समय-समय में [प्राप्त] राज्य, धन, बुद्धि, विद्या, [तथा] दारिद्र्य, निर्बुद्धिता, मूर्खता आदि सुख-दुःख संसार में देखकर पूर्व-जन्म का ज्ञान क्यों नहीं करते? जैसे एक अवैद्य और एक वैद्य को कोई रोग हो, उसका निदान अर्थात् कारण वैद्य जान लेता [है] और अवैद्य नहीं जान सकता। उसने **'वैद्यकविद्या'** पढ़ी है और दूसरे ने नहीं। परन्तु ज्वरादि रोग के होने से अवैद्य भी इतना जान सकता है कि मुझसे कोई कुपथ्य हो गया है, जिससे मुझे यह रोग हुआ है। वैसे ही जगत् में सुख-दुःख आदि की विचित्र घटती-बढ़ती देखके पूर्वजन्म को अनुमान से क्यों नहीं जान लेते? और जो पूर्वजन्म को न मानोगे, तो परमेश्वर पक्षपाती हो जाता है; क्योंकि विना पाप के दारिद्र्यादि दुःख और विना पूर्वसञ्चित पुण्य के राज्य, धनाढ्यता और बुद्धि उसको क्यों

दी? और पूर्वजन्म के पाप-पुण्य के अनुसार दुःख-सुख के देने से परमेश्वर न्यायकारी यथावत् रहता है।

प्रश्न—एक जन्म होने से भी परमेश्वर न्यायकारी हो सकता है। जैसे, सर्वोपरि राजा जो करे सो न्याय। जैसे, माली अपने उपवन में छोटे और बड़े वृक्ष लगाता, किसी को काटता, उखाड़ता और किसी की रक्षा करता, बढ़ाता है। जिसका जो वस्तु है, उसको वह चाहे जैसे रक्खे। उसके ऊपर कोई भी दूसरा न्याय करनेवाला नहीं, जो उसको दण्ड दे सके, वा ईश्वर, [जो] किसी से डरे।

उत्तर—परमात्मा जिसलिये न्याय चाहता [है, अतः] करता है; अन्याय कभी नहीं करता। इसीलिये वह पूजनीय और बड़ा है। जो न्यायविरुद्ध करे, वह ईश्वर ही नहीं। जैसे माली युक्ति के विना, सड़क में अथवा अस्थान में वृक्ष लगाने, न काटने योग्य को काटने, अयोग्य को बढ़ाने, योग्य को न बढ़ाने से दूषित होता है, इसी प्रकार विना कारण के [अन्याय] करने से ईश्वर को दोष लगे। परमेश्वर के लिये न्याययुक्त काम करना आवश्यक है, क्योंकि वह स्वभाव से पवित्र और न्यायकारी है। जो उन्मत्त के समान काम करे तो जगत् के अश्रेष्ठ न्यायाधीश से भी न्यून और अप्रतिष्ठित होवे। क्या इस जगत् में विना योग्यता के और विना उत्तम काम किये प्रतिष्ठा और दुष्ट काम किये विना दण्ड देनेवाला निन्दनीय [और] अप्रतिष्ठित नहीं होता? इसीलिये ईश्वर अन्याय नहीं करता, इसी से किसी से नहीं डरता।

[कर्मानुसार ही भोगादि]

प्रश्न—परमात्मा ने प्रथम से ही जिसके लिये जितना देना विचारा है, उतना देता और जितना कम करना है, उतना कम करता है।

उत्तर—उसका विचार जीवों के कर्मानुसार होता है, अन्यथा नहीं। जो अन्यथा हो, तो वही अपराधी और अन्यायकारी होवे।

प्रश्न—बड़ों और छोटों को एक-सा ही सुख-दुःख है। बड़ों को बड़ी चिन्ता और छोटों को छोटी। जैसे, किसी साहूकार का विवाद राजघर में लाख रुपयों का हो, तो वह अपने घर से पालकी में बैठकर कचहरी में उष्णकाल में जाता हो। बाजार में होके उसको जाता देखकर अज्ञानी लोग कहते हैं कि—'देखो, पूर्वजन्म के पुण्य और पाप का प्रत्यक्ष फल यही है कि एक पालकी में आनन्दपूर्वक बैठा है और दूसरे विना जूते पहरे ऊपर-नीचे से तप्यमान होते हुए पालकी को उठाकर ले जाते हैं।' परन्तु बुद्धिमान् लोग इसमें यह जानते हैं कि जैसे-जैसे कचहरी निकट आती जाती है, वैसे-वैसे साहूकार को बड़ा शोक और सन्देह बढ़ता जाता और कहारों को आनन्द होता है। जब कचहरी में पहुंचते हैं तब सेठ जी इधर-उधर जाने का विचार करते हैं कि प्राड्विवाक् (=वकील) के पास जाऊं वा सरिश्तःदार के पास? आज हारूंगा वा जीतूंगा, न जाने क्या होगा? और कहार लोग तमाखू पीते, और प्रसन्न होकर आनन्द में सोते हैं। जो वह जीत जाये तो कुछ सुख और जो हार जाये तो सेठ जी दुःखसागर में डूब जायें और वे कहार जैसे के तैसे रहते हैं।

इसी प्रकार जब राजा सुन्दर कोमल बिछौने पर सोता है तो भी शीघ्र निद्रा नहीं आती और मजूर कंकर, पत्थर, मिट्टी, और ऊंचे-नीचे स्थल पर सोता है, उसको झट निद्रा आती है। वैसे सर्वत्र समझ लो।

उत्तर—यह समझ अज्ञानियों की है। क्या किसी साहूकार से कहें कि 'तू कहार बन जा' और कहार से कहें कि 'तू साहूकार बन जा', तो साहूकार कभी कहार बनना नहीं [चाहता] और कहार साहूकार बनना चाहता है। जो सुख-दुःख बराबर होता तो अपनी-अपनी अवस्था छोड़ नीच और ऊँच बनना दोनों न चाहते?

देखो, एक जीव विद्वान्, पुण्यात्मा, श्रीमान् राजा की राणी के गर्भ में आता है और दूसरा महादरिद्र घसियारी के गर्भ में आता है। एक को गर्भ से लेकर सर्वथा सुख और दूसरे को सब प्रकार दुःख मिलता है। पहला जब जन्मता है, युक्ति से नाड़ी-छेदन, सुन्दर-सुगन्धियुक्त जलादि से स्नान, दुग्धपानादि यथायोग्य प्राप्त होते हैं। जब वह दूध पीना चाहता है तो उसके साथ मिश्री आदि मिलाकर यथेष्ट मिलता है। उसको प्रसन्न रखने के लिये नौकर-चाकर, खिलौने, सवारी [होते हैं] उत्तम स्थानों में लाड़ से आनन्द होता है। दूसरे का जन्म जंगल में होता, स्नान के लिये जल भी नहीं मिलता। जब दूध पीना चाहता, तब दूध के बदले में घुरकाया और घूंसा-थपेड़ा आदि से पीटा जाता है। अत्यन्त आर्तस्वर से रोता है, कोई नहीं पूछता; इत्यादि। जीवों को विना पुण्य-पाप के सुख-दुःख होने से परमेश्वर पर दोष आता है।

दूसरा, जैसे विना किये कर्मों के सुख-दुःख मिलते हैं, तो आगे स्वर्ग-नरक भी न होना चाहिये; क्योंकि जैसे परमेश्वर ने इस समय विना कर्मों के सुख-दुःख दिया है, वैसे मरे पीछे भी जिसको चाहेगा उसको स्वर्ग में और जिसको चाहेगा नरक में भेज देगा। पुनः सब जीव अधर्मयुक्त हो जायेंगे। धर्म क्यों करें? क्योंकि धर्म का फल मिलने में सन्देह है, [वह] परमेश्वर के हाथ में है। जैसी उसकी प्रसन्नता होगी वैसा करेगा, तो [जीवों को] पाप-कर्मों में भय न होकर संसार में पाप की वृद्धि और धर्म का क्षय हो जायगा। **इसलिये पूर्वजन्म के पुण्य-पाप के अनुसार वर्तमान जन्म, और वर्तमान तथा पूर्वजन्म के कर्मानुसार भविष्यत् के जन्म होते हैं।**

[प्राणिमात्र में जीव की समानता]

प्रश्न—मनुष्यों और अन्य पश्वादि के शरीरों में जीव एक-से हैं, वा भिन्न-भिन्न जाति के?

उत्तर—जीव एक-से हैं; परन्तु पाप-पुण्य के योग से मलिन और पवित्र होते हैं।

[पाप-पुण्य के कारण विभिन्न योनियों की प्राप्ति]

प्रश्न—मनुष्य का जीव पश्वादि में और पश्वादि का जीव मनुष्य के शरीर में और स्त्री का पुरुष के, पुरुष का स्त्री के शरीर में जाता-आता है, वा नहीं?

उत्तर—हाँ! जाता-आता है।

प्रश्न—किस प्रकार जाता-आता है?

उत्तर—जब पाप बढ़ जाता, पुण्य न्यून होता है तब मनुष्य के जीव को पश्वादि नीच शरीर, और जब धर्म अधिक तथा अधर्म न्यून होता है तब 'देव' अर्थात् विद्वान् का शरीर मिलता है। और जब पुण्य-पाप बराबर होता है, तब साधारण मनुष्य-जन्म होता है। इसमें भी पुण्य-पाप के उत्तम, मध्यम और निकृष्ट होने से मनुष्यादि में भी उत्तम, मध्यम, निकृष्ट शरीरादि सामग्रीवाले होते हैं। और जब अधिक पाप का फल पश्वादि शरीरों में भोग लेता है, पुनः पुण्य-पाप के तुल्य रहने से मनुष्य शरीर में आता; और [अधिक] पुण्य के फल भोगकर फिर भी मध्यस्थ मनुष्य के शरीर में आता है।

जब शरीर से [जीव] निकलता है उसी का नाम 'मृत्यु' और शरीर के साथ संयोग होने का नाम 'जन्म' है। जब शरीर छोड़ता तब **'यमालय'** अर्थात् आकाशस्थ वायु में रहता है। क्योंकि **"यमेन=वायुना"** [ऋग्० महर्षिकृत वेदभाष्य ७। ३३। १२] वेद में लिखा है कि 'यम' नाम वायु का है, **'गरुडपुराण'** का कल्पित यम नहीं। **इसका विशेष खण्डन-मण्डन ग्यारहवें समुल्लास में लिखेंगे।**

पश्चात् **'धर्मराज'** अर्थात् परमेश्वर उस जीव के पाप-पुण्यानुसार जन्म देता है। **वह वायु, अन्न, जल अथवा शरीर के छिद्र द्वारा दूसरे के शरीर में ईश्वर की प्रेरणा से प्रविष्ट होता है। जो प्रविष्ट होकर क्रमशः**

वीर्य में जा, गर्भ में स्थित हो, शरीर धारण कर, बाहर आता है। जो स्त्री का शरीर धारण करने योग्य कर्म हों तो स्त्री, और पुरुष का शरीर धारण करने योग्य कर्म हों, तो पुरुष के शरीर में प्रवेश करता है। और नपुंसक-गर्भ की स्थिति, स्त्री-पुरुष का शरीर-सम्बन्ध होने पर रज-वीर्य के बराबर होने से होती है। इसी प्रकार नाना प्रकार के जन्म-मरण में तब तक जीव पड़ा रहता है कि जब तक उत्तम कर्म-उपासना-ज्ञान को करके मुक्ति को नहीं पाता। **क्योंकि उत्तम कर्मादि करने से मनुष्यों में उत्तम जन्म और मुक्ति में महाकल्प पर्यन्त जन्म-मरण-दुःखों से रहित होकर आनन्द में रहता है।**

[मुक्ति अनेक जन्मों के प्रयत्न से]

प्रश्न—मुक्ति एक जन्म में होती है, वा अनेक जन्मों में?

उत्तर—अनेक जन्मों में। क्योंकि—

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे पराऽवरे॥१॥

मुण्डक० [उप०, २। खं० २। मं० ८]॥

जब इस जीव के हृदय की अविद्या= अज्ञानरूपी गांठ कट जाती [है], सब संशय छिन्न होते और दुष्ट कर्म क्षय को प्राप्त होते हैं, तभी उस परमात्मा में, जो कि अपने आत्मा के भीतर और बाहर व्याप रहा है, निवास करता है।

[मुक्ति में जीव का ब्रह्म में लय नहीं होता]

प्रश्न—मुक्ति में परमेश्वर में जीव मिल जाता है, वा पृथक् रहता है?

उत्तर—पृथक् रहता है; क्योंकि जो मिल जाय तो मुक्ति का सुख कौन भोगे? और मुक्ति के जितने साधन हैं, वे सब निष्फल हो जावें। वह मुक्ति तो नहीं, किन्तु जीव का प्रलय जानना चाहिये। **जो जीव, परमेश्वर की आज्ञा का पालन, उत्तम कर्म, सत्सङ्ग, योगाभ्यास, पूर्वोक्त सब साधन करता है, वही मुक्ति को पाता है।**

सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन्।
सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चितेति॥

तैत्तिरीय [उप॰, ब्रह्म॰ वल्ली। अनु॰ १]॥

जो जीवात्मा अपनी बुद्धि और आत्मा में स्थित सत्य, ज्ञान और अनन्त आनन्द-स्वरूप परमात्मा को जानता है, वह उस व्यापकरूप ब्रह्म में स्थित होके, उस **'विपश्चित्'**=अनन्तविद्यायुक्त ब्रह्म के साथ सब कामनाओं को प्राप्त होता है अर्थात् जिस-जिस आनन्द की कामना करता है, उस-उस आनन्द को प्राप्त होता है। यही **'मुक्ति'** कहाती है।

[विना शरीर के स्वशक्ति से आनन्द का भोग]

प्रश्न—जैसे शरीर के विना सांसारिक सुख नहीं भोग सकता, वैसे मुक्ति में विना शरीर [के] आनन्द कैसे भोग सकेगा?

उत्तर—इसका समाधान पूर्व कह आये हैं और इतना अधिक सुनो—**जैसे सांसारिक सुख शरीर के आधार से भोगता है, वैसे परमेश्वर के आधार [से] मुक्ति के आनन्द को जीवात्मा भोगता है।** वह मुक्त जीव अनन्त, व्यापक ब्रह्म में स्वच्छन्द घूमता, शुद्ध ज्ञान से सब सृष्टि को देखता, अन्य मुक्तों के साथ मिलता, **'सृष्टिविद्या'** को क्रम से देखता हुआ सब लोक-लोकान्तरों में अर्थात् जितने ये लोक दीखते हैं और नहीं दीखते, उन सबमें घूमता है। वह उन पदार्थों को, जो कि उसके ज्ञान के सामने हैं, सबको देखता है। **जितना ज्ञान अधिक होता है, उसको उतना ही आनन्द अधिक होता है।**

[स्वर्ग-नरक की व्याख्या]

मुक्ति में जीवात्मा निर्मल होने से पूर्ण ज्ञानी होकर, उसको सब सन्निहित पदार्थों का भान यथावत् होता है। यही **सुखविशेष 'स्वर्ग', और विषय-तृष्णा में फस कर दुःखविशेष भोग करना 'नरक' कहाता है। 'स्वः' सुख का नाम है। 'स्वः सुखं गच्छति यस्मिन् स स्वर्गः, अतो विपरीतो दुःखभोगो नरक इति'। जो सांसारिक सुख है, वह 'सामान्य स्वर्ग' और जो परमेश्वर की प्राप्ति से आनन्द है वही 'विशेष स्वर्ग' कहाता है।**

सब जीव स्वभाव से सुखप्राप्ति की इच्छा [करते हैं] और दुःख का वियोग होना चाहते हैं; परन्तु जब-तक धर्म नहीं करते और पाप नहीं छोड़ते, तब-तक उनको सुख का मिलना और दुःख का छूटना न

होगा; क्योंकि जिसका 'कारण' अर्थात् मूल होता है, वह नष्ट कभी नहीं होता। जैसे—

'छिन्ने मूले वृक्षो नश्यति तथा पापे क्षीणे दुःखं नश्यति'=जैसे मूल कट जाने से वृक्ष नष्ट होता है, वैसे पाप को छोड़ने से दुःख नष्ट होता है।

[पाप-पुण्य की गति; सत्वादि के लक्षण वा प्रतीति]

देखो, **'मनुस्मृति'** में पाप और पुण्य की बहुत प्रकार की गतियां—

मानसं मनसैवायमुपभुङ्क्ते शुभाऽशुभम्।
वाचा वाचा कृतं कर्म कायेनैव च कायिकम्॥१॥
शरीरजैः कर्मदोषैर्याति स्थावरतां नरः।
वाचिकैः पक्षिमृगतां मानसैरन्त्यजातिताम्॥२॥
यो यदैषां गुणो देहे साकल्येनातिरिच्यते।
स तदा तद्गुणप्रायं तं करोति शरीरिणम्॥३॥
सत्त्वं ज्ञानं तमोऽज्ञानं रागद्वेषौ रजः स्मृतम्।
एतद्व्याप्तिमदेतेषां सर्वभूताश्रितं वपुः॥४॥
तत्र यत्प्रीतिसंयुक्तं किञ्चिदात्मनि लक्षयेत्।
प्रशान्तमिव शुद्धाभं सत्त्वं तदुपधारयेत्॥५॥
यत्तु दुःखसमायुक्तमप्रीतिकरमात्मनः।
तद्रजोऽप्रतिपं विद्यात् सततं हारि देहिनाम्॥६॥
यत्तु स्यान्मोहसंयुक्तमव्यक्तं विषयात्मकम्।
अप्रतर्क्यमविज्ञेयं तमस्तदुपधारयेत्॥७॥

त्रयाणामपि चैतेषां गुणानां यः फलोदयः।
अग्र्यो मध्यो जघन्यश्च तं प्रवक्ष्याम्यशेषतः॥८॥
वेदाभ्यासस्तपो ज्ञानं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धर्मक्रियात्मचिन्ता च सात्त्विकं गुणलक्षणम्॥९॥
आरम्भरुचिताऽधैर्यमसत्कार्यपरिग्रहः।
विषयोपसेवा चाजस्रं राजसं गुणलक्षणम्॥१०॥
लोभः स्वप्नोऽधृतिः क्रौर्यं नास्तिक्यं भिन्नवृत्तिता।
याचिष्णुता प्रमादश्च तामसं गुणलक्षणम्॥११॥
यत्कर्म कृत्वा कुर्वंश्च करिष्यंश्चैव लज्जति।
तज्ज्ञेयं विदुषा सर्वं तामसं गुणलक्षणम्॥१२॥
येनास्मिन्कर्मणा लोके ख्यातिमिच्छति पुष्कलाम्।
न च शोचत्यसम्पत्तौ तद्विज्ञेयं तु राजसम्॥१३॥
यत्सर्वेणेच्छति ज्ञातुं यन्न लज्जति चाचरन्।
येन तुष्यति चात्मास्य तत्सत्त्वगुणलक्षणम्॥१४॥
तमसो लक्षणं कामो रजसस्त्वर्थ उच्यते।
सत्त्वस्य लक्षणं धर्मः श्रैष्ठ्यमेषां यथोत्तरम्॥१५॥

मनु०, अ० १२ [श्लो० ८-९, २५-३३, ३५-३८]॥

मनुष्य इस प्रकार अपने श्रेष्ठ, मध्य और निकृष्ट स्वभाव को जानकर उत्तम स्वभाव का ग्रहण; मध्य और निकृष्ट का त्याग करे।

और यह भी निश्चय जाने कि यह जीव जिस शुभ वा अशुभ कर्म को करता है उसके सुख-दुःख को, मन से किये को मन से, वाणी से किये को वाणी से और शरीर से किये को शरीर से भोगता है॥१॥

जो नर शरीर से चोरी, परस्त्रीगमन, श्रेष्ठों को मारना आदि दुष्ट कर्म करता है, उसको वृक्षादि स्थावर का जन्म, वाणी से किये पाप-कर्मों से पक्षी और मृगादि, तथा मन से किये दुष्ट कर्मों से चाण्डाल आदि का शरीर मिलता है॥२॥

जो गुण इन जीवों के देह में अधिकता से वर्त्तता है, वह गुण उस जीव को अपने सदृश कर देता है॥३॥

जब आत्मा में ज्ञान हो तब 'सत्त्व', जब अज्ञान रहे तब 'तम', और जब राग-द्वेष में आत्मा लगे तब 'रजोगुण' जानना चाहिये। ये तीन प्रकृति के गुण सब संसारस्थ पदार्थों में व्याप्त होकर रहते हैं॥४॥

उसका विवेक इस प्रकार करना चाहिये कि जब आत्मा में प्रसन्नता, मन प्रसन्न, प्रशान्त के सदृश शुद्धभानयुक्त वर्त्ते, तब समझना कि सत्त्वगुण प्रधान और रजोगुण तथा तमोगुण अप्रधान हैं॥५॥

जब आत्मा और मन दुःखसंयुक्त, प्रसन्नतारहित, विषय में इधर-उधर गमन-आगमन में लगें, तब समझना कि रजोगुण प्रधान, सत्त्वगुण और तमोगुण अप्रधान हैं॥६॥

जब 'मोह' अर्थात् सांसारिक पदार्थों में फसा हुआ आत्मा और मन हो, जब आत्मा और मन में कुछ विवेक न रहै, विषयों में आसक्त, तर्क-वितर्क-रहित, जानने के योग्य न हो, तब निश्चय समझना चाहिये कि इस समय मुझमें तमोगुण प्रधान और सत्त्वगुण तथा रजोगुण अप्रधान हैं॥७॥

अब जो इन तीनों गुणों का उत्तम, मध्यम और निकृष्ट फलोदय होता है, उसको पूर्णभाव से कहते हैं॥८॥

जब सत्त्वगुण का उदय होता है, तब वेदों का अभ्यास, धर्मानुष्ठान, ज्ञान की वृद्धि, पवित्रता की इच्छा, इन्द्रियों का निग्रह, धर्म-क्रिया और आत्मा का चिन्तन होता है, यही सत्त्वगुण का लक्षण है॥९॥

जब रजोगुण का उदय, सत्त्व और तमोगुण का अन्तर्भाव होता है, तभी आरम्भ में रुचिता, धैर्यत्याग, असत् कर्मों का ग्रहण, निरन्तर विषयों की सेवा में प्रीति होती है, तभी समझना कि रजोगुण प्रधानता से मुझमें वर्त रहा है॥१०॥

जब तमोगुण का उदय और [सत्त्व-रज] दोनों का अस्तभाव होता है, तब अत्यन्त लोभ अर्थात् सब पापों का मूल बढ़ता [है], अत्यन्त आलस्य और निद्रा, धैर्य का नाश, क्रूरता का होना, **नास्तिक्य अर्थात् वेद और ईश्वर में श्रद्धा का न रहना,** अन्तःकरण की भिन्न-भिन्न वृत्तियां होना, और एकाग्रता का अभाव [होना], जिस किसी से याचना अर्थात् मांगना, प्रमाद अर्थात् मद्यपानादि दुष्ट व्यसनों में फसना होवे, तब समझना कि तमोगुण मुझमें बढ़कर वर्तता है॥११॥

यह सब तमोगुण का लक्षण विद्वान् को जानने योग्य है कि जब अपना आत्मा जिस कर्म को करके, करता हुआ और करने की इच्छा से लज्जा, शङ्का और भय को प्राप्त होवे, तब जानो कि मुझमें प्रवृद्ध तमोगुण है॥१२॥

जिस कर्म से इस लोक में जीवात्मा पुष्कल प्रसिद्धि चाहता, दरिद्रता होने पर भी चारण, भाट आदि को दान देना नहीं छोड़ता, तब समझना कि मुझमें रजोगुण प्रबल है॥१३॥

और जब मनुष्य का आत्मा सबसे जानने को चाहे, गुण ग्रहण करता जाय, अच्छे कर्मों में लज्जा न करे और जिस कर्म से आत्मा प्रसन्न होवे अर्थात् धर्माचरण में ही रुचि रहै, तब समझना कि मुझमें सत्त्वगुण प्रबल है॥१४॥

तमोगुण का लक्षण काम, रजोगुण का अर्थ-संग्रह की इच्छा और सत्त्वगुण का लक्षण धर्म-सेवन करना है, परन्तु तमोगुण से रजोगुण और रजोगुण से सत्त्वगुण श्रेष्ठ है॥१५॥

[किस-किस गुण से कौन-कौन योनि प्राप्ति होती है]

अब जिस-जिस गुण से जिस-जिस गति को जीव प्राप्त होता है, सो-सो आगे लिखते हैं—

देवत्वं सात्त्विका यान्ति मनुष्यत्वं च राजसाः।
तिर्यक्त्वं तामसा नित्यमित्येषा त्रिविधा गतिः॥१॥
स्थावरा कृमिकीटाश्च मत्स्याः सर्पाश्च कच्छपाः।
पशवश्च मृगाश्चैव जघन्या तामसी गतिः॥२॥
हस्तिनश्च तुरङ्गश्च शूद्रा म्लेच्छाश्च गर्हिताः।
सिंहा व्याघ्रा वराहाश्च मध्यमा तामसी गतिः॥३॥
चारणाश्च सुपर्णाश्च पुरुषाश्चैव दाम्भिकाः।
रक्षांसि च पिशाचाश्च तामसीषूत्तमा गतिः॥४॥
झल्ला मल्ला नटाश्चैव पुरुषाः शस्त्रवृत्तयः।
द्यूतपानप्रसक्ताश्च जघन्या राजसी गतिः॥५॥
राजानः क्षत्रियाश्चैव राज्ञां चैव पुरोहिताः।
वादयुद्धप्रधानाश्च मध्यमा राजसी गतिः॥६॥
गन्धर्वा गुह्यका यक्षा विबुधानुचराश्च ये।
तथैवाप्सरसः सर्वाः, राजसीषूत्तमा गतिः॥७॥
तापसा यतयो विप्रा ये च वैमानिका गणाः।

नक्षत्राणि च दैत्याश्च प्रथमा सात्त्विकी गतिः॥८॥
यज्वान ऋषयो देवा वेदा ज्योतींषि वत्सराः।
पितरश्चैव साध्याश्च द्वितीया सात्त्विकी गतिः॥९॥
ब्रह्मा विश्वसृजो धर्मो महानव्यक्तमेव च।
उत्तमां सात्त्विकीमेतां गतिमाहुर्मनीषिणः॥१०॥
इन्द्रियाणां प्रसङ्गेन धर्मस्यासेवनेन च।
पापान्संयान्ति संसारानविद्वांसो नराधमाः॥११॥

[मनु०, अ० १२। श्लोक० ४०, ४२-५०, ५२]

जो मनुष्य सात्त्विक हैं वे देव अर्थात् विद्वान्; जो रजोगुणी होते हैं वे मध्यम मनुष्य; और जो तमोगुणयुक्त होते हैं, वे नीच गति को प्राप्त होते हैं॥१॥

जो अत्यन्त तमोगुणी हैं, वे स्थावर वृक्षादि, कृमि, कीड़े, मत्स्य, सर्प, कच्छप, पशु और मृग [आदि] के जन्म को प्राप्त होते हैं॥२॥

जो मध्यम तमोगुणी हैं, वे हाथी, घोड़ा, शूद्र, म्लेच्छ, निन्दित काम करनेवाले, सिंह, व्याघ्र, वराह अर्थात् सूअर के जन्म को प्राप्त होते हैं॥३॥

जो उत्तम तमोगुणी हैं, वे चारण=जो कि कवित्त, दोहा आदि बनाकर मनुष्यों की प्रशंसा करते हैं, सुन्दर पक्षी और दांभिक पुरुष अर्थात् अपने

मुख से अपनी प्रशंसा करनेहारे, राक्षस=जो हिंसक, पिशाच और अनाचारी अर्थात् मद्यादि के आहारकर्त्ता और मलिन रहते हैं, वह उत्तम तमोगुण के कर्म का फल है॥४॥

जो अत्यन्त रजोगुणी हैं, वे 'झल्ला' अर्थात् कुद्दाले आदि से तालाब आदि खोदनेहारे, मल्ला अर्थात् नौका आदि के चलानेवाले, नट जो बांस आदि पर कला=कूदना-चढ़ना-उतरना आदि करते हैं, शस्त्रधारी भृत्य, जो द्यूत और मद्यपान में आसक्त हों, ऐसे जन्म नीच रजोगुण के फल हैं॥५॥

जो मध्यम रजोगुणी होते हैं, वे राजा, क्षत्रियवर्णस्थ राजाओं के पुरोहित, वादविवाद करनेवाले, दूत, प्राड्विवाक (वकील, बैरिष्टर), युद्ध-विभाग के अध्यक्ष के जन्म पाते हैं॥६॥

जो उत्तम रजोगुणी हैं, वे **(गन्धर्व)** गानेवाले, **(गुह्यक)** वादित्र बजानेहारे, **(यक्ष)** धनाढ्य, विद्वानों के सेवक और अप्सरा अर्थात् उत्तम रूपवाली स्त्री का जन्म पाते हैं॥७॥

जो तपस्वी, यति=संन्यासी, वेदपाठी, विमान के चलानेवाले, ज्योतिषी और दैत्य अर्थात् देहपोषक मनुष्य होते हैं, उनको प्रथम सत्त्वगुण के कर्म का फल जानो॥८॥

जो मध्यम सत्त्वगुण युक्त होकर कर्म करते हैं, वे जीव यज्ञकर्त्ता, वेदार्थवित्, विद्वान्, वेद, **'विद्युत्'** आदि और **'काल-विद्या'** के ज्ञाता, रक्षक-ज्ञानी और साध्य=कार्यसिद्धि के लिये सेवन करने योग्य अध्यापक का जन्म पाते हैं॥९॥

जो उत्तम सत्त्वगुणयुक्त होके उत्तम कर्म करते हैं, वे ब्रह्मा=सब वेदों का वेत्ता, विश्वसृज=सब **'सृष्टिक्रम-विद्या'** को जानकर विविध विमानादि यानों को बनानेहारे; धार्मिक, सर्वोत्तम बुद्धियुक्त और अव्यक्त के जन्म और प्रकृतिवशित्व सिद्धि को प्राप्त होते हैं॥१०॥

जो इन्द्रियों के वश होकर विषयी, धर्म को छोड़कर अधर्म करनेहारे, अविद्वान् हैं, वे मनुष्यों में 'नीच-जन' बुरे-बुरे दुःखरूप जन्म को पाते हैं॥११॥

इस प्रकार सत्त्व, रज और तमोगुण-युक्त वेग से जिस-जिस प्रकार का कर्म जीव करता है, उस-उसको उसी-उसी प्रकार फल प्राप्त होता है।

[चित्तवृत्ति का निरोध]

जो मुक्त होना चाहते हैं, वे गुणातीत अर्थात् सब गुणों के स्वभावों में न फसकर, महायोगी होके मुक्ति का साधन करें। क्योंकि—

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः॥१॥

योगशास्त्र [समाधिपाद, सू० २]

तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्॥२॥

योगशास्त्र [समाधिपाद, सू० ३]

मनुष्य रजोगुण-तमोगुण-युक्त कर्मों से मन को रोक, शुद्ध-सत्त्वगुणयुक्त हो, पश्चात् उसका [भी] निरोध कर, एकाग्र अर्थात् एक परमात्मा और धर्मयुक्त कर्म इनके अग्रभाग में चित्त को ठहराके रखे। 'निरुद्ध' अर्थात् सब ओर से मन की वृत्ति को रोकना॥१॥

जब चित्त 'एकाग्र' और 'निरुद्ध' होता है तब सबके द्रष्टा ईश्वर के स्वरूप में जीवात्मा की स्थिति होती है॥२॥

इत्यादि साधन मुक्ति के लिये करें। और—

अथ त्रिविधदुःखात्यन्तनिवृत्तिरत्यन्तपुरुषार्थः॥

सांख्यसूत्र [अ० १। सू० १]॥

जो **'आध्यात्मिक'** अर्थात् शरीर-सम्बन्धी पीड़ा, 'जो **आधिभौतिक'** दूसरे प्राणियों से दुःखित होना, **'आधिदैविक'** जो अतिवृष्टि, अतिताप, अतिशीत, मन- इन्द्रियों की चञ्चलता से होता है, इस 'त्रिविध दुःख' को छुड़ाकर मुक्ति पाना 'अत्यन्त पुरुषार्थ' है।

[यह विद्या-अविद्या, बन्ध और मोक्ष के विषय में लिखा, अब] इसके आगे आचार- अनाचार और भक्ष्य-अभक्ष्य का विषय लिखेंगे॥

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिकृते सत्यार्थप्रकाशे सुभाषाविभूषिते विद्याऽविद्याबन्धमोक्षविषये नवमः समुल्लासः सम्पूर्णः॥९॥

अथ दशमसमुल्लासारम्भः

अथाऽऽचाराऽनाचारभक्ष्याऽभक्ष्यविषयान् व्याख्यास्यामः

सम्पूर्ण सत्यार्थप्रकाश

Click now

[आचार-अनाचार का लक्षण]

अब, जो धर्मयुक्त कामों का आचरण, सुशीलता, सत्पुरुषों का सङ्ग और सद्विद्या के ग्रहण में रुचि आदि **'आचार'** और इनसे विपरीत **'अनाचार'** कहाता है, उसको लिखते हैं—

[वेदोक्त धर्म का सेवन]

विद्वद्भिः सेवितः सद्भिर्नित्यमद्वेषरागिभिः।
हृदयेनाभ्यनुज्ञातो यो धर्मस्तन्निबोधत॥१॥
कामात्मता न प्रशस्ता न चैवेहास्त्यकामता।
काम्यो हि वेदाधिगमः कर्मयोगश्च वैदिकः॥२॥
सङ्कल्पमूलः कामो वै यज्ञाः सङ्कल्पसम्भवाः।
व्रतानि यमधर्माश्च सर्वे सङ्कल्पजाः स्मृताः॥३॥
अकामस्य क्रिया काचिद् दृश्यते नेह कर्हिचित्।
यद्यद्धि कुरुते किञ्चित् तत्तत्कामस्य चेष्टितम्॥४॥
वेदोऽखिलो धर्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदाम्।
आचारश्चैव साधूनामात्मनस्तुष्टिरेव च॥५॥
सर्वं तु समवेक्ष्येदं निखिलं ज्ञानचक्षुषा।

श्रुतिप्रामाण्यतो विद्वान् स्वधर्मे निविशेत वै॥६॥
श्रुतिस्मृत्युदितं धर्ममनुतिष्ठन् हि मानवः।
इह कीर्त्तिमवाप्नोति प्रेत्य चानुत्तमं सुखम्॥७॥
[श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः।
ते सर्वार्थेष्वमीमांस्ये ताभ्यां धर्मो हि निर्बभौ॥८॥]
योऽवमन्येत ते मूले हेतुशास्त्राश्रयाद् द्विजः।
स साधुभिर्बहिष्कार्यो नास्तिको वेदनिन्दकः॥९॥
वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम्॥१०॥
अर्थकामेष्वसक्तानां धर्मज्ञानं विधीयते।
धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः॥११॥
वैदिकैः कर्मभिः पुण्यैर्निषेकादिर्द्विजन्मनाम्।
कार्यः शरीरसंस्कारः पावनः प्रेत्य चेह च॥१२॥
केशान्तः षोडशे वर्षे ब्राह्मणस्य विधीयते।
राजन्यबन्धोर्द्वाविंशे वैश्यस्य द्व्यधिके ततः॥१३॥

मनु०, अ० २। [श्लोक० १-४, ६, ८, ९, [१०], ११-१३, २६, ६५]॥

मनुष्यों को सदा इस बात पर ध्यान रखना चाहिये कि जिसका सेवन राग-द्वेष रहित विद्वान् लोग नित्य करें, जिसको हृदय अर्थात् आत्मा से सत्य-कर्त्तव्य जानें, वही धर्म माननीय और करणीय समझें॥१॥

इस संसार में अत्यन्त कामात्मता और निष्कामता श्रेष्ठ नहीं है, क्योंकि वेदार्थ-ज्ञान और वेदोक्त-कर्म, ये सब कामना से ही सिद्ध होते हैं॥२॥

जो कोई कहै कि मैं निरिच्छ और निष्काम हूं, वा हो जाऊं, तो वह कभी नहीं हो सकता; क्योंकि सब काम अर्थात् यज्ञ, सत्यभाषणादि-व्रत, यम-नियमरूपी धर्म आदि संकल्प से ही बनते हैं॥३॥

क्योंकि जो-जो हस्त, पाद, नेत्र, मन आदि चलाये जाते हैं, वे सब कामना से ही चलते हैं। जो इच्छा न हो तो आँख का खोलना और मीचना भी नहीं हो सकता॥४॥

इसलिये सम्पूर्ण वेद, **'मनुस्मृति'** तथा ऋषिप्रणीत शास्त्र, सत्पुरुषों का आचार और जिस-जिस कर्म में अपने आत्मा प्रसन्न रहैं अर्थात् भय, शङ्का, लज्जा जिसमें न हो, उन कर्मों का सेवन करना उचित है। देखो, जब कोई मनुष्य मिथ्याभाषण, चोरी आदि की इच्छा करता है, तभी उसके आत्मा में भय, शङ्का, लज्जा अवश्य उत्पन्न होती है, इसलिये वह कर्म करने योग्य नहीं॥५॥

मनुष्य सम्पूर्ण-शास्त्र=वेद, सत्पुरुषों का आचार, अपने आत्मा के अविरुद्ध अच्छे प्रकार विचारकर, ज्ञाननेत्र से देख करके, श्रुति-प्रमाण से स्वात्मानुकूल धर्म में प्रवेश करे॥६॥

क्योंकि जो मनुष्य वेदोक्त-धर्म और जो वेद से अविरुद्ध स्मृत्युक्त धर्म का अनुष्ठान करता है, वह इस लोक में कीर्ति और मरके सर्वोत्तम सुख को प्राप्त होता है॥७॥

'श्रुति' वेद और **'स्मृति'** धर्मशास्त्र को कहते हैं, इनसे सब कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का निश्चय करना चाहिये॥८॥

जो कोई मनुष्य वेद और वेदानुकूल आप्तग्रन्थों का अपमान करे, उसको श्रेष्ठ लोग जातिबाह्य कर दें; क्योंकि जो वेद की निन्दा करता है, वही **'नास्तिक'** कहाता है॥९॥

इसलिये वेद, स्मृति, सत्पुरुषों का आचार और अपने आत्मा के ज्ञान से अविरुद्ध प्रियाचरण, ये चार धर्म के 'लक्षण' [हैं] अर्थात् इन्हीं से धर्म लक्षित होता है॥१०॥

परन्तु जो द्रव्यों के लोभ और काम अर्थात् विषयसेवा में फसा हुआ नहीं होता, उसी को धर्म का ज्ञान होता है। जो धर्म को जानने की इच्छा करें, उनके लिये वेद ही परम प्रमाण है॥११॥

इसी से सब मनुष्यों को उचित है कि वेदोक्त पुण्यरूप कर्मों से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अपने सन्तानों का निषेकादि संस्कार करें, जो इस जन्म वा परजन्म में पवित्र करनेवाला है॥१२॥

ब्राह्मण वर्ण का सोलहवें, क्षत्रिय का बाईसवें और वैश्य का चौबीसवें वर्ष में केशान्त-कर्म 'क्षौर'=मुण्डन हो जाना चाहिये अर्थात् इस विधि के पश्चात् केवल शिखा को रखके अन्य डाढ़ी, मूंछ और शिर के बाल सदा मुंडवाते रहना चाहिये अर्थात् पुनः कभी न रखना। और जो शीतप्रधान देश हो तो कामचार है, चाहे जितने केश रक्खे। और जो अति उष्ण देश हो तो शिखा-सहित सब छेदन करा देना चाहिये, क्योंकि शिर में बाल रहने से उष्णता अधिक होती है और उससे बुद्धि कम हो जाती है। डाढ़ी-मूंछ रखने से भोजन-पान अच्छे प्रकार नहीं होता और उच्छिष्ट भी बालों में रह जाता है॥१३॥

[मनुष्यों के कुछ विशेष कर्तव्य]

इन्द्रियाणां विचरतां विषयेष्वपहारिषु।
संयमे यत्नमातिष्ठेद्विद्वान् यन्तेव वाजिनाम्॥१॥
इन्द्रियाणां प्रसङ्गेन दोषमृच्छत्यसंशयम्।
सन्नियम्य तु तान्येव ततः सिद्धिं नियच्छति॥२॥
न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्द्धते॥३॥
वेदास्त्यागश्च यज्ञाश्च नियमाश्च तपांसि च।
न विप्रदुष्टभावस्य सिद्धिं गच्छन्ति कर्हिचित्॥४॥
वशे कृत्वेन्द्रियग्रामं संयम्य च मनस्तथा।
सर्वान् संसाधयेदर्थानक्षिण्वन् योगतस्तनुम्॥५॥
श्रुत्वा स्पृष्ट्वा च दृष्ट्वा च भुक्त्वा घ्रात्वा च यो नरः।
न हृष्यति ग्लायति वा स विज्ञेयो जितेन्द्रियः॥६॥

नापृष्टः कस्यचिद् ब्रूयान्न चान्यायेन पृच्छतः।
जानन्नपि हि मेधावी जडवल्लोक आचरेत्॥७॥
वित्तं बन्धुर्वयः कर्म विद्या भवति पञ्चमी।
एतानि मान्यस्थानानि गरीयो यद्यदुत्तरम्॥८॥
अज्ञो भवति वै बालः पिता भवति मन्त्रदः।
अज्ञं हि बालमित्याहुः पितेत्येव तु मन्त्रदम्॥९॥
न हायनैर्न पलितैर्न वित्तेन न बन्धुभिः।
ऋषयश्चक्रिरे धर्मं योऽनूचानः स नो महान्॥१०॥
विप्राणां ज्ञानतो ज्यैष्ठ्यं क्षत्रियाणां तु वीर्यतः।
वैश्यानां धान्यधनतः शूद्राणामेव जन्मतः॥११॥
न तेन वृद्धो भवति येनास्य पलितं शिरः।
यो वै युवाप्यधीयानस्तं देवाः स्थविरं विदुः॥१२॥
यथा काष्ठमयो हस्ती यथा चर्ममयो मृगः।
यश्च विप्रोऽनधीयानस्त्रयस्ते नाम बिभ्रति॥१३॥
अहिंसयैव भूतानां कार्यं श्रेयोऽनुशासनम्।
वाक् चैव मधुरा श्लक्ष्णा प्रयोज्या धर्ममिच्छता॥१४॥

मनु०, अ० २। [श्लो० ८८, ९३, ९४, ९७, १००, ९८। ११०, १३६, १५३-१५७, १५९]॥

मनुष्य का यही मुख्य आचार है कि जो इन्द्रियाँ चित्त का हरण करनेवाले विषयों में प्रवृत्त कराती हैं, उनको रोकने का प्रयत्न करे। जैसे सारथि

घोड़ो को रोककर शुद्ध मार्ग में चलाता है, इस प्रकार इनको अपने वश में करके अधर्ममार्ग से हटाके धर्ममार्ग में सदा चलाया करे॥१॥

क्योंकि इन्द्रियों को विषयासक्ति और अधर्म में चलाने से मनुष्य निश्चित दोष को प्राप्त होता है। और जब इनको जीतकर धर्म में चलाता है तभी अभीष्ट सिद्धि को प्राप्त होता है॥२॥

यह निश्चय है कि जैसे अग्नि में इन्धन और घी डालने से बढ़ता जाता है, वैसे ही कामों के उपभोग से काम शान्त कभी नहीं होता, किन्तु बढ़ता ही जाता है; इसलिये मनुष्य को विषयासक्त कभी न होना चाहिये॥३॥

जो अजितेन्द्रिय पुरुष है उसको **'विप्रदुष्ट'** कहते हैं। उसके करने से न वेदज्ञान, न त्याग, न यज्ञ, न नियम और न धर्माचरण सिद्धि को प्राप्त होते हैं; किन्तु ये सब जितेन्द्रिय, धार्मिकजन को सिद्ध होते हैं॥४॥

इसलिये पांच कर्मेन्द्रियों, पांच ज्ञानेन्द्रियों और ग्यारहवें मन को अपने वश में करके युक्ताहारविहार-[पूर्वक] योग से शरीर की रक्षा करता हुआ सब अर्थों को सिद्ध करे॥५॥

'जितेन्द्रिय' उसको कहते हैं जो स्तुति सुनके हर्ष और निन्दा सुनके शोक, अच्छा स्पर्श करके सुख और दुष्ट स्पर्श से दुःख [अनुभव नहीं करता], सुन्दर रूप देखके प्रसन्न और दुष्टरूप देखके अप्रसन्न, उत्तम

भोजन करके आनन्दित और निकृष्ट भोजन करके दुःखित [नहीं होता और] सुगन्ध में रुचि और दुर्गन्ध में अरुचि नहीं करता॥६॥

कभी विना पूछे वा अन्याय से पूछनेवाले को कि जो कपट से पूछता हो, उसको उत्तर न देवे। उनके सामने बुद्धिमान् जड़ के समान रहै। हां, जो निष्कपट और जिज्ञासु हों, उनको विना पूछे भी उपदेश करे॥७॥

एक धन, दूसरे बन्धु-कुटुम्ब-कुल, तीसरी अवस्था, चौथा उत्तम कर्म और पांचवीं श्रेष्ठ विद्या, ये पांच मान्य के स्थान हैं; परन्तु धन से उत्तम बन्धु, बन्धु से अधिक अवस्था, अवस्था से श्रेष्ठ कर्म और कर्म से **पवित्र विद्यावाले उत्तरोत्तर अधिक माननीय हैं**॥८॥

क्योंकि चाहे सौ वर्ष का भी हो परन्तु जो विद्या-विज्ञान-रहित है वह **'बालक'** और जो विद्या-विज्ञान का दाता है, उस बालक को भी **'वृद्ध'** मानना चाहिये; क्योंकि सब शास्त्र [और] आप्त विद्वान् अज्ञानी को **'बालक'** और ज्ञानी को **'पिता'** कहते हैं॥९॥

अधिक वर्षों के बीतने से, श्वेत बालों के होने [से], अधिक धन से और बड़े कुटुम्ब से [कोई] 'वृद्ध' नहीं होता, किन्तु ऋषि-महात्माओं का यही निश्चय है कि जो हमारे बीच में विद्या-विज्ञान में अधिक है, वही 'वृद्ध' पुरुष कहाता है॥१०॥

ब्राह्मण ज्ञान [से], क्षत्रिय बल [से], वैश्य धनधान्य से और शूद्र जन्म से अर्थात् अधिक आयु से 'वृद्ध' होता है॥११॥

शिर के बाल श्वेत होने से 'वृद्ध' नहीं होता, किन्तु जो युवा [भी] विद्या पढ़ा हुआ है, उसी को विद्वान् लोग **'बड़ा'** जानते हैं॥१२॥

और जो विद्या नहीं पढ़ा है, वह जैसा लकड़े का हाथी, चमड़े का मृग होता है [वैसा होता है]; वैसा अविद्वान् मनुष्य जगत् में नाममात्र मनुष्य कहाता है॥१३॥

इसलिये विद्या पढ़, विद्वान्, धर्मात्मा होकर, निर्वैरता से सब प्राणियों के कल्याण का उपदेश करे। **उपदेश में वाणी मधुर और कोमल बोले। जो सत्योपदेश से धर्म की वृद्धि और अधर्म का नाश करते हैं, वे पुरुष धन्य हैं॥१४॥**

नित्य स्नान [करे], वस्त्र, अन्न, पान, स्थान सब शुद्ध रक्खे; क्योंकि इनके शुद्ध होने पर चित्त की शुद्धि और आरोग्यता प्राप्त होकर पुरुषार्थ बढ़ता है। 'शौच' उतना करना योग्य है कि जितने से मल-दुर्गन्ध दूर हो जाय।

[आचार की महत्ता]

"आचारः परमो धर्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त एव च॥"

मनु० [१। १०८]॥

जो सत्यभाषणादि कर्मों का आचरण करना है, वही वेद और स्मृति में कहा हुआ **'आचार'** है।

"मा नों वधीः पितरं मोत मातरम्॥"

[यजुः०, अ० १६। मं० १५]

"आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते०॥"

[अथर्व०, कां० ११। सूक्त ५। मं० ३]॥

मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव। अतिथिदेवो भव॥

तैत्तिरीय [आरण्यक प्र० ७। अनु० ११; तै० उप० शि० व० अनु० ११]॥

माता, पिता, आचार्य और अतिथि की सेवा करना 'देवपूजा' कहाती है। और जिस-जिस कर्म से जगत् का उपकार हो, वह-वह कर्म करना और हानिकारक छोड़ देना ही मनुष्य का मुख्य कर्म है। कभी नास्तिक, लम्पट, विश्वासघाती, चोर, मिथ्यावादी, स्वार्थी, कपटी-छली आदि दुष्ट मनुष्यों का सङ्ग न करे। जो **'आप्त'**=सत्यवादी, धर्मात्मा, परोपकारप्रिय [विद्वद्]जन हैं, उनका सङ्ग करना **'श्रेष्ठाचार'** है।

[क्या विदेशगमन से आचार का नाश होता है?]

प्रश्न—आर्यावर्त-वासियों का, आर्यावर्त से भिन्न देशों में जाने से आचार नष्ट हो जाता है, वा नहीं?

उत्तर—यह बात मिथ्या है; क्योंकि जो बाहर-भीतर की पवित्रता करनी [और], सत्यभाषणादि आचरण करना है, वह जहां कहीं करेगा, [वहां]

आचार [भ्रष्ट] और धर्मभ्रष्ट कभी न होगा। और जो आर्यावर्त में रहकर भी दुष्टाचार करेगा, वही धर्म-[भ्रष्ट] और आचारभ्रष्ट कहावेगा।

[देश-देशान्तर में जाने-आने में प्रमाण]

जो ऐसा होता तो—

मेरोर्हरेश्च द्वे वर्षे वर्षं हैमवतं ततः।
क्रमेणैवं व्यतिक्रम्य भारतं वर्षमासदत्॥१॥
स देशान् विविधान् पश्यन् चीनहूणनिषेवितान्॥२॥

ये महाभारत, शान्तिपर्व, मोक्षधर्म में व्यास-शुकसंवाद के वचन हैं [अ० ३२५। श्लोक० १४-१५]॥

अर्थात् एक समय में व्यास जी अपने पुत्र और शिष्य शुक सहित मेरु-पर्वत पर निवास करते थे। शुकाचार्य ने पिता से एक प्रश्न पूछा कि **'आत्मविद्या'** इतनी ही है वा अधिक ? व्यास जी ने जानकर उसका उत्तर न दिया, क्योंकि पूर्व इस बात का उपदेश कर चुके थे। दूसरे के साक्ष्य के लिये अपने पुत्र शुक से कहा कि—"तू मिथिला में जाकर यही प्रश्न जनक राजा से कर। वह इसका यथायोग्य उत्तर देगा।" पिता का वचन सुनकर शुकाचार्य मेरुपर्वत से **मिथिला** की ओर चले। प्रथम, **'मेरु [वर्ष'** और **हरिवर्ष]** अर्थात् हिमालय से ईशान, उत्तर और वायव्य दिशा में जो देश बसते हैं, उनका नाम **'हरिवर्ष'** था। अर्थात् हरि कहते हैं बन्दर को, उस देश के मनुष्य अब भी **'रक्तमुख'** बन्दर के कुछ-कुछ समान और भूरे नेत्रवाले होते हैं। जिन देशों का नाम इस समय **यूरोप** है, उन्हीं

को संस्कृत में **‘हरिवर्ष’** कहते थे; उन देशों को देखते हुए, और जिनको **'हूण'** भी कहते हैं उन देशों को देखकर **'चीन'** में आये। चीन से हिमालय [=हैमवत] और हिमालय से मिथिलापुरी को आये।

और श्रीकृष्ण तथा अर्जुन **'पाताल'** में अश्वतरी अर्थात् जिसको **अग्नियान नौका** कहते हैं, उस पर बैठके **'पाताल'** में जाके **महाराजे युधिष्ठिर** के यज्ञ में उद्दालक ऋषि को ले आये थे। धृतराष्ट्र का विवाह **'गान्धार'** जिसको **‘कंधार’** कहते हैं, वहां की राजपुत्री से हुआ। माद्री जो कि पाण्डु की स्त्री थी, **ईरान** के राजा की कन्या थी और अर्जुन का विवाह **'पाताल'** में जिसको **अमेरिका** कहते हैं, वहां के राजा की लड़की उलूपी के साथ हुआ था। जो देशदेशान्तरों, द्वीपद्वीपान्तरों में न जाते होते, तो ये सब बातें क्योंकर हो सकती थीं?

'मनुस्मृति' में जो समुद्र में जानेवाली नौका पर 'कर' लेना लिखा है, वह भी आर्यावर्त से द्वीपान्तरों में जाने के कारण है। और जब महाराजे युधिष्ठिर ने राजसूय-यज्ञ किया था, उसमें सब भूगोल के राजाओं को बुलाने को निमन्त्रण देने के लिये भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव चारों दिशाओं में गये थे। जो दोष मानते होते तो कभी न जाते। सो प्रथम आर्यावर्तदेशीय लोग व्यापार, राजकार्य और भ्रमण के लिये सब भूगोल में जाते थे।

[देश-देशान्तर में जाने-आने से अनेक लाभ]

जो आजकल छूतछात और [उससे] धर्म नष्ट होने की शङ्का है, वह केवल मूर्खों के बहकाने और अज्ञान बढ़ने से है। जो मनुष्य देश-देशान्तरों और द्वीप-द्वीपान्तरों में जाने-आने में शङ्का नहीं करते, वे देश-देशान्तरों के अनेकविध मनुष्यों के समागम [से], रीति-भाँति देखने [से], अपना राज्य और व्यवहार बढ़ाने से निर्भय, शूरवीर होने लगते [हैं] और अच्छे व्यवहार के ग्रहण और बुरी बातों के छोड़ने में तत्पर होके, बड़े ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं।

भला, जो महाभ्रष्ट, म्लेच्छकुलोत्पन्न, वेश्या आदि के समागम से आचारभ्रष्ट धर्महीन होना नहीं मानते, किन्तु वे देश-देशान्तरों के उत्तम पुरुषों के साथ समागम में छूत और दोष मानते हैं; यह केवल मूर्खता की बात नहीं तो क्या है?

[अनार्यों से व्यवहार और गुणग्रहण में कोई दोष नहीं]

हाँ, इतना कारण तो है कि **जो लोग मांसभक्षण और मद्यपान करते हैं** उनके शरीर और वीर्यादि धातु भी दुर्गन्धादि से दूषित होते हैं, इसलिये उनका सङ्ग करने से आर्यों को भी ये कुलक्षण न लग जायें, यह तो बात ठीक है, **परन्तु उनसे व्यवहार और गुणग्रहण करने में कोई भी दोष नहीं है। यदि उनके मद्यपानादि दोषों को छोड़, गुणों को ग्रहण करें, तो कुछ भी हानि नहीं।** जब उनके स्पर्श और देखने में भी मूर्ख-जन पाप गिनते हैं, इसी से उनसे युद्ध कभी नहीं कर सकते; क्योंकि युद्ध में उनको देखना और स्पर्श होना आवश्यक है।

[पाखण्ड-खण्डन सीखकर ही विदेशों में जावें]

सज्जन लोगों को राग-द्वेष, अन्याय, मिथ्याभाषणादि दोषों को छोड़ निर्वैरता, प्रीति, परोपकार, सज्जनतादि का धारण करना उत्तम आचार है। और यह भी समझ लें कि धर्म हमारे आत्मा और कर्त्तव्य के साथ है। जब हम अच्छे काम करते हैं तो हमको देश-देशान्तरों और द्वीप-द्वीपान्तरों [में] जाने में कुछ भी दोष नहीं लग सकता। दोष तो पाप के काम करने में लगते हैं। हाँ, इतना अवश्य चाहिये कि वेदोक्त-धर्म का निश्चय और पाखण्डमत का खण्डन करना अवश्य सीख लें, जिससे कोई हमको झूठा निश्चय न करा सके।

[देश-देशान्तर में व्यापार किये विना उन्नति नहीं होती]

क्या देश-देशान्तरों और द्वीप-द्वीपान्तरों में राज्य वा व्यापार किये विना स्वदेश की उन्नति कभी हो सकती है? जब स्वदेश में ही स्वदेशी लोग व्यवहार करते और परदेशी स्वदेश [=हमारे देश] में व्यवहार वा राज्य करें तो सिवाय दारिद्र्य और दुःख के दूसरा कुछ भी नहीं हो सकता।

[पाखण्डियों की झूठी आशङ्का]

पाखण्डी लोग यह समझते हैं कि जो हम इनको विद्या पढ़ावेंगे, देश-देशान्तरों में जाने की आज्ञा देवेंगे, तो ये बुद्धिमान् होकर हमारे पाखण्ड-जाल में नहीं फसेंगे जिससे हमारी प्रतिष्ठा और जीविका नष्ट हो जावेगी। इसीलिये भोजन-छादन में बखेड़ा डालते हैं कि वे दूसरे देश में न जा सकें। **हां, इतना अवश्य चाहिये कि मद्य-मांस का ग्रहण कदापि भूलकर भी न करें।**

[युद्ध के समय का आचार-अनाचार]

क्या सब बुद्धिमानों ने यह निश्चय नहीं किया है कि जो राजपुरुषों में युद्ध-समय में भी चौका लगाकर रसोई बनाके खाना [है, वह] अवश्य पराजय का हेतु है? किन्तु क्षत्रिय लोगों का युद्ध में एक हाथ से रोटी खाते-जल पीते जाना और दूसरे हाथ से शत्रुओं को घोड़े, हाथी, रथ पर चढ़ वा पैदल होके मारते जाना और अपना विजय करना ही आचार और पराजित होना अनाचार है।

[चौके के चक्कर में देश को नष्ट कर दिया]

इसी मूढ़ता से ये लोग चौका लगाते-लगाते, विरोध करते-कराते, सब स्वातन्त्र्य, आनन्द, धन, राज्य, विद्या और पुरुषार्थ पर चौका लगा बैठे। इच्छा करते हैं कि कुछ पदार्थ मिले तो पका कर खावें, परन्तु वैसा न होने पर जानो सब देश-भर में चौका लगाके [उसका] सर्वथा नाश कर दिया है।

[भोजन-स्थान वा पाकशाला की शुद्धि आवश्यक]

हां, जहां पाक बने उस स्थान को धोने, लेपन करने, झाड़ू लगाने, कूड़ा-कर्कट दूर करने में प्रयत्न अवश्य करना चाहिये, न कि मुसलमान वा ईसाइयों के समान भ्रष्ट पाकशाला करनी [चाहिये]।

[सखरी-निखरी का पाखण्ड]

प्रश्न—सखरी-निखरी क्या है?

उत्तर—'सखरी' जो जल आदि में अन्न पकाये जाते [हैं], और जो घी-दूध में पकाते हैं वह **'निखरी'** अर्थात् चोखी। यह भी इन धूर्तों का

चलाया पाखण्ड है, क्योंकि जिसमें घी-दूध अधिक लगे, उसको खाने में [स्वाद आये और] उदर में चिकना पदार्थ अधिक जावे, इसलिये यह प्रपंच रचा है। नहीं तो जो अग्नि वा काल से पका हुआ **'पक्का'**, और न पका हुआ **'कच्चा'** है। जो पक्का खाना और कच्चा न खाना है, यह भी सर्वत्र ठीक नहीं; क्योंकि चणे आदि कच्चे भी खाये जाते हैं।

[रसोई कौन बनाये?]

प्रश्न—द्विज अपने हाथ से रसोई बनाके खावें; वा शूद्र के हाथ की बनाई खावें?

उत्तर—शूद्र के हाथ की बनाई खावें; क्योंकि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यवर्णस्थ स्त्री-पुरुष [क्रमशः] विद्या पढ़ाने; राज्य पालने; और पशुपालन, खेती और व्यापार के काम में तत्पर रहैं। सुनो प्रमाण—

"आर्याधिष्ठिता वा शूद्राः संस्कर्तारः स्युः।"

यह आपस्तम्ब का सूत्र है [आपस्तम्ब धर्मसूत्र, प्रश्न २। पटल २। खण्ड ३। सूत्र ४]॥

=आर्यों [=द्विजों] के घर में शूद्र अर्थात् मूर्ख [=अशिक्षित] स्त्री-पुरुष पाकादि सेवा करें, परन्तु वे शरीर, वस्त्र आदि से पवित्र रहैं। आर्यों [=द्विजों] के घर में जब रसोई बनावें तब मुख बांधके बनावें; क्योंकि उनके मुख से उच्छिष्ट और निकला हुआ श्वास भी अन्न में न पड़े। आठवें दिन क्षौर, नखच्छेदन करावें। स्नान करके पाक बनाया करें। आर्यों [=द्विजों] को खिलाके आप खावें।

[मीठा-मीठी गड़प, कड़वा-कड़वा थू]

प्रश्न—शूद्र के छुए हुये पके अन्न के खाने में जब दोष लगाते हैं, तो उसके हाथ का बनाया कैसे खा सकते हैं?

उत्तर—यह बात कपोलकल्पित [और] झूठी है; क्योंकि जिन्होंने गुड़, चीनी, घृत, दूध, पिसान, शाक, फल, मूल खाया, उन्होंने जानो सब जगत्-भर के हाथ का बनाया और उच्छिष्ट खा लिया। क्योंकि जब शूद्र, मुसलमान, ईसाई आदि लोग खेतों में से ईख को काटते, छीलते, पीलकर रस निकालते हैं, तब मल-मूत्रोत्सर्ग कर, उन्हीं विना धोये हाथों से छूते, उठाते, धरते, आधा सांठा चूस, रस पीके, आधा उसी में डाल देते और रस पकाते समय उस रस में रोटी भी पकाकर खाते हैं। जब चीनी बनाते हैं, तब पुराने जूते कि जिसके तले में विष्ठा, मूत्र, गोबर, धूली लगी रहती है, उन्हीं जूतों से उसको रगड़ते हैं। दूध में अपने घर के उच्छिष्ट पात्रों का जल डालते, उसी में घृतादि रखते और आटा पीसते समय भी वैसे ही उच्छिष्ट हाथों से उठाते और पसीना भी आटे में टपकता है। शाक, फल, फूल, कन्द में भी ऐसी ही लीला होती है। **जब इन पदार्थों को खाया, तो जानो सबके हाथ का खा लिया।**

[क्या अदृष्ट में दोष नहीं?]

प्रश्न—रस, फल, फूल, कन्द, मूल और अदृष्ट में दोष [हम] नहीं मानते।

उत्तर—वाह जी वाह! सत्य है कि जो ऐसा उत्तर न देते तो क्या धूल-राख खाते? गुड़-शक्कर मीठे लगते, दूध-घी पुष्टि करता है, इसीलिये यह मतलबसिन्धु क्या नहीं रचा है?

अच्छा, जो अदृष्ट में दोष नहीं [मानते], तो भङ्गी वा मुसलमान अपने हाथों से दूसरे स्थान में बनाकर तुमको आके देवे तो खा लोगे वा नहीं? जो कहो कि नहीं, तो [तुम्हारे मतानुसार] अदृष्ट में भी दोष है।

हाँ, मुसलमान, ईसाई आदि मद्य-मांसाहारियों के हाथ का खाने में आर्यों को भी मद्य-मांसादि खाना-पीना अपराध पीछे लग पड़ता है, परन्तु आपस में आर्यों का एक भोजन होने में कोई भी दोष नहीं दीखता। जब-तक एक मत, एक हानि-लाभ, एक सुख-दुःख परस्पर न मानें, तब-तक उन्नति होना बहुत कठिन है।

[केवल खाना-पीना ही एक होने से सुधार न होगा]

परन्तु केवल खाना-पीना ही एक होने से सुधार नहीं हो सकता, किन्तु जब-तक बुरी बातें नहीं छोड़ते और अच्छी बातें नहीं करते, तब-तक बढ़ती के बदले हानि होती है।

[विदेशियों के राज्य होने के कारण]

आर्यावर्त में विदेशियों का राज्य होने के कारण, आपस की फूट, मतभेद, ब्रह्मचर्य का सेवन न करना, विद्या न पढ़नी-पढ़ानी, बाल्यावस्था में अस्वयंवर विवाह, विषयासक्ति, मिथ्याभाषणादि कुलक्षण, वेदविद्या का अप्रचार आदि कुकर्म हैं।

जब आपस में भाई-भाई लड़ते हैं, तभी तीसरा विदेशी आकर पंच बन बैठता है।

[आपस की फूट का फल]

क्या तुम लोग महाभारत की बातें जो पाँच सहस्र वर्षों के पहले हुई थीं, उनको भी भूल गये? देखो, महाभारत युद्ध में सब लोग लड़ाई में सवारियों पर खाते-पीते थे। आपस की फूट से कौरवों, पाण्डवों और यादवों का सत्यानाश हो गया, सो तो हो गया; परन्तु अब तक भी वही रोग पीछे लगा है। न जाने यह भयङ्कर राक्षस कभी छूटेगा वा आर्यों को सब सुखों से छुड़ाकर दुःखसागर में डुबा मारेगा? उसी दुष्ट दुर्योधन गोत्रहत्यारे, स्वदेशविनाशक, नीच के दुष्ट-मार्ग में आर्य लोग अब तक भी चलकर दुःख बढ़ा रहे हैं। परमेश्वर कृपा करे कि यह राजरोग हम आर्यों में से नष्ट हो जाय।

[भक्ष्याऽभक्ष्य के दो भेद]

भक्ष्याभक्ष्य दो प्रकार के होते हैं। एक **धर्मशास्त्रोक्त,** दूसरा **वैद्यकशास्त्रोक्त**। जैसे धर्मशास्त्र में—

"अभक्ष्याणि द्विजातीनाममेध्यप्रभवाणि च॥"

मनु॰ [५। ५]॥

=**'द्विजों'** अर्थात् ब्राह्मणों-क्षत्रियों-वैश्यों; और शूद्रों को मलिन, विष्ठा-मूत्रादि के संसर्ग से उत्पन्न हुए शाक, फल, मूलादि न खाने चाहियें। जैसे—

"वर्जयेन्मधु मांसं च॥"

मनु॰ [२।१७७]

बुद्धिं लुम्पति यद् द्रव्यं मदकारी तदुच्यते॥

[शार्ङ्गधर॰ अ॰ ४। श्लोक २१]

=अनेक प्रकार के मद्य, गांजा, भांग, अफीम आदि जो-जो बुद्धि का नाश करने वाले पदार्थ [तथा मांस] हैं, उनका सेवन कभी न करें। और जितने अन्न सड़े, बिगड़े, दुर्गन्धादि से दूषित, अच्छे प्रकार न बने हुए और **मद्यमांसाहारी म्लेच्छ कि जिनका शरीर मद्यमांस के परमाणुओं से ही पूरित है, उनके हाथ का न खावें।**

[गाय आदि की हिंसा से हानि, और रक्षा से लाभ]

जिसमें उपकारक प्राणियों की हिंसा [होती है] अर्थात् जैसे एक गाय के शरीर से दूध, घी, बैल, गाय उत्पन्न होने से एक पीढ़ी में कुछ अधिक चार लाख मनुष्यों को सुख पहुँचता है; वैसे पशुओं को न मारें, न मारने दें।

जैसे किसी गाय से वीस सेर और किसी से दो सेर दूध प्रतिदिन होवे, उसका मध्यभाग ग्यारह सेर दूध प्रत्येक गाय से दूध होता है। कोई गाय अठारह और कोई छः महीने तक दूध देती है, उसका मध्यभाग बारह महीने हुए। अब प्रत्येक गाय के जन्म-भर के दूध से २४९६० (चौवीस सहस्र नौ-सौ साठ) मनुष्य एक वार तृप्त होते हैं। उसके छः बछियाँ, छः बछड़े होते हैं। उनमें से दो मर जायें, तो भी दश रहे। उनमें से पांच बछड़ियों के जन्म-भर के दूध को मिलाकर १२४८०० (एक लाख चौवीस सहस्र आठ-सौ) मनुष्य तृप्त हो सकते हैं। अब रहे पांच बैल, वे जन्म भर

में ५००० (पाँच सहस्र) मन अन्न न्यून से न्यून उत्पन्न करते हैं। उस अन्न में से प्रत्येक मनुष्य के भोजनार्थ ६० रुपये भर [=६० तोले]= तीन पाव अन्न खाने का भाग देने से २,६६,६६६ (दो लाख, छियासठ हजार, छः सौ छियासठ) मनुष्यों की तृप्ति होती है। दूध और अन्न मिला ३,९१, ४६६ (तीन लाख, इक्यानवे हजार, चार सौ छियासठ) मनुष्य तृप्त होते हैं। दोनों संख्यायें मिलाके एक गाय की एक पीढ़ी में ४,१६,४२६ (चार लाख, सोलह हजार, चार सौ छब्बीस) मनुष्य एक वार पालित होते हैं और पीढ़ी-परपीढ़ी बढ़ाकर लेखा करें तो असंख्य मनुष्यों का पालन होता है।

[गाय की विशेषता]

इससे भिन्न बैल, गाड़ी, सवारी, भार उठाने आदि कर्मों से मनुष्यों के बड़े उपकारक होते हैं, परन्तु जैसे बैल उपकारक होते हैं वैसे भैंसे नहीं, तथा भैंसें गाय से दूध [की मात्रा] में अधिक उपकारक होती हैं परन्तु गाय के दूध-घी से जितने बुद्धिवृद्धि से लाभ होते हैं उतने भैंस के दूध से नहीं। **इससे मुख्य-उपकारक आर्यों ने गाय को गिना है। और जो कोई अन्य विद्वान् होगा, वह भी इसी प्रकार समझेगा।**

[अन्य प्राणियों से लाभ]

बकरी के दूध से २५९२० (पच्चीस सहस्र नौ-सौ वीस) आदमियों का पालन होता है। वैसे हाथी, घोड़े, ऊंट, भेड़, गधे आदि से भी बड़े उपकार होते हैं। **इन सब पशुओं को मारनेवालों को मनुष्यों की हत्या करनेवाले जानियेगा।**

[गोहत्या विदेशियों के शासन से आरम्भ हुई]

देखो, जब आर्यों का राज्य था तब ये महोपकारक गाय आदि पशु नहीं मारे जाते थे, तब आर्यावर्त वा अन्य भूगोल के देशों में बड़े आनन्द में मनुष्यादि प्राणी वर्तते थे। क्योंकि [गाय] बैल आदि पशुओं की बहुताई होने से दूध, घी, अन्न, रस पुष्कल प्राप्त होते थे। **जब से इस देश में आके गौ आदि पशुओं के मारनेवाले, मद्यपायी-मांसाहारी विदेशी राज्याधिकारी हुए हैं, तब से क्रमशः आर्यों के दुःख की बढ़ती होती जाती है।** क्योंकि—

"नष्टे मूले नैव फलं न पुष्पम्।"

[चाणक्यनीति, अ० १०। श्लो० १३]॥

=जब वृक्ष का मूल ही काट दिया जाय तो फल-फूल कहाँ से हों?

[व्याघ्रादि से गौ आदि पशुओं की रक्षा]

प्रश्न—जो सभी अहिंसक हो जायें तो व्याघ्रादि पशु इतने बढ़ जायें कि सब गाय आदि पशुओं को मार खायें। तुम्हारा पुरुषार्थ व्यर्थ कर दें।

उत्तर—यह राजपुरुषों का काम है कि जो हानिकारक पशु वा मनुष्य हों, उनको दण्ड देवें और प्राण से भी वियुक्त कर दें।

[मारे गये हिंस्र पशुओं के मांस का क्या करें?]

प्रश्न—फिर क्या उनका मांस फेंक देंवे?

उत्तर—[पशुओं का मांस] चाहें फेंक दें, चाहें कुत्ते आदि मांसाहारियों को खिला देवें, [और मनुष्यों को दाहकर्मपूर्वक] जला देवें। अथवा [पशुओं का मांस] चाहे कोई मांसाहारी खावे तो भी संसार की हानि नहीं होती, किन्तु उस मनुष्य का स्वभाव मांसाहारी होकर हिंसक हो सकता है।

[भक्ष्य-अभक्ष्य की परिभाषा]

जितना हिंसा और चोरी, विश्वासघात, छल आदि से पदार्थों को प्राप्त करके भोग करना है, वह 'अभक्ष्य', और अहिंसा, धर्मादि कर्मों से प्राप्त करके भोजनादि करना 'भक्ष्य' है। जिन पदार्थों से स्वास्थ्य [-प्राप्ति और] रोगनाश [तथा] बुद्धि, बल, पराक्रम और वृद्धि होवे, उन तण्डुल, गोधूम, फल, फूल, मूल, कन्द, दूध, घी, मिष्टादि का सेवन [करना और] उन पदार्थों का यथायोग्य मेल करके पाक [बनाकर] **यथोचित समय पर मिताहार भोजन करना** सब **'भक्ष्य'** कहाता है।

[वैद्यकशास्त्रोक्त भक्ष्याऽभक्ष्य]

जितने पदार्थ अपनी प्रकृति से विरुद्ध और विकार करनेवाले हैं, जिस-जिस के लिये जो-जो पदार्थ **'वैद्यकशास्त्र'** में वर्जित किये हैं, उन-उन का त्याग करना और जो-जो जिस-जिसके लिये विहित हैं, उन-उन का ग्रहण करना **'भक्ष्य'** है।

[सहभोजन में दोष]

प्रश्न—एक साथ खाने में कुछ दोष है, वा नहीं?

उत्तर—दोष है; क्योंकि एक के साथ दूसरे का स्वभाव और प्रकृति नहीं मिलती। जैसे कुष्ठी आदि के साथ खाने से अच्छे मनुष्य का भी रुधिर बिगड़ता है, वैसे दूसरे के साथ खाने से भी कुछ बिगाड़ ही होता है, सुधार नहीं। इसीलिये—

नोच्छिष्टं कस्यचिद्दद्यान्नाद्याच्चैव तथान्तरा।
न चैवात्यशनं कुर्यान्न चोच्छिष्टः क्वचिद् व्रजेत्॥

मनु० [२। ५६]॥

न किसी को अपना उच्छिष्ट=जूठा पदार्थ दे और न किसी के भोजन के बीच में आप खावे। न अधिक भोजन करे और न उच्छिष्ट अर्थात् भोजन किये पश्चात् मुख-हाथ धोये विना कहीं इधर-उधर जाय।

['उच्छिष्ट' शब्द का अर्थ]

प्रश्न—**'गुरोरुच्छिष्टभोजनम्'** इस वाक्य का क्या अर्थ होगा?

उत्तर—इसका यह अर्थ है कि गुरु के भोजन के पश्चात् जो पृथक् अन्न शुद्ध स्थित है, उसका भोजन करना, अर्थात् प्रथम गुरु को भोजन कराके पश्चात् शिष्य भोजन करे।

['उच्छिष्ट' पर विशेष विचार]

प्रश्न—जो उच्छिष्टमात्र का निषेध है, तो मक्खियों का उच्छिष्ट सहत, बछड़े का उच्छिष्ट दूध और एक ग्रास खाने के पश्चात् अपना भी उच्छिष्ट होता है, इनको भी न खाना चाहिये।

उत्तर—सहत कहने मात्र ही उच्छिष्ट होता है। वह बहुत-सी ओषधियों का सार [होने से] ग्राह्य [है]। बछड़ा बाहिर का दूध पीता है, भीतर के दूध को नहीं छू सकता, इसलिये उच्छिष्ट नहीं; परन्तु बछड़े के पीये पश्चात् जल से उसकी मा के स्तन धोकर शुद्ध पात्र में [दूध] दोहना चाहिये।

और अपना उच्छिष्ट, अपने को विकारकारक नहीं होता। और देखो, स्वभाव से यह बात सिद्ध है कि किसी का उच्छिष्ट कोई भी न खावे। जैसे अपने मुख, नाक, कान, आँख, उपस्थ और गुदा इन्द्रियों के मल-मूत्रादि के स्पर्श में घृणा नहीं होती, किन्तु किसी दूसरे के मल-मूत्र के स्पर्श में होती है। इससे सिद्ध होता है कि यह व्यवहार सृष्टिक्रम से विपरीत ही है; इसलिये मनुष्यमात्र को उचित है कि किसी का उच्छिष्ट अर्थात् जूठा कोई भी न खाये।

प्रश्न—क्या स्त्री-पुरुष भी परस्पर उच्छिष्ट न खावें?

उत्तर—नहीं; क्योंकि उनके भी शरीरों का स्वभाव भिन्न-भिन्न है।

प्रश्न—चाहे ब्राह्मण वा चाण्डाल हो, सबके हाथ चमड़े के हैं और जैसे रुधिरादि ब्राह्मण के शरीर में होते हैं, वैसे ही चाण्डाल के [शरीर में हैं]; पुनः चाण्डाल के हाथ का खाने में क्या दोष है?

उत्तर—दोष है; क्योंकि जिन उत्तम पदार्थों के खान-पान से ब्राह्मण और ब्राह्मणी के शरीर में दुर्गन्धादि रहित [रक्त], शुद्ध वीर्य और रज होता है, वैसा चाण्डाल-चाण्डाली के शरीर में नहीं। क्योंकि जैसा चाण्डाल का शरीर दुर्गन्ध के परमाणुओं से भरा हुआ [=संयुक्त] होता है, वैसा ब्राह्मणादि का नहीं। इसलिये ब्राह्मणादि उत्तम वर्णों के हाथ का खाना और चाण्डाल आदि के हाथ का नहीं।

जब तुमसे कोई पूछेगा कि जैसा चमड़े का शरीर माता, सास, बहिन, कन्या, पुत्रवधू का है, वैसा ही अपनी स्त्री का है, तो क्या माता आदि के साथ भी स्वस्त्री के समान वर्तोगे? तब तुमको संकुचित होकर चुप ही रहना पड़ेगा। जैसे उत्तम अन्न हाथ और मुख से खाया जाता है, वैसे दुर्गन्धमय पदार्थ भी खाया जा सकता है, तो क्या मल आदि भी खाओगे? क्या ऐसा भी कोई हो सकता है?

[गोबर से चौका लगाने के लाभ]

प्रश्न—जो गाय के गोबर से चौका लगाते हो, तो अपने गोबर से क्यों नहीं लगाते? और चौके में गोबर के जाने से चौका अशुद्ध क्यों नहीं होता?

उत्तर—गाय के गोबर से वैसा दुर्गन्ध नहीं होता जैसा कि मनुष्य के मल से। यह चिकना होने से शीघ्र नहीं उखड़ता, न कपड़ा बिगड़ता, न मलिन होता है। जैसा मिट्टी से मैल चढ़ता है, वैसा सूखे गोबर से नहीं होता। मिट्टी और गोबर से जिस स्थान का लेपन करते हैं, वह देखने में अतिसुन्दर होता है। और जहां रसोई बनती है वहां भोजनादि करने से घी, मिष्ट और उच्छिष्ट भी गिरता है, उससे मक्खी, कीड़ी आदि बहुत जीव आते हैं। जब उसका झाड़ू लगाके लेपन कर दिया जाय, वा पक्का मकान हो तो धो दिया जाय तो वे दोष नहीं रहते। जैसे मियाँ जी के चौके में कहीं कोयले, कहीं राख, कहीं लकड़ी और कहीं फूटी हांडी के टुकड़े, कहीं जूठे पत्तल, कहीं हाड़-गोड़ पड़े रहने से देखने में बुरा लगता और सहस्त्रों मक्खियों और कीड़ियों से भरा हुआ होता है; यदि गोबर से अशुद्ध मानते हो तो जब चूल्हे में छाने (कंडे) रखने, उसी की आगी से तमाखू पीने, घर की भित्ति पर लेपन करने आदि से मियाँ जी [आदि] का भी चौका भी भ्रष्ट हो जाता होगा?

[भोजन स्वच्छ स्थान में बैठकर करें]

प्रश्न—चौके में खाना अच्छा, वा बाहर?

उत्तर—जहाँ अच्छा दीखे वहां भोजन करना चाहिये; परन्तु आवश्यक युद्धादि कर्मों में तो घोड़े आदि यानों पर बैठ वा खड़े-खड़े भी खाना अत्यन्त उचित है।

[आर्यों द्वारा शुद्ध रीति से बनाया भोजन भोज्य है]

प्रश्न—क्या अपने ही हाथ का खाना, दूसरे के हाथ का नहीं?

उत्तर—जो आर्यों में शुद्ध रीति से बनावे तो बराबर सब आर्यों के हाथ का खाने में कुछ भी हानि नहीं; क्योंकि जो ब्राह्मणादि वर्णस्थ स्त्री-पुरुष रसोई बनाने, चौका देने, बर्तन-मांजने आदि बखेड़ों में पड़े रहैं, तो विद्यादि शुभगुणों की वृद्धि कभी नहीं हो सके।

[भोजन सम्बन्धी प्राचीन आर्यों का व्यवहार]

देखो, महाराजे युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में भूगोल के राजा, ऋषि-महर्षि आये थे। एक ही पाकशाला से भोजन किया करते थे। जब से ईसाई, मुसलमान आदि के मतमतान्तर चले, आपस में वैर-विरोध हुआ, उन्होंने मद्यपान, गोमांसादि का खाना स्वीकार किया। उसी समय से भोजनादि में बखेड़ा हो गया।

देखो, क़ाबुल, कन्धार, ईरान, अमेरिका, यूरोप आदि के देशों के राजाओं की कन्याओं गान्धारी, माद्री, उलूपी आदि के साथ आर्यावर्तीय राजा-लोग विवाह करते थे। शकुनि आदि कौरव-पाण्डवों के साथ खाते-पीते थे, कुछ विरोध नहीं करते थे। **क्योंकि उस समय सर्व-भूगोल में वेदोक्त एक मत था, उसी में सबकी निष्ठा थी और एक दूसरे का सुख-दुःख, हानि-लाभ आपस में अपने समान समझते थे, तभी भूगोल में सुख था। अब तो बहुत मत-वाले होने से बहुत-सा दुःख और विरोध बढ़ गया है। इसका निवारण करना बुद्धिमानों का काम है। परमात्मा**

सबके मन में सत्य-मत का ऐसा अंकुर डाले कि जिससे मिथ्या-मत शीघ्र ही प्रलय को प्राप्त हों। इसमें सब विद्वान् लोग विचार कर, विरोध छोड़के अविरुद्धमत के स्वीकार से सब जन मिलकर सबके आनन्द को बढ़ावें।

[पूर्वार्ध-उत्तरार्ध का सम्बन्ध]

यह थोड़ा-सा आचार-अनाचार, भक्ष्याभक्ष्य-विषय में लिखा।

इस ग्रन्थ का **'पूर्वार्द्ध'** इसी दशमे समुल्लास पर्यन्त पूरा हो गया। इन समुल्लासों में विशेष खण्डन-मण्डन इसलिये नहीं लिखा कि जब-तक मनुष्य सत्यासत्य के विचार में कुछ भी सामर्थ्य न बढ़ाते, तब-तक स्थूल और सूक्ष्म खण्डनों के अभिप्राय को नहीं समझ सकते। इसलिये प्रथम सबको सत्य-शिक्षा का उपदेश करके अब **'उत्तरार्द्ध'** अर्थात् जिसमें चार समुल्लास हैं, उसमें विशेष खण्डन-मण्डन लिखेंगे।

[उत्तरार्द्ध के समुल्लासों का विभाग]

इन चारों में से **प्रथम समुल्लास** में आर्यावर्तीय मतमतान्तरों के, **दूसरे में** जैनियों के, **तीसरे में** ईसाइयों और **चौथे में** मुसलमानों के मत के खण्डन-मण्डन के विषय में लिखेंगे। और पश्चात् चौदहवें समुल्लास के अन्त में स्वमत भी दिखलाया जायगा। जो कोई विशेष खण्डन-मण्डन देखना चाहें, वे इन चारों समुल्लासों में देखें;

[ग्रन्थकार की पाठकों से अभ्यर्थना]

परन्तु सामान्य करके कहीं-कहीं दश समुल्लासों में भी कुछ थोड़ा-सा खण्डन-मण्डन किया है।

इन चौदह समुल्लासों को जो पक्षपात छोड़ न्यायदृष्टि से देखेगा, उसके आत्मा में सत्य-अर्थ का प्रकाश होकर आनन्द होगा। और जो हठ, दुराग्रह और ईर्ष्या से देखे-सुनेगा, उसको इस ग्रन्थ का यथार्थ अभिप्राय विदित होना बहुत कठिन है। इसलिये जो कोई इसको यथावत् विचारेगा वह इस ग्रन्थ को सुभूषित करेगा, और न विचारेगा वह इसका अभिप्राय न पाकर गोता खाया करेगा। **विद्वानों का यही काम है कि सत्यासत्य का निर्णय करके सत्य का ग्रहण, और असत्य का त्याग करके परम आनन्दित होते हैं। वे ही गुणग्राहक पुरुष विद्वान् होकर धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप फलों को प्राप्त होकर प्रसन्न रहते हैं॥**

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिकृते सत्यार्थप्रकाशे सुभाषाविभूषिते, आचाराऽनाचारभक्ष्याऽभक्ष्यविषये दशमः समुल्लासः सम्पूर्णः॥१०॥

समाप्तोऽयं पूर्वार्द्धः॥

उत्तरार्द्धः

अनुभूमिका (१)

यह सिद्ध बात है कि पांच सहस्र वर्षों के पूर्व वेद-मत से भिन्न दूसरा कोई भी मत न था, क्योंकि वेदोक्त सब बातें विद्या से अविरुद्ध हैं। वेदों की अप्रवृत्ति होने का कारण महाभारत-युद्ध हुआ। इनकी अप्रवृत्ति से अविद्यान्धकार के भूगोल में विस्तृत होने से मनुष्यों की बुद्धि भ्रमयुक्त होकर जिसके मन में जैसा आया, वैसा मत चलाया।

उन सब मतों में ४ (चार) मत अर्थात् जो वेदविरुद्ध पुराणी, जैनी, किरानी, और कुरानी सभी मतों के मूल हैं, वे क्रम से एक के पीछे दूसरा, तीसरा, चौथा चला है। अब इन चारों की शाखायें एक सहस्र से कम नहीं हैं। इन सब मतवादियों, इनके चेलों और अन्य सबको परस्पर सत्यासत्य के विचार करने में अधिक परिश्रम न हो, इसलिये यह ग्रन्थ बनाया है। जो-जो इसमें सत्य-मत का मण्डन और असत्य का खण्डन लिखा है, वह सबको जनाना ही प्रयोजन समझा गया है। **इसमें जैसी मेरी बुद्धि, जितनी विद्या है, और जितना इन चारों मतों के मूल ग्रन्थ देखने से बोध हुआ है, उसको सबके आगे निवेदित कर देना मैंने उत्तम समझा है, क्योंकि लुप्त हुए विज्ञान का पुनर्मिलना सहज नहीं है। पक्षपात छोड़कर इसको देखने से सत्यासत्य मत सबको विदित हो जायगा।** पश्चात् सबको अपनी-अपनी समझ के अनुसार सत्य मत का ग्रहण

करना और असत्य मत को छोड़ना सहज होगा। इनमें से जो पुराणादि ग्रन्थों से शाखा-शाखान्तररूप मत आर्यावर्त देश में चले हैं, उनके संक्षेप से गुण-दोष इस ११वें समुल्लास में दिखाये जाते हैं।

इस मेरे कर्म से यदि उपकार न मानें तो विरोध भी न करें; क्योंकि मेरा तात्पर्य किसी की हानि वा विरोध करने में नहीं किन्तु सत्यासत्य का निर्णय करने-कराने का है। इसी प्रकार सब मनुष्यों को न्यायदृष्टि से वर्तना अति उचित है। मनुष्य-जन्म का होना सत्यासत्य के निर्णय करने-कराने के लिये है, न कि वादविवाद-विरोध करने-कराने के लिये।

इसी मतमतान्तर के विवाद से जगत् में जो-जो अनिष्ट फल हुए, होते हैं और होंगे, उनको पक्षपातरहित विद्वज्जन जान सकते हैं। जब-तक इस मनुष्य जाति में परस्पर मिथ्या मतमतान्तर का विरुद्धवाद न छूटेगा तब-तक अन्योन्य को आनन्द न होगा। **यदि हम सब मनुष्य और विशेषकर विद्वज्जन ईर्ष्या-द्वेष छोड़ सत्यासत्य का निर्णय करके सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग करना-कराना चाहें तो हमारे लिये यह बात असाध्य नहीं है।**

यह निश्चय है कि इन [मत-मतान्तर वाले] विद्वानों के विरोध ने ही सबको विरोध-जाल में फसा रक्खा है। यदि ये लोग अपने प्रयोजन

में न फसकर सबके प्रयोजन को सिद्ध करना चाहैं तो अभी ऐक्यमत हो जायें। इसके होने की युक्ति इस ग्रन्थ की पूर्त्ति में लिखेंगे। सर्वशक्तिमान् परमात्मा एक मत में प्रवृत्त होने का उत्साह सब मनुष्यों के आत्माओं में प्रकाशित करे।

॥अलमतिविस्तरेण विपश्चिद्वरशिरोमणिषु॥

अथैकादशसमुल्लासारम्भः

अथाऽऽर्यावर्तीयमतखण्डनमण्डने विधास्यामः

सम्पूर्ण सत्यार्थप्रकाश

Click now

अब आर्य लोगों के, जो कि 'आर्यावर्त' देश में वसनेवाले हैं उनके मत का खण्डन तथा मण्डन का विधान करेंगे।

[भारत भूमि स्वर्णभूमि है]

यह आर्यावर्त देश ऐसा देश है जिसके सदृश भूगोल में दूसरा कोई देश नहीं है, इसीलिये इस भूमि का नाम **'सुवर्णभूमि'** है; क्योंकि यही सुवर्णादि रत्नों को उत्पन्न करती है। इसीलिये सृष्टि के आदि में आर्य लोग इसी देश में आकर वसे। इसलिये हम सृष्टिविषय में कह आये हैं कि **'आर्य'** नाम 'उत्तम पुरुषों' का है और आर्यों से भिन्न मनुष्यों का नाम **'दस्यु'** है।

[भारत ही पारसमणि है]

जितने भूगोल में देश हैं, वे सब इसी देश की प्रशंसा करते और [इसी से] आशा रखते हैं। **'पारसमणि'** पत्थर सुना जाता है, वह बात तो झूठी है, परन्तु आर्यावर्त देश ही सच्चा **'पारसमणि'** है कि जिसको लोहेरूप दरिद्र

विदेशी छूते के साथ ही ‘सुवर्ण' अर्थात् धनाढ्य हो जाते हैं।

[आर्यों का सार्वभौम चक्रवर्ती राज्य]

सृष्टि से लेके पांच सहस्र वर्षों से पूर्व समय पर्यन्त आर्यों का 'सार्वभौम चक्रवर्ती' अर्थात् भूगोल में सर्वोपरि एकमात्र राज्य था; अन्य देशों में माण्डलिक अर्थात् छोटे-छोटे राजा रहते थे, क्योंकि कौरव-पाण्डव पर्यन्त यहां के राजा और राज-शासन में सब भूगोल के सब राजा और प्रजा चलते थे, यह, **'मनुस्मृति'** जो सृष्टि के आदि में हुई है, उसका प्रमाण है—

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥

मनु० [२।२०] ॥

'इसी आर्यावर्त देश में उत्पन्न हुए ब्राह्मण अर्थात् विद्वानों से भूगोल के सब मनुष्य ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, दस्यु, म्लेच्छ आदि अपने-अपने योग्य चरित्रों की शिक्षा और विद्याभ्यास करें।'

और महाराजे युधिष्ठिर जी के राजसूय-यज्ञ और महाभारतयुद्ध पर्यन्त यहां के राज्याधीन सब राज्य थे। सुनो! **चीन** का भगदत्त, **अमेरिका** का बभ्रुवाहन, **यूरोप** का विडालाक्ष अर्थात् मार्जार के सदृश आँखवाला

'यवन' जिसको **'यूनान'** कह आये और **ईरान** का शल्य आदि सब राजा राजसूय-यज्ञ और महाभारत-युद्ध में आज्ञानुसार आये थे। जब रघुगण राजा थे, तब **रावण** भी यहां के आधीन था। जब रामचन्द्र के समय में विरुद्ध हो गया, तो उसको रामचन्द्र ने दण्ड देकर राज्य से नष्ट कर उसके भाई विभीषण को राज्य दिया।

[आर्यों की अवनति के कारण]

स्वायंभुव [मनु] राजा से लेकर पाण्डवपर्यन्त आर्यों का चक्रवर्ती राज्य रहा। तत्पश्चात् आपस के विरोध से लड़कर नष्ट हो गये; **क्योंकि परमात्मा की इस सृष्टि में अभिमानी, अन्यायकारी, अविद्वान् लोगों का राज्य बहुत दिन नहीं चलता।** और यह संसार की स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि जब असंख्य=बहुत-सा धन प्रयोजन से अधिक होता है तब आलस्य, पुरुषार्थरहितता, ईर्ष्या-द्वेष, विषयासक्ति और प्रमाद बढ़ता है। इससे देश में विद्या, सुशिक्षा नष्ट होकर दुर्गुण और दुष्ट व्यसन बढ़ जाते हैं, जैसे कि मद्य-मांस का सेवन, बाल्यावस्था में विवाह और स्वेच्छाचारादि दोष बढ़ जाते हैं। और जब युद्धविभाग में **युद्धविद्या** का कौशल और सेना इतनी बढ़े कि जिसका सामना करनेवाला भूगोल में दूसरा न हो, तब उन लोगों में पक्षपात, अभिमान बढ़कर अन्याय बढ़ जाता है। जब ये दोष हो जाते हैं तब आपस में विरोध होकर अथवा उनसे अधिक दूसरे छोटे कुलों में से कोई ऐसा समर्थ पुरुष खड़ा होता है कि उनका पराजय करने में समर्थ होवे, जैसे मुसलमानों की बादशाही के सामने शिवाजी, गोविन्दसिंह जी ने खड़े होकर मुसलमानों के राज्य को छिन्न-भिन्न कर दिया।

[पुराकाल के चक्रवर्ती कतिपय आर्य राजा]

अथ किमेतैर्वा परेऽन्ये महाधनुर्धराश्चक्रवर्तिनः केचित् सुद्युम्नभूरिद्युम्नेन्द्रद्युम्नकुवलयाश्वयौवनाश्ववद्ध्र्यश्वाश्वपतिः शशविन्दुर्हरिश्चन्द्रोऽम्बरीषोननक्तुशर्यातिययातिरनरण्याक्षसेनोऽथ मरुत्तभरतप्रभृतयो राजानः॥

मैत्रायणी उप० [प्रपा० १। खं० ५]

इत्यादि प्रमाणों से सिद्ध है कि **सृष्टि से लेकर महाभारत-पर्यन्त चक्रवर्ती= सार्वभौम राजा आर्यकुल में ही हुए थे। अब इनके सन्तानों का अभाग्योदय होने से, राजभ्रष्ट होकर विदेशियों के पादाक्रान्त हो रहे हैं।** जैसे यहां सुद्युम्न, भूरिद्युम्न, इन्द्रद्युम्न, कुवलयाश्व, यौवनाश्व, वद्धृयश्व, अश्वपति, शशविन्दु, हरिश्चन्द्र, अम्बरीष, ननक्तु, शर्याति, ययाति, अनरण्य, अक्षसेन, मरुत्त और भरत सार्वभौम= सब भूमि में प्रसिद्ध' चक्रवर्ती राजाओं के नाम लिखे हैं, वैसे स्वायम्भुव-आदि चक्रवर्ती राजाओं के नाम **'मनुस्मृति', 'महाभारत'**-आदि ग्रन्थों में स्पष्ट लिखे हैं। इसको मिथ्या करना अज्ञानी और पक्षपातियों का काम है।

[पूर्वकाल में आग्नेयादि अस्त्रों की विद्यमानता]

प्रश्न—जो आग्नेयास्त्र आदि विद्यायें लिखी हैं, सो सत्य हैं वा नहीं? और तोप तथा बन्दूक उस समय में थीं, वा नहीं?

उत्तर—ये बातें सच्ची हैं, ये शस्त्र भी थे। क्योंकि **'पदार्थविद्या'** से इन सब बातों का सम्भव है।

प्रश्न—क्या ये देवताओं के मन्त्रों से सिद्ध होते थे?

उत्तर—नहीं, ये सब अस्त्र पदार्थों से सिद्ध करते थे। 'मन्त्र' अर्थात् विचार से सिद्ध करते और चलाते थे, और जो मन्त्र अर्थात् शब्दमय होता है, उससे कोई द्रव्य उत्पन्न नहीं होता। और जो कोई कहे कि मन्त्र से अग्नि उत्पन्न होता है तो वह मन्त्र के जप करनेवाले के हृदय और जीभ में मन्त्र से अग्नि उत्पन्न होकर हृदय और जिह्वा को भस्म कर देवे, 'मारने जाय शत्रु को और मर रहे आप'। इसलिये 'मन्त्र' नाम है विचार का, जैसे राजमन्त्री अर्थात् 'राजकर्मों का विचार करने वाला' कहाता है, वैसे 'मन्त्र' अर्थात् विचार से सब सृष्टि के पदार्थों का प्रथम ज्ञान और पश्चात् क्रिया करने से अनेक प्रकार के पदार्थ और क्रियाकौशल उत्पन्न होते हैं।

जैसे, कोई एक लोहे का बाण वा गोला बनाकर उसमें ऐसे पदार्थ रक्खे कि जो अग्नि के लगाने से वायु में धुआं फैलने और सूर्य की किरण वा वायु का स्पर्श होने से अग्नि जल उठे, इसी का नाम **'आग्नेयास्त्र'** है। जब दूसरा इसका निवारण करना चाहे, तो उसी पर **'वारुणास्त्र'** छोड़ दे; अर्थात् जैसे शत्रु ने शत्रु की सेना पर आग्नेयास्त्र छोड़कर नष्ट करना चाहा, वैसे ही अपनी सेना के रक्षार्थ सेनापति वारुणास्त्र से आग्नेयास्त्र का निवारण करे। वह ऐसे द्रव्यों के योग से होता है जिसका धुआं वायु का स्पर्श होते ही बद्दल होके झट वर्षने लग जावे, [और] अग्नि को बुझा देवे। ऐसे ही **'नागपाश'** अर्थात् जो शत्रु पर छोड़ने से उसके अङ्गों को जकड़के बांध लेता है। वैसे ही एक **'मोहनास्त्र'** अर्थात् जिसमें नशे की

चीज डालने से, जिसके धुएँ के लगने से, सब शत्रु की सेना **निद्रास्थ** अर्थात् मूर्छित हो जाय। इसी प्रकार सब शस्त्रास्त्र होते थे। और एक तार से, वा सीसे से अथवा किसी और पदार्थ से विद्युत् उत्पन्न करके शत्रुओं का नाश करते थे, उसको भी **'आग्नेयास्त्र'** तथा **'पाशुपतास्त्र'** कहते हैं।

'तोप' और **'बन्दूक'** नाम अन्य देश-भाषाओं के हैं, ये संस्कृत और आर्यावर्तीय भाषाओं के नहीं। जिसको विदेशी लोग 'तोप' कहते हैं, संस्कृत और आर्यभाषा में उसका नाम **'शतघ्नी'**, है, और जिसको 'बन्दूक' कहते हैं, उसका नाम संस्कृत और आर्यभाषा में **'भुशुण्डी'** है। जो **'संस्कृत-विद्या'** को नहीं पढ़े और इस देश की भाषाओं को भी ठीक-ठीक नहीं जानते, वे भ्रम में पड़कर कुछ-का-कुछ लिखते और कुछ-का-कुछ बकते हैं, उसका बुद्धिमान् लोग प्रमाण नहीं कर सकते।

[सब विद्या आर्य्यावर्त्त से ही अन्यत्र फैली]

और जितनी विद्या भूगोल में फैली है, वह सब आर्यावर्त देश से मिश्र-वालों, उनसे यूनान, उनसे रोम और उनसे यूरोपीय-देशों में, उनसे अमेरिका आदि देशों में फैली है। अब तक जितना प्रचार **'संस्कृत-विद्या'** का आर्यावर्त देश में है उतना किसी अन्य देश में नहीं। जो लोग कहते हैं कि जर्मन देश में **'संस्कृत-विद्या'** का बहुत प्रचार है, और जितना संस्कृत मोक्षमूलर साहब पढ़े हैं उतना कोई नहीं पढ़ा, यह बात कहना मात्र है; क्योंकि **'यस्मिन्देशे द्रुमो नास्ति तत्रैरण्डोऽपि द्रुमायते'** अर्थात् जिस देश में कोई वृक्ष नहीं होता, उस देश में एरण्ड को ही बड़ा वृक्ष मान

लेते हैं। वैसे ही यूरोपीय-देशों में संस्कृत विद्या का प्रचार न होने से जर्मन लोगों और मोक्षमूलर साहब ने थोड़ा-सा पढ़ा, वही उस देश के लिये अधिक है; परन्तु आर्यावर्त देश की ओर देखें, तो उनकी बहुत न्यून गणना है, क्योंकि मैंने जर्मन देश के निवासी एक प्रिन्सिपल के पत्र से जाना कि जर्मन देश में संस्कृत-चिट्ठी का पूर्ण अर्थ करनेवाले भी बहुत कम हैं।

[मोक्षमूलर के वेदज्ञान की परीक्षा]

और मोक्षमूलर साहब का संस्कृत-साहित्य और थोड़ी-सी वेद की व्याख्या देखकर मुझको विदित होता है कि मोक्षमूलर साहब ने इधर-उधर आर्यावर्तीय लोगों की की हुई टीकायें देखकर कुछ-कुछ यथा-तथा लिखा है। जैसे कि—

'युञ्जन्ति ब्रध्नमंरुषं चरंन्तं परिं तस्थुषंः। रोचंन्ते रोचना दिवि॥'

[ऋग्० १।६।१]

इस मन्त्र का अर्थ 'घोड़ा' [-परक] किया है। इससे तो जो सायणाचार्य ने 'सूर्य' [-परक] अर्थ किया है, सो अच्छा है। परन्तु इसका ठीक अर्थ 'परमात्मा' [-परक] है, सो मेरी बनाई **'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका'** में देख लीजिये। उसमें इस मन्त्र का अर्थ 'यथार्थ' किया है। इतने से जान लीजिये कि जर्मन देश और मोक्षमूलर साहब में **'संस्कृत-विद्या'** का कितना पाण्डित्य है।

[आर्यावर्त्त से ही अन्यत्र विद्या और मत फैले हैं]

यह निश्चय है कि जितनी विद्या और मत भूगोल में फैले हैं, वे सब आर्यावर्त देश से ही प्रचरित हुए हैं। देखो, एक जैकालियट साहब

पेरिस अर्थात् फ्रांस देश निवासी अपनी **'द बाइबल इन इण्डिया'** में लिखते हैं कि—**"सब विद्याओं और भलाइयों का भण्डार आर्यावर्त देश है और सब विद्यायें तथा मत इसी देश से फैले हैं,** और परमात्मा से प्रार्थना करते हैं कि **"हे परमेश्वर! जैसी उन्नति आर्यावर्त देश की पूर्व काल में थी, वैसी ही हमारे देश की कीजिये",** सो उस ग्रन्थ में देख लो।

[दाराशिकोह की सम्मति]

तथा **दाराशिकोह बादशाह** ने भी यही निश्चय किया था कि 'जैसी पूरी विद्या संस्कृत में है, वैसी किसी भाषा में नहीं।' वे ऐसा उपनिषदों के भाषान्तर में लिखते हैं कि—**"मैंने अरबी आदि बहुत-सी भाषायें पढ़ीं, परन्तु मेरे मन का सन्देह छूटकर आनन्द न हुआ। जब संस्कृत देखा और सुना तब निःसन्देह होकर मुझको बड़ा आनन्द हुआ है।"**

[प्राचीन ज्योतिष यन्त्र]

देखो, काशी के 'मान-मन्दिर' में **शिशुमारचक्र** को, कि जिसकी पूरी रक्षा भी नहीं रही है, तो भी कितना उत्तम है कि जिसमें अब तक भी खगोल का बहुत-सा वृत्तान्त विदित होता है। जो **'सवाई जयपुराधीश'** उसकी संभाल और टूटे-फूटे को बनवाया करेंगे तो बहुत अच्छा होगा।

[महाभारत युद्ध का विपरीत प्रभाव]

परन्तु ऐसे शिरोमणि देश को महाभारत-युद्ध ने ऐसा धक्का दिया कि अब तक भी यह अपनी पूर्व दशा में नहीं आया। क्योंकि जब भाई को भाई मारने लगे तो नाश होने में क्या सन्देह?

विनाशकाले विपरीतबुद्धिः॥

[चाणक्यनीतिदर्पण अ० १६ । श्लो० ५]॥

यह किसी कवि का वचन ठीक है कि 'जब नाश होने का समय निकट आता है तब उलटी बुद्धि होकर उलटे काम करते हैं।' कोई उनको सूधा समझावे तो उलटा मानें और उलटा समझावें उसको सूधा मानें। जब बड़े-बड़े विद्वान्, राजे- महाराजे, ऋषि-महर्षि लोग, महाभारत युद्ध में बहुत-से मारे गये और बहुत-से मर गये, तब विद्या और वेदोक्त धर्म का प्रचार नष्ट हो चला। ईर्ष्या, द्वेष, अभिमान आपस में करने लगे, जो बलवान् हुआ वह देश को दाबकर राजा बन बैठा। वैसे ही सर्वत्र आर्यावर्त देश में खण्ड-बण्ड राज्य हो गया। पुनः द्वीप-द्वीपान्तरों के राज्य की व्यवस्था कौन करे?

[विद्या के अभाव में नामधारी ब्राह्मणों की स्वार्थसाधना]

जब ब्राह्मण लोग विद्याहीन हुये तब क्षत्रियों, वैश्यों और शूद्रों के अविद्वान् होने की तो कथा ही क्या कहनी? जो परम्परा से वेदादि शास्त्रों का अर्थसहित पढ़ने का प्रचार था, वह भी छूट गया। केवल जीविकार्थ पाठमात्र ब्राह्मण लोग पढ़ते रहे, सो पाठमात्र भी क्षत्रिय आदि को न पढ़ाया। क्योंकि जब 'अविद्वान् हुए' गुरु बन गये, तब छल-कपट, अधर्म भी उनमें बढ़ता चला। ब्राह्मणों ने विचारा कि अपनी जीविका का प्रबन्ध बांधना चाहिये। सम्मति करके, यही निश्चय कर, क्षत्रिय आदि को उपदेश करने लगे कि 'हम ही तुम्हारे पूज्यदेव हैं'। विना हमारी सेवा किये तुमको स्वर्ग वा मुक्ति न मिलेगी। किन्तु जो तुम हमारी सेवा न करोगे, तो घोर

नरक में पड़ोगे। **जो-जो पूर्ण विद्यावाले धार्मिकों का नाम 'ब्राह्मण' [है], और वे पूजनीय [हैं, ऐसा] ऋषि-मुनियों के शास्त्रों में लिखा था, उसको अपने मूर्ख, विषयी, कपटी, लम्पट, अधर्मियों पर घटा बैठे। भला, वे आप्त विद्वानों के लक्षण इन मूर्खों में कब घट सकते हैं?** परन्तु जब क्षत्रियादि यजमान **'संस्कृत-विद्या'** से अत्यन्त रहित हुये, तब उनके सामने जो-जो गप्पें मारी, सो-सो बेचारों ने सब मान ली। तब इन नाममात्र ब्राह्मणों की बन पड़ी। सबको अपने वचन-जाल में बाँधकर वशीभूत कर लिया; और कहने लगे कि—**ब्रह्मवाक्यं जनार्दनः॥**

अर्थात् जो ब्राह्मणों के मुख से वचन निकलता है, वह जानो साक्षात् भगवान् के मुख से निकला है।

जब क्षत्रियादि वर्ण **'आंख के अन्धे और गांठ के पूरे'** अर्थात् भीतर विद्या की आँख फूटी हुई और जिनके पास धन पुष्कल है, ऐसे-ऐसे चेले मिले; फिर इन व्यर्थ 'ब्राह्मण' नाम-वालों को विषयानन्द का उपवन मिल गया। यह भी उन लोगों ने प्रसिद्ध किया कि जो कुछ पृथिवी में उत्तम पदार्थ हैं, वे सब ब्राह्मणों के लिये हैं, अर्थात् जो गुण, कर्म, स्वभाव से ब्राह्मणादि वर्णव्यवस्था थी, उसको नष्टकर, जन्म पर रखा और मृतक तथा स्त्री पर्यन्त का भी दान यजमानों से लेने लगे। जैसी अपनी इच्छा हुई वैसा करते चले। यहां तक कहा कि **'हम भूदेव हैं'**, हमारी सेवा के विना देवलोक किसी को नहीं मिल सकता। इनसे पूछना चाहिये कि तुम किस लोक में पधारोगे? तुम्हारे काम तो घोर नरक भोगने के हैं; [अतः]

कृमि, कीट बनोगे। तब तो बड़े क्रोधित होकर कहते हैं—"हम शाप देंगे, तुम्हारा नाश हो जायगा, क्योंकि लिखा है—

'ब्रह्मद्वेषी विनश्यति'=ब्राह्मणों से द्वेष करनेवाला नष्ट हो जाता है।"

हाँ, यह बात तो सच्ची है कि सम्पूर्ण वेद और परमात्मा को जाननेवाले, धर्मात्मा, सब जगत् के उपकारक पुरुषों से जो कोई द्वेष करेगा, वह अवश्य नष्ट होगा। परन्तु जो ब्राह्मण नहीं हों उनका न 'ब्राह्मण' नाम और न उनकी सेवा करनी योग्य है। परन्तु तुम तो ब्राह्मण' [ही] नहीं हो।

[नाममात्र के ब्राह्मण पोप हैं]

प्रश्न—तो हम कौन हैं?

उत्तर—तुम **'पोप'** हो।

प्रश्न—'पोप' किसको कहते हैं?

उत्तर—असल इसकी, रोमन भाषा में तो 'बड़े' का और 'पिता' का नाम **'पोप'** है, परन्तु अब छलकपट से दूसरे को ठगकर अपना प्रयोजन साधनेवाले को **'पोप'** कहते हैं।

[ब्राह्मण और साधु जन्म से नहीं, गुण-कर्म-स्वभाव से होते हैं]

प्रश्न—हम तो ब्राह्मण और साधु हैं; क्योंकि हमारा पिता ब्राह्मण और माता ब्राह्मणी [है] तथा हम अमुक साधु के चेले हैं।

उत्तर—यह सच है, परन्तु सुनो भाई! **मा-बाप ब्राह्मणी-ब्राह्मण होने से और किसी साधु के शिष्य होने पर ब्राह्मण वा साधु नहीं हो सकते, किन्तु ब्राह्मण और साधु अपने उत्तम गुण, कर्म, स्वभाव से होते हैं, जो कि परोपकारी हों।**

[रूम के पोपों का वर्णन]

सुना है कि जैसे रोम के **'पोप'** अपने चेलों को कहते थे कि तुम अपने पाप हमारे सामने कहोगे, तो हम क्षमा कर देंगे। विना हमारी सेवा और आज्ञा के कोई भी स्वर्ग में नहीं जा सकता। जो तुम स्वर्ग में जाना चाहो तो हमारे पास जितने रुपये जमा करोगे उतने [रुपयों] की ही सामग्री स्वर्ग में तुमको मिलेगी। जब कोई लाख रुपये स्वर्ग की इच्छा करके 'पोप जी' को देता था, तब वे 'पोप जी' ईसा और मरियम की मूर्ति के सामने ऐसी हुण्डी लिखकर देते थे—

"हे खुदाबन्द ईसा मसी! अमुक मनुष्य ने तेरे नाम पर लाख रुपये स्वर्ग में आने के लिये हमारे पास जमा कर दिये हैं। जब वह स्वर्ग में आवे तब तू अपने पिता के स्वर्ग के राज्य में पच्चीस सहस्र रुपयों में बाग-बगीचे, मकान; पच्चीस सहस्र में सवारी, नौकर-चाकर; पच्चीस सहस्र में खाने-पीने, कपड़ों, सोने-बैठने का सब सराजाम२ और पच्चीस सहस्र

इसके इष्ट मित्रों की जियाफ़त आदि के वास्ते दिला देना। वैसे हुंडी सिकार देना।" —सही, पोप जी की।

फिर उस हुण्डी के नीचे पोप जी आप 'सही' करके हुण्डी उसको देकर कहते थे कि "जब तू मरे तब यह हुण्डी भी कब्र में अपने सिरहाने गाड़ने के लिये अपने कुटुम्ब को कह रखना। जब तुझे ले जाने के लिये फरिश्ते आवेंगे तब तुझको और हुण्डी को ले जायेंगे और उसमें लिखे प्रमाणे चीजें तुझे दिला लेंगे।

अब देखिये, जानो, स्वर्ग के ठेकेदार पोप जी ही हैं। जब-तक यूरोपीय देशों में मूर्खता थी, तब तक वहां पोपलीला चलती थी। अब विद्या के होने से झूठी लीला बहुत करके नहीं चलती, किन्तु निर्मूल भी नहीं हुई।

[आर्यावर्त्तीय छली-कपटी पोपों की लीला]

वैसे ही आर्यावर्त देश में भी 'पोप' जी जानो लाखों अवतार लेकर लीला फैला रहे हैं; अर्थात् राजा और प्रजा को विद्या न पढ़ाने, अच्छे पुरुषों का सत्सङ्ग न होने देने, [और] रात-दिन बहकाने के सिवाय दूसरा कुछ भी काम नहीं करते। परन्तु **यह ध्यान में रखना कि जो-जो कपट-छल की लीला करते हैं, वे ही 'पोप' कहाते हैं; जो उनमें भी धार्मिक विद्वान्, परोपकारी हैं, वे सच्चे ब्राह्मण और साधु हैं।** अब उन्हीं छली-कपटी स्वार्थी लोगों, 'मनुष्यों को ठगकर अपने प्रयोजन सिद्ध करनेवालों' का ही ग्रहण **'पोप'** शब्द से करना और **'ब्राह्मण'** तथा **'साधु'** नाम से उत्तम पुरुषों का स्वीकार करना योग्य है।

[उत्तम ब्राह्मणों द्वारा सस्वर वेदादिशास्त्रों की रक्षा]

देखो, जो कोई भी उत्तम ब्राह्मण वा साधु न होता, तो वेद-शास्त्र-आदि पुस्तकों का स्वरसहित पठन-पाठन, जैन, मुसलमान और ईसाई आदि से बचाकर आर्यों को वेदादि शास्त्रों में प्रीतियुक्त और वर्णाश्रम में रखना कौन कर सकता?

'विषादप्यमृतं ग्राह्यम्।'

मनु० [२।२३९]॥

विष से भी अमृत के ग्रहण करने के समान, पोपलीला से बहकाने से भी आर्यों का जैन आदि मतों से बच रहना, विष में अमृत के समान गुण समझना चाहिये।

[स्वार्थी ब्राह्मणों की लीला]

जब यजमान विद्याहीन हुए और आप कुछ पाठ-पूजा पढ़कर, अभिमान में आके, सब लोगों ने सम्मति करके राजा आदि से कहा कि 'ब्राह्मण और साधु अदण्ड्य हैं,' देखो— **'ब्राह्मणो न हन्तव्यः'** (महाभाष्य १.२.६४) **'साधुन हन्तव्यः'**, ऐसे-ऐसे वचन जो कि सच्चे ब्राह्मण और सच्चे साधुओं के विषय में थे, सो पोपों ने अपने ऊपर घटा लिये। और बहुत-से झूठे-झूठे वचनयुक्त ग्रन्थ बनाकर, उनमें ऋषि-मुनियों के नाम धरके, उन्हीं के नाम से सुनाते रहे। उन प्रतिष्ठित ऋषि-महर्षियों के नाम से 'अविद्वान्' लोगों को मानने लगे। पश्चात् जब अपने ऊपर से दण्ड की व्यवस्था उठवा दी, तो पुनः यथेष्टाचार करने लगे, अर्थात् ऐसे कड़े नियम चलाये कि उन पोपों की आज्ञा के विना सोना, उठना-बैठना, जाना-आना,

खाना-पीना आदि भी नहीं कर सकते थे। राजाओं को ऐसा निश्चय कराया कि पोपसंज्ञक कहनेमात्र के ब्राह्मण [और] साधु चाहे सो करें, उनको कभी दण्ड न देना अर्थात् उन पर मन में दण्ड देने की इच्छा [भी] न करनी चाहिये।

जब ऐसी मूर्खता हुई, तब जैसी 'पोपों' की इच्छा हुई, वैसा करने-कराने लगे। अर्थात् **इस बिगाड़ के मूल महाभारत युद्ध से पूर्व एक सहस्त्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे।** क्योंकि उस समय में ऋषि-मुनि भी थे तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे; वे बढ़ते-बढ़ते वृक्ष हो गये।

[सच्चे उपदेशकों के विना अन्धपरम्परा]

जब सच्चा उपदेश न रहा तब आर्यावर्त में अविद्या फैलने से परस्पर लड़ने-झगड़ने लगे क्योंकि—

उपदेश्योपदेष्टृत्वात् तत्सिद्धिः॥ इतरथान्धपरम्परा॥

सांख्यसूत्र हैं। [अ० ३ । सू० ७९, ८१]

जब उत्तम-उत्तम उपदेशक होते हैं तब अच्छे प्रकार धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष सिद्ध होते हैं, और जब उत्तम उपदेशक और श्रोता नहीं रहते तब अन्धपरम्परा चलती है। फिर भी जब सत्पुरुष होकर सत्योपदेश करते हैं, तभी अन्धपरम्परा नष्ट होकर प्रकाश की परम्परा चलती है।

[पोपों की कुत्सित आचरणों में प्रवृत्ति]

पुनः वे 'पोप' लोग अपनी और अपने चरणों की पूजा कराने लगे और कहने लगे कि इसी में तुम्हारा कल्याण है। जब ये लोग उनके वश में हो गये, तब प्रमाद और विषयासक्ति में निमग्न होकर गडरिये के समान झूठे गुरु और चेले फसे। विद्या, बल, बुद्धि, पराक्रम, शूरवीरतादि शुभगुण सब नष्ट होते चले गये। पश्चात् जब विषयाक्त हुए तो मांस-मद्य का सेवन गुप्त-गुप्त करने लगे।

[वाममार्ग का जन्म; पञ्च मकार की स्थापना]

पश्चात् उन्हीं में से एक **वाममार्ग** खड़ा किया। **'शिव उवाच' 'पार्वत्युवाच' 'भैरव उवाच'** इत्यादि नाम लिखकर उन [ग्रन्थों] का **'तन्त्र'** नाम धरा। उनमें ऐसी-ऐसी विचित्र लीला की बातें लिखीं कि—

मद्यं मांसं च मीनं च मुद्रा मैथुनमेव च।
एते पञ्च मकाराः स्युर्मोक्षदा हि युगे युगे॥१॥

[तुलना-कौलावलीनिर्णय ४ । २४-२८; महानिर्वाणतन्त्र १।५७, ५। २२ आदि]॥

प्रवृत्ते भैरवीचक्रे सर्वे वर्णा द्विजातयः।
निवृत्ते भैरवीचक्रे सर्वे वर्णाः पृथक्-पृथक्॥२॥

[कौलावलीनिर्णय ८।४८-४९; महानिर्वाणतन्त्र ८।१७-९; कुलार्णवतन्त्र ८।९६]॥

पीत्वा पीत्वा पुनः पीत्वा यावत्पतति भूतले।
पुनरुत्थाय वै पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते॥३॥

[कुलार्णवतन्त्र ७।१००]॥

मातृयोनिं परित्यज्य विहरेत् सर्वयोनिषु॥४॥
वेदशास्त्रपुराणानि सामान्यगणिका इव।
एकैव शाम्भवी मुद्रा गुप्ता कुलवधूरिव॥५॥

[ज्ञानसंकलनीतन्त्र; हठयोगप्रदीपिका उपदेश ४।३५]॥

देखो, इन गवरगण्ड पोपों की लीला कि जो वेदविरुद्ध महा-अधर्म के काम हैं उन्हीं को श्रेष्ठ, वाममार्गियों ने माना। मद्य, मांस, मीन अर्थात् मच्छी; मुद्रा=पूरी, बड़े, रोटी आदि चर्वण, योनि अर्थात् पात्राधार मुद्रा और पांचवां मैथुन अर्थात् पुरुष सब 'शिव' और स्त्रियां सब **'पार्वती'** के समान मानकर—

"अहं भैरवस्त्वं भैरवी ह्यावयोरस्तु सङ्गमः॥"

[कुलार्णवतन्त्र, उल्लास ८।९७, १०२]॥

चाहे कोई पुरुष वा स्त्री हो, इस ऊट-पटांग वचन को पढ़के, समागम करने में वे वाममार्गी दोष नहीं मानते। अर्थात् जिन अपवित्र स्त्रियों को छूना [उचित] नहीं, उनको अतिपवित्र उन्होंने माना है; जैसे, शास्त्रों में रजस्वला आदि स्त्रियों के स्पर्श का निषेध है, उनको वाममार्गियों ने अतिपवित्र माना है। सुनो, इनका श्लोक अंड-बंड—

रजस्वला पुष्करं तीर्थं चाण्डाली तु स्वयं काशी चर्मकारी प्रयागः
स्याद्रजकी मथुरा मता। अयोध्या पुक्कसी प्रोक्ता॥

इत्यादि [रुद्रयामलतन्त्र] ॥

रजस्वला के साथ समागम करने से जानो पुष्कर का स्नान, चाण्डाली से समागम से काशी की यात्रा, चमारी से समागम करने से मानो प्रयागस्नान, धोबी की स्त्री के साथ समागम करने से मथुरायात्रा और कंजरी के साथ लीला करने से मानो अयोध्या-तीर्थ कर आये।

[पञ्च मकारों के दूसरे कल्पित नाम]

मद्य का नाम 'तीर्थ', मांस का नाम 'शुद्धि' और 'पुष्प', मच्छी का नाम 'तृतीया' और 'जलतुम्बिका', मुद्रा का नाम 'चतुर्थी', और मैथुन का नाम 'पञ्चमी'; इसलिये ये नाम रक्खे हैं कि जिससे दूसरा न समझ सके। अपने नाम कौल, आर्द्र, वीर, शाम्भव और गण आदि रक्खे हैं और जो वाममार्ग मत में नहीं हैं, उनके 'कण्टक', 'विमुख', 'शुष्कपशु' आदि नाम धरे हैं॥१॥

और कहते हैं कि जब भैरवीचक्र [प्रवृत्त] हो तब उसमें ब्राह्मण से लेकर चाण्डाल-पर्यन्त का नाम **'द्विज'** हो जाता है और जब भैरवीचक्र से अलग हों, तब सब अपने-अपने वर्णस्थ हो जायें॥२॥

भैरवीचक्र में वाममार्गी लोग भूमि वा पट्टे पर एक बिन्दु, त्रिकोण, चतुष्कोण [वा] वर्तुलाकार बनाकर उसपर मद्य का घड़ा रखके उसकी पूजा करते हैं; फिर ऐसा मन्त्र पढ़ते हैं—

'ब्रह्मशापं विमोचय' = हे मद्य! तू ब्रह्मा आदि के शाप से रहित हो।

एक गुप्त स्थान में, कि जहां सिवाय वाममार्गी के दूसरे को नहीं आने देते, वहां स्त्री और पुरुष इकट्ठे होते हैं। [पुरुष] एक स्त्री को नंगी कर पूजते और स्त्री लोग किसी पुरुष को नंगा कर पूजती हैं। वहां कोई किसी की स्त्री, कोई अपनी वा दूसरे की कन्या, कोई किसी की वा अपनी माता, भगिनी, पूत्रवधू आदि आती हैं। पश्चात् एक पात्र में मद्य भरके, मांस और 'बड़े' आदि एक स्थाली में धर रखते हैं। उस मद्य के प्याले को, जो कि उनका आचार्य होता है, हाथ में लेकर **'भैरवोऽहम्' 'शिवोऽहम्'**= 'मैं भैरव वा शिव हूँ' बोलके पी जाता है। उसी जूठे पात्र से सब पीते हैं।

और जब किसी की स्त्री वा वेश्या को नंगी कर अथवा किसी पुरुष को नंगा कर हाथ में तलवार देके उसका नाम देवी और पुरुष का नाम महादेव धरते हैं, और उनकी उपस्थ इन्द्रिय की पूजा करते हैं, तब उस देवी वा शिव को मद्य का प्याला पिलाकर, उसी जूठे पात्र से सब लोग एक-एक प्याला पीते हैं। फिर उसी प्रकार क्रम से पी-पीके उन्मत्त होकर, चाहे कोई किसी की बहिन, कन्या वा माता हो, जिसके साथ जिसकी इच्छा हो, कुकर्म करते हैं। कभी-कभी बहुत नशा चढ़ने से जूतों-लातों से और 'मुष्टामुष्टि'=मुक्का-मुक्की, 'केशा-केशि' एक-दूसरे के [केश नोच-नोचकर] आपस में लड़ते हैं। किसी-किसी को वहीं वमन होता है। उनमें जो पहुँचा हुआ **'अघोरी'** अर्थात् सब में सिद्ध गिना जाता है, वह वमन हुई चीज को भी खा लेता है। अर्थात् इनके सबसे बड़े सिद्ध की ये बातें हैं कि—

हालां पिबति दीक्षितस्य मन्दिरे, सुप्तो निशायां गणिकागृहेषु।
विराजते कौलवचक्रवर्ती॥

[कुलार्णवतन्त्र, उल्लास ९]॥

जो 'दीक्षित' अर्थात् कलार के घर में जाके बोतल पर बोतल चढ़ावे, रण्डियों के घर में जाके उनसे कुकर्म करके सोवे इत्यादि कर्म जो निर्लज्ज, निःशंक होकर करे, वही वाममार्गियों में सर्वोपरि-मुख्य, चक्रवर्ती राजा के समान माना जाता है; अर्थात् जो बड़ा कुकर्मी वही उनमें बड़ा, और जो अच्छे काम करे और बुरे कामों से डरे वही छोटा। क्योंकि—

पाशबद्धो भवेज्जीवः पाशमुक्तः सदा शिवः॥

[ज्ञानसंकलनीतन्त्र, श्लो० ४३]॥

ऐसा 'तन्त्र' में कहते हैं कि जो लोकलज्जा, शास्त्रलज्जा, कुललज्जा, देशलज्जा आदि पाशों में बँधा है वह 'जीव', और जो निर्लज्ज होकर बुरे काम करे, वही 'सदा-शिव' है॥२॥

'उड्डीस तन्त्र' आदि में एक प्रयोग लिखा है कि एक घर में चारों ओर आलय हों। उनमें मद्य की बोतल भरके धर देवे। इस आलय से एक बोतल पीके, दूसरे आलय पर जावे। उसमें से पीके तीसरे और तीसरे में से पीके चौथे आलय पर जावे। खड़ा-खड़ा तब तक मद्य पीवे कि जब तक लकड़ी के तुल्य पृथिवी पर न गिर पड़े। फिर जब नशा उतरे तब उसी प्रकार पीके गिर पड़े। और पुनः तीसरी वार इसी प्रकार पीके, गिरके उठे,

तो उसका पुनर्जन्म न हो; अर्थात् सच तो यह है कि ऐसे मनुष्यों का पुनः मनुष्यजन्म होना ही कठिन है, अपितु वे नीच योनि में [गिरकर] बहुकालपर्यन्त पड़े रहेंगे॥३॥

वामियों के तन्त्र-ग्रन्थों में यह नियम है कि एक माता को छोड़के किसी स्त्री को न छोड़ना चाहिये' अर्थात् चाहे कन्या वा भगिनी आदि क्यों न हो; सबके साथ संगम करना चाहिये। इन वाममार्गियों में **दश महाविद्यायें** प्रसिद्ध हैं, उनमें से एक **मातङ्गी** विद्यावाला कहता है कि **'मातरमपि न त्यजेत्'** अर्थात् माता को भी समागम किये विना न छोड़ना चाहिये। और स्त्री-पुरुष के समागम समय में मन्त्र जपते हैं कि हमको सिद्धि प्राप्त हो जाय। ऐसे पागल मनुष्य भी संसार में बहुत न्यून होंगे॥४॥

जो मनुष्य झूठ चलाना चाहता है, वह सत्य की निन्दा अवश्य ही करता है। देखो, ये वाममार्गी क्या कहते हैं—'वेद, शास्त्र और पुराण ये सब सामान्य वेश्याओं के तुल्य हैं और जो यह **'शाम्भवी'** वाममार्ग की मुद्रा है, वह गुप्त-कुल की स्त्री के तुल्य है'॥५॥

[वेदों के नाम से भी वाममार्ग की लीला]

इसीलिये इन लोगों ने सर्वथा वेदविरुद्ध मत खड़ा किया है। पश्चात् इन लोगों का मत बहुत चला। तब धूर्तता करके वेदों के नाम से भी वाममार्ग की लीला थोड़ी-थोड़ी चलाई। अर्थात्—

सौत्रामण्यां सुरां पिबेत्॥१॥

[तु० शत० ब्रा०, कां० १२।३।५।२ तथा ब० ४। कं० ५]॥

प्रोक्षितं भक्षयेन्मांसम्॥२॥

[मनु० ५।२७]॥

वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति॥३॥

[तुलना-मनु० ५। ४४]॥

न मांसभक्षणे दोषो न मद्ये न च मैथुने।
प्रवृत्तिरेषा भूतानां निवृत्तिस्तु महाफला॥४॥

मनु० [५ ।५६]

'सौत्रामणी' यज्ञ में मद्य पीवे।' इसका [सत्य] अर्थ तो यह है कि सौत्रामणी यज्ञ में 'सोमरस' अर्थात् सोमवल्ली का रस पीये॥१॥

'प्रोक्षित' अर्थात् यज्ञ में मांस खाने में दोष नहीं।' ऐसी पामरपन की बातें वाममार्गियों ने चलाई हैं॥२॥

उनसे पूछना चाहिये कि जो वैदिकी हिंसा हिंसा न हो तो तुझको और तेरे कुटुम्ब को मारके होम कर डालें तो क्या चिन्ता है?॥३॥

मांसभक्षण करने, मद्य पीने, परस्त्रीगमन करने आदि में दोष नहीं है, यह कहना छोकरपन है; क्योंकि विना प्राणियों को पीड़ा दिये मांस प्राप्त ही नहीं होता, और विना अपराध के पीड़ा देना धर्म का काम नहीं। मद्यपान का तो सर्वथा निषेध ही है; क्योंकि अब तक वाममार्गियों के ग्रन्थों के

सिवाय किसी ग्रन्थ में नहीं लिखा, किन्तु सर्वत्र निषेध है। और विना विवाह के मैथुन में भी दोष है, इसको निर्दोष कहनेवाला सदोष है॥४॥

[गवादि पशुओं को मारके होम कराना]

ऐसे-ऐसे वचन ऋषियों के ग्रन्थों में भी डालके, कितने ही ऋषि-मुनियों के नाम से ग्रन्थ बनाकर **'गोमेध'**, **'अश्वमेध'** नाम के यज्ञ भी कराने लगे थे। अर्थात् 'इन पशुओं को मारके होम करने से यजमान और पशु को स्वर्ग की प्राप्ति होती है' ऐसी प्रसिद्धि की। निश्चय तो यह है कि जो ब्राह्मणग्रन्थों में **अश्वमेध**, **गोमेध**, **नरमेध** आदि शब्द हैं, उनका ठीक-ठीक अर्थ नहीं जाना है; क्योंकि जो जानते तो ऐसा अनर्थ क्यों करते?

[अश्वमेध गोमेध आदि का शुद्ध अर्थ]

प्रश्न—अश्वमेध, गोमेध, नरमेध आदि शब्दों का अर्थ क्या है?

उत्तर—इनका अर्थ यह है कि—

राष्ट्रं वा अश्वमेधः॥

शतपथब्राह्मणे [१३।१।६।३]॥

अग्निर्वा अश्वः॥

[३।६।२।५]॥

आज्यं मेधः॥ ["मेधो वा आज्यम्"

तैत्ति०ब्रा० ३।९।१२।१]॥

अन्नꣳहि गौः॥

[शत० ब्रा० ४।३।१।२५]॥

घोड़े, गाय आदि पशुओं तथा मनुष्यों को मारके होम करना कहीं नहीं लिखा। किन्तु यह भी बात वाममार्गियों ने चलाई [है] **और जहां-जहां लेख है, वह-वह भी वाममार्गियों ने प्रक्षेप किया है।** देखो, राजा द्वारा न्याय-धर्म से प्रजा का पालन करना, विद्यादि का देनेहारा [होना], यजमान होकर अग्नि में घी आदि का होम करना **'अश्वमेध'**; अन्न, इन्द्रियाँ, किरण, पृथिवी आदि को पवित्र रखना **'गोमेध'**; जब मनुष्य मर जाय, तब उसके शरीर का विधिपूर्वक दाह करना **'नरमेध'** कहाता है।

[पशुयाग से यजमान व पशु को स्वर्ग नहीं]

प्रश्न—यज्ञकर्त्ता कहते हैं कि 'यज्ञ करने से यजमान और पशु स्वर्गगामी [होते हैं]' तथा होम करके फिर पशु को जीवित करते थे; यह बात सच्ची है वा नहीं?

उत्तर—नहीं। जो स्वर्ग को जाते हों तो ऐसी बात कहनेवाले को मार, होमकर, स्वर्ग में पहुँचाना चाहिये; वा उसके प्रिय माता, पिता, स्त्री और पुत्रादि को मार होमकर स्वर्ग में क्यों नहीं पहुँचाते? वा वेदी में से पुन: क्यों नहीं जिला लेते?

[मन्त्रों का अर्थ पशु-मारने-परक नहीं है]

प्रश्न—जब यज्ञ करते हैं तब वेदों के मन्त्र पढ़ते हैं। जो वेदों में न होते तो कहां से पढ़ते?

उत्तर—मन्त्र किसी को कहीं पढ़ने से नहीं रोकता, क्योंकि वह एक शब्द है। परन्तु उनका अर्थ ऐसा नहीं है कि 'पशु को मारके होम करना।' जैसे **'अग्नये स्वाहा'** [गो०गृ०सू० १।८।२४] इत्यादि मन्त्रों का अर्थ है—'अग्नि में हवि, पुष्ट्यादिकारक घृतादि उत्तम पदार्थों का होम करने से वायु, वृष्टि, जल शुद्ध होकर जगत् को सुखकारक होते हैं, परन्तु इन सत्य अर्थों को वे मूढ़ नहीं समझते थे; क्योंकि **जो स्वार्थबुद्धि होते हैं, वे अपने स्वार्थ को पूरा करने के अतिरिक्त दूसरा कुछ भी नहीं जानते-मानते।**

[पोपों के अनाचार से बौद्ध-जैन मत का प्रादुर्भाव]

जब इन पोपों का ऐसा अनाचार देखा, और दूसरा, मरे का तर्पण-श्राद्धादि करने को देखकर एक महाभयंकर वेदादि-शास्त्रनिन्दक, 'बौद्ध वा जैन' मत प्रचलित हुआ है। सुनते हैं कि इसी देश में गोरखपुर का राजा था, उससे पोपों ने यज्ञ कराया। उसकी प्रिय राणी का समागम घोड़े के साथ कराने से मरने पर, वैराग्यवान् होकर अपने पुत्र को राज्य दे, साधु हो, पोपों की पोल निकालने लगा। इसी [प्रकार के कारणों से नास्तिक मत] के शाखारूप **'चार्वाक'** और **'आभाणक'** मत भी हुए थे। उन्होंने इस प्रकार श्लोक बनाये हैं—

पशुश्चेन्निहतः स्वर्गं ज्योतिष्टोमे गमिष्यति।
स्वपिता यजमानेन तत्र कथं न हिंस्यते॥१॥
मृतानामिह जन्तूनां श्राद्धं चेत्तृप्तिकारणम्।
गच्छतामिह जन्तूनां व्यर्थं पाथेयकल्पनम्॥२॥

[सर्वदर्शनसंग्रह, चार्वाकदर्शन, श्लो० ४-५]॥
जो पशु मारकर अग्नि में होम करने से वह स्वर्ग को जाता है, तो यजमान अपने पिता आदि को मारके स्वर्ग में क्यों नहीं भेजता?॥१॥

जो मरे हुए मनुष्यों की तृप्ति के लिये श्राद्ध और तर्पण होता है, तो विदेश में जानेवाले मनुष्य को मार्ग का खर्च खाने-पीने के लिये बाँधना व्यर्थ है; क्योंकि जब मृतक को श्राद्ध-तर्पण से अन्न-जल पहुंचता है, तो जीते हुए परदेश में रहनेवालों वा मार्ग में चलनेहारों को, घर में बनी हुई रसोई का पत्तल परोस, लोटा भरके उसके नाम पर रखने से, क्यों नहीं पहुंचता? जो जीते हुये दूर देश अथवा दश हाथ पर दूर बैठे हुये को दिया हुआ नहीं पहुंचता तो मरे हुए के पास किसी प्रकार नहीं पहुँच सकता॥२॥

[बौद्ध-जैन मत की वृद्धि]

उनके ऐसे युक्तिसिद्ध उपदेशों को [प्रजाजन] मानने लगे और उनका मत बढ़ने लगा। जब बहुतसे राजा-रईस उनके मत में हुए, तब पोप जी भी उनकी ओर झुके; क्योंकि इनको जिधर गफ्फा अच्छा मिले, वहीं चले जायें। झट जैन बनने चले। **जैनियों में भी और प्रकार की पोपलीला बहुत है, सो १२ वें समुल्लास में लिखेंगे।** बहुतों ने इनका मत स्वीकार किया परन्तु कितनेक ही जो पर्वत, काशी, कन्नौज, पश्चिम, दक्षिण देशवाले थे, उन्होंने जैनों का मत स्वीकार नहीं किया था।

[जैनियों द्वारा आर्यों का उत्पीड़न, और वेदादि का नाश]

वे जैनी वेद का अर्थ न जानकर, बाहर की पोपलीला को भ्रान्ति से वेदों पर मानकर, वेदों की भी निन्दा करने लगे। उनके पठन-पाठन,

यज्ञोपवीतादि और ब्रह्मचर्यादि नियमों का भी नाश किया। जहाँ जितने पुस्तक वेदादि के पाये, नष्ट किये। आर्यों पर बहुत-सी राजसत्ता भी चलाई, दु:ख दिया। जब उनको भय-शंका न रही, तब अपने मतवाले गृहस्थ और साधुओं की प्रतिष्ठा और वेदमार्गियों का अपमान [करने लगे] और पक्षपात से दण्ड भी देने लगे; और आप ऐशो-आराम और घमण्ड में आ फूलकर, फिरने लगे। ऋषभदेव से लेके महावीर-पर्यन्त अपने तीर्थंकरों की बड़ी-बड़ी मूर्त्तियाँ बनाकर पूजा करने लगे अर्थात् **पाषाणादि मूर्त्तिपूजा की जड़ जैनियों से चली,** परमेश्वर का मानना न्यून हुआ, पाषाणादि मूर्तिपूजा में लग गये। ऐसा तीन-सौ वर्ष पर्यन्त आर्यावर्त में जैनों का राज रहा। प्राय: आर्य लोग उनमें मिलकर शूद्रप्राय: और वेदार्थ-ज्ञान से शून्य हो गये थे। इस बात को अनुमान से कोई **अढ़ाई सहस्त्र वर्ष** व्यतीत हुए होंगे।

[शङ्कराचार्य का प्रादुर्भाव]

बाइस-सौ वर्ष हुये कि एक **'शंकराचार्य'** द्रविड़देशोत्पन्न ब्राह्मण, ब्रह्मचर्य से व्याकरणादि सब शास्त्रों को पढ़कर सोचने लगे कि 'अहह! सत्य आस्तिक वेद मत का छूटना और जैन नास्तिक मत का चलना, बड़ी ही हानि की बात हुई है, इसको हटाना चाहिये।' शंकराचार्य ने शास्त्र तो पढ़े ही थे, परन्तु जैन मत के भी पुस्तक पढ़े थे; और उनकी युक्ति भी बहुत प्रबल थी। उन्होंने विचारा कि इसको किस प्रकार हटावें? निश्चय हुआ कि उपदेश और शास्त्रार्थ करने से [जैन मत से] ये लोग हटेंगे।

[जैन मत के निराकरण का प्रयत्न]

ऐसा विचार कर उज्जैन नगरी में आये। वहाँ उस समय **'सुधन्वा'** राजा था, जो जैनियों के ग्रन्थ और कुछ संस्कृत भी पढ़ा था। वहाँ जाकर वेद का उपदेश करने लगे और राजा से मिलकर कहा कि आप संस्कृत और जैनियों के भी ग्रन्थों को पढ़े हो, और जैन मत को मानते हो, इसलिये मैं आपको कहता हूँ कि जैनियों के पण्डितों के साथ मेरा शास्त्रार्थ कराइये; इस प्रतिज्ञा पर कि जो हारे सो जीतनेवाले का मत स्वीकार करले और आप भी जीतनेवाले का मत स्वीकार कीजियेगा।'

यद्यपि सुधन्वा जैन मत में थे तथापि संस्कृत-ग्रन्थ पढ़ने से उनकी बुद्धि में विद्या का कुछ प्रकाश था। इससे उनके मन में अत्यन्त पशुता नहीं छाई थी, **क्योंकि जो विद्वान् होता है वह सत्य और असत्य की परीक्षा करके, सत्य को ग्रहण कर लेता है और असत्य को छोड़ देता है।** जब तक सुधन्वा राजा को बड़ा विद्वान् उपदेशक नहीं मिला था तब तक सन्देह में थे कि इनमें कौन-सा सत्य और कौन-सा असत्य है? जब शंकराचार्य की यह बात सुनी, तो बड़ी प्रसन्नता के साथ बोले कि हम शास्त्रार्थ कराके सत्यासत्य का निर्णय अवश्य करावेंगे।

[जैन विद्वानों से शङ्कराचार्य का शास्त्रार्थ]

जैनियों के पण्डितों को दूर-दूर से बुलाकर सभा कराई। उसमें शंकराचार्य का 'वेदमत' और जैनियों का 'वेदविरुद्ध मत' था, अर्थात् शंकराचार्य का पक्ष वेदमत का स्थापन और जैनियों का खण्डन [था]; जैनियों का पक्ष अपने मत का स्थापन और वेद का खण्डन था। शास्त्रार्थ कई दिनों तक

हुआ। जैनियों का मत यह था कि—'सृष्टि का कर्त्ता अनादि ईश्वर कोई नहीं; ये जगत् और जीव अनादि हैं, इन दोनों की उत्पत्ति और नाश कभी नहीं होता।' इससे विरुद्ध शंकराचार्य का मत था कि—'अनादि सिद्ध परमात्मा ही जगत् का कर्त्ता है; यह जगत् और जीव झूठा है; क्योंकि उसी परमेश्वर ने अपनी माया से जगत् बनाया; वही धारण और प्रलय करता है; और यह जीव और प्रपञ्च स्वप्नवत् हैं; परमेश्वर आप ही सब रूप होकर लीला कर रहा है।'

[शास्त्रार्थ में जैनियों का पराजय]

बहुत दिनों तक शास्त्रार्थ होता रहा, परन्तु अन्त में युक्ति और प्रमाण से जैनियों का मत खण्डित और शंकराचार्य का मत अखण्डित रहा। तब उन जैनियों के पण्डित और सुधन्वा राजा ने वेदमत को स्वीकार कर लिया, जैनमत को छोड़ दिया। पुनः बड़ा हल्ला हुआ और सुधन्वा ने अपने मित्र राजाओं को लिखकर शंकराचार्य से शास्त्रार्थ कराया; परन्तु जैनियों का पराजय-समय होने से पराजित होते गये। पश्चात् शंकराचार्य के आर्यावर्त में सर्वत्र घूमने का प्रबन्ध सुधन्वादि राजाओं ने कर दिया और उनकी रक्षा के लिये साथ में नौकर-चाकर भी रख दिये।

[वैदिक मत का पुनरुद्धार]

उसी समय से सबके यज्ञोपवीत होने लगे और वेदों का पठन-पाठन भी चला। दस वर्ष के भीतर सर्वत्र आर्यावर्त में घूमकर जैनियों का खण्डन और वेदों का मण्डन किया; परन्तु शंकराचार्य के समय में 'जैन-विध्वंस' [हुआ] अर्थात् जैनियों की जितनी मूर्तियाँ टूटी हुई [भूमि में से] निकलती हैं, वे शंकराचार्य के समय में टूटी थीं, और जो विना टूटी

निकलती हैं वे जैनियों ने भूमि में गाड़ दी थीं कि तोड़ी न जायें। वे अब तक कहीं-कहीं भूमि में से निकलती हैं।

शंकराचार्य के पूर्व **'शैवमत'** भी थोड़ा-सा प्रचरित था, उसका भी खण्डन किया। **'वाममार्ग'** का भी खण्डन किया। उस समय इस देश में धन बहुत था और स्वदेशभक्ति भी थी। जैनियों के मन्दिर शंकराचार्य और सुधन्वा राजा ने नहीं तुड़वाये थे, क्योंकि उनमें वेदादि की पाठशाला करने की इच्छा थी।

[जैनमतानुयायियों द्वारा शङ्कराचार्य को विष प्रदान]

जब वेदमत का स्थापन हो चुका, और विद्या-प्रचार करने का विचार करते ही थे, उतने में, दो जैन जो ऊपर से वेदमतस्थ और भीतर से कट्टर जैन थे, अर्थात् कपटमुनि थे, शंकराचार्य उन पर अतिप्रसन्न थे; उन दोनों ने अवसर पाकर शंकराचार्य को ऐसी विषयुक्त वस्तु खिलाई कि उनकी भूख मन्द हो गई। पश्चात् शरीर में बहुत-से फोड़े-फुन्सी होकर छः महीने के भीतर शरीर छूट गया।

[शङ्कराचार्य के उत्तराधिकारी]

तब सब निरुत्साहित हो गये और जो विद्या का प्रचार होनेवाला था, वह भी न होने पाया।

जो-जो उन्होंने **'शारीरक-भाष्य'** -आदि बनाये थे, उनका प्रचार शंकराचार्य के शिष्य करने लगे, अर्थात् जो जैनियों के खण्डन के लिये

"ब्रह्म सत्य, जगत् मिथ्या और जीव-ब्रह्म की एकता" कथन की थी, उसका उपदेश करने लगे। दक्षिण में **शृङ्गेरी**, पूर्व में **भूगोवर्धन**, उत्तर में **जोशी** और द्वारिका में **शारदामठ** बाँधकर शंकराचार्य के शिष्य महन्त बनकर और श्रीमान् होकर आनन्द करने लगे; क्योंकि शंकराचार्य के पश्चात् उनके शिष्यों की बड़ी प्रतिष्ठा होने लगी।

[क्या ब्रह्म सत्य जगत्मिथ्या शङ्कर का स्वमत था?]

अब इसमें विचार करना चाहिये कि जो **"जीव-ब्रह्म की एकता, जगत् मिथ्या"** शङ्कराचार्य का निज मत था, तो वह अच्छा मत नहीं, और जो जैनियों के खण्डन के लिये उस मत का स्वीकार किया हो, तो कुछ अच्छा है।

[नवीन वेदान्तियों के मत का विवेचन]

नवीन वेदान्तियों का मत ऐसा है—

प्रश्न—जगत् स्वप्नवत् है; रज्जु में सर्प, सीप में चाँदी, मृगतृष्णिका में जल, गन्धर्वनगर- इन्द्रजालवत्, यह संसार 'झूठा' है, एक ब्रह्म ही सच्चा है।

सिद्धान्ती—'झूठा' तुम किसको कहते हो?

नवीन वेदान्ती—'जो वस्तु न हो और प्रतीत होवे।'

सिद्धान्ती—जो वस्तु ही नहीं, उसकी प्रतीति कैसे हो सकती है?

नवीन०—'अध्यारोप' से।

[अध्यास और अध्यारोप का लक्षण ठीक नहीं]

सिद्धान्ती—'अध्यारोप' किसको कहते हो?

नवीन०—'वस्तुन्यवस्त्वारोपणमध्यासः'

[तु०-सदानन्दविरचित वेदान्तसार खण्ड ६]

'अध्यारोपापवादाभ्यां निष्प्रपञ्चं प्रपञ्च्यते'।

[विद्यारण्यविरचित अनुभूतिप्रकाश अ० १। श्लो० १८]

=पदार्थ कुछ और हो, उसमें अवस्तु का आरोपण करना **'अध्यास'** वा **अध्यारोप** और उसका निराकरण करना **'अपवाद'** कहाता है। इन दोनों से प्रपञ्चरहित ब्रह्म में प्रपञ्चरूप जगत् [का] विस्तार करते हैं।

सिद्धान्ती—तुम रज्जु को वस्तु और सर्प को अवस्तु मान कर इस भ्रमजाल में पड़े हो। क्या सर्प वस्तु नहीं है? जो कहो कि रज्जु में नहीं तो देशान्तर में [है]; और उसका संस्कारमात्र हृदय में है। फिर वह सर्प भी अवस्तु नहीं रहा। वैसे ही स्थाणु में पुरुष, सीप में चांदी आदि की व्यवस्था

समझ लेना; और स्वप्न में भी जिनका भान होता है, वे देशान्तर में हैं और उनके संस्कार आत्मा में भी हैं। इसलिये वह स्वप्न भी वस्तु में अवस्तु के आरोपण के समान नहीं।

नवीन॰—जो कभी न देखा, न सुना, जैसा कि अपना शिर कटा है और आप रोता है, जल की धारा ऊपर चली जाती है, जो कभी नहीं हुआ था, [वह स्वप्न में] देखा जाता है, वह सत्य क्योंकर हो सके?

सिद्धान्ती—यह भी दृष्टान्त तुम्हारे पक्ष को सिद्ध नहीं करता, क्योंकि विना देखे-सुने संस्कार नहीं होता। संस्कार के विना स्मृति और स्मृति के विना साक्षात् [स्वप्न में और आत्मा में] अनुभव नहीं होता। जब किसी ने सुना वा देखा कि अमुक का लड़ाई में शिर कटा और उसके भाई वा बाप आदि को प्रत्यक्ष रोते देखा। और फुहारे का जल ऊपर चढ़ते देखा वा सुना, उसका संस्कार उसी के आत्मा में होता है। जब यह जाग्रत के पदार्थ से अलग होके देखता है तब अपने आत्मा में उन्हीं पदार्थों को, जिनको देखा वा सुना होता है, देखता है। जब अपने में ही देखता है तब जानो अपना शिर कटा, आप रोता और ऊपर जाती जल की धारा को देखता है। यह भी वस्तु में अवस्तु के आरोपण के सदृश नहीं, किन्तु जैसे नक़्शा निकालनेवाला पूर्व दृष्ट, श्रुत वा किये हुओं को आत्मा में से निकालकर कागज पर लिख देता है अथवा प्रतिबिम्ब का उतारनेवाला बिम्ब को देख, आत्मा में आकृति को धर, बराबर लिख देता है, [वैसे

आत्मा पूर्व दृष्ट-श्रुत-कृत का अनुभव करता है]।

हाँ, इतना है कि कभी-कभी स्वप्न में स्मरणयुक्त प्रतीति, जैसे कि अपने अध्यापक को देखता है, और [फिर कभी बहुत काल [बाद उस वस्तु को] देखने और सुनने पर अतीत ज्ञान का साक्षात्कार करता है; तब स्मरण नहीं रहता कि जो मैंने उस समय देखा, सुना वा किया था उसी को मैं देखता, सुनता वा करता हूं। जैसा जाग्रत में स्मरण करता है, वैसा स्वप्न में नियमपूर्वक नहीं होता। देखो, जन्मान्ध को रूप का स्वप्न नहीं आता। इसलिये तुम्हारा **'अध्यास'** और **'अध्यारोप'** का लक्षण झूठा है। और जो वेदान्ती लोग **'विवर्तवाद'** अर्थात् रज्जु में सर्पादि के भान होने का दृष्टान्त, ब्रह्म में जगत् के भान होने में देते हैं, वह भी ठीक नहीं।

नवीन०—अधिष्ठान के विना **अध्यस्त** प्रतीत नहीं होता। जैसे रज्जु न हो तो सर्प का भान भी नहीं हो सकता। जैसे रज्जु में सर्प तीन काल में नहीं है परन्तु अन्धकार और कुछ प्रकाश के मेल में अकस्मात् रज्जु को देखने से सर्प का भ्रम होकर [मनुष्य] भय से कँपता है। जब उसको दीप आदि से देख लेता है, उसी समय भ्रम और भय निवृत्त हो जाता है। वैसे ब्रह्म में जो जगत् की मिथ्या प्रतीति हुई है, ब्रह्म के साक्षात्कार होने पर उस जगत् की वह निवृत्ति और ब्रह्म की प्रतीति होती है, जैसे कि सर्प की निवृत्ति और रज्जु की प्रतीति होती है।

सिद्धान्ती—ब्रह्म में जगत् का भान किसको हुआ?

नवीन०—जीव को।

सिद्धान्ती—जीव कहाँ से हुआ?

नवीन०—अज्ञान से।

सिद्धान्ती—अज्ञान कहां से हुआ और कहां रहता है?

नवीन०—अज्ञान अनादि है और ब्रह्म में रहता है।

सिद्धान्ती—ब्रह्म में ब्रह्म का अज्ञान हुआ वा किसी अन्य का? और वह अज्ञान किसको हुआ?

नवीन०—**'चिदाभास'** को।

सिद्धान्ती—**'चिदाभास'** का स्वरूप क्या है?

नवीन०—ब्रह्म। ब्रह्म को ब्रह्म का अज्ञान अर्थात् अपने स्वरूप को आप ही भूल जाता है।

सिद्धान्ती—उसके भूलने में निमित्त क्या है?

नवीन०—अविद्या।

सिद्धान्ती—अविद्या सर्वव्यापी सर्वज्ञ का गुण है, वा अल्पज्ञ का?

नवीन०—अल्पज्ञ का।

सिद्धान्ती—तो तुम्हारे मत में विना एक अनन्त, सर्वज्ञ चेतन' के दूसरा कोई चेतन है वा नहीं? और अल्पज्ञ कहां से आया? हां, जो अल्पज्ञ 'चेतन' ब्रह्म से भिन्न मानो तो ठीक है। जब एक ठिकाने ब्रह्म को अपने स्वरूप का अज्ञान हो तो सर्वत्र अज्ञान फैल जाये। जैसे शरीर में फोड़े की पीड़ा सब शरीर के अवयवों को निकम्मा कर देती है, इसी प्रकार ब्रह्म भी एकदेश में अज्ञानी और क्लेशयुक्त हो तो सब ब्रह्म अज्ञानी और पीड़ा के अनुभवयुक्त हो जाय।

नवीन०—यह सब **'उपाधि'** का धर्म है, ब्रह्म का नहीं।

सिद्धान्ती—'उपाधि' जड़ है वा चेतन? और सत्य है वा असत्य?

नवीन०—अनिर्वचनीय है, अर्थात् जिसको जड़ वा चेतन, सत्य वा असत्य नहीं कह सकते।

सिद्धान्ती—यह तुम्हारा कहना **'वदतो व्याघातः'** के तुल्य है; क्योंकि [पहले] कहते हो अविद्या है, [फिर कहते हो] "जिसको जड़-चेतन, सत्य-असत्य नहीं कह सकते।" यह ऐसी बात है कि जैसे सोने में पीतल मिला हो, उसको सर्राफ के पास परीक्षा करावे कि यह सोना है वा पीतल। तब यही कहेगा कि इसको हम न सोना, न पीतल कह सकते हैं, किन्तु इसमें दोनों धातुयें मिली हैं।

नवीन०—देखो, जैसे घटाकाश, मठाकाश, मेघाकाश और महदाकाश-उपाधि अर्थात् घड़ा, मठ और मेघ के होने से [आकाश के रूप] भिन्न-भिन्न प्रतीत होते हैं, वास्तव में महदाकाश ही है। ऐसे ही माया, अविद्या, समष्टि, व्यष्टि और अन्तःकरणों की उपाधियों से ब्रह्म अज्ञानियों को पृथक्-पृथक् प्रतीत हो रहा है; वास्तव में एक ही है। देखो, अग्रिम प्रमाण में क्या कहा है—

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।

एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च॥

[कठ उप०, वल्ली ५ । मं० ९]॥

जैसे अग्नि लम्बे, चौड़े, गोल, छोटे, बड़े सब आकृतिवाले पदार्थों में व्यापक होकर तदाकार दीखता है, किन्तु उनसे पृथक् है, वैसे सर्वव्यापक परमात्मा अन्तःकरणों में व्यापक होके अन्तःकरणाकार हो रहा है, परन्तु उनसे अलग है।

सिद्धान्ती—यह भी तुम्हारा कहना व्यर्थ है; क्योंकि जैसे घट, मठ, मेघ और आकाश को भिन्न मानते हो, वैसे [ही] कारण-कार्य-रूप जगत् और जीव को ब्रह्म से और ब्रह्म को इनसे भिन्न मान लो।

[प्रतिबिम्ब साकार का पड़ता है, निराकार का नहीं]

नवीन०—जैसे अग्नि सबमें प्रविष्ट होकर देखने में तदाकार दीखता है, इसी प्रकार परमात्मा जड़ और जीव में व्यापक होकर, जड़ और जीवाकारयुक्त अज्ञानियों को दीखता है। वास्तव में ब्रह्म न जड़ और न जीव है। जैसे सहस्र जल के कुंडे धरे हों, उनमें सूर्य के सहस्र प्रतिबिम्ब दीखते हैं, वस्तुतः सूर्य एक है। कुंडों के नष्ट होने से, जल के चलने वा फैलने से सूर्य न नष्ट होता, न चलता और न फैलता [है]; इसी प्रकार अन्तःकरणों में ब्रह्म का आभास जिसको **'चिदाभास'** कहते हैं, पड़ा है। जब तक अन्तःकरण है, तभी तक जीव है। जब अन्तःकरण ज्ञान से नष्ट होता है, तब जीव ब्रह्मस्वरूप है। इस **'चिदाभास'** को अपने ब्रह्मस्वरूप का अज्ञान [जब तक रहता है और जब तक] कर्ता-भोक्ता, सुखी-दुःखी,

पापी-पुण्यात्मा, जन्म-मरण [की स्थितियों को] अपने में आरोपित करता है, तब-तक संसार के बन्धनों से नहीं छूटता।

सिद्धान्ती—यह दृष्टान्त तुम्हारा व्यर्थ है; क्योंकि सूर्य आकारवाला, जल-कुंडे भी आकारवाले हैं। सूर्य जल-कुंडों से भिन्न और सूर्य से जल-कुंडे भिन्न हैं। तभी प्रतिबिम्ब पड़ता है। यदि निराकार होता तो उसका प्रतिबिम्ब कभी न होता। जैसे परमेश्वर निराकार [है], सर्वत्र आकाशवत् व्यापक होने से ब्रह्म से कोई पदार्थ वा पदार्थों से ब्रह्म पृथक् नहीं हो सकता और व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध से एक भी नहीं हो सकता; अर्थात् **अन्वय-व्यतिरेकभाव** से देखने से व्याप्य-व्यापक मिले हुए और [वस्तुतः] सदा पृथक् रहते हैं। जो एक हों तो अपने में व्याप्य-व्यापकभाव सम्बन्ध कभी नहीं घट सकता। सो **'बृहदारण्यक'** के अन्तर्यामी ब्राह्मण में स्पष्ट लिखा है। और ब्रह्म का आभास भी नहीं पड़ सकता, क्योंकि विना आकार के आभास का होना असम्भव है।

[अन्तःकरणोपाधि से ब्रह्म को जीव मानना ठीक नहीं]

जो **अन्तःकरणोपाधि** से ब्रह्म को जीव मानते हो, सो तुम्हारी बात बालक के समान है; क्योंकि अन्त:करण चलायमान, खण्ड-खण्ड [है] और ब्रह्म अचल और अखण्ड है। यदि तुम ब्रह्म और जीव को पृथक्-पृथक् न मानोगे तो इसका उत्तर दीजिये कि जहाँ-जहाँ अन्त:करण चलता जायेगा, वहाँ-वहाँ के ब्रह्म को अज्ञानी और जिस-जिस देश को छोड़ेगा, वहाँ-वहाँ के ब्रह्म को ज्ञानी कर देवेगा वा नहीं? जैसे छाता प्रकाश के बीच में जहाँ-जहाँ जाता है वहाँ-वहाँ के प्रकाश को आवरणयुक्त [कर देता है]

और जहाँ-जहाँ से हटता है वहाँ-वहाँ के प्रकाश को आवरणरहित कर देता है, वैसे ही अन्तःकरण ब्रह्म को क्षण-क्षण में अज्ञानी, ज्ञानी, बद्ध और मुक्त करता जायगा। और अखण्ड ब्रह्म के एकदेश में आवरण का प्रभाव सर्वदेश में होने से सब ब्रह्म अज्ञानी हो जायगा, क्योंकि वह चेतन है।

और मथुरा में अन्तःकरणस्थ जिस ब्रह्म ने जो चीज=वस्तु देखी उसका स्मरण उसी अन्तःकरणस्थ [ब्रह्म] से काशी में नहीं हो सकता। क्योंकि—

'अन्यदृष्टमन्यो न स्मरतीति न्यायात्'।

[योगदर्शन, विभूतिपाद, सूत्र १४, व्यासभाष्य]

='और के देखे का स्मरण और को नहीं होता।' जिस **'चिदाभास'** ने मथुरा में देखा वह **'चिदाभास'** काशी में नहीं रहता, क्योंकि जो मथुरास्थ अन्तःकरण का प्रकाशक है, वह काशीस्थ ब्रह्म नहीं होता।

जो ब्रह्म ही जीव है, पृथक् नहीं; तो सब जीवों को सर्वज्ञ होना चाहिये। यदि ब्रह्म का प्रतिबिम्ब [अन्तःकरण से] पृथक् है, तो **प्रत्यभिज्ञा** अर्थात् पूर्व दृष्ट-श्रुत का ज्ञान किसी को नहीं हो सकेगा। जो कहो कि ब्रह्म एक है इसलिये स्मरण होता है, तो एक ठिकाने अज्ञान वा दुःख होने से सब ब्रह्म को अज्ञान वा दुःख हो जाना चाहिये। और ऐसे दृष्टान्तों से

नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्त-स्वभाव ब्रह्म को तुमने अशुद्ध, अज्ञानी और बद्ध कर दिया है, और अखण्ड को खण्ड-खण्ड कर दिया [है।]

नवीन०—निराकार का भी आभास होता है, जैसा कि दर्पण वा जलादि में आकाश का आभास पड़ता है, वह नीला वा किसी अन्य प्रकार गम्भीर=गहरा दीखता है, वैसे ब्रह्म का भी सब अन्तःकरणों में आभास पड़ता है।

सिद्धान्ती—जब आकाश में रूप ही नहीं है, तो उसको आँख से कोई भी नहीं देख सकता। जो पदार्थ दीखता ही नहीं, वह दर्पण और जलादि में कैसे दीखेगा? गहरा वा छितरा साकार वस्तु दीखता है, निराकार नहीं।

नवीन०—तो फिर जो यह ऊपर नीला-सा दीखता है, उसी का आदर्श वा जल में भान होता है, वह क्या पदार्थ है?

सिद्धान्ती—वे पृथिवी से उड़कर [ऊपर गये] जल, पृथिवी और अग्नि के त्रसरेणु हैं। जहाँ से वर्षा होती है, वहाँ जल न हो तो वर्षा कहाँ से होवे? इसलिये जो दूर-दूर तम्बू के समान दीखता है, वह जल का चक्र है। जैसे कुहरा दूर से घनाकार दीखता है और निकट से छितरा, और [जैसे] डेरे के समान भी दीखता है, वैसे आकाश में जल दीखता है।

नवीन०—क्या हमारे रज्जु, सर्प और स्वप्नादि के दृष्टान्त मिथ्या हैं?

सिद्धान्ती—नहीं, तुम्हारी समझ मिथ्या है, सो हमने पूर्व लिख दिया। भला, यह तो कहो कि प्रथम अज्ञान किसको होता है?

नवीन०—ब्रह्म को।

सिद्धान्ती—ब्रह्म अल्पज्ञ है वा सर्वज्ञ?

नवीन०—न सर्वज्ञ और न अल्पज्ञ, क्योंकि सर्वज्ञता और अल्पज्ञता उपाधिसहित में होती है।

सिद्धान्ती—'उपाधि' से सहित कौन है?

नवीन०—ब्रह्म।

सिद्धान्ती—तो ब्रह्म ही सर्वज्ञ और अल्पज्ञ हुआ। तो तुमने सर्वज्ञ और अल्पज्ञ का निषेध क्यों किया था? जो कहो कि **'उपाधि'** कल्पित अर्थात् मिथ्या है, तो कल्पक अर्थात् कल्पना करनेवाला कौन है?

नवीन०—जीव-ब्रह्म है; वा अन्य?

सिद्धान्ती—अन्य है; क्योंकि जो ब्रह्मस्वरूप है, और जिसने मिथ्या कल्पना की, वह ब्रह्म ही नहीं हो सकता। जिसकी कल्पना मिथ्या है, वह सच्चा कब हो सकता है?

नवीन०—हम सत्य और असत्य को झूठ मानते हैं और वाणी से बोलना भी मिथ्या है।

सिद्धान्ती—जब तुम झूठ कहने और माननेवाले हो, तो झूठे क्यों नहीं?

नवीन०—रहो; झूठ और सच हमारे में ही कल्पित है और हम दोनों के साक्षी—अधिष्ठान हैं।

सिद्धान्ती—जब तुम सत्य और झूठ के आधार हुए तो साहूकार और चोर के सदृश तुम्हीं हुए। इससे तुम प्रामाणिक भी नहीं रहे; क्योंकि **प्रामाणिक वह होता है जो सर्वदा सत्य माने, सत्य बोले, सत्य करे; झूठ न माने, झूठ न बोले, झूठ न करे।** जब तुम अपनी बात को आप ही झूठ करते हो तो तुम अपने आप मिथ्यावादी हो।

नवीन०—अनादि **'माया'** जो कि ब्रह्म के आश्रय [में रहती है] और ब्रह्म का ही आवरण करती है, उसको मानते हो, वा नहीं?

सिद्धान्ती—नहीं मानते; क्योंकि तुम **'माया'** का अर्थ ऐसा करते हो कि **'जो वस्तु न हो और भासे है',** तो इस बात को वह मानेगा जिसके **'हृदय की आँख फूट गई'** हो। क्योंकि जो वस्तु नहीं, उसका भासमान होना सर्वथा असम्भव है; जैसे वन्ध्या के पुत्र का प्रतिबिम्ब कभी नहीं हो सकता। और यह **'सन्मूलाः सोम्येमाः सर्वाः प्रजाः'** इत्यादि छान्दोग्य [आदि] उपनिषदों [प्रपा० ६। खं० ८। प्रवाक ४] के वचनों से विरुद्ध कहते हो।

नवीन०—क्या तुम वसिष्ठ, शंकराचार्य आदि और निश्चलदास पर्यन्त [जो पण्डित हुए हैं उन] से अधिक पण्डित हो? उन्होंने जो लिखा है, सो विचार करके लिखा है, वे तुमसे बड़े पण्डित थे।

सिद्धान्ती—तुमको क्या दीखता है?

नवीन०—हमको तो वसिष्ठ, शंकराचार्य और निश्चलदास आदि अधिक [पण्डित] दीखते हैं।

सिद्धान्ती—तुम विद्वान् हो वा अविद्वान्?

नवीन०—हम भी कुछ विद्वान् हैं।

सिद्धान्ती—अच्छा, तो आओ, वसिष्ठ, शंकराचार्य और निश्चलदास आदि के पक्ष का हमारे सामने स्थापन करो, हम खण्डन करते हैं। जिसका पक्ष सिद्ध हो, वही बड़ा है। जो उनकी और तुम्हारी बात अखण्डनीय होती तो तुम उनकी युक्तियाँ लेकर हमारी बात का खण्डन क्यों न कर सकते? [जब हमारी बात का खण्डन कर सको] तब तुम्हारी और उनकी बात माननीय होवे।

[जैनियों के खण्डन के लिए नया मत स्वीकार किया]

अनुमान है कि शङ्कराचार्य आदि ने तो जैनमत का खण्डन करने के ही लिये यह मत स्वीकार किया हो, क्योंकि देश-काल के अनुकूल अपने पक्ष को सिद्ध करने के लिये बहुत-से स्वार्थी विद्वान् अपने आत्मा के ज्ञान से विरुद्ध भी कर लेते हैं। और जो इन बातों को अर्थात् जीव-ईश्वर की एकता, जगत्-मिथ्या आदि व्यवहार को सच्चा ही मानते थे, तो उनकी बात सच्ची नहीं हो सकती।

[निश्चलदास का पाण्डित्य]

और निश्चलदास का पाण्डित्य देखो ऐसा है—"**जीवो ब्रह्माऽभिन्नश्चेतन-त्वात्**', उन्होंने '**वृत्तिप्रभाकर**' [२।९] में जीव-ब्रह्म की एकता के लिये अनुमान लिखा है कि 'चेतन होने से जीव ब्रह्म से अभिन्न है'। यह बहुत कम-समझ पुरुष की बात के सदृश बात है; क्योंकि [किंचित्] '**साधर्म्य**'-मात्र से एक दूसरे के साथ एकता नहीं होती, '**वैधर्म्य**' भेदक होता है। जैसे कोई कहे कि '**पृथिवी जलाऽभिन्ना जडत्वात्**'='जड़ होने से पृथिवी जल से अभिन्न है।' जैसे यह वाक्य संगत कभी नहीं हो सकता, वैसे निश्चलदास जी का भी लक्षण

व्यर्थ है; क्योंकि जो अल्पता, अल्पज्ञता और भ्रान्तिमत्त्वादि धर्म जीव में ब्रह्म से और सर्वगत, सर्वज्ञता और निर्भ्रान्तिमत्वादि वैधर्म्य ब्रह्म में जीव से विरुद्ध हैं; इससे जीव और ब्रह्म भिन्न-भिन्न हैं। जैसे गन्धवत्त्व, कठिनत्व आदि भूमि के धर्म; रसवत्त्व, द्रवत्वादि जल के धर्म से विरुद्ध होने से पृथिवी और जल एक नहीं, वैसे जीव और ब्रह्म के वैधर्म्ययुक्त होने से जीव और ब्रह्म एक न कभी थे, न हैं और न कभी होंगे। इतने से ही निश्चलदास-आदि को समझ लीजिये कि उनमें कितना पाण्डित्य था।

और जिसने **'योगवासिष्ठ'** बनाया है, वह कोई आधुनिक वेदान्ती था; न वाल्मीकि, न वसिष्ठ जी का और न रामचन्द्र का बनाया वा कहा-सुना है; क्योंकि वे सब वेदानुयायी थे, वेद से विरुद्ध न बना सकते और न कह-सुन सकते थे।

[शारीरक सूत्रों में भी जीव ब्रह्म की एकता नहीं]

प्रश्न—व्यास जी ने जो **'शारीरकसूत्र'** बनाये हैं, उनमें भी जीव ब्रह्म की एकता दीखती है; देखो—

सम्पद्याऽऽविर्भावः स्वेन शब्दात्॥१॥
ब्राह्मण जैमिनिरुपन्यासादिभ्यः॥२॥
चितितन्मात्रेण तदात्मकत्वादित्यौडुलौमिः॥३॥
एवमप्युपन्यासात् पूर्वभावादविरोधं बादरायणः॥४॥
अत एव चानन्याधिपतिः॥५॥

[वेदान्त०, अ० ४। पा० ५। सू० १, ५-७, ९]॥

अर्थ—जीव अपने ‘स्वरूप' को प्राप्त होकर प्रकट होता है जो कि पूर्व ब्रह्मस्वरूप था, क्योंकि 'स्व' शब्द से अपने ब्रह्मस्वरूप का ग्रहण होता है॥१॥

‘य आत्मा-अपहतपाप्मा'

[छांदोग्य-उप० ८।७।१]

इत्यादि 'उपन्यासों' [से सिद्ध है कि] ऐश्वर्यप्राप्ति पर्यन्त हेतुओं से ब्रह्मस्वरूप जीव स्थित होता है, ऐसा जैमिनि आचार्य का मत है॥२॥

और औडुलोमि आचार्य [का मत है कि] तदात्मकस्वरूप- निरूपणादि बृहदारण्यक [३।७।३-२३; ४।५।१३] के हेतुरूप वचनों से [ज्ञात होता है कि] चैतन्यमात्र स्वरूप से जीव मुक्ति में स्थित रहता है॥३॥

व्यास जी इन्हीं पूर्वोक्त उपन्यासादि ऐश्वर्यप्राप्तिरूप हेतुओं से जीव के ब्रह्मस्वरूप होने में अविरोध मानते हैं॥४॥

योगी ऐश्वर्यसहित अपने ब्रह्मस्वरूप को प्राप्त होकर अन्य अधिपति से रहित' अर्थात् आप अपने और सबके अधिपतिरूप ब्रह्मस्वरूप से मुक्ति में स्थित रहता है॥५॥

उत्तर—इन सूत्रों का अर्थ इस प्रकार का नहीं, किन्तु इनका यथार्थ यह है, सुनिये। जब तक जीव अपने= स्वकीय शुद्धस्वरूप को प्राप्त, सब

मलों से रहित होकर पवित्र नहीं होता, तब तक योग से ऐश्वर्य को प्राप्त होकर अपने अन्तर्यामी ब्रह्म को प्राप्त होके आनन्द में स्थित नहीं हो सकता॥१॥

इसी प्रकार जब पापादिरहित ऐश्वर्ययुक्त योगी होता है तभी ब्रह्म के साथ मुक्ति के आनन्द को भोग सकता है, ऐसा जैमिनि आचार्य का मत है॥२॥

जब अविद्यादि दोषों से छूट, शुद्ध चैतन्यमात्र स्वरूप से जीव [ब्रह्म में] स्थिर होता है, तभी 'तदात्मकत्व' अर्थात् ब्रह्मस्वरूप के साथ सम्बन्ध को प्राप्त होता है [ऐसा औडुलोमि आचार्य का मत है।] ॥३॥

जब ब्रह्म के साथ ऐश्वर्य और शुद्ध विज्ञान को [प्राप्त करके] जीते ही जीवन्मुक्त होता है, तब अपने पूर्व निर्मल स्वरूप को प्राप्त होकर आनन्दित होता है, ऐसा व्यासमुनि का मत है॥४॥

जब योगी का सत्यसंकल्प होता है, तब स्वयं परमेश्वर को प्राप्त होकर मुक्तिसुख को पाता है और वहाँ स्वाधीन स्वतन्त्र रहता है। **जैसे संसार में एक प्रधान, दूसरा अप्रधान होता है वैसे मुक्ति में नहीं, किन्तु सब मुक्त जीव एक-से रहते हैं**॥५॥

[जीव से ब्रह्म पृथक् है]

जो ऐसा न हो तो—

नेतरोऽनुपपत्तेः॥१॥

वेदान्तसूत्र [१।१।१६]

भेदव्यपदेशाच्च॥२॥

[१।१।१७]

विशेषणभेदव्यपदेशाभ्यां च नेतरौ॥३॥

[१।२।२२]

अस्मिन्नस्य च तद्योगं शास्ति॥४॥

[१।१।१९]

अन्तस्तद्धर्मोपदेशात्॥५॥

[१।१।२०]

भेदव्यपदेशाच्चान्यः॥६॥

[१।१।२१]

गुहां प्रविष्टावात्मानौ हि तद्दर्शनात्॥७॥

[१।२।११]

अनुपपत्तेस्तु न शारीरः॥८॥

[१।२।३]

अन्तर्याम्यधिदेवादिषु तद्धर्मव्यपदेशात्॥९॥

[१।२।१८]

शारीरश्चोभयेऽपि हि भेदेनैनमधीयते॥१०॥

व्यासमुनिकृत वेदान्तसूत्र [१।२।२०]॥

अर्थ—ब्रह्म से इतर जीव सृष्टिकर्ता नहीं है, क्योंकि इस अल्प, अल्पज्ञ, [अल्प] सामर्थ्यवाले जीव में सृष्टिकर्तृत्व नहीं घट सकता, इससे जीव ब्रह्म नहीं॥१॥

'रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति' यह उपनिषद का वचन है।

[तैत्तिरीय उप० ब्र० वल्ली अनु०७]

जीव और ब्रह्म भिन्न हैं, क्योंकि इन दोनों का भेद प्रतिपादित किया है। जो ऐसा न होता तो 'रस' अर्थात् 'आनन्दस्वरूप ब्रह्म को प्राप्त होकर जीव आनन्दस्वरूप होता है', प्राप्तिविषय ब्रह्म और प्राप्त होनेवाले जीव का यह निरूपण नहीं घट सकता, इसलिये जीव और ब्रह्म एक नहीं॥२॥

दिव्यो ह्यमूर्त्तः पुरुषः स बाह्याभ्यन्तरो ह्यजः।
अप्राणो ह्यमनाः शुभ्रो ह्यक्षरात्परतः परः॥

मुण्डक उप० [२।१।२]

दिव्य=शुद्ध, मूर्तिमत्त्वरहित, सबमें पूर्ण, बाहर-भीतर निरन्तर व्यापक, अज=जन्म-मरण-शरीरधारणादि रहित, श्वास-प्रश्वास, शरीर और मन के सम्बन्ध से रहित, प्रकाशस्वरूप इत्यादि परमात्मा के विशेषण हैं।

और अक्षर=नाशरहित प्रकृति से 'परे' अर्थात् 'सूक्ष्म जीव [और] उससे भी परमेश्वर परे है अर्थात् ब्रह्म सूक्ष्म है। प्रकृति और जीवों से ब्रह्म के भेद

प्रतिपादनरूप हेतुओं से [सिद्ध होता है कि] प्रकृति और जीवों से ब्रह्म भिन्न है॥३॥

इसी सर्वव्यापक ब्रह्म में जीव का योग वा जीव में ब्रह्म का योग प्रतिपादित करने से [सिद्ध है कि] जीव और ब्रह्म भिन्न हैं, क्योंकि योग भिन्न पदार्थों का हुआ करता है॥४॥

इस ब्रह्म के अन्तर्यामी आदि धर्म कथन किये हैं और जीव के भीतर व्यापक होने से व्याप्य जीव व्यापक ब्रह्म से भिन्न है; क्योंकि व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध भी भेद में संघटित होता है॥५॥

जैसे परमात्मा जीव से भिन्नस्वरूप है, वैसे इन्द्रियों, अन्तःकरण, वायु, पृथिवी आदि भूतों, दिशा, सूर्यादि से तथा दिव्यगुणों के योग से 'देवता'-वाच्य विद्वानों से भी परमात्मा भिन्न है॥६॥

“सुकृतस्य लोके गुहां प्रविष्टौ" [कठ०, अ० १।३।१] इत्यादि उपनिषदों के वचनों से [स्पष्ट होता है कि] जीव और परमात्मा भिन्न हैं। वैसा ही उपनिषदों में बहुत ठिकाने दिखलाया है॥७॥

'शरीरे भवः शारीरः', [=शरीर में रहने से जीवात्मा को 'शारीर' कहते हैं], शरीरधारी जीव ब्रह्म नहीं हैं, क्योंकि ब्रह्म के गुण, कर्म, स्वभाव जीव में नहीं घटते॥८॥

अधिदेव=सब दिव्य मन, इन्द्रियादि पदार्थों, **अधिभूत**=पृथिव्यादि भूतों, **अध्यात्म**= सब जीवों में परमात्मा अन्तर्यामी रूप से स्थित है; क्योंकि उसी परमात्मा के व्यापकत्वादि धर्म सर्वत्र उपनिषदों में व्याख्यात हैं॥९॥

शरीरधारी जीव ब्रह्म नहीं है, क्योंकि ब्रह्म से जीव का भेद स्वरूप से सिद्ध है॥१०॥

इत्यादि **'शारीरक-सूत्रों'** से भी स्वरूप से ब्रह्म और जीव का भेद सिद्ध है।

[उपक्रम और उपसंहार की कल्पना झूठी है]

वैसे ही वेदान्तियों के **उपक्रम** और **उपसंहार** भी नहीं घट सकते, क्योंकि **'उपक्रम'** अर्थात् आरम्भ ब्रह्म से और **'उपसंहार'** अर्थात् प्रलय भी ब्रह्म में ही करते हैं। जब दूसरा कोई वस्तु नहीं मानते तो उत्पत्ति और प्रलय भी ब्रह्म के धर्म हो जाते हैं। और उत्पत्ति-विनाशरहित ब्रह्म का प्रतिपादन वेदादि सत्यशास्त्रों में किया है। वह नवीन वेदान्तियों पर कोप करेगा, क्योंकि निर्विकार, अपरिणामी, शुद्ध, सनातन, निर्भ्रान्त आदि विशेषणयुक्त ब्रह्म में विकार, उत्पत्ति और अज्ञान आदि का सम्भव किसी प्रकार नहीं हो सकता। तथा **उपसंहार** (=प्रलय) के होने पर भी ब्रह्म, कारणात्मक जड़ और जीव बराबर बने रहते हैं। इसलिये **'उपक्रम'** और **'उपसंहार'** भी इन वेदान्तियों के ठीक नहीं है। इसी प्रकार की, इन नवीन वेदान्तियों की कल्पनायें झूठी हैं। ऐसी अन्य बहुत-सी अशुद्ध बातें हैं कि जो शास्त्रों और प्रत्यक्षादि प्रमाणों से विरुद्ध हैं।

[विक्रमादित्य और भर्तृहरि]

इसके पश्चात् कुछ जैनियों और कुछ शंकराचार्य के अनुयायी लोगों के उपदेश के संस्कार आर्यावर्त में फैले थे और आपस में खण्डन-मण्डन भी चलता था।

शंकराचार्य के **तीन-सौ वर्ष** के पश्चात् उज्जैन नगरी में **विक्रमादित्य** राजा कुछ प्रतापी हुआ, जिसने सब राजाओं के मध्य प्रवृत्त हुई लड़ाई को मिटाकर शान्ति-स्थापना की।

तत्पश्चात् **भर्तृहरि** राजा काव्यादि-शास्त्रों और अन्य [विषयों] में भी कुछ-कुछ विद्वान् हुआ, उसने वैराग्यवान् होकर राज्य को छोड़ दिया।

[राजा भोज और कवि कालिदास]

विक्रमादित्य के **पांच-सौ वर्ष** के पश्चात् राजा **भोज** हुआ। उसने थोड़ा-सा व्याकरण और काव्यालङ्कार-आदि का इतना प्रचार किया कि जिसके राज्य में **कालिदास** बकरी चरानेवाला भी **'रघुवंश'** काव्य का कर्ता हुआ। राजा भोज के पास जो कोई अच्छा श्लोक बनाकर ले जाता था उसको बहुत-सा धन देते और प्रतिष्ठा करते थे। उसके पश्चात् राजाओं और श्रीमानों ने पढ़ना ही छोड़ दिया।

यद्यपि शंकराचार्य जी के पूर्व [हुए] वाममार्गियों के पश्चात् **शैव** आदि सम्प्रदायस्थ मतवादी भी हुए थे, परन्तु उनका बहुत बल नहीं हुआ था। महाराजे विक्रमादित्य से लेके शैवों का बल बढ़ता आया। शैवों में

पाशुपतादि बहुत-सी शाखायें हुई थीं, जैसे वाममार्गियों में **दश महाविद्यादि** शाखायें हैं।

[शाङ्कर मतानुयायियों का शैव मत में प्रवेश]

लोगों ने शङ्कराचार्य को शिव का अवतार ठहराया। उनके अनुयायी संन्यासी भी शैवमत में प्रवृत्त हो गये और वाममार्गियों को भी मिलाते रहे। **वाममार्गी**, 'देवी' जो शिव की पत्नी है उसके उपासक, और **शैव** 'महादेव' के उपासक हुए। ये दोनों रुद्राक्ष और भस्म अद्यावधि धारण करते हैं; परन्तु जितने वाममार्गी वेदविरोधी हैं, उतने शैव वेदविरोधी नहीं है।

[रुद्राक्ष-धारण का तथाकथित महत्त्व]

इन लोगों ने—

धिग् धिक् कपालं भस्मरुद्राक्षविहीनम्॥१॥
रुद्राक्षान् कण्ठदेशे दशनपरिमितान् मस्तके विंशती द्वे, षट् षट् कर्णप्रदेशे करयुगलगतान् द्वादशान् द्वादशैव। बाह्वोरिन्दोः कलाभिः पृथगिति गदितमेकमेवं शिखायाम्, वक्षस्यष्टाऽधिकं यः कलयति शतकं स स्वयं नीलकण्ठः॥२॥

[तुलना-शिवपुराण, विश्वेश्वर संहिता १ । अ० २५ । श्लो० ३७-३८]॥

इत्यादि बहुत प्रकार के श्लोक बनाये और कहने लगे कि जिसके कपाल में भस्म और कण्ठ में रुद्राक्ष नहीं है, उसको धिक्कार है। **'तं**

त्यजेदन्त्यजं यथा' [तुलना-भविष्यपुराण विश्वेश्वर संहिता १।३० अ० २३ । श्लो० १३] =उसका चाण्डाल के तुल्य त्याग करना चाहिये॥१॥

जो कण्ठ में ३२, शिर में ४०, कानों में छ:-छ:, करों में बारह-बारह, भुजाओं में सोलह-सोलह, शिखा में एक और हृदय पर एक-सौ आठ रुद्राक्ष धारण करता है, वह साक्षात् महादेव के सदृश है॥२॥ ऐसा ही **शाक्त** भी मानते हैं।

[भग-लिङ्ग की पूजा]

पश्चात् उन **वाममार्गियों** और **शैवों** ने सम्मति करके भग-लिङ्ग का स्थापन किया, जिसको जलाधारी और लिङ्ग कहते हैं, और उसकी पूजा करने लगे। **उन निर्लज्जों को लज्जा भी न आई कि यह पामरपन का काम हम क्यों करते हैं?** किसी कवि ने कहा है कि **'स्वार्थी दोषं न पश्यति'** [चाणक्यनीति ६।८] =स्वार्थी लोग अपनी स्वार्थ-सिद्धि करने में दुष्ट कामों को भी श्रेष्ठ मान, दोष को नहीं देखते हैं। ये उसी पाषाणादि मूर्ति और भग-लिङ्ग की पूजा में ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष मानने लगे।

[यवनों तथा जैनों की निन्दा]

जब **राजा भोज** के पश्चात् जैनी लोग अपने मन्दिरों में मूर्तिस्थापन करने और दर्शन को आने-जाने लगे। तब तो इन 'पोपों' के चेले भी जैनमन्दिर में जाने-आने लगे और उधर पश्चिम से कुछ दूसरे मतों के और यवन लोग भी आर्यावर्त में आने-जाने लगे। तब पोपों ने यह श्लोक बनाया—

न वदेद्यावनी भाषां प्राणैः कण्ठगतैरपि।
हस्तिना ताड्यमानोऽपि न गच्छेज्जैनमन्दिरम्॥
[तुलना-भविष्यपुराण, प्रतिसर्ग पर्व ३। खं० ३। अध्याय २८ । श्लो० ५३]

चाहे कितना ही दुःख प्राप्त हो, प्राण कण्ठगत अर्थात् मृत्यु का समय भी क्यों न आया हो, तो भी यावनी अर्थात् म्लेच्छ-भाषा मुख से न बोलनी [चाहिये] और [किसी को] उन्मत्त हाथी मारने को क्यों न दौड़ा आता हो [और उसके] जैन के मन्दिर में जाने से प्राण बचते हों, तो भी जैन-मन्दिर में प्रवेश न करे; किन्तु जैन-मन्दिर में प्रवेश कर बचने से, हाथी के सामने जाकर मर जाना उससे अच्छा है।

ऐसे-ऐसे उपदेश अपने चेलों को करने लगे। जब उनसे कोई प्रमाण पूछता था कि 'तुम्हारे मत में किसी माननीय ग्रन्थ का भी प्रमाण है?' तो कहते थे कि हाँ है।' जब वे पूछते थे कि 'दिखलाओ?' तब **'मार्कण्डेय पुराण'** आदि के वचन पढ़कर सुना देते थे, जैसा कि **'दुर्गापाठ'** में देवी का वर्णन लिखा है।

[मार्कण्डेय और शिवपुराण की रचना पर दण्ड]

राजा भोज के राज्य में व्यास जी के नाम से **'मार्कण्डेय'** और **'शिवपुराण'** किसी ने बनाकर खड़ा किया था। उसका समाचार राजा भोज को होने से उन पण्डितों को हस्तच्छेदनादि दण्ड दिया और उनसे कहा कि जो कोई काव्यादि ग्रन्थ बनावे तो अपने नाम से बनावे, ऋषि-मुनियों के नाम से नहीं।' यह बात राजा भोज के बनाये

'संजीवनी' नामक इतिहास में लिखी है कि जो ग्वालियर राज्य के 'भिंड' नामक नगर के तिवाडी ब्राह्मणों के घर में है। जिसको लखना के राव साहब और उनके गुमाश्ते रामदयाल चौबे जी ने अपनी आँख से देखा है।

[महाभारत में प्रक्षेप का उल्लेख]

उसमें स्पष्ट लिखा है कि व्यास जी ने चार सहस्र चार-सौ और उनके शिष्यों ने पांच सहस्र छः-सौ श्लोकयुक्त अर्थात् दस सहस्र श्लोकों के प्रमाण [का] **'भारत'** बनाया था। वह महाराजे विक्रमादित्य के समय में वीस सहस्र [श्लोक प्रमाण का हुआ] महाराजे भोज कहते हैं कि मेरे पिता के समय में पच्चीस, और मेरी आधी उमर में तीस सहस्र श्लोकयुक्त **'महाभारत'** का पुस्तक मिलता है। जो ऐसे ही बढ़ता चला तो **'महाभारत'** का पुस्तक एक ऊंट का बोझ हो जायगा और ऋषि-मुनियों के नाम से पुराणादि ग्रन्थ बनावेंगे तो आर्यावर्तीय लोग भ्रमजाल में पड़के वैदिकधर्मविहीन होकर भ्रष्ट हो जायेंगे। इससे विदित होता है कि **राजा भोज** को कुछ-कुछ वेदों का संस्कार था।

[भोज के समय में यन्त्र-कलायुक्त यान और पंखा]

इनके [सम्बन्ध में लिखे] **'भोजप्रबन्ध'** में लिखा है कि—

घट्यैकया क्रोशदशैकमश्वः सुकृत्रिमो गच्छति चारुगत्या।
वायुं ददाति व्यजनं सुपुष्कलं विना मनुष्येण चलत्यजत्रम्॥

राजा भोज के राज्य में और [उनके] पास ऐसे शिल्पीलोग थे कि जिन्होंने घोड़े के आकार का एक यान कलायन्त्रयुक्त बनाया था कि जो एक कच्ची घड़ी में ग्यारह कोस और एक घण्टे में साढ़े सत्ताईस कोस जाता था। वह भूमि और अन्तरिक्ष में भी चलता था। और दूसरा पंखा ऐसा बनाया था कि विना मनुष्य के चलाये कलायन्त्र के बल से नित्य चला करता और पुष्कल वायु देता था। **जो ये दोनों पदार्थ आज तक बने रहते तो यूरोपियन इतने अभिमान में न चढ़ जाते।**

[जैनियों के अनुकरण पर अवतार पुराणादि की कल्पना]

जब पोप जी अपने चेलों को जैनियों से रोकने लगे तो भी मन्दिरों में जाने से न रुक सके और जैनियों की कथा में भी लोग जाने लगे। 'जैनियों के पोप' इन 'पुराणी पोपों' के चेलों को बहकाने लगे। तब 'पुराणी पोपों' ने विचारा कि इसका कोई उपाय करना चाहिये, नहीं तो अपने चेले जैनी हो जायेंगे। पश्चात् 'पोपों' ने यही सम्मति की कि जैनियों के सदृश अपने भी अवतार, मन्दिर, मूर्ति और कथा के पुस्तक बनावें। इन लोगों ने जैनियों के चौबीस तीर्थंकरों के सदृश चौबीस अवतार, मन्दिर और मूर्तियाँ बनाईं और जैसे जैनियों के **'आदि [पुराण]'** और **'उत्तर पुराण'** आदि हैं वैसे अठारह पुराण बनाने लगे।

[वैष्णव मत का आरम्भ]

राजा भोज के **डेढ़-सौ वर्ष** के पश्चात् वैष्णव-मत का आरम्भ हुआ। एक **शठकोप** नामक कंजर कुल में उत्पन्न हुआ था, उससे थोड़ा-सा चला। उसके पश्चात् **मुनिवाहन** भंगी-कुलोत्पन्न और तीसरा **यावनाचार्य**

यवन-कुलोत्पन्न आचार्य हुआ। तत्पश्चात् ब्राह्मण कुलज चौथा **रामानुज** हुआ। उन्होंने अपना मत फैलाया।

[विविध पुराणों की रचना]

शैवों ने **'शिवपुराण'** आदि, शाक्तों ने **'देवीभागवत'** आदि, वैष्णवों ने **'विष्णुपुराण'** आदि बनाये। उनमें अपना नाम इसलिये नहीं धरा कि हमारे नाम से बनेंगे तो कोई प्रमाण न करेगा, इसलिये **व्यास आदि ऋषि-मुनियों के नाम धरके 'पुराण' बनाये।** नाम भी इनका वास्तव में **'नवीन'** रखना चाहिये था, परन्तु जैसे कोई दरिद्र अपने बेटे का नाम 'महाराजाधिराज' और आधुनिक पदार्थ का नाम 'सनातन' रख दे, तो क्या आश्चर्य है? अब इनके आपस के जैसे झगड़े हैं, वैसे ही पुराणों में भी धरे हैं।

देखो, **'देवीभागवत'** में [लिखा है कि] 'श्री' नामा एक 'देवी' स्त्री जो श्रीपुर की स्वामिनी लिखी है, उसी ने सब जगत् को बनाया और ब्रह्मा, विष्णु, महादेव को भी उसी ने रचा है। जब उस देवी की इच्छा हुई तब उसने अपना हाथ घिसा । उससे हाथ में छाला हुआ। उसमें से **'ब्रह्मा'** की उत्पत्ति हुई। उससे देवी ने कहा कि 'तू मुझसे विवाह कर।' ब्रह्मा ने कहा कि 'तू मेरी माता लगती है, मैं तुझसे विवाह नहीं कर सकता।' यह सुनकर माता को क्रोध चढ़ा और लड़के को भस्म कर दिया। और फिर हाथ घिसके उसी प्रकार दूसरा लड़का उत्पन्न करके उसका नाम **'विष्णु'** रक्खा। उससे भी उसी प्रकार कहा। उसने न माना तो उसको भी भस्म कर दिया। पुनः उसी प्रकार तीसरे लड़के को उत्पन्न किया। उसका नाम

'महादेव' रक्खा और उससे कहा कि 'तू मुझसे विवाह कर।' महादेव बोला कि 'मैं तुझसे विवाह नहीं कर सकता, तू दूसरी स्त्री का शरीर धारण कर।' वैसा ही देवी ने किया। तब महादेव बोला कि 'यह दो ठिकाने राख क्या पड़ी है?' देवी ने कहा कि ये दोनों तेरे भाई हैं, इन्होंने मेरी आज्ञा न मानी, इसलिये भस्म कर दिये।' महादेव ने कहा कि मैं अकेला क्या करूँगा, इनको जिला दे और दो स्त्रियां और उत्पन्न कर, तीनों का विवाह तीनों से होगा।' ऐसा ही देवी ने किया। फिर तीनों का तीनों के साथ विवाह हुआ।

[समीक्षा]

वाह रे! माता से विवाह न किया और बहिन से कर लिया! क्या इसको उचित समझना चाहिये? पश्चात् 'इन्द्र'-आदि को उत्पन्न किया। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र और इन्द्र इनको पालकी को उठानेवाला कहार बनाया, इत्यादि गपोड़े लम्बे-चौड़े, मनमाने लिखे हैं।

कोई उनसे पूछे कि उस देवी का शरीर और उस श्रीपुर का बनानेवाला और देवी के पिता-माता कौन थे? जो कहो कि देवी अनादि है, तो जो संयोगजन्य वस्तु है वह अनादि कभी नहीं हो सकता। जो माता-पुत्र के विवाह करने में डरे, तो भाई-बहिन के विवाह में कौन-सी अच्छी बात निकलती है? जैसे इस **'देवीभागवत'** में महादेव, विष्णु और ब्रह्मादि की क्षुद्रता और देवी की बड़ाई लिखी है, इसी प्रकार **'शिवपुराण'** में देवी आदि की बहुत क्षुद्रता लिखी है, अर्थात् ये सब महादेव के दास हैं और महादेव सबका ईश्वर है।

['भस्म' और 'रुद्राक्ष' धारण करने की आलोचना]

जो 'रुद्राक्ष' अर्थात् एक वृक्ष के फल की गुठली और राख धारण करने से मुक्ति मानते हैं, तो राख में लोटनेहारे गधे आदि पशु और घुंघची आदि के धारण करनेवाले भील, कंजर आदि मुक्ति को जावें। [फिर धुंघची आदि धारण करनेवाले भील, कंजर आदि की] और सुअर, कुत्ते, गधे आदि राख में लोटनेवाले पशुओं की मुक्ति क्यों नहीं होती?

प्रश्न—'कालाग्निरुद्रोपनिषद्' में भस्म लगाने का विधान लिखा है। वह क्या झूठा है? और **'त्र्यायुषं जमदंग्नेः०'** यजुर्वेदवचन है [३।६२], इत्यादि वेदमन्त्रों से भी भस्म-धारण का विधान [है।] और पुराणों में, रुद्र की आँख के अश्रुपात से जो वृक्ष हुआ उसी का नाम रुद्राक्ष है, इसीलिये उसके धारण में पुण्य लिखा है। [यह भी लिखा है कि] एक भी रुद्राक्ष धारण करे तो सब पापों से छूट स्वर्ग को जाय, यमराज और नरक का डर न रहै।

उत्तर—'कालाग्निरुद्रोपनिषद्' किसी 'रखोडिया' मनुष्य अर्थात् राख धारण करनेवाले ने बनाई है। क्योंकि "**यास्य प्रथमा रेखा सा [गार्हपत्याग्निश्चकारो रजो] भूर्लोकः**" [४] इत्यादि वचन उसमें अनर्थक हैं। जो प्रतिदिन हाथ से बनाई रेखा है, वह भूलोक वा इसकी वाचक कैसे हो सकती है? और जो—"**त्र्यायुषं जमदंग्नेः०**" यजुः [३।६२] इत्यादि मन्त्र हैं, वे भस्म वा त्रिपुण्ड्र धारण के वाची नहीं, किन्तु

"चक्षुर्वै जमदग्निर्ऋषिः" शतपथ [८।१।२।३] ='हे परमेश्वर! मेरे नेत्र की ज्योति (त्र्यायुषम्) तिगुणी अर्थात् तीन-सौ वर्ष पर्यन्त रहै, और मैं भी ऐसे धर्म के काम करूं कि जिससे दृष्टि-नाश न हो', [इस अर्थ के बोधक हैं]।

भला, यह कितनी बड़ी मूर्खता की बात है!! आँख के अश्रुपात से भी कभी वृक्ष उत्पन्न होता है? क्या परमेश्वर के सृष्टिक्रम को कोई अन्यथा कर सकता है? जैसा जिस वृक्ष का बीज परमात्मा ने रचा है, उसी से वह वृक्ष उत्पन्न हो सकता है, अन्यथा नहीं। इससे, जितना रुद्राक्ष, भस्म, तुलसी, कमलाक्ष, घास, चन्दन आदि को कण्ठ में धारण करना है, वह सब जंगली [और] पशुवत् मनुष्य का काम है। ऐसे वाममार्गी और शैव बहुत मिथ्याचारी, विरोधी और कर्त्तव्य कर्म के त्यागी होते हैं। उनमें जो कोई श्रेष्ठ पुरुष है, वह इन बातों का विश्वास न करके, अच्छे कर्म करता है। जो रुद्राक्ष [और] भस्म-धारण से यमराज के दूत डरते हैं, तो पुलिस के सिपाही भी डरते होंगे? जब रुद्राक्ष [और] भस्म-धारण करनेवालों से कुत्ता, सिंह, सर्प, बिच्छू, मक्खी और मच्छर आदि भी नहीं डरते, तो न्यायाधीश के गण क्यों डरेंगे?

[वैष्णव मत पर विचार]

प्रश्न—वाममार्गी और शैव तो अच्छे नहीं, परन्तु **वैष्णव** तो अच्छे हैं?

उत्तर—ये भी वेदविरोधी होने से उनसे भी अधिक बुरे हैं।

[क्या शैव आदि मत वेदमूलक हैं?]

प्रश्न—''नमंस्ते रुद्र मुन्यवें'' [यजुः १६।१], "**शिवायं च शिवतंराय च"** [यजुः १६।४१], **''वैष्णवमंसि''** [यजुः ५।२१], **''वामनायं च''** [यजुः १६।३०], "**गणानां त्वा गणपंतिꣳहवामहे"** [यजुः २३ । १९], **"भगंवती हि भूयाः"** [अथर्व० ९।१०।२०] **''सूर्य्यं आत्मा जगंतस्तस्थुषंश्च''॥** [यजुः० १३।४६], इत्यादि वेद-प्रमाणों से शैवादि मत सिद्ध होते हैं। पुनः क्यों खण्डन करते हो?

उत्तर—इन वचनों से शैवादि सम्प्रदाय सिद्ध नहीं होते, क्योंकि **'रुद्र'** परमेश्वर, प्राण-वायु, जीव, अग्नि आदि का नाम है। क्रोधकर्ता रुद्र अर्थात दुष्टों को रुलानेवाले परमात्मा को नमस्कार करना, प्राण और जाठराग्नि को अन्न देना [चाहिये]—"**नम इति अन्ननाम"** निघण्टु [२।७], जो [शिव=] मङ्गलकारी, सब संसार का अत्यन्त कल्याण करनेवाला है, उस परमात्मा को नमस्कार करना चाहिये। **'शिवस्य परमेश्वरस्यायं भक्तः शैवः'। 'विष्णोः परमात्मनोऽयं भक्तो वैष्णवः'। 'गणपतेः सकलजगत्स्वामिनोऽयं सेवको गाणपतः।' भगवत्या वाण्या अयं सेवको भागवतः'। 'सूर्यस्य चराचरात्मनोऽयं सेवकः सौरः '।** ये सब रुद्र, शिव, विष्णु, गणपति, सूर्यादि परमेश्वर के और भगवती' सत्यभाषणयुक्त वाणी का नाम है। इसमें विना समझे ऐसा झगड़ा मचाया है, जैसे—

[एक वैरागी के दो चेलों का दृष्टान्त]

किसी एक वैरागी के दो चेले थे। वे गुरु के पग दाबा करते थे। एक ने दक्षिण पग और दूसरे ने बायें पग की सेवा करना बाँट लिया था। एक दिन एक चेला कहीं गया था और दूसरा अपने सेव्य पग की सेवा कर रहा था। इतने में गुरु ने करवट फेरी, तो उसके पग पर दूसरे गुरुभाई का सेव्य पग पड़ा। उसने ले डण्डा पग पर धर मारा। गुरु ने कहा कि' अरे दुष्ट ! तूने यह क्या किया?' चेला बोला—'मेरे पग के ऊपर यह पग क्यों चढ़ा?' इतने में दूसरा चेला आया। वह भी सेवा करने लगा। देखा तो पग सूजा पड़ा है। गुरु से पूछा कि 'यह मेरे सेव्य पग में क्या हुआ?' गुरु ने सब वृत्तान्त सुना दिया। वह भी मूर्ख न बोला-न चाला। चुपचाप डण्डा उठाकर बड़े बल से गुरु के दूसरे पग में मारा। तो गुरु ने उच्च स्वर से पुकार मचाई। फिर दोनों चेले डण्डा लेके गुरु के पगों को पीटने लगे। तब तो बड़ा कोलाहल मचा और लोग सुनकर आये। तब किसी बुद्धिमान् पुरुष ने आके छुड़ाया। पश्चात् उन दोनों मूर्खों को उपदेश किया—''देखो, ये दोनों पग तुम्हारे गुरु के हैं। दोनों की सेवा करने से उसी को सुख' और दुःख देने से उसी एक को दुःख होता है।"

जैसे एक गुरु की सेवा में चेलों ने लीला की, वैसे हीन, पामर, महामूर्ख, सम्प्रदायी लोगों ने की है। **विष्णु, रुद्रादि सब नाम परमेश्वर के हैं, जैसा कि प्रथम समुल्लास में लिख आये हैं;** उनको न जानकर शाक्त, शैव और वैष्णवादि परस्पर एक दूसरे के नाम की निन्दा करते है।

[चक्राङ्कितों के पञ्च संस्कार]

अब देखिये **'चक्रांकित'** वैष्णवों की अद्भुत माया—

तापः पुण्ड्रं तथा नाम माला मन्त्रस्तथैव च।
अमी हि पञ्च संस्काराः परमैकान्तहेतवः॥१॥
"अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते" इति श्रुतेः॥

[ऋ० ९।८३।१] [भरद्वाजसंहिता, परिशिष्ट, अ० २। श्लोक० २॥ रामानुजपटलपद्धति]

(तापः) अर्थात् शंख, चक्र, गदा और पद्म के चिह्नों को अग्नि में तपा, भुजा के मूल में दाग देकर, दूध के पात्र में बुझाते हैं। फिर कोई-कोई उस दूध को भी पी लेते हैं;

[समीक्षा]

अर्थात् उसमें कुछ मनुष्य के शरीर के मांस का भी अंश आता होगा। ऐसे कर्मों से परमेश्वर को प्राप्त होने की आशा करते हैं और कहते हैं कि विना शंख, चक्रादि से शरीर तपाये जीव परमेश्वर को प्राप्त नहीं होता; क्योंकि वह **(आमः)** अर्थात् कच्चा है। और जैसे राज्य के चपरास आदि चिह्नों के होने से राजपुरुष जान, उससे सब लोग डरते हैं, वैसे ही विष्णु के शंख [तथा] चक्रादि आयुधों के चिह्नों को देखकर यम और यम के गण डरते हैं, और कहते हैं कि—

दोहा— **बाना बड़ा दयाल का, तिलक छाप अरु माल।**
यम डरपै कालू कहै, भय माने भूपाल॥

[भक्तमाल, निष्ठा ६]

अर्थात् भगवान् का बाना=तिलक, छाप और माला धारण करना बड़ा है। जिससे यमराज और राजा भी डरता है।

['तापः पुण्ड्रं' वचन के शेष अंश की व्याख्या]

(पुण्ड्रम्) त्रिशूल के सदृश ललाट में चित्र निकालना, **(नाम)** नारायणदास, विष्णुदास आदि दासशब्दान्त नाम रखना, **(माला)** कमलगट्टे आदि की माला धारण करना और पांचवां **(मन्त्र)** अर्थात् **"ओं नमो नारायणाय"** [पद्म० भाग ६। उत्तर० अ० ७२। श्लोक ११७] जपना॥१॥ यह इन्होंने साधारण मनुष्यों के लिये मन्त्र बना रक्खा है। तथा—

श्रीमन्नारायणचरणं शरणं प्रपद्ये ॥२॥
श्रीमते नारायणाय नमः॥३॥
श्रीमते रामानुजाय नमः॥४॥

[भक्तमाल]

इत्यादि मन्त्र धनाढ्य और माननीयों के लिये हैं। देखिये, यह भी एक दुकान ठहरी! जैसा मुख वैसा तिलक! इन पाँच संस्कारों को **'चक्रांकित'** मुक्ति के हेतु मानते हैं। इन मन्त्रों का अर्थ—

मैं नारायण को नमस्कार करता हूं॥१॥

और मैं लक्ष्मीयुक्त नारायण के चरणारविन्द के शरण को प्राप्त होता हूं॥२॥

और श्रीयुत नारायण को नमस्कार करता हूं अर्थात् जो शोभायुक्त नारायण है, उसको मेरा नमस्कार होवे ॥३॥

[श्रीयुत रामानुज को मैं नमस्कार करता हूं॥४॥]

['ताप' सम्बन्धी पूरा मन्त्र और उसका शुद्ध अर्थ]

जैसे **'वाममार्गी'** पाँच मकार मानते हैं, वैसे **'चक्रांकित'** पाँच संस्कार मानते हैं; और अपने को शंख-चक्र से दाग देने के लिये जो वेदमन्त्र का प्रमाण रखा है, उसका इस प्रकार का पाठ और अर्थ है—

पवित्रं ते वितंतं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्रांणि पर्येषि विश्वतंः।
अतंप्ततनूर्न तदामो अंश्नुते शृतास इद्वहंन्तस्तत्समांशत॥१॥
तपोंष्पवित्रं वितंतं दिवस्पदे॥२॥

ऋ० म० ९। सूक्त ८३। मन्त्र १, २॥

हे ब्रह्माण्ड और वेदों के पालन करनेवाले प्रभु! सर्वसामर्थ्ययुक्त! सर्वशक्तिमान्! आपने अपनी व्याप्ति से संसार के सब अवयवों को व्याप्त कर रक्खा है। उस आपका जो व्यापक पवित्र स्वरूप है उसको, ब्रह्मचर्य, सत्यभाषण, शम, दम, योगाभ्यास, जितेन्द्रिय, सत्सङ्गादि तपश्चर्या से रहित जो अपरिपक्व आत्मा-अन्तःकरणयुक्त है वह, प्राप्त

नहीं होता और जो पूर्वोक्त तप से शुद्ध हैं, वे ही उस तप का आचरण करते हुये, उस तेरे शुद्धस्वरूप को अच्छे प्रकार प्राप्त होते हैं॥१॥

जो प्रकाशरूप परमेश्वर की सृष्टि में विस्तृत पवित्राचरण रूप तप करते हैं, वे ही परमात्मा को प्राप्त होने के योग्य होते हैं॥२॥

['अतप्ततनू:' का वास्तविक अर्थ]

अब विचार कीजिये कि रामानुजीयादि लोग इस मन्त्र से **'चक्रांकित'** होना क्योंकर निकालते हैं? वे विद्वान् थे वा अविद्वान्? जो विद्वान् होते तो ऐसा असम्भावित अर्थ इस मन्त्र का क्यों करते? क्योंकि इस मन्त्र में **"अतप्ततनू:"** शब्द है किन्तु **"अतप्तभुजैकदेश:"** शब्द नहीं। जो **'अतप्ततनू:'** [है] यह नखाग्रशिखापर्यंत समुदाय का अर्थबोधक है, इसका प्रमाण करके अग्नि से ही तपाना [यदि] **'चक्रांकित'** लोग स्वीकार करें, तो अपने-अपने शरीर को भाड़ में झोंकके सब शरीर को जला लेवें? वह भी इस मन्त्र के अर्थ से विरुद्ध है; क्योंकि इस मन्त्र में सत्यभाषणादि पवित्र कर्म करना 'तप' लिया है।

"ऋतं तपः सत्यं तपो दमस्तपः स्वाध्यायस्तपः॥"

तैत्तिरीय० [तैत्ति० आरण्यक १०।८]

इत्यादि तप कहाता है। अर्थात् **(ऋतं तपः०)** यथार्थ शुद्धभाव, **[सत्यम् तपः]** सत्य मानना-सत्य बोलना-सत्य करना, **[दमः तपः]** मन को अधर्म में न जाने देना, बाह्य इन्द्रियों को अन्यायाचरण में जाने से रोक रखना अर्थात् शरीर, इन्द्रिय और मन से शुभ कर्मों का आचरण करना,

[स्वाध्यायः तपः] वेदादि सत्यविद्याओं का पढ़ना-पढ़ाना, वेदानुसार आचरण करना आदि उत्तम धर्मयुक्त कर्मों का नाम 'तप' है। **धातु को तपाके चमड़ी को जलाना तप नहीं कहाता।**

[चक्राङ्कित मत के प्रवर्तक]

देखो, **'चक्रांकित'** लोग अपने को बड़े वैष्णव मानते हैं, परन्तु अपनी परम्परा और कुकर्म की ओर ध्यान नहीं देते कि प्रथम इनका मूलपुरुष **'शठकोप'** हुआ। **'चक्रांकितों'** के ही ग्रन्थों में और **'भक्तमाल'** ग्रन्थ जो नाभा डूम ने बनाया है उनमें—

विक्रीय शूर्प विचचार योगी॥

[दिव्यसूरिचरितकाव्य सर्ग २ । ५२] इत्यादि वचन लिखे हैं।

अर्थात्—शठकोप योगी सूप को बना, बेचकर, विचरता था अर्थात् कंजर जाति में उत्पन्न हुआ था। जब उसने ब्राह्मणों से पढ़ना वा सुनना चाहा होगा, तब ब्राह्मणों ने तिरस्कार किया होगा। उसने ब्राह्मणों के विरुद्ध सम्प्रदाय, तिलक, चक्रांकित होना आदि शास्त्रविरुद्ध मनमानी बातें चलाई होंगी। उसका चेला **'मुनिवाहन'** जो कि चाण्डाल कुल में उत्पन्न हुआ, उसका चेला **'यावनाचार्य'** [था] जो यवनकुलोत्पन्न था, जिसको नाम बदलके कोई-कोई **'यामुनाचार्य'** भी कहते हैं। उनके पश्चात् **रामानुज** ब्राह्मणकुल में उत्पन्न होकर चक्रांकित हुआ।

[रामानुज द्वारा शङ्कराचार्य का विरोध]

उसके पूर्व भाषा के कुछ ग्रन्थ बनाते थे। रामानुज ने कुछ संस्कृत पढ़के, संस्कृत में श्लोकबद्ध ग्रन्थ [बनाये] और **'शारीरकसूत्र'** और **'उपनिषदों की टीका'** शंकराचार्य की टीका से विरुद्ध बनाई और शंकराचार्य की बहुत-सी निन्दा की। जैसे शंकराचार्य का मत है—'जीव ब्रह्म की एकता, जगत् प्रपञ्च, सब मिथ्या मायारूप अनित्य है', इससे विरुद्ध रामानुज का [मत है कि] जीव, ब्रह्म और माया तीनों नित्य हैं। यहाँ शङ्कराचार्य का मत है कि अद्वैत अर्थात् जीव-ब्रह्म एक हैं, और ब्रह्म एक ही है दूसरा कोई वस्तु वास्तविक नहीं।

[रामानुज के मत की आलोचना]

यहां शंकराचार्य का मत 'ब्रह्म से अतिरिक्त जीव और कारण वस्तु का न मानना', अच्छा नहीं। रामानुज का मत इस अंश में, जो कि 'विशिष्टाद्वैत जीव और मायासहित परमेश्वर एक है', तीन का मानना और अद्वैत का कहना सर्वथा व्यर्थ है। जीव को सर्वथा ईश्वर के आधीन=परतन्त्र मानना; कण्ठी, तिलक, माला, मूर्तिपूजादि पाखण्ड-मत चलाना आदि बुरी बातें **'चक्रांकित'** आदि में हैं। जैसे 'चक्राङ्कित' आदि वेदविरोध करते हैं, वैसे शंकराचार्य के मत के नहीं।

[मूर्त्तिपूजा का आरम्भ]

प्रश्न—मूर्त्तिपूजा कहाँ से चली?

उत्तर—जैनियों से।

प्रश्न—जैनियों ने कहाँ से चलाई?

उत्तर—अपनी मूर्खता से।

प्रश्न—जैनी लोग कहते हैं कि शान्त, ध्यानावस्थित बैठी हुई मूर्ति देखके अपने जीव का भी शुभ परिणाम वैसा ही होता है।

उत्तर—जीव चेतन और मूर्त्ति जड़ [है]। क्या मूर्त्ति के सदृश जीव भी जड़ हो जायगा? यह मूर्त्तिपूजा केवल पाखण्ड मत है। **जैनियों ने चलाई है, इसलिये इनका खण्डन १२वें समुल्लास में करेंगे।**

[वैष्णवादि और जैनियों की मूर्त्तियों में भेद]

प्रश्न—वैष्णव आदि ने मूर्त्तियों में जैनियों का अनुकरण नहीं किया है, क्योंकि जैनियों की मूर्त्तियों के सदृश वैष्णवादि की मूर्त्तियाँ नहीं हैं।

उत्तर—हाँ, यह ठीक है। जो जैनियों के तुल्य बनाते तो जैनमत में मिल जाते, इसलिये जैनों की मूर्त्तियों से विरुद्ध बनाईं; क्योंकि जैनों से विरोध करना इनका और इनसे विरोध करना जैनियों का मुख्य काम था। जैसे जैनियों ने मूर्ति नंगी, ध्यानावस्थित और विरक्त मनुष्य के समान बनाई हैं, उनसे विरुद्ध वैष्णवादि ने खूब शृङ्गारित, स्त्री के सहित, रङ्ग-राग-भोग-विषयासक्ति-सहिताकार खड़ी और बैठी मूर्त्तियां बनाई हैं। जैनी लोग बहुत से शंख, घंटा, घड़ियाल नहीं बजाते। ये लोग बड़ा

कोलाहल करते हैं। तब तो ऐसी लीला के रचने से वैष्णवादि सम्प्रदायी पोपों के चेले जैनियों के जाल से बचके इनकी लीला में आ फसे और बहुत-से व्यासादि महर्षियों के नाम से मनमानी असम्भव गाथायुक्त ग्रन्थ बनाये, उनका नाम 'पुराण' रखकर कथा भी सुनाने लगे।

[वैष्णवों द्वारा छल कपट से भी मूर्त्तियों की स्थापना]

और फिर ऐसी-ऐसी विचित्र माया रचने लगे कि पाषाण की मूर्त्तियां बनाकर गुप्त कहीं पहाड़ वा जंगलादि में धर आये वा भूमि में गाड़ दी। पश्चात् अपने चेलों में प्रसिद्ध किया कि मुझ को रात्रि को स्वप्न में महादेव, पार्वती, राधा, कृष्ण, सीता, राम वा लक्ष्मी, नारायण और भैरव, हनुमान् आदि ने कहा है कि हम अमुक-अमुक ठिकाने हैं। हमको वहां से ला, मन्दिर में स्थापन कर और तू ही हमारा पुजारी होवे तो हम मनोवांछित फल देवें।

जब **'आंख के अन्धे और गांठ के पूरे'** लोगों ने पोप जी की लीला सुनी तब तो सच ही मान ली और उनसे पूछा कि ऐसी वह मूर्त्ति कहां पर है? जब तो पोप जी बोले कि अमुक पहाड़ वा जंगल में है, चलो मेरे साथ दिखला दूं। तब तो वे अन्धे उस धूर्त्त के साथ चले और वहां पहुंच कर देखा। साश्चर्य होकर उस पोप के पगों में गिर कर कहा कि आपके ऊपर इस देवता की बड़ी ही कृपा है। अब आप ले चलिये और हम मन्दिर बनवा देवेंगे। उसमें इस देवता की स्थापना कर आप ही पूजा करना और हम लोग भी इस प्रतापी देवता के दर्शन-पर्सन करके मनोवांछित फल पावेंगे।

इसी प्रकार जब एक ने लीला रची तब तो उसको देख सब पोप लोगों ने अपनी जीविकार्थ छल-कपट से मूर्त्तियां स्थापित कीं।

[मूर्त्ति के देखने से परमात्मा का स्मरण नहीं]

प्रश्न—परमेश्वर निराकार है, वह ध्यान में नहीं आ सकता; इसलिये मूर्त्ति का होना आवश्यक है। भला, कुछ भी नहीं करें, तो जब मूर्त्ति के सामने जाते हैं तब कुछ परमेश्वर का स्मरण करते और नाम तो लेते ही हैं।

उत्तर—जब परमेश्वर निराकार सर्वव्यापक है, तब उसकी मूर्त्ति ही नहीं बन सकती। जो मूर्त्ति के दर्शनमात्र से परमेश्वर का स्मरण होवे तो परमेश्वर के बनाये पृथिवी, जल, अग्नि, वनस्पति आदि अनेक पदार्थ, जिनमें ईश्वर ने अद्भुत रचना की है, क्या ऐसी रचनायुक्त पृथिवी, पहाड़ आदि परमेश्वर-रचित महामूर्त्तियाँ कि जिन पहाड़ आदि से ये मनुष्यकृत मूर्त्तियाँ बनती हैं, उनको देखकर परमेश्वर का स्मरण क्या नहीं हो सकता? जो किसी दूसरे को देख परमेश्वर का स्मरण करे, तो जब वह सामने न रहे, तब परमेश्वर को भी भूल जायें और **जब परमेश्वर को मनुष्य भूल जाता है, तभी वह एकान्त पाकर अपराध कर लेता है कि यहाँ मुझको कोई नहीं देखता।**

[परमात्मा को सर्वव्यापक मानने से पाप से बचाव]

जो मूर्त्ति को न मान परमेश्वर को व्यापक माने तो वह उसके डर से कि मुझको परमेश्वर देखता है, पाप न करे।

[नाम-स्मरण की उत्तम रीति]

नामस्मरण मात्र से कुछ भी फल नहीं होता, जैसा कि मिश्री-मिश्री कहने से मुख न मीठा और नीम-नीम कहने से कड़ुवा नहीं होता, किन्तु उनको जीभ से चखने से मीठा[पन] वा कड़ुवापन जाना जाता है।

प्रश्न—क्या नाम लेना सर्वथा मिथ्या है, जो सर्वत्र पुराणों में नामस्मरण का बड़ा माहात्म्य लिखा है?

उत्तर—नाम लेने की तुम्हारी रीति उत्तम नहीं। जिस प्रकार तुम नाम स्मरण करते हो, वह रीति झूठी है।

प्रश्न—हमारी कैसी रीति है?

उत्तर—वेदविरुद्ध।

प्रश्न—भला, अब आप हमको नामस्मरण की वेदोक्त रीति बतलाइये?

उत्तर—नामस्मरण इस प्रकार करना चाहिये—जैसे **'न्यायकारी'** ईश्वर का एक नाम है। इस नाम से जो इसका अर्थ है कि जैसे पक्षपातरहित होकर परमात्मा सबका यथावत् न्याय करता है, वैसे उसको ग्रहण कर न्याययुक्त व्यवहार सर्वदा करना, अन्याय कभी न करना। इस प्रकार एक नाम से भी मनुष्य का कल्याण हो सकता है।

[अवतारों की कल्पना युक्ति तथा वेदविरुद्ध है]

प्रश्न—हम भी जानते हैं कि परमेश्वर निराकार है, परन्तु उसने शिव, विष्णु, गणेश, सूर्य, राम, कृष्णादि और देवी आदि के शरीर धारण करके अवतार लिये। इससे उसकी मूर्त्ति बनती है। क्या यह भी बात झूठी है?

उत्तर—हाँ-हाँ झूठी; क्योंकि—

"**अज एकपात्**" [ऋ०७।३५।१३], "**अकायम्**" [यजु: ४०।८]

इत्यादि विशेषणों से परमेश्वर को जन्म और शरीरधारणरहित वेद में कहा है, तथा युक्ति से भी परमेश्वर का अवतार कभी नहीं हो सकता; क्योंकि जो आकाशवत् सर्वत्र व्यापक, अनन्त और सुख, दु:ख, दृश्यादि गुणरहित है, वह एक छोटे से वीर्य, गर्भाशय और शरीर में क्योंकर आ सकता है? आता-जाता वह है कि जो एकदेशी हो। जो अचल, अदृश्य [है], जिसके विना एक परमाणु भी खाली नहीं है, उसका अवतार कहना जानो 'वन्ध्या के पुत्र का विवाह कर, उसके पौत्र के दर्शन करने की बात कहना' है।

[मूर्त्ति में ईश्वर की भावना करना उसका अपमान है]

प्रश्न—जब परमेश्वर व्यापक है तो मूर्त्ति में भी है, पुन: चाहे किसी पदार्थ में भावना करके पूजा करना अच्छा क्यों नहीं? देखो—

न काष्ठे विद्यते देवो न पाषाणे न मृण्मये।
भावे हि विद्यते देवस्तस्माद्भावो हि कारणम्॥

[तुलना— गरुडपुराण, ध० कां० प्रेतखण्ड ३८।१३॥]

परमेश्वर देव न काष्ठ, न पाषाण, न मृत्तिका के बनाये पदार्थों में है किन्तु परमेश्वर तो भाव में विद्यमान है। जहाँ भाव करें, वहीं परमेश्वर प्रसिद्ध होता है।

उत्तर—जब परमेश्वर सर्वत्र व्यापक है तो किसी एक वस्तु में परमेश्वर की भावना करना, अन्यत्र न करना, यह ऐसी बात है कि जैसी चक्रवर्ती राजा को सब राज्य की सत्ता से छुड़ाके एक छोटी-सी कुटी का स्वामी मानना। देखो, यह कितना बड़ा अपमान है!! वैसा तुम परमेश्वर का भी अपमान करते हो। जब व्यापक मानते हो तो वाटिका में से पुष्प-पत्र तोड़, लाके, क्यों चढ़ाते [हो]? चन्दन को घिस क्यों लगाते [हो]? धूप को जला, क्यों देते हो? घण्टा, घड़ियाल, झाँज, पखावजों को लकड़ी से कूटना-पीटना क्यों करते हो? तुम्हारे हाथों में है, क्यों जोडते हो? शिर में है, क्यों नमाते हो? अन्न-जलादि में है, क्यों नैवेद्य धरते हो? जल में है, स्नान क्यों कराते हो? क्योंकि उन सबमें व्यापक परमात्मा है। **और तुम व्यापक की पूजा करते हो वा व्याप्य की? जो व्यापक की करते हो, तो पाषाण, लकड़ी आदि पर चन्दन, पुष्पादि क्यों चढ़ाते हो? और जो व्याप्य की करते हो तो 'हम परमेश्वर की पूजा करते हैं', ऐसा झूठ क्यों बोलते हो? 'हम पाषाणादि के पुजारी हैं', ऐसा सत्य क्यों नहीं बोलते?**

[भावना का वास्तविक अभिप्राय]

'भाव' सच्चा है वा झूठा? जो कहो 'सच्चा' है, तो तुम्हारे भाव के आधीन होकर परमेश्वर बद्ध हो जायगा; और तुम मिट्टी में सुवर्ण की, पाषाण में हीरा-पन्ना की, समुद्रफेन में मोती की, जल में घी-दूध की, बर्फ़ में दही आदि की, धूल में मैदा-शक्कर की भावना करके उनको वैसा क्यों नहीं बना लेते हो? दुःख की भावना कोई नहीं करता, फिर दुःख क्यों होता है? और सुख की भावना करते हो, वह क्यों नहीं होता? अन्धा नेत्र की भावना करके क्यों नहीं देखता? मरने की भावना नहीं है, क्यों मर जाते हो? इसलिये तुम्हारी भावना सच्ची नहीं; क्योंकि **'भावना'** 'जैसे में वैसा भाव करने' को कहते हैं, जैसे अग्नि में अग्नि, जल में जल जानना। और जल में अग्नि, अग्नि में जल समझना अभावना है; क्योंकि जैसे को वैसा जानना **'ज्ञान'** और अन्यथा जानना **'अज्ञान'** है। इसलिये तुम अभावना को भावना और भावना को अभावना कहते हो।

[मन्त्रों से देवता का आवाहन-विसर्जन नहीं होता]

प्रश्न—अजी! जब तक वेदमन्त्रों से आवाहन नहीं करते, देवता नहीं आता, और आवाहन करने से झट आता और विसर्जन करने से चला जाता है।

उत्तर—जो मन्त्र से आवाहन करने से देवता आ जाता है, तो मूर्त्ति चेतन क्यों नहीं हो जाती? और विसर्जन करने से चला जाता है, तो वह कहाँ से आता और कहाँ जाता है?

सुनो भाई! पूर्ण परमात्मा न आता, न जाता है। जो तुम मन्त्र से परमेश्वर को बुला लेते हो, तो उन्हीं मन्त्रों से अपने मरे हुए पुत्र के शरीर में जीव को क्यों नहीं बुला लेते? और शत्रु के शरीर से जीवात्मा का विसर्जन करके क्यों नहीं मार सकते?

सुनो भाई भोले लोगो! ये **'पोप'** जी तुमको ठगकर अपना प्रयोजन सिद्ध करते हैं। वेदों में पाषाणादि मूर्त्तिपूजा और परमेश्वर के आवाहन-विसर्जन करने का एक अक्षर भी नहीं है।

[आवाहन के कल्पनिक तान्त्रिक मन्त्र]

प्रश्न— प्राणा इहागच्छन्तु सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा॥ आत्मेहागच्छतु सुखं चिरं तिष्ठतु स्वाहा॥
इन्द्रियाणीहागच्छन्तु सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा॥

[प्रतिष्ठामयूख, तन्त्रग्रन्थ]

इत्यादि वेद के मन्त्र हैं, क्यों कहते हो नहीं हैं?

उत्तर—अरे भाई! बुद्धि को थोड़ी-सी तो अपने काम में लाओ। ये सब वाममार्गियों के वेदविरुद्ध कपोलकल्पित तन्त्रग्रन्थों की पोपरचित पंक्तियाँ हैं, वेदवचन नहीं।

[तन्त्र-ग्रन्थ सब मिथ्या हैं]

प्रश्न—क्या तन्त्र झूठा है?

उत्तर—हां, सर्वथा झूठा है। जैसे आवाहन, प्राणप्रतिष्ठादि, पाषाण-आदि मूर्त्तिविषयक एक मन्त्र भी वेदों में नहीं, वैसे **'स्नानं समर्पयामि'** इत्यादि वचन भी नहीं। अर्थात् इतना भी नहीं है कि **'पाषाणादिमूर्त्तिं रचयित्वा मन्दिरेषु संस्थाप्य गन्धादिभिरर्चयेत्'** =पाषाण की मूर्त्ति बना, मन्दिरों में स्थापन कर चन्दन-अक्षतादि से पूजे। ऐसा लेशमात्र भी नहीं।

[परमेश्वर के स्थान में अन्य की पूजा का निषेध]

प्रश्न—जो वेदों में विधि नहीं, तो खण्डन भी नहीं है; और जो खण्डन है तो **'प्राप्तौ सत्यां निषेधः'** =मूर्त्ति के होने से ही खण्डन संगत हो सकता है।

उत्तर—विधि तो [है ही] नहीं, अपितु परमेश्वर के स्थान में किसी अन्य पदार्थ को पूजनीय मानने का भी सर्वथा निषेध किया है।

['अपूर्वविधि' में प्रमाण]

क्या अपूर्वविधि नहीं होता? सुनो! यह है—

अन्धन्तमः प्र विंशन्ति येऽसंम्भूतिमुपासंते।
ततो भूयंऽइव ते तमो यऽउ सम्भूंत्याᳬ रताः॥[१॥]

यजुः० अ० ४०। मं० ९॥

न तस्यं प्रतिमाऽअंस्ति॥ [२॥]

यजुः० अ० ३२।मं० ३॥

यद्वाचानभ्युदितं येन वागभ्युद्यते।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते॥३॥

यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम्।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते॥४॥
यच्चक्षुषा न पश्यति येन चक्षूँषि पश्यति।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते॥५॥
यच्छ्रोत्रेण न शृणोति येन श्रोत्रमिदं श्रुतम्।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते॥६॥
यत्प्राणेन न प्राणिति येन प्राणः प्राणीयते।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते॥७॥

केनोप० [खं० १। मं० ४-८]॥

जो असम्भूति अर्थात् अनुत्पन्न अनादि प्रकृति= कारण की, ब्रह्म के स्थान में उपासना करते हैं, वे अन्धकार अर्थात् अज्ञान और दुःखसागर में डूबते हैं; और सम्भूति=जो कारण से उत्पन्न हुए कार्यरूप पृथिवी आदि भूत, पाषाण और वृक्षादि अवयव और मनुष्यादि के शरीर की उपासना ब्रह्म के स्थान में करते हैं, वे महामूर्ख उस अन्धकार से भी अधिक अन्धकार अर्थात् चिरकाल [तक] घोर दुःखरूप नरक में गिरके महाक्लेश भोगते हैं॥१॥

जो सब जगत् में व्यापक है उस निराकार परमात्मा की प्रतिमा, परिमाण, सादृश्य वा मूर्त्ति नहीं है॥२॥

जो वाणी का **'इदंता'** अर्थात् 'यह जल है लीजिये', वैसा विषय नहीं, और जिसके धारण और सत्ता से वाणी की प्रवृत्ति होती है, उसी को ब्रह्म

जान और [उसी की] उपासना कर; और जो उससे भिन्न है, वह उपासनीय नहीं॥३॥

जो मन से **'इयत्ता'** करके मनन में नहीं आता, जो मन को जानता है, उसी को तू ब्रह्म जान और उसी की उपासना कर; जो उससे भिन्न जीव और अन्तःकरण है, उसकी उपासना ब्रह्म के स्थान में मत कर॥४॥

जो आँखों से नहीं दीख पड़ता और जिससे सब आँखें देखती हैं, उसी को तू ब्रह्म जान और उसी की उपासना कर। और जो उससे भिन्न सूर्य, विद्युत् और अग्नि आदि जड़ पदार्थ हैं, उनकी उपासना मत कर॥५॥

जो श्रोत्र से नहीं सुना जाता और जिससे श्रोत्र सुनता है, उसी को तू ब्रह्म जान और उसी की उपासना कर। उससे भिन्न शब्दादि की उपासना उसके स्थान में मत कर॥६॥

जो प्राणों से चलायमान नहीं होता, जिससे प्राण गमन को प्राप्त होता है, उसी को तू ब्रह्म जान और उसी की उपासना कर। जो यह उससे भिन्न वायु है, उसकी उपासना मत कर॥५॥

इत्यादि बहुत से निषेध हैं।

निषेध प्राप्त और अप्राप्त का भी होता है। **'प्राप्त'** का जैसे—कोई कहीं बैठा हो, उसको वहाँ से उठा देना। **'अप्राप्त'** का जैसे—'हे पुत्र! तू चोरी कभी मत करना, कुए में मत गिरना, दुष्टों का सङ्ग मत करना, विद्याहीन मत रहना', इत्यादि अप्राप्त का भी निषेध होता है। सो मनुष्यों के ज्ञान में अप्राप्त का और परमेश्वर के ज्ञान में प्राप्त का निषेध किया है। इसलिये पाषाणादि मूर्त्तिपूजा अत्यन्त निषिद्ध है।

[मूर्त्ति-पूजा में पाप है]

प्रश्न—मूर्त्तिपूजा में पुण्य नहीं, तो पाप तो नहीं है?

उत्तर—कर्म दो ही प्रकार के होते हैं—एक **विहित**=जो वेद में कर्त्तव्यता से सत्यभाषणादि प्रतिपादित हैं। दूसरा **निषिद्ध**=जो अकर्त्तव्यता से मिथ्याभाषणादि वेद में निषिद्ध हैं। जैसे विहित का अनुष्ठान करना वह धर्म, उसका न करना अधर्म है, वैसे ही निषिद्ध कर्म का करना अधर्म और न करना धर्म है। जब वेद में निषिद्ध मूर्त्तिपूजादि कर्म तुम करते हो, तो पापी क्यों नहीं?

[मूर्त्तिपूजा अधर्म है; वह सोढ़ी नहीं एक खाई है]

प्रश्न—देखो, वेद अनादि हैं। उस समय मूर्त्ति का क्या काम था? क्योंकि पहले तो देवता प्रत्यक्ष थे। यह रीति तो पीछे से तन्त्र और पुराणों से चली है। जब मनुष्यों का ज्ञान और सामर्थ्य न्यून हो गया, परमेश्वर को ध्यान में नहीं ला सके, तब मूर्त्ति का ध्यान करने लगे। इस कारण अज्ञानियों के लिये मूर्त्तिपूजा है। क्योंकि सीढ़ी-सीढ़ी से चढ़े तो भवन पर पहुँच जाय। पहली सीढ़ी छोड़कर ऊपर जाना चाहे तो नहीं जा सकता, इसलिये मूर्त्ति

प्रथम सीढ़ी है। इसको पूजता-पूजता जब ज्ञानी होगा और अन्तःकरण पवित्र होगा, तब परमात्मा का ध्यान कर सकेगा। जैसे लक्ष्य पर मारनेवाला प्रथम स्थूल लक्ष्य में तीर, गोली वा गोला आदि मारता-मारता पश्चात् सूक्ष्म पर निशाना भी मार सकता है, वैसे स्थूल मूर्त्ति की पूजा करता-करता सूक्ष्म ब्रह्म को भी प्राप्त होता है। जैसे लड़कियाँ गुड़ियों का खेल तब तक करती हैं, जब तक सच्चे पति को प्राप्त नहीं होतीं, इत्यादि प्रकार से मूर्त्तिपूजा करना दुष्ट काम नहीं।

उत्तर—जब वेदविहित में धर्म और वेदविरुद्धाचरण में अधर्म है, तो तुम्हारे कहने से भी मूर्त्तिपूजा करना, अधर्म ठहरा। **जो ग्रन्थ वेद से विरुद्ध हैं उनका प्रमाण करना, जानो 'नास्तिक' होना है।** सुनो—

नास्तिको वेदनिन्दकः॥१॥

[मनु० २।११]॥

या वेदबाह्याः स्मृतयो याश्च काश्च कुदृष्टयः।
सर्वास्ता निष्फलाः प्रेत्य तमोनिष्ठा हि ताः स्मृताः॥२॥
उत्पद्यन्ते च्यवन्ते च यान्यतोऽन्यानि कानिचित्।
तान्यर्वाक्कालिकतया निष्फलान्यनृतानि च॥३॥

मनु०, अ० १२ [श्लो० ९५-९६]॥

मनु जी कहते हैं—जो वेदों की निन्दा अर्थात् अपमान, त्याग, विरुद्धाचरण करता है, वह **'नास्तिक'** कहाता है॥१॥

जो ग्रन्थ वेदबाह्य, कुत्सित पुरुषों के बनाये, संसार को दुःखसागर में डुबानेवाले हैं, वे सब निष्फल, असत्य, अन्धकाररूप, इस लोक और परलोक में दुःखदायक हैं॥२॥

जो इन वेदों से विरुद्ध ग्रन्थ उत्पन्न होते हैं, वे आधुनिक होने से शीघ्र नष्ट हो जाते हैं। उनका मानना निष्फल और झूठा है॥३॥

इसी प्रकार ब्रह्मा से लेकर जैमिनि मुनि पर्यन्त का मत है कि वेदविरुद्ध को न मानना, किन्तु वेदानुकूल का ही आचरण करना धर्म है। क्योंकि वेद सत्य अर्थ का प्रतिपादक है, इससे विरुद्ध जितने तन्त्र और पुराण हैं, वे वेदविरुद्ध होने से झूठे हैं, वे वेद से विरुद्ध चलते हैं। उनमें कही हुई मूर्त्तिपूजा भी अधर्मरूप है। मनुष्यों का ज्ञान जड़ की पूजा से नहीं बढ़ सकता किन्तु जो कुछ ज्ञान है, सो भी नष्ट हो जाता है। इसलिये ज्ञानियों की सेवा-सङ्ग से ज्ञान बढ़ता है, पाषाणादि से नहीं। क्या पाषाणादि मूर्त्तिपूजा से परमेश्वर को ध्यान में कभी [कोई] ला सकता है? नहीं-नहीं।

मूर्त्तिपूजा सीढ़ी नहीं किन्तु एक बड़ी खाई है जिसमें गिरकर [मनुष्य] चकनाचूर हो जाता है। पुनः उस खाई से निकल नहीं सकता, किन्तु उसी में मर जाता है। हां, छोटे धार्मिक विद्वानों से लेकर परम विद्वान् योगियों के संग से सद्विद्या और सत्यभाषणादि परमेश्वर की प्राप्ति की सीढ़ियाँ हैं, जैसी कि ऊपर घर में जाने की निःश्रेणी होती है।

किन्तु मूर्त्तिपूजा करते-करते ज्ञानी तो कोई न हुआ, प्रत्युत सब मूर्त्तिपूजक अज्ञानी रहकर, मनुष्यजन्म व्यर्थ खोके, बहुत मर गये; और जो अब हैं वा होंगे, वे भी मनुष्यजन्म के धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्तिरूप फलों से विमुख होकर निरर्थ नष्ट हो जायेंगे। मूर्त्तिपूजा ब्रह्म की प्राप्ति में स्थूल लक्ष्यवत् नहीं, किन्तु धार्मिक, विद्वान् [होना] और सृष्टिविद्या [का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करना लक्ष्य] है; इसको बढ़ाता-बढ़ाता ब्रह्म को भी पाता है। और मूर्त्ति गुड़ियों के खेलवत् नहीं, किन्तु प्रथम अक्षराभ्यास, सुशिक्षा का होना, गुड़ियों के खेलवत् ब्रह्म की प्राप्ति के साधन हैं। सुनिये, **जब अच्छी शिक्षा और विद्या को प्राप्त होगा, तब सच्चे स्वामी परमात्मा को भी प्राप्त हो जायगा।**

[मूर्त्तिपूजा में १६ दोष]

प्रश्न—साकार में मन स्थिर होता है और निराकार में स्थिर होना कठिन है, इसलिये मूर्त्तिपूजा रहनी चाहिये।

उत्तर—साकार में मन स्थिर कभी नहीं हो सकता; क्योंकि—

[प्रथम दोष-] उसको मन झट ग्रहण करके उसी के एक-एक अवयव में घूमता और दूसरे में दौड़ जाता है, और निराकार अनन्त परमात्मा के ग्रहण में यावत्सामर्थ्य मन अत्यन्त दौड़ता है, तो भी अन्त नहीं पाता। निरवयव होने से चञ्चल भी नहीं रहता किन्तु उसी के गुण-कर्म-स्वभाव का विचार करता-करता आनन्द में मग्न होकर स्थिर हो जाता है। और जो साकार में स्थिर होता तो सब जगत् का मन स्थिर हो जाता; क्योंकि

जगत् में मनुष्य, स्त्री, पुत्र, धन, मित्र आदि साकार में फसा रहता है, परन्तु किसी का मन स्थिर नहीं होता, जब तक निराकार में न लगावे; क्योंकि उसके निरवयव होने से उसमें मन स्थिर हो जाता है, इसलिये मूर्त्तिपूजा करना अधर्म है।

दूसरा—उसमें करोड़ों रुपये मन्दिरों में व्यय करके दरिद्र हो जाते हैं और उसमें प्रमाद होता है।

तीसरा—स्त्री-पुरुषों का मन्दिरों में मेला होने से व्यभिचार, लड़ाई-बखेड़ा और रोग आदि उत्पन्न होते हैं।

चौथा—उसी को धर्म, अर्थ, काम और मुक्ति का साधन मानके पुरुषार्थरहित होकर मनुष्यजन्म व्यर्थ गमाते हैं।

पाँचवाँ—नाना प्रकार की विरुद्ध-स्वरूप-नाम-चरित्रयुक्त मूर्त्तियों के पुजारियों का ऐक्यमत नष्ट होके, विरुद्धमत में चलकर, आपस में फूट बढ़ाके, देश का नाश करते हैं।

छठा—उसीके भरोसे में शत्रु का पराजय और अपना विजय मान बैठे रहते हैं। उनका पराजय होकर राज्य, स्वातन्त्र्य और धन का सुख [आदि] उनके शत्रुओं के आधीन होते हैं। आप पराधीन **'भठियारे के**

टट्टू' और **'कुम्हार के गधे'** के तुल्य शत्रुओं के वश में होकर अनेकविध दुःख पाते हैं।

सातवाँ—जब कोई किसी को कहे कि हम तेरे बैठने के आसन वा नाम पर पत्थर धरें, तो जैसे वह उन पर क्रोधित होकर मारता है वा गाली प्रदान करता है, वैसे ही जो परमेश्वर के उपासना के स्थान हृदय और नाम पर पाषाणादि मूर्त्तियाँ धरते हैं, उनका सत्यानाश परमेश्वर क्यों न करे?

आठवाँ—भ्रान्त होकर मन्दिर-मन्दिर, देश-देशान्तर में घूमते-घूमते दुःख पाते; धर्म, संसार और परमार्थ का काम नष्ट करते; चोर आदि से पीड़ित होते, ठगों से ठगाते रहते हैं।

नववाँ—दुष्ट पुजारियों को धन देते हैं, वे उस धन को वेश्या- परस्त्रीगमन, मद्य-मांसाहार, लड़ाई-बखेड़ों में व्यय करते हैं, जिससे दाता के सुख का मूल नष्ट होकर दुःख होता है।

दशवाँ—माता-पिता आदि माननीयों का अपमान और पाषाणादि मूर्त्तियों का मान करके कृतघ्न हो जाते हैं।

ग्यारहवाँ—उन मूर्त्तियों को कोई तोड़ डालता वा चोर ले जाता है तब 'हा-हा' करके रोते रहते हैं।

बारहवाँ—पुजारी परस्त्रियों के संग और पुजारिन परपुरुषों के संग से प्रायः दूषित होकर स्त्री-पुरुष के प्रेम के आनन्द को हाथ से खो बैठते हैं।

तेरहवाँ—स्वामी-सेवक की आज्ञा का पालन यथावत् न होने से, आपस में विरुद्ध होकर, नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं।

चौदहवाँ—जड़ का ध्यान करनेवाले का आत्मा भी जड़बुद्धि होता है, क्योंकि ध्येय का जड़त्व-धर्म अन्तःकरण द्वारा आत्मा में अवश्य आता है।

पन्द्रहवाँ—परमेश्वर ने पुष्पादि सुगन्ध के लिये, वायु-जल के दुर्गन्ध निवारण और आरोग्यता के लिये बनाये हैं। उनको पुजारी तोड़कर, पूर्ण सुगन्ध के समय तक उनका सुगन्ध होता, परन्तु उनका नाश मध्य में ही कर देते हैं। पुष्पादि, कीच के साथ मिल-सड़कर उलटा दुर्गन्ध उत्पन्न करते हैं। क्या परमात्मा ने पत्थर पर चढ़ाने के लिये पुष्पादि सुगन्धियुक्त पदार्थ रचे हैं? इसलिये मूर्त्तिपूजा करने में पाप होता है।

सोलहवां—पत्थर पर चढ़े हुए चन्दन और अक्षत आदि सबका जल और मृत्तिका का संयोग होने से मोरी वा कुण्ड में आकर, सड़के, इतना दुर्गन्ध उससे आकाश में चढ़ता है कि जितना मनुष्य के मल का। और सहस्रों जीव उसमें पड़ते, उसी में मरते, और सड़ते।

इत्यादि पापों का मूलकारण पाषाणादि-मूर्त्तिपूजा ही है। मूर्त्तिपूजा के करने में ऐसे-ऐसे अनेक दोष आते हैं, इसलिये पाषाणादि-मूर्त्तिपूजा सज्जन लोगों को सर्वथा त्यक्तव्य है। और जिन्होंने पाषाणमयी मूर्त्ति की पूजा की है, करते हैं और करेंगे, वे पूर्वोक्त दोषों से न बचे, न बचते हैं और न बचेंगे।

[सच्ची पञ्चायतन-पूजा क्या है]

प्रश्न—किसी प्रकार की मूर्त्तिपूजा करनी [चाहिये] वा नहीं? और जो अपने आर्यावर्त में **'पंचदेवपूजा'** शब्द प्राचीन परम्परा से चला आता है, उसका यही **'पंचायतनपूजा'** जो कि शिव, विष्णु, अम्बिका, गणेश और सूर्य की मूर्त्ति बनाकर पूजते हैं [अर्थ] है वा नहीं?

उत्तर—किसी प्रकार की मूर्त्तिपूजा न करनी चाहिये; किन्तु 'मूर्त्तिमान्' जो नीचे कहेंगे, उनकी **'पूजा'** अर्थात् **सत्कार** करना चाहिये। यह **'पंचदेवपूजा'**, [और] **'पंचायतनपूजा'** शब्द बहुत अच्छे अर्थवाला था, परन्तु मूढ़ों ने उस सदर्थ को छोड़कर, असत्य अर्थ को पकड़ लिया, जो आजकल शिवादि पाँचों की मूर्त्तियाँ बनाकर पूजते हैं। उनका खण्डन तो अभी कर चुके हैं; पर जो सच्ची 'पंचायतन' वेदोक्त और वेदानुकूल देवपूजा और मूर्त्तिपूजा यह है, सुनो—

मा नों वधीः पितरं मोत मातरम्॥१॥

यजुः० [१६।१५]

आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते॥२॥

[अथर्व० ११।५।३]

अतिथिर्गृहानागच्छेत्॥३॥

अथर्व० [१५।१२।१]

अर्चत प्रार्चत प्रियमेधासो अर्चत॥४॥

ऋग्वेद [८।६९।८]

त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि॥५॥

तैत्तिरीयोपनि० [१।१]

कतम एको देव इति स ब्रह्म त्यदित्याचक्षते॥६॥

शतपथ० [कां० १४] प्रपाठक ५। ब्राह्मण ७। कण्डिका १० ॥

मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव। अतिथिदेवो भव॥७॥

तैत्तिरीयोप० [शिक्षावल्ली। अनु० ११।२]

पितृभिर्भ्रातृभिश्चैताः पतिभिर्देवरैस्तथा।
पूज्या भूषयितव्याश्च बहुकल्याणमीप्सुभिः॥८॥

मनु [३।५५]

पूज्यो देववत्पतिः॥९॥

मनुस्मृति [तुलना—५।१५४]

प्रथम—**'माता'** मूर्त्तिमती पूजनीय देवता [है], अर्थात् सन्तानों को, तन-मन धन से वा सेवा करके माता को प्रसन्न रखना चाहिये और हिंसा अर्थात् ताड़ना कभी न करनी चाहिये।

दूसरा—**'पिता'** सत्कर्त्तव्य देव [है]। उसकी भी माता के समान सेवा करनी चाहिये॥१॥

तीसरा—**'आचार्य'** जो विद्या का देनेवाला है, उसकी तन, मन से सेवा करनी चाहिये॥२॥

चौथा **'अतिथि'**—जो विद्वान् धार्मिक, निष्कपटी, सबकी उन्नति चाहनेवाला, [हो और जो] जगत् में भ्रमण करता हुआ, सत्य उपदेश से सबको सुखी करता रहे, उसकी सेवा करें॥३॥

पाँचवाँ—स्त्री के लिये **पति** [पूजनीय] और पुरुष के लिये **स्वपत्नी** पूजनीया है॥८९॥

ये पाँच मूर्त्तिमान् देव हैं, जिनके संग से मनुष्यदेह की उत्पत्ति, पालन, सत्यशिक्षा-विद्या और सत्योपदेश की प्राप्ति होती है। ये ही परमेश्वर को प्राप्त करने की सीढ़ियाँ है। इनकी सेवा न करके जो पाषाणादि-मूर्त्तियाँ पूजते हैं, वे अतीव पामर, नरकगामी हैं।

प्रश्न—माता-पिता आदि की सेवा करें और मूर्त्तिपूजा भी करें, तब तो कोई दोष नहीं?

उत्तर—पाषाणादि-मूर्त्तिपूजा तो सर्वथा छोड़ने और मातादि मूर्त्तिमानों की सेवा करने में ही कल्याण है। बड़े अनर्थ की बात है कि साक्षात् माता आदि प्रत्यक्ष सुखदायक देवों को छोड़के अदेव पाषाणादि में शिर मारना स्वीकार किया।

[पुजारियों की लीला]

इसको मूढों ने इसीलिये स्वीकार किया है कि जो माता-पितादि के सामने नैवेद्य वा भेंट-पूजा धरेंगे तो वे स्वयं खा लेंगे और भेंट-पूजा ले लेंगे, हमारे मुख वा हाथ में न पड़ेगी। इससे पाषाणादि की मूर्त्ति बना, उसके आगे नैवेद्य धर, टं टं घंटा, और पूँ-पूँ शंख बजा, अंगूठा दिखला **'त्वमङ्गुष्ठं गृहाण, भोजनं पदार्थं वाऽहं ग्रहीष्यामि'**=जैसे कोई किसी को छले वा चिड़ावे कि **'तू अंगूठा ले'** और अंगूठा दिखलावे, उसके आगे से सब पदार्थ ले आप भोगे, वैसी ही लीला इन **'पूजारियों'** अर्थात् **'पूजा' नाम सत्कर्म के शत्रुओं की है।** [ये] मूढ़ों को चटक-मटक, चलक-झलक दिखा, मूर्त्तियों को बना-ठना, आप ठगों के तुल्य बन-ठनके, बेचारे निर्बुद्धियों, अनाथों का माल मारके मौज करते हैं। **जो कोई धार्मिक राजा होता तो इन पाषाणप्रियों को पत्थर तोड़ने, बनाने और घर रचने आदि कामों में लगाके खाने-पीने को देता, निर्वाह कराता।**

[वीतराग की मूर्त्ति देखने से शान्ति की प्राप्ति नहीं]

प्रश्न—जैसे स्त्री आदि की पाषाणादि मूर्त्ति देखने से कामोत्पत्ति होती है, वैसे वीतराग शान्त की मूर्त्ति देखने से वैराग्य और शान्ति की प्राप्ति क्यों न होगी?

उत्तर—नहीं हो सकती; क्योंकि **मूर्त्ति के जड़त्व धर्म आत्मा में आने से विचारशक्ति घट जाती है। विवेक के विना न वैराग्य, और वैराग्य के विना न विज्ञान होता है, विज्ञान के विना शान्ति नहीं होती।** और जो कुछ होता है सो उनके संग, उपदेश और उनके इतिहासादि के देखने से होता है, क्योंकि किसी का गुण वा दोष जाने विना, उसकी मूर्त्तिमात्र देखने से प्रीति ही नहीं होती। प्रीति होने का कारण गुणज्ञान है। ऐसे मूर्त्तिपूजा आदि बुरे कारणों से ही आर्यावर्त में निकम्मे **'पूजारी'**, भिक्षुक, आलसी, पुरुषार्थरहित करोड़ों मनुष्य हुए हैं। स्वयं मूढ होने से सब संसार में मूढ़ता उन्हींने फैलाई है, झूठ-छल भी बहुत-सा फैलाया है।

[लाटभैरव महादेव वेणीमाधव के चमत्कार का खण्डन]

प्रश्न—देखो, काशी में **'अवरङ्गजेब'** (औरंगजेब)' बादशाह को **'लाटभैरव'** आदि ने बड़े चमत्कार दिखलाये थे। जब मुसलमान उनको तोड़ने गये, और उन्होंने जब उन पर तोप के गोले मारे, तब बड़े-बड़े भमरों ने निकलकर, सब फ़ौज को व्याकुल कर, भगा दिया।

उत्तर—यह पाषाण का चमत्कार नहीं, किन्तु वहाँ भमरों के छत्ते लग रहे होंगे। उनका स्वभाव है, जब कोई उनको छेड़े, तो काटने दौड़ते हैं। और जो दूध की धारा का चमत्कार होता था, वह पुजारी की लीला थी।

प्रश्न—देखो, **महादेव** म्लेच्छ को दर्शन न देने के लिये कूप में और **वेणीमाधव** एक ब्राह्मण के घर में जा छिपे। क्या यह भी चमत्कार नहीं है?

उत्तर—भला, जिसके कोटपाल **कालभैरव**, **लाटभैरव** आदि भूत-प्रेत और गरुड़ आदि [गण हैं, उन] गणों ने मुसलमानों को लड़के क्यों न हटाया? जब महादेव और विष्णु की पुराणों में कथा है कि अनेक **त्रिपुरासुर** आदि बड़े भयंकर दुष्टों को भस्म कर दिया, तो मुसलमानों को भस्म क्यों न किया? इससे यह सिद्ध होता है कि वे बेचारे पाषाण क्या लड़ते-लड़ाते? जब मुसलमान मन्दिर और मूर्त्तियों को तोड़ते-फोडते हुए काशी के पास आये, तब पुजारियों ने उस पाषाण के लिङ्ग को कूप में डाल [दिया] और वेणीमाधव को ब्राह्मण के घर में छिपा दिया। जब काशी में कालभैरव के डर के मारे यमदूत नहीं जाते, प्रलय में भी काशी का नाश होने नहीं देते, तो म्लेच्छों के दूतों को क्यों न डराया? और अपने राजा के मन्दिर का क्यों नाश होने दिया? यह सब पोपलीला है।

[गया में श्राद्ध का खण्डन]

प्रश्न—गया में श्राद्ध करने से पितरों के पाप छूटकर वहाँ के श्राद्ध के पुण्यप्रभाव से पितर स्वर्ग में जाते और पितर अपना हाथ निकालकर पिण्ड लेते हैं, क्या यह भी बात झूठ है?

उत्तर—सर्वथा झठ। जो वहां पिण्ड देने का यही प्रभाव है, तो जिन पण्डों को पितरों के सुख के लिये लाखों रुपये देते हैं, उनका व्यय गयावाले [पण्डे] वेश्यागमनादि पापों में करते हैं, वह पाप क्यों नहीं छूटता? और हाथ निकलता आजकल कहीं नहीं दीखता, विना पण्डों के हाथों के। यहाँ यह कि कभी किसी धूर्त्त ने पृथिवी में गुफा (गड्ढा) खोद उसमें एक मनुष्य बैठाकर उसके मुख पर कुश बिछा, पिण्ड दिया होगा। उस कपटी मनुष्य

ने उठा लिया होगा। किसी **'आँख के अन्धे गाँठ के पूरे'** को इस प्रकार ठगा हो तो आश्चर्य नहीं। वैसे ही **'वैजनाथ'** को रावण लाया था, यह भी मिथ्या बात है।

[काली कामाक्षा के चमत्कार का खण्डन]

प्रश्न—देखो, **कलकत्ते** की **'काली'** और **'कामाक्षा'** आदि देवियों को लाखों मनुष्य मानते हैं, क्या यह चमत्कार नहीं है?

उत्तर—कुछ भी नहीं। ये अन्धे लोग भेड़ के तुल्य 'एक के पीछे दूसरे' चलते हैं, कूप-खाड़े में गिरते हैं, हट नहीं सकते; वैसे ही एक मूर्ख के पीछे दूसरे चलकर मूर्त्तिपूजा रूप गढ़े में फसकर दुःख पाते हैं।

[जगन्नाथ जी के चमत्कार का खण्डन]

प्रश्न—भला, यह तो जाने दो, परन्तु **'जगन्नाथ'** में प्रत्यक्ष चमत्कार है। प्रत्येक कलेवर बदलने के समय चन्दन का लकड़ा समुद्र में से स्वयमेव आता है। चूल्हे पर ऊपर-ऊपर सात हंडे धरने से ऊपर-ऊपर के पहले-पहले पकते हैं। जो कोई वहाँ जगन्नाथ की प्रसादी न खावे तो कुष्ठी हो जाता है और रथ आप से आप चलता है, पापी को दर्शन नहीं होता। **'इन्द्रदमन'** के राज्य में देवताओं ने मन्दिर बनाया है। कलेवर बदलने के समय एक राजा, एक पण्डा, एक बढ़ई [का] मर जाना आदि चमत्कारों को तुम झूठ न कर सकोगे।

उत्तर—जिसने बारह वर्ष पर्यन्त जगन्नाथ की पूजा की थी, वह विरक्त होकर मथुरा में आया था। मुझसे मिला था। मैंने इन बातों का उत्तर पूछा

था। उन्होंने ये सब बातें झूठ बतलाईं। किन्तु विचार से निश्चय यह है कि जब कलेवर बदलने का समय आता है, तब नौका में चन्दन की लकड़ी ले समुद्र में डालते हैं। वह समुद्र की लहरियों से किनारे लग जाती है। उसको ले सुतार लोग मूर्त्तियाँ बनाते हैं। जब रसोई बनती है, तब किवाड़ी बंद करके, विना रसोइयों के अन्य किसी को न जाने, न देखने देते हैं। भूमि पर चारों ओर छः और बीच में एक, चक्राकार चूल्हे बनाते हैं। उन हंडों के नीचे घी, मिट्टी और राख लगा, छः चूल्हों पर चावल चुड़ा (=पका), उनके तले माँज कर, उस बीच के हंडे में उसी समय चावल डाल, छः चूल्हों के मुख लोहे के तवों से बंध कर, दर्शन करनेवालों को जो कि धनाढ्य हों, बुलाके दिखलाते हैं। ऊपर-ऊपर के हंडों से चावल निकाल, चुड़े हुए चावलों को दिखला, नीचे के कच्चे चावल निकाल, दिखाके, उनसे कहते हैं कि "कुछ हंडे के लिये धरो।" **'आँख के अन्धे गाँठ के पूरे'** रुपये-अशर्फी धरते और कोई-कोई मासिक भी बांध देते हैं।

शूद्र और नीच लोग मन्दिर में नैवेद्य लाते हैं। जब नैवेद्य हो चुकता है तब वे शूद्र और नीच लोग जूठा कर देते हैं। पश्चात् जो कोई रुपया देकर हंडा लेवे, उसके घर पहुँचाते। और गरीब गृहस्थ और साधु-सन्तों से लेके शूद्र और अन्त्यज पर्यन्त एक पंक्ति में बैठ, जूठा भोजन करते हैं। जब वह पंक्ति उठती है, तब उन्हीं पत्तलों पर दूसरों को बैठाते जाते हैं। महा-अनाचार है। और बहुत से मनुष्य वहां जाकर उनका जूठा न खाके, अपने हाथ से बना, खाकर चले आते हैं। बहुत से प्रसादी नहीं खाते,

उनको कुछ भी कुष्ठादि रोग नहीं होते। और उस जगन्नाथपुरी में भी बहुत-से कुष्ठी हैं, नित्यप्रति जूठ खाने से भी उनका रोग नहीं छूटता।

और यह जगन्नाथ में वाममार्गियों ने **'भैरवीचक्र'** बनाया है; क्योंकि **सुभद्रा** श्रीकृष्ण और बलदेव की बहिन लगती है। उसी को दोनों भाइयों के बीच में स्त्री और माता के स्थान पर बैठाया है। जो **'भैरवीचक्र'** न होता तो यह बात कभी न होती।

और रथ के पहियों के साथ **'कला'** बनाई है। जब उसको सूधी घुमाते हैं वह सूधी घूमती है, तब रथ चलता है। जब मेले के बीच में पहुंचता है तभी उसकी कील को उलटी घुमा देने से रथ खड़ा रह जाता है। पुजारी लोग पुकारते हैं—"दान दो, पुण्य करो, जिससे जगन्नाथ प्रसन्न होकर रथ चलावें, अपना धर्म रहै।" जब तक भेंट आती-जाती है तब तक ऐसे ही पुकारते जाते हैं। जब आ चुकती है, तब एक व्रजवासी अच्छे कपड़े, दुशाला ओढ़कर, आगे खड़ा रहके, हाथ जोड़ स्तुति करता है कि "हे जगन्नाथ स्वामिन्! आप कृपा करके रथ को चलाइये, हमारा धर्म रक्खो" इत्यादि बोलके साष्टांग दण्डवत् प्रणाम कर रथ पर चढ़ता है। उसी समय कील को सूधी घुमा देते हैं और 'जय-जय' शब्द बोल, सहस्रों मनुष्य रस्सा खींचते हैं, रथ चलता है।

जब बहुत-से लोग दर्शन को जाते हैं, तब इतना बड़ा मन्दिर है कि जिसमें दिन में भी अन्धेरा रहता और दीप जलाना पड़ता है। उन मूर्त्तियों के आगे,

खींचकर लगाने के परदे, दोनों ओर रहते हैं। पण्डे-पुजारी भीतर खड़े रहते हैं। जब बगलवाले ने परदे को खींचा, झट मूर्त्ति आड़ में आ जाती है। तब सब पण्डे और पुजारी पुकारते हैं कि "तुम भेंट धरो, तुम्हारे पाप छूट जायेंगे, तब दर्शन होगा। शीघ्र करो।" वे बेचारे भोले मनुष्य धूर्त्तों के हाथों लुट जाते हैं। और दूसरा झट परदा खींच लेता है, तभी दर्शन होता है। तब 'जय' शब्द बोल के, प्रसन्न होकर, धक्के खाके, तिरस्कृत हो, चले आते हैं।

इन्द्रदमन वही है कि जिसके कुल के अब तक **'कलकत्ता'** में हैं। वह धनाढ्य राजा [था] और देवी का उपासक था। उसने लाखों रुपये लगाकर मन्दिर बनवाया था। इसलिये कि आर्यावर्त के भोजन का बखेड़ा इस रीति से छुड़ावें। परन्तु वे मूर्ख कब छोड़ते हैं? **'देव' मानो तो उन्हीं कारीगरों को मानो कि जिन शिल्पियों ने मन्दिर बनाया।**

राजा, पण्डा और बढ़ई उस समय नहीं मरते, परन्तु वे तीनों वहां प्रधान रहते हैं। छोटों को दुःख देते होंगे। उसी समय अर्थात् कलेवर बदलने के समय वे तीनों उपस्थित रहते हैं। मूर्त्ति का हृदय पोला रक्खा है। उसमें सोने के सम्पुट में एक **सालगराम** रखते हैं कि जिसको प्रतिदिन धोके चरणामृत बनाते हैं, उस पर रात्रि की शयन आर्ती (आरती) में उन्होंने सम्मति करके विषयुक्त तेजाब लपेट दिया होगा। उसको धोके उन्हीं तीनों को पिलाया होगा कि जिससे वे कभी मर गये होंगे। मरे इस प्रकार होंगे और भोजनभट्टों ने प्रसिद्ध किया होगा कि जगन्नाथ जी अपना शरीर

बदलने के समय तीनों भक्तों को भी साथ ले गये। ऐसी झूठी बातें पराया धन ठगने के लिये बहुत-सी हुआ करती हैं।

[रामेश्वर में लिङ्ग चमत्कार का खण्डन]

प्रश्न—जो रामेश्वर में गङ्गोत्तरी का जल चढ़ाने के समय लिङ्ग बढ़ जाता है, क्या यह भी बात झूठी है?

उत्तर—झूठी; क्योंकि उस मन्दिर में भी दिन में अन्धेरा रहता है। दीपक रात-दिन जला करता है। जब जल की धारा छोड़ते हैं, तब उस जल में बिजुली के समान दीपक का प्रतिबिम्ब झलकता है, और कुछ भी नहीं। न पाषाण घटे, न बढ़े, जितना का उतना रहता है। ऐसी लीला करके बेचारे निर्बुद्धियों को ठगते हैं।

प्रश्न—रामेश्वर को रामचन्द्र ने स्थापित किया है। जो मूर्त्तिपूजा वेदविरुद्ध होती तो रामचन्द्र मूर्त्तिस्थापना क्यों करते और वाल्मीकि जी रामायण में क्यों लिखते?

उत्तर—रामचन्द्र के समय में उस लिंग वा मन्दिर का नाम-निशान भी नहीं था; किन्तु यह ठीक है कि दक्षिण देशस्थ 'राम' नामक राजा ने मन्दिर बनवा, लिंग का नाम 'रामेश्वर' धर दिया है। जब रामचन्द्र सीता जी को ले हनुमान् आदि के साथ लंका से विमान पर बैठ, आकाश मार्ग से अयोध्या को आते थे, तब सीता जी से कहा था कि—

"अत्र पूर्वं महादेवः प्रसादमकरोद्विभुः॥"
"सेतुबन्ध इति ख्यातम्॥"

वाल्मीकि०, लंकाकाण्ड [युद्धकाण्ड, सर्ग १२३ । श्लो० २०-२१]

हे सीते! तेरे वियोग से हम व्याकुल होकर घूमते थे और इसी स्थान में चातुर्मास्य किया था और परमेश्वर की उपासना-ध्यान भी करते थे। वही जो सर्वत्र विभु, व्यापक, महान् देवों का देव 'महादेव' परमात्मा है, उसकी कृपा से हमको सब सामग्री यहाँ प्राप्त हुई। और देख! यह सेतु बाँधकर, लंका में जाके, उस रावण को मार, तुझको ले आये। इसके सिवाय वहाँ वाल्मीकि ने अन्य कुछ भी नहीं लिखा।

[कालियाकन्त के चमत्कार का खण्डन]

प्रश्न—'रंग है कालियाकन्त को। जिसने हुक्का पिलाया सन्त को'॥ दक्षिण में एक **कालियाकन्त** की मूर्त्ति है। वह अब तक हुक्का पीया करती है।

जो मूर्त्तिपूजा झूठी होती तो यह चमत्कार भी झूठा होवे।

उत्तर—झूठा, झुठा, झूठा!! यह सब पोपलीला है; क्योंकि उस मूर्त्ति का मुख पोला होगा। उसका छिद्र पृष्ठ में निकालके, भित्ति के पार, दूसरे मकान में नल लगा होगा। जब पुजारी हुक्का भरवा, पेंचवान लगा, मुख में नली जमाके, परदे डाल, निकल आता होगा, तभी पीछेवाला आदमी मुख से खींचता होगा तो इधर हुक्का गड़-गड़ बोलता होगा। दूसरा छिद्र

नाक और मुख के साथ लगा होगा। जब पीछे फूकें मार देता होगा तब नाक और मुख के छिद्रों से धुआँ निकलता होगा। उस समय बहुतेरे मूढ़ों को, धनादि पदार्थ को लूटकर धनरहित करते होंगे।

[डाकोर के चमत्कारों का खण्डन]

प्रश्न—देखो, **डाकोर** जी की मूर्त्ति द्वारिका से भक्त के साथ चली आई। एक सवा रत्ती सोने में कई मन की मूर्त्ति तुल गई। क्या यह भी चमत्कार नहीं?

उत्तर—नहीं; वह भक्त मूर्त्ति को चुरा ले आया होगा। और 'सवा रत्ती के बराबर मूर्त्ति का तुलना', यह किसी भंगड़ आदमी ने गप्प मारा होगा।

[सोमनाथ का मन्दिर और महमूद गजनवी]

प्रश्न—देखो, **सोमनाथ** जी पृथिवी से ऊपर रहते थे और बड़ा चमत्कार था, क्या यह भी मिथ्या बात है?

उत्तर—हाँ, मिथ्या बात है; क्योंकि वह लोहे की पोली मूर्ति थी। ऊपर-नीचे चुम्बक-पाषाण लगा रक्खे थे। उनके आकर्षण से वह मूर्ति अधर खड़ी थी।

जब महमूद-ग़जनवी आकर लड़ा, तब यह चमत्कार हुआ कि उसका मन्दिर तोड़ा गया और पुजारी-भक्तों की दुर्दशा हो गई, और लाखों फ़ौज दश सहस्त्र फ़ौज से भाग गई। जो पोप-पुजारी पूजा, पुरश्चरण, स्तुति-प्रार्थना करते थे कि 'हे महादेव! इस म्लेच्छ को तू मार डाल, हमारी

रक्षा कर' और जो उनके चेले राजाओं को समझाते थे कि, 'आप निश्चिन्त रहिये। महादेव जी भैरव अथवा वीरभद्र को भेज देंगे। वे सब म्लेच्छों को मार डालेंगे वा अन्धा कर देंगे। अभी हमारा देवता प्रसिद्ध होता है। हनुमान्, दुर्गा और भैरव ने स्वप्न दिया है कि हम सब काम कर देंगे।' बेचारे भोले राजा और क्षत्रिय 'पोपों' के बहकाने से उनके विश्वास में रहे।

कितने ही ज्योतिषी 'पोपों' ने कहा कि अभी तुम्हारी चढ़ाई का मुहूर्त्त नहीं है। एक ने आठवाँ चन्द्रमा बतलाया। दूसरे ने 'योगिनी' सामने दिखलाई, इत्यादि बहकावट में रहे।

जब म्लेच्छों की फौज ने आकर घेर लिया, तब दुर्दशा से भागे। कितने ही पोप-पुजारी और उनके चेले पकड़े गये। पुजारियों ने हाथ जोड़ यह भी कहा कि **"तीन करोड़ रुपये ले लो, मन्दिर और मूर्तियां मत तोड़ो।"** मुसलमानों ने कहा कि "हम 'बुतपरस्त' नहीं किन्तु 'बुतशिकन' [हैं] अर्थात् मूर्त्तिपूजक नहीं, किन्तु मूर्त्तिभंजक हैं।" जाके मन्दिर तोड़ दिया। जब ऊपर की छत टूटी, तब चुम्बक-पाषाण पृथक् होने से मूर्त्ति गिर पड़ी। जब मूर्त्ति तोड़ी, सुनते हैं कि तब **अठारह करोड़ के रत्न निकले।** जब पुजारियों और पोपों पर कोड़े पड़े, तब रोने लगे। उनसे कहा कि कोष बतलाओ। मार के मारे झट बतला दिया। तब सब कोष लूट-मार कर, कूट [-पीट] कर पोपों और पोपों के चेलों को 'गुलाम, बेगारी' बना, पिसना पिसवाया, घास खुदवाया, मल-मूत्रादि उठवाया और चने खाने को दिये।

हाय! क्यों पत्थर की पूजा कर सत्यानाश को प्राप्त हुए? क्यों परमेश्वर की भक्ति न की, जो 'म्लेच्छों के दाँत तोड़ डालते' और अपना विजय करते। देखो, जितनी मूर्तियाँ हैं, उतने शूरवीरों की पूजा करते तो भी कितनी रक्षा होती! पुजारियों ने इतनी भक्ति इन पाषाणों की की, परन्तु एक भी 'मूर्ति उन [म्लेच्छों] के शिर पर उड़के न लगी।' जो किसी एक शूरवीर पुरुष की भी मूर्त्ति के सदृश सेवा करते, तो वह अपने सेवकों को यथाशक्ति बचाता और उन शत्रुओं को मारता।

[द्वारिका के रणछोड़ के चमत्कार का खण्डन]

प्रश्न—द्वारिका जी के **'रणछोड़ जी'** कि जिसने 'नर्सी महिता' के पास हुण्डी भेज दी और उसका ऋण चुका दिया, इत्यादि बातें भी क्या झूठ हैं?

उत्तर—किसी साहूकार ने रुपये दे दिये होंगे। किसी ने झूठा नाम उड़ा दिया होगा कि श्रीकृष्ण ने भेजे [हैं]।

जब संवत् १९१४ के वर्ष में तोपों की मार से, मन्दिर और मूर्त्तियां अंगरेजों ने उड़ा दी थीं, तब मूर्त्तियां कहाँ गई थीं? प्रत्युत बाघेर लोगों ने कितनी वीरता की और लड़े, शत्रुओं को मारा, परन्तु 'मूर्त्ति मक्खी की एक टाँग भी न तोड़ सकी।' **जो श्रीकृष्ण के सदृश कोई होता तो इनके 'धुर्रे उड़ा देता' और ये भागते फिरते।** भला, यह तो कहो कि जिसका रक्षक

मार खाय, उसके शरणागत क्यों न पीटे जायें?

[ज्वालामुखी-हिंगलाज के चमत्कार का खण्डन]

प्रश्न—ज्वालामुखी तो प्रत्यक्ष देवी है, सबको खा जाती है और प्रसाद देवे तो आधा खा जाती और आधा छोड़ देती है। मुसलमान बादशाहों ने उस पर जल की नहर छुड़वाई और लोहे के तवे जड़वाये थे, तो भी ज्वाला नहीं बुझी, न रुकी। वैसे **हिंगलाज** भी आधी रात को सवारी कर पहाड़ पर दिखाई देती, पहाड़ को गर्जना कराती है। चन्द्रकूप बोलता है और योनियन्त्र से निकलने से पुनर्जन्म नहीं होता। ठूमरा बाँधने से पूरा महापुरुष कहाता [है]। जब तक हिंगलाज न हो आवे, तब तक आधा महापुरुष बजता है; इत्यादि सब बातें क्या मानने योग्य नहीं?

उत्तर—नहीं; क्योंकि वह ज्वालामुखी पहाड़ में से आगी निकलती है। उसमें पुजारियों-पोपों की विचित्र लीला है। जैसे बघार के घी के चमचे में ज्वाला आ जाती, अलग करने से वा फूंक मारने से बुझ जाती, थोड़े-से घी को खा जाती, शेष छोड़ जाती; उसी के समान वहाँ भी है। जैसे चूल्हे की ज्वाला में जो डाला जाय, वह सब भस्म हो जाता है, वैसे जंगल वा घर में [आग] लग जाने से सबको खा जाती है। इससे वहाँ क्या विशेष है विना एक मन्दिर, कुण्ड और इधर-उधर नल रचना के? हिंगलाज में न कोई सवारी होती, और जो कुछ होता है वह सब पोप-पुजारियों की लीला से दूसरा कुछ भी नहीं। एक जल और दलदल का कुण्ड बना रक्खा है, जिसके नीचे से बुद्बुदे उठते हैं, उसको [देख] सफल यात्रा

होना, मूढ़ मानते हैं। योनि का यन्त्र पोप जी ने धन हरने के लिये बनवा रक्खा है और ठुमरे भी उसी प्रकार पोपलीला के हैं। उनसे महापुरुष होता हो, तो एक पशु पर ठुमरों का बोझा लाद दें, तो क्या महापुरुष हो जायगा? **महापुरुष तो बड़े उत्तम, धर्मयुक्त पुरुषार्थ से होता है।**

[अमृतसर रेवालसर अमरनाथ आदि के चमत्कारों का खण्डन]

प्रश्न—अमृतसर का तालाब अमृतरूप है, एक रीठे का फल आधा मीठा है, एक भित्ति नमती और गिरती नहीं, **रेवालसर** में बेड़े तैरते, **अमरनाथ** में आप से आप लिंग बन जाते, हिमालय से कबूतर के जोड़े आके सबको दर्शन देकर चले जाते; क्या यह भी मानने योग्य नहीं?

उत्तर—नहीं; उस तालाब का नाममात्र **अमृतसर** है। जब कभी जंगल होगा, तब उसका जल अच्छा होगा। इससे उसका नाम अमृतसर धरा होगा। जो अमृत होता तो पुराणियों के मानने के तुल्य कोई क्यों मरता? भित्ति की कुछ बनावट वैसी होगी जिससे नमती होगी और गिरती न होगी। रीठे कलम के पैबन्दी होंगे अथवा गपोड़ा होगा। **रेवालसर** में बेड़ा तैरने में कुछ कारीगरी होगी। **अमरनाथ** में बर्फ के पहाड़ बनते हैं तो जल जमके छोटे लिंग का बनना कौन-सा आश्चर्य है? और कबूतर के जोड़े पालित होंगे, पहाड की आड़ में से पोप जी छोड़ते होंगे; दिखलाकर टका हरते होंगे।

[हर की पैड़ी देवप्रयाग केदार बद्री नारायणादि की समीक्षा]

प्रश्न—'हरद्वार' स्वर्ग का द्वार है, **'हर की पौड़ी'** में स्नान करे तो पाप

छूट जाते है, **'तपोवन'** में रहने से तपस्वी होता है। **देवप्रयाग, गङ्गोत्तरी** में **'गोमुख', उत्तरकाशी** में **'गुप्तकाशी', 'त्रियुगीनारायण'** के दर्शन होते हैं। **'केदार'** और **'बदरीनारायण'** की पूजा छः महीने तक मनुष्य और छः महीने तक देवता करते हैं। महादेव का मुख **नैपाल** में पशुपति; चूतड़ **केदार** और **तुङ्गनाथ** में; जानु और पग अमरनाथ में। इनके दर्शन-पर्शन और [वहां] स्नान करने से मुक्ति हो जाती है। वहाँ केदार और बदरी से स्वर्ग जाना चाहे तो जा सकता है, इत्यादि बातें कैसी हैं?

उत्तर—हरद्वार उत्तर के पहाड़ों में जाने के एक मार्ग का आरम्भ है। **'हर की पौड़ी'** स्नान के लिये एक कुण्ड की सीढ़ियों को बनाया है। सच पूछो तो **'हाड़पौड़ी'** है, क्योंकि देशदेशान्तरों के मृतकों के हाड़ उसमें पड़ा करते हैं। पाप कभी कहीं नहीं छूट सकते विना भोगे, अथवा नहीं कटते। **'तपोवन'** जब होगा तब होगा, अब तो **'भिक्षुकवन'** है। **'तपोवन'** में जाने, रहने से तप नहीं होता, किन्तु तप तो करने से होता है, क्योंकि वहाँ बहुत-से दुकानदार झूठ बोलनेवाले भी रहते हैं। **'हिमवतः प्रभवति गङ्गा'**=पहाड़ के ऊपर से जल गिरता है। **गोमुख** का आकार पोपलीला से बनाया होगा और वही पहाड़ 'पोप' का स्वर्ग है। वहाँ **उत्तरकाशी** आदि स्थान ध्यानियों के लिये अच्छा है, परन्तु दुकानदारों के लिये वहाँ भी दुकानदारी है। **देवप्रयाग** पुराणों के गपोड़ों की लीला है, अर्थात् जहाँ अलकनन्दा और गङ्गा मिली हैं इसलिये वहाँ देवता वसते हैं, ऐसे गपोड़े न मारें तो वहाँ कौन जाय और टका कौन देवे? **गुप्तकाशी** तो नहीं है, वह

तो प्रसिद्ध काशी है। तीन युग की धूनी तो नहीं दिखती परन्तु पोपों की दश-वीस पीढ़ी की होगी, जैसी खाखियों की धूनी और पारसियों की **'अग्यारी'** सदैव जलती रहती है। **तप्तकुण्ड** भी [इस प्रकार बना है कि] पहाड़ों के भीतर ऊष्मा=गर्मी होती है, उसमें तपकर जल आता है। उसके पास दूसरे कुण्ड में ऊपर का जल वा जहाँ गर्मी नहीं, वहाँ का आता है, इससे ठण्डा है। **'केदार का स्थान'**—वह भूमि बहुत अच्छी है, परन्तु वहाँ भी एक जमे हुए पत्थर पर 'पोप' वा पोप के चेलों ने मन्दिर बना रक्खा है। वहाँ महन्त, पुजारी, पण्डे 'आँख के अन्धों गाँठ के पूरों' से माल लेकर विषयानन्द करते हैं। वैसे ही **'बदरीनारायण'** में ठग-विद्यावाले बहुत-से बैठे हैं। रावल जी वहाँ के मुख्य हैं। एक स्त्री छोड़ अनेक स्त्रियां रख बैठे हैं। पशुपति एक मन्दिर और पञ्चमुखी मूर्त्ति का नाम धर रक्खा है। **जब कोई न पूछे तभी पोपलीला बलवती होती है।** परन्तु जैसे तीर्थों के लोग धूर्त और धनहरे होते हैं, वैसे पहाड़ी लोग नहीं होते। वहाँ की भूमि बड़ी रमणीय और पवित्र है।

[विन्ध्याचल-प्रयाग-अयोध्या-मथुरा के माहात्म्य का खण्डन]

प्रश्न—विन्ध्याचल में 'विन्ध्येश्वरी', 'काली', 'अष्टभुजा' प्रत्यक्ष सत्य है। विन्ध्येश्वरी तीन समय में तीन रूप बदलती है और उसके बाड़े में मक्खी एक भी नहीं होती। **प्रयाग** तीर्थराज है, वहाँ मुंड मुंडाये सिद्धि [और] गङ्गा-जमुना के संगम में स्नान करने से इच्छासिद्धि होती है। वैसे ही **अयोध्या** कई वार उड़कर सब वस्ती सहित स्वर्ग में चली गई। **मथुरा** सब तीर्थों से अधिक है, **वृन्दावन** लीलास्थान और **गोवर्धन** व्रज-यात्रा बड़े भाग्य से होती है। सूर्यग्रहण में **कुरुक्षेत्र** में लाखों मनुष्यों का मेला लगता

है। क्या ये सब बातें अन्यथा हैं?

उत्तर—प्रत्यक्ष तो आँखों से तीनों मूर्त्तियाँ दीखती हैं कि पाषाण की मूर्त्तियाँ हैं। और तीन कालों में तीन प्रकार के रूप होने का कारण पुजारी लोगों की वस्त्र-आभूषण पहराने की चतुराई है और मक्खियाँ सहस्रों-लाखों होती हैं, **मैंने अपनी आँखों से [यह सब] देखा है। प्रयाग** में कोई नापित श्लोक बनानेहारा [हुआ होगा] अथवा पोप जी को कुछ धन देके मुण्डन कराने का माहात्म्य बनाया वा बनवाया होगा। प्रयाग में स्नान करके स्वर्ग को जाता, तो घर में लौटकर आता कोई भी नहीं दीखता; किन्तु घर को सब आते हुये दीखते हैं। अथवा जो कोई वहाँ डूब मरता [होगा] और उसका जीव भी आकाश में वायु के साथ घूम कर जन्म लेता होगा। तीर्थराज भी नाम पोपों ने धरा है। जड़ में राजा-प्रजा-भाव कभी नहीं हो सकता। यह बड़ी असम्भव बात है कि **अयोध्या** नगरी वस्ती, कुत्ते, गधे, भंगी, जाजरूर सहित तीन वार स्वर्ग में गई। स्वर्ग में तो नहीं गई, वहीं की वहीं है, परन्तु पोप जी के मुख-गपोड़ों में अयोध्या स्वर्ग को उड़ गई। यह गपोड़ा शब्दरूप उड़ता फिरता है। ऐसे ही **नैमिषारण्य** आदि की भी पोपलीला जाननी [चाहिये]।

'मथुरा तीन लोक से न्यारी' तो नहीं, परन्तु उसमें तीन जन्तु बड़े लीलाधारी हैं कि जिनके मारे जल, स्थल और अन्तरिक्ष में किसी को सुख मिलना कठिन है। एक चौबे, जो कोई स्नान करने जाय, तो अपना

कर लेने को खड़े रहकर बकते रहते हैं—"लाओ यजमान! भांग-मर्ची पीवें और लड्डू खावें। यजमान की जै-जै मनावें" दूसरे, जल में कछुवे काट ही खाते हैं, जिनके मारे स्नान करना भी घाट पर कठिन पड़ता है। तीसरे, आकाश में ऊपर लाल मुख के बन्दर पगड़ी, टोपी, गहने, जूते तक भी न छोड़ें, काट खावें, धक्के दे गिरा मार डालें। और ये तीनों पोप और पोप जी के चेलों के पूजनीय हैं। मनों चना आदि अन्न से कछुओं की, और बन्दरों की चना-गुड़ आदि से, और चौबों की दक्षिणा और लड्डुओं से सेवा उनके सेवक किया करते हैं। **वृन्दावन** जब था तब था, अब तो वेश्यावनवत् लल्ला-लल्ली और गुरु-चेली आदि की लीला फैल रही है। वैसे ही दीपमालिका का मेला, **'गोवर्धन'** और व्रजयात्रा में भी पोपों की बन पड़ती है। **कुरुक्षेत्र** में भी वही जीविका की लीला समझ लो। इनमें जो कोई धार्मिक, परोपकारी पुरुष है, इस पोपलीला से पृथक् हो जाता है।

[मूर्त्ति-पूजा और तीर्थ बहुत पुरातन नहीं हैं]

प्रश्न—यह मूर्त्तिपूजा और तीर्थ सनातन से चले आते हैं, झूठे क्योंकर हो सकते हैं?

उत्तर—तुम सनातन किसको कहते हो?

[प्रश्न—] जो सदा से चला आता है।

[उत्तर—] जो यह सदा से होता तो वेद, और ऋषि-मुनि-कृत ब्राह्मणादि पुस्तकों में इनका नाम क्यों नहीं? यह मूर्त्तिपूजा अढ़ाई-तीन सहस्र वर्ष के इधर-इधर वाममार्गियों और जैनियों से चली है। प्रथम आर्यावर्त में नहीं थी, और ये तीर्थ भी नहीं थे। जब जैनियों ने गिरनार, पालिटाना, शिखर, शत्रुञ्जय और आबू आदि तीर्थ बनाये, उनके अनुकूल इन लोगों ने भी बना लिये। जो कोई इनके आरम्भ की परीक्षा करना चाहें, वे पण्डों की पुरानी से पुरानी बही, तांबे के पत्र, लेख आदि देखें, तो निश्चय हो जायगा कि ये सब तीर्थ पाँच-सौ अथवा एक-सहस्र वर्ष से इधर ही बने हैं। सहस्र वर्ष के उधर का लेख किसी के पास नहीं निकलता; इससे आधुनिक है।

[तीर्थ वा नामस्मरण के माहात्म्य का खण्डन]

प्रश्न—जो-जो तीर्थ वा नाम का माहात्म्य अर्थात् जैसे **'अन्यक्षेत्रे कृतं पापं काशीक्षेत्रे विनश्यति'** [काशीमाहात्म्य, काशीखण्ड] इत्यादि बातें हैं, वे सच्ची हैं वा नहीं?

उत्तर—नहीं; क्योंकि जो पाप छूट जाते हों तो दरिद्रों को धन और राज-पाट मिल जाता; अन्धों को आँखें मिल जाती तथा कोढ़ियों के कोढ़ आदि रोग छूट जाते; किन्तु ऐसा नहीं होता। इसलिये पाप वा पुण्य किसी का नहीं छूटता।

प्रश्न—गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूयाद् योजनानां शतैरपि।

मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति॥१॥

[ब्रह्मपुराण अ० १७५ । श्लो० ८२; पद्मपुराण उत्तरखण्ड अ० २३।२]

हरिर्हरति पापानि हरिरित्यक्षरद्वयम्॥२॥

[पद्मपुराण उ० ख० ७२।१२]

प्रातःकाले शिवं दृष्ट्वा निशिपापं विनश्यति।

आजन्मकृतं मध्याह्ने सायाह्ने सप्तजन्मनाम्॥३॥

ये पोप-पुराण के श्लोक हैं।

[तीर्थदर्पण पण्डाअर्पण-परिच्छेद २]

जो सैकड़ों-सहस्रों कोश दूर से भी गंगा-गंगा कहै, तो उसके सब पाप नष्ट होकर वह विष्णुलोक अर्थात् वैकुण्ठ को जाता है॥१॥

'हरि' इन दो अक्षरों का नामोच्चारण सब पापों को हर लेता है, वैसे ही राम, कृष्ण, शिव, भगवती आदि नामों का माहात्म्य है॥२॥

और जो मनुष्य प्रात:काल में 'शिव' अर्थात् लिंग वा उसकी मूर्त्ति का दर्शन करे तो रात्रि में किये हुये, मध्याह्न में दर्शन से जन्म-भर के, सायंकाल में दर्शन करने से सात जन्मों के पाप छूट जाते हैं॥३॥

यह दर्शन का माहात्म्य क्या झूठा हो जायगा?

उत्तर—मिथ्या होने में क्या शंका? क्योंकि गंगा वा हरि, राम, कृष्ण, नारायण, शिव और भगवती के नामस्मरण से पाप कभी नहीं छूटता। जो छूटे तो दुःखी कोई न रहै, और पाप करने से कोई भी न डरे, जैसे आजकल पोपलीला में पाप बढ़कर हो रहे हैं; क्योंकि मूढ़ों को विश्वास है कि हम पाप कर, नामस्मरण वा तीर्थयात्रा करेंगे तो पापों की निवृत्ति हो जायगी। इसी विश्वास पर पाप करके इस लोक और परलोक का नाश करते हैं, परन्तु **किया हुआ पाप भोगना ही पड़ता है।**

[सच्चे तीर्थ और नाम-स्मरण क्या हैं?]

प्रश्न—तो कोई तीर्थ, नामस्मरण सत्य है वा नहीं?

उत्तर—है। वेदादि शास्त्रों का पढ़ना-पढ़ाना, धार्मिक विद्वानों का संग; परोपकार, धर्मानुष्ठान, योगाभ्यास, निर्वैरता, निष्कपटता, सत्यभाषण, सत्य मानना, सत्य करना; ब्रह्मचर्य; आचार्य-अतिथि-माता-पिता की सेवा; परमेश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना; शान्ति, जितेन्द्रियता, सुशीलता, धर्मयुक्तपुरुषार्थ, ज्ञान-विज्ञान आदि शुभ-गुण-कर्म दुःखों से तारनेवाले होने से **तीर्थ** हैं। और जो जल-स्थलमय हैं, वे तीर्थ कभी नहीं हो सकते; क्योंकि **'जना यैस्तरन्ति तानि तीर्थानि'**=मनुष्य जिनको करके दुःखों से तरें, उनका नाम **'तीर्थ'** है। जल-स्थल तरानेवाले नहीं, किन्तु डुबाकर मारनेवाले हैं। प्रत्युत नौका आदि का नाम **'तीर्थ'** हो सकता है, क्योंकि उनसे भी समुद्र आदि को तरते हैं।

समानतीर्थे वासी॥१॥

अष्टा० ४।४।१०७

नमुस्तीर्थ्याय चु ॥२॥

यजुः अ० १६ [मं० ४२]

जो ब्रह्मचारी एक आचार्य से और एक शास्त्र को साथ-साथ पढ़ते हों, वे सब सतीर्थ्य अर्थात् समानतीर्थसेवी होते हैं॥१॥

जो वेदादिशास्त्र और सत्यभाषणादि धर्म-लक्षणों में साधु हों, उनको अन्नादि पदार्थ देने और उनसे विद्या लेनी, इत्यादि **'तीर्थ'** कहाते हैं॥२॥

'नामस्मरण' इसको कहते हैं कि—

यस्यु नामं मुहद्यशः॥

यजुः [३२।३]

परमेश्वर का नाम बड़े यश अर्थात् धर्मयुक्त कामों का करना है। जैसे ब्रह्म, परमेश्वर, ईश्वर, न्यायकारी, दयालु, सर्वशक्तिमान् आदि नाम परमेश्वर के गुण-कर्म-स्वभाव से हैं। जैसे ब्रह्म=सबसे बड़ा, परमेश्वर=ईश्वरों का ईश्वर, ईश्वर=सामर्थ्ययुक्त, न्यायकारी=कभी अन्याय नहीं करता, दयालु=सब पर कृपादृष्टि रखता, सर्वशक्तिमान्=जो अपने सामर्थ्य से ही सब जगत् की उत्पत्ति-स्थिति-प्रलय करता, सहाय किसी का नहीं लेता;

ब्रह्मा=विविध जगत् के पदार्थों का बनानेहारा, विष्णु=जो सबमें व्यापक होकर रक्षा करता, महादेव=सब देवों का देव, रुद्र=प्रलय करनेहारा आदि नामों के अर्थों को अपने में धारण करे; अर्थात् बड़े कामों से बड़ा हो, समर्थों में समर्थ हो, सामर्थ्यों को बढ़ाता जाय, अधर्म कभी न करे, सब पर दया रक्खे, सब प्रकार के साधनों को समर्थ करे, शिल्पविद्या से नाना प्रकार के पदार्थों को बनावे, सब संसार में अपने आत्मा के तुल्य सुख-दुःख समझे, सबकी रक्षा करे, विद्वानों में विद्वान् होवे, दुष्ट कर्म का प्रलय [करे] और दुष्ट कर्म करनेवालों को प्रयत्न से दण्ड [देवे] और सज्जनों की रक्षा करे। इस प्रकार **परमेश्वर के नामों का अर्थ जानकर परमेश्वर के गुण-कर्म-स्वभाव के अनुकूल अपने गुण-कर्मस्वभाव को करते जाना ही परमेश्वर का नामस्मरण है।**

[कल्पित गुरु-माहात्म्य तथा गुरु-गीता का खण्डन]

प्रश्न—गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः।

गुरुरेव परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

[गुरुगीता, गुरुमाहात्म्य प्रकरण, श्लोक १९]

इत्यादि गुरुमाहात्म्य तो सच्चा है? गुरु के पग धोके पीना, जैसी आज्ञा करे वैसा करना। गुरु लोभी हो तो वामन के समान, क्रोधी हो तो नरसिंह के सदृश, मोही हो तो राम के तुल्य और कामी हो तो कृष्ण के समान गुरु को जानना। चाहे गुरु जी कैसा ही पाप करें तो भी अश्रद्धा न करनी। सन्त वा गुरु के दर्शन को जाने में पग-पग में **'अश्वमेध'** का फल होता है, यह बात ठीक है वा नहीं?

उत्तर—ठीक नहीं। ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर और परब्रह्म परमेश्वर के नाम हैं। उसके तुल्य गुरु कभी नहीं हो सकता। यह **'गुरुमाहात्म्य', 'गुरुगीता'** भी एक बड़ी पोपलीला है। गुरु तो माता, पिता, आचार्य और अतिथि होते हैं, उनकी सेवा करनी चाहिये। उनसे विद्या-शिक्षा लेना-देना, शिष्य और गुरु का काम है; परन्तु जो गुरु लोभी, क्रोधी, मोही और कामी हो, तो उसको सर्वथा छोड़ देना [चाहिये, अथवा पहले उसको] शिक्षा करनी चाहिये, सहज शिक्षा से न माने तो 'अर्घ्य पाद्य' अर्थात् ताड़ना, दण्ड, प्राणहरण तक भी करने में कुछ भी दोष नहीं। **जिनमें विद्यादि सद्गुणों का 'गुरुत्व' नहीं है, झूठ-मूठ कण्ठी-तिलक [धारण], वेदविरुद्ध मन्त्रोपदेश करनेवाले हैं, वे गुरु ही नहीं, किन्तु गडरिये जैसे हैं।** जैसे गडरिये अपनी भेड़-बकरियों से, [उनके] दूध आदि से प्रयोजन सिद्ध करते हैं, वैसे ही वे शिष्यों के=चेले-चेलियों का धन हरके अपना प्रयोजन सिद्ध करते हैं। वे—

गुरु लोभी चेला लालची, दोनों खेलें दाव।
भवसागर में डूबते, बैठ पत्थर की नाव॥

[तुलना-भक्तमाल १०६ की टीका, पृ० ६९]

गुरु समझें कि चेला-चेली कुछ न कुछ देवेंगे ही, और चेला समझे कि चलो गुरु झूठी सौगंद खाने, पाप छुड़ाने आदि [के काम आवेंगे, इत्यादि] लालच से, दोनों कपटमुनि भवसागर के दुःख में डूबते हैं, जैसे पत्थर की नौका में बैठनेवाले समुद्र में डूब मरते हैं। ऐसे गुरुओं और चेलों के मुख

पर धूड़-राख पड़े। उसके पास कोई भी खड़ा न रहै, जो रहै वह दुःखसागर में पड़ेगा। जैसी पोपलीला पुजारियों, पुराणियों ने चलाई है, वैसी इन गडरिये गुरुओं ने भी लीला मचाई है। यह सब काम स्वार्थी लोगों का है। **जो परमार्थी लोग हैं, वे आप दुःख पावें तो भी जगत् का उपकार करना नहीं छोड़ते।** और **'गुरुमाहात्म्य'** तथा **'गुरुगीता'** आदि भी इन्हीं लोभी, कुकर्मी गुरुओं ने बनाई हैं।

[१८ कल्पित पुराण और ब्राह्मण ग्रन्थ]

प्रश्न—अष्टादशपुराणानां कर्त्ता सत्यवतीसुतः॥१॥

[शिवपुराण रेवाखण्ड]

इतिहासपुराणाभ्यां वेदार्थमुपबृंहयेत्॥२॥

महाभारत [आदिपर्व ३।२६७]

पुराणानि खिलानि च॥३॥

मनु० [३।२३२]

इतिहासपुराणः पञ्चमो वेदानां वेदः॥४॥

छान्दोग्य० [७।१।४]

दशमेऽहनि किंचित्पुराणमाचक्षीत॥५॥

[तुलना—शतपथ ब्रा०, १३।३।१।१३]

पुराणविद्या वेदः॥६॥

सूत्रम् [तु०-शतपथ ब्रा०, १३।३।१।१३]

अठारह पुराणों के कर्त्ता व्यास जी हैं। व्यासवचन का प्रमाण अवश्य करना चाहिये॥१॥

इतिहास=**'महाभारत'**, [और] अठारह पुराणों से वेदों का अर्थ पढ़ें-पढ़ावें, क्योंकि इतिहास और पुराण वेदों के ही अर्थ और अनुकूल हैं॥२॥

पितृकर्म में पुराण और खिल अर्थात् **'हरिवंश'** की कथा सुनें॥३॥

इतिहास और पुराण पञ्चमवेद कहाते हैं॥४॥

'अश्वमेध' की समाप्ति में दशमे दिन थोड़ी-सी पुराण की कथा सुनें॥५॥

'पुराणविद्या' वेदार्थ के जनाने से ही 'वेद' है॥६॥

इत्यादि प्रमाणों से पुराणों का प्रमाण और इनके प्रमाणों से मूर्त्तिपूजा और तीर्थों का भी प्रमाण है, क्योंकि पुराणों में मूर्त्तिपूजा और तीर्थों का विधान है।

उत्तर—जो अठारह पुराणों के कर्त्ता व्यास जी होते तो उनमें इतने गपोड़े न होते। क्योंकि **शारीरकसूत्र, 'योगशास्त्र के भाष्य'** आदि व्यासोक्त ग्रन्थों के देखने से विदित होता है कि व्यास जी बड़े विद्वान्, सत्यवादी, धार्मिक, योगी थे। वे ऐसी मिथ्या कथा कभी न लिखते। और इससे यह सिद्ध होता है कि जिन सम्प्रदायी परस्परविरोधी लोगों ने **'भागवत'**-आदि नवीन कपोलकल्पित ग्रन्थ बनाये हैं, उनमें व्यास जी के गुणों का लेश भी नहीं है। और वेदशास्त्रविरुद्ध असत्यवाद लिखना व्यास जी सदृश विद्वानों का काम नहीं, किन्तु यह काम विरोधी, स्वार्थी, अविद्वान् लोगों का है। इतिहास और पुराण **'शिवपुराण'** आदि का नाम नहीं, किन्तु—

ब्राह्मणानीतिहासान् पुराणानि कल्पान् गाथानाराशंसीरिति॥ यह ब्राह्मण और सूत्रों का वचन है॥

[तैत्ति० आरण्यक २।९; आश्वलायन गृह्यसूत्र ३।३।१]

'ऐतरेय', 'शतपथ', 'साम' और **'गोपथ'** ब्राह्मण ग्रन्थों के ही इतिहास, पुराण, कल्प, गाथा और नाराशंसी ये पांच नाम हैं। **(इतिहास)** जैसे जनक और याज्ञवल्क्य का संवाद। **(पुराण)** जगदुत्पत्ति आदि का वर्णन, आख्यान। **(कल्प)** वेद-शब्दों के सामर्थ्य का वर्णन, अर्थ निरूपण करना। **(गाथा)** किसी का दृष्टान्त-दार्ष्टान्तरूप कथा-प्रसङ्ग कहना। **(नाराशंसी)** मनुष्यों के प्रशंसनीय वा अप्रशंसनीय कर्मों का कथन करना। इन्हीं से वेदार्थ का बोध होता है।

'पितृकर्म' अर्थात् ज्ञानियों के प्रसंग में कुछ सुनना, **'अश्वमेध'** के अन्त में भी इन्हीं का सुनना लिखा है, क्योंकि जो व्यासकृत ग्रन्थ हैं, उनका सुनना-सुनाना व्यास जी के जन्म के पश्चात् ही हो सकता है, पूर्व नहीं। जब व्यास जी का जन्म भी नहीं था तब भी वेदार्थ को पढ़ते-पढ़ाते, सुनते-सुनाते थे। इसीलिये सबसे प्राचीन ब्राह्मण-ग्रन्थों में ही यह सब घटना हो सकता है, इन **'श्रीमद्भागवत', 'शिवपुराण'** आदि मिथ्यावाद दूषित ग्रन्थों में नहीं घट सकता।

[व्यास जी का 'वेदव्यास' नाम कैसे पड़ा?]

जो व्यास जी ने वेद पढ़े, और पढ़ाकर वेदार्थ फैलाया, इसीलिये उनका नाम **'वेदव्यास'** हुआ; क्योंकि व्यास कहते हैं वार-पार की मध्य रेखा को, अर्थात् **'ऋग्वेद'** के आरम्भ से लेकर **'अथर्ववेद'** के पार पर्यन्त चारों वेद पढ़े थे और शुकदेव तथा जैमिनि आदि शिष्यों को पढ़ाये भी थे, नहीं तो उनका जन्म का नाम **'कृष्णद्वैपायन'** था। जो कोई यह कहते हैं कि "वेदों को व्यास जी ने इकट्ठा किया" यह बात झूठी है, क्योंकि व्यास जी के पिता, पितामह, प्रपितामह; **पराशर, शक्ति** और **वशिष्ठ;** और **ब्रह्मा** आदि ने भी चारों वेद पढे थे; यह बात क्योंकर घट सके?

[शिवपुराणादि की अधिकांश बातें झूठी हैं]

प्रश्न—पुराणों में सब बातें झूठी हैं, वा कोई सच्ची भी है?

उत्तर—बहुत-सी बातें झूठी हैं और कोई-कोई 'घुणाक्षरन्याय' से सच्ची भी है। जो सच्ची है वह वेदादि सत्यशास्त्रों की और जो झूठी हैं वे इन

पोपों के पुराणरूप घर की हैं। जैसे **'शिवपुराण'** में शैवों ने शिव को परमेश्वर मानके विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र, गणेश और सूर्यादि उनके दास ठहराये। वैष्णवों ने **'विष्णुपुराण'** आदि में विष्णु को परमात्मा माना और शिव आदि विष्णु के दास। **'देवीभागवत'** में देवी को परमेश्वरी [माना] और शिव, विष्णु आदि उसके किङ्कर बनाये। **'गणेशखण्ड'** में गणेश को ईश्वर [माना] और शेष सब दास बनाये। भला, यह बात इन सम्प्रदायी पोपों की नहीं तो किनकी है? **एक [सामान्य] मनुष्य के बनाये [ग्रन्थ] में ऐसी परस्परविरुद्ध बातें नहीं होती, तो विद्वान् के बनाये में कभी नहीं आ सकतीं।** इसमें एक बात को सच्ची मानें तो दूसरी झूठी और जो दूसरी को सच्ची मानें, तो अन्य सब झूठी होती हैं।

शिवपुराण-वाले ने शिव से, **विष्णुपुराण**-वाले ने विष्णु से, **देवीपुराण**-वाले ने देवी से, **गणेशखण्ड**-वाले ने गणेश से, **सूर्यपुराण**-वाले ने सूर्य से और **वायुपुराण**-वाले ने वायु से सृष्टि की उत्पत्ति-प्रलय लिखके, एक-एक से एक-एक जगत् का कारण लिखा; पुनः उनकी उत्पत्ति एक-एक से लिखी। कोई पूछे कि जो जगत् की उत्पत्ति-स्थिति-प्रलय करनेवाला है, वह उत्पन्न कभी [हो सकता है?] और जो उत्पन्न होता है, वह सृष्टि का कारण कभी हो सकता है? तो सिवाय चुप रहने के कुछ भी नहीं कह सकते। और इन सबके शरीर की उत्पत्ति भी इसी से हुई होगी, फिर वे आप सृष्ट-पदार्थ और परिच्छिन्न होकर संसार की उत्पत्ति के कर्त्ता क्योंकर हो सकते हैं? और [जगत् की] उत्पत्ति भी विलक्षण-विलक्षण प्रकार से मानी है जो कि सर्वथा असम्भव

है। जैसे—

[शिवपुराणोक्त सृष्टि-रचना का विवेचन]

'शिवपुराण' में [लिखा है कि] शिव ने इच्छा की, 'मैं सृष्टि करूँ', तो एक 'नारायण-जलाशय' को उत्पन्न किया, उसकी नाभि से कमल, कमल में से ब्रह्मा उत्पन्न हुआ। उसने देखा कि सब जलमय है। जल की अञ्जलि उठा, देख, जल में पटक दी। उससे एक बुद्बुदा उठा और बुद्बुदे में से एक पुरुष हुआ। उसने ब्रह्मा से कहा कि "हे पुत्र! सृष्टि उत्पन्न कर।"

ब्रह्मा ने उससे कहा कि “मैं तेरा पुत्र नहीं किन्तु तू मेरा पुत्र है।" उनमें विवाद हुआ और दिव्यसहस्रवर्ष-पर्यन्त दोनों जल पर लड़ते रहे। तब महादेव ने विचार किया कि जिनको मैंने सृष्टि करने के लिये भेजा था, वे दोनों आपस में लड़ रहे हैं। तब उन दोनों के बीच में से एक तेजोमय लिंग उत्पन्न हुआ और वह शीघ्र आकाश में चला गया। उसको देखके दोनों साश्चर्य हो गये। विचारा कि इसका आदि-अन्त लेना चाहिये। जो आदि-अन्त लेके शीघ्र आवे वह पिता और जो पीछे [आवे] वा थाह लेके न आवे वह पुत्र कहावे। विष्णु कूर्म का स्वरूप धरके नीचे को चला और ब्रह्मा हंस का शरीर धारण करके ऊपर को उड़ा। दोनों मनोवेग से चले। दिव्यसहस्र-वर्षपर्यन्त दोनों चलते रहे तो भी उसका अन्त न पाया। तब नीचे से ऊपर विष्णु और ऊपर से नीचे ब्रह्मा चला। ब्रह्मा ने विचारा कि जो वह छेड़ा ले आया होगा तो मुझको पुत्र बनना पड़ेगा। ऐसा सोच रहा था कि उसी समय एक गाय और एक केतकी का वृक्ष ऊपर से उतर आये।

उनसे ब्रह्मा ने पूछा कि—"कि तुम कहाँ से आये?"

उन्होंने कहा—"हम सहस्र वर्षों से इस लिंग के आधार से चले आते हैं।"

ब्रह्मा ने पूछा कि—"इस लिंग का थाह है वा नहीं?"

उन्होंने कहा कि "नहीं"।

ब्रह्मा ने उनसे कहा कि "तुम हमारे साथ चलो और ऐसी साक्षिता दो कि 'मैं इस लिंग के शिर पर दूध की धारा वर्षाती थी' और वृक्ष कहे कि 'मैं फूल वर्षाता था', ऐसी साक्षिता दो तो मैं तुमको ठिकाने पर ले चलूं।"

उन्होंने कहा कि “हम झूठी साक्षिता नहीं देंगे।"

तब ब्रह्मा कुपित होकर बोला—"जो साक्षिता न दोगे तो मैं तुमको अभी भस्म कर देता हूँ।"

तब दोनों ने डरके कहा—"हम, जैसा तुम कहते हो, वैसी साक्षिता देवेंगे।"

तब तीनों नीचे की ओर चले। विष्णु पहले ही आ गये थे, ब्रह्मा भी पहुँचा। विष्णु से पूछा कि "तू थाह ले आया वा नहीं?"

तब विष्णु बोला—"मुझको इसका थाह नहीं मिला।"

ब्रह्मा ने कहा—"मैं ले आया।"

विष्णु ने कहा—"कोई साक्षी दो।"

तब गाय और वृक्ष ने साक्षिता दी—"हम दोनों लिंग के शिर पर थे।"

तब लिंग में से शब्द निकला और [वृक्ष को] शाप दिया—"जो तूने झूठ बोला, इसलिये तेरा फूल मुझ वा अन्य देवता पर जगत् में कहीं नहीं चढ़ेगा और जो कोई चढ़ावेगा उसका सत्यानाश होगा।" गाय को शाप दिया कि "जिस मुख से तूने झूठ बोला, उसी से विष्ठा खाया करेगी। तेरे मुख की पूजा कोई न करेगा, किन्तु पूंछ की करेंगे।" और ब्रह्मा को शाप दिया "कि जिससे तू मिथ्या बोला, इससे तेरी पूजा संसार में कहीं न होगी।" और विष्णु को वर दिया—"जिससे तू सत्य बोला, इससे तेरी पूजा सर्वत्र होगी।"

पुनः दोनों ने लिंग की स्तुति की। उससे प्रसन्न होकर उस लिंग में से एक जटाजूट मूर्त्ति निकल आई और कहा कि "तुमको मैंने सृष्टि करने के लिये भेजा था, झगड़े में क्यों लगे रहे?"

ब्रह्मा और विष्णु ने कहा कि "हम विना सामग्री सृष्टि कहाँ से करें।"

तब महादेव ने अपनी जटा में से भस्म का गोला निकाल कर दिया कि "जाओ, इसमें से सब सृष्टि बनाओ" इत्यादि।

कोई इन पुराणों के बनानेवाले पोपों से पूछे कि जब सृष्टितत्त्व और पञ्चमहाभूत भी नहीं थे, तो ब्रह्मा, विष्णु, महादेव के शरीर, जल, कमल, लिंग, गाय और केतकी का वृक्ष और भस्म तुम्हारे बाबा के घर में से आ गिरे?

[भागवतपुराणोक्त सृष्टि-रचना का विवेचन]

वैसे ही **'भागवत'** में [लिखा है कि] विष्णु की नाभि से कमल, कमल से ब्रह्मा और ब्रह्मा के दाहिने पग के अंगूठे से स्वायंभुव [मनु] हुआ और बायें अंगूठे से शतरूपा राणी, ललाट से रुद्र और मरीचि आदि दश पुत्र, उनसे दक्ष प्रजापति उत्पन्न हुआ, उनकी तेरह लड़कियों का विवाह कश्यप से हुआ, उनमें से दिति से दैत्य, दनु से दानव, अदिति से आदित्य, विनता से पक्षी, कद्रू से सर्प, सरमा से कुत्ते, स्याल आदि और अन्य स्त्रियों से हाथी, घोड़े, ऊँट, गधे, भैंसे, सिंह, घास-फूस और बबूल आदि

के वृक्ष काँटे सहित उत्पन्न हो गये।

वाह रे 'भागवत' के बनानेवाले लालबुझक्कड़! तुमको ऐसी मिथ्या बातें लिखने में तनिक भी लज्जा-शर्म न आई। भला, स्त्री-पुरुष के रज-वीर्य से मनुष्य तो बनते हैं परन्त परमेश्वर के सृष्टिक्रम के विरुद्ध पशु, पक्षी, सर्प आदि कभी उत्पन्न हो सकते हैं? हाथी, ऊँट, सिंह, कुत्ते, गधे वृक्षादि के स्थित होने का अवकाश स्त्री के गर्भाशय में कहां हो सकता है? और सिंह आदि उत्पन्न होकर अपने मा-बाप को क्यों न खा गये? इत्यादि झूठी बातों को वे अन्धे 'पोप' और भीतर-बाहर की आँख फूटे हुये उनके चेले सुनते-मानते हैं। ये मनुष्य हैं वा अन्य कोई? इन **'भागवत'**-आदि पुराणों के बनानेवाले जन्मते नहीं, [अपितु] गर्भ में ही नष्ट हो जाते, वा जन्म कर उसी समय मर जाते [तो अच्छा होता] !! **क्योंकि इन पोपों से बचते तो आर्यावर्त देश दुःखों से बच जाता!**

[सृष्टिक्रम से विरुद्ध रचना नहीं हो सकती]

प्रश्न—इन बातों में विरोध नहीं आ सकता, क्योंकि **'जिसका विवाह उसी के गीत'।** जब विष्णु की स्तुति करने लगे तब विष्णु को परमेश्वर, अन्यों को दास; जब शिव के गुण गाने लगे तब शिव को परमात्मा, अन्यों को किङ्कर बनाया। और परमेश्वर की माया में सब बन सकता है। मनुष्य से पशु आदि और पशु आदि से मनुष्यादि की उत्पत्ति परमेश्वर कर सकता है। देखो, विना कारण अपनी माया से सब सृष्टि खड़ी कर दी है। उसमें कौन-सी बात अघटित है? जो करना चाहे, सो सब कर सकता है।

उत्तर—अरे भोले लोगो। विवाह में जिसके गीत गाते हैं, उसको सबसे बड़ा और दूसरों को छोटा वा निन्दा [का पात्र] अथवा उसको सबका बाप तो नहीं बनाते? कहो पोप जी! तुम भाट और खुशामदी चारणों से बढ़कर गप्पी हो अथवा नहीं कि जिसके पीछे लगो, उसी को सबसे बड़ा बनाओ और जिससे विरोध करो उसको सबसे नीच ठहराओ? तुमको सत्य और धर्म से क्या प्रयोजन? किन्तु तुमको तो अपने स्वार्थ से ही काम है। माया मनुष्य में हो सकती है, जो कि छली-कपटी हैं उन्हीं को **'मायावी'** कहते हैं; परमेश्वर में छल-कपटादि दोष न होने से, उसको 'मायावी' नहीं कह सकते। जो आदिसृष्टि में कश्यप और कश्यप की स्त्रियों से पशु, पक्षी, सर्प, वृक्षादि हुए होते तो आजकल भी वैसे सन्तान क्यों नहीं होते? सृष्टिक्रम जो पहले लिख आये वही ठीक है।

[भागवत के कर्त्ता को धोखा]

और अनुमान है कि पोप जी यहीं से धोखा खाकर बहके होंगे—

तस्मात् काश्यप्य इमाः प्रजाः॥

[तुलना—शत० ब्रा०, ७।४।१।५]

शतपथ में यह लिखा है कि यह सब सृष्टि कश्यप की बनाई हुई है।

कश्यपः कस्मात् पश्यको भवतीति॥

निरु० [अ० २। खं० १; तुलना—तैत्ति० आ० १।८]

सृष्टिकर्त्ता परमेश्वर का नाम **'कश्यप'** इसलिये है कि **'पश्यकः'** अर्थात् **'पश्यतीति पश्यः, पश्य एव पश्यकः'**=जो निर्भ्रम होकर चराचर जगत्, सब जीवों और इनके कर्मों, सकल विद्याओं को यथावत् देखता है; और **'आद्यन्त-विपर्ययश्च'** इस महाभाष्य [३।१।२३] के वचन से आदि का अक्षर अन्त और अन्त का वर्ण आदि में आने से **'पश्यक'** से **'कश्यप'** बन गया है। इसका अर्थ न जानके, भाँग के लोटे चढ़ा, अपना जन्म सृष्टिविरुद्ध कथन करने में नष्ट कर दिया।

[मार्कण्डेयपुराण-प्रोक्त 'रक्तबीज' की आलोचना]

जैसे **'मार्कण्डेयपुराण'** के दुर्गापाठ में, देवों के शरीरों से तेज निकलके एक देवी बनी, उसने **'महिषासुर'** को मारा; रक्तबीज' [राक्षस] के शरीर से एक बिन्दु भूमि पर पड़ने से उसके सदृश रक्तबीजों के उत्पन्न होने से सब जगत् में रक्तबीज भर जाना, रुधिर की नदियाँ चलना आदि गपोड़े बहुत-से लिख रक्खे हैं।

जब 'रक्तबीज' [राक्षसों] से सब जगत् भर गया था तो देवी का सिंह और देवी कहां ठहरे थे? जो कहो कि देवी से दूर-दूर 'रक्तबीज' थे, तो सब जगत् 'रक्तबीज' से नहीं भरा था! और जो भर गया था, तो पशु, पक्षी, मनुष्यादि प्राणी और जलस्थ मगरमच्छ, कच्छप, मत्स्यादि [तथा] वृक्ष आदि कहाँ रहे थे? यहाँ यही निश्चित जानना कि 'दुर्गापाठ' बनानेवाले 'पोप' के घर में भागकर चले गये होंगे!! देखिये, क्या ही असम्भव कथा का गपोड़ा भंग की लहरी में उड़ाया, जिसका ठौर न

ठिकाना!

[श्रीमद्भागवतपुराण की आलोचना]

जिसको **'श्रीमद्भागवत'** कहते हैं, उसकी लीला सुनो। ब्रह्मा जी को नारायण ने **'चतुःश्लोकी' 'भागवत'** का उपदेश किया है—

ज्ञानं परमगुह्यं मे यद्विज्ञानसमन्वितम्।

सरहस्यं तदङ्गञ्च गृहाण गदितं मया॥

भागवत [स्कं० २।९।३०]

=हे ब्रह्मा जी! तू मेरा परमगुह्य ज्ञान, जो विज्ञान और रहस्ययुक्त और धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का अङ्ग है, उसी को मुझसे ग्रहण कर।

जब विज्ञानयुक्त ज्ञान कहा तो 'परम' अर्थात् ज्ञान का विशेषण रखना व्यर्थ है और 'गुह्य' विशेषण से 'रहस्य' भी पुनरुक्त है। जब मूल श्लोक अनर्थक हैं तो ग्रन्थ अनर्थक क्यों नहीं? जब **भागवत** का **मूल ही झूठा है तो उसका वृक्ष झूठा क्यों नहीं होगा?** ब्रह्मा जी को वर दिया कि—

भवान् कल्पविकल्पेषु न विमुह्यति कर्हिचित्॥

भागवत० श्लोक [स्कं० २।९] [३६]

'आप कल्प=सृष्टि और विकल्प=प्रलय में मोह को प्राप्त कभी नहीं होंगे, 'ऐसा लिखके पुनः दशमस्कन्ध में मोहित होके वत्सहरण किया, [लिखा है]। इन दोनों में से एक बात सच्ची है तो दूसरी झूठी है। ऐसा होकर दोनों बातें झूठी हुईं।

[स्वर्ग के द्वारपाल जय-विजय को शाप]

जब वैकुण्ठ में राग, द्वेष, क्रोध, ईर्ष्या, दुःख नहीं हैं, तो सनक-आदिकों को वैकुण्ठ के द्वार में क्रोध क्यों हुआ? जो क्रोध हुआ तो वह स्वर्ग ही नहीं। जब जय, विजय द्वारपाल थे, [तो] स्वामी की आज्ञा पालनी आवश्यक थी। उन्होंने सनक-आदिकों को रोका, तो क्या [यह कोई] अपराध हुआ? इस पर विना अपराध शाप ही नहीं लग सकता। जब शाप लगा कि 'तुम पृथिवी पर गिर पड़ो', इसके कहने से यह सिद्ध होता है कि वहां पृथिवी न होगी। आकाश, वायु, अग्नि और जल होगा। जो ऐसा है, तो द्वार, मन्दिर और जल किसके आधार पर थे? पुनः जय, विजय ने सनकादिकों की स्तुति की—"महाराज! पुनः हम वैकुण्ठ में कब आवेंगे?" उन्होंने उनसे कहा कि "जो प्रेम से नारायण की भक्ति करोगे तो सातवें जन्म और जो विरोध से भक्ति करोगे तो तीसरे जन्म वैकुण्ठ को प्राप्त होगे।" इसमें विचारना चाहिये कि जय, विजय नारायण के नौकर थे। उनकी रक्षा और सहाय करना नारायण का कर्तव्य काम था। जो किसी के नौकरों को विना अपराध दुःख देवें, उनको उनका स्वामी दण्ड न देवे तो उसके नौकरों की दुर्दशा हर कोई कर डाले। नारायण को उचित था कि जय, विजय का सत्कार और सनक-आदिकों को खूब दण्ड देते, क्योंकि उन्होंने भीतर आने के लिये हठ क्यों किया? और नौकरों से

लड़े क्यों? [क्यों उनको] शाप दिया? उनके बदले सनक-आदिकों को पृथिवी पर डाल देना नारायण का न्याय होता। जब इतना अन्धेर नारायण के घर में है, तो उसके सेवक जो कि **'वैष्णव'** कहाते हैं, उनकी जितनी दुर्दशा हो, उतनी थोड़ी है।

[वराह द्वारा हिरण्याक्ष का वध]

पुनः **हिरण्याक्ष** और **हिरण्यकशिपु** उत्पन्न हुए। उनमें से हिरण्याक्ष को वराह ने मारा। उसकी कथा इस प्रकार से लिखी है कि वह पृथिवी को चटाई के समान लपेट कर सिरहाने धर सो गया। विष्णु ने वराह का स्वरूप धारण करके, उसके शिर के नीचे से [निकालकर] पृथिवी को मुख में धर लिया। वह उठा। दोनों की लड़ाई हुई। वराह ने **हिरण्याक्ष** को मार डाला।

इन पोपों से कोई पूछे कि पृथिवी गोल है वा चटाई के तुल्य? तो कुछ न कह सकेंगे; क्योंकि पौराणिक लोग **'भूगोलविद्या'** के शत्रु हैं। भला, जब लपेटकर सिरहाने धरली तो आप किस पर सोया? और वराह जी किस पर पग धर दौड़ आये? और फिर पृथिवी को तो वराह जी ने मुख में रक्खा, फिर दोनों किस पर ठड़े होकर लड़े? वहाँ और कोई ठहरने की जगह नहीं थी, अतः **'भागवत'**-आदि पुराण बनानेवाले पोप जी की छाती पर ठड़े होके लड़े होंगे! और फिर उस समय पोप जी किस पर सोये होंगे? यह बात जैसे—**'गप्पी के घर गप्पी आये, बोले गप्पी जी'**=जब मिथ्यावादियों के घरों में दूसरे गप्पी लोग आते हैं फिर गप्प मारने में क्या

कमती, इस प्रकार की है।

[नृसिंह द्वारा हिरण्यकश्यप का विनाश]

अब रहा **हिरण्यकशिपु**। उसका लड़का जो **प्रह्लाद** था वह भक्त हुआ था। उसका पिता पढ़ने को पाठशाला में भेजता था। तब वह अध्यापकों से कहता था—"मेरी पट्टी पर 'राम-राम' लिख दो।" जब उसके बाप ने सुना तो उससे कहा—"तू हमारे शत्रु का भजन क्यों करता है?" छोकरे ने न माना। तब उसके बाप ने उसको बाँधके पहाड़ से गिराया, कूप में डाला, परन्तु उसको कुछ न हुआ। तब वह एक लोहे का खम्भा आग में तपाके उससे बोला—"जो तेरा इष्टदेव 'राम' सच्चा हो तो तू इसको पकड़ने से न जलेगा।" प्रह्लाद पकड़ने को चला। मन में शंका हुई—'जलने से बचूंगा वा नहीं?' नारायण ने उस खम्भे पर छोटी-छोटी चीटियों की पंक्ति चलाई। उसको निश्चय हुआ, [उसने] झट खम्भे को जा पकड़ा। वह फट गया, उसमें से नृसिंह निकला। [उसने] उसके बाप को पकड़, पेट चीर, मार डाला और तब वह प्रह्लाद को चाटने लगा। [नृसिंह ने] प्रह्लाद से कहा—“वर माँग।" उसने अपने पिता की सद्गति होनी मांगी। नृसिंह ने वर दिया—"तेरे इक्कीस पुरुषे सद्गति को गये।"

देखिये, यह भी दूसरे गपोड़े का भाई गपोड़ा। किसी **'भागवत'** बाँचने वा सुननेवाले को पकड़के ऊपर पहाड़ से गिरावे तो कोई न बचे, किन्तु चकनाचूर होकर मर जावे। प्रह्लाद को उसका पिता पढ़ने के लिये भेजता था, [तो उसने] क्या बुरा काम किया था? और वह प्रह्लाद ऐसा मूर्ख [था

कि] पढ़ना छोड़ वैरागी होना चाहता था। जो जलते हुए खम्भे के स्पर्श से कीड़ी और प्रह्लाद न जले, इस बात को जो सच्ची माने उसको भी खम्भे के साथ लगा देना चाहिये। जो वह न जले तो जानो वह भी न जला होगा। और नृसिंह भी क्यों न जला? प्रथम, तीसरे जन्म में वैकुण्ठ में आने का वर सनक-आदिक का था। क्या उसको तुम्हारा नारायण भूल गया? **'भागवत'** की रीति से ब्रह्मा, प्रजापति, कश्यप से आगे हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु चौथी पीढ़ी में होते हैं। इक्कीस पीढ़ियां प्रह्लाद की हुई ही नहीं, पुनः "इक्कीस पुरुषे सद्गति को गये" कहना कितना प्रमाद है! और फिर वे ही हिरण्याक्ष-हिरण्यकशिपु, पुनः रावण-कुम्भकर्ण, पुनः शिशुपाल-दन्तवक्त्र उत्पन्न हुए तो नृसिंह का वर कहाँ उड़ गया? ऐसी प्रमाद की बातें प्रमादी करते, सुनते और मानते हैं, विद्वान् नहीं।

[पूतना और अक्रूर सम्बन्धी गप्पें]

पूतना और अक्रूर जी के विषय में देखो—

जगाम गोकुलं प्रति॥ [रथमास्थाय प्रययौ नन्दगोकुलम्]

[भागवत० स्कं० १०।३८।१]

"रथेन वायुवेगेन"

[भागवत० स्कं० १०।३९।३८]

अक्रूर जी, कंस के भेजने से, वायु के समान दौड़नेवाले घोड़ों के रथ में बैठके सूर्योदय से चले और चार मील गोकुल में सूर्यास्त समय पहुँचे! शायद, घोड़े **'भागवत'** बनानेवाले की परिक्रमा करते रहे होंगे? वा मार्ग

भूलकर **'भागवत'** बनानेवाले के घर में आकर घोड़े हांकनेवाले और अक्रूर जी सो गये होंगे?

पूतना का शरीर छ: कोश चौड़ा और बहुत-सा लम्बा लिखा है। मथुरा और गोकुल के बीच में उसको मारकर श्रीकृष्ण ने डाल दिया। जो ऐसा होता तो मथुरा और गोकुल दोनों दबकर इन पोप जी का घर भी दब गया होता।

[अजामेल की ऊटपटाँग कथा]

अजामिल की कथा ऊटपटाँग लिखी है। उसने नारद के कहने से अपने लड़के का नाम नारायण रक्खा था। मरते समय अपने पुत्र को पुकारा। बीच में नारायण कूद पड़े। क्या नारायण उसके अन्तःकरण के भाव को नहीं जानते थे कि वह अपने पुत्र को पुकारता है, मुझको नहीं। जो ऐसा ही नाम-माहात्म्य है तो आजकल भी नारायण अपने स्मरण करनेवालों के दु:ख छुड़ाने को क्यों नहीं आता? यदि यह बात सच्ची हो, तो क़ैदी लोग 'नारायण-नारायण' करके क्यों नहीं छूट जाते?

[भागवत के कुछ अन्य गपोड़े]

ऐसे ही **'ज्योतिष शास्त्र'** से विरुद्ध **'सुमेरु'** का परिमाण लिखा है। प्रियव्रत के रथ के चक्र की लीक से समुद्र हुए, पचास कोटि योजन पृथिवी है, इत्यादि मिथ्या बातों का **'भागवत'** में कुछ पारावार नहीं।

[भागवत की रचना बोबदेव द्वारा]

और यह **'भागवत'** बोपदेव का बनाया है, जिसके भाई जयदेव ने **'गीतगोविन्द'** बनाया है। देखो, उसने ये श्लोक अपने बनाये **'हेमाद्रि'** में लिखे हैं कि **'श्रीमद्भागवत'** मैंने बनाया है। उस लेख के तीन पत्र हमारे पास थे। उनमें से एक पत्र खो गया है। उस पत्र में श्लोकों का जो आशय था उस आशय के हमने दो श्लोक बनाके नीचे लिखे हैं— जिसको देखना हो, वह **'हेमाद्रि'** ग्रन्थ में देख लेवे। श्लोक—

हेमाद्रेः सचिवस्यार्थे सूचना क्रियतेऽधुना।

स्कन्धाऽध्यायकथानां च यत्प्रमाणं समासतः॥१॥

श्रीमद्भागवतं नाम पुराणं च मयेरितम्।

विदुषा बोपदेवेन श्रीकृष्णस्य यशोन्वितम्॥२॥

इसी प्रकार के श्लोक नष्टपत्र में थे। अर्थात् राजा के सचिव हेमाद्रि ने बोपदेव पण्डित से कहा कि 'मुझको तुम्हारे बनाये **'श्रीमद्भागवत'** को सम्पूर्ण सुनने का अवकाश नहीं है, इसलिये तुम संक्षेप से श्लोकबद्ध सूचीपत्र बनाओ, जिसको देखके मैं **'श्रीमद्भागवत'** की कथा को संक्षेप से जान लूं।' सो नीचे लिखा हुआ सूचीपत्र उस बोपदेव ने बनाया। उसमें से उस नष्टपत्र में नौ श्लोक खो गये हैं, दशवें श्लोक से लिखते हैं। ये नीचे लिखे श्लोक सब बोपदेव के बनाये हैं। वे श्लोक हैं—

बोधयन्तीति हि प्राहुः श्रीमद्भागवतं पुनः।

पञ्च प्रश्नाः शौनकस्य सूतस्यात्रोत्तरं त्रिषु॥१०॥

प्रश्नावतारयोश्चैव व्यासस्यानिवृतिः कृतात्।

नारदस्यात्र हेतूक्तिः प्रतीत्यर्थं स्वजन्म च॥११॥

सुप्तघ्नं द्रोण्यभिभवस्तदस्त्रात्पाण्डवावनम्।

भीष्मस्य स्वपदप्राप्तिः कृष्णस्य द्वारकागमः॥१२॥

श्रोतुः परीक्षितो जन्म धृतराष्ट्रस्य निर्गमः। कृष्णमर्त्यत्यागसूचा ततः पार्थमहापथः॥१३॥

भूधर्मयोः कलेर्भीतिस्ततस्त्राणं परीक्षिता।

परीक्षितो ब्रह्मशापः प्रायेण शुकसंगमः ॥१४॥ इत्यष्टादशभिः पादैरध्यायार्थः क्रमात् स्मृतः। स्वपरप्रतिबन्धोनं स्फीतं राज्यं जहौ नृपः॥१५॥

इति वै राज्ञो दाढर्योक्तौ प्रोक्ता द्रौणिजयादयः॥[१६]

इति प्रथमः स्कन्धः॥१॥

इत्यादि बारह स्कन्धों का सूचीपत्र इसी प्रकार बोपदेव पण्डित ने बनाकर हेमाद्रि [नामक] सचिव को दिया। जो विस्तार देखना चाहे, वह बोपदेव के बनाये **'हेमाद्रि'** ग्रन्थ में देख लेवे। इसी प्रकार अन्य पुराणों की लीला भी उन्नीस-वीस-इक्कीस एक-दूसरे से बढ़कर है।

[भागवतकार द्वारा श्रीकृष्ण पर मनमाने दोष]

देखो, श्री कृष्ण का इतिहास महाभारत में अत्युत्तम है; उनका गुण, कर्म, स्वभाव, चरित्र आप्त पुरुषों के सदृश है; जिसमें, श्री कृष्ण ने जन्म से मरणपर्यन्त कोई अधर्म का आचरण कुछ भी किया हो, ऐसा नहीं लिखा। और **'भागवत'** में दूध, दही, मक्खन की चोरी, कुब्जा दासी से समागम, परस्त्रियों से रासमण्डल, क्रीडा आदि मिथ्या दोष श्री कृष्ण पर लगाये हैं। इसको पढ़-पढ़ा, सुन-सुनाके, अन्य मत-वाले श्री कृष्ण की बहुत-सी निन्दा करते हैं। **जो यह 'भागवत' न होता तो श्री कृष्ण जी के सदृश महात्माओं की झूठी निन्दा क्यों होती?**

[शिवपुराण में बारह ज्योतिर्लिङ्गों की चर्चा]

'शिवपुराण' में बारह ज्योतिर्लिंग' लिखे हैं। उनकी कथा सर्वथा असम्भव है। नाम धरा है 'ज्योतिर्लिंग' और जिनमें प्रकाश का लेश भी नहीं। रात्रि को विना दीप किये लिंग भी अन्धेरे में नहीं दीखते, ये सब लीलायें पोप जी की हैं।

[पुराण-रचना-प्रयोजन की समीक्षा]

प्रश्न—जब वेद पढ़ने का सामर्थ्य नहीं रहा तब स्मृतियां [बनाई], जब स्मृतियों के पढ़ने की बुद्धि नहीं रही तब शास्त्र [और] जब शास्त्र पढ़ने का सामर्थ्य न रहा तब पुराण बनाये, केवल स्त्री-शूद्रों के लिये; क्योंकि इनको वेद पढ़ने-सुनने का अधिकार नहीं है।

उत्तर—यह बात मिथ्या है; **क्योंकि सामर्थ्य पढ़ने-पढ़ाने से ही होता है और वेद पढ़ने-सुनने का अधिकार सबको है।** देखो, गार्गी आदि स्त्रियाँ [वेदविदुषी थीं] और **'छान्दोग्य'** में [लिखा है कि] जानश्रुति शूद्र ने भी रैक्यमुनि के पास वेद पढ़ा था। और **'यजुर्वेद'** के २६वें अध्याय के दूसरे मन्त्र में स्पष्ट लिखा है कि **वेदों के पढ़ने-सुनने का अधिकार मनुष्यमात्र को है।** पुन: जो ऐसे-ऐसे मिथ्याग्रन्थ बना, लोगों को सत्यग्रन्थों से विमुख रख, जाल में फसा, अपने प्रयोजन को साधते हैं, वे महापापी क्यों नहीं?

[नव ग्रह-सम्बन्धी मन्त्र और उनकी समीक्षा]

देखो, ग्रहों का चक्र कैसा चलाया है कि जिसने विद्याहीन मनुष्यों को ग्रस्त कर लिया है—

'आ कृष्णेन रजंसा०'॥१॥ [यजु: ३३।४३] सूर्य का मन्त्र, **'इमं देंवाऽअसपत्नꣳ सुंवध्वम्०'**॥२॥ [यजु: ९।४०] चन्द्र, **'अग्निर्मूर्द्धा दिवः ककुत्पतिः०'**॥३॥ [यजु: ३।१२] मङ्गल, **'उद्बुंध्यस्वाग्ने०'** ॥४॥ [यजु: १५।५४] बुध, **'बृहंस्पतेऽअतियदर्यो०'**॥५॥ [यजु: २६।३] बृहस्पति, **'शुक्रमन्धंसः'**॥६॥ [यजु: १९।७२] शुक्र, **'शन्नों देवीरभिष्टंय०'**॥७॥ [यजु: ३६।१२] शनि, **'कयां नश्चित्रऽआ भुंव०'**॥८॥ [यजु: २७।३९] राहु, **'केतुं कृण्वन्नंकेतवे०'**॥९॥ [यजु: २९।३७] इसको **'केतु'** की कण्डिका कहते हैं।

(आ कृष्णे०) यह सूर्य और भूमि का आकर्षण॥१॥ दूसरा—राजगुण विधायक॥२॥ तीसरा—अग्नि॥३॥ और चौथा—यजमान॥४॥

पाँचवाँ—विद्वान्॥५॥ छठा—वीर्य, अन्न॥६॥ सातवाँ—जल, प्राण और परमेश्वर॥७॥ आठवाँ—मित्र॥८॥ नववाँ—ज्ञानग्रहण॥९॥ ये इनके विधायक मन्त्र हैं, ग्रहों के वाचक नहीं। अर्थ न जानने से भ्रमजाल में पड़े हैं।

[पोपों की ग्रह-फलविषयक लीला]

प्रश्न—ग्रहों का फल होता है, वा नहीं?

उत्तर—जैसा पोपलीला का [कहा हुआ] है, वैसा नहीं; किन्तु जैसे सूर्य-चन्द्रमा किरणों द्वारा उष्णता-शीतता अथवा ऋतुवत्कालचक्र के सम्बन्धमात्र से अपनी प्रकृति के अनुकूल-प्रतिकूल सुख-दुःख के निमित्त होते हैं, [वैसा फल होता है]। परन्तु जो पोपलीलावाले कहते हैं "सुनो महाराज! सेठजी! यजमानो! तुम्हारे आज चन्द्र-सूर्यादि क्रूर ग्रह आठवें घर में आये हैं। अढ़ाई वर्ष का शनैश्चर पग में आया है। तुमको बड़ा विघ्न होगा। घर-द्वार छुड़ाकर परदेश में घुमावेगा। परन्तु जो तुम ग्रहों का दान, जप, पाठ, पूजा कराओगे तो दुःख से बचोगे।" इनसे पूछना चाहिये कि "सुनो पोप जी! तुम्हारा और ग्रहों का क्या सम्बन्ध है? ग्रह क्या वस्तु है?"

[मन्त्रों से देवताओं को वश में करना ढोंग]

पोप जी— दैवाधीनं जगत्सर्वं मन्त्राधीनाश्च देवताः।
ते मन्त्रा ब्राह्मणाधीनास्तस्माद् ब्राह्मणदैवतम्॥

देखो, कैसा प्रमाण है! देवताओं के आधीन सब जगत्, मन्त्रों के आधीन सब देवता और वे मन्त्र ब्राह्मणों के आधीन हैं, इसलिये ब्राह्मण 'देवता' कहाते हैं; क्योंकि [जब] चाहें, उस देवता को मन्त्र के बल से बुला, प्रसन्न कर, काम सिद्ध कराने का हमारा ही अधिकार है। जो हममें मन्त्रशक्ति न होती तो तुम्हारे जैसे नास्तिक हमको संसार में रहने ही न देते।

सत्यवादी—जो चोर, डाकू, कुकर्मी लोग हैं, वे भी तुम्हारे देवताओं के आधीन होंगे? देवता ही उनसे दुष्ट काम कराते होंगे? जो वैसा है तो तुम्हारे देवता और राक्षसों में कुछ भेद न रहेगा। जो तुम्हारे आधीन मन्त्र हैं, [और] उनसे तुम चाहो सो करा सकते हो, तो उन मन्त्रों से देवताओं को वश में कर राजाओं के कोष उठवाकर, अपने घर में भरकर, बैठके आनन्द क्यों नहीं भोगते? घर-घर में शनैश्चरादि के तैल आदि का छायादान लेने को मारे-मारे क्यों फिरते हो? **और जिसको तुम कुबेर मानते हो उसको वश में करके चाहो जितना धन लिया करो, बेचारे गरीबों को क्यों लूटते हो?**

[ग्रह किसी पर प्रसन्न वा अप्रसन्न नहीं होते]

तुमको दान देने से ग्रह प्रसन्न, न देने से अप्रसन्न होते हों, तो हमको सूर्यादि ग्रहों की प्रसन्नता-अप्रसन्नता प्रत्यक्ष दिखलाओ। जिसको ८ वाँ सूर्य-चन्द्र, और दूसरे को तीसरा हो, उन दोनों को ज्येष्ठ महीने में विना जूते पहने हुये तपी हुई भूमि पर चलाओ। जिस पर प्रसन्न हैं उसके पग-शरीर न जलने, और जिस पर क्रोधित हैं उसके जल जाने चाहियें।

तथा पौष-माघ में दोनों को नंगे कर पौर्णमासी की रात्रिभर मैदान में रक्खें। एक को शीत लगे दूसरे को नहीं, तो जानो कि ग्रह क्रूर और सौम्य दृष्टिवाले होते हैं। और क्या ग्रह तुम्हारे सम्बन्धी हैं? और तुम्हारी डाक वा तार उनके पास आते-जाते हैं? अथवा तुम उनके वा वे तुम्हारे पास आते-जाते हैं?

जो तुममें मन्त्रशक्ति हो तो तुम स्वयं राजा वा धनाढ्य क्यों नहीं बन जाओ? वा शत्रुओं को अपने वश में क्यों नहीं कर लेते हो?

[ग्रहदानोपजीवी ही ग्रहों की मूर्त्तियाँ हैं]

नास्तिक वह होता है, जो वेद और ईश्वर की आज्ञा [को न माने और] वेदविरुद्ध पोपलीला चलावे। जब तुमको ग्रहदान न देवे जिस पर ग्रह है, वही ग्रहदान को भोगे तो क्या चिन्ता है? जो तुम कहो कि नहीं, हमको ही देने से वे प्रसन्न होते हैं, अन्य को देने से नहीं, तो क्या तुमने ग्रहों का ठेका ले लिया है? जो ठेका लिया हो तो सूर्यादि को अपने घर में बुलाके जल मरो।

सच तो यह है कि सूर्यादि लोक जड़ हैं। वे न किसी को दुःख और न सुख देने की चेष्टा कर सकते हैं किन्तु **जितने तुम ग्रहदानोपजीवी हो, वे तुम सब ग्रहों की मूर्त्तियाँ हो; क्योंकि 'ग्रह' शब्द का अर्थ भी तुममें ही घटित होता है। 'ये गृह्णन्ति ते ग्रहाः'**=जो ग्रहण करते हैं, उनका नाम **'ग्रह'** है। **जब तक तुम्हारे चरण राजा, रईस, सेठ, साहूकार और दरिद्रों के पास नहीं पहुँचते, तब तक किसी को ग्रह का स्मरण भी**

नहीं होता। जब तुम साक्षात् सूर्य-शनैश्चरादि मूर्त्तिमान् क्रूर रूप धर उन पर जा चढ़ते हो, तब विना ग्रहण किये उनको कभी नहीं छोड़ते। और जो कोई तुम्हारे ग्रास में न आवे, उसकी निन्दा 'नास्तिक' आदि शब्दों से करते फिरते हो।

[सूर्य और चन्द्र ग्रहण पर विचार]

पोप जी—देखो, ज्योतिष का प्रत्यक्ष फल! आकाश में रहने वाले सूर्य, चन्द्र, राहु, केतु के संयोगरूप **'ग्रहण'** को पहले ही कह देते हैं। जैसा यह प्रत्यक्ष होता है, वैसा ग्रहों का फल भी प्रत्यक्ष हो जाता है। देखो, धनाढ्य-दरिद्र, राजा-रंक, सुखी-दुःखी ग्रहों से ही होते हैं।

सत्यवादी—जो यह ग्रहण रूप प्रत्यक्ष फल है सो **गणितविद्या** का है, फलित का नहीं। जो **गणितविद्या** है वह सच्ची और **फलितविद्या** स्वाभाविक सम्बन्धजन्य को छोड़के झूठी है। जैसे अनुलोम-प्रतिलोम घूमनेवाले पृथिवी और चन्द्र के गणित से स्पष्ट विदित होता है कि अमुक समय, अमुक देश, अमुक अवयव में सूर्य वा चन्द्र ग्रहण होगा। जैसे—

छादयत्यर्कमिन्दुर्विधुं भूमिभाः।

[तुलना—सिद्धान्तशिरोमणि, गोलाध्याय ग्रहण प्रकरण; ग्रहलाघव, चन्द्रग्रहण० ५.४; सूर्यसिद्धान्त चन्द्रग्रहणाधिकार ४।४]

यह **ग्रहलाघव** का वचन है और इसी प्रकार **'सूर्यसिद्धान्त'**-आदि में भी है। अर्थात् जब सूर्य और भूमि के मध्य में चन्द्रमा आता है तब

'सूर्यग्रहण' और जब सूर्य और चन्द्र के बीच में भूमि आती है तब **'चन्द्रग्रहण'** होता है। अर्थात् चन्द्र की छाया भूमि पर और भूमि की छाया चन्द्रमा पर पड़ती है। सूर्य प्रकाशरूप होने से उसके सम्मुख छाया किसी की नहीं पड़ती किन्तु जैसे प्रकाशमान सूर्य वा दीप से देहादि की छाया उलटी जाती है, वैसे ही ग्रहण में समझो।

[ग्रहों के कारण कोई धनी या दरिद्र नहीं होता]

जो धनाढ्य-दरिद्र, राजा-रंक होते हैं, वे अपने कर्मों से होते हैं, ग्रहों से नहीं। बहुत से ज्योतिषी लोग अपने लड़के-लड़की का विवाह ग्रहों की गणितविद्या के अनुसार करते हैं, पुनः उनमें विरोध वा वैधव्य अथवा मृतस्त्रीक पुरुष हो जाता है। जो फल सच्चा होता तो ऐसा क्यों होता? **इसलिये कर्म की गति सच्ची है, और ग्रहों की गति सुख-दुःख भोग में कारण नहीं।** भला, ग्रह आकाश में और पृथिवी भी आकाश में बहुत दूर पर हैं, इनका सम्बन्ध कर्त्ता और कर्मों के साथ साक्षात् नहीं। कर्म और कर्म के फल का कर्त्ता-भोक्ता जीव, और कर्मों के फल भोगानेहारा परमात्मा है। जो तुम ग्रहों का फल मानते हो तो इसका उत्तर दो कि जिस क्षण में एक मनुष्य का जन्म होता है, जिसको तुम **'ध्रुवात्रुटि'** मानकर जन्मपत्र बनाते हो, उसी समय में भूगोल पर दूसरे का जन्म होता है वा नहीं? जो कहो नहीं, तो झूठ; और जो कहो होता है, तो एक चक्रवर्ती के सदृश दूसरा चक्रवर्ती राजा भूगोल पर क्यों नहीं होता? हाँ, इतना तुम कह सकते हो कि यह लीला हमारे उदर भरने की है, तो कोई मान भी लेवे।

[गरुडपुराण की आलोचना]

प्रश्न—क्या **'गरुडपुराण'** भी झूठा है?

उत्तर—हाँ, असत्य है।

प्रश्न—फिर मरे हुए जीव की क्या गति होती है?

उत्तर—जैसे उसके कर्म हैं।

[पर्वताकार यमगण श्राद्धतर्पण गोदानादि की कल्पना]

प्रश्न—जो यमराज राजा, चित्रगुप्त मन्त्री, उसके बड़े भयङ्कर गण कज्जल के पर्वत के तुल्य शरीरवाले, जीव को पकड़कर ले जाते हैं, पाप-पुण्य के अनुसार नरक-स्वर्ग में डालते हैं। उसके लिये दान, पुण्य, श्राद्ध, तर्पण, गोदानादि, वैतरणी नदी तरने के लिये करते हैं। ये सब बातें झूठी क्योंकर हो सकती हैं?

उत्तर—ये सब बातें पोपलीला के गपोड़े हैं। जो अन्यत्र के जीव वहाँ जाते हैं, उनका धर्मराज, चित्रगुप्त आदि न्याय करते हैं, तो उस यमलोक के जीव पाप करें तो दूसरा यमलोक मानना चाहिये कि वहाँ के न्यायाधीश उनका न्याय करें। और पर्वत के समान यमगणों के शरीर हों तो दीखते क्यों नहीं? और मरनेवाले जीव को लेने में छोटे द्वार में उनकी एक अंगुली भी नहीं जा सकती! और सड़क-गली में क्यों नहीं रुक जाते? जो कहो कि वे सूक्ष्म देह भी धारण कर लेते हैं, तो प्रथम पर्वतवत् शरीर के

बड़े-बड़े हाड़, पोप जी विना, अपने घर के कहां धरेंगे? जब जङ्गल में आगी लगती है तब एकदम पिपीलिकादि जीवों के शरीर छूटते हैं। उनको पकड़ने के लिये असंख्य यम के गण आवे तो वहाँ अन्धकार हो जाना चाहिये। और जब आपस में जीवों को पकड़ने को दौड़ेंगे, तब कभी उनके शरीर ठोकरें खा जायेंगे, तो जैसे पहाड़ के बड़े-बड़े शिखर टूटकर पृथिवी पर गिरते हैं, वैसे उनके बड़े-बड़े अवयव **'गरुडपुराण'** के बाँचने-सुननेवालों के आँगन में गिर पड़ेंगे तो वे दब मरेंगे, वा घर का द्वार अथवा सड़क रुक जायगी, तो वे कैसे निकल और चल सकेंगे?

श्राद्ध, तर्पण, पिण्डप्रदान उन मरे हुये जीवों को तो नहीं पहुँचता, किन्तु मृतकों के प्रतिनिधि पोप जी के घर, उदर और हाथ में पहुँचता है। जो वैतरणी के लिये गोदान लेते हैं, वह तो पोप जी के घर में अथवा कसाई आदि के घर में पहुँचता है। वैतरणी पर गाय नहीं जाती, पुनः किसकी पूँछ पकड़कर तरेगा? और हाथ तो यहीं जला वा गाड़ दिया गया, पूँछ को कैसे पकड़ेगा?

[एक जाट का रोचक दृष्टान्त]

यहां एक जाट का दृष्टान्त इस बात में उपयुक्त है—

एक **जाट** था। उसके घर में एक गाय वीस सेर दूध देनेवाली थी। उसका दूध बड़ा स्वादिष्ट होता था। कभी-कभी पोप जी के मुख में भी पड़ता था। उसका पुरोहित यही ध्यान कर रहा था कि जब जाट का बुड्ढा बाप मरने लगेगा तब इस गाय का सङ्कल्प करा लूंगा। कुछ दिनों में दैवयोग से

उसके बाप का मरण समय आया। जीभ बन्द हो गई और खाट से नीचे उतार भूमि पर ले लिया अर्थात् प्राण छोड़ने का समय आ पहुंचा। जाट के बहुत-से सम्बन्धी उपस्थित थे। उस समय पोप जी ने पुकारा—"लो यजमान! इसके हाथ से गोदान कराओ।"

जाट दश रुपये निकाल, पिता के हाथ में रखकर बोला—"पढ़ो सङ्कल्प!"

पोप जी बोले—“वाह! क्या बाप वारम्वार मरता है? साक्षात् गाय को लाओ, वह दूध भी देती हो, बुड्ढी न हो, और सब प्रकार उत्तम हो।"

जाट जी—"एक ही गाय हमारे पास है, उसके विना हमारे लड़के-बालों का निर्वाह नहीं हो सकता। उसको न दूंगा। लो, ये वीस रुपये का सङ्कल्प पढ़ दो; और इन रुपयों से तुम दूसरी दुधार गाय ले लेना।"

पोप जी—“वाह जी वाह!! तुम अपने बाप से भी गाय को अधिक समझते हो? अपने पिता को वैतरणी नदी में डुबाकर, दुःख देना चाहते हो? तुम अच्छे सुपुत्र हुए?"

तब तो पोप जी की ओर सब कुटुम्बी हो गये; क्योंकि उन सबको पहले से ही पोप जी ने बहका रक्खा था और उस समय भी इशारा कर दिया। सबने मिलकर हठ से उसी गाय का दान उस पोप जी को दिला दिया।

उस समय जाट कुछ भी न बोला। उसका पिता मर गया। पोप जी गाय, बछड़ा और दूध दोहने की बटलोई लेकर, घर में जा, गाय-बछड़े को बांध, बटलोई को धर, यजमान के घर आये, और मृतक को श्मशान में ले जा, दाहकर्म किया। वहाँ भी कुछ-कुछ पोपलीला चलाई। पश्चात् दशगात्र सपिण्डी कराने आदि में भी उसको मूंडा। महाब्राह्मणों ने भी लूटा, भुक्खड़ों ने भी बहुत-सा माल पेट में भरा। जब तक सब क्रियायें हुईं, तब तक जाट ने जिस-किसी के घर से दूध माँग-मूँग निर्वाह किया। चौदहवें दिन प्रातःकाल पोप जी के घर गया। देखा तो गाय को दुह, बटलोई भर, पोप जी की उठने की तैयारी थी, इतने में ही जाट जी पहुँचे। पोप जी ने कहा—"आइये, बैठिये!"

जाट जी—"तुम भी इधर आओ।"

पोप जी—"अच्छा दूध धर आऊँ।"

जाट जी—"नहीं, दूध की बटलोई इधर लाओ।" पोप जी जा, बटलोई सामने धर, बैठे।

जाट जी—"तुम बड़े झूठे हो।"

पोप जी—"क्या झूठ किया?"

जाट जी—"कहो, तुमने गाय किसलिये ली थी?"

पोप जी—''तुम्हारे बाप के वैतरणी नदी तरने के लिये।"

जाट जी—"फिर तुमने वैतरणी के किनारे गाय क्यों न पहुँचाई? हम तुम्हारे भरोसे पर रहे और तुम अपने घर बांध बैठे। न जाने मेरे बाप ने वैतरणी में कितने गोते खाये होंगे?"

पोप जी—“नहीं-नहीं, वहाँ इस दान के पुण्य के प्रभाव से दूसरी गाय बन गई और तुम्हारे बाप को पार उतार दिया।"

जाट जी—"वैतरणी नदी यहाँ से कितनी दूर और किधर की ओर है?"

पोपजी—“अनुमान से तीस करोड़ कोश दूर है, क्योंकि पचास कोटि योजन पृथिवी है और दक्षिण-नैर्ऋत दिशा में वैतरणी नदी है।"

जाट जी—"इतनी दूर से तुम्हारी चिट्ठी वा तार का समाचार गया हो [और] उसका उत्तर आया हो कि वहां पुण्य की गाय बन गई [और उसने] अमुक के पिता को पार उतार दिया, [तो] दिखलाओ?"

पोप जी—"हमारे पास **'गरुडपुराण'** के लेख के विना डाक वा तारवर्की दूसरी कोई नहीं।"

जाट जी—"इस गरुडपुराण को हम सच्चा कैसे मानें?"

पोप जी—"जैसे सब मानते हैं।"

जाट जी—"यह पुस्तक तुम्हारे पुरुषाओं ने तुम्हारी जीविका के लिये बनाया है; क्योंकि पिता को अपने पुत्रों के विना कोई प्रिय नहीं। जब मेरा पिता मेरे पास चिट्ठी-पत्री वा तार भेजेगा तभी मैं वैतरणी के किनारे गाय पहुँचा दूंगा और उनको पार उतार, पुनः गाय को घर में ले आ, दूध को मैं और मेरे लड़के-बाले पीया करेंगे। लाओ दूध की भरी हुई बटलोई।"

गाय-बछड़ा लेकर जाट जी अपने घर को चले।

पोप जी—"तुम दान देकर लेते हो, तुम्हारा सत्यानाश हो जायगा।"

जाट जी—"चुप रहो! नहीं तो तेरह दिन तक दूध के विना जितना दुःख हमने पाया है, सब कसर निकाल दूंगा।"

तब पोप जी चुप रहे और जाट जी गाय-बछड़ा ले, अपने घर पहुँचे। **जब ऐसे ही जाट जी जैसे पुरुष हों तो पोपलीला संसार में न चले।**

[दशगात्र-सपिण्डीकरण की समीक्षा]

जो ये लोग कहते हैं कि दशगात्र के पिण्डों से दश अङ्ग, सपिण्डी करने से शरीर के साथ जीव का मेल होके, अङ्गुष्ठमात्र शरीर बनके, पश्चात्

यमलोक को जाता है, तो मरते समय यमदूतों का आना व्यर्थ होता है। त्रयोदशाह के पश्चात् आना चाहिये। जो शरीर बन जाता हो तो अपनी स्त्री, सन्तान और मित्रों के मोह से क्यों नहीं आ जाता?

[पोपजी का स्वर्ग]

प्रश्न—स्वर्ग में कुछ भी नहीं मिलता, जो दान किया जाता है, वही वहाँ मिलता है। इसलिये सब दान करने चाहिये।

उत्तर—उस तुम्हारे स्वर्ग से यही लोक अच्छा है, जिसमें धर्मशालायें हैं, लोग दान देते हैं, इष्ट-मित्र और जाति में खूब निमन्त्रण होते हैं, अच्छे-अच्छे वस्त्र मिलते हैं, तुम्हारे कहने प्रमाणे स्वर्ग में कुछ भी नहीं मिलता है। ऐसे निर्दय, कृपण, कंगले स्वर्ग में पोप जी जाके खराब होवें। वहां भले मनुष्यों का क्या काम?

[यम-यमलोक-धर्मराज क्या हैं?]

प्रश्न—जब तुम्हारे कहने से यमलोक और यम नहीं हैं, तो मरकर जीव कहाँ जाता है और इनका न्याय कौन करता है?

उत्तर—तुम्हारे 'गरुडपुराण' का कहा तो अप्रमाण है। परन्तु जो वेदोक्त है कि—

"**यमेन=वायुना॥**" [ऋ० भाष्य ७।३३ । १२],

"**सत्यराजन्॥**" [यजु० भाष्य २०।४]

इत्यादि वेदवचनों से निश्चय है कि **'यम'** नाम वायु का है। शरीर छोड़ **'वायु'** के साथ अन्तरिक्ष में जीव रहते हैं; और जो सत्यकर्त्ता, पक्षपातरहित परमात्मा **'धर्मराज'** है, वही सबका न्याय करता है।

[दान के पात्र और अपात्र]

प्रश्न—तुम्हारे कहने से गोदानादि किसी को न देना और न कुछ दानपुण्य करना चाहिये, ऐसा सिद्ध होता है।

उत्तर—यह तुम्हारा कहना सर्वथा व्यर्थ है; क्योंकि सुपात्रों को, परोपकारियों को परोपकारार्थ सोना, चाँदी, हीरा, मोती, माणिक, अन्न, जल, स्थान, वस्त्र, गाय आदि दान अवश्य करना उचित है, किन्तु कुपात्रों को कभी न देना चाहिये।

प्रश्न—कुपात्र और **सुपात्र** का लक्षण क्या है?

उत्तर—जो छली, कपटी, स्वार्थी, विषयी, काम-क्रोध-लोभ-मोह से युक्त, परहानि करनेवाले, लम्पट, मिथ्यावादी, अविद्वान्, कुसङ्गी, आलसी, **जो कोई दाता हो उसके पास वारम्वार माँगना**, धरना देना, 'ना' किये पश्चात् भी हठ से माँगते जाना, सन्तोष न होना, जो न दे उसकी निन्दा, शाप [देना], गालि-प्रदानादि करना, अनेक वार जो सेवा करे और एक वार न करे तो उसका शत्रु बन जाना, ऊपर से साधु-वेश बना लोगों को बहकाकर ठगना और अपने पास पदार्थ हो, तो भी 'मेरे पास कुछ भी नहीं है' कहना, सबकी खुशामद करना, रात-दिन भीख

माँगने में ही प्रवृत्त रहना, निमन्त्रण दिये पर खूब भांग आदि मादक द्रव्य खा-पीकर बहुत-सा पराया पदार्थ खाना, मस्त होकर पागल वा प्रमादी होना, सत्य-मार्ग का विरोध और झूठ-मार्ग में अपने प्रयोजनार्थ चलना, **अपने चेलों को अपनी ही सेवा का उपदेश करना, अन्य योग्य पुरुषों की सेवा नहीं करना।** सद्विद्यादि प्रवृत्ति के विरोधी, जगत् के व्यवहार अर्थात् स्त्री, पुरुष, माता, पिता, सन्तान, राजा, प्रजा, इष्टमित्रों में अप्रीति कराना कि 'ये सब असत्य हैं, जगत् भी मिथ्या है', इत्यादि दुष्ट उपदेश करना आदि **'कुपात्रों'** के लक्षण हैं।

और जो ब्रह्मचारी, जितेन्द्रिय, वेदादिविद्या के पढ़ने-पढ़ाने-हारे, सुशील, सत्यवादी, परोपकारप्रिय, पुरुषार्थी, उदार, विद्या-धर्म में निरन्तर उन्नति करनेहारे, धर्मात्मा, शान्त, निन्दा-स्तुति में हर्ष-शोकरहित, निर्भय, उत्साही, योगी, ज्ञानी, सृष्टिक्रम-वेदाज्ञा-ईश्वर के गुण-कर्म- स्वभावानुकूल वर्तमान करनेहारे, न्याय की रीतियुक्त, पक्षपातरहित, सत्योपदेश और सत्यशास्त्रों के पढ़ने-पढ़ानेहारों के परीक्षक, किसी की खुशामद न करें, प्रश्नों के ठीक-ठीक समाधानकर्त्ता, अपने आत्मा के तुल्य अन्य का भी सुख-दुःख, हानि-लाभ समझनेवाले, अविद्यादि क्लेश-हठ-दुराग्रह-अभिमान- रहित, अमृत के तुल्य अपमान और मान को विष के तुल्य समझनेवाले, सन्तोषी, जो कोई प्रीति से जितना देवे उतने से ही प्रसन्न, एक वार आपत्काल में मांगे भी तो न देने वा वर्जने पर भी दुःख वा बुरी चेष्टा न करना, वहाँ से झट लौट जाना [और] उसकी निन्दा न करना, सुखियों के साथ मित्रता, दुःखियों पर करुणा [करना],

पुण्यात्माओं से आनन्द और पापियों से उपेक्षा अर्थात् राग-द्वेषरहित रहना, सत्यमानी, सत्यवादी, सत्यकारी, निष्कपट, ईर्ष्या-द्वेषरहित, गम्भीराशय, सत्पुरुष, धर्म से युक्त और सर्वथा दुष्टाचार से रहित, अपने तन-मन-धन को परोपकार में लगानेवाले, पराये सुख के लिये अपने प्राणों के भी समर्पितकर्त्ता, इत्यादि शुभलक्षणयुक्त **'सुपात्र'** होते हैं; **परन्तु दुर्भिक्षादि आपत्काल में अन्न, जल, वस्त्र, औषध, पथ्य और स्थान के अधिकारी सब प्राणी मात्र होते हैं।**

[दान-दाताओं के तीन भेद]

प्रश्न—दाता कितने प्रकार के होते हैं?

उत्तर—तीन प्रकार के—उत्तम, मध्यम और निकृष्ट। **'उत्तम दाता'** उसको कहते हैं जो देश, काल और पात्र को जानकर, सत्यविद्या, धर्म की उन्नतिरूप परोपकारार्थ दान देवे। **'मध्यम'** वह है जो कीर्त्ति वा स्वार्थ के लिये दान करे। **'नीच'** वह है कि जो अपना वा पराया कुछ उपकार न कर सके, किन्तु वेश्यागमनादि वा भांड-भाटों आदि को देवे, देते समय तिरस्कार-अपमानादि कुचेष्टा भी करे, पात्र-कुपात्र का कुछ भी भेद न जाने, किन्तु **'सब अन्न बारह पसेरी'** बेचनेवालों के तुल्य विवाद-लड़ाई, दूसरे धर्मात्मा को दुःख देकर [अपने] सुखी होने के लिये दिया करे, वह **'अधम'** दाता है। अर्थात् जो परीक्षापूर्वक विद्वान् धर्मात्माओं का सत्कार करे वह **'उत्तम'**, और कुछ परीक्षा करे वा न करे परन्तु जिसमें अपनी प्रशंसा हो उसको करे वह **'मध्यम'**, और जो अन्धाधुन्ध परीक्षारहित निष्फल दान दिया करे वह **'नीच'** दाता कहाता है।

[दान का फल कब कहाँ और किसके द्वारा?]

प्रश्न—दान के फल यहाँ होते हैं, वा परलोक में?

उत्तर—सर्वत्र होते हैं।

प्रश्न—स्वयं होते हैं, वा कोई फल देनेवाला है?

उत्तर—फल देनेवाला ईश्वर है। जैसे कोई चोर-डाकू स्वयं बन्दीघर में जाना नहीं चाहता, राजा उसको अवश्य भेजता है। वह धर्मात्माओं के सुख की रक्षा करता, [कर्मफल] भुगाता, डाकू आदि से बचाकर उनको सुख में रखता है, वैसे ही परमात्मा सबको पाप-पुण्य के दुःख और सुखरूप फलों को यथावत् भुगाता है।

[पुराण और तन्त्र वेद-विरोधी हैं]

प्रश्न—जो ये **'गरुडपुराण'**-आदि ग्रन्थ हैं, वे वेदार्थ वा वेद की पुष्टि करनेवाले हैं, वा नहीं?

उत्तर—नहीं, किन्तु वेद के विरोधी और उलटे चलते हैं; तथा तन्त्र भी वैसे ही हैं। जैसे कोई मनुष्य एक का मित्र, सब संसार का शत्रु हो, वैसे ही पुराणों और तन्त्रों का माननेवाला पुरुष होता है; क्योंकि एक दूसरे से विरोध करानेवाले ये ग्रन्थ हैं। इनका मानना किसी मनुष्य का काम नहीं, किन्तु इनको मानना पशुता है।

[एकदश्यादि व्रत-उपवासों की समीक्षा]

देखो, **'शिवपुराण'** में त्रयोदशी, सोमवार; **'आदित्यपुराण'** में रवि; **'चन्द्रखण्ड'** में सोम; ग्रहवालों के मङ्गल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनैश्चर, राहु, केतु; वैष्णव एकादशी; वामन की द्वादशी; नृसिंह वा अनन्त की चतुर्दशी; चन्द्रमा की पूर्णमासी; दिक्पालों की दशमी; दुर्गा की नवमी; वसुओं की अष्टमी, मुनियों की सप्तमी; कार्त्तिकेय स्वामी की षष्ठी; नाग की पञ्चमी; गणेश की चतुर्थी; गौरी की तृतीया; अश्विनीकुमार की द्वितीया; आद्यादेवी की प्रतिपदा और पितरों की अमावस्या; पुराणरीति से उपवास करने के दिन हैं। और सर्वत्र यही लिखा है कि जो मनुष्य इन वार और तिथियों में अन्न-पान ग्रहण करेगा वह नरकगामी होगा। अब पोप और पोप जी के चेलों को चाहिये कि किसी वार अथवा किसी तिथि में भोजन न करें; क्योंकि जो भोजन वा पान किया तो वे नरकगामी होंगे।

अब **'निर्णयसिन्धु' 'धर्मसिन्धु' 'व्रतार्क'** आदि ग्रन्थ जो कि प्रमादी लोगों के बनाये हैं, उन्होंने एक-एक व्रत की ऐसी दुर्दशा की है कि जैसे एकादशी को शैव दशमीविद्धा, [मानते हैं], कोई द्वादशी में एकादशी व्रत करते हैं अर्थात् क्या बड़ी विचित्र पोपलीला है कि भूखे मरने में भी वाद-विवाद ही करते हैं। जिसने एकादशी का व्रत चलाया है, उसमें अपना स्वार्थपन ही है और दया कुछ भी नहीं। कहते हैं—

"एकादश्यामन्ने पापानि वसन्ति॥"

[पद्मपुराण, ब्रह्मखण्ड अ० १५, श्लो० ११ तथा एकादशी माहात्म्य]

=जितने पाप हैं, सब एकादशी के दिन अन्न में वसते हैं। इस पोप जी से पूछना चाहिये कि किसके पाप उसमें वसते हैं? तेरे वा तेरे पिता आदि के? जो सबके सब पाप एकादशी में जा वसे तो एकादशी के दिन किसी को दुःख न रहना चाहिये। ऐसा तो नहीं होता किन्तु उलट क्षुधा आदि से दुःख होता है। **दुःख पाप का फल है। इससे भूखा मरना पाप है।**

[एकादशी-व्रत के माहात्म्य की समीक्षा]

इसका बड़ा माहात्म्य बनाया है। जिसकी कथा बाँचके बहुत ठगे जाते हैं, उसमें एक गाथा है कि—

ब्रह्मलोक में एक वेश्या थी। उसने कुछ अपराध किया। उसको शाप हुआ—"तू पृथिवी पर गिर।" उसने स्तुति की, 'मैं पुनः स्वर्ग में क्योंकर आ सकूँगी?' उस [शापदाता ने] कहा—"जब कभी एकादशी के व्रत का फल तुझे कोई देगा, तभी तू स्वर्ग में आ जायगी।" वह विमान सहित किसी नगर में गिर पड़ी। वहाँ के राजा ने उससे पूछा कि "तू कौन है?" तब उसने सब वृत्तान्त कह सुनाया और कहा कि "जो कोई मुझको एकादशी का फल अर्पण करे, तो मैं फिर भी स्वर्ग को जा सकती हूँ।" राजा ने नगर में खोज कराई। कोई भी एकादशी का व्रत करनेवाला न मिला। किन्तु एक दिन किसी शूद्र स्त्री-पुरुष में लड़ाई हुई थी। क्रोध से स्त्री दिन-रात भूखी रही थी। दैवयोग से उस दिन एकादशी ही थी। उसने कहा कि “मैंने एकादशी जानकर तो व्रत नहीं किया, अकस्मात् उस दिन भूखी रह गई थी।", ऐसा राजा के सिपाहियों से कहा। तब तो सिपाही उसको राजा के सामने ले आये। उससे राजा ने कहा कि "तू इस विमान

को छू।" उसने छूआ, तो उसी समय विमान ऊपर को उड़ गया। यह तो विना जाने एकादशी के व्रत का फल है, जो जानके करे तो उसके फल का क्या पारावार है!!!

वाह रे आँख के अन्धे लोगो! जो यह बात सच्ची हो तो हम एक पान की बीड़ी जो कि स्वर्ग में नहीं होती, भेजना चाहते हैं। सब एकादशीवाले अपना फल दे दो। जो एक पानबीड़ी ऊपर को चली जायगी, तो पुनः लाखों-करोड़ों-पान वहाँ भेजेंगे और हम भी एकादशी किया करेंगे; और जो ऐसा न होगा तो तुम लोगों को इस भूखा मरनेरूप आपत्काल से बचावेंगे।

इन चौबीस एकादशियों का नाम पृथक्-पृथक् रक्खा है। किसी का 'धनदा', किसी का 'कामदा', किसी का 'पुत्रदा' और किसी का 'निर्जला'। बहुत से दरिद्र, बहुत से कामी और बहुत से निर्वंशी लोग एकादशी करते बूढ़े हो गये और मर भी गये परन्तु धन, कामना और पुत्र प्राप्त न हुआ। और ज्येष्ठ महीने के शुक्लपक्ष में कि जिस समय एक घड़ी-भर जल न पावे तो मनुष्य व्याकुल हो जाता है, व्रत करनेवालों को महादुःख प्राप्त होता है। विशेषकर बङ्गाले में सब विधवा स्त्रियों की एकादशी के दिन बड़ी दुर्दशा होती है। **इस निर्दयी कसाई को लिखते समय कुछ भी मन में दया नहीं आई, नहीं तो 'निर्जला' का नाम 'सजला' और पौष महीने की एकादशी का नाम 'निर्जला' रख देता तो भी कुछ अच्छा होता। परन्तु इस पोप को दया से क्या काम?**

'कोई जीवो वा मरो, पोप जी का पेट पूरा भरो।' गर्भवती वा सद्योविवाहिता स्त्री, लड़कों वा युवा पुरुषों को तो कभी उपवास न करना चाहिये, परन्तु किसी को करना भी हो तो जिस दिन अजीर्ण हो, क्षुधा न लगे, उस दिन शर्करावत् (शर्बत) वा दूध पीकर रहना चाहिये। जो भूख में नहीं खाते और जो विना भूख के भोजन करते हैं, वे दोनों रोगसागर में गोते खा दुःख पाते हैं। इन प्रमादियों के कहने-लिखने का प्रमाण कोई भी न करे।

[लुप्त वेदशाखाओं में मूर्तिपूजा वा तीर्थों के होने की कल्पना]

अब **गुरुशिष्यमन्त्रोपदेश** और **मतमतान्तरों के चरित्रों** का वर्तमान कहते हैं—

[प्रश्न—] मूर्त्तिपूजक सम्प्रदायी लोग प्रश्न करते हैं कि वेद अनन्त हैं। '**ऋग्वेद'** की २१, **'यजुर्वेद'** की १०१, **'सामवेद'** की १००० और **'अथर्ववेद'** की ९ शाखायें हैं। इनमें से थोड़ी-सी शाखायें मिलती है, शेष लुप्त हो गई हैं, उन्हीं में मूर्ति-पूजा और तीर्थों का प्रमाण होगा। जो न होता तो पुराणों में कहाँ से आता? जब कार्य देखकर कारण का अनुमान होता है, तब पुराणों को देखकर मूर्त्तिपूजा में क्या शंका है?

उत्तर—जैसे शाखा जिस वृक्ष की होती है उसीके सदृश हुआ करती है, विरुद्ध नहीं। चाहे शाखायें छोटी-बड़ी हों परन्तु उनमें विरोध नहीं हो सकता। वैसे ही जितनी शाखायें मिलती हैं, जब इनमें पाषाणादि-मूर्त्ति और जल-स्थल-विशेष तीर्थों का प्रमाण नहीं मिलता तो उन लुप्त

शाखाओं में भी नहीं था। और जो चार वेद पूर्ण मिलते हैं, उनसे विरुद्ध शाखायें कभी नहीं हो सकतीं, और जो विरुद्ध हैं उनको शाखायें कोई भी सिद्ध नहीं कर सकता। जब यह बात है तो 'पुराण' वेदों की शाखायें नहीं किन्तु सम्प्रदायी लोगों ने परस्परविरुद्ध रूप ग्रन्थ बना रक्खे हैं। वेदों को तुम परमेश्वरकृत मानते हो वा मनुष्यकृत?

[प्रश्नकर्त्ता—] परमेश्वरकृत।

[उत्तर—] जब परमेश्वरकृत मानते हो तो आश्वलायनादि ऋषि-मुनियों के नाम से प्रसिद्ध ग्रन्थों को वेद क्यों मानते हो? जैसे डाली और पत्तों के देखने से पीपल, बड़ और आम्र आदि वृक्षों की पहचान होती है, वैसे ही ऋषि-मुनियों के किये चारों ब्राह्मण, अंग, उपाङ्ग और उपवेद आदि से वेदार्थ पहचाना जाता है, इसीलिये इन ग्रन्थों को शाखा माना है। **जो वेदों से विरुद्ध है उसका प्रमाण और अनुकूल का अप्रमाण नहीं हो सकता।**

जो तुम अदृष्ट शाखाओं में मूर्त्ति आदि के प्रमाण की कल्पना करोगे तो जब कोई ऐसा पक्ष करेगा कि लुप्त शाखाओं में वर्णाश्रम व्यवस्था उलटी अर्थात् अन्त्यज और शूद्र का नाम ब्राह्मणादि और ब्राह्मणादि का नाम शूद्र, अन्त्यजादि; अगमनीया गमनीया; अकर्त्तव्य कर्त्तव्य; मिथ्याभाषणादि धर्म, सत्यभाषणादि अधर्म आदि लिखा होगा, तो तुम उसको वही उत्तर दोगे जो कि हमने दिया। अर्थात् वेद और प्रसिद्ध

शाखाओं में जैसा ब्राह्मणादि का नाम ब्राह्मणादि और शूद्रादि का नाम शूद्रादि लिखा है, वैसा ही अदृष्ट शाखाओं में भी मानना चाहिये, नहीं तो वर्णाश्रम व्यवस्था आदि सब अन्यथा हो जायेंगे।

भला, जैमिनि, व्यास और पतञ्जलि के समय पर्यन्त तो सब शाखायें विद्यमान थी वा नहीं? यदि थी तो तुम कभी निषेध न कर सकोगे, और जो कहो कि नहीं थी तो फिर शाखाओं के होने का क्या प्रमाण है? देखो, जैमिनि ने **'मीमांसा'** में सब **'कर्मकाण्ड'**, पतञ्जलि मुनि ने **'योगशास्त्र'** में सब **'उपासनाकाण्ड'** और व्यास मुनि ने **'शारीरक-सूत्रों'** में सब **'ज्ञानकाण्ड'** वेदानुकूल लिखा है। उनमें पाषाणादि-मूर्त्तिपूजा वा प्रयागादि तीर्थों का नाम तक भी नहीं लिखा। लिखें कहाँ से? कहीं वेदों में होता तो लिखे विना कभी नहीं छोड़ते। इसलिये लुप्त शाखाओं में भी इन मूर्त्तिपूजादि का प्रमाण नहीं था।

[शाखायें वेद नहीं हैं]

ये सब शाखायें वेद नहीं है, क्योंकि इनमें ईश्वरकृत वेदों के प्रतीक धरके व्याख्या और संसारी जनों के इतिहासादि लिखे हैं, ये वेद में कभी नहीं हो सकते। वेदों में तो केवल मनुष्यों को विद्या का उपदेश किया है। किसी मनुष्य का नाममात्र भी नहीं। इसलिये मूर्त्तिपूजा का सर्वथा खण्डन है।

[मूर्त्तिपूजा से श्रीरामचन्द्रादि की निन्दा और उपहास]

देखो, मूर्तिपूजा से श्री रामचन्द्र, श्री कृष्ण, नारायण और शिव आदि की बड़ी निन्दा और उपहास होता है। सब कोई जानते हैं कि वे बड़े महाराजाधिराज और उनकी स्त्री सीता, रुक्मिणी, लक्ष्मी, पार्वती आदि

महाराणियां थीं, परन्तु जब उनकी मूर्त्तियाँ मन्दिर आदि में रखके पुजारी लोग उनके नाम से भीख माँगते हैं अर्थात् उनको भिखारी बनाते हैं कि "आओ महाराज! राजाजी! सेठ-साहूकारो! दर्शन कीजिये, बैठिये, चरणामृत लीजिये, कुछ भेंट चढाइये। महाराज! सीता-राम, रुक्मिणी-कृष्ण वा राधा-कृष्ण, लक्ष्मी-नारायण और पार्वती-महादेव जी को तीन दिन से 'बालभोग, वा 'राजभोग' अर्थात् जलपान वा खानपान भी नहीं मिला है। आज इनके पास कुछ भी नहीं है। सीता आदि को नथुनी आदि, राणी जी वा सेठानी जी! बनवा दीजिये। अन्न आदि भेजो तो राम, कृष्णादि को भोग लगावें। वस्त्र सब फट गये हैं। मन्दिर के कोने सब गिर पड़े हैं। ऊपर से चूता है, और दुष्ट चोर, जो कुछ था, उठा ले गये। कुछ ऊंदरों ने काट-कूट डाले। देखिये! एक दिन ऊँदरों ने ऐसा अनर्थ किया कि इनकी आँख भी निकाल के भाग गये। अब हम चाँदी की आँख न बनवा सके, इसलिये कौड़ी की लगा दी है।"

रामलीला और रासमण्डल भी करवाते हैं। सीता-राम, राधा-कृष्ण नाच रहे हैं, राजा और महन्त आदि उनके सेवक आनन्द में बैठे हैं! मन्दिर में सीता, रामादि खड़े और पुजारी वा महन्त जी आसन अथवा गद्दी-तकिया लगा बैठते हैं। महा-गर्मी में भी ताला लगा भीतर बन्द कर देते हैं और आप सुन्दर वायु में पलङ्ग बिछा सोते हैं। बहुत-से पुजारी अपने नारायण को डब्बी में बन्द कर ऊपर से कपड़े आदि बाँध गले में लटका लेते हैं, जैसे कि वानरी अपने बच्चे को गले में लटका लेती है, वैसे पुजारियों के गले में भी लटकते हैं। जब कोई मूर्त्ति को तोड़ता है तब 'हाय-हाय' कर

छाती पीट बकते हैं कि सीता-राम जी, राधा-कृष्ण जी और पार्वती-शिव जी को दुष्टों ने तोड़ डाला! अब दूसरी मूर्त्ति मँगवाकर जो कि अच्छे शिल्पी ने संगमरमर की बनाई हो, स्थापित कर पूजनी चाहिये, नारायण को घी के विना भोग नहीं लगता, बहुत नहीं तो थोड़ा-सा अवश्य भेज देना, इत्यादि बातें इन पर ठहराते हैं। और रासमण्डल वा रामलीला के अन्त में राधा-कृष्ण वा सीता-राम से भीख मंगवाते हैं; जहाँ मेला-ठेला होता है, वहाँ [किसी] छोकरे पर मुकुट धर कन्हैया बना, मार्ग में बैठाकर भीख मंगवाते हैं; इत्यादि बातों को आप लोग विचार लीजिये कि कितने बड़े शोक की बातें हैं! **भला, कहो तो, सीता-राम-आदि ऐसे दरिद्र और भिक्षुक थे? यह उनका उपहास और निन्दा नहीं तो क्या है? इससे अपने माननीय पुरुषों की बड़ी निन्दा होती है।**

भला, जिस समय ये विद्यमान थे, उस समय सीता, रुक्मिणी, लक्ष्मी, पार्वती को सड़क पर वा किसी मकान में खड़ी कर पुजारी कहते कि 'आओ इनका दर्शन करो और कुछ भेंट-पूजा धरो' तो सीता-राम आदि इन मूर्खों के कहने से ऐसा काम कभी न करते और न करने देते। जो कोई ऐसा उपहास उनका करता, तो उसको विना दण्ड दिये कभी न छोड़ते? **हाँ, जब उनसे दण्ड न पाया, तो पुजारियों को इनके कर्मों ने मूर्त्तिविरोधियों से बहुत-सी 'प्रसादी' दिला दी और अब भी मिलती है और जब तक इस कर्म को न छोड़ेंगे तब तक मिलेगी भी। इसमें क्या संदेह है कि जो आर्यावर्त्त की प्रतिदिन महाहानि, पाषाणादि-मूर्त्तिपूजकों का पराजय इन्हीं कर्मों से होता है; क्योंकि पाप का फल**

दुःख है। इन्हीं पाषाणादि-मूर्त्तियों के विश्वास से बहुत-सी हानि हो गई, जो न छोड़ेंगे तो प्रतिदिन अधिक-अधिक होती जायगी।

[वाममार्गियों के मन्त्रों और मारण-मोहनादि की समीक्षा]

इनमें से **वाममार्गी** बड़े-भारी अपराधी हैं। जब वे चेला करते हैं तब साधारण को—

दं दुर्गायै नमः। भं भैरवाय नमः। ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे॥

इत्यादि मन्त्रों का उपदेश कर देते हैं और बंगाले में विशेष करके एकाक्षरी मन्त्रोपदेश करते हैं,

जैसा—**"ह्रीं श्री, क्लीं"** इत्यादि।

[ऊह्य-श्रीकण्ठशिवपण्डितरचित शावरतन्त्र बं० प्रकी० प्र० ४४]

और धनाढ्यों का पूर्णाभिषेक करते हैं। ऐसे ही दश महाविद्याओं के मन्त्र [हैं]—

ह्लां ह्लीं ह्लूं वगलामुख्यै फट् स्वाहा॥

[ऊह्य—शावरतन्त्र ४१]

कहीं-कहीं—हूं फट् स्वाहा॥

[ऊह्य—कामरत्न तन्त्र, बीजमन्त्र ४]

और मारण, मोहन, उच्चाटन, विद्वेषण, वशीकरण, [शान्ति] आदि प्रयोग करते हैं। सो मन्त्र से तो कुछ भी नहीं होता किन्तु क्रिया से सब कुछ करते हैं। जब किसी को मारने का प्रयोग करते हैं तब इधर करानेवाले से धन लेके आटे वा मिट्टी का पुतला, जिसको मारना चाहते हैं, उसका बनाते हैं। उसकी छाती, नाभि, कण्ठ में छुरे प्रवेश कर देते हैं। आँख, हाथ, पग में कीलें ठोकते हैं। उसके ऊपर भैरव वा दुर्गा की मूर्त्ति बना, हाथ में त्रिशूल दे, उसके हृदय पर लगाते हैं। एक वेदी बनाकर मांस आदि का होम करने लगते हैं और उधर दूत आदि भेजके उसको विष आदि से मारने का उपाय करते हैं। जो अपने पुरश्चरण के बीच में उसको मार डाला, तो अपने को 'भैरव-देवी की सिद्धि'-वाले बतलाते हैं। **'भैरवो भूतनाथश्च'** इत्यादि का पाठ करते हैं—

मारय-मारय, उच्चाटय-उच्चाटय, विद्वेषय-विद्वेषय, छिन्धि-छिन्धि, भिन्धि-भिन्धि, वशीकुरु-वशीकुरु, खादय-खादय, भक्षय-भक्षय, त्रोटय-त्रोटय, नाशय-नाशय, मम शत्रून् वशीकुरु, मम शत्रून् वशीकुरु, हूं फट् स्वाहा॥

[ऊह्य-कामरत्नतन्त्र, उच्चाटन प्रकरण, मं० ५-७]

इत्यादि मन्त्र जपते, मद्य-भांग खूब पीते, मांसादि खाते, भृकुटी के बीच में सिन्दूर रेखा देते, **कभी-कभी 'काली' आदि के लिये किसी आदमी को पकड़, मार, होमकर, कुछ-कुछ उसका मांस भी खाते हैं। जो कोई भैरवीचक्र में जावे, मद्य-मांस न पीवे, न खावे तो उसको मार**

होम कर देते हैं। उनमें से जो **'अघोरी'** होता है, वह मृतमनुष्य का भी मांस खाता है, **'अजरी-बजरी'** करनेवाले विष्ठा-मूत्र भी खाते-पीते हैं।

[चोलीमार्गो और बीजमार्गियों की लीला]

एक **'चोली मार्गी'** और [दूसरे] **'बीजमार्गी'** भी होते हैं। चोलीमार्गवाले एक गुप्त स्थान वा भूमि में एक स्थान बनाते हैं। वहाँ सबकी स्त्रियाँ, पुरुष, लड़का, लड़की, बहिन, माता, पुत्रवधू आदि सब इकट्ठे हो सब लोग मिल-मिलाकर मांस खाते, मद्य पीते, एक स्त्री को नङ्गी कर, उसकी गुप्त इन्द्रिय की पूजा सब पुरुष करते, उसका नाम 'दुर्गादेवी' धरते हैं। एक पुरुष को नङ्गा कर उसकी उपस्थ-इन्द्रिय की पूजा सब स्त्रियाँ करती हैं। जब मद्य पी-पी के उन्मत्त हो जाते हैं तब सब स्त्रियों की छाती का वस्त्र जिसको 'चोली' कहते हैं, सबके वस्त्र मिलाकर, एक बड़ी मिट्टी-की नाँद में रखके, एक-एक पुरुष उसमें हाथ डालके [एक वस्त्र निकालता है] जिसके हाथ में जिसका वस्त्र आवे, वह माता, बहिन, कन्या और पुत्रवधू क्यों न हो, उस समय के लिये वह उसकी स्त्री हो जाती है! फिर आपस में कुकर्म करते, और बहुत नशा चढ़ने से जूते आदि से लड़ते हैं। जब प्रात:काल कुछ अन्धेरे अपने-अपने घर को चले जाते हैं तब माता, माता; कन्या, कन्या; बहिन, बहिन; और पुत्रवधू, पुत्रवधू हो जाती है। और **'बीजमार्गी'** स्त्री-पुरुष के समागम पर, जल में वीर्य डाल, मिलाकर पीते हैं। ये पामर ऐसे कर्मों को मुक्ति के साधन मानते हैं। ये विद्या, विचार, सज्जनतादि रहित होते हैं।

[शैवमत का खण्डन]

प्रश्न—शैव मत-वाले तो अच्छे होते हैं?

उत्तर—अच्छे कहाँ से होते हैं? **'जैसा प्रेतनाथ वैसा भूतनाथ'।** जैसे वाममार्गी मन्त्रोपदेशादि से उनका धन हरते हैं, वैसे शैव भी **'ओं नमः शिवाय'** [लिंगपुराण १।८५] इत्यादि पञ्चाक्षरादि मन्त्रों का उपदेश करते, रुद्राक्ष और भस्म धारण करते, मिट्टी के और पाषाणादि के लिंग बनाकर पूजते, **'हर-हर', 'बं-बं'** और बकरे के शब्द के समान **'बड़-बड़-बड़'** मुख से शब्द करते हैं। उसका कारण यह कहते हैं कि **'ताली बजाने'** और **'बं-बं'** शब्द बोलने से पार्वती प्रसन्न और महादेव अप्रसन्न होता है; क्योंकि जब भस्मासुर के आगे से महादेव भागे थे तब **'बं-बं'** [शब्द बोले थे] और 'ठट्ठे की तालियाँ' बजी थीं। और **'गाल बजाने'** से पार्वती अप्रसन्न और महादेव प्रसन्न होते हैं; क्योंकि पार्वती के पिता दक्ष प्रजापति का शिर काट, आगी में डाल, उसके धड़ पर बकरे का शिर लगा दिया था। उसी की नकल में 'गाल बजाना' बकरे के शब्द के तुल्य मानते हैं। शिवरात्रि-प्रदोष का व्रत करते हैं, इत्यादि से मुक्ति मानते हैं। इसीलिये जैसे वाममार्गी भ्रान्त हैं, वैसे शैव भी। इनमें विशेषकर **कनफटे, नाथ, गिरि, पुरी, वन, आरण्य, पर्वत** और **सागर** तथा गृहस्थ भी शैव होते हैं। कोई-कोई **'दोनों घोड़ों पर चढ़ते हैं'** अर्थात् वाम और शैव दोनों मतों को मानते हैं और कितने ही वैष्णव भी रहते हैं। उनका—

अन्तःशाक्ता बहिश्शैवाः सभामध्ये च वैष्णवाः। नानारूपधराः कौला विचरन्तीह महीतले॥

यह तन्त्र का श्लोक है। [ऊह्य—कौलोपनिषत् तथा कुलार्णवतन्त्र एकादश उल्लास ११।३०]

भीतर शाक्त अर्थात् वाममार्गी, बाहर शैव अर्थात् रुद्राक्ष [और] भस्म धारण करते हैं, सभा में 'वैष्णव' कहते हैं कि हम विष्णु के उपासक हैं। ऐसे नाना प्रकार के रूप धारण करके वाममार्गी लोग पृथिवी पर विचर रहे हैं।

[वैष्णवमत का खण्डन]

प्रश्न—वैष्णव तो अच्छे हैं?

उत्तर—क्या धूड़ अच्छे हैं! जैसे वे, वैसे ये हैं। देख लो वैष्णवों की लीला! अपने को विष्णु का दास मानते हैं। उनमें से **'श्रीवैष्णव'** जो कि 'चक्राङ्कित' होते हैं, वे अपने को सर्वोपरि मानते हैं, जो कुछ भी नहीं हैं।

[ललाट में विष्णुपद-चिह्न कहाँ से आया?]

प्रश्न—क्यों कुछ भी नहीं? सब कुछ हैं। देखो, ललाट में नारायण के चरणारविन्द के सदृश तिलक और बीच में पीली रेखा 'श्री' होती है, इसी वास्ते हम **'श्रीवैष्णव'** कहाते हैं। एक नारायण को छोड़ दूसरे किसी को नहीं मानते। महादेव के लिंग का दर्शन भी नहीं करते, क्योंकि हमारे ललाट में 'श्री' विराजमान है, वह लज्जित होती है। **'आलमन्दार'** आदि स्तोत्रों के पाठ करते हैं। नारायण की मन्त्रपूर्वक पूजा करते हैं, मांस नहीं खाते, मद्य नहीं पीते, फिर अच्छे क्यों नहीं?

उत्तर—इस तिलक को **'हरिपदाकृति'**, इस पीली रेखा को **'श्री'** मानना व्यर्थ है; क्योंकि यह तो तुम्हारे हाथ की कारीगरी और ललाट का

चित्र है, जैसे हाथी का ललाट चित्र-विचित्र करते हैं। तुम्हारे ललाट में विष्णु के पद का चिह्न कहाँ से आया? क्या कोई **'वैकुण्ठ'** में जाकर विष्णु के पग का चिह्न ललाट में करा आया है?

[कपाल में श्री, और काम महादरिद्रों के]

विवेकी—और **'श्री'** जड़ है वा चेतन?

वैष्णव—चेतन है।

विवेकी—तो यह रेखा जड़ होने से **'श्री'** नहीं है। हम पूछते हैं कि **'श्री'** बनाई हुई है वा विना बनाई? जो विना बनाई है तो यह **'श्री'** नहीं, क्योंकि इसको तो तुम नित्य अपने हाथ से बनाते हो, फिर **'श्री'** नहीं हो सकती। जो तुम्हारे ललाट में **'श्री'** हो तो कितने ही वैष्णवों का मुख बुरा अर्थात् शोभारहित क्यों दीखता है? ललाट में **'श्री'** और घर-घर भीख माँगते और **'सदावर्त'** लेकर पेट भरते क्यों फिरते हो? यह बात सिरड़ी और निर्लज्जों की है कि कपाल में **'श्री'** और महादरिद्रों के काम करते हैं।

[परिकाल नामक वैष्णवभक्त डाकू की कथा]

इनमें एक **परिकाल** नामक वैष्णव भक्त था। वह चोरी-डाका मार, छल-कपट कर, पराया धन हर, [उस धन को] वैष्णवों के पास धर प्रसन्न होता था। एक समय उसको चोरी में कोई पदार्थ नहीं मिला कि जिसको लूटे। व्याकुल होकर फिरता था। नारायण ने समझा कि हमारा भक्त दुःख पाता है। सेठ जी का स्वरूप धर, अंगूठी आदि आभूषण पहन, रथ

में बैठ, सामने आये। तब तो परिकाल रथ के पास गया। सेठ से कहा—“सब वस्तु शीघ्र उतार दो, नहीं तो मार डालूंगा।" उतारते-उतारते अंगूठी उतारने में देर लगी। परिकाल ने नारायण की अंगुली काट अंगूठी ले ली। नारायण ने बड़े प्रसन्न हो चतुर्भुज शरीर बना दर्शन दिया। कहा कि "तू मेरा बड़ा प्रिय भक्त है, क्योंकि सब धन मार, लूट-चोरी कर वैष्णवों की सेवा करता है, इसलिये तू धन्य है।" फिर उसने जाकर वैष्णवों के पास सब गहने धर दिये।

एक समय परिकाल को कोई साहूकार नौकर कर जहाज में बैठाके देशान्तर में ले गया। वहाँ से जहाज में सुपारी भरी। परिकाल ने एक सुपारी तोड़ आधा टुकड़ा कर बनिये से कहा—"यह मेरी आधी सुपारी जहाज में धर दो और लिख दो कि जहाज में आधी सुपारी परिकाल की है।" बनिये ने कहा कि "चाहे तुम हजार सुपारी ले लेना।" परिकाल ने कहा—"नहीं, हम अधर्मी नहीं हैं, जो हम झूठ-मूठ लें। हमको तो आधी चाहिये।" बनिया भोला था, उसने लिख दिया। जब अपने देश में बन्दर पर जहाज आया, सुपारी उतारने की तैयारी हुई, तब परिकाल ने कहा—"हमारी आधी सुपारी दे दो।" बनिया वही आधी सुपारी देने लगा। तब परिकाल झगड़ने लगा— "मेरी तो जहाज में आधी सुपारी है, आधी बांट लूंगा।" राजपुरुषों तक झगड़ा गया। परिकाल ने बनिये का लेख दिखलाया कि इसने आधी सुपारी देनी लिखी है। बनिया बहुत-सा कहता रहा परन्तु उसने न माना। आधी सुपारी लेकर वैष्णवों के अर्पण करदी। तब तो वैष्णव बड़े प्रसन्न हुए। अब तक उस डाकू-चोर **परिकाल** की

मूर्त्ति मन्दिरों में रखते हैं। यह कथा **'भक्तमाल'** में लिखी है। बुद्धिमान् देख लें कि वैष्णव, उनके सेवक और नारायण, तीनों चोरमण्डली है वा नहीं?

यद्यपि मतमतान्तरों में कोई थोड़ा अच्छा भी होता है, तथापि उस मत में रहकर सर्वथा अच्छा नहीं हो सकता।

[वैष्णवों में अनेक भेद]

अब जैसी वैष्णवों में फूट-टूट [है, और] भिन्न-भिन्न तिलक-कण्ठी धारण करते हैं, [वह सुनो—] **'रामानन्दी'** बगल में गोपीचन्दन, बीच में लाल [रेखा]; **'नीमावत'** दोनों [ओर] पतली रेखा, बीच में काला बिन्दु; **'माध्व'** काली रेखा और **'गौड़ बङ्गाली'** कटारी के तुल्य और **'रामप्रसादवाले'** दोनों चांदला रेखा के बीच में एक सफेद गोल टीका [लगाते हैं] इत्यादि। इनका कथन [भी] विलक्षण-विलक्षण है—**'रामानन्दी'** लाल रेखा को लक्ष्मी का चिह्न नारायण के हृदय में है, और श्री कृष्णचन्द्र जी के हृदय में राधा जी विराजमान हैं: इत्यादि कथन करते हैं।

[तिलक का माहात्म्य और उसकी समीक्षा]

एक कथा **'भक्तमाल'** में लिखी है। एक मनुष्य वृक्ष के नीचे सोता था। सोता-सोता मर गया। ऊपर से काक ने विष्ठा कर दी। वह ललाट पर तिलकाकार हो गई थी। वहां यम के दूत उसको लेने आये। इतने में विष्णु के दूत भी पहुँच गये। दोनों विवाद करते थे। [यम के दूतों ने कहा] कि 'यह हमारे स्वामी की आज्ञा है, हम [इसको] यमलोक में ले जायेंगे।'

विष्णु के दूतों ने कहा कि “हमारे स्वामी की आज्ञा है वैकुण्ठ में ले जाने की। देखो! इसके ललाट में वैष्णवी तिलक है, तुम कैसे ले जाओगे?" तब तो यम के दूत चुप होकर चले गये। विष्णु के दूत सुख से उसको वैकुण्ठ में ले गये। नारायण ने उसको वैकुण्ठ में रक्खा।

देखो, जब अकस्मात् तिलक बन जाने का ऐसा माहात्म्य है, तो जो अपनी प्रीति से हाथ से तिलक करते हैं वे नरक से छूट वैकुण्ठ में जावें तो इसमें क्या आश्चर्य है!! हम पूछते हैं कि जब छोटे-से तिलक के करने से वैकुण्ठ में जावें तो सब मुख के ऊपर लेपन करने वा काला-मुख करने वा शरीर पर लेपन करने से वैकुण्ठ से भी आगे सिधार जाते हैं, वा नहीं? इससे ये सब बातें व्यर्थ हैं।

[खाखियों की लीला]

अब इनमें बहुत से **'खाखी'** लकड़े की लंगोटी लगा धूनी तापते, जटा बढ़ाते, सिद्ध का वेश कर लेते हैं। बगुले के समान ध्यानावस्थित होते हैं। गांजा, भांग, चरस के दम लगाते; लाल-सुर्ख नेत्र कर रखते; सबसे चुटकी-चुटकी अन्न, पिसान, कौड़ी, पैसे मांगते; गृहस्थों के लड़कों को बहकाकर चेले बना लेते हैं। बहुत करके मजदूर लोग इनमें होते हैं। कोई विद्या को पढ़ता हो तो उसको पढ़ने नहीं देते, कहते हैं कि—

पठितव्यं तदपि मर्त्तव्यं दन्तकटाकटेति किं कर्त्तव्यम्?

सन्तों को विद्या पढ़ने से क्या काम? क्योंकि विद्या पढ़नेवाले भी मर जाते हैं, फिर दन्त-कटाकट क्यों करना? साधुओं को **'चार धाम'** फिर-आना, सन्तों की सेवा करनी, राम जी का भजन करना, [बस, ये ही काम करने चाहियें]।

जो किसी ने मूर्खता=अविद्या की मूर्त्ति न देखी हो तो **'खाखी जी'** का दर्शन कर आवे। उनके पास जो कोई जाता है, उनको बच्चा-बच्ची कहते हैं, चाहे वे खाखी जी के बाप-मा के समान हों। जैसे खाखी जी हैं, वैसे ही **रूँखड़-सूँखड़**, **गोदड़िये** और **जमात-वाले**, **सुथरेशाही** और **अकाली, कानफटे, जोगी, औघड़** आदि सब एक-से हैं।

[एक खाकी की रोचक कथा]

एक खाखी का चेला **'स्त्रीगनेसाजन्नमें'** घोखता-घोखता कुए पर जल भरने को गया। वहाँ पण्डित बैठा था। वह उसको **'स्त्रीगनेसाजन्नमें'** घोखते देखकर बोला—"अरे साधु! अशुद्ध घोखता है, **'श्री गणेशाय नमः'** ऐसा घोख।"

उसने झट लोटा भर, गुरु जी के पास जा कहा कि "एक बम्मन मेरे घोखने को असुद्ध कहत है।" ऐसा सुनकर झट खाखी उठा, कुए पर गया, पण्डित से कहा—"तूं मेरे चेले को बहकाता है? तूं क्या पढ़ा है? देख तूं एक प्रकार का पाठ जानता है, हम तीन प्रकार का जानते हैं— **'स्त्रीगनेसाजन्नमें' 'स्त्रीगनेसायन्नमें' 'स्त्रीगनेसाय नमें।"**

पण्डित—"सुनो साधु जी! विद्या की बात बहुत कठिन है, विना पढ़े नहीं आती।"

खाखी—"चल बे, सब विद्वान् को हमने रगड़ मारे, जो भांग में घोट एक दम सब उड़ा दिये। सन्तों का घर बड़ा है, तू बाबूड़ा क्या जाने!"

पण्डित—"देखो, जो तुमने विद्या पढ़ी होती तो ऐसे **अपशब्द** क्यों बोलते? सब प्रकार का तुमको ज्ञान होता।"

खाखी—**“**अबे! तू हमारा 'गुरू' बनता है? तेरा उपदेश हम नहीं सुनते।"

पण्डित—"सुनो कहाँ से? बुद्धि ही नहीं है। उपदेश सुनने-समझने के लिये विद्या चाहिये।"

खाखी—"जो सब वेद-शास्त्र पढ़े, सन्तों को न माने, तो जानो कि वह कुछ भी नहीं पढ़ा।"

पण्डित—"हाँ, हम सन्तों की सेवा करते हैं परन्तु तुम्हारे-से हुड़दंगियों की नहीं करते। **क्योंकि 'सन्त' सज्जन, विद्वान्, धार्मिक, परोपकारी पुरुषों को कहते हैं।"**

खाखी—"देख! हम रात-दिन नंगे रहते, धूनी तापते, गांजा-चरस के सैकड़ों दम लगाते, तीन-तीन लोटे भांग पीते, गांजे-भांग-धतूरा की पत्ती की भाजी बना खाते, संखिया और अफीम भी चट निगल जाते, नशे में ग़र्क रात-दिन बे-ग़म रहते, दुनियाँ को कुछ नहीं समझते, भीख मांगकर टिक्कड़ बना खाते, रात-भर ऐसी खांसी उठती, जो पास में सोवे उसको भी निद्रा कभी न आवे, इत्यादि सिद्धियाँ और 'साधूपन' हम में है, फिर तू हमारी निन्दा क्यों करता? चेत बाबूड़े! जो हमको दिक़ करेगा, हम तुमको 'भसम' कर डालेगा।"

पण्डित—"ये सब लक्षण असाधु, मूर्ख और गवर्गण्डों के हैं, साधुओं के नहीं। सुनो! **'साध्नोति पराणि धर्मकार्याणि स साधुः'=जो धर्मयुक्त उत्तम काम करे, सदा परोपकार में प्रवृत्त हो, कोई दुर्गुण जिसमें न हो, विद्वान् [हो], सत्योपदेश से सबका उपकार करे, उसको 'साधु' कहते हैं।"**

खाखी—"चल बे! तू 'साधू' के कर्म क्या जाने? सन्तों का घर बड़ा है। किसी सन्त से अटकना नहीं। नहीं तो देख! एक 'चीमटा' उठाकर मारेगा, कपाल फुड़वा लेगा।"

पण्डित—"अच्छा खाखी! जाओ अपने आसन पर, हमसे बहुत गुस्से मत हो। जानते हो राज्य कैसा है? किसी को मारोगे तो पकड़े जाओगे,

कारावास भोगोगे, बेंत खाओगे, वा कोई तुमको भी मार बैठेगा, क्या करोगे? यह साधु का लक्षण नहीं।"

खाखी—"चल बे चेले! किस राक्षस का मुख दिखलाया।"

पण्डित—"तुमने कभी किसी महात्मा का सङ्ग नहीं किया है, नहीं तो ऐसे जड़-मूर्ख न रहते।"

खाखी—"हम आप ही महात्मा हैं। हमको किसी दूसरे की ग़रज़ नहीं।"

पण्डित—"जिनके भाग्य नष्ट होते हैं, उनकी तुम्हारी-सी बुद्धि और अभिमान होता है।"

खाखी चला गया आसन पर, और पण्डित घर को।

[बूढ़े खाखी और चेले]

जब सन्ध्या-आर्ती (आरती) हो गई तब उस खाखी को बुड्ढा समझ बहुत-से खाखी **'डण्डोत-डण्डोत'** कहते साष्टाङ्ग करके बैठे। उस खाखी ने पूछा—"अबे रामदासिये! तू क्या पढ़ा है?"

रामदास—"महाराज! मैंने **'बेस्नुसहसरनाम'** पढ़ा है।"

खाखी—"अबे गोविन्ददासिये! तू क्या पढ़ा है?"

गोविन्ददास—"मैं **'रामसतबराज'** पढ़ा हूँ, अमुक खाखी जी के पास से।"

तब रामदास बोला कि "महाराज! आप क्या पढ़े हैं?"

खाखी—"हम **'गीता'** पढ़े हैं?"

रामदास—"किसके पास?"

खाखी—"चल बे छोकरे! हम किसी को 'गुरू' नहीं करते। देख, हम **'परागराज'** में रहते थे। हमको अक्खर नहीं आता था। जब किसी लम्बी धोतीवाले पण्डित को देखता था तब **'गीता के गोटके'** में पूछता था कि इस कलंगीवाले अक्खर का क्या नाम है? ऐसे पूछता-पूछता 'अठारा' अध्याय **'गीता'** रगड़ मारी। 'गुरू' एक भी नहीं किया।"

भला, ऐसे विद्या के शत्रुओं को अविद्या घर करके ठहरे नहीं, तो कहाँ जाय?

[खाखी कुछ भी अच्छा काम नहीं करते]

ये लोग नशा, प्रमाद, लड़ना, खाना, सोना, झांझ पीटना, घण्टा-घड़ियाल-शंख बजाना, धूनी-चिता-रखनी, नहाना-धोना, सब दिशाओं में व्यर्थ घूमते-फिरने के अन्य, कुछ भी अच्छा काम नहीं करते। चाहे कोई पत्थर को भी पिघला लेवे, परन्तु इन खाखियों के आत्माओं

को बोध कराना कठिन है; क्योंकि बहुधा वे शूद्रवर्ण मजदूर, किसान, कहार आदि अपनी मजदूरी छोड़, खाख रमा के वैरागी, खाखी आदि हो जाते हैं, उनको विद्या वा सत्सङ्ग आदि का माहात्म्य नहीं जान पड़ सकता।

[भिन्न-भिन्न मन्त्र और उनका उपदेश]

इनमें से नाथों का मन्त्र **'नमः शिवाय'**, [लिंगपुराण १।८५] खाखियों का **'नृसिंहाय नमः'**, रामावतों का **'श्रीरामचन्द्राय नमः'** अथवा **'सीतारामाभ्यां नमः'**, कृष्णोपासकों का **'श्रीराधा-कृष्णाभ्यां नमः'** **'नमो भगवते वासुदेवाय'** [नारदपु० १।१६।३८-३९] और बंगालियों का **'गोविन्दाय नमः'** [है]। इन मन्त्रों को कान में पढ़ने-मात्र से शिष्य कर लेते हैं और ऐसी-ऐसी शिक्षा करते हैं, "बच्चे! तूंबे का मन्त्र पढ़ ले"—

जल पवितर सथल पवितर और पवितर कुआ।
शिव कहे सुन पार्वती तूंबा पवितर हुआ॥

[ऊह्य-रामस्नेहधर्मप्रकाश ३९० तूंबामन्त्र, रामपटल पृ० ३]

भला, ऐसे की योग्यता साधु वा विद्वान् होने अथवा जगत् के उपकार करने की कभी हो सकती है? खाखी रात-दिन लक्कड़, छाने (जंगली कंडे) जलाया करते हैं। एक महीने में कई रुपयों की लकड़ी फूँक देते हैं। जो एक महीने की लकड़ी के मूल्य से कम्बलादि वस्त्र लेलें तो शतांश धन से आनन्द में रहैं। [किन्तु] उनको इतनी बुद्धि कहां से आवे? और अपना नाम उसी धूनी में तपने से ही तपस्वी धर रक्खा है। जो इस प्रकार

तपस्वी हो सकें तो जङ्गली मनुष्य इनसे भी अधिक तपस्वी हो जावें। जो जटा बढ़ाने, राख लगाने, तिलक करने से तपस्वी हो जाय तो [इनको] सब कोई कर सके। ये ऊपर के त्यागस्वरूप और भीतर के महासंग्रही होते हैं।

[कबीरपन्थ की समीक्षा]

प्रश्न—कबीरपन्थी तो अच्छे हैं?

उत्तर—नहीं।

प्रश्न—क्यों अच्छे नहीं? पाषाणादि मूर्त्तिपूजा का खण्डन करते हैं। **कबीर साहब** फूलों से उत्पन्न हुए और अन्त में भी फूल हो गये। ब्रह्मा, विष्णु, महादेव का जन्म जब नहीं था, तब भी कबीर साहब थे। बड़े सिद्ध थे। जिस बात को वेद-पुराण भी नहीं जान सकते, उसको कबीर जानते थे। सच्चा रास्ता है, सो कबीर ने ही दिखलाया है। इनके मन्त्र **'सत्यनाम कबीर'** आदि हैं।

उत्तर—पाषाणादि को छोड़ पलंग, गद्दी-तकिये, खड़ाऊँ, ज्योति अर्थात् दीप आदि का पूजना पाषाणमूर्त्ति [पूजने] से न्यून नहीं। क्या कबीर साहब भुनगा था वा कलियाँ था, जो फूलों से उत्पन्न हुआ और अन्त में फूल हो गया?

[कबीर साहब का जन्म, और उनके सिद्धान्त]

यहाँ जो **यह बात सुनी जाती है,** वही सच्ची होगी कि कोई जुलाहा काशी में रहता था। उसका लड़का-बाला नहीं था। एक समय थोडी-सी रात्रि थी। एक गली में चला जाता था तो देखा सड़क के किनारे में एक टोकरी में फूलों के बीच में उसी रात का जन्मा बालक था। वह उसको उठा ले गया। अपनी स्त्री को दिया, उसने पालन किया। जब वह बड़ा हुआ तब जुलाहे का काम करता था। किसी पण्डित के पास संस्कृत पढ़ने के लिये गया। उसने उसका अपमान किया। कहा कि—"हम जुलाहे को नहीं पढ़ाते।" इसी प्रकार कई पण्डितों के पास फिरा परन्तु किसी ने न पढ़ाया। तब ऊटपटांग भाषा बनाकर जुलाहे आदि नीच लोगों [=नीची कही जाने वाली जातियों के लोगों] को समझाने लगा। तंबूरा लेकर गाता था, भजन बनाता था। विशेषकर पण्डितों, शास्त्रों, वेदों की निन्दा किया करता था। कुछ मूर्ख [=अशिक्षित] लोग उसके जाल में फस गये। जब मर गया, तब लोगों ने उसको सिद्ध बना लिया।

जो-जो उसने जीते-जी बनाया था, उसको उसके चेले पढ़ते रहे। कान को मूंदके जो शब्द सुना जाता है उसको **'अनहत'** शब्द सिद्धान्त ठहराया। मन की वृत्ति को **'सुरति'** कहते हैं। उसको उस शब्द सुनने में लगाना, उसी को सन्त और परमेश्वर का ध्यान बतलाते हैं। वहाँ काल नहीं पहुँचता। बर्छी के तुल्य तिलक और चन्दनादि लकड़े की कण्ठी बाँधते हैं। भला, विचार कर देखो कि इसमें आत्मा की उन्नति और ज्ञान क्या बढ़ सकता है? यह केवल लड़कों के खेल के तुल्य लीला है।

[नानक जी के मत की समीक्षा]

प्रश्न—पंजाब देश में **'नानक जी'** ने एक मार्ग चलाया है। क्योंकि वे भी मूर्त्ति का खण्डन करते थे, मुसलमान होने से बचाये, देखो, उन्होंने कुछ पाखण्ड नहीं चलाया। वे साधु भी नहीं हुए, किन्तु गृहस्थ बने रहे; देखो, उन्होंने यह मन्त्र उपदेश किया है, इसी से विदित होता है कि उनका आशय अच्छा था—

ओं सत्यनाम कर्त्ता पुरुष निर्भो निर्वैर अकालमूर्त अजोनि सहभं गुरु प्रसाद जप, आदि सच, जुगादि सच, है भी सच, नानक होसी भी सच॥

[जपजी पौड़ी १]

ओम् जिसका सत्य नाम है, वह कर्त्ता, पुरुष, भय और वैररहित, अकालमूर्त्ति=जो काल में और जोनि में नहीं आता, प्रकाशमान है, उसी का जप गुरु की कृपा से कर। वह परमात्मा आदि में सच था, जुगों के आदि में सच [था], वर्तमान में सच [है] और होगा भी सच।

उत्तर—नानक जी का आशय तो अच्छा था, परन्तु विद्या कुछ भी नहीं थी। हां, भाषा उस देश की, जो कि ग्रामों की है, जानते थे। वेदादि शास्त्र और संस्कृत कुछ भी नहीं जानते थे। जो जानते होते तो 'निर्भय' शब्द को 'निर्भो' न लिखते और इसका दृष्टान्त उनका बनाया **'संस्कृती स्तोत्र'** है। चाहते थे कि मैं संस्कृत में भी पग अड़ाऊँ, परन्तु विना पढ़े

संस्कृत कैसे आ सकता है? हाँ, उन ग्रामीणों के सामने कि जिन्होंने संस्कृत कभी सुना भी नहीं था **'संस्कृती स्तोत्र'** बना कर संस्कृत के भी पण्डित बन गये होंगे। भला, यह बात अपने मान, प्रतिष्ठा और अपनी प्रख्याति की इच्छा के विना कभी न करते। उनको अपनी प्रतिष्ठा की इच्छा अवश्य थी, नहीं तो जैसी भाषा जानते थे, कहते रहते और यह भी कह देते कि मैंने संस्कृत नहीं पढ़ा। जब कुछ अभिमान था तो मान-प्रतिष्ठा के लिये कुछ दम्भ भी किया होगा; इसीलिये उनके ग्रन्थ में जहाँ-तहाँ वेदों की निन्दा और स्तुति भी है, क्योंकि जो ऐसा न करते तो उनसे भी कोई वेदों का अर्थ पूछता। जब न आता तब प्रतिष्ठा नष्ट होती। इसलिये पहले ही अपने शिष्यों के सामने कहीं-कहीं वेदों के विरुद्ध बोलते थे और कहीं-कहीं वेदों के लिये अच्छा भी कहा है; क्योंकि जो कहीं अच्छा न कहते तो लोग उनको नास्तिक बनाते। जैसे—

वेद पढ़त ब्रह्मा मरे चारों वेद कहानी।
सन्त की महिमा वेद न जानी।

[सुखमनी, अष्टपदी ७, पद ८]

ब्रह्मज्ञानी आप परमेश्वर॥

[सुखमनी—सु० अष्ट० ८, पद ६]

क्या वेद पढ़नेवाले मर गये? और नानक जी आदि अपने को अमर समझते थे? क्या वे नहीं मर गये? **वेद तो सब विद्याओं का भण्डार है,** परन्तु जो चारों वेदों को **'कहानी'** कहे, उसकी सब बातें कहानी हैं। जो

मूर्खों [=अशिक्षितों] का नाम सन्त होता है, वे बेचारे वेदों की महिमा कभी नहीं जान सकते। जो नानक जी वेदों का ही मान करते तो उनका सम्प्रदाय न चलता, न वे गुरु बन सकते थे; क्योंकि संस्कृत-विद्या तो पढ़े ही नहीं थे, तो दूसरे को पढ़ाकर शिष्य कैसे बना सकते थे?

[नानकजी ने लोगों को मुसलमान होने से बचाया]

यह सच है कि जिस समय नानक जी पंजाब में हुए थे, उस समय पंजाब 'संस्कृत-विद्या' से सर्वथा रहित, मुसलमानों से पीड़ित था। उस समय उन्होंने कुछ लोगों को बचाया। नानक जी के सामने कुछ उनका सम्प्रदाय वा बहुत-से शिष्य नहीं हुये थे; क्योंकि अविद्वानों में यह चाल है कि मरे पीछे उनको सिद्ध बना लेते हैं, पश्चात् बहुत-सा माहात्म्य करके ईश्वर के समान मान लेते हैं।

[नानकजी के सम्बन्ध में गपोड़े; उदासी और निर्मले]

हां, नानक जी बड़े धनाढ्य, रईस भी नहीं थे, परन्तु उनके चेलों ने **'नानक-चन्द्रोदय'** और **'जन्मसाखी'** आदि में बड़े सिद्ध और बड़े ऐश्वर्यवाले थे; लिखा है। नानक जी ब्रह्मा आदि से मिले, बड़ी बातचीत की, सबने उनका मान्य किया; नानक जी के विवाह में बहुत से घोड़े, रथ, हाथी, सोने-चाँदी, मोती, रत्नों से सजे हुये [थे] और अमूल्य रत्नों का पारावार न था; लिखा है। **भला, ये गपोड़े नहीं तो क्या हैं? इसमें इनके चेलों का दोष है, नानक जी का नहीं।**

दूसरा—उनके पीछे उनके लड़के से **'उदासी'** चले, और रामदास आदि से **'निर्मले'**।

[धर्मग्रन्थ में भिन्न-भिन्न लोगों की वाणियाँ]

कितने ही गद्दीवालों ने भाषा बनाकर ग्रन्थ में रक्खी है; अर्थात् इनके गुरु गोविन्दसिंह जी दशमे हुए। उनके पीछे उस ग्रन्थ में किसी की भाषा नहीं मिलाई गई, किन्तु वहाँ तक के जितने छोटे-छोटे पुस्तक थे, उन सबको इकट्ठा करके जिल्द बँधवा दी। इन लोगों ने भी नानक जी के पीछे बहुत-सी भाषा बनाई। कितनों ने ही नाना प्रकार की पुराणों की मिथ्या कथा के तुल्य [पुस्तक] बना दिये। परन्तु 'ब्रह्मज्ञानी आप परमेश्वर' बनके उस पर कर्म-उपासना छोड़कर इनके शिष्य झुकते आये। इसने बहुत बिगाड़ कर दिया। नहीं [तो], जो **नानक जी ने कुछ भक्ति-विशेष ईश्वर की लिखी थी उसे करते आते तो अच्छा था।**

अब **उदासी** कहते हैं—"हम बड़े", **निर्मले** कहते हैं—"हम बड़े", **अकाली** तथा **सुथरेशाही** कहते हैं कि "सर्वोपरि हम हैं।"

[गुरु गोविन्दसिंह द्वारा पञ्च ककारों का प्रचार]

इनमें गोविन्दसिंह जी शूरवीर हुये। जो मुसलमानों ने उनके पुरुषाओं को बहुत-सा दु:ख दिया था, उनसे बदला लेना चाहते थे, परन्तु इनके पास कुछ सामग्री न थी और उधर मुसलमानों की बादशाही प्रज्वलित हो रही थी। उन्होंने एक पुरश्चरण करवाया। प्रसिद्धि की कि “मुझको देवी ने वर और खड्ग दिया है कि तुम मुसलमानों से लड़ो, तुम्हारा विजय होगा"। बहुत लोग उनके साथी हो गये और उन्होंने, जैसे वाममार्गियों ने 'पञ्च मकार', चक्राङ्कितों ने 'पञ्च संस्कार' चलाये थे, वैसे 'पञ्च

ककार' [चलाये]; अर्थात् इनके **पञ्च ककार** [चलाये] ; अर्थात् इनके पञ्च ककार युद्ध के उपयोगी थे—

एक **'केश'** अर्थात् जिसके रखने से लड़ाई में लकड़ी और तलवार से कुछ बचावट हो।

दूसरा **'कंगण'** जो शिर के ऊपर पगड़ी में अकाली लोग रखते हैं; और हाथ में **'कड़ा'** जिससे हाथ और शिर बच सकें।

तीसरा **'काछ'** [=कच्छा] अर्थात् जानु के ऊपर एक जांघिया कि जो दौड़ने, कूदने में अच्छा होता है। बहुत करके अखाड़मल्ल और नट भी इसको इसीलिये धारण करते हैं कि जिससे शरीर का मर्मस्थान ढका रहै और अटकाव न हो।

चौथा **'कंघा'** कि जिससे केश सुधरते हैं।

पाँचवाँ **काचू** कि जिससे शत्रु से भेंट-भड़क्का होने से लड़ाई में काम आवे।

इसीलिये यह रीति गोविन्दसिंह जी ने अपनी बुद्धिमत्ता से उस समय के लिये की थी। अब इस समय में उनका रखना कुछ उपयोगी नहीं

है। परन्तु जो युद्ध के प्रयोजन के लिये बातें कर्त्तव्य थीं, उनको अब धर्म के साथ मान लिया है।

[मूर्त्ति के स्थान में 'ग्रन्थ साहब' की पूजा]

मूर्त्तिपूजा तो नहीं करते परन्तु उससे विशेष **'ग्रन्थ'** की पूजा करते हैं। क्या यह मूर्त्तिपूजा नहीं है? **किसी जड़ पदार्थ के सामने शिर झुकाना वा उसकी पूजा करना, सब मूर्त्तिपूजा है।** जैसे मूर्त्तिवालों ने अपनी दुकान जमाकर जीविका ठाड़ी की है, वैसे इन लोगों ने भी कर ली है। जैसे पुजारी मूर्त्ति का दर्शन कराते, भेट चढ़वाते हैं, वैसे नानकपन्थी लोग ग्रन्थ की पूजा करते-कराते, भेंट भी चढ़वाते हैं, अर्थात् मूर्त्तिपूजावाले जितना वेदों का मान्य करते हैं, उतना भी ये **'ग्रन्थसाहब'**-वाले लोग नहीं करते। हां, यह कहा जा सकता है कि इन्होंने वेदों को न सुना, न देखा, क्या करें? जो सुनने और देखने में आते तो बुद्धिमान् लोग जो कि हठी-दुराग्रही नहीं हैं, सब सम्प्रदाय-वाले वेदमत में आ जाते हैं। परन्तु **इन सबने भोजन का बखेड़ा बहुत-सा हटा दिया है। जैसे इसको हटाया, वैसे विषयासक्ति और दुरभिमान को भी हटाकर वेदमत की उन्नति करें तो बहुत अच्छी बात है।**

[दादूपन्थी मत की समीक्षा]

प्रश्न—दादूपन्थी का मार्ग तो अच्छा है?

उत्तर—अच्छा तो वेदमार्ग है, जो पकड़ा जाय तो पकड़ो, नहीं तो सदा गोते खाते रहोगे। इनके मत से दादू जी का जन्म गुजरात में हुआ था। पुनः जयपुर के पास 'आमेर' में रहते थे। तेली का काम करते थे।

ईश्वर की सृष्टि की विचित्र लीला है कि दादू जी भी पुजाने लग गये। अब वेदादि शास्त्रों की सब बातें छोड़कर 'दादूराम-दादूराम' में ही मुक्ति मानली है। **जब सत्योपदेशक नहीं होता तब ऐसे-ऐसे ही बखेड़े चला करते हैं।**

[रामस्नेही मत की आलोचना]

थोड़े दिन हुए कि एक **'रामस्नेही'** मत शाहपुरा से चला है। वे सब वेदोक्त धर्म छोड़ 'राम-राम' पुकार रहे हैं। उसी में ज्ञान, ध्यान, मुक्ति मानते हैं। परन्तु जब भूख लगती है, तब 'रामनाम' में से रोटी नहीं निकलती; क्योंकि खानपान आदि तो गृहस्थों के घर ही में मिलते हैं। वे भी मूर्त्तिपूजा को धिक्कारते हैं परन्तु आप स्वयं मूर्त्ति बन रहे हैं। स्त्रियों के सङ्ग में बहुत रहते हैं, क्योंकि **'रामजी'-'रामकी'** के विना आनन्द ही नहीं मिल सकता।

अब थोड़ा-सा विशेष **'रामस्नेही'** मत के विषय में लिखते हैं—

एक **'रामचरण'** नामक साधु हुआ है, जिसका मत मुख्यकरके **'शाहपुरा'** स्थान, मेवाड़ से चला है। वे 'राम-राम' करने को ही परममन्त्र और इसी को सिद्धान्त मानते हैं। उनका एक ग्रन्थ कि जिसमें **'सन्तदास जी आदि की वाणी'** है, [उसमें] ऐसा लिखते हैं। उनका वचन—

भरम रोग तब ही मिट्या, रट्या निरंजन राइ।
जब जम का कागज फट्या, कट्या करम तब जाइ॥१॥

[सुमरण को अङ्ग १७]

अब बुद्धिमान् लोग विचार लेवें कि 'राम-राम' करने से भ्रम, जो कि अज्ञान है, वा यमराज का पापानुकूल शासन अथवा किये हुये कर्म कभी छूट सकते हैं, वा नहीं? यह केवल मनुष्यों को पापों में फसाना और मनुष्य जन्म को नष्ट कर देना है। अब इनका जो मुख्य गुरु हुआ है **'रामचरण'**, उसके वचन—

महमा नांव प्रताप की, सुणौ सरवण चित लाइ।
रांमचरण रसना रटौ, क्रम सकल झड़ जाइ॥१॥
जिन जिन सुमर्या नांव कूं, सो सब उतर्या पार।
रांमचरण जो बीसर्या, सो ही जम के द्वार॥२॥
रांम विना सब झूठ बतायो॥
रांम भजत छूट्या सब क्रम्मा।
चंद अरु सूर देइ परकम्मा॥
रांम कहे तिन कूं भै नाहीं।
तीन लोक में कीरतिं गाहीं॥
रांम रटत जम जोर न लागै॥
रांम नाम लिष पथर तराई।
भगति हेति औतार ही धराई॥
ऊंच नीच कुल भेद बिचारै।
सो तो जनम आपणो हारै॥

सन्तां के कुल दीसै नाहीं।
रामं रामं कह रांम सम्हांहीं॥
ऐसो कुण जो कीरति गावै।
हरि हरिजन कौ पार न पावै॥
रांम संतां का अन्त न आवै।
आप आपकी बुद्धि सम गावै॥

[रामचरण की वाणी]

['राम-राम' कहने से कर्म से छुटकारा नहीं]

इनका खण्डन—प्रथम तो **रामचरण** आदि के ग्रन्थ देखने से विदित होता है कि यह ग्रामीण एक सादा-सीधा मनुष्य था। न वह कुछ पढ़ा था, नहीं तो ऐसी गपड़चौथ क्यों लिखता? यह केवल इनको भ्रम है कि 'राम-राम' कहने से कर्म छूट जायेंगे। केवल ये अपना और दूसरों का जन्म खोते हैं।

'जम' का भय तो बड़ा भारी है परन्तु राजसिपाही, चोर, डाकू, व्याघ्र, सर्प, बिच्छू और मच्छर आदि का भय कभी नहीं छूटता। चाहे रात-दिन 'राम-राम' किया करे, कुछ भी नहीं होगा। जैसे शक्कर-शक्कर कहने से मुख मीठा नहीं होता, वैसे सत्यभाषणादि कर्म किये विना 'राम-राम' करने से कुछ भी नहीं होगा। और यदि 'राम-राम' करना इनका राम नहीं सुनता, तो जन्म-भर कहने से भी नहीं सुनेगा, और जो सुनता है तो दूसरी वार भी 'राम-राम' कहना व्यर्थ है।

[रामस्नेही नहीं, राँडस्नेही]

इन लोगों ने अपना पेट भरने और दूसरों का भी जन्म नष्ट करने के लिये एक पाखण्ड खड़ा किया है। सो यह बड़ा आश्चर्य है, हम सुनते और देखते हैं कि नाम तो धरा 'रामस्नेही' और काम करते हैं 'रांडस्नेही' का। जहाँ देखो वहाँ रांड ही रांड सन्तों को घेर रही हैं। **यदि ऐसे-ऐसे पाखण्ड न चलते तो आर्यावर्त देश की दुर्दशा क्यों होती?** ये लोग अपने चेलों को जूठन खिलाते हैं, स्त्रियाँ भी लम्बी पड़के दण्डवत् प्रणाम करती हैं। एकान्त में भी स्त्रियों और साधुओं की लीला होती रहती है।

[रामस्नेही मत की दो शाखाएँ]

दूसरी इनकी शाखा **'खेड़ापा'*** ग्राम मारवाड़ देश से चली है, उसका इतिहास—एक **रामदास** नामक जाति का ढेढ़ बड़ा चालाक था। उसकी दो स्त्रियाँ थी। वह प्रथम बहुत दिन तक औघड़ होकर कुत्तों के साथ खाता रहा। पीछे वामी कुंडापन्थी, पीछे 'रामदेव का कामड़िया'☆ बना। अपनी दोनों स्त्रियों के साथ गाता था। ऐसे घूमता-घूमता 'सीथल'★ में ढेढ़ों का गुरु **'हररामदास'** था, उससे मिला। उसने उसको 'रामदेव' का पन्थ बताके अपना चेला बनाया। उस **रामदास** ने खेड़ापा ग्राम में जगह बनाई और उसका इधर मत चला; उधर शाहपुरा में **रामचरण** का।

उसका भी इतिहास ऐसा सुना है कि वह जयपुर का बनिया था। उसने 'दांतड़ा'◇ ग्राम में एक साधु से वेश लिया और उसको गुरु किया और शाहपुरा में आके टिक्की जमाई। भोले मनुष्यों में पाखण्ड की जड़ शीघ्र

जम जाती है, जम गई।

[इनका महामन्त्र और चरणामृत]

इन सबमें ऊपर के रामचरण के वचनों के प्रमाण से चेला करके, ऊँच-नीच का कुछ भेद नहीं [करके] ब्राह्मण से अन्त्यज पर्यन्त इनमें चेले बनते हैं। अब भी कुंडापन्थी से ही हैं, क्योंकि मिट्टी के कुंडों में ही खाते हैं और साधुओं की जूठन खाते हैं। [लोगों को] वेदधर्म से, माता-पिता-संसार के व्यवहार से, बहकाकर छुड़ा देते और चेला बना लेते हैं और राम नाम को महामन्त्र मानते हैं; और इसी को 'छुच्छम◆ वेद' भी कहते हैं। [और कहते हैं कि] राम-राम कहने से अनन्त जन्मों के पाप छूट जाते हैं, इसके विना मुक्ति किसी की नहीं होती।

---

* **खेड़ापा ग्राम**—खेड़ापा ग्राम राजस्थान के नागौर जिले में नागौर-जोधपुर सड़क=मार्ग पर स्थित है। यही **'रामस्नेही'** सम्प्रदाय का मूल केन्द्र है। —**समर्थदान**

☆ **कामड़िये**—राजपूताने में **'चमार'** लोग भगवे वस्त्र रंगकर **'रामदेव'** आदि के गीत, जिनको वे **'शब्द'** कहते हैं, चमारों और अन्य जातियों को सुनाते हैं; वे **'कामड़िये'** कहलाते हैं। —**समर्थदान**

★ **सीथल ग्राम**—'सीथल' जोधपुर के राज्य में एक बड़ा ग्राम है। —**समर्थदान**

◇ **दांतड़ा गांव**—दांतड़ा गांव जिला जयपुर (राजस्थान) में है। —**समर्थदान**

◆ **छुच्छम वेद**—छुच्छम अर्थात् सूक्ष्म। —**समर्थदान**

जो श्वास और प्रश्वास के साथ 'राम-राम' करना बतावे, उसको 'सत्यगुरु' कहते हैं और सत्यगुरु को परमेश्वर से भी बड़ा मानते हैं और उसकी मूर्त्ति का ध्यान करते हैं। साधुओं के चरण धोके पीते हैं। जब गुरु से चेला दूर जावे तो गुरु के नख और दाढ़ी के बाल अपने पास रख लेते और उसका चरणामृत नित्य लेते हैं।

[धर्म-पुस्तक की परिक्रमा और दण्डवत् प्रणाम]

'रामदास और **हररामदास** की वाणी' के पुस्तकों को वेद से अधिक मानते हैं। उसकी परिक्रमा और आठ दण्डवत् प्रणाम करते हैं और जो गुरु समीप हो तो गुरु को दण्डवत् प्रणाम कर लेते हैं। स्त्री वा पुरुष को 'राम-राम' एक-सा ही उपदेश करते हैं। नामस्मरण से ही कल्याण मानते हैं और पढ़ने में पाप समझते हैं। उनकी साखी—

पंडताइ पाने पड़ी, ओ पूरब लो पाप।

राम-राम सुमर्यां विना, रइग्यौ रीतो आप॥१॥

वेद पुराण पढ़े पढ़ 'गीता', रांमभजन बिन रइ गए रीता॥

ऐसे-ऐसे पुस्तक बनाये हैं। स्त्री को पति की सेवा में पाप और गुरु-साधु की सेवा में धर्म बतलाते हैं। वर्णाश्रम को नहीं मानते। जो ब्राह्मण

रामस्नेही न हो तो उसको नीच और चाण्डाल, रामस्नेही हो तो उसको उत्तम जानते हैं। ईश्वर का अवतार नहीं मानते और रामचरण का वचन जो ऊपर लिख आये कि—**"भगति हेति औतार ही धराई"** सन्तों के हित [राम के] अवतार को भी मानते हैं, इत्यादि पाखण्ड-प्रपञ्च इनका जितना है, सो सब आर्यावर्त देश का अहितकारक है। इतने से ही बुद्धिमान् बहुत-सा समझ लें।

[वल्लभ सम्प्रदाय की समीक्षा]

प्रश्न—'गोकुलिये गोसाँइयों' का मत तो बहुत अच्छा है। देखो, कैसा ऐश्वर्य भोगते हैं! क्या लीला के विना ऐसा यह ऐश्वर्य हो सकता है?

उत्तर—यह ऐश्वर्य गृहस्थ लोगों का है, गोसाँइयों का कुछ नहीं।

प्रश्न—वाह-वाह! यह गोसाँइयों के प्रताप से है, क्योंकि ऐसा ऐश्वर्य दूसरों को क्यों नहीं मिलता?

उत्तर—दूसरे भी इसी प्रकार का छल-प्रपञ्च रचें तो ऐश्वर्य मिलने में क्या सन्देह है? और जो इनसे अधिक धूर्त्तता करें तो अधिक ऐश्वर्य भी हो सकता है।

प्रश्न—वाह, वाह! इसमें धूर्त्तता क्या है? सब गोलोक की लीला है।

उत्तर—गोलोक की लीला नहीं किन्तु गोसाँइयों की लीला है। जो गोलोक की लीला है तो गोलोक भी ऐसा ही होगा।

[वल्लभ मत के मूल पुरुष का इतिहास]

यह मत **'तैलंग'** देश से चला है; क्योंकि एक तैलंगी **लक्ष्मणभट्ट** नामक ब्राह्मण ने विवाह कर, [फिर] किसी कारण से माता-पिता, स्त्री को छोड़, काशी में जाके, संन्यास ले लिया था और झूठ बोला था कि मेरा विवाह नहीं हुआ। दैवयोग से उसके माता-पिता और स्त्री ने सुना कि काशी में संन्यासी हो गया है। उसके माता-पिता और स्त्री ने काशी में पहुँचकर जिसने उसको संन्यास दिया था, उससे कहा कि "इसको संन्यासी क्यों किया? देखो! इसकी यह स्त्री युवती है।" और स्त्री ने कहा कि "यदि आप मेरे पति को मेरे साथ न करें तो मुझको भी संन्यास दे दीजिये।" तब तो उसको बुलाके [संन्यास-गुरु ने] कहा कि "तू बड़ा मिथ्यावादी है, संन्यास छोड़, गृहाश्रम कर; क्योंकि तूने झूठ बोलकर संन्यास लिया है।" उसने वैसा ही किया। संन्यास छोड़ उसके साथ हो लिया।

देखो, इस मत का मूल ही झूठ-कपट से चला। जब तैलङ्ग देश में वे गये, उनको जाति में किसी ने न लिया। वहाँ से निकलकर घूमने लगे। **'चरणारगढ'** जो काशी के पास है, उसके पास **'चम्पारण्य'** जंगल में चले जाते थे। वहाँ कोई एक लड़के को जंगल में छोड़ चारों ओर दूर-दूर आगी जलाकर चला गया था; क्योंकि छोड़नेवाले ने यह समझा था कि जो आगी न जलाऊंगा तो अभी कोई जानवर मार डालेगा। लक्ष्मणभट्ट

और उसकी स्त्री ने लड़के को लेकर अपना पुत्र बना लिया। फिर काशी में जा रहे।

[लक्ष्मण भट्ट के पालित पुत्र द्वारा वल्लभ मत की स्थापना]

जब वह लड़का बड़ा हुआ तब उसके मा-बाप का शरीर छूट गया। काशी में बाल्यावस्था से युवावस्था तक कुछ पढ़ता भी रहा, फिर और कहीं जाके एक विष्णुस्वामी के मन्दिर में चेला हो गया। वहाँ से भी कुछ खटपट होने से काशी को फिर चला गया और संन्यास ले लिया। फिर, कोई वैसा ही जातिबहिष्कृत ब्राह्मण काशी में रहता था। उसकी लड़की युवती थी। उसने इससे कहा कि "तू संन्यास छोड़ मेरी लड़की से विवाह कर ले।" वैसा ही हुआ। जिसके बाप ने जैसी लीला की थी वैसी पुत्र क्यों न करे? उस स्त्री को लेकर वहीं चला गया कि जहाँ प्रथम विष्णुस्वामी के मन्दिर में चेला हुआ था। विवाह करने से उनको वहाँ से निकाल दिया।

[वल्लभ द्वारा ८४ लोगों को वैष्णव मत की दीक्षा]

फिर व्रजदेश में कि जहाँ अविद्या ने घर कर रक्खा है, जाकर, अपना प्रपञ्च अनेक प्रकार की छल-युक्तियों से फैलाने लगा और मिथ्या बातों की प्रसिद्धि करने लगा कि श्रीकृष्ण मुझसे मिले और कहा है कि "जो गोलोक से 'दैवीजीव' मर्त्यलोक में आये हैं, उनको ब्रह्मसम्बन्ध आदि से पवित्र करके गोलोक में भेजो।" इत्यादि प्रलोभन की बातें कहके थोड़े-से लोग अर्थात् ८४ चौरासी वैष्णव बनाये

[वल्लभ सम्प्रदाय के समर्पण-मन्त्र और उनकी समीक्षा]

और निम्नलिखित मन्त्र बना लिये, उनमें भी भेद रक्खा, जैसे—

श्रीकृष्णः शरणं मम॥१॥

क्लीं कृष्णाय गोपीजनवल्लभाय स्वाहा॥२॥

[गोपालसहस्रनाम तथा पद्मपुराण (६) उत्तर खण्ड ७२।१२२]

ये दोनों साधारण मन्त्र हैं; परन्तु यह निम्नोक्त ब्रह्मसम्बन्ध और समर्पण का मन्त्र कहाता है—

श्रीकृष्णः शरणं मम सहस्रपरिवत्सरमितकालजातकृष्णवियोगजनितता-पक्लेशानन्ततिरोभावोऽहं भगवते कृष्णाय देहेन्द्रियप्राणान्तःकरणतद्धर्मांश्च दारागारपुत्राप्तवित्तेहपराण्यात्मना सह समर्पयामि, दासोऽहं कृष्ण तवास्मि॥

इस मन्त्र का उपदेश करके शिष्य-शिष्याओं का समर्पण कराते हैं। **'क्लीं कृष्णायेति'**—यह **'क्लीं'** तन्त्र ग्रन्थ का है। इससे विदित होता है कि यह वल्लभमत भी वाममार्गियों का भेद है। इसी से स्त्री-संग गोसाँई लोग बहुत करते हैं। **'गोपी-वल्लभेति'**—क्या कृष्ण गोपियों को ही प्रिय थे,

अन्यों को नहीं? स्त्रियों को प्रिय वह होता है जो **'स्त्रैण'** अर्थात् स्त्रीभोग में फसा हो। क्या कृष्ण जी ऐसे थे?

अब **'सहस्त्रपरिवत्सरेति'**—सहस्र वर्षों की गणना व्यर्थ है; क्योंकि वल्लभ और उसके शिष्य सर्वज्ञ नहीं हैं। क्या कृष्ण का वियोग सहस्र वर्षों से हुआ, और आज लों अर्थात् जब लों वल्लभ का मत न था, न वल्लभ जन्मा था, उसके पूर्व अपने दैवी जीवों के उद्धार करने को क्यों न आया? 'ताप' और 'क्लेश' दोनों पर्यायवाची हैं। इनमें से एक का ग्रहण करना उचित था, दो का नहीं। 'अनन्त' शब्द का पाठ रखना व्यर्थ है, क्योंकि जो 'अनन्त' शब्द रक्खो तो 'सहस्र' का पाठ न रखना चाहिये। और जो 'सहस्र' शब्द का पाठ रक्खो तो अनन्त शब्द का पाठ रखना सर्वथा व्यर्थ है। और जो अनन्तकाल लों 'तिरोहित' अर्थात् आच्छादित रहै, उसकी मुक्ति के लिये वल्लभ का होना व्यर्थ है, क्योंकि अनन्त का अन्त नहीं होता।

भला, देह, इन्द्रिय, प्राण, अन्त:करण और उसके धर्म; स्त्री, स्थान, पुत्र, प्राप्त-धन का अर्पण कृष्ण को क्यों करना? क्योंकि कृष्ण पूर्णकाम होने से किसी के देहादि की इच्छा नहीं कर सकते। और देहादि का अर्पण करना भी नहीं हो सकता, क्योंकि देह के अर्पण से नखाग्र-शिखा-पर्यन्त देह कहाता है, उसमें जो कुछ अच्छा-बुरा वस्तु है, [जैसे] मल-मूत्रादि का भी अर्पण कैसे कर सकोगे? और जो पाप-पुण्यरूप कर्म होते हैं, उनको

कृष्णार्पण करने से उनका फलभागी भी कृष्ण ही होवे। अर्थात् नाम तो कृष्ण का लेते हैं और अर्पण अपने लिये कराते हैं। जो कुछ शरीर में मलमूत्रादि होता है, वह भी गोसाँई जी के अर्पण क्यों नहीं होता? 'क्या मीठा-मीठा गड़प्प और कड़ुवा कड़ुवा थू'? और यह भी लिखा है कि गोसाँई जी के अर्पण करना, अन्य मत-वाले के नहीं। यह सब मतलब-सिन्धुपन [है] और पराये धनादि पदार्थ हरने, वेदोक्त धर्म का नाश करने की लीला रची है। देखो, यह **वल्लभ** की लीला है—

[वल्लभ मत के मूल सिद्धान्त, और उनका खण्डन]

श्रावणस्यामले पक्षे, एकादश्यां महानिशि।

साक्षाद्भगवता प्रोक्तं तदक्षरश उच्यते॥१॥

ब्रह्मसम्बन्धकरणात् सर्वेषां देहजीवयोः।

सर्वदोषनिवृत्तिर्हि दोषाः पञ्चविधाः स्मृताः॥२॥

सहजा देशकालोत्था लोकवेदनिरूपिताः।

संयोगजाः स्पर्शजाश्च न मन्तव्याः कदाचन॥३॥

अन्यथा सर्वदोषाणां न निवृत्तिः कथञ्चन।

असमर्पितवस्तूनां तस्माद्वर्जनमाचरेत्॥४॥

निवेदिभिः समर्प्यैव सर्वं कुर्यादिति स्थितिः।

न मतं देवदेवस्य स्वामिभुक्तिसमर्पणम्॥५॥

तस्मादादौ सर्वकार्ये सर्ववस्तुसमर्पणम्।

दत्तापहारवचनं तथा च सकलं हरेः॥६॥

न ग्राह्यमिति वाक्यं हि भिन्नमार्गपरं मतम्।

सेवकानां यथा लोके व्यवहारः प्रसिध्यति॥७॥

तथा कार्य्यं समर्प्यैव सर्वेषां ब्रह्मता ततः।

गङ्गात्वे गुणदोषाणां गुणदोषादिवर्णनम्॥८॥

ये श्लोक गोसाँइयों के **'सिद्धान्तरहस्य'** -आदि ग्रन्थों में लिखे हैं। यही गोसाँइयों के मत का मूल तत्त्व है। भला, कोई पूछे कि **श्री कृष्ण का देहान्त हुए कुछ कम पाँच सहस्र वर्ष बीते हैं।** वे वल्लभ से श्रावण मास की आधी रात को कैसे मिल सके?॥१॥

'जो गोसाँई का चेला होता है और उसको सब पदार्थों का समर्पण करता है, [उससे] उसके शरीर और जीव के सब दोषों की निवृत्ति हो जाती है।' वल्लभ का यही प्रपञ्च मूर्खों को बहकाकर अपने मत में लाने का है। जो गोसाँई के चेले-चेलियों के सब दोष निवृत्त हो जायें, तो रोग-दारिद्र्यादि दुःखों से पीड़ित क्यों रहैं? और वे दोष पाँच प्रकार के होते हैं॥२॥

एक—सहजदोष अर्थात् जो स्वाभाविक काम-क्रोधादि से उत्पन्न होते हैं।

दूसरे—किसी देश, काल में नाना प्रकार के पाप किये जायें।

तीसरे—लोक में जिनको भक्ष्याभक्ष्य कहते और वेदोक्त जो कि मिथ्याभाषणादि हैं।

चौथे—संयोगज=जो बुरे सङ्ग अर्थात् चोरी, जारी, माता, भगिनी, कन्या, पुत्रवधू, गुरुपत्नी आदि से संयोग करना।

पाँचवें—'स्पर्शज=अस्पर्शनीयों का स्पर्श करना। इन पाँच दोषों को गोसाँइयों के मतवाले कभी न माने अर्थात् यथेष्टाचार करें'॥३॥

'अन्य कोई प्रकार दोषों की निवृत्ति के लिये नहीं है, विना गोसाँई के मत के। इसलिये विना समर्पण किये पदार्थों को गोसाँइयों के चेले न भोगें।'॥४॥ इसीलिये इनके चेले अपनी स्त्री, कन्या, पुत्रवधू और धनादि पदार्थों को भी समर्पित करते हैं। परन्तु 'समर्पण का नियम यह है कि जब लों गोसाँई जी की चरणसेवा में समर्पित न हो, तब लों उसका स्वामी स्वस्त्री का स्पर्श न करे।'

'इससे गोसाँइयों के चेले समर्पण करके अपने-अपने पदार्थों का भोग करें', क्योंकि स्वामी के भोग के पश्चात् समर्पण नहीं हो सकता॥५॥

'इससे प्रथम, सब कामों में सब वस्तुओं का समर्पण करें। प्रथम गोसाँई

जी को भार्यादि का समर्पण करके पश्चात् ग्रहण करें, वैसे ही हरि के दिये सम्पूर्ण पदार्थ समर्पण करके ग्रहण करें'॥६॥

'गोसाँई के मत से भिन्न-मार्ग के वाक्य-मात्र को भी गोसाँइयों के शिष्य कभी न सुनें, न ग्रहण करें, यही उनके शिष्यों का व्यवहार प्रसिद्ध है'॥७॥

'वैसे ही सब वस्तुओं का समर्पण करके सबके बीच में ब्रह्मबुद्धि करे। उसके पश्चात् जैसे गंगा में अन्य जल मिलकर गंगारूप हो जाते हैं, वैसे ही अपने मत के [दोषों को भी गुण और दूसरे मत के [गुणों को भी] दोष [मानकर उन] का वर्णन किया करें'॥८॥

[उपर्युक्त अनर्गल बातों की समीक्षा]

अब देखिये कि गोसाइयों का मत सब मतों से अधिक अपना प्रयोजन सिद्ध करनेहारा है। भला, इन गोसाँइयों को कोई पूछे कि ब्रह्म का एक लक्षण भी तुम नहीं जानते तो शिष्यों और शिष्याओं का ब्रह्मसम्बन्ध कैसे करा सकोगे? जो कहो कि हम ही ब्रह्म हैं, हमारे साथ सम्बन्ध होने से ब्रह्मसम्बन्ध होता है; तो तुममें ब्रह्म का गुण-कर्म-स्वभाव एक भी नहीं है, पुन: क्या तुम केवल भोग-विलास के लिये ब्रह्म बने हो?

भला, शिष्यों और शिष्याओं को तो तुम अपने लिये समर्पित करके शुद्ध करते हो और तुम और तुम्हारी भार्या, कन्या, पुत्रवधू तथा पुत्रादि

असमर्पित रहने से अशुद्ध रह गये वा नहीं? जो असमर्पित वस्तु को अशुद्ध मानते हो तो तुम अशुद्ध क्यों नहीं? इसलिये तुम और तुम्हारी भार्या और पुत्रादि अन्य के लिये समर्पित होने चाहियें वा नहीं? जो कहो कि नहीं, तो अन्य को अपने लिये समर्पित क्यों करते हो? **इसलिये तुमको उचित है कि वेदमत को मानो और मिथ्या प्रपञ्चादि बुराइयों को छोड़ो, जिससे इस लोक और परलोक की शुद्धि होकर आनन्द पाओ।**

[यह पुष्टिमार्ग नहीं, कुष्ठिमार्ग है]

ये अपने सम्प्रदाय को **'पुष्टिमार्ग'** कहते हैं अर्थात् खाना-पीना, पुष्ट होना, सब स्त्रियों से यथेष्ट भोग-विलास करना। परन्तु जब भगन्दरादि रोग हो जाते हैं तो यही मत साक्षात् नरक-मार्ग हो जाता है। **बड़े आश्चर्य की बात है कि ऐसे-ऐसे पशुवत् क्रीड़ा करनेवालों का भी मत संसार में चल जाता है।** कहाँ तक लिखें, इनकी सब लीलायें ऐसी ही शास्त्रविरुद्ध [और] पापवर्द्धक हैं।

[गोलोक से आये जीवों के उद्धार का ढोंग]

इसी प्रकार मिथ्याजाल रचके बेचारे भोले मनुष्यों को जाल में फसाया [करते हैं] और अपने आपको श्री कृष्ण मानकर सबके स्वामी मानते हैं। यह कहते हैं कि "जितने दैवी जीव गोलोक से आये हैं, उनका उद्धार करने के लिये हम लीला पुरुषोत्तम जन्मे हैं। जब तक हमारा उपदेश न ले तब तक गोलोक की प्राप्ति नहीं होती। वहाँ एक श्री कृष्ण पुरुष और सब स्त्रियाँ हैं।"

[गोलोक में एक ही पुरुष मानने में अनेक दोष]

वाह जी वाह! अच्छा मत है!! गोसाँइयों के जितने चेले हैं, वे सब गोपियाँ बन जावेंगी। भला, जिस एक पुरुष की दो स्त्रियां हैं, उसकी बड़ी दुर्दशा होती है, तो जहाँ एक पुरुष और करोड़ों स्त्रियां एक के पीछे लगी हैं, उसके दुःख का पार नहीं। जो कहो कि श्री कृष्ण में बड़ा सामर्थ्य है, सबको प्रसन्न करते हैं तो जो उसकी स्त्री जिसको **'स्वामिनी जी'** कहते हैं, उसमें भी श्री कृष्ण के तुल्य सामर्थ्य होगा, क्योंकि वह उनकी अर्धांगिनी है। जैसे यहाँ स्त्री-पुरुष की कामचेष्टा तुल्य अथवा पुरुष से स्त्री की अधिक होती है, तो गोलोक में क्यों नहीं? जब ऐसा है तो अन्य स्त्रियों और **'स्वामिनी जी'** की अत्यन्त लड़ाई भी होती होगी, क्योंकि सपत्नीभाव बहुत बुरा होता है। पुन: गोलोक स्वर्ग के बदले नरकवत् हो गया होगा। अथवा जैसे बहुत स्त्रीगामी पुरुष भगन्दरादि रोगों से पीड़ित रहता है, वैसा गोलोक में भी होगा। ऐसे गोलोक से मर्त्यलोक ही अच्छा है।

देखो, जैसे यहाँ गोसाँई लोग अपने को कृष्ण मानते हैं, बहुत स्त्रियों के संग से भगन्दर, प्रमेहादि रोगों से पीड़ित हैं तो अब जिनके स्वरूप गोसाँई पीड़ित होते हैं, तो गोलोक का स्वामी श्री कृष्ण इन रोगों से पीड़ित क्यों नहीं होगा? और जो नहीं है, तो उनके स्वरूप गोसाँई पीड़ित क्यों होते हैं?

प्रश्न—मर्त्यलोक में लीलावतार धारण करने से रोग-दोष होता है, गोलोक में नहीं, क्योंकि वहाँ रोग-दोष नहीं।

उत्तर—'भोगे रोगभयम्' [वैराग्यशतक, श्लोक ३३] =जहाँ भोग है, वहाँ रोग अवश्य होता है। और श्री कृष्ण के करोड़ों-करोड़ों स्त्रियों से सन्तान होते हैं, वा नहीं? जो होते हैं तो लड़के-लड़के होते हैं वा लड़कियां-लड़कियां? अथवा दोनों? जो लड़कियां-लड़कियां होती हैं तो उनका विवाह किनके साथ होता होगा? क्योंकि वहाँ दूसरा कोई पुरुष नहीं। जो दूसरा है तो तुम्हारी प्रतिज्ञा-हानि हुई। और जो कहो लड़के ही लड़के होते हैं, तो भी यही दोष आन पड़ेगा कि उनका विवाह कहाँ और किनके साथ होता है? अथवा घर में ही वर्त लेते हैं? अन्य के लड़के हैं तो भी तुम्हारी प्रतिज्ञा 'गोलोक में एक ही श्री कृष्ण पुरुष है' नष्ट हो जायेगी। और जो सन्तान होते ही नहीं, तो कृष्ण अथवा उनकी स्त्रियों के शरीर में वीर्यहीनता वा वन्ध्यापन दोष होगा। यह गोलोक क्या है, जानो दिल्ली के बादशाह की बीबियों की सेना है!

[तन-मन-धन अर्पण की समीक्षा]

और गोसाँई लोग शिष्यों-शिष्याओं का तन-मन-धन अपने अर्पण करा लेते हैं, सो भी ठीक नहीं; क्योंकि जो तन है वह विवाहित पति के समर्पण हो जाता है, और मन भी फिर दूसरे पुरुष के समर्पण नहीं हो सकता। जो हो सकता है तो वह स्त्री दो पति वाली होकर व्यभिचारिणी कहावेगी। और जो नखाग्र-शिखा-पर्यन्त शरीर गोसाँई जी के अर्पण है तो

उसमें उत्पन्न हुये धातु, मल, मूत्रादि भी गोसाँई जी के अर्पित हो चुके; और धन का अर्पण इसलिये कराते हैं कि कमावें चेले और भोगें गोसाँई। जितने गोसाँई हैं, वे अब तक तैलङ्ग की जाति में नहीं हैं। जो कोई इनको लड़की देता है, वह भी जातिबाह्य होकर भ्रष्ट हो जाता है, क्योंकि ये जाति से पतित किये गये और विद्याहीन रात-दिन प्रमाद में रहते हैं।

[घर बुलाने पर गोसाईंजी की लीला]

और देखो, जब कोई गोसाँई जी की पधरावनी करता है, तब जाकर चुपचाप 'काठ की पुतली-सा' बैठा रहता है, न कुछ बोलता-न-चालता; क्योंकि बोले तो तब जो मूर्ख न हो! **'मूर्खाणां बलं मौनम्'**=मूर्खों का बल मौन में है। जो बोले तो उसकी पोल निकल जाय। परन्त स्त्रियों की ओर खब ताकता रहता है। जिसकी ओर गोसाँई जी देखें तो जानो बड़े भाग्य की बात है। और वह स्त्री, उसके पति, भाई, बन्धु, माता, पिता बड़े प्रसन्न होते हैं। सब स्त्रियाँ पग छूती हैं। जिस पर गोसाँई का मन लगे उसका हाथ पग के अंगूठे से दाब देता है। वह स्त्री और उसके सम्बन्धी अपना धन्य भाग्य समझते हैं। उसके पति आदि उस स्त्री से कहते हैं कि तू गोसाँई जी की चरणसेवा में जा। और जहाँ कहीं उसके पति आदि प्रसन्न नहीं होते, वहाँ दूती और कुटनियों से काम सिद्ध करते हैं। सच पूछो, तो ऐसे भड़ुवापन के काम करने-करानेवाले उनके मन्दिरों में और उनके पास बहुत हैं।

[गोसाईयों का दक्षिणा माँगने का ढंग]

अब इनकी दक्षिणा की लीला [देखिए—] अर्थात् इस प्रकार माँगते हैं,

"लाओ भेंट गोसाईं जी की, बहू जी की, लाल जी की, बेटी जी की, मुखिया बाहरिया जी की, गवैया जी की, ठाकुर जी की" इन सात दुकानों से खूब माल मारते हैं। जब कोई उनका सेवक मरने लगता है तब उसकी छाती में पग छुवा, जो कुछ मिलता है, गोसाँई जी ले लेते हैं। क्या यह काम महाब्राह्मण, करटिया वा, मुर्दावली के समान नहीं है?

[स्नान किये जल का आचमन; और खास प्रसादी]

कोई-कोई विवाह में भी गोसाँई जी को बुलाते हैं और उन्हीं से लड़के-लड़की का पाणिग्रहण कराते हैं। कोई-कोई सेवक जब 'केशरिया स्नान' अर्थात् गोसाँई जी के शरीर पर स्त्री-लोग केशर का उबटन करके एक बड़े पात्र में पट्टा डालके गोसाँई जी को स्त्री-पुरुष मिलके स्नान कराते हैं, परन्तु विशेषकर स्त्रियां स्नान कराती हैं। पुनः जब गोसाईं जी पीताम्बर पहर, खड़ाऊँ पर पग धर बाहर निकल आते हैं और धोती उसी में पटक देते हैं। उस जल का आचमन उसके सेवक करते हैं और अच्छी मसालेदार पान-बीड़ी गोसाँई जी को देते हैं। वह चाबकर कुछ निगल जाते हैं, शेष एक चाँदी के कटोरे में, जिसको उनका सेवक मुख के आगे कर देता है, उसमें पीक उगल देते हैं। उसकी भी प्रसादी बंटती है, जिसको **'खास प्रसादी'** कहते हैं।

[गोसाईंयों का भोजन-सम्बन्धी पाखण्ड]

अब विचारिये कि ये लोग किस प्रकार के मनुष्य हैं?

जो मूढ़पन और अनाचार होगा, तो क्या इतना ही होगा? [क्योंकि ये]

बहुत-से समर्पण लेते हैं। उनमें से कितने ही वैष्णवों के हाथ का खाते हैं, अन्य का नहीं। कितने अपने ही हाथ का बनाया खाते हैं। लकड़े तक को धो लेते हैं परन्तु आटा, गुड़, चीनी, घी आदि धोये विना उनका 'अस्पर्श' बिगड़ जाता है। क्या करें बेचारे! जो इनको धोवें तो पदार्थ ही हाथ से खोवें।

[गोसाईयों के राग-रङ्ग]

वे कहते हैं कि हम ठाकुर जी के रंग-राग, भोग में बहुत-सा धन लगा देते हैं, परन्तु रंग-राग, भोग आप करते हैं!! और सच पूछो तो बड़े-बड़े अनर्थ होते हैं अर्थात् होली के समय पिचकारियाँ भरकर स्त्रियों के अस्पर्शनीय अवयवों पर मारते हैं। और रसविक्रय ब्राह्मण के लिये निषिद्ध है, सो भी करते हैं।

[गोसाईजी रस=भोजन-विक्रय पाप के दोषी]

प्रश्न—गोसाँई जी रोटी, दाल, कढ़ी, भात, मठरी, लड्डू आदि को प्रत्यक्ष हाट में बैठके तो नहीं बेचते, किन्तु अपने नौकर-चाकरों को पत्तल बाँट देते हैं, वे लोग बेचते हैं, गोसाँई जी नहीं।

उत्तर—जो गोसाँई जी उनको मासिक रुपये दें तो वे पत्तल क्यों लेवें? गोसाँई जी अपने नौकरों के हाथ दाल-भात आदि नौकरी के बदले बेच देते हैं और वे ले जाकर बाहर हाट बाजार में बेचते हैं। जो गोसाँई जी बाहर बेचते, तो नौकर जो ब्राह्मणादि हैं वे तो रसविक्रय दोष से बचते, अकेले गोसाँई जी ही रसविक्रय के पाप में फसते। प्रथम आप फसे और

फिर अन्यों को फसा दिया। कहीं-कहीं नाथद्वारा आदि में गोसाँई जी भी बेचते हैं। **रसविक्रय करना नीचों का काम है, उत्तमों का नहीं। ऐसे-ऐसे लोगों ने आर्यावर्त की अधोगति कर दी।**

[स्वामी नारायण मत का खण्डन]

प्रश्न—'स्वामीनारायण' का मत कैसा है?

उत्तर—'यादृशी शीतला देवी, तादृशो वाहनः खरः' जैसी धनहरणादि में गोसाँई-लीला है, वैसी ही स्वामीनारायण की भी है।

[स्वामी नारायण मत के प्रवर्त्तक सहजानन्द का पाखण्ड]

देखिए, एक **'सहजानन्द'** अयोध्या के पास एक ग्राम का जन्मा हुआ था, वह ब्रह्मचारी होकर गुजरात, काठियावाड़, कच्छ, भुज आदि देशों में फिरता था। उसने देखा कि यह देश मूर्ख और भोला है; चाहें वैसे इनको अपने मत में झुका लेवेंगे। उसने दो-चार शिष्य बनाये। उन्होंने आपस में सम्मति कर प्रसिद्ध किया कि सहजानन्द 'नारायण का अवतार' और बड़ा सिद्ध है और भक्तों को 'चतुर्भुज-मूर्ति' धारणकर साक्षात् दर्शन भी देता है।

[चतुर्भुज बन एक भूमिया को जाल में फँसाया]

एक वार काठियावाड़ में किसी 'काठी', अर्थात् जिसका नाम 'दादाखाचर' था, गढडे का भूमिया (=जमींदार) था, उसको शिष्यों ने कहा कि "तुम 'चतुर्भुज -नारायण' का दर्शन करना चाहो तो हम सहजानन्द जी से प्रार्थना करें?" उसने कहा—"बहुत अच्छी बात है।"

वह भोला आदमी था। एक कोठरी में सहजानन्द ने मुकुट धारणकर, शंख-चक्र अपने हाथ में ऊपर को धारण किये और एक दूसरा आदमी उसके पीछे खड़ा रहकर गदा-पद्म अपने हाथ में लेकर सहजानन्द की बगल में से आगे को हाथ निकाल [कर दोनों] चतुर्भुज के तुल्य बन-ठन गये। दादाखाचर से उनके चेलों ने कहा कि "एक वार आँख उठा देखके आँख मींच लेना और झट इधर को चले आना। जो बहुत देखोगे तो नारायण कोप करेंगे।" अर्थात् चेलों के मन में तो यह था कि कहीं हमारे कपट की परीक्षा न कर लेवे। उसको ले गये। वह सहजानन्द कलाबत्तू और चलकते रेशमी कपड़े धारण किये था, अंधेरी कोठरी में खड़ा था। उसके चेलों ने एक दम लालटेन से कोठरी की ओर उजाला किया। दादाखाचर ने देखा तो 'चतुर्भुज-मूर्त्ति' दिखी, फिर झट दीपक को आड़ में कर दिया। वे सब नीचे गिर, नमस्कार कर दूसरी ओर चले आये और उसी समय बीच में बातें की "तुम्हारा भाग्य धन्य है। अब तुम महाराज के चेले हो जाओ"। उसने कहा—"बहुत अच्छी बात।" जब तक फिरके दूसरे स्थान में गये तबतक वस्त्र बदलके सहजानन्द गद्दी पर बैठा था। तब चेलों ने कहा कि "देखो! अब दूसरा स्वरूप धारण करके यहाँ बैठे हैं।"

वह दादाखाचर इनके जाल में फस गया। वहीं से उनके मत की जड़ जम गई। क्योंकि वह एक बड़ा भूमिया था, वहीं अपनी जड़ जमा ली। पुनः इधर-उधर घूमता रहा, सबको उपदेश करता था, बहुतों को साधु भी बनाता था। कभी-कभी साधु की कण्ठ की नाड़ी को मलकर मूर्छित भी कर देता था और सबसे कहता था कि हमने इनको समाधि चढ़ा दी है।

ऐसी-ऐसी धूर्त्तता में काठियावाड़ के भोले लोग उसके पेच में फस गये। जब वह मर गया तब उसके चेलों ने बहुत-सा पाखण्ड फैलाया।

[नारायणदर्शी नकटों का दृष्टान्त]

इसमें यह दृष्टान्त उचित होगा कि जैसे कोई एक चोरी करता पकड़ा गया था। न्यायाधीश ने उसको नाक काट डालने का दण्ड किया। जब उसकी नाक काटी गई तब वह धूर्त्त फ नाचने-गाने और हँसने लगा। लोगों ने पूछा कि "तू क्यों हँसता है?"

उसने कहा—"कुछ कहने की बात नहीं है।"

लोगों ने पूछा—"ऐसी कौन-सी बात है?"

उसने कहा—"बड़े भारी आश्चर्य की बात है, हमने ऐसी कभी नहीं देखी!"

लोगों ने कहा—"कह! क्या बात है?"

उसने कहा कि "मेरे सामने साक्षात् 'चतुर्भुज-नारायण' खड़े हैं। मैं देखकर बड़ा प्रसन्न होकर नाचता-गाता अपने भाग्य को धन्यवाद देता हूं कि मैं नारायण का साक्षात् दर्शन कर रहा हूँ।"

लोगों ने कहा—"हमको दर्शन क्यों नहीं होता?"

वह बोला—"नाक की आड़ हो रही है। जो नाक कटवा लो तो नारायण दीखे, नहीं तो नहीं।"

उनमें से किसी मूर्ख ने चाहा कि नाक जाय तो जाय परन्तु नारायण का दर्शन अवश्य करना चाहिये। उसने कहा कि "मेरी भी नाक काटो और नारायण को दिखलाओ।"

उसने उसकी नाक काटकर कान में कहा कि "तू भी ऐसा ही कर, नहीं तो मेरा और तेरा उपहास होगा।"

उसने भी समझा कि अब नाक तो आती नहीं, ऐसा ही करना ठीक है। वह भी वैसे ही नाचने, कूदने, गाने, हँसने लगा और कहने लगा कि "मुझको भी नारायण दीखता है।"

वैसे होते-होते एक सहस्र मनुष्यों का झुण्ड हो गया, बड़ा कोलाहल हुआ, अपने सम्प्रदाय का नाम **'नारायणदर्शी'** रक्खा।

किसी मूर्ख राजा ने सुना, उनको बुलाया। जब राजा उनके पास गया तब

वे बहुत नाचने-कूदने, हँसने लगे। तब राजा ने पूछा कि “यह क्या बात है?"

उन्होंने कहा कि "साक्षात् नारायण हमको दीखता है।"

राजा—हमको क्यों नहीं दीखता?

नारायणदर्शी—जब तक नाक है तब तक नहीं दीखेगा और जब नाक कटवा लोगे, नारायण प्रत्यक्ष दीखेंगे।

राजा ने विचारा 'ठीक है।' राजा ने कहा—"ज्योतिषी जी! मुहूर्त्त देखिये।"

ज्योतिषी जी ने उत्तर दिया—"जो हुक्म अन्नदाता! दशमी के दिन प्रातःकाल आठ बजे तक नाक कटवाने और नारायण के दर्शन करने का बड़ा अच्छा मुहूर्त्त है।"

वाह रे पोप जी! अपनी पोथी में नाक काटने-कटवाने का भी मुहूर्त्त लिख दिया!!

जब राजा की इच्छा हुई और उन सहस्र नकटों के सीधे बाँध दिये, तब तो वे बड़े ही प्रसन्न होकर नाचने-कूदने गाने लगे। यह बात राजा के दीवान आदि कुछ-कुछ बुद्धिवालों को अच्छी न लगी। राजा के यहां एक चार पीढ़ी का, बूढ्ढा ९० वर्ष का दीवान था। उसको उसके परपोते ने, जो कि उस समय दीवान था, जाकर वह बात सुनाई। तब उस वृद्ध ने कहा कि "वे धूर्त्त हैं। तू मुझको राजा के पास ले चल।" वह ले गया। बैठते समय राजा ने बड़े हर्षित होके उन नाककटों की बातें सुनाईं।

दीवान ने कहा कि “सुनिये महाराज! ऐसी शीघ्रता न करनी चाहिये। विना परीक्षा किये पश्चात्ताप होता है।"

राजा—क्या ये सहस्र पुरुष झूठ बोलते होंगे?

दीवान—झूठ बोलते हैं वा सच, विना परीक्षा के सच-झूठ कैसे कह सकते हैं?

राजा—परीक्षा किस प्रकार करनी चाहिये?

दीवान—विद्या, सृष्टिक्रम, प्रत्यक्षादि प्रमाणों से।

राजा—जो पढ़ा न हो, वह परीक्षा कैसे करे?

दीवान—विद्वानों के संग से ज्ञान की वृद्धि करके।

राजा—जो विद्वान् न मिले तो?

दीवान—पुरुषार्थी को कोई बात दुर्लभ नहीं है।

राजा—तो आप कहिये, कैसे किया जाय?

दीवान—मैं बुड्ढा [हूं] और घर में बैठा रहता हूँ, थोड़े दिन जीवोंगा। मैं प्रथम परीक्षा कर लेऊँ, तत्पश्चात् जैसा उचित समझें वैसा कीजियेगा।

राजा—बहुत अच्छी बात है। ज्योतिषी जी! दीवान के लिये मुहूर्त्त देखो।

ज्योतिषी—जो महाराज की आज्ञा। यही शुक्ल पञ्चमी १० बजे का मुहूर्त्त अच्छा है। जब पञ्चमी आई तब राजा जी के पास आ, आठ बजे बुड्ढे दीवान ने राजा से कहा कि "सहस्र-दो सहस्र सेना लेके चलना चाहिये।"

राजा—वहाँ सेना का क्या काम?

दीवान—आपको बहुत-से राज्यव्यवहार की जानकारी नहीं है। जैसा मैं कहता हूँ, वैसा कीजिये।

राजा—अच्छा, जाओ भाई! सेना को तैयार करो। साढ़े नौ बजे सवारी करके राजा सबको लेकर गया। उनको देखकर वे नाचने-गाने लगे। जाकर बैठे। उनके महन्त जिसने यह सम्प्रदाय चलाया था, जिसकी प्रथम नाक कटी थी, उसको बुलाकर कहा कि "आज हमारे दीवान जी को नारायण का दर्शन कराओ।"

उसने कहा—"अच्छा।"

दश बजे का समय आया। तब एक मनुष्य ने थाली नाक के नीचे पकड़ रक्खी। उसने पैना चाकू ले, नाक काट, थाली में फेंक दी और रुधिर गिरने लगा। दीवान जी का मुख बिगड़ गया। फिर उस धूर्त्त ने दीवान जी के कान में मन्त्रोपदेश दिया कि "आप भी हँसकर सबसे कहिये कि मुझको नारायण दीखता है। अब नाक कटी हुई नहीं आवेगी। जो ऐसा न कहोगे तो तुम्हारा बहुत-सा ठट्ठा होगा।" वह कहकर अलग हुआ।

दीवान जी ने अंगोछा हाथ में ले नाक की आड़ में लगा दिया। जब दीवान जी से राजा ने पूछा—"कहिये, नारायण दीखता है वा नहीं?

दीवान ने राजा जी के कान में कहा—"कुछ भी नहीं दीखता, वृथा इस धूर्त्त ने सहस्र मनुष्यों को खराब किया।"

राजा ने दीवान से कहा—"अब क्या करना चाहिये?"

दीवान ने कहा—"इनको पकड़के कठोर दण्ड देना चाहिये। जब तक जीवें तब तक बन्दीघर में रखना चाहिये और इस दुष्ट को कि जिसने इन सबको खराब किया है, गधे पर चढ़ा, बड़ी दुर्दशा से मारना चाहिये।"

जब राजा और दीवान कान में बातें करने लगे तब उन्होंने डरके भागने की तैयारी की, परन्तु चारों ओर फौज ने घेरा दे रक्खा था, न भाग सके। राजा ने आज्ञा दी—“सबको पकड़ बेड़ियाँ डाल दो और इस दुष्ट का काला मुख कर, गधे पर चढ़ा, इसके कण्ठ में फटे जूतों का हार पहना, सर्वत्र घुमा, छोकरों से धूड़-राख इस पर डलवा, चौक-चौक में जूतों से पिटवा, कुत्तों से लुँचवा, मरवा डाला जावे। जो ऐसा न होवे तो पुन: दूसरे भी ऐसा काम करते न डरेंगे।"

जब ऐसा हुआ तब **'नाककटे का सम्प्रदाय'** बन्द हुआ। इसी प्रकार सब वेदविरोधी दूसरों का धन हरने में बड़े चतुर हैं। ऐसी ही सब सम्प्रदायों की लीला है।

[पैसा बटोरने के विविध ढंग]

ये **स्वामीनारायण** वाले धनहरे=दूसरों के धन हरने में बड़े चतुर हैं, छल-कपटयुक्त काम करते हैं। कितने ही मूर्खों को बहकाने के लिये मरते समय कहते हैं कि "सफेद घोड़े पर बैठ सहजानन्द जी मुझको बुलाने आये हैं, नित्य इस मन्दिर में आते हैं।"

जब मेला होता है तब मन्दिर में पुजारी रहते हैं और नीचे दुकान रखते हैं। मन्दिर में से दुकान के मध्य छिद्र रखते हैं। जो किसी ने नारियल चढ़ाया, वही दुकान में फेंक दिया, अर्थात् इसी प्रकार एक नारियल दिन में सहस्त्र वार बिकता है। ऐसे ही सब पदार्थों को बेचते हैं।

जिस जाति का साधु हो, उससे वही काम कराते हैं; जैसे नापित हो उससे नापित का, कुम्हार से कुम्हार का, शिल्पी से शिल्पी का, बनिये से बनिये का काम लेते हैं। अपने चेलों पर अनेक प्रकार के टिक्कस(=कर) बाँध रक्खे हैं। लाखों-करोड़ों रुपये ठगके एकत्र कर लिये और करते जाते हैं। जो गद्दी पर बैठता है, वह गृहस्थ=विवाह करता है, आभूषणादि पहनता है। जहाँ कहीं पधरावनी होती है, वहाँ गोकुलियों के समान गोसाँई जी, बहू जी आदि के नाम से भेंट-पूजा लेते हैं।

[अन्य मतस्थ की सेवा में पाप]

अपने को 'सत्संगी' और दूसरे मत-वालों को 'कुसंगी' कहते हैं। अपने सिवाय दूसरा कैसा ही उत्तम धार्मिक पुरुष हो, उसका मान्य और सेवा नहीं करते, अन्य की सेवा में पाप गिनते हैं।

प्रसिद्धि में उनके साधु स्त्री का मुख नहीं देखते, परन्तु गुप्त क्या लीला होती होगी, इसकी प्रसिद्धि सर्वत्र न्यून हुई है। कहीं-कहीं साधुओं की परस्त्रीगमन-आदि लीला प्रसिद्ध हो गई है।

[साधुओं के शरीरसहित वैकुण्ठ में जाने का ढोंग]

और उनमें जो बड़े-बड़े हैं, वे जब मरते हैं तब उनको गुप्त कुए में फेंक कर प्रसिद्धि करते हैं कि अमुक महाराज सदेह वैकुण्ठ में गये। सहजानन्द जी आके ले गये। हमने बहुत प्रार्थना करी कि "महाराज! इनको न ले जाइये, क्योंकि इस महात्मा का यहाँ रहना अच्छा है। सहजानन्द जी ने कहा कि "नहीं, अब इनकी वैकुण्ठ में बहुत आवश्यकता है, इसलिये ले जाते हैं।" हमने अपनी आँख से सहजानन्द जी को और विमान को देखा तथा जो मरनेवाले थे उनको विमान में बैठा दिया, ऊपर को उड़ गये, पुष्पों की वर्षा करते गये।

और जब कोई साधु बीमार पड़ता है, बचने की आशा नहीं होती, तब कहता है कि "मैं कल रात को वैकुण्ठ में जाऊंगा।" सुना है कि उस रात में जो उसके प्राण न छूटे, मूर्च्छित हो गया हो, तो भी कुए में फेंक देते हैं, क्योंकि जो उस रात को न फेंक दें तो झूठे पड़ें, इसलिये ऐसा काम करते

होंगे। ऐसे ही जब गोकुलिया गोसाँई मरता है तब उनके चेले कहते हैं कि "गोसाँई जी लीला विस्तार कर गये।"

[गोसाईंयों और स्वामी नारायणवालों का एक ही मन्त्र]

जो इन गोसाँई और स्वामीनारायण वालों का उपदेश करने का मन्त्र है वह एक ही है—**'श्रीकृष्णः शरणं मम'।** इसका अर्थ ऐसा करते हैं—"श्रीकृष्ण मेरा शरण है, अर्थात् मैं श्रीकृष्ण के शरणागत हूँ," परन्तु इसका अर्थ 'श्रीकृष्ण मेरे शरण को प्राप्त अर्थात् मेरे शरणागत हों' ऐसा भी हो सकता है। ये सब जितने मत हैं, वे विद्याहीन होने से ऊटपटांग शास्त्रविरुद्ध वाक्यरचना करते हैं; क्योंकि उनको विद्या के नियमों की जानकारी नहीं।

[माध्व मत की समीक्षा]

प्रश्न—'माध्वमत' तो अच्छा है?

उत्तर—जैसे अन्य हैं, वैसा यह भी है, क्योंकि ये भी **'चक्रांकित'** होते हैं। इनमें **चक्रांकितों** से इतना विशेष है कि रामानुजीय एक वार **चक्रांकित** होते हैं और माध्व वर्ष-वर्ष में फिर-फिर **चक्रांकित** होते जाते हैं। **चक्रांकित** कपाल में पीली रेखा और माध्व काली लगाते हैं। एक माध्व पण्डित से किसी एक महात्मा का संवाद हुआ था—

महात्मा—"तुमने यह काली रेखा और चाँदला क्यों किया?"

शास्त्री—"इसके करने से हम वैकुण्ठ को जायेंगे और श्री कृष्ण का स्वरूप भी श्याम था, इसलिये हम काला तिलक करते हैं।"

महात्मा—"जो काली रेखा और चाँदला लगाने से वैकुण्ठ में जाते हों, तो सब मुख काला कर लो, तो कहाँ जाओगे? क्या वैकुण्ठ के भी पार उतर जाओगे? और जैसा श्री कृष्ण का सब शरीर काला था, वैसा तुम भी सब शरीर काला कर लिया करो, तब श्रीकृष्ण का सादृश्य हो सकता है।"

इसलिये यह भी पूर्वों के सदृश है।

[लिङ्गाङ्कित मत का खण्डन]

प्रश्न—**'लिंगांकित'** का मत कैसा है?

उत्तर—जैसा **चक्रांकित** का। जैसे **चक्रांकित** चक्र से दागे जाते हैं और नारायण के सिवाय किसी को नहीं मानते वैसे लिंगांकित लिंगाकृति से दागे जाते हैं और सिवाय महादेव के अन्य किसी को नहीं मानते। इनमें विशेष यह है कि लिंगांकित पाषाण का एक लिंग सोने, चाँदी में मढ़वा गले में डाले रखते हैं। जब पानी भी पीते हैं तब उसको दिखलाकर पीते हैं, उनका भी मन्त्र शैवों के तुल्य रहता है।

ब्राह्मसमाज और प्रार्थनासमाज के गुण-दोष कथन—

प्रश्न—**'ब्राह्मसमाज'** और **'प्रार्थनासमाज'** तो अच्छा है, वा नहीं?

उत्तर—कुछ बातें अच्छी और बहुत-सी बुरी हैं।

प्रश्न—'ब्राह्मसमाज' और 'प्रार्थनासमाज' सबसे अच्छा है, क्योंकि इसके नियम बहुत अच्छे हैं।

उत्तर—नियम सर्वांश में अच्छे नहीं, क्योंकि वेदविद्याहीन लोगों की कल्पना सर्वथा सत्य क्योंकर हो सकती है? जो कुछ ब्राह्मसमाज और प्रार्थनासमाजियों ने ईसाई मत में मिलने से थोड़े मनुष्यों को बचाया, कुछ मूर्त्तिपूजा को हटाया, अन्य जालग्रन्थों के फंद से भी कुछ बचाये, इत्यादि अच्छी बातें हैं, परन्तु—

[ब्राह्मसमाज और प्रार्थनासमाज में १६ दोष]

१. इन लोगों में स्वदेशभक्ति बहुत न्यून है। ईसाइयों के आचरण बहुत-से ले लिये हैं। खानपान, विवाहादि के नियम भी बदल दिये हैं।

२. अपने देश की प्रशंसा वा पूर्वजों की बड़ाई करनी तो दूर रही, उसके स्थान पर भरपेट निन्दा करते हैं, व्याख्यानों में ईसाई आदि अंगरेजों की प्रशंसा भरपेट करते हैं। ब्रह्मादि महर्षियों का नाम भी नहीं लेते, प्रत्युत ऐसा कहते हैं कि विना अंगरेजों के सृष्टि में आज पर्यन्त कोई भी विद्वान् नहीं हुआ, आर्यावर्तीय लोग सदा से मूर्ख चले आये हैं, इनकी उन्नति कभी नहीं हुई।

३. वेदादिकों की प्रतिष्ठा तो दूर रही, परन्तु निन्दा करने से भी पृथक नहीं रहते। ब्राह्मसमाज के उद्देश्य के पुस्तक में साधुओं की संख्या में 'ईसा' 'मूसा' 'मुहम्मद' 'नानक' और 'चैतन्य' लिखे हैं, किसी ऋषि-महर्षि का नाम भी नहीं लिखा। इससे जाना जाता है कि ये लोग, जिनका नाम लिखा है, उन्हीं के मतानुसारी=मत-वाले हैं।

भला, जब आर्यावर्त में उत्पन्न हुए हैं और आर्यावर्त देश का अन्न-जल खाया-पीया [है और] अब भी खाते-पीते हैं, अपने माता, पिता, पितामहादि के मार्ग को छोड़ दूसरे विदेशी मतों पर अधिक झुक जाना, ब्राह्मसमाजियों और प्रार्थनासमाजियों का एतद्देशस्थ संस्कृत-विद्या से रहित [होकर भी] अपने को विद्वान् प्रकाशित करना, इंगलिश भाषा पढ़के पण्डिताभिमानी होकर झटिति एक मत चलाने में प्रवृत्त होना, [यह] मनुष्यों का स्थिर और वृद्धिकारक काम क्योंकर हो सकता है?

४. अंगरेज, यवन, अन्त्यजादि से भी खाने-पीने का भेद नहीं रक्खा। इन्होंने यही समझा होगा कि खाने-पीने और जातिभेद तोड़ने से हम और हमारा देश सुधर जायगा, परन्तु ऐसी बातों से सुधार तो कहाँ है? उलटा बिगाड़ होता है।

[ईश्वरकृत और मनुष्यकृत भी जातिभेद है]

५. **प्रश्न**—जातिभेद ईश्वरकृत है, वा मनुष्यकृत?

उत्तर—ईश्वरकृत, और मनुष्यकृत भी जातिभेद है।

प्रश्न—कौन-से ईश्वरकृत और कौन-से मनुष्यकृत हैं?

उत्तर—मनुष्य, पशु, पक्षी, वृक्ष, जलजन्तु आदि जातियाँ परमेश्वरकृत हैं। जैसे पशुओं में गौ, अश्व, हस्ति आदि जातियाँ; वृक्षों में पीपल, वट, आम्र आदि; पक्षियों में हंस, काक, वकादि; जलजन्तुओं में मत्स्य, मकरादि जातिभेद ईश्वरकृत हैं; वैसे मनुष्यों में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, अन्त्यज जातिभेद [मनुष्यकृत] हैं, परन्तु मनुष्यों में ब्राह्मणादि को सामान्य जाति में नहीं किन्तु सामान्य-विशेषात्मक जाति में गिनते हैं। जैसे पूर्व वर्णाश्रमव्यवस्था में लिख आये, वैसे ही गुण, कर्म, स्वभाव से वर्णव्यवस्था माननी आवश्यक है। **इसमें मनुष्यकृतत्व [अर्थात्] उनके गुण, कर्म, स्वभाव से पूर्वोक्तानुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रादि वर्णों की परीक्षापूर्वक व्यवस्था करनी राजा और विद्वानों का काम है।**

भोजन भेद ईश्वरकृत भी और मनुष्यकृत भी है। जैसे, सिंह मांसाहारी [होते हैं] और अरणा भैंसे घास आदि का आहार करते हैं, यह ईश्वरकृत; और देश-काल-वस्तु-भेद से भोजनभेद मनुष्यकृत है।

[यूरोपियनों के गुण-दोषों की समीक्षा]

प्रश्न—देखो, यूरोपियन लोग मुंडे जूते, कोट-पतलून पहरते, होटल में सबके हाथ का खाते हैं, इसीलिये अपनी बढ़ती करते जाते हैं।

उत्तर—यह तुम्हारी भूल है; क्योंकि मुसलमान, अन्त्यज लोग सबके हाथ का खाते हैं, पुनः उनकी उन्नति क्यों नहीं होती? जो यूरोपियनों में

बाल्यावस्था में विवाह न करना, लड़कों और लड़कियों को विद्या-सुशिक्षा करना-कराना, स्वयम्वर विवाह होना, बुरे-बुरे आदमियों का उपदेश नहीं होना है; इससे वे विद्वान् होकर जिस किसी के पाखण्ड में नहीं फसते। जो कुछ करते हैं वह सब परस्पर विचार और सभा से निश्चित करके करते हैं। स्वजाति की उन्नति के लिये तन-मन-धन व्यय करते हैं। आलस्य को छोड़ उद्योग किया करते हैं। देखो, अपने देश के बने हुए जूते को कार्यालय (=आफिस) और कचहरी में जाने देते हैं, इस देशी जूते को नहीं। इतने में ही समझ लो कि अपने देश के बने जूतों की भी कितनी प्रतिष्ठा करते हैं, उतनी अन्य-देशस्थ मनुष्यों की भी नहीं करते! देखो, सौ-वर्ष से कुछ ऊपर यूरोपियनों को आये इस देश में बीते हैं, और आज तक वे लोग मोटे कपड़े आदि पहरते हैं जैसे कि स्वदेश में पहरते हैं, उनको नहीं छोड़ा; और तुम में से बहुत से लोगों ने उनका अनुकरण कर लिया, इसी से तुम निर्बुद्धि [ठहरते हो] और वे बुद्धिमान् ठहरते हैं। अनुकरण करना बुद्धिमानों का काम नहीं। और जो जिस काम पर रहता है, उसको यथोचित करता है। आज्ञानुवर्ती बराबर रहते हैं। अपने देशवालों को व्यापार आदि में सहाय देते हैं, इत्यादि गुणों और अच्छे कर्मों से उनकी उन्नति है, मुंडे जूते, कोट, पतलून, होटल में खाने आदि साधारण और बुरे कामों से नहीं बढ़े हैं।

और इनमें जातिभेद भी है। देखो, जब कोई यूरोपियन, चाहे कितने बड़े अधिकार पर और प्रतिष्ठित हो, किसी अन्य देश [वा] अन्य मत-वालों की लड़की [यूरोपियन से] वा यूरोपियन लड़की अन्य-देशवाले से विवाह कर

लेती है, तो उसी समय उसका निमन्त्रण, साथ बैठकर खाना और विवाह आदि अन्य लोग बंद कर देते हैं। यह जातिभेद नहीं तो क्या [है]? और तुम भोलों को बहकाते हैं कि हममें जातिभेद नहीं। तुम अपनी मूर्खता से मान भी लेते हो। इसलिये **जो कुछ करना, वह सोच-विचारकर करना चाहिये, जिसमें पुनः पश्चात्ताप करना न पड़े।**

[रोगी को ही वैद्य और औषध चाहिए]

देखो, वैद्य और औषध की आवश्यकता रोगी के लिये है, नीरोग के लिये नहीं। विद्यावान् नीरोग और विद्यारहित अविद्यारोग से ग्रस्त रहता है। उस रोग को छुड़ाने के लिये सत्यविद्या और सत्योपदेश है। उनको अविद्या से यह रोग है कि खाने-पीने में ही धर्म रहता और जाता है। जब किसी को खाने-पीने में अनाचार करता देखते हैं तब कहते और जानते हैं कि वह धर्मभ्रष्ट हो गया, उसकी बात न सुनते और न उसके पास बैठते, न उसको अपने पास बैठने देते।

अब कहिये कि तुम्हारी विद्या स्वार्थ के लिये है, अथवा परमार्थ के लिये? परमार्थ तो तभी होता कि जब तुम्हारी विद्या से अज्ञानियों को लाभ पहुँचता। जो कहो कि वे नहीं लेते, हम क्या करें? यह तुम्हारा दोष है, उनका नहीं; क्योंकि तुम जो अपना आचरण अच्छा रखते तो तुमसे प्रेम कर वे उपकृत होते, सो तुमने सहस्रों का उपकार-नाश करके अपना ही सुख किया, सो यह तुमको बड़ा अपराध लगा। क्योंकि **परोपकार करना धर्म और परहानि करना अधर्म कहाता है। इसलिये विद्वानों को यथायोग्य व्यवहार करके अज्ञानियों को दुःखसागर से तारने के लिये**

नौकारूप होना चाहिये। मूर्खों के सदृश कर्म सर्वथा न करने चाहियें, किन्तु जिनमें उनकी और अपनी उन्नति हो, वैसे कर्म करने उचित हैं।

[सत्य विद्याओं के पुस्तक वेदों को न मानना भूल है]

प्रश्न—हम कोई पुस्तक ईश्वरप्रणीत वा सर्वांश-सत्य नहीं मानते; क्योंकि मनुष्यों की बुद्धि निर्भ्रान्त नहीं होती, इससे उनके बनाये ग्रन्थ सब भ्रान्त होते हैं। इसलिये हम सबसे 'सत्य' ग्रहण करते और 'असत्य' को छोड़ देते हैं। चाहे सत्य **'वेद'** में, **'बाइबल'** में, **'क़ुरान'** में और अन्य किसी ग्रन्थ में हो, हमको ग्राह्य है, असत्य किसी का नहीं।

उत्तर—जिस बात से तुम सत्यग्राही होना चाहते हो, उसी बात से असत्यग्राही भी ठहरते हो; क्योंकि जब सब मनुष्य भ्रान्तिरहित नहीं हो सकते तो तुम भी मनुष्य होने से भ्रान्तिसहित हो। जब भ्रान्तिसहित का वचन सर्वांश में प्रमाण नहीं होता तो तुम्हारे वचन का प्रमाण भी नहीं होगा। फिर तुम्हारे वचन पर भी सर्वथा विश्वास न करना चाहिये। जब ऐसा है तो विषयुक्त अन्न के समान त्याग के योग्य है। फिर तुम्हारे व्याख्यान-पुस्तक बनाये का प्रमाण किसी को न करना चाहिये। **'चले तो थे चौबे जी छब्बे जी बनने को, गाँठ के दो खोकर दूबे जी बन गये।'**

तुम सर्वज्ञ [भी] नहीं, जैसे कि अन्य मनुष्य सर्वज्ञ नहीं हैं। कदाचित् भ्रम से असत्य को ग्रहणकर सत्य को छोड़ भी देते होगे, इसलिये सर्वज्ञ परमात्मा के वचन का सहाय हम अल्पज्ञों को अवश्य होना चाहिये। **जैसा**

कि वेद के व्याख्यान में लिख आये हैं, वैसा तुमको मानना चाहिये, नहीं तो **"यतो भ्रष्टः, ततो भ्रष्टः"** हो जाना है।

जब सर्व सत्य वेदों से प्राप्त होता है, जिनमें असत्य कुछ भी नहीं, उनका ग्रहण करने में शङ्का करनी अपनी और पराई हानिमात्र कर लेनी है।

[आर्यावर्त्तीय तुम्हें अपना नहीं समझते]

इसी बात से तुमको आर्यावर्तीय लोग अपने नहीं समझते और तुम आर्यावर्त की उन्नति के कारण भी नहीं हो सके; क्योंकि तुम **'सब घर के भिक्षुक'** ठहरे हो। तुमने समझा है कि इस बात से हम लोग अपना और पराया उपकार कर सकेंगे, सो न कर सकोगे। जैसे, **किसी के दो ही माता-पिता सब संसार के लड़कों का पालन करने लगें, [तो] सबका पालन करना तो असम्भव है किन्तु उस बात से अपने लड़कों को भी नष्ट कर बैठे; वैसे ही आप लोगों की गति है।**

भला, वेदादिक को माने विना तुम अपने वचनों की सत्यता-असत्यता की परीक्षा और आर्यावर्त की उन्नति भी कभी कर सकते हो? जिस देश को रोग हुआ है, उसकी औषधि तुम्हारे पास नहीं। और यूरोपियन लोग तुम्हारी अपेक्षा नहीं करते और आर्य लोग तुमको अन्य-मतियों के सदृश समझते हैं। अब भी समझकर वेदादि के मान्य से देशोन्नति करने लगो तो भी अच्छा है।

जो तुम यह कहते हो कि सब सत्य परमेश्वर से प्रकाशित होता है, पुनः ऋषियों के आत्माओं में ईश्वर से प्रकाशित हुए सत्यार्थ-वेदों को क्यों नहीं मानते? हाँ, यही कारण है कि तुम लोग वेद नहीं पढ़े और न पढ़ने की इच्छा करते हो; क्योंकर तुमको वेदोक्त ज्ञान हो सकेगा?

[विना उपादान के जगत् की उत्पत्ति नहीं होती; जीव नित्य हैं]

६. दूसरा, जगत् के उपादान कारण के विना जगत् की उत्पत्ति, और जीव को भी उत्पन्न मानते हो; जैसे ईसाई और मुसलमान आदि मानते हैं। **इसका उत्तर सृष्ट्युत्पत्ति और जीव-ईश्वर की व्याख्या में देख लीजिये।** कारण के विना कार्य का होना सर्वथा असम्भव और उत्पन्न वस्तु का नाश न होना भी वैसे ही असम्भव है।

[विना भोगे पापों की निवृत्ति नहीं होती]

७. **एक यह भी तुम्हारा दोष है कि जो पश्चात्ताप और प्रार्थना से पापों की निवृत्ति मानते हो। इसी बात से जगत् में बहुत-से पाप बढ़ गये हैं।** क्योंकि पुराणी लोग तीर्थादि यात्रा से; जैनी लोग भी नवकार मन्त्र, जप और तीर्थादि से; ईसाई लोग ईसा के विश्वास से; मुसलमान लोग 'तौबा' करने से पाप का छूट जाना विना भोग के मानते हैं। इससे पापों से भय न होकर पाप में प्रवृत्ति बहुत हो गई है। इस बात में ब्राह्मसमाजी और प्रार्थनासमाजी भी पुराणी आदि के समान हैं। जो वेदों को मानते तो विना भोग के पाप-पुण्य की निवृत्ति न होने से पापों से डरते और धर्म में सदा प्रवृत्त रहते। जो भोग के विना निवृत्ति मानें तो ईश्वर अन्यायकारी होता है।

[सीमित कर्मों का अनन्त फल नहीं मिल सकता]

८. जो तुम जीव की अनन्त उन्नति मानते हो, सो कभी नहीं हो सकती, क्योंकि ससीम जीव के गुण-कर्म-स्वभाव का फल भी ससीम होना आवश्यक है।

प्रश्न—परमेश्वर दयालु है, ससीम कर्मों का फल अनन्त दे देगा।

उत्तर—ऐसा करे तो परमेश्वर का न्याय नष्ट हो जाय, और सत्कर्मों की उन्नति भी कोई न करेगा, क्योंकि थोड़े-से भी सत्कर्मों का अनन्त फल परमेश्वर दे देगा! और **पश्चात्ताप वा प्रार्थना से पाप चाहे जितने हों, छूट जायेंगे; ऐसी बातों से धर्म की हानि और पाप-कर्मों की वृद्धि होती है।**

[स्वाभाविक ज्ञान को सर्वोपरि मानना ठीक नहीं]

प्रश्न—हम 'स्वाभाविक' ज्ञान को वेद से भी बड़ा मानते हैं, 'नैमित्तिक' को नहीं, क्योंकि जो स्वाभाविक ज्ञान परमेश्वरदत्त हममें न होता तो वेदों को भी कैसे पढ़-पढ़ा, समझ-समझा सकते [थे]; इसलिये हम लोगों का मत बहुत अच्छा है।

उत्तर—यह तुम्हारी बात निरर्थक है; क्योंकि जो किसी का दिया हुआ ज्ञान होता है, वह स्वाभाविक नहीं होता। जो स्वाभाविक है, वह 'सहज ज्ञान' होता है और न वह बढ़-घट सकता, उससे उन्नति कोई भी नहीं कर सकता; क्योंकि जंगली मनुष्यों में भी स्वाभाविक ज्ञान है, तो भी वे अपनी उन्नति नहीं कर सकते, और जो नैमित्तिक ज्ञान है, वही उन्नति का

कारण है। देखो, तुम-हम बाल्यावस्था में कर्त्तव्याकर्त्तव्य और धर्माधर्म कुछ भी ठीक-ठीक नहीं जानते थे। जब हम विद्वानों से पढ़े, तभी कर्त्तव्याकर्त्तव्य और धर्माधर्म को समझने लगे। इसलिये स्वाभाविक ज्ञान को सर्वोपरि मानना ठीक नहीं।

[पूर्वापर जन्म न मानने में अनेक दोष]

९. जो आप लोगों ने पूर्व और पुनर्जन्म नहीं माना है, वह ईसाई-मुसलमानों से लिया होगा। **इसका भी उत्तर पुनर्जन्म की व्याख्या से समझ लेना।** परन्तु इतना समझो कि जीव शाश्वत अर्थात् नित्य है और उसके कर्म भी प्रवाहरूप से नित्य हैं। कर्म और कर्मवान् का नित्य सम्बन्ध होता है। क्या वह जीव कहीं निकम्मा बैठा रहा था वा रहेगा? और परमेश्वर भी 'निकम्मा' तुम्हारे कहने से होता है। पूर्वापर जन्म न मानने से **'कृतहानि'** और **'अकृताभ्यागम' 'नैर्घृण्य'** और **'वैषम्य'** दोष भी ईश्वर में आते हैं— **[प्रथम]**—क्योंकि जन्म न हो तो पाप-पुण्य के फल-भोग की हानि हो जाये। क्योंकि जिस प्रकार दूसरे को सुख-दुःख, हानि-लाभ पहुँचाया होता है, वैसा उसका फल विना शरीर धारण किये नहीं होता। **दूसरा**—पूर्वजन्म के पाप-पुण्यों के विना दुःख-सुख की प्राप्ति इस जन्म में क्योंकर होवे? **[तीसरा]**—जो पूर्वजन्म के पाप-पुण्यानुसार न होवे तो परमेश्वर अन्यायकारी और **[चौथा]**—'विना भोग किये नाश' के समान कर्म का फल हो जावे। इसलिये यह भी बात आप लोगों की अच्छी नहीं।

[ईश्वर के अतिरिक्त किसी अन्य को देव न मानना भी ठीक नहीं]

१०. और एक यह कि ईश्वर के अतिरिक्त दिव्यगुणवाले पदार्थों और विद्वानों को भी 'देव' न मानना, ठीक नहीं; क्योंकि परमेश्वर महादेव है, और जो देव न होते तो सब देवों का स्वामी होने से 'महादेव' क्योंकर कहाता?

[अग्निहोत्र और शिखा-सूत्रादि को छोड़ बैठना अच्छा नहीं]

११. एक, अग्निहोत्रादि परोपकारक कर्मों को कर्त्तव्य न समझना अच्छा नहीं।

१२. ऋषि-महर्षियों के किये उपकारों को न मानकर ईसा आदि के पीछे झुक पड़ना, अच्छा नहीं।

१३. और कारण विद्या [रूप] वेदों के विना अन्य कार्य विद्याओं की प्रवृत्ति मानना सर्वथा असम्भव है।

१४. और जो विद्या के चिह्न **'यज्ञोपवीत'** और **'शिखा'** को छोड़ मुसलमानों-ईसाइयों के सदृश बन बैठना व्यर्थ है। जब पतलून आदि वस्त्र पहरते हो और **'तमगों'** की इच्छा करते हो, तो क्या यज्ञोपवीत आदि का कुछ बड़ा भार हो गया था?

१५. और ब्रह्मा से लेकर पीछे-पीछे आर्यावर्त में बहुत से विद्वान् हो गये हैं; उनकी प्रशंसा न करके यूरोपियनों की ही स्तुति में उतर पड़ना, पक्षपात और खुशामद के विना क्या कहा जाय?

[जीवों को उत्पन्न मानना ठीक नहीं, वे तो अनादि हैं]

१६. और बीजाङ्कुर के समान जड़-चेतन के योग से जीवोत्पत्ति मानना, उत्पत्ति के पूर्व जीवतत्त्व का न मानना और उत्पन्न का नाश न मानना, **पूर्वापर-विरुद्ध** है। जो उत्पत्ति के पूर्व चेतन और जड़ वस्तु न था तो जीव कहाँ से आये? और संयोग किनका हुआ? जो इन दोनों को सनातन मानते हो तो ठीक है, परन्तु सृष्टि के पूर्व ईश्वर के विना दूसरे किसी तत्त्व को न मानना, यह आपका पक्ष व्यर्थ हो जायगा।

[उन्नति चाहो, तो आर्यसमाज के साथ मिलो]

इसलिये जो उन्नति करना चाहो तो 'आर्यसमाज' के साथ मिलकर उसके उद्देश्यानुसार आचरण करना स्वीकार कीजिये, नहीं तो कुछ हाथ न लगेगा। क्योंकि हम और आपको अति उचित है कि जिस देश के पदार्थों से अपना शरीर बना, अब भी पालन होता है, आगे होगा, उसकी उन्नति तन-मन-धन से सब जने मिलकर प्रीति से करें। इसलिये जैसा आर्यसमाज आर्यावर्त देश की उन्नति का कारण है, वैसा दूसरा नहीं हो सकता। यदि इस समाज को यथावत् उन्नति देवें तो बहुत अच्छी बात है; क्योंकि समाज का सौभाग्य बढ़ाना 'समुदाय' का काम है, [किसी] 'एक' का नहीं।

[धर्म सबका एक ही होता है, अनेक नहीं]

प्रश्न—आप सबका खण्डन करते ही आते हो, परन्तु अपने-अपने धर्म में सब अच्छे हैं, खण्डन किसी का न करना चाहिये; और जो करते हो तो आप इनसे विशेष क्या बतलाते हो? जो बतलाते हो तो क्या 'आप से अधिक वा तुल्य कोई पुरुष न था, और न है, ऐसा अभिमान करना आपको उचित नहीं। क्योंकि परमात्मा की सृष्टि में एक, एक से अधिक, तुल्य और न्यून बहुत हैं; किसी को घमण्ड करना उचित नहीं।

उत्तर—धर्म एक होता है वा अनेक? जो कहो अनेक होते हैं, तो एक-दूसरे से विरुद्ध होते हैं वा अविरुद्ध? **जो कहो विरुद्ध होते हैं तो एक के विना दूसरा धर्म नहीं हो सकता, और जो कहो अविरुद्ध हैं तो पृथक्-पृथक् होना व्यर्थ है। इसलिये धर्म और अधर्म एक [-एक] ही हैं, अनेक नहीं; यही हम विशेष कहते हैं।**

जैसे, सब सम्प्रदायों के उपदेशकों को कोई राजा इकट्ठा करे तो एक सहस्र से कम नहीं होंगे, परन्तु इनका मुख्य भाग देखो तो **पुराणी**, **किरानी**, **जैनी** और **कुरानी** चार ही हैं; क्योंकि इन चारों में सब सम्प्रदाय आ जाते हैं।

[धर्म-जिज्ञासा, और वाममार्गी से पूछताछ]

कोई राजा उनकी सभा करके [अथवा] कोई जिज्ञासु होकर प्रथम **वाममार्गी** से पूछे—“हे महाराज! मैंने आज तक न कोई गुरु और न

किसी धर्म का ग्रहण किया है। कहिये, सब धर्मों में से उत्तम धर्म किसका है, जिसको मैं ग्रहण करूं?"

वाममार्गी—हमारा है।

जिज्ञासु—ये नौ-सौ निन्न्यानवे कैसे हैं?

वाममार्गी—सब झूठे और नरकगामी हैं, क्योंकि **'कौलात्परतरं नहि'** [कुलार्णव तन्त्र २।८] इस वचन के प्रमाण से हमारे धर्म से परे कोई धर्म नहीं है।

जिज्ञासु—आपका धर्म क्या है?

वाममार्गी—भगवती का मानना, मद्य-मांसादि पञ्च मकारों का सेवन, **'रुद्रयामल'** आदि चौंसठ तन्त्रों का मानना इत्यादि। जो तू मुक्ति की इच्छा करता है तो हमारा चेला हो जा।

जिज्ञासु—अच्छा, मैं औरों का भी दर्शन कर और पूछ आऊँ। पश्चात् जिसमें मेरी श्रद्धा और प्रीति होगी उसका चेला हो जाऊँगा।

वाममार्गी—अरे! क्यों भ्रान्ति में पड़ा है। ये लोग तुझको बहकाकर अपने जाल में फसा देंगे। किसी के पास मत जा, हमारे ही शरणागत हो जा, नहीं तो पछतावेगा। देख, हमारे मत में भोग और मोक्ष दोनों हैं।

जिज्ञासु—अच्छा, देख तो आऊँ।

[शैव मत-वाले से पूछताछ]

आगे चलकर **शैव** के पास जाकर पूछा। उसने भी ऐसा ही उत्तर दिया। इतना विशेष कहा कि "विना शिव, रुद्राक्ष-भस्म-धारण और लिङ्गार्चन के मुक्ति कभी नहीं होती।"

[नवीन वेदान्ती से पूछताछ]

वह उसको छोड़ **नवीन वेदान्तियों** के पास गया।

जिज्ञासु—कहो महाराज! आपका धर्म क्या है?

वेदान्ती—हम धर्माधर्म कुछ भी नहीं मानते, हम साक्षात् ब्रह्म हैं, हममें धर्म-अधर्म कहाँ हैं? यह जगत् सब मिथ्या है। और जो ज्ञानी, शुद्ध-चेतन हुआ चाहे तो तू भी अपने को ब्रह्म मान, जीव-भाव को छोड़, नित्यमुक्त हो जायगा।

जिज्ञासु—जो तुम ब्रह्म नित्यमुक्त हो तो ब्रह्म के गुण-कर्म-स्वभाव तुममें क्यों नहीं? और शरीर में क्यों बंधे हो?

वेदान्ती—तुझको शरीर दीखता है, इसी से तू भ्रान्त है; हमको कुछ नहीं दीखता सिवाय ब्रह्म के।

जिज्ञासु—तुम देखनेवाले कौन, और किसको देखते हो?

वेदान्ती—देखनेवाला ब्रह्म, और ब्रह्म को ब्रह्म देखता है।

जिज्ञासु—क्या दो ब्रह्म हैं?

वेदान्ती—नहीं, अपने आपको देखता है।

जिज्ञासु—क्या कोई अपने कँधे पर आप चढ़ सकता है? तुम्हारी बात कुछ नहीं, यह पागलपन की बात है।

[जैनियों से पूछताछ]

उसने आगे चलकर **जैनियों** से पूछा। उन्होंने भी वैसा ही कहा। इतना विशेष कहा कि "जिनधर्म के विना सब धर्म खोटे हैं, जगत् का कर्त्ता अनादि ईश्वर कोई नहीं, जगत् अनादि काल से जैसा का वैसा बना है और बना रहेगा। आ, तू हमारा चेला हो जा, क्योंकि हम 'सम्यक्त्वी' अर्थात् सब प्रकार से अच्छे हैं, उत्तम बातों को मानते हैं, जैनमार्ग से भिन्न सब मिथ्यात्वी हैं।"

[ईसाई से पूछताछ]

आगे चलके **ईसाई** से पूछा। उसने वाममार्गी के तुल्य सब जवाब-सवाल किये। इतना विशेष बतलाया—"सब मनुष्य पापी हैं, अपने सामर्थ्य से पाप नहीं छूटता। विना ईसा पर विश्वास के पवित्र होकर मुक्ति को नहीं पा सकता। ईसा ने सबके प्रायश्चित्त के लिये अपने प्राण देकर दया प्रकाशित की है। तू हमारा ही चेला हो जा।"

[मौलवी साहब से पूछताछ]

जिज्ञासु सुनकर **मौलवी** साहब के पास गया। उनसे भी ऐसे ही जवाब-सवाल हुए। [मौलवी ने] इतना विशेष कहा— "लाशरीक ख़ुदा, उसके पैग़म्बर और **'कुरान शरीफ़'** को विना माने कोई निजात नहीं पा सकता। जो इस मज़हब को नहीं मानता, वह दोज़ख़ी और काफ़िर है, वाजिबुलक़त्ल है।"

[वैष्णवादि मत-वालों से पूछताछ]

जिज्ञासु सुनकर **वैष्णव** के पास गया। वैसे ही संवाद हुआ। उसने इतना विशेष कहा कि "हमारे तिलक-छापे देखकर यमराज डर जाता है।" जिज्ञासु ने मन में समझा कि जब मच्छर, मक्खी, पुलिस के सिपाही, चोर, डाकू और शत्रु नहीं डरते तो यमराज के गण क्यों डरेंगे?

फिर आगे चला तो सब मत-वालों ने अपने-अपने को सच्चा कहा। कोई हमारा कबीर सच्चा, कोई नानक, कोई दादू, कोई वल्लभ, कोई सहजानन्द, कोई मध्व आदि को बड़ा और अवतार बतलाते सुना। सहस्र से पूछ, उनके परस्पर-विरोध देख, विशेष निश्चय किया कि इनमें कोई

गुरु करने योग्य नहीं; क्योंकि एक-एक की झूठ में नौ-सौ निन्न्यानवे गवाह हो गये। जैसे झूठे दुकानदार वा वेश्या और भड़ुआ आदि अपने-अपने वस्तु की बड़ाई, दूसरे की बुराई करते हैं, वैसे ही ये हैं; ऐसा जान।

[आप्त विद्वान् द्वारा ही वास्तविकता का बोध]

तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्॥१॥
तस्मै स विद्वानुपसन्नाय सम्यक् प्रशान्तचित्ताय शमान्विताय।
येनाक्षरं पुरुषं वेद सत्यं प्रोवाच तां तत्त्वतो ब्रह्मविद्याम्॥२॥

मुण्डक [उप० १।२।१२-१३]

उस सत्य के विज्ञानार्थ वह 'समित्पाणि' अर्थात् हाथ जोड़, अरिक्तहस्त होकर, परमात्मा को जाननेहारे ब्रह्मनिष्ठ वेदवित् गुरु के पास जावे। इन पाखण्डियों के जाल में न गिरे॥१॥

जब ऐसा जिज्ञासु विद्वान् के पास आये, उस शान्तचित्त, जितेन्द्रिय, समीप-प्राप्त जिज्ञासु को यथार्थ ब्रह्मविद्या=परमात्मा के गुण-कर्म-स्वभाव का उपदेश करे और जिस-जिस साधन से वह श्रोता धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष और परमात्मा को जान सके, वैसी शिक्षा किया करे॥२॥

जब वह ऐसे पुरुष के पास जाकर बोला कि 'महाराज! अब इन सम्प्रदायों के बखेड़ों से मेरा चित्त भ्रान्त हो गया, क्योंकि जो मैं इनमें से किसी एक का चेला होऊँगा तो नौ-सौ निन्यानवे से विरोधी होना पड़ेगा।

जिसके नौ-सौ निन्यानवे शत्रु और एक मित्र है, उसको सुख कभी नहीं हो सकता। इसलिये आप मुझको उपदेश कीजिये, जिसको मैं ग्रहण करूं।

आप्तविद्वान्—ये सब मत अविद्याजन्य [और] विद्याविरोधी हैं। मूर्ख, पामर और जंगली मनुष्यों को बहकाकर अपने जाल में फसाके अपना प्रयोजन सिद्ध करते हैं। वे बेचारे अपने मनुष्यजन्म के फल से रहित होकर अपना मनुष्यजन्म व्यर्थ गमाते हैं। देख, जिस बात में ये सहस्र एकमत हों, वह वेदमत ग्राह्य है और जिसमें परस्परविरोध हो, वह कल्पित, झूठा अधर्म अग्राह्य है।

[उत्तम बातों में सब मत वालों की सहमति]

जिज्ञासु—इसकी परीक्षा कैसे हो?

आप्त—तू जाकर इन-इन बातों को पूछ। सबकी एक सम्मति हो जायगी।

तब वह उन सहस्र की मण्डली के बीच में खड़ा होकर बोला कि “सुनो सब लोगो! सत्यभाषण में धर्म है वा मिथ्या में?"

सब एकस्वर होकर बोले कि "सत्यभाषण में धर्म और मिथ्याभाषण में अधर्म है।"

"वैसे ही विद्या पढ़ने, ब्रह्मचर्य करने, पूर्ण युवावस्था में विवाह, सत्सङ्ग, पुरुषार्थ, सत्य व्यवहार आदि में धर्म है अथवा अविद्या-ग्रहण, ब्रह्मचर्य न करने, व्यभिचार करने, कुसङ्ग, आलस्य, असत्य व्यवहार, छल, कपट, हिंसा, परहानि करने आदि कर्मों में?"

सबने एकमत होके कहा कि "विद्यादि के ग्रहण में धर्म और अविद्यादि के ग्रहण में अधर्म [है]।"

[फिर सब मिलकर एक ही मत को क्यों नहीं अपनाते?]

तब जिज्ञासु ने सबसे कहा कि तुम इसी प्रकार सब जने एकमत हो सत्यधर्म की उन्नति और मिथ्यामार्ग की हानि क्यों नहीं करते हो?

वे सब बोले—"जो हम ऐसा करें तो हमको कौन पूछे? हमारे चेले हमारी आज्ञा में न रहें, जीविका नष्ट हो जाय, फिर जो हम आनन्द कर रहे हैं, सो सब हाथ से जाय। इसलिये हम जानते हैं तो भी अपने-अपने मत का उपदेश और आग्रह करते ही जाते हैं। क्योंकि **'रोटी खाइये शक्कर से और दुनिया ठगिये मक्कर से'** ऐसी बात है। देखो, संसार में सूधे-सच्चे मनुष्य को कोई नहीं पूछता। जो कुछ ढोंग, धूर्त्तता करता है, वही पदार्थ पाता है।"

[ठगी करने पर भी राजा से दण्ड क्यों नहीं?]

जिज्ञासु—जो तुम ऐसा पाखण्ड चलाकर अन्य मनुष्यों को ठगते हो, तुमको राजा दण्ड क्यों नहीं देता?

मत-वाले—हमने राजा को भी अपना चेला बना लिया है। हमने पक्का प्रबन्ध किया है, छूटेगा नहीं।

जिज्ञासु—जब तुम छल से अन्य मनुष्यों को ठग, उनकी हानि करते हो, परमेश्वर के सामने क्या उत्तर दोगे? और घोर नरक में पड़ोगे। थोड़े जीवन के लिये इतना बड़ा अपराध करना क्यों नहीं छोड़ते?

मत-वाले—देखा जायगा, नरक और परमेश्वर का दण्ड जब होगा तब होगा; अब तो आनन्द करते हैं। लोग हमको प्रसन्नता से धन देते हैं, बलात्कार से नहीं लेते; फिर राजा दण्ड क्यों देवे?

जिज्ञासु—जैसे कोई छोटे बालक को फुसलाके धनादि पदार्थ हर लेता है, जैसे उसको दण्ड मिलता है, वैसे तुमको क्यों नहीं मिलता? क्योंकि—

अज्ञो भवति वै बालः पिता भवति मन्त्रदः॥

मनुस्मृति [२।१५३]

जो ज्ञानरहित होता है, वह 'बालक' और जो ज्ञान का देनेवाला है, वह 'पिता' और 'वृद्ध' कहाता है। **जो बुद्धिमान् विद्वान् है, वह तो तुम्हारी बातों में नहीं फसता, किन्तु अज्ञानी जो बालक के सदृश हैं, उनको ठगने में तुमको राजदण्ड अवश्य होना चाहिये।**

मत-वाले—जब राजा-प्रजा सब हमारे मत में हैं, तो हमको दण्ड कौन देनेवाला है? जब ऐसी व्यवस्था होगी तब इन बातों को छोड़कर दूसरी व्यवस्था करेंगे।

[वैसे ही लाखों रुपया मिले, तो श्रम क्यों करना?]

जिज्ञासु—जो तुम बैठे-बैठे व्यर्थ माल मारते हो, जो विद्याभ्यास कर गृहस्थों के लड़के-लड़कियों को पढ़ाओ तो तुम्हारा और गृहस्थों का कल्याण हो जाय।

मत-वाले—जो हम बाल्यावस्था से लेकर मरण तक के सुखों को छोड़ें, बाल्यावस्था से युवावस्था तक विद्या पढ़ने में, पश्चात् पढ़ाने में और उपदेश करने में जन्मभर परिश्रम करें, हमको क्या प्रयोजन? हमको ऐसे ही लाखों रुपये मिलते हैं, चैन उड़ाते हैं, उसको क्यों छोड़ें?

जिज्ञासु—इसका परिणाम तो बुरा है। देखो, तुमको बड़े रोग होते हैं, शीघ्र मर जाते हो, बुद्धिमानों में निन्दित होते हो, फिर भी क्यों नहीं समझते?

[रुपया ही सब कुछ है]

मत-वाले—अरे भाई!

टका धर्मष्टका कर्म टका हि परमं पदम्।
यस्य गृहे टका नास्ति हा! टकां टकटकायते॥१॥
आना अंशकलाः प्रोक्ता रूप्योऽसौ भगवान् स्वयम्।
अतस्तं सर्व इच्छन्ति रूप्यं हि गुणवत्तमम्॥२॥

तू लड़का है, संसार की बातें नहीं जानता। देख, टका के विना धर्म, टका के विना कर्म, टका के विना परमपद नहीं होता। जिसके घर में टका नहीं है, वह 'हाय, टका-टका' करता-करता, उत्तम पदार्थों को टक-टक देखता रहता है कि हाय! मेरे पास टका होता तो इस उत्तम पदार्थ को मैं भोगता॥१॥

क्योंकि सब कोई सोलह कलायुक्त अदृश्य भगवान् का कथन-श्रवण करते हैं, सो तो नहीं दीखता, परन्तु सोलह आने और पैसे-कौड़ी-रूप अंश-कलायुक्त जो रुपया है, वही साक्षात् भगवान् है। इसीलिये सब कोई रुपयों की खोज में लगे हैं, क्योंकि सब काम रुपयों से सिद्ध होते हैं॥२॥

[व्यापारादि में हानि की सम्भावना; पाखण्डों में लाभ ही लाभ]

जिज्ञासु—ठीक है, तुम्हारी भीतर की लीला बाहर आ गई। तुमने जितना यह पाखण्ड खड़ा किया है, वह सब अपने सुख के लिये किया है, परन्तु इससे जगत् का नाश होता है; क्योंकि **जैसे सत्योपदेश से संसार को लाभ पहुँचता है, वैसे ही असत्योपदेश से हानि होती है।** जब तुमको धन का ही प्रयोजन था तो नौकरी, व्यापार आदि करके धन क्यों नहीं कमाते?

मत-वाले—उसमें परिश्रम अधिक [होता है] और हानि भी होती है, परन्तु इसमें हानि कभी नहीं होती लाभ ही लाभ होता है। देखो, तुलसी-दल डालके चरणामृत देकर कंठी बांध देते हैं, इस प्रकार चेला

मूंडने से वह जन्मभर के लिए पशुवत् हो जाता है, फिर चाहें जैसे चलावें, वैसे ही चलता है।

[इन पाखण्डों से तो नरक मिलेगा]

जिज्ञासु—ये लोग तुमको बहुत-सा धन किसलिये देते हैं?

मत-वाले—धर्म, स्वर्ग और मुक्ति के अर्थ।

जिज्ञासु—जब तुम ही मुक्त नहीं, न मुक्ति का स्वरूप वा साधन जानते हो, तो तुम्हारी सेवा करनेवालों को क्या मिलेगा?

मत-वाले—क्या इस लोक में मिलता है? नहीं, किन्तु परलोक में मिलता है। जितना हमको ये लोग देते वा सेवा करते हैं, वह सब परलोक में इन लोगों को मिल जाता है।

जिज्ञासु—इनको तो दिया हुआ मिल जाता है वा नहीं [किन्तु] तुम लेनेवालों को क्या मिलेगा, नरक वा अन्य कुछ?

[पाखण्डियों का ईश-भजन केवल दिखावामात्र है]

मत-वाले—हम भजन करते हैं, इसका सुख हमको मिलेगा।

जिज्ञासु—तुम्हारा भजन तो 'टका' के ही लिये है। वे सब टके यहीं पड़े रहेंगे, जिस मांसपिण्ड को यहाँ पालते हो, वह भस्म हो जायगा। जो तुम परमेश्वर का भजन करते होते तो तुम्हारा आत्मा भी पवित्र होता।

[आन्तरिक शुद्धि-अशुद्धि]

मत-वाले—क्या हम अशुद्ध हैं?

जिज्ञासु—भीतर के बड़े मैले हो।

मत-वाले—तुमने कैसे जाना?

जिज्ञासु—तुम्हारे चाल-चलन और व्यवहार से।

मत-वाले—महात्माओं का व्यवहार हाथी के दाँत के तुल्य होता है। जैसे हाथी के दाँत खाने के भिन्न, दिखलाने के पृथक् होते हैं, वैसे ही भीतर से हम पवित्र हैं और बाहर से लीलामात्र करते हैं।

जिज्ञासु—जो तुम भीतर से शुद्ध होते तो तुम्हारे बाहर के काम भी शुद्ध होते, इसलिये भीतर भी मैले हो।

मत-वाले—हम चाहे जैसे हों परन्तु हमारे चेले तो अच्छे हैं।

जिज्ञासु—जैसे तुम गुरु हो, वैसे तुम्हारे चेले भी होंगे।

[क्या सबका एकमत कभी नहीं हो सकता?]

मत-वाले—एक मत कभी नहीं हो सकता, क्योंकि मनुष्य के गुण-कर्म-स्वभाव भिन्न-भिन्न हैं।

जिज्ञासु—जो बाल्यावस्था में एक-सी शिक्षा हो, सत्यभाषणादि धर्म का ग्रहण और मिथ्याभाषणादि अधर्म का त्याग करें, तो एक मत अवश्य हो जाय। और दो मत अर्थात् धर्मात्मा और अधर्मात्मा सदा रहते हैं, वे तो रहें, परन्तु धर्मात्मा अधिक होने और अधर्मी न्यून होने से संसार में सुख बढ़ता है और जब अधर्मी अधिक होते हैं तब दुःख। जब सब विद्वान् एक-सा उपदेश करें तो एक मत होने में कुछ भी विलम्ब न हो।

[कलियुग धर्मकार्य में बाधक नहीं होता]

मत-वाले—आजकल **'कलियुग'** है, **'सत्य-युग'** की बात मत चाहो।

जिज्ञासु—'कलियुग' नाम काल का है। **काल निष्क्रिय होने से धर्माधर्म के करने में कुछ साधक-बाधक नहीं;** किन्तु तुम ही कलियुग की मूर्त्तियाँ बन रहे हो। जो मनुष्य ही 'सत्ययुग'-'कलियुग' न हों तो कोई भी संसार में धर्मात्मा-[अधर्मात्मा] न होता। ये सब सङ्ग के गुण-दोष हैं, स्वाभाविक नहीं।

[जिज्ञासु की पुनः आप्त विद्वान् से भेंट]

इतना कहकर आप्त के पास गया। उनसे कहा कि 'महाराज ! तुमने मेरा उद्धार किया, नहीं तो मैं भी किसी के जाल में फसकर नष्ट हो जाता। **अब मैं भी इन पाखण्डियों का खण्डन और वेदोक्त सत्य-मत का मण्डन किया करूँगा।'**

आप्त—यही सब मनुष्यों का, विशेषतः विद्वानों और संन्यासियों का काम है कि सब मनुष्यों को सत्य का मण्डन और असत्य का खण्डन पढ़ा-सुनाके सत्योपदेश से उपकार पहुँचाना चाहिये।

[नामधारी ब्रह्मचारियों और संन्यासियों की समीक्षा]

प्रश्न—ब्रह्मचारी, संन्यासी तो ठीक हैं?

उत्तर—ये आश्रम तो ठीक हैं, परन्तु आजकल इनमें भी बहुत-सी गड़बड़ है। कितने ही नाम 'ब्रह्मचारी' रखते, जटा बढ़ाकर झूठ-मूठ सिद्धाई करते, जप-पुरश्चरण आदि में फसे रहते, विद्या पढ़ने का नाम नहीं लेते कि **जिस हेतु से 'ब्रह्मचारी' नाम होता है, उस 'ब्रह्म' अर्थात् वेद पढ़ने में परिश्रम कुछ भी नहीं करते। वे ब्रह्मचारी बकरी के गले के स्तन के सदृश निरर्थक हैं।** और जो वैसे संन्यासी विद्याहीन, दण्ड-कमण्डलु ले, भिक्षा करते-फिरते हैं, जो कुछ भी वेदमार्ग की उन्नति नहीं करते, छोटी अवस्था में संन्यास लेकर घूमा करते, विद्याभ्यास को छोड़ देते हैं, ऐसे ब्रह्मचारी और संन्यासी इधर-उधर जल, स्थल, पाषाणादि मूर्त्तियों का दर्शन-पूजन करते-फिरते, विद्या जानकर भी मौन हो रहते, एकान्त देश में यथेष्ट खा-पीकर सोते पड़े रहते, ईर्ष्या-द्वेष में फसकर निन्दा-कुचेष्टा करके निर्वाह करते, काषाय वस्त्र और दण्ड-ग्रहणमात्र से अपने को कृतकृत्य समझते, अपने को सर्वोत्कृष्ट जान उत्तम काम नहीं करते, **वैसे 'संन्यासी' भी जगत् में व्यर्थ वास करते हैं; और जो सब जगत् का हित साधते हैं, वे ठीक हैं।**

[गिरी पुरी आदि संन्यासी संसार में भाररूप]

प्रश्न—गिरि, पुरी, आदि गोसाँई लोग तो अच्छे हैं, क्योंकि मण्डलियाँ बाँधकर इधर-उधर घूमते हैं, सैकड़ों साधुओं को आनन्द कराते हैं, सर्वत्र अद्वैत मत का उपदेश करते हैं, और कुछ पढ़ते-पढ़ाते भी हैं, इसलिये वे अच्छे होंगे।

उत्तर—ये सब दश नाम पीछे से कल्पित किये हैं, सनातन नहीं। उनकी मण्डलियाँ भोजनार्थ हैं। बहुत से साधु भोजन के ही लिये मण्डलियों में रहते हैं। दम्भी भी हैं, क्योंकि एक को महन्त बना [उसी को प्रणाम करते हैं], सायंकाल में एक महन्त जो कि उनमें प्रधान होता है, वह गद्दी पर बैठ जाता है। सब ब्राह्मण और साधु खड़े होकर हाथ में पुष्प ले—

नारायणं पद्मभवं वसिष्ठं शक्तिं च तत्पुत्रपराशरं च।
व्यासं शुकं गौडपदं महान्तम्.........................॥

[पुष्पाञ्जलि]

इत्यादि श्लोक पढ़के 'हर-हर' बोल, उनके ऊपर पुष्पवर्षा कर साष्टांग नमस्कार करते हैं। जो कोई ऐसा न करे, उसका वहाँ रहना कठिन है। यह दम्भ संसार को दिखलाने के लिये करते हैं, जिससे जगत् में प्रतिष्ठा होकर माल मिले।

कितने ही मठधारी गृहस्थ होकर भी संन्यास का अभिमान मात्र करते हैं, कर्म कुछ नहीं। संन्यासी का वही कर्म है, जो पाँचवें समुल्लास में लिख आये। उसको न करके व्यर्थ समय खोते हैं। जो कोई अच्छा उपदेश करे, उसके भी विरोधी होते हैं। बहुधा ये लोग भस्म, रुद्राक्ष धारण करते और कोई-कोई शैव तथा वैष्णव आदि सम्प्रदाय का अभिमान रखते हैं। और जब कभी शास्त्रार्थ करते हैं तो अपने मत अर्थात् शंकराचार्योक्त का स्थापन और चक्रांकित आदि के खण्डन में प्रवृत्त रहते हैं। **वेदमार्ग की उन्नति और यावत्पाखण्ड मार्ग हैं तावत् के खण्डन में प्रवृत्त नहीं होते। ये संन्यासी लोग ऐसा समझते हैं कि हमको खण्डन-मण्डन से क्या प्रयोजन? हम तो महात्मा हैं। ऐसे लोग भी संसार में भाररूप हैं।**

[वेदानुयायियों का ह्रास होने पर भी उधर ध्यान नहीं]

जब ऐसे हैं, तभी तो वेदमार्गविरोधी वाममार्गादि सम्प्रदायी, ईसाई, मुसलमान, जैनी आदि बढ़ गये, और अब भी बढ़ते जाते हैं और इनका नाश होता जाता है तो भी इनकी आँख नहीं खुलती। खुले कहाँ से? जो कुछ उनके मन में परोपकार-बुद्धि और कर्त्तव्यकर्म करने में उत्साह होवे, किन्तु ये लोग अपनी प्रतिष्ठा खाने-पीने के सामने अन्य अधिक कुछ भी नहीं समझते और संसार की निन्दा से बहुत डरते हैं।

[त्रिविध एषणा-परित्याग के विना संन्यास व्यर्थ]

पुनः **लोकैषणा**=अर्थात् लोक में प्रतिष्ठा, **वित्तैषणा**=धन बढ़ाने में तत्पर होकर विषयभोग, **पुत्रैषणा**=पुत्रवत् शिष्यों पर मोहित होना, इन तीन एषणाओं का त्याग करना उचित है। **जब एषणा ही नहीं छूटी, पुनः**

संन्यास क्योंकर हो सकता है? अर्थात् पक्षपातरहित वेदमार्गोपदेश से जगत् के कल्याण करने में अहर्निश प्रवृत्त रहना संन्यासियों का मुख्य काम है। संन्यासी भी हुए, किन्तु जब अपने-अपने अधिकार के कर्मों को नहीं करते, पुनः संन्यासी आदि नाम धराना व्यर्थ है। नहीं तो जैसे गृहस्थ व्यवहार और स्वार्थ में परिश्रम करते हैं उनसे अधिक परिश्रमपूर्वक परोपकार करने में संन्यासी तत्पर रहैं, तभी सब आश्रम उन्नति पर रहैं।

[संन्यासियो ! अपने उजड़ते घर को बचाओ]

देखो, तुम्हारे सामने पाखण्ड-मत बढ़ते जाते हैं। ईसाई, मुसलमान तक हो रहे हैं। तनिक भी तुमसे अपने घर की रक्षा और दूसरों को मिलाना नहीं बन सकता। बने तो तब, जब तुम करना चाहो! जब तक वर्तमान और भविष्यत् में संन्यासी उन्नतिशील नहीं होते, तब तक आर्यावर्त और अन्य-देशस्थ मनुष्यों की वृद्धि नहीं होती। जब वृद्धि के कारण वेदादि शास्त्रों का पठनपाठन, ब्रह्मचर्यादि आश्रमों के यथावत् अनुष्ठान, सत्योपदेश होते हैं, तभी देशोन्नति होती है।

[तुम्हारी आँखों के सामने ही पाखण्ड पनप रहे हैं]

चेत रक्खो! बहुत-सी पाखण्ड की बातें तुमको सचमुच दीख पड़ती हैं। जैसे कोई साधु दुकानदार पुत्र देने की सिद्धि बतलाता है तब उसके पास बहुत स्त्रियां जाती हैं, सब पुत्र माँगती हैं, और बाबा जी सबको पुत्र होने का आशीर्वाद देता है। उनमें से जिस-जिस को पुत्र होता है, वह-वह समझती है कि बाबा जी के वचन से हुआ। जब उनसे कोई पूछे कि सुअरी, कुत्ती, गधी आदि पशु और मुर्गी आदि पक्षियों के कच्चे-बच्चे

किस बाबा जी के वर से होते हैं? तो कुछ भी उत्तर न दे सकेगा। जो कोई कहे कि मैं लड़के को जीता रख सकता हूँ, तो आप ही क्यों मर जाता है?

[धनसारी के ठगों=सिद्ध-साधकों की लीलाएँ]

कितने ही धूर्त्त लोग ऐसी माया रचते हैं कि बड़े-बड़े बुद्धिमान् भी धोखा खा जाते हैं, जैसे धनसारी के ठग। ये लोग पाँच-सात मिलके दूर-दूर देश में जाते हैं। जो शरीर से डीलडौल में अच्छा होता है, उसको सिद्ध बनाते हैं। जिस नगर वा ग्राम में धनाढ्य होते हैं, उसके समीप जंगल में उस सिद्ध को बैठाते हैं। उसके साधक नगर में जाके अजान बनके जिस किसी को पूछते हैं—तुमने ऐसे महात्मा को यहाँ कहीं देखा? वह महात्मा कौन और कैसा है?

साधक—बड़ा सिद्ध पुरुष है। मन की बातें बतला देता है। जो मुख से कहता है, वह हो जाता है। बड़ा योगीराज है। उसके दर्शन के लिये हम अपने घर-द्वार छोड़कर देखते-फिरते हैं। मैंने किसी से सुना था कि वह महात्मा इधर की ओर आये हैं।

गृहस्थ—जब वह महात्मा तुमको मिलें तो हमसे कहना, दर्शन करेंगे और मन की बातें पूछेंगे।

इसी प्रकार दिनभर नगर में फिरते और प्रत्येक को उस सिद्ध की बात कहकर रात्रि को सिद्ध-साधक इकट्ठे होकर खाते-पीते, सो रहते हैं। फिर भी प्रात:काल नगर वा ग्राम में जाके, उसी प्रकार दो-तीन दिन कहकर,

फिर चारों साधक किसी एक-एक धनाढ्य से बोलते हैं कि वह महात्मा मिल गये। तुमको दर्शन करना हो तो चलो। वे जब तैयार हो जाते हैं तब साधक उनसे पूछते हैं कि तुम क्या बात पूछना चाहते हो? हमसे कहो। कोई पुत्र की इच्छा करता, कोई धन, कोई रोग-निवारण और कोई शत्रु [को] जीतने की। उनको वे साधक ले जाते हैं।

सिद्ध-साधकों ने जैसा सङ्केत किया होता है अर्थात् जिसको धन की इच्छा हो उसको दाहिनी ओर, जिसको पुत्र की इच्छा हो उसको सम्मुख, जिसको रोग-निवारण की इच्छा हो उसको बाईं ओर, और जिसको शत्रु [को] जीतने की इच्छा हो उसको पीछे से ले जाके सामनेवाले के बीच में बैठाते हैं। जब नमस्कार करते हैं, उसी समय वह सिद्ध उनसे बोलता है कि हमारे पास पुत्र नहीं रक्खा है, जो तू पुत्र की इच्छा करके हमारे पास आया है। इसी प्रकार धन की इच्छावाले से बोलता है "तू धन की इच्छा करके आया है। 'फकीरों' के पास धन कहाँ धरा है?" रोगमुक्ति की इच्छावाले से—"तू रोग छुड़ाने की इच्छा करके आया है? हम वैद्य नहीं, जा किसी वैद्य के पास।"

परन्तु जब उसका पिता रोगी हो तो उसका साधक अंगूठा, जो माता रोगी हो तो तर्जनी, जो भाई रोगी हो तो मध्यमा, जो स्त्री रोगी है तो अनामिका, जो कन्या रोगी हो तो कनिष्ठिका अंगुली को चला देता है। उसको देख वह सिद्ध कहता है कि तेरा पिता रोगी है, तेरी माता, तेरा भाई, तेरी स्त्री और तेरी कन्या रोगी है। तब तो वे चारों बड़े मोहित हो

जाते हैं। साधक लोग उनसे कहते हैं, देखो! जैसा हमने कहा था, वैसे हैं कि नहीं?

गृहस्थ बोलते हैं—हाँ, जैसा तुमने कहा था, वैसे ही हैं। तुमने बड़ा उपकार किया और हमारा बड़ा भाग्य था, जो ऐसे महात्मा का दर्शन हुआ।

साधक लोग कहते हैं कि ये महात्मा बहुत दिन रहनेवाले नहीं हैं। जो कुछ इनसे आशीर्वाद लेना हो तो खूब सेवा करो।

वे गृहस्थ प्रशंसा करते घर की ओर चलते हैं। साधक भी उनके साथ-साथ जाते हैं, क्योंकि मार्ग में कोई उनका पाखण्ड खोल न देवे। उन धनाढ्यों का जो कोई मित्र मिला, उन सबसे प्रशंसा करते हैं। इसी प्रकार जो-जो साधकों के साथ जाते हैं उन-उन का वृत्तान्त सब कह देते हैं।

जब नगर में हल्ला मचता है कि अमुक ठौर पर बड़े भारी सिद्ध आये हैं, चलो उनके पास। तब बहुत मनुष्यों का मेला जाकर बहुत से लोग पूछने लगते हैं कि महाराज! मेरे मन का वृत्तान्त कहिये। तब सिद्ध व्यवस्था बिगड़ जाने से चुपचाप हो जाता है और कहने लगता है कि हमको बहुत दिक़ मत करो। उनके साधक भी सबसे कहने लगते हैं—"जो तुम बहुत दिक़ करोगे तो चले जायेंगे।" उनमें से जो कोई बड़ा धनाढ्य होता है, वह उसके साधक को बुला लेता है और कहता है कि 'हमारे मन की बात कहला दो तो हम मानें।' साधक ने पूछा कि क्या बात है?' धनाढ्य ने जो

कहा, उसको उसी प्रकार संकेत से ले जाके बैठाया। उसे सिद्ध ने समझके झट कह दिया। जब बात सब मेला-भर ने सुन ली कि अहो! बड़े सिद्ध पुरुष हैं तो कोई मिठाई, कोई पैसा, कोई रुपया, कोई अशर्फी, कोई कपड़ा और कोई सीधा-सामग्री धरने लगे। फिर जब तक मान्यता बहुत रही तब तक लूटते रहे और किसी **'आँख के अन्धे गाँठ के पूरे'** को पुत्र होने के लिये आशीर्वाद दिया और सहस्र रुपये लेकर कहा कि तेरी सच्ची भक्ति होगी तो पुत्र होगा।

[ठगों से बचने का उपाय—वेदाध्ययन और सत्सङ्ग]

इस प्रकार के बहुत-से ठग होते हैं, जिनकी विद्वान् ही परीक्षा कर सकता है और कोई नहीं। **इसलिये वेदादि-विद्या का पढ़ना [और] सत्संग करना होता है, जिससे कोई उसको ठगाई में न फसा सके, [और] औरों को भी बचा सके।** क्योंकि **मनुष्य का नेत्र विद्या ही है। विना विद्या-शिक्षा के ज्ञान नहीं होता। जो बाल्यावस्था से उत्तम शिक्षा पाते हैं, वही मनुष्य और विद्वान् होते हैं।** जिनको कुसंग है, वे दुष्ट, पापी, महामूर्ख होकर बड़े दुःख पाते हैं। इसीलिये ज्ञान को विशेष कहा है कि जो जानता है, वही मानता है—

न वेत्ति यो यस्य गुणप्रकर्षं स तस्य निन्दां सततं करोति।
यथा किराती करिकुम्भजाता मुक्ताः परित्यज्य बिभर्ति गुञ्जाः॥

यह किसी कवि का श्लोक है [चाणक्य० ११।८]

जो जिसका गुण नहीं जानता, वह उसकी निन्दा निरन्तर करता है, जैसे जंगली भील गजमुक्ताओं को छोड़के गुंजा का हार पहन लेता है। वैसे ही [गुणज्ञ] **जो पुरुष विद्वान्, ज्ञानी, धार्मिक, सत्पुरुषों का संगी, योगी, पुरुषार्थी, जितेन्द्रिय, सुशील होता है, वही धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष को प्राप्त होकर इस जन्म और परजन्म में सदा आनन्द में रहता है।**

[उपसंहार]

यह आर्यावर्तनिवासी लोगों के मत-विषय में संक्षेप से लिखा। इसके आगे जो थोड़ा-सा आर्य-राजाओं का इतिहास मिला है, इसको सब सज्जनों को जनाने के लिये प्रकाशित किया जाता है।

अब थोड़ा-सा आर्यावर्तदेशीय राजवंश कि जिसमें श्रीमान् महाराजे **'युधिष्ठिर'** से लेके महाराजे **यशपाल** तक हुए हैं, उसका इतिहास लिखते हैं। और श्रीमान् महाराजे **'स्वायम्भुव मनु जी'** से लेके महाराजे युधिष्ठिर तक का इतिहास **'महाभारत'** में लिखा ही है और इससे सज्जन लोगों को इधर के कुछ इतिहास का वर्तमान विदित होगा।

यद्यपि यह विषय **"विद्यार्थी' सम्मिलित 'हरिश्चन्द्रचन्द्रिका' और 'मोहनचन्द्रिका"** जो कि पाक्षिकपत्र श्रीनाथद्वारा से निकलता था, जो राजपूताना देश मेवाड़ राज उदयपुर-चित्तौड़गढ़ में सबको विदित है, उससे हमने अनुवाद किया है। **यदि ऐसे ही हमारे आर्य सज्जन लोग इतिहास और विद्या-पुस्तकों की खोज कर प्रकाश करेंगे तो देश को बड़ा ही**

लाभ पहुँचेगा। उस पत्र-सम्पादक ने अपने मित्र से एक प्राचीन पुस्तक जो कि संवत् विक्रम के १७८२ (सत्रह-सौ बयासी) का लिखा हुआ था, उससे उक्त पत्र के सम्पादक महाशय ने ग्रहण कर अपने संवत् १९३९ मार्गशीर्ष शुक्ल और कृष्ण पक्ष १९-२० किरण अर्थात् दो पाक्षिक पत्रों में छापा है। सो निम्न लिखे प्रमाणे जानिये—

आर्यावर्तदेशीय राजवंशावली

इन्द्रप्रस्थ में आर्य लोगों ने श्रीमन्महाराजे **'यशपाल'** पर्यन्त राज्य किया। जिनमें श्रीमन्महाराजे **'युधिष्ठिर'** से महाराजे **'यशपाल'** तक वंश अर्थात् पीढ़ी अनुमान १२४ (एक सौ चौबीस राजा), वर्ष ४१५७, मास ९, दिन १४, समय में हुए हैं। इनका ब्यौरा—

राजा	शक	वर्ष	मास	दिन
आर्यराजा	१२४	४१५७	९	१४

श्रीमन्महाराजे युधिष्ठिरादि वंश अनुमान पीढ़ी ३०, वर्ष १७७१, मास ११, दिन १० इनका विस्तार—

	आर्यराजा	वर्ष	मास	दिन
१	राजा युधिष्ठिर	३६	८	२५

२	राजा परिक्षित	६०	०	०
३	राजा जनमेजय	८४	७	२३
४	राजा अश्वमेध	८२	८	२२
५	द्वितीयराम	८८	२	८
६	छत्रमल	८१	११	२७
७	चित्ररथ	७५	३	१८
८	दुष्टशैल्य	७५	१०	२४
९	राजा उग्रसेन	७८	७	२१
१०	राजा शूरसेन	७९	८	७
११	भुवनपति	६९	५	५
१२	रणजीत	६५	१०	४
१३	ऋक्षक	६४	७	४
१४	सुखदेव	६२	०	२४
१५	नरहरिदेव	५१	१०	२
१६	सुचिरथ	४२	११	२
१७	शूरसेन (दूसरा)	५८	१०	८
१८	पर्वतसेन	५५	८	१०
१९	मेधावी	५२	१०	१०

२० सोनचीर ५० ८ २१

२१ भीमदेव ४७ ९ २०

२२ नृहरिदेव ४५ ११ २३

२३ पूर्णमल ४४ ८ ७

२४ करदवी ४४ १० ८

२५ अलंमिक ५० ११ ८

२६ उदयपाल ३८ ९ ०

२७ दुवनमल ४० १० २६

२८ दमात ३२ ० ०

२९ भीमपाल ५८ ५ ८

३० क्षेमक ४८ ११ २१

राजा क्षेमक के प्रधान विश्रवा ने क्षेमक राजा को मारकर राज्य किया। पीढ़ी १४, वर्ष ५००, मास ३, दिन १७, इनका विस्तार—

आर्यराजा वर्ष मास दिन

१ विश्रवा १७ ३ २९

२ पुरसेनी ४२ ८ २१

३ वीरसेनी ५२ १० ७

४ अनङ्गशायी ४७ ८ २३

५ हरिजित ३५ ९ १७

६ परमसेनी ४४ २ २३

७ सुखपाताल ३० २ २१

८ कद्रुत ४२ ९ २

९ सज्ज ३२ २ १४

१० अमरचूड़ २७ ३ १६

११ अमीपाल २२ ११ २५

१२ दशरथ २५ ४ १२

१३ वीरसाल ३१ ८ ११

१४ वीरसालसेन ४७ ० १४

राजा वीरसालसेन को वीरमहा प्रधान ने मारकर राज्य किया। वंश १६, वर्ष ४४५, मास ५, दिन ३, इनका विस्तार—

	आर्यराजा	**वर्ष**	**मास**	**दिन**
१	राजा वीरमहा	३५	१०	८

२	अजितसिंह	२७	७	१९
३	सर्वदत्त	२८	३	१०
४	भुवनपति	१५	४	१०
५	वीरसेन	२१	२	१३
६	महीपाल	४०	८	७
७	शत्रुसाल	२६	४	३
८	संघराज	१७	२	१०
९	तेजपाल	२८	११	१०
१०	माणिकचन्द	३७	७	२१
११	कामसेनी	४२	५	१०
१२	शत्रुमर्दन	८	११	१३
१३	जीवनलोक	२८	९	१७
१४	हरिराव	२६	१०	२९
२५	वीरसेन (दूसरा)	३५	२	२०
२६	आदित्यकेतु	२३	११	१३

राजा आदित्यकेतु मगधदेश के राजा को 'धन्धर' नामक राजा प्रयाग के ने मारकर राज्य किया। वंशपीढ़ी ९, वर्ष ३७४, मास ११, दिन २६, इनका विस्तार—

	आर्यराजा	वर्ष	मास	दिन
१	राजा धन्धर	४२	७	२४
२	महर्षी	४१	२	२९
३	सनरच्ची	५०	१०	१९
४	महायुद्ध	३०	३	८
५	दुरनाथ	२८	५	२५
६	जीवनराज	४५	२	५
७	रुद्रसेन	४७	४	२८
८	आरीलक	५२	१०	८
९	राजपाल	३६	०	०

राजा राजपाल को सामन्त महानपाल ने मारकर राज्य किया। पीढ़ी १, वर्ष १४, मास ०, दिन ०, इनका विस्तार नहीं है।

राजा महानपाल के राज्य पर राजा विक्रमादित्य ने **'अवन्तिका'** (उज्जैन) से चढ़ाई करके राजा महानपाल को मारके राज्य किया। पीढ़ी १, वर्ष ९३, मास ०, दिन ०, इनका विस्तार नहीं है।

राजा विक्रमादित्य को शालिवाहन के उमराव पैठण के समुद्रपाल योगी ने

मारकर राज्य किया। पीढ़ी १६, वर्ष ३७२, मास ४, दिन २७, इनका विस्तार—

	आर्यराजा	वर्ष	मास	दिन
१	समुद्रपाल	५४	२	२०
२	चन्द्रपाल	३६	५	४
३	सहायपाल	११	४	११
४	देवपाल	२७	१	२८
५	नरसिंहपाल	१८	०	२०
६	सामपाल	२७	१	१७
७	रघुपाल	२२	३	२५
८	गोविन्दपाल	२७	१	१७
९	अमृतपाल	३६	१०	१३
१०	बलीपाल	१२	५	२७
११	महीपाल	१३	८	४
१२	हरीपाल	१४	८	४
१३	सीसपाल*	११	१०	१३
१४	मदनपाल	१७	१०	१९

१५	कर्मपाल	१६	२	२
१६	विक्रमपाल	२४	११	१३

राजा विक्रमपाल ने, पश्चिम दिशा का राजा (मलुखचन्द बोहरा था), इन पर चढाई करके मैदान में लड़ाई की। इस लड़ाई में मलुखचन्द ने विक्रमपाल को मारकर इन्द्रप्रस्थ का राज्य किया। पीढ़ी १०, वर्ष १९१, मास १, दिन १६, इनका विस्तार—

	आर्यराजा	**वर्ष**	**मास**	**दिन**
१	मलुखचन्द	५४	२	१०
२	विक्रमचन्द	१२	७	१२
३	अमीनचन्द**	१०	०	५
४	रामचन्द	१३	११	८
५	हरीचन्द	१४	९	२४
६	कल्याणचन्द	१०	५	४
७	भीमचन्द	१६	२	९
८	लोवचन्द	२६	३	२२
९	गोविन्दचन्द	३१	७	१२
१०	रानी पद्मावती***	१	०	०

रानी पद्मावती मर गई। इसके पुत्र भी कोई नहीं था। इसलिये सब मुतसद्दियों ने सलाह करके हरिप्रेम वैरागी को गद्दी पर बैठा के मुतसद्दी राज्य करने लगे। पीढ़ी ४, वर्ष ५०, मास ०, दिन २१, हरिप्रेम का विस्तार—

	आर्यराजा	वर्ष	मास	दिन
१	हरिप्रेम	७	५	१६
२	गोविन्दप्रेम	२०	२	८
३	गोपालप्रेम	१५	७	२८
४	महाबाहु	६	८	२९

राजा महाबाहु राज्य छोड़के वन में तपश्चर्या करने गये, यह बंगाल के राजा आधीसेन सुनके, इन्द्रप्रस्थ में आके आप राज्य करने लगे। पीढी १२, वर्ष १५१, मास ११, दिन २, इनका विस्तार—

	आर्यराजा	वर्ष	मास	दिन
१	राजा आधीसेन	१८	५	२१
२	विलावलसेन	१२	४	२
३	केशवसेन	१५	७	१२

४	माधसेन	१२	४	२
५	मयूरसेन	२०	११	२७
६	भीमसेन	५	१०	९
७	कल्याणसेन	४	८	२१
८	हरीसेन	१२	०	२५
९	क्षेमसेन	८	११	१५
१०	नारायणसेन	२	२	२९
११	लक्ष्मीसेन	२६	१०	०
१२	दामोदरसेन	११	५	१९

* किसी इतिहास में भीमपाल भी लिखा है।

* * इनका नाम कहीं मानकचन्द भी लिखा है।

(ये मुद्रणप्रति में भीमसेन शर्मा द्वारा लिखित टिप्पणी है—सम्पादक)

*** यह पद्मावती गोविन्दचन्द की रानी थी।

(यह दोनों हस्तलेख में नहीं है, मुद्रणकाल में द्वितीय प्रति में लिखी टिप्पणी है—सम्पादक)

राजा दामोदरसेन ने अपने उमराव को बहुत दुःख दिया, इसलिये राजा के उमराव दीपसिंह ने सेना मिलाके राजा के साथ लड़ाई की। उस लड़ाई में राजा को मारकर दीपसिंह आप राज्य करने लगे। पीढी ६, वर्ष १०७, मास ६, दिन २२, इनका विस्तार—

	आर्यराजा	वर्ष	मास	दिन
१	दीपसिंह	१७	१	२६
२	राजसिंह	१४	५	०
३	रणसिंह	९	८	११
४	नरसिंह	४५	०	१५
५	हरिसिंह	१३	२	२९
६	जीवनसिंह	८	०	१

राजा जीवनसिंह ने कुछ कारण के लिये अपनी सब सेना उत्तर दिशा को भेज दी। यह खबर वैराट के राजा पृथ्वीराज चह्वाण सुनकर जीवनसिंह के ऊपर चढाई करके आये और लड़ाई में जीवनसिंह को मारकर इन्द्रप्रस्थ का राज्य किया।* पीढी ५, वर्ष ८६, मास ०, दिन २०, इनका विस्तार—

	आर्यराजा	वर्ष	मास	दिन

१	पृथिवीराज	१२	२	१९
२	अभयपाल	१४	५	१७
३	दुर्जनपाल	११	४	१४
४	उदयपाल	११	७	३
५	यशपाल	३६	४	२७

राजा यशपाल के ऊपर सुलतान शहाबुद्दीन ग़ोरी गढ़ ग़जनी से चढाई करके आया और राजा यशपाल को प्रयाग के किले में संवत् १२४९ साल में पकड़कर कैद किया। पश्चात् **'इन्द्रप्रस्थ'** अर्थात् दिल्ली का राज्य आप (सुलतान शहाबुद्दीन) करने लगा। पीढ़ी ५३, वर्ष, ७४५, मास १, दिन १७। इनका विस्तार बहुत इतिहास पुस्तकों में लिखा है, इसलिये यहाँ नहीं लिखा।

इसके आगे [चार्वाक]-बौद्ध-जैनमत विषय में लिखा जायगा।

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिनिर्मिते सत्यार्थप्रकाशे सुभाषाविभूषिते-आर्यावर्तीयमतखण्डनमण्डनविषये

एकादशः समुल्लासः सम्पूर्णः॥११॥

* इसके आगे और इतिहासों में इस प्रकार है कि महाराज पृथ्वीराज के ऊपर सुलतान शहाबुद्दीन गोरी चढ़कर आया और कई बार हारकर लौट गया। अन्त में संवत् १२४९ में आपस की फूट के कारण महाराज पृथ्वीराज को जीत, अन्धा कर अपने देश को ले गया। पश्चात् दिल्ली (इन्द्रप्रस्थ) का राज्य आप करने लगा। मुसलमानों का राज्य पीढ़ी ४५, वर्ष ६१३ रहा। (पण्डित लेखराम आर्यपथिक द्वारा पञ्चम संस्करण में लिखित टिप्पणी)

विशेष—यह टिप्पणी मूलसं० में गृहीत है, द्वि०सं० और उदयपुर सं० में नहीं है।

अनुभूमिका (२)

जब आर्यावर्तस्थ मनुष्यों में सत्यासत्य का यथावत् निर्णय करनेवाली वेदविद्या छूटकर अविद्या फैलके मतमतान्तर खड़े हुए, यही जैन आदि के विद्याविरुद्धमत-प्रचार का निमित्त हुआ, क्योंकि **'वाल्मीकीय' [रामायण]** और **'महाभारत'** -आदि में जैनियों का नाम-मात्र भी नहीं लिखा है और जैनियों के ग्रन्थों में **'वाल्मीकीय' [रामायण]** और **'महाभारत'** में कथित 'राम-कृष्ण-आदि की गाथायें बड़े विस्तारपूर्वक लिखी हैं, इससे यह सिद्ध होता है कि यह मत इनके पीछे चला; क्योंकि जैसा अपने मत को बहुत प्राचीन जैनी लोग लिखते हैं, वैसा होता तो **'वाल्मीकीय' [रामायण]** आदि ग्रन्थों में उनकी कथा अवश्य होती, इसलिये जैनमत इन ग्रन्थों के पीछे चला है।

कोई कहे कि जैनियों के ग्रन्थों में से कथाओं को लेकर **'वाल्मीकीय' [रामायण]** आदि ग्रन्थ बने होंगे तो उनसे पूछना चाहिये कि **'वाल्मीकीय'** [रामायण] आदि में तुम्हारे ग्रन्थों का नामोल्लेख भी क्यों नहीं? और तुम्हारे ग्रन्थों में क्यों है? क्या पिता के जन्म का दर्शन पुत्र कर सकता है? कभी नहीं। इससे यही सिद्ध होता है कि जैन-बौद्ध मत, शैव-शाक्त -आदि मतों के पीछे चला है।

अब, इस १२ (बारहवें) समुल्लास में जो-जो जैनियों के मत-विषय लिखा गया है, सो-सो उनके ग्रन्थों के पते-पूर्वक लिखा है। **इसमें जैनी लोगों को बुरा न मानना चाहिये; क्योंकि जो-जो हमने इनके मतविषय में लिखा है, वह केवल सत्यासत्य के निर्णयार्थ है, न कि विरोध वा**

हानि करने के अर्थ। इस लेख को जब जैनी, बौद्ध वा अन्य लोग देखेंगे तब सबको सत्यासत्य के निर्णय में विचार और लेख करने का समय मिलेगा और बोध भी होगा। **जब तक वादी-प्रतिवादी होकर प्रीति से वाद वा लेख न किया जाय तब तक सत्यासत्य का निर्णय नहीं हो सकता। जब विद्वान लोगों में सत्यासत्य का निश्चय नहीं होता तभी अविद्वानों को महा-अन्धकार में पड़कर बहुत दुःख उठाना पड़ता है, इसलिये सत्य के जय और असत्य के क्षय के अर्थ मित्रता से वाद वा लेख करना हमारी मनुष्य जाति का मुख्य काम है। यदि ऐसा न हो तो मनुष्यों की उन्नति कभी न हो।**

और यह बौद्ध-जैन मत का विषय, विना इनके, अन्यमत-वालों को अपूर्व लाभ [करनेवाला] और बोध करानेवाला होगा, क्योंकि ये लोग अपने पुस्तकों को किसी अन्य मत-वाले को देखने, पढ़ने वा लिखने को भी नहीं देते। बड़े परिश्रम से, मेरे और विशेषतः आर्यसमाज मुम्बई के मन्त्री **सेठ सेवकलाल कृष्णदास** के पुरुषार्थ से ग्रन्थ प्राप्त हुए हैं; तथा काशीस्थ 'जैनप्रभाकर यन्त्रालय' में छपने और मुम्बई में **'प्रकरणरत्नाकर'** ग्रन्थ के छपने से भी सब लोगों को जैनियों का मत देखना सहज हुआ है।

भला, यह किन विद्वानों की बात है कि अपने मत के पुस्तक आप ही देखना और दूसरों को न दिखलाना? इसी से विदित होता है कि इन ग्रन्थों के बनानेवालों को प्रथम ही शंका थी कि **'इन ग्रन्थों में असम्भव बातें**

हैं, जो दूसरे मत-वाले देखेंगे तो खण्डन करेंगे और हमारे मत-वाले दूसरों के ग्रन्थ देखेंगे तो इस मत में श्रद्धा न रहेगी।'

अस्तु, जो हो, **परन्तु बहुत मनुष्य ऐसे हैं जिनको अपने दोष तो नहीं दीखते, किन्तु दूसरों के दोष देखने में अति-उद्युक्त रहते हैं, यह न्याय की बात नहीं; क्योंकि प्रथम अपने दोष देख, निकालके, पश्चात् दूसरे के दोषों में दृष्टि देके निकालें।**
अब इन बौद्धों-जैनियों के मत का विषय सब सज्जनों के सम्मुख धरता हूँ; जैसा है, वैसा विचारें।

किमधिकलेखेन बुद्धिमद्वर्येषु

अथ द्वादशसमुल्लासारम्भः

अथ नास्तिकमतान्तर्गतचार्वाक-
बौद्धजैनमतखण्डनमण्डनविषयान् व्याख्यास्यामः

[अब नास्तिक मत के अन्तर्गत चार्वाक, बौद्ध, जैनमतों के खण्डन-मण्डन के विषय में लिखेंगे]

[चारवाक मत के प्रमुख सिद्धान्त, और उनकी आलोचना]

कोई एक **'बृहस्पति'** नामा पुरुष हुआ था, जो वेद, ईश्वर और यज्ञादि उत्तम कर्मों को भी नहीं मानता था। देखिये, उसका मत—

यावज्जीवं सुखं जीवेन्नास्ति मृत्योरगोचरः।

भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः॥

[सर्वदर्शनसंग्रह, चार्वाकदर्शन, श्लोक १]

कोई मनुष्यादि प्राणी मृत्यु के अगोचर नहीं है अर्थात् सबको मरना है, इसलिये जबतक शरीर में जीव रहै, तबतक सुख से रहै।

जो कोई कहै कि 'धर्माचरण से कष्ट होता है, जो धर्म को छोड़ें तो पुनर्जन्म में बड़ा दुःख पावेंगे,' उसको **'चार्वाक'** उत्तर देता है कि 'अरे भोले भाई ! मरे के पश्चात् जो शरीर भस्म हो जाता है कि जिसने खाया-पिया है, वह पुनः संसार में न आवेगा; इसलिये जैसे हो सके वैसे आनन्द में रहो, लोक में नीति से चलो, ऐश्वर्य को बढ़ाओ और उससे इच्छित भोग करो। यही लोक समझो, परलोक कुछ नहीं।'

'देखो, पृथिवी, जल, अग्नि, वायु इन चार भूतों के परिणाम से यह शरीर बना है, इसमें इनके योग से चैतन्य उत्पन्न होता है, जैसे मादक द्रव्य खाने-पीने से मद उत्पन्न होता है। इसी प्रकार जीव शरीर के साथ उत्पन्न होकर शरीर के नाश के साथ ही नष्ट हो जाता है, फिर किसको पाप-पुण्य का फल होगा?

"तच्चैतन्यविशिष्टदेह एव आत्मा देहातिरिक्त आत्मनि प्रमाणाभावात्॥"

[सर्वदर्शनसंग्रह, चार्वाकदर्शन पृष्ठ २]

इस शरीर में चारों भूतों के संयोग से जीवात्मा उत्पन्न होकर उन्हीं के वियोग के साथ ही नष्ट हो जाता है, क्योंकि मरे पीछे कोई भी जीव

प्रत्यक्ष नहीं होता। **हम एक 'प्रत्यक्ष [प्रमाण] को ही मानते हैं, क्योंकि प्रत्यक्ष के विना अनुमानादि होते ही नहीं।** इसलिये मुख्य 'प्रत्यक्ष प्रमाण' के सामने अनुमानादि गौण होने से उनका ग्रहण नहीं करते। सुन्दर स्त्री के आलिङ्गन से आनन्द का करना, पुरुषार्थ का फल है।'

[जड़ से चेतन की उत्पत्ति कभी नहीं हो सकती]

उत्तर—ये पृथिव्यादि भूत जड़ हैं, उनसे चेतन की उत्पत्ति कभी नहीं हो सकती। जैसे, अब माता-पिता के संयोग से देह की उत्पत्ति होती है, वैसे ही आदि सृष्टि में मनुष्यादि शरीरों की आकृति कर्त्ता परमेश्वर के विना कभी नहीं हो सकती। मद के समान चेतन की उत्पत्ति और विनाश नहीं होते, क्योंकि मद चेतन को होता है, जड़ को नहीं।

[पदार्थ अदृश्य होते हैं, उनका अभाव नहीं होता]

पदार्थ नष्ट अर्थात् अदृष्ट होते हैं परन्तु अभाव किसी का नहीं होता। इसी प्रकार अदृश्य होने से जीव का भी अभाव न मानना चाहिये। जब जीवात्मा सदेह होता है तभी उसकी प्रकटता होती है, जब शरीर को छोड़ देता है तब यह शरीर जो मृत्यु को प्राप्त हुआ है, यह जैसा चेतनयुक्त पूर्व था, वैसा नहीं हो सकता। यही बात '**बृहदारण्यक**' में कही है—

''न....अहं मोहं ब्रवीमि.....अयमात्मा-अनुच्छित्तिधर्मा॥

[तुलना—बृह० उप,० अ० ४। ब्रा० ५। कं ० १४]

याज्ञवल्क्य कहते हैं कि 'हे मैत्रेयि! मैं मोह से बात नहीं करता किन्तु

आत्मा अविनाशी है, जिसके योग से शरीर चेष्टा करता है।'

[जीव शरीर से पृथक् तत्त्व है]

जब जीव शरीर से पृथक् हो जाता है तब शरीर में ज्ञान कुछ भी नहीं रहता। जो देह से पृथक् आत्मा न हो तो [देह में उसके संयोग से चेतनता और वियोग से जड़ता न हो; अतः] जिसके संयोग से चेतनता और वियोग से जड़ता होती है, वह देह से पृथक् है।

[प्रत्यक्ष के कर्त्ता को अपना ऐन्द्रिय प्रत्यक्ष नहीं होता]

जैसे, आँख सबको देखती है परन्तु अपने को नहीं, इसी प्रकार प्रत्यक्ष का करनेवाला अपना ऐन्द्रिय-प्रत्यक्ष नहीं कर सकता। जैसे अपनी आँख से सब घट-पटादि पदार्थ देखता है, वैसे आँख को अपने ज्ञान से देखता है। जो द्रष्टा है वह द्रष्टा ही रहता है, दृश्य कभी नहीं होता। जैसे विना आधार [के] आधेय, कारण के विना कार्य, अवयवी के विना अवयव और कर्त्ता के विना कर्म नहीं रह सकते, वैसे कर्त्ता के विना प्रत्यक्ष कैसे हो सकता है?

[स्त्री-समागम को ही पुरुषार्थ-फल मानना मूर्खता है]

जो सुन्दर स्त्री के साथ समागम करने को ही पुरुषार्थ का फल मानो, तो वह क्षणिक सुख [है] और उससे दुःख भी होता है; वह भी पुरुषार्थ का ही फल होगा! जब ऐसा है तो स्वर्ग की हानि होने से दुःख भोगना पड़ेगा। जो कहो दुःख के छुड़ाने और सुख के बढ़ाने में यत्न करना चाहिये, तो [उससे] मुक्ति-सुख की हानि हो जाती है; इसलिये वह पुरुषार्थ का फल नहीं।

[चारवाक मत की कुछ अन्य बातें]

चार्वाक—जो दुःख-संयुक्त सुख का त्याग करते हैं, वे मूर्ख हैं। जैसे धान्यार्थी धान्य का ग्रहण और बुस का त्याग करता है, वैसे इस संसार में बुद्धिमान् सुख का ग्रहण और दुःख का त्याग करें; क्योंकि जो इस लोक के उपस्थित सुख को छोड़के अनुपस्थित स्वर्ग के सुख की इच्छा कर, धूर्त-कथित वेदोक्त अग्निहोत्रादि कर्म, उपासना और ज्ञानकाण्ड का अनुष्ठान परलोक के लिये करते हैं, वे अज्ञानी हैं। जो परलोक है ही नहीं, तो उसकी आशा करना मूर्खता का काम है। क्योंकि—

अग्निहोत्रं त्रयो वेदास्त्रिदण्डं भस्मगुण्ठनम्।

बुद्धिपौरुषहीनानां जीविकेति बृहस्पतिः॥

[सर्वदर्शनसंग्रह, चार्वाकदर्शन श्लोक ३]

बृहस्पति-मत-प्रचारक चार्वाक कहता है कि—'अग्निहोत्र, तीन वेद, 'त्रिदण्ड' [धारण करना] और भस्म का लगाना; बुद्धि और पुरुषार्थरहित पुरुषों ने जीविका बना ली है।' जबकि काँटे लगने आदि से उत्पन्न हुए दुःख का नाम **'नरक'**, लोकसिद्ध राजा **'परमेश्वर'**, और देह का नाश होना **'मोक्ष'** [है], अन्य कुछ भी नहीं है।

[अग्निहोत्रादि वेदोक्त धर्म की निन्दा करना धूर्त्त-कर्म है]

उत्तर—विषयरूपी सुख-मात्र को पुरुषार्थ का फल मानकर विषयदुःख-निवारण-मात्र में कृतकृत्यता और स्वर्ग मानना मूर्खता है। **अग्निहोत्रादि यज्ञों से वायु, वृष्टि, जल की शुद्धि द्वारा आरोग्यता का**

होना [सिद्ध है, और] उससे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि होती है। उसको न जानकर वेद, ईश्वर और वेदोक्त धर्म की निन्दा करना धूर्तों का काम है। जो 'त्रिदण्ड' और 'भस्म-धारण' का खण्डन है, सो ठीक है।

[कण्टकादिजन्य दुःख को नरक, और मृत्यु को मुक्ति कहना मूल है]

यदि कण्टकादि से उत्पन्न दुःख का ही नाम नरक हो, तो उससे अधिक महारोगादि **'नरक'** क्यों नहीं? यदि राजा को ऐश्वर्यवान् और प्रजापालन में समर्थ होने से श्रेष्ठ मानें तो ठीक है, परन्तु जो अन्यायकारी पापी राजा हो, उसको भी परमेश्वरवत् मानते हो, तो तुम्हारे जैसा मूर्ख कोई भी नहीं। शरीर का विच्छेद होना मात्र **'मोक्ष'** है, तो गधे, कुत्ते आदि और तुममें क्या भेद रहा? किन्तु आकृतिमात्र ही भिन्न रही।

[चारवाक मत की कुछ और सत्यासत्य बातें]

चार्वाक— अग्निरुष्णो जलं शीतं समस्पर्शस्तथाऽनिलः।

केनेदं चित्रितं तस्मात् स्वभावात्तद् व्यवस्थितिः॥१॥

न स्वर्गो नाऽपवर्गो वा नैवात्मा पारलौकिकः।

नैव वर्णाश्रमादीनां क्रियाश्च फलदायिकाः॥२॥

पशुश्चेन्निहतः स्वर्गं ज्योतिष्टोमे गमिष्यति।

स्वपिता यजमानेन तत्र कस्मान्न हिंस्यते॥३॥

मृतानामपि जन्तूनां श्राद्धं चेत्तृप्तिकारणम्॥४॥

गच्छतामिह जन्तूनां व्यर्थं पाथेयकल्पनम्।

[गेहस्थकृतश्राद्धेन पथि तृप्तिरवारिता]॥५॥

स्वर्गस्थिता यदा तृप्तिं गच्छेयुस्तत्र दानतः। प्रासादस्योपरिस्थानामत्र कस्मान्न दीयते॥६॥

यावज्जीवेत्सुखं जीवेदृणं कृत्वा घृतं पिबेत्। भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः॥७॥

यदि गच्छेत्परं लोकं देहादेष विनिर्गतः।

कस्माद् भूयो न चायाति बन्धुस्नेहसमाकुलः॥८॥

ततश्च जीवनोपायो ब्राह्मणैर्विहितस्त्विह।

मृतानां प्रेतकार्य्याणि न त्वन्यद्विद्यते क्वचित्॥९॥
त्रयो वेदस्य कर्त्तारो भण्डधूर्त्तनिशाचराः।
जर्भरीतुर्फरीत्यादि पण्डितानां वचः स्मृतम्॥१०॥
अश्वस्यात्र हि शिश्नन्तु पत्नीग्राह्यं प्रकीर्त्तितम्।
भण्डैस्तद्वत्परं चैव ग्राह्यजातं प्रकीर्त्तितम्॥११॥
मांसानां खादनं तद्वन्निशाचरसमीरितम्॥१२॥

[सर्वदर्शनसंग्रह, चार्वाकदर्शन, श्लोक ११,१२,१४ से २२]

चार्वाक, आभाणक, बौद्ध और जैन भी जगत् की उत्पत्ति स्वभाव से मानते हैं।

अर्थ—[अग्नि उष्ण है, जल शीतल है, वायु समशीतोष्ण है। जिस-जिसका] जो-जो स्वाभाविक गुण है, उस-उससे द्रव्य संयुक्त होकर सब पदार्थ बनते हैं, कोई जगत् का कर्त्ता नहीं॥१॥

परन्तु इनमें से चार्वाक ही ऐसा मानता है, किन्तु **परलोक** और **जीवात्मा** को बौद्ध-जैन ही मानते हैं, चार्वाक नहीं। शेष इन तीनों का मत कोई-कोई बात छोड़के एक-सा है।

न कोई स्वर्ग [है], न कोई नरक, और न कोई परलोक में जानेवाला आत्मा है और न वर्णाश्रम की क्रियायें फलदायक हैं॥२॥

जो यज्ञ में पशु को मार [उसका] होम करने से वह स्वर्ग को जाता हो, तो यजमान अपने पिता आदि को मार [उनका] यज्ञ में होम करके स्वर्ग को क्यों नहीं भेजता?॥३॥

जो मरे हुए जीवों को श्राद्ध और तर्पण तृप्तिकारक होता है, तो परदेश में जानेवाले [जन] मार्ग में निर्वाहार्थ अन्न, वस्त्र, धन को क्यों ले जाते हैं? क्योंकि जैसे मृतक के नाम से अर्पण किया हुआ पदार्थ स्वर्ग में पहुँचता है, तो परदेश में जानेवालों के लिए उनके सम्बन्धी भी घर में उनके नाम से अर्पण कर देशान्तर में पहुँचा देवें। जो यह नहीं पहुँचता, तो स्वर्ग में क्योंकर पहुँच सकता है?॥४-५॥

जो मर्त्यलोक में दान करने से स्वर्गवासी तृप्त होते हैं, तो नीचे देने से घर के ऊपर स्थित पुरुष तृप्त क्यों नहीं होता?॥६॥

इसलिये जब तक जीवे, तबतक सुख से जीवे। जो घर में पदार्थ न हो, तो ऋण लेके आनन्द करे। ऋण देना नहीं पड़ेगा, क्योंकि जिस शरीर से जीव ने खाया-पिया है [और जिसका खाया-पीया है] उन दोनों का पुनरागमन न होगा। फिर किससे कौन मांगेगा और कौन देवेगा?॥७॥

जो लोग कहते हैं कि 'मृत्युसमय जीव शरीर से निकलके परलोक को जाता है', यह बात मिथ्या है; क्योंकि जो ऐसा होता, तो कुटुम्ब के मोह से बद्ध होकर पुन: घर में क्यों नहीं आ जाता?॥८॥

इसलिये यह सब, ब्राह्मणों ने अपनी जीविका का उपाय किया है। जो दशगात्रादि मृतकक्रियायें करते हैं, यह सब उनकी जीविका की लीला है॥९॥

वेद के बनानेहारे भांड, धूर्त्त और राक्षस, ये तीन हैं। **'जर्भरी' 'तुर्फरी'** इत्यादि पण्डितों के धूर्त्ततायुक्त वचन हैं॥१०॥

देखो, धूर्त्तों की रचना! 'घोड़े के लिंग को स्त्री ग्रहण करे,' उसके साथ

समागम यजमान की स्त्री से कराना, कन्या से ठट्ठा [करना] आदि लिखना, धूर्त्तों के विना नहीं हो सकता॥११॥

और जो मांस का खाना लिखा है, वह वेदभाग राक्षस का बनाया है॥१२॥

[विना परमेश्वर के सृष्टि स्वयं नहीं बन सकती]

उत्तर—विना चेतन परमेश्वर के निर्माण किये, जड़ पदार्थ आपस में स्वभाव से नियमपूर्वक मिलकर स्वयं उत्पन्न नहीं हो सकते। इस वास्ते सृष्टि का कर्त्ता अवश्य होना चाहिये। जो स्वभाव से ही होते हों, तो द्वितीय पृथिवी, सूर्य, चन्द्र आप-से-आप क्यों नहीं होते?॥१॥

[यदि जीव न होवे, तो सुख-दु:ख का भोग कौन करे?]

'स्वर्ग' सुखभोग और 'नरक' दु:खभोग का नाम है। जो जीवात्मा न होता, तो सुख-दु:ख का भोक्ता कौन हो सके? जैसे इस समय सुख-दु:ख का भोक्ता जीव है, वैसे परजन्म में भी होता है। **क्या सत्यभाषण, दया, परोपकार आदि क्रियायें भी वर्णाश्रमियों की निष्फल होंगी? कभी नहीं**॥२॥

[मृतक श्राद्ध और यज्ञ में पशु मारने का खण्डन ठीक है]

पशु मारके उसका होम करना वेदों में कहीं नहीं लिखा है। और मृतकों का श्राद्ध-तर्पण करना भी कपोलकल्पित होने से वेदविरुद्ध [और] पुराण-वालों का मत है, इसलिये इन बातों का 'खण्डन' अखण्डनीय है॥३,४,५॥

[जीव नित्य है, वह शरीर के साथ नष्ट नहीं होता]

जो वस्तु है उसका अभाव कभी नहीं होता, तो विद्यमान जीव का भी अभाव कभी नहीं हो सकता। देह भस्म हो जाता है, जीव नहीं। जीव तो दूसरे शरीर में जाता है, इसलिये **जो कोई ऋणादि कर बिराने पदार्थों से इस लोक में भोग कर नहीं देते हैं, वे निश्चय ही पापी होकर दूसरे जन्म में दुःखरूपी नरक भोगते हैं, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं** ॥६-७॥

[देह से निकल कर जीव देहान्तर को प्राप्त होता है]

देह से निकलके जीव स्थानान्तर और शरीरान्तर को प्राप्त होता है। उसको पूर्वजन्म का ज्ञान कुछ भी नहीं रहता, इसलिये पुनः कुटुम्ब में नहीं आता॥८॥

हाँ ब्राह्मणों ने प्रेतकर्म जीविका के लिये [प्रचलित] किया है; वेदोक्त नहीं [है]॥९॥

[चारवाक बौद्ध जैनादि द्वारा विना विचारे वेद-निन्दा]

जो चार्वाक आदि ने असल वेद देखे, सुने और पढ़े होते, तो वेद की निन्दा कभी न करते। भांड, धूर्त्त और निशाचरवत्-पुरुष टीकाकार हुए हैं, उन्हीं की धूर्त्तता है, वेदों की नहीं।

[चारवाक बौद्ध तथा जैनियों ने वेद न पढ़े न सुने]

परन्तु शोक है चार्वाक, आभाणक, बौद्ध और जैनियों पर कि इन्होंने मूल वेद भी न सुने, न देखे और न किसी विद्वान् से पढ़े; इसीलिये भ्रष्ट टीकायें

और वाममार्गियों की लीलायें देखके, वेदों से विरोध करके, नष्ट-भ्रष्ट बुद्धि होकर वेदों की निन्दा करने लगे हैं। **यही वाममार्गियों की दुष्ट चेष्टायें, चार्वाक, बौद्ध और जैन मत के होने का कारण है; क्योंकि चार्वाक आदि भी वेदों का सत्य अर्थ नहीं जान सके॥१०॥**

[वाममार्गी टीकाकारों द्वारा वेदों में मांसादि का विधान]

भला, विचार करना चाहिये कि स्त्री से अश्व के लिङ्ग का ग्रहण आदि लीला, उससे समागम कराना और यजमान की कन्या से हंसी-ठठ्ठा आदि कराना और मांस का खाना आदि लिखना टीकाकारों की धूर्तता है, वेदों की नहीं। सिवाय वाममार्गी लोगों के अन्य, वेदार्थ से विपरीत, भ्रष्ट, अशुद्ध व्याख्यान कौन करता?॥११।१२॥

यही **चार्वाक** बौद्धों के होने का कारण है; क्योंकि बौद्ध लोगों ने चार्वाकों में से बहुत-सा चार्वाकों का मत और थोड़ा-सा अपना भी गाँठ का लगाया है। इसी से बौद्धों की शाखा पृथक् चली है।

[चारवाक का बौद्धों और जैनों से मतभेद]

अब जो चार्वाकादिकों में भेद है, सो लिखते हैं—ये चार्वाकादि बहुत-सी बातों में एक हैं परन्तु चार्वाक देह की उत्पत्ति के साथ जीवोत्पत्ति और उसके नाश के साथ ही जीव का भी नाश मानता है। पुनर्जन्म और परलोक को नहीं मानता। एक प्रत्यक्ष प्रमाण के विना अनुमानादि प्रमाणों को भी नहीं मानता। **'चारवाक'** का अर्थ—जो बोलने में **'प्रगल्भ'**, और विशेषार्थ **'वैतण्डिक'** होता है। और बौद्ध जैन दो प्रमाणों, अनादि जीव,

पुनर्जन्म, परलोक और मुक्ति को भी मानते हैं। इतना ही चार्वाक से बौद्धों और जैनियों का भेद है; परन्तु नास्तिकता, वेद और ईश्वर की निन्दा, पर-मत-द्वेष, छः यतना और जगत् का कर्त्ता कोई नहीं, इत्यादि बातों में सब एक ही हैं। यह चार्वाक का मत संक्षेप से दर्शा दिया है।

[बौद्ध मत की आलोचना]

अब **बौद्धमत** के विषय में संक्षेप से लिखते हैं—

कार्यकारणभावाद्वा स्वभावाद्वा नियामकात्।

अविनाभावनियमोऽदर्शनान्न, न दर्शनात्॥

[प्रकरणवार्तिक १।३३; सर्वदर्शनसंग्रह बौद्धदर्शन, श्लोक १]

अर्थ—'कार्यकारणभाव' अर्थात् कार्य के दर्शन से कारण और कारण के दर्शन से कार्यादि का साक्षात्कार और प्रत्यक्ष से शेष में अनुमान होता है, इसके विना प्राणियों के सम्पूर्ण व्यवहार पूर्ण नहीं हो सकते, इत्यादि लक्षण से **'अनुमान [प्रमाण]'** को अधिक मानकर, चार्वाक से भिन्न शाखा बौद्धों की हुई। अन्य बहुत-सी बातें चार्वाकों की ली हैं।

[बौद्धों के चार भेद, और उनके सिद्धान्त]

ये **बौद्ध** चार प्रकार के होते हैं—

एक **'माध्यमिक'**, दूसरा **'योगाचार'**, तीसरा **'सौत्रान्तिक'** और चौथा **'वैभाषिक'। 'बुद्ध्या निर्वर्त्तते सः बौद्धः'**=जो बुद्धि से सिद्ध हो अर्थात् जो-जो बात अपनी बुद्धि में आवे उस-उस को माने और जो न आवे उसको नहीं माने।

इनमें से पहला **'माध्यमिक'** सर्वशून्य मानता है, अर्थात् जितने पदार्थ हैं, वे सब 'शून्य' हैं, अर्थात् आदि में नहीं होते, अन्त में नहीं रहते, मध्य में जो प्रतीत होता है वह भी प्रतीति-समय में है, पश्चात् शून्य हो जाता है। जैसे उत्पत्ति के पूर्व घट नहीं था, प्रध्वंस के पश्चात् नहीं रहता और घट-ज्ञान समय में भासता और पदार्थान्तर में ज्ञान जाने से घट-ज्ञान नहीं रहता, इसलिये शून्य ही एक तत्त्व है, ऐसा मानता है।

दूसरा **'योगाचार'** जो बाह्य-शून्य मानता है, अर्थात् पदार्थ भीतर ज्ञान में भासते हैं, बाहर नहीं। जैसे घट का ज्ञान आत्मा में है, तभी मनुष्य कहता है कि 'यह घट है', जो भीतर ज्ञान में न हो तो नहीं कह सकता, ऐसा मानता है।

तीसरा **'सौत्रान्तिक'** जो बाहर पदार्थ का अनुमान मानता है, क्योंकि बाहर कोई पदार्थ सांगोपांग प्रत्यक्ष नहीं होता किन्तु एकदेश प्रत्यक्ष होने से शेष में अनुमान किया जाता है; इसका ऐसा मत है।

चौथा **'वैभाषिक'** है, उसका मत है कि बाहर पदार्थ प्रत्यक्ष होता है, भीतर नहीं। जैसे **'अयं नीलो घटः'** इस प्रतीति में नीलयुक्त घटाकृति बाहर प्रतीत होती है; यह ऐसा मानता है।

यद्यपि इनका आचार्य बुद्ध उपदेष्टा=जनानेवाला एक था, तथापि सुननेवाले पुरुषों और शिष्यों के बुद्धिभेद से चार प्रकार शाखायें हो गई हैं। जैसे **'सूर्य अस्त हो गया'** ऐसा कहने पर जार-पुरुष जारकर्म, चौर चौरीकर्म और पूर्ण विद्वान् **'सदाचरण'** करते हैं। समय एक [है], परन्तु अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार चेष्टा भिन्न-भिन्न करते हैं।

अब इन पूर्वोक्त चारों में [एक] सबको क्षणिक मानता है, अर्थात् क्षण-क्षण में बुद्धि का परिणाम होने से जो पूर्वक्षण में ज्ञात वस्तु था, वैसा ही दूसरे क्षण में नहीं रहता, इसलिये सबको क्षणिक मानना चाहिये, ऐसे मानता है।

दूसरा—जो-जो प्रवृत्ति है सो-सो सब दुःखरूप है, क्योंकि प्राप्ति में संतुष्ट कोई भी नहीं होता। एक की प्राप्ति में दूसरे अप्राप्त की इच्छा बनी ही रहती है। इस प्रकार मानता है।

तीसरा—सब पदार्थ अपने-अपने लक्षणों से लक्षित होते हैं, जैसे गाय के चिह्नों से गाय और घोड़े के चिह्नों से घोड़ा ज्ञात होता है, वैसे लक्षण लक्ष्य

में सदा रहते हैं, ऐसा कहता है।

चौथा—[सर्व-] शून्य को एक पदार्थ मानता है।

इत्यादि बौद्धों में बहुत-से विवाद पक्ष हैं। इस प्रकार चार प्रकार की **'भावना'** मानते हैं।

[चारों बौद्ध-शाखाओं के सिद्धान्त का खण्डन]

उत्तर—[पहला **माध्यमिक** सर्वशून्य मानता है], जो सब शून्य हो तो शून्य का जाननेवाला शून्य नहीं होता। और जो सब शून्य होवे तो शून्य को शून्य नहीं जान सके। इसलिये ['शून्य' ही एक तत्व नहीं, अपितु] शून्य का ज्ञाता और ज्ञेय-शून्य दो पदार्थ सिद्ध होते हैं।

और जो **'योगाचार'** बाह्य-शून्यत्व मानता है तो पर्वत उसके भीतर होना चाहिये। जो कहे कि पर्वत भीतर है तो उसके हृदय में पर्वत के समान अवकाश कहाँ है? इसलिये पर्वत बाहर है और पर्वतज्ञान आत्मा में रहता है।

'सौत्रान्तिक' किसी पदार्थ को प्रत्यक्ष नहीं मानता, तो वह आप स्वयं और उसका वचन भी अनुमेय होना चाहिये, प्रत्यक्ष नहीं। जो प्रत्यक्ष न हो तो **'अयं घटः'** यह प्रयोग न होना चाहिये, किन्तु **'अयं**

घटैकदेशः'=यह घट का एक देश है [यह होना चाहिये]। और एक देश का नाम घट नहीं, किन्तु समुदाय का नाम घट है। 'यह घड़ा है' वह प्रत्यक्ष है, अनुमेय नहीं; क्योंकि सब अवयवों में अवयवी एक है, उसके प्रत्यक्ष होने से सब घट के अवयव भी प्रत्यक्ष होते हैं, अर्थात् 'सावयव घट' प्रत्यक्ष होता है।

चौथा **'वैभाषिक'** जो बाह्य पदार्थों को प्रत्यक्ष मानता है, वह भी ठीक नहीं; क्योंकि जहाँ ज्ञाता और ज्ञान होता है, वहीं प्रत्यक्ष होता है, अर्थात् आत्मा में सबका प्रत्यक्ष होता है। यद्यपि प्रत्यक्ष का विषय बाहर होता है, तथापि तदाकार ज्ञान आत्मा को होता है।

[पूर्वोक्त चार प्रकार की भावनाओं की समीक्षा]

[चार भावनाओं का उत्तर—]

[१] वैसे जो क्षणिक पदार्थ और उसका ज्ञान क्षणिक हो तो **'प्रत्यभिज्ञा'** अर्थात् 'मैंने वह बात की थी' अथवा 'वह चीज देखी थी' ऐसा स्मरण न होना चाहिये, परन्तु पूर्व दृष्ट-श्रुत का स्मरण होता है, इसलिये **'क्षणिकवाद'** भी ठीक नहीं।

[२] जो सब दुःख ही हो और सुख कुछ भी न हो तो सुख की अपेक्षा के विना दुःख सिद्ध नहीं हो सकता, जैसे रात्रि की अपेक्षा से दिन और दिन की अपेक्षा से रात्रि होती है। इसलिये **'सब दुःख मानना'** ठीक नहीं।

[३] जो स्वलक्षण ही मानें तो नेत्र [ग्राह्यत्व] 'रूप' का लक्षण है और रूप लक्ष्य है। जैसे घट का रूप घट के रूप का लक्ष्य चक्षु [-ग्राह्यत्व] लक्षण से भिन्न है और गन्ध पृथिवी से अभिन्न है। इसी प्रकार भिन्न-अभिन्न लक्ष्य-लक्षण मानना चाहिये।

[४] **'शून्य'** का उत्तर जो पूर्व दिया है वही है अर्थात् शून्य का जाननेवाला शून्य से भिन्न होता है।

[संसार दुःखरूप है—जैन बौद्ध सिद्धान्त]

[मूल—] सर्वस्य संसारस्य दुःखात्मकत्वं सर्वतीर्थङ्करसम्मतम्॥

[सर्वदर्शनसंग्रह, बौद्धदर्शन पृ० ५२]

[**अर्थ**—सब संसार दुःखरूप है, यह सब तीर्थंकरों का मत है।]

जिनको बौद्ध तीर्थंकर मानते हैं, उन्हीं को जैन भी मानते हैं, इस दृष्टि से ये दोनों एक हैं। और पूर्वोक्त 'भावनाचतुष्टय' अर्थात् चार भावनाओं से सकल वासनाओं की निवृत्ति से शून्यरूप 'निर्वाण' अर्थात् मुक्ति मानते हैं। अपने शिष्यों को 'योग' और 'आचार' का उपदेश करते हैं [अज्ञात पदार्थ के विषय में गुरु से पूछने का नाम 'योग' और] गुरु के वचन का प्रमाण करना ['आचार' कहाता है, तथा] अनादि बुद्धि में वासना होने से बुद्धि ही अनेकाकार भासती है।

और चित्त-चैत्तात्मक स्कन्ध पांच प्रकार का मानते हैं—

रूपविज्ञानवेदनासंज्ञासंस्कारसंज्ञकः॥

[सर्वदर्शनसंग्रह, बौद्धदर्शन पृ० ७५]

उनमें से प्रथम स्कन्ध—जो इन्द्रियों से रूपादि विषय का ग्रहण किया जाता है, वह **'रूपस्कन्ध'**। (दूसरा) आलयविज्ञान=प्रवृत्ति अर्थात् जिसमें रूपादि विषय रहते हैं उनका विज्ञान, [और प्रवृत्तिविज्ञान=] प्रवृत्ति के जाननेरूप व्यवहार को **'विज्ञान-स्कन्ध'**। (तीसरा) रूपस्कन्ध और विज्ञानस्कन्ध से उत्पन्न हुए सुख-दुःख आदि प्रतीतिरूप व्यवहार को **'वेदनास्कन्ध'**। (चौथा) गौ आदि संज्ञा का सम्बन्ध नामी के साथ मानने रूप [ज्ञान] को **'संज्ञास्कन्ध'**। (पाँचवाँ) वेदनास्कन्ध से रागद्वेषादि क्लेश और क्षुधा-तृषादि उपक्लेश, मद, प्रमाद, अभिमान, धर्म और अधर्मरूप व्यवहार को **'संस्कारस्कन्ध'** मानते हैं।

सब संसार को दुःखरूप, दुःख का घर और दुःख का साधनरूप भावना करके, संसार से छूटना; चार्वाकों से अधिक मुक्ति, अनुमान और जीव को मानना, बौद्ध मानते हैं।

[तीर्थङ्करों पर विश्वास, और द्वादशायतन पूजा]

देशना लोकनाथानां सत्त्वाशयवशानुगाः।

भिद्यन्ते बहुधा लोके उपायैर्बहुभिः किल॥१॥

गम्भीरोत्तानभेदेन क्वचिच्चोभयलक्षणा।

भिन्ना हि देशनाऽभिन्ना शून्यताऽद्वयलक्षणा॥२॥

[सर्वदर्शनसंग्रह, बौद्धदर्शन, श्लोक २६,२७]

द्वादशायतनपूजा श्रेयस्करीति बौद्धा मन्यन्ते—

अर्थानुपार्ज्य बहुशो द्वादशायतनानि वै।

परितः पूजनीयानि किमन्यैरिह पूजितैः॥३॥

ज्ञानेन्द्रियाणि पञ्चैव तथा कर्मेन्द्रियाणि च।

मनो बुद्धिरिति प्रोक्तं द्वादशायतनं बुधैः॥४॥

[सर्वदर्शनसंग्रह, बौद्धदर्शन, श्लोक २८,२९]

अर्थ—लोको के स्वामी बुद्ध आदि महान् गुरुओं के उपदेश, समझने वाले शिष्यों की बुद्धि के वश होकर अर्थात् उनकी बुद्धि के भेद के अनुसार और लोक प्रचलित विभिन्न मार्गों या उपायों के कारण भिन्न-भिन्न हो जाते हैं॥१॥

उनके उपदेश कहीं गम्भीर हैं, कहीं सुस्पष्ट हैं; कहीं गम्भीर और सुस्पष्ट दोनों विशेषताओं से युक्त हैं। इन भेदों के कारण से वे भिन्न प्रतीत होते हैं; किन्तु मूल तत्त्व वा उपदेश सबका एकमात्र **'शून्यता'** का है, उसमें किसी के दो मत नहीं हैं॥२॥

जो **'द्वादशायतन'** पूजा है, वही मोक्ष करनेवाली है, ऐसा बौद्ध मानते हैं।

उस पूजा के लिये बहुत से द्रव्यादि पदार्थों को प्राप्त करके 'द्वादशायतन' अर्थात् अग्रलिखित बारह प्रकार के स्थान-विशेषों की सब प्रकार से पूजा करनी चाहिये, अन्य पदार्थों की पूजा करने से क्या लाभ है?॥३॥

द्वादशायतन पूजा यह है:—पाँच ज्ञानेन्द्रियां अर्थात् श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, जिह्वा और नासिका; पाँच कर्मेन्द्रियां अर्थात् वाक्, हस्त, पग, उपस्थ और गुदा; मन और बुद्धि इनका ही सत्कार अर्थात् इनको आनन्द में प्रवृत्त रखना, बौद्धों का मत है॥४॥

उत्तर—जो सब संसार दुःखरूप होता तो किसी जीव की प्रवृत्ति न होनी चाहिये, [किन्तु] संसार में जीवों की प्रवृत्ति प्रत्यक्ष दीखती है; इसलिये सब संसार दुःखरूप नहीं हो सकता, किन्तु इसमें सुख-दुःख दोनों हैं। और जो बौद्ध लोग ऐसा ही सिद्धान्त मानते हैं तो खान-पानादि और शरीररक्षण करने में प्रवृत्त होकर सुख क्यों मानते हैं? जो कहैं कि हम प्रवृत्त तो होते हैं परन्तु इसको दुःख ही मानते हैं, तो यह कथन ही सम्भव नहीं; क्योंकि जीव सुख जानकर प्रवृत्त और दुःख जानके निवृत्त होता है। संसार में धर्मक्रिया, विद्या, सत्सङ्गादि सब व्यवहार सुखकारक हैं, इनको कोई भी विद्वान् दुःख का लिंग नहीं मान सकता, विना बौद्धों के।

जो पाँच स्कन्ध कहे हैं, वे भी अपूर्ण हैं; क्योंकि ऐसे जो स्कन्ध विचारने लगें तो एक-एक के अनेक भेद हो सकते हैं।

[यदि तीर्थङ्कर ही ईश्वर हैं, तो उन्हें उपदेश किससे मिला?]

जिन तीर्थंकरों को उपदेशक और लोकनाथ मानते हैं, और अनादि ईश्वर को नहीं मानते, तो उन्होंने उपदेश कहाँ से पाया? जो कहो कि स्वयं प्राप्त हुआ, तो कारण के विना कार्य नहीं हो सकता। इस समय भी उपदेश के विना किसी को ज्ञान नहीं हो सकता है। और जो होता है, तो तुम और अन्य को भी हो जायगा; उपदेशक बुद्ध आदि की क्या आवश्यकता है?॥१॥

[विद्यमान वस्तु शून्यरूप कभी नहीं हो सकती]

जो शून्यरूप ही अद्वैत-उपदेश बौद्धों का है, तो विद्यमान वस्तु शून्यरूप कभी नहीं होता; हाँ, सूक्ष्म कारणरूप तो हो जाता है॥२॥

[द्वादशायतन पूजा मुक्ति का नहीं, भोग का साधन है]

जो द्रव्यों के उपार्जन से पूर्वोक्त द्वादशायतनपूजा को मोक्ष का साधन कहा, तो दश प्राणों और ग्यारहवें जीवात्मा की पूजा क्यों नहीं करते? और जब इन्द्रियों और अन्त:करणों [=मन और बुद्धि] की पूजा मोक्षप्रद है तो विषयीजनों और बौद्धों में क्या भेद रहा? उससे फिर मुक्ति कहाँ? पूर्व, सब संसार की दु:खरूप भावना की, और फिर द्वादशायतन-पूजा लगाई। इसलिये इनका मत सर्वांशत: ही सत्य नहीं॥३,४॥

['विवेकविलास' में निर्दिष्ट बौद्ध-सिद्धान्त]

'विवेकविलास' ग्रन्थ में बौद्धों का मत इस प्रकार कहा है—

बौद्धानां सुगतो देवो विश्वं च क्षणभङ्गुरम्।
आर्यसत्याख्यया तत्त्वचतुष्टयमिदं क्रमात्॥१॥
दुःखमायतनं चैव ततः समुदयो मतः।
मार्गश्चेत्यस्य च व्याख्या क्रमेण श्रूयतामतः॥२॥
दुःखं संसारिणः स्कन्धास्ते च पञ्च प्रकीर्तिताः।
विज्ञानं वेदना संज्ञा संस्कारो रूपमेव च॥३॥
पञ्चेन्द्रियाणि शब्दाद्या विषयाः पञ्च मानसम्।
धर्मायतनमेतानि द्वादशायतनानि तु॥४॥
रागादीनां गणो यस्मात् समुदेति नृणां हृदि।
आत्मात्मीयस्वभावाख्यः स स्यात्समुदयः पुनः॥५॥
क्षणिकाः सर्वसंस्कारा इति या वासना स्थिरा।
स मार्ग इति विज्ञेयः स च मोक्षोऽभिधीयते॥६॥
प्रत्यक्षमनुमानं च प्रमाणद्वितयं तथा।
चतुःप्रस्थानिका बौद्धाः ख्याता वैभाषिकादयः॥७॥
अर्थो ज्ञानान्वितो वैभाषिकेण बहु मन्यते।
सौत्रान्तिकेन प्रत्यक्षग्राह्योऽर्थो न बहिर्मतः॥८॥
आकारसहिता बुद्धिर्योगाचारस्य संमता।
केवलां संविदं स्वस्थां मन्यन्ते मध्यमाः पुनः॥९॥
रागादिज्ञानसन्तानवासनोच्छेदसम्भवा।
चतुर्णामपि बौद्धानां मुक्तिरेषा प्रकीर्तिता॥१०॥
कृत्तिः कमण्डलुर्मौण्ड्यं चीरं पूर्वाह्णभोजनम्।
संघो रक्ताम्बरत्वं च शिश्रिये बौद्धभिक्षुभिः॥११॥

[विवेकविलास ८। २६५-२७५; सर्वदर्शनसंग्रह, बौद्धदर्शन श्लोक ३०-४०]

अर्थ—बौद्धों का सुगतदेव बुद्ध भगवान् पूजनीय देव है और जगत् क्षणभंगुर है। 'आर्यसत्य' नाम से प्रसिद्ध उनके चार तत्त्व हैं, वे क्रम से इस प्रकार हैं—॥१॥

वे हैं—दुःख, दुःख का आश्रय स्थान, समुदय=दुःख की उत्पत्ति का कारण, और मार्ग=दुःख से छूटने का मार्ग। अब इन चारों तत्त्वों='आर्य-सत्यों' की व्याख्या क्रम से सुनो—॥२॥

संसार में रहनेवाले प्राणियों के पांच स्कन्धों को **'दुःख'** कहते हैं। वे पांच हैं—विज्ञान, वेदना, संज्ञा, संस्कार और रूप॥३॥

पांच ज्ञानेन्द्रियां, उनके शब्द आदि पांच विषय, मन और धर्मायतन= धर्म का निवासस्थान अर्थात् बुद्धि, ये **'द्वादश-आयतन'** हैं॥४॥

जिससे राग-द्वेष आदि भावों का समूह मनुष्यों के हृदय में उत्पन्न होता है, जो कि आत्मा के अपने स्वभाव के नाम से प्रसिद्ध है, वह **'समुदय'** है॥५॥

'सब संस्कार क्षणिक हैं' जो इस 'वासना' का स्थिर होना है, यह बौद्धों का 'मार्ग' है। और फिर वही 'शून्य तत्त्व'='वासना का शून्यरूप हो जाना' **'मोक्ष'** है॥६॥

बौद्ध लोग **प्रत्यक्ष** और **अनुमान** दो ही प्रमाण मानते हैं। चार प्रकार के इनमें भेद हैं—वैभाषिक, सौत्रान्तिक, योगाचार और माध्यमिक॥७॥

इनमें से **'वैभाषिक'** ज्ञान में जो अर्थ है, उसको प्रत्यक्षगम्य मानता है; क्योंकि जो ज्ञान में नहीं है, उसका सिद्ध होना वह पुरुष नहीं मानता। और **'सौत्रान्तिक'** भीतर में प्रत्यक्ष मानता है, बाहर नहीं, [बाह्य अर्थ को प्रत्यक्ष द्वारा ग्राह्य नहीं मानता, अनुमेय मानता है]॥८॥

'योगाचार' आकार-सहित विज्ञानयुक्त बुद्धि को मानता है और **'माध्यमिक'** केवल अपने में पदार्थों का ज्ञानमात्र मानता है, पदार्थों को नहीं मानता॥९॥

और रागादि-ज्ञान के प्रवाह की वासना के नाश से उत्पन्न होनेवाली **'मुक्ति'** चारों प्रकार के बौद्धों की [कही गई] है॥१०॥

मृगादि का चमड़ा और कमण्डलु [रखना], मुंड-मुंडाये [रहना], वल्कल वस्त्र धारण [करना], पूर्वाह्न अर्थात् नव बजे से पूर्व भोजन करना, अकेला न रहना, रक्त वस्त्र का धारण [करना], यह बौद्धों के साधुओं का [स्वीकृत आचार और] वेश है॥११॥

[क्षणिकवाद के सिद्धान्त में अनेक दोष]

उत्तर—जो बौद्धों का सुगत बुद्ध ही देव है, तो उसका गुरु कौन था? जो विश्व क्षणभंगुर हो, तो चिरदृष्ट पदार्थ का 'यह वही है' ऐसा स्मरण न होना चाहिये। जो क्षणभंगुर होता, तो वह [पूर्वदृष्ट] पदार्थ ही नहीं रहता, पुनः स्मरण किसका होवे? जो क्षणिकवाद ही बौद्धों का मार्ग है तो इनका मोक्ष भी क्षणभंगुर होगा।

[जो बाहर दीखता है, वह मिथ्या कैसे हो सकता है?]

जो ज्ञान से युक्त अर्थ द्रव्य हो तो जड़ द्रव्य में भी ज्ञान होना चाहिये, इसलिये ज्ञान में अर्थ का प्रतिबिम्ब-सा रहता है। जो भीतर ज्ञान में द्रव्य होवे तो बाहर न होना चाहिये और वह चलनादि क्रिया किस पर करता है? बाहर दीखता है, वह मिथ्या कैसे हो सकता है? जो **आकार** से सहित बुद्धि होवे तो [उसको] दृश्य होना चाहिये।

[ज्ञेय पदार्थ के विना ज्ञान नहीं हो सकता]

जो केवल ज्ञान ही हृदय में आत्मस्थ होवे, बाह्यज्ञेय पदार्थों को केवल ज्ञानरूप ही माना जाय, तो ज्ञेय के विना ज्ञान ही नहीं हो सकता॥ जो वासनोच्छेद ही मुक्ति है, तो सुषुप्ति में भी मुक्ति माननी चाहिये। यह संक्षेप से बौद्धमत का विषय लिखा है।

[जैन और बौद्धों की एक समान बातें]

यहाँ से आगे **जैनमत** का वर्णन है, इसको जैन लोग मानते हैं।

प्रकरणरत्नाकर १ भाग, नयचक्रसार [पृष्ठ १८७] में निम्नलिखित बातें लिखी हैं—

'**बौद्ध लोग** समय-समय में नवीनपन से (१) आकाश, (२) काल, (३) जीव, (४) पुद्गल, ये चार द्रव्य मानते हैं और **जैनी लोग** धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय, जीवास्तिकाय और काल ये छः द्रव्य मानते हैं।' इनमें काल की अस्तिकायता नहीं मानते किन्तु ऐसा मानते हैं कि काल उपचार से द्रव्य है, वस्तुतः नहीं।

इनमें से [प्रथम] **'धर्मास्तिकाय'** जो गतिपरिणामीपन से परिणाम को प्राप्त हुआ जीव और पुद्गल, इनकी गति के समीप से स्तम्भन करने का हेतु है, वह धर्मास्तिकाय है; और वह असंख्य प्रदेश, परिमाण और लोक में व्यापक है।

दूसरा **'अधर्मास्तिकाय'** यह है कि जो स्थिरता से परिणामी हुए जीव तथा पुद्गल की स्थिति के आश्रय का हेतु है।

तीसरा **'आकाशास्तिकाय'** उसको कहते हैं कि जो सब द्रव्यों का आधार है, जो अवगाहन, प्रवेश, निर्गम आदि क्रिया करनेवाले जीव तथा पुद्गलों के अवगाहन का हेतु और सर्वव्यापी है।

चौथा **'पुद्गलास्तिकाय'** यह है कि जो कारणरूप सूक्ष्म, नित्य, एकरस, वर्ण, गंध, स्पर्श, कार्य का लिंग, पूरने और गलने के स्वभाववाला होता है।

पाँचवाँ **'जीवास्तिकाय'** यह है कि जो चेतनालक्षण, ज्ञान, दर्शन में उपयुक्त, अनन्त पर्यायों से परिणामी होनेवाला कर्त्ता, भोक्ता है।

और छठा **'काल'** यह है कि जो पूर्वोक्त पंचास्तिकायों का परत्व-अपरत्व, नवीनता-प्राचीनता का चिह्नरूप है, प्रसिद्धि-वर्तमानरूप पर्यायों से युक्त है, वह काल कहाता है।

[पूर्वोक्त चार द्रव्यों को प्रतिसमय नवीन मानना ठीक नहीं]

समीक्षक—जो बौद्धों ने चार द्रव्य प्रतिसमय में नवीन-नवीन माने हैं, वे झूठे हैं, क्योंकि आकाश, काल, जीव और परमाणु, नये-पुराने कभी नहीं हो सकते; क्योंकि ये अनादि और कारणरूप से अविनाशी हैं, पुनः नया और पुरानापन कैसे घट सकता है?

[वैशेषिक में प्रोक्त ९ द्रव्यों को मानें, तो ठीक है]

और जैनियों का मानना भी ठीक नहीं; क्योंकि धर्म-अधर्म द्रव्य नहीं हो सकते, किन्तु गुण हैं। ये दोनों जीवास्तिकाय में आ जाते हैं; इसलिये आकाश, परमाणु, जीव और काल मानते तो ठीक था।

और जो नव द्रव्य **'वैशेषिक'** में माने हैं वे ठीक हैं, क्योंकि पृथिव्यादि पांच तत्त्व, काल, दिशा, आत्मा और मन, ये नव पृथक्-पृथक् पदार्थ निश्चित हैं। एक जीव को चेतन मानकर ईश्वर को न मानना, जैन-बौद्धों की मिथ्या बात है।

[सप्तभङ्गी और स्याद्वाद सिद्धान्त]

अब जो जैनी लोग **सप्तभंगी न्याय और स्याद्वाद** मानते हैं, वह यह है। देखो—

प्रथम भंग—'सन् घटः' इसको प्रथम भङ्ग कहते हैं; क्योंकि घट अपनी वर्तमानता से युक्त अर्थात् घड़ा है, इसने अभाव का विरोध किया है।

दूसरा भंग—'असन् घटः'=घड़ा नहीं है, प्रथम घट के भाव से, वर्तमान में उस घड़े के असद्भाव से दूसरा भङ्ग है।

तीसरा भंग यह है कि **'सन्नसन् घटः'** अर्थात् यह घड़ा तो है परन्तु यह पट नहीं, क्योंकि उन दोनों से पृथक् हो गया।

[चौथा भंग] 'घटोऽघटः' यह **भंग** कहाता है। जैसे **'अघटः पटः'** दूसरे पट के अभाव की अपेक्षा अपने में होने से घट 'अघट' कहाता है। युगपत् उसकी दो संज्ञायें अर्थात् घट और अघट भी है।

पाँचवाँ भंग यह है कि जो घट को घट कहना योग्य अर्थात् घट को पट कहना अयोग्य है, उसमें घटपन वक्तव्य है और पटपन अवक्तव्य है।

छठा भंग यह है कि जो घट नहीं है, वह कहने योग्य भी नहीं और जो है, वह कहने के योग्य भी है।

और **सातवाँ भंग** यह है कि जो कहने को इष्ट है परन्तु वह नहीं है और कहने के योग्य भी घट नहीं, यह सप्तम भङ्ग कहाता है।

[प्रकरणरत्नाकर, नयचक्रसार, पृ० १८६-१९३]

इसी प्रकार—

स्यादस्ति जीवोऽयं प्रथमो भङ्गः॥१॥

स्यान्नास्ति जीवो द्वितीयो भङ्गः॥२॥

स्यादस्ति नास्तिरूपो जीवस्तृतीयो भङ्गः॥३॥

स्यादवक्तव्यो जीवश्चतुर्थो भङ्गः॥४॥

स्यादस्ति च अवक्तव्यो जीवः पञ्चमो भङ्गः॥५॥

स्यान्नास्ति च अवक्तव्यो जीवः षष्ठो भङ्गः॥६॥

स्यादस्ति नास्ति च अवक्तव्यो जीव इति सप्तमो भङ्गः॥७॥

[प्रकरणरत्नाकर भाग-१; सर्वदर्शनसंग्रह आर्हतदर्शन, पृ० १४६]

अर्थ—'है जीव' ऐसा कथन होवे तो जीव के विरोधी जड़ पदार्थों का जीव में अभावरूप भंग प्रथम कहाता है॥१॥

दूसरा भंग यह है कि 'नहीं है जीव जड़ में' ऐसा कथन भी होता है, इससे यह दूसरा भंग कहाता है॥२॥

'जब जीव शरीर धारण करता है तब प्रसिद्ध और जब शरीर से पृथक् होता है तब अप्रसिद्ध रहता है' ऐसा कथन होवे, उसको तृतीय भंग कहते हैं॥३॥

'जब जीव कहने के योग्य नहीं' यह चतुर्थ भंग [है]॥४॥

'जीव है परन्तु कहने के योग्य नहीं' जो ऐसा कथन है, उसको पञ्चम भंग कहते हैं॥५॥

'जीव प्रत्यक्ष प्रमाण से कहने में नहीं आता, इसलिये चाक्षुष प्रत्यक्ष नहीं है' जो ऐसा व्यवहार है, उसको छठा भंग कहते हैं॥६॥

'एक काल में जीव का अनुमान से होना और दृश्यपन में न होना और एक-सा न रहना किन्तु क्षण-क्षण में परिणाम को प्राप्त होना, 'अस्ति-नास्ति' कथन न होवे और 'नास्ति-अस्ति' कथन भी न होवे, 'यह सातवाँ भंग कहाता है॥७॥

इसी प्रकार नित्यत्व सप्तभंगी, अनित्यत्व सप्तभंगी तथा सामान्य धर्म, विशेष धर्म, गुण और पर्यायों की प्रत्येक वस्तु में सप्तभङ्गी होती है। वैसे द्रव्य, गुण, स्वभाव और पर्यायों के अनन्त होने से सप्तभङ्गी भी अनन्त होती है। ऐसा जैनियों का **'स्याद्वाद'** और **'सप्तभंगी न्याय'** कहाता है।

[स्याद्वाद और सप्तभङ्गी न्याय व्यर्थ का प्रपञ्च है]

समीक्षक—यह कथन एक अन्योन्याभाव में साधर्म्य और वैधर्म्य में चरितार्थ हो सकता है। इस सरल प्रकिया को छोड़कर कठिन जाल-रचना केवल अज्ञानियों के फसाने के लिए है। देखो, जीव का अजीव में और अजीव का जीव में अभाव रहता ही है। जैसे जीव और जड़ के वर्तमान

होने से साधर्म्य और चेतन तथा जड़ होने से वैधर्म्य अर्थात् जीव में चेतनत्व अस्ति=है और जड़त्व नास्ति=नहीं है। इसी प्रकार जड़ में जड़त्व है और चेतनत्व नहीं है। इससे गुण-कर्म-स्वभाव के समानधर्म, और विरुद्धधर्म के विचार से इनका सब सप्तभङ्गी और स्याद्वाद सहजता से समझ में आता है। फिर इतना प्रपञ्च बढ़ाना किस काम का है?

इसमें बौद्ध और जैनों का एक मत है, थोड़ा-सा ही पृथक् होने से भिन्नभाव भी हो जाता है।

[जैनमत के कुछ और सिद्धान्त]

इसके आगे **केवल जैनमत** का वर्णन है—

चिदचिद् द्वे परे तत्त्वे विवेकस्तद्विवेचनम्।

उपादेयमुपादेयं हेयं हेयं च कुर्वतः॥१॥

हेयं हि कर्तृरागादि तत्कार्यमविवेकिनः।

उपादेयं परं ज्योतिरुपयोगैकलक्षणम्॥२॥

[सर्वदर्शनसंग्रह, आर्हतदर्शन श्लोक २९, ३०]

अर्थ—जैन लोग 'चित्' और 'अचित्' अर्थात् चेतन और जड़ दो ही परतत्त्व मानते हैं। उन दोनों के विवेचन का नाम 'विवेक' है। जो-जो ग्रहण के योग्य है, उस-उसका ग्रहण और जो-जो त्याग करने योग्य है, उस-उसका त्याग करनेवाले को 'विवेकी' कहते हैं॥१॥

कर्त्ता=जीवात्मा में रहनेवाले राग आदि दोष हेय=त्याज्य हैं, क्योंकि उनका कार्य=परिणाम 'अविवेक' है अर्थात् राग आदि के कारण चित्-अचित्, अच्छे-बुरे का भेद नष्ट हो जाता है। जिसका एकमात्र लक्षण 'उपयोग' (=चेतना) है उस परमज्योति (=जीव या चित्) नामक तत्त्व को ग्रहण करना चाहिये॥२॥

अर्थात् जीव के विना दूसरे चेतनतत्त्व ईश्वर को नहीं मानते। 'कोई भी अनादि सिद्ध ईश्वर नहीं', ऐसा बौद्ध-जैन लोग मानते हैं।

[बौद्ध और जैन एक ही हैं; राजा शिवप्रसाद का मत]

इसमें राजा शिवप्रसाद जी **'इतिहासतिमिरनाशक'** ग्रन्थ में लिखते हैं कि "इनके दो नाम हैं, एक जैन और दूसरा बौद्ध। ये पर्यायवाची शब्द हैं, परन्तु बौद्धों में वाममार्गी मद्यमांसाहारी बौद्ध हैं, उनके साथ जैनियों का विरोध है। परन्तु जो महावीर और गौतम गणधर हैं, उनका नाम बौद्धों ने बुद्ध रक्खा है और जैनियों ने गणधर और जिनवर।" इसमें जिनकी परम्परा जैनमत है, उन राजा शिवप्रसादजी ने अपने **'इतिहासतिमिरनाशक'** ग्रन्थ के तीसरे खण्ड [मैडिकल हॉल, बनारस द्वारा मुद्रित प्रथम संस्करण सन् १८७३, पृष्ठ १०९] में लिखा है कि "स्वामी शंकराचार्य से पहले जिनको हुए **कुल हजार वर्ष के लगभग** गुजरे हैं सारे भारतवर्ष में बौद्ध अथवा जैनधर्म फैला हुआ था।" इस पर नोट है—''.....बौद्ध कहने से हमारा आशय उस मत से है, जो महावीर के गणधर गौतम स्वामी के समय तक वेदविरुद्ध सारे भारतवर्ष में फैला रहा और जिसको 'अशोक' और 'सम्प्रति' महाराज ने माना, उससे जैन बाहर

किसी तरह नहीं निकल सकते।.... जिन, जिससे **'जैन'** निकला और बुद्ध जिससे **'बौद्ध'** निकला, दोनों पर्याय शब्द हैं। कोश में दोनों का अर्थ एक ही लिखा है और गौतम को दोनों मानते हैं। वरन् **'दीपवंश'** इत्यादि पुराने बौद्ध ग्रन्थों में शाक्यमुनि गौतम बुद्ध को अक्सर महावीर के ही नाम से लिखा है। पस उसके समय में एक ही उनका मत रहा होगा।... हमने जो जैन न लिखकर गौतम के मत वालों को बौद्ध लिखा, उसका प्रयोजन केवल इतना ही है कि उनको दूसरे देशवालों ने बौद्ध के ही नाम से लिखा है...।"

[बौद्ध और जैन एक ही हैं; अमरकोश का मत]

ऐसा ही **'अमरकोश'** में भी लिखा है—

सर्वज्ञः सुगतो बुद्धो धर्मराजस्तथागतः।
समन्तभद्रो भगवान् मारजिल्लोकजिज्जिनः॥१॥
षडभिज्ञो दशबलोऽद्वयवादी विनायकः।
मुनीन्द्रः श्रीधनः शास्ता मुनिः शाक्यमुनिस्तु यः॥२॥
स शाक्यसिंहः सर्वार्थसिद्धःशोद्धोदनीश्च सः।
गौतमश्चार्कबन्धुश्च मायादेवीसुतश्च सः॥३॥

अमरकोश, कां० १ । वर्ग १ । श्लोक ८ से १० तक॥

अब देखो! 'बुद्ध' 'जिन' और 'बौद्ध तथा जैन' एक के नाम हैं वा नहीं? क्या अमरसिंह भी 'बुद्ध' 'जिन' के एक लिखने की [कर] भूल गया है?

जो अविद्वान् जैन हैं, वे न तो अपना जानते और न दूसरे का, केवल हठमात्र से बड़ाया करते हैं; परन्तु जो जैनों में विद्वान् हैं, वे सब जानते हैं कि 'बुद्ध' और 'जिन' तथा 'बौद्ध' और 'जैन' पर्यायवाची हैं।

उन्हीं बौद्धों और जैनियों का नाममात्र भेद है, परन्तु जो मांसाहारी बौद्ध हैं, उनसे जैन भिन्न हैं। और चार्वाकों का मत लेके जैनमत प्रवृत्त हुआ है, और कुछ विरोध भी हैं। अर्थात् जैसे चार्वाक और बौद्ध ईश्वर को नहीं मानते, और चार्वाक जगत् को अनादिकाल से स्वभाव से सिद्ध तथा प्रत्यक्ष प्रमाण को ही मानते हैं, जैनी लोग जीव को अनादि और [जगत् को बोद्धों के] क्षणिकवाद से विरुद्ध मानते हैं। जीव कर्म का कर्त्ता, स्वयं फलभोक्ता है। फलप्रदाता और जगत् का कर्त्ता कोई नहीं। कर्मक्षय से मुक्ति [और] दया, क्षमा को धर्म मानते हैं;

[जैनियों के कुछ अन्य सिद्धान्त]

और अपने तीर्थंकरों को ही केवली= मुक्तिप्राप्त और परमेश्वर मानते हैं, अनादि परमेश्वर कोई नहीं। सर्वज्ञ, जितराग, अर्हन्, केवली, तीर्थकृत, जिन ये छः नास्तिकों के देवताओं के नाम हैं।

[जैन प्रोक्त आदि देव का स्वरूप]

आदिदेव का स्वरूप हेमचन्द्र सूरि ने **'आप्तनिश्चयालङ्कार'** ग्रन्थ में लिखा है—

सर्वज्ञो जितरागादिदोषस्त्रैलोक्यपूजितः।

यथास्थितार्थवादी च देवोऽर्हन् परमेश्वरः॥१॥

[सर्वदर्शनसंग्रह आर्हतदर्शन श्लोक ५]

[सर्वज्ञ ईश्वर के खण्डन में जैनियों के कुतर्क]

तथा चोक्तं तौतातितैः—

सर्वज्ञो दृश्यते तावन्नेदानीमस्मदादिभिः।

दृष्टो न चैकदेशोऽस्ति लिङ्गं वा योऽनुमापयेत्॥२॥

न चाऽऽगमविधिः कश्चिन्नित्यः सर्वज्ञबोधकः।

न च तत्रार्थवादानां तात्पर्यमपि कल्प्यते॥३॥

न चान्यार्थप्रधानैस्तैस्तदस्तित्वं विधीयते।

न चानुवादितुं शक्यः पूर्वमन्यैरबोधितः॥४॥

[अनादि नित्य पदार्थों में अन्योन्याश्रय दोष नहीं आता]

अनादेरागमस्यार्थो न च सर्वज्ञ आदिमान्।

कृत्रिमेण त्वसत्येन स कथं प्रतिपाद्यते?॥५॥

अथ तद्वचनेनैव सर्वज्ञोऽन्यैः प्रतीयते।

प्रकल्प्येत कथं सिद्धिरन्योऽन्याश्रययोस्तयोः॥६॥

सर्वज्ञोक्ततया वाक्यं सत्यं तेन तदस्तिता।

कथं तदुभयं सिध्येत् सिद्धमूलान्तरादृते॥७॥

असर्वज्ञप्रणीतात्तु वचनान्मूलवर्जितात्।

सर्वज्ञमवगच्छन्तस्तद्वाक्योक्तं न जानते॥८॥

सर्वज्ञसदृशं किञ्चिद्यदि पश्येम सम्प्रति।

उपमानेन सर्वज्ञं जानीयाम ततो वयम्॥९॥

उपदेशोऽपि बुद्धस्य धर्माधर्मादिगोचरः।

अन्यथा नोपपद्येत सार्वज्ञ्यं यदि नाभवत्॥१०॥

[सर्वदर्शनसंग्रह, आर्हतदर्शन श्लोक ६-१४]

अर्थ—जो रागादि दोषों को जीतनेहारा, सर्वज्ञ=सबका ज्ञाता, तीन लोकों में पूजित, यथार्थवादी=पदार्थों का यथावत् वक्ता **'अर्हन् देव'** है, वही परमेश्वर है॥१॥

[तौताततितों द्वारा खण्डन]— [जैनियों की इस मान्यता का खण्डन तौतातित= कुमारिल भट्ट के अनुयायियों ने इस प्रकार किया है—]

जिस 'अर्हन् देव' को तुम सर्वज्ञ कह रहे हो, हमे तो वह **'प्रत्यक्ष प्रमाण'** से किसी भी प्रकार से सर्वज्ञ दिखलाई नही पड़ता, और न उसका कोई एक भाग ही दिखाई पड़ता है जो चिह्न बनकर **'अनुमान प्रमाण'** से उसको सर्वज्ञ मानने में सहायक हो। अतः तुम्हारे 'अर्हन्-देव' के पक्ष **'प्रत्यक्ष'** और **'अनुमान'** प्रमाण नहीं घटते॥२॥

वैदिक शास्त्रों का कोई विधान भी ऐसा उपलब्ध नहीं है जो **'शब्दप्रमाण'** बनकर तुम्हारे **'अर्हन् देव'** को नित्य और सर्वज्ञ सिद्ध

करे। न कोई अर्थवाद=प्रशंसात्मक वाक्य ही प्राप्त होता है जिसमे तुम्हारे 'अर्हन् देव' की की प्रशंसा की हुई हो। अतः **'शब्दप्रमाण'** के आधार पर भी 'अर्हन् देव' 'ईश्वर' सिद्ध नहीं होता॥३॥

अन्य तात्पर्यवाले अर्थवाद=वाक्यों से भी तुम्हारे परमेश्वर की सत्ता सिद्ध नही होती। पहले के किसी प्रामाणिक विद्वान् ने भी उसको 'सर्वज्ञ' आदि नहीं कहा जिससे उसके कहे कथनों का अनुवाद=पुनः कथन किया जा सके॥४॥

तुम्हारा कथित ईश्वर अनादि माने गये वेदों का वर्ण्यविषय भी नही हो सकता, क्योंकि वेद अनादि हैं और तुम्हारा ईश्वर आदिमान् है। अनादि में सादि विषय का वर्णन संभव नहीं है। यदि वेद को सादि ग्रन्थ मान लें तो वह कृत्रिम=मनुष्यकृत या मिथ्याग्रन्थ हो जायेगा और वह असत्य बातों का प्रतिपादक कहलायेगा, तो भी कृत्रिम और असत्य बातों के द्वारा तुम्हारे 'सर्वज्ञ' ईश्वर का प्रतिपादन कैसे हो सकता है?। इस प्रकार भी तुम्हारा **'अर्हन् देव'** 'सर्वज्ञ ईश्वर' सिद्ध नहीं होगा॥५॥

यदि तुम्हारे 'अर्हन्' के ही वचन-प्रमाण से उसको सर्वज्ञ मान लें, तो ऐसे लोग मूर्ख होते हैं जो विना प्रमाण के किसी की बात को स्वीकार कर लें। उन पर आश्रित वचन की सिद्धि=प्रामाणिकता हो ही नहीं सकती, क्योंकि वह वचन अन्योन्याश्रय दोषयुक्त है अर्थात् वही कहने वाला है, वही स्वयं

को सर्वज्ञ बता रहा है। जब सर्वज्ञ ही सिद्ध नहीं हो रहा तो उसका वचन कैसे सिद्ध होगा?॥६॥

यदि आप यह कहें कि वह **'अर्हन् देव'** सर्वज्ञ है और उस सर्वज्ञ के द्वारा कहा वचन स्वतः सत्य है और इसी से उस सर्वज्ञ का अस्तित्व सिद्ध हो जाता है, तो जब मूल पक्ष **'सर्वज्ञ होना'** ही सिद्ध नहीं हुआ तो उस पर आधारित अगली अन्य दोनों बातें कैसे सिद्ध होंगी? अर्थात् न तो वह यथार्थवादी है और न परमेश्वर है॥७॥

किसी असर्वज्ञ=साधारण जैन व्यक्ति अथवा लेखक के कहे हुए वचन के आधार पर यदि हम **'अर्हन् देव'** का अस्तित्व स्वीकार करें अथवा उसको सर्वज्ञ मान लें तो वह मूलतः ही अप्रामाणिक है, क्योंकि वह किसी असर्वज्ञ=अप्रामाणिक का कहा वचन है। ऐसे साधारण व्यक्ति के वचन के आधार पर सर्वज्ञ **'अर्हन्'** को जानने की इच्छा जो लोग करते हैं वे अपनी ही कल्पनाओं से क्यों नहीं जान लेते, क्योंकि उन दोनों के वचन एक जैसे अप्रामाणिक हैं॥८॥

यहां बताये गये सर्वज्ञ **'अर्हन् देव'** के समान यदि हम संसार में किसी अन्य को सर्वज्ञ देख लें, तो **'उपमान प्रमाण'** के द्वारा भी उनको जाना जा सकता है किन्तु **'सर्वज्ञ'** अन्य कोई संसार में नहीं है, अतः **'उपमान प्रमाण'** भी जैनियों के ईश्वर पर नहीं घटता॥९॥

बुद्ध अर्थात् जिन का उपदेश, जो धर्म और अधर्म का ज्ञान करानेवाला है, वह किसी अन्य उपाय से अर्थात् **'अर्थापत्ति'** से भी प्रामाणिक नहीं सिद्ध हो सकता, जब तक उन्हें **'सर्वज्ञ'** नहीं मान लेते। और सर्वज्ञ हैं नहीं, अतः उनका उपदेश अप्रमाणिक ही सिद्ध होता है॥१०॥

[रागादि दोषयुक्त जीव 'ईश्वर' नहीं हो सकता]

[जैनसिद्धान्तों का] खण्डन [परक]—

उतर— यह सब प्रपञ्च की बात है; क्योंकि जो प्रथम रागादि दोषयुक्त है, वह सदा के लिये कभी नहीं छूट सकता, क्योंकि जो नैमित्तिक दोष हैं तो फिर भी निमित्त होने से हो जायेंगे और जो स्वाभाविक हैं, तो कभी न छूटेंगे। जो देशकाल से परिच्छिन्न वस्तु होता है, वह एकदेशी, और जो एकदेशी होता है, वह सर्वज्ञ नहीं; क्योंकि जो वस्तु अल्प है, उसके गुण, कर्म, स्वभाव भी अल्प होते हैं, वह सर्वज्ञ नहीं हो सकता, किन्तु जो सर्वव्यापक अनादि परमात्मा है, वही सनातन ईश्वर है॥

क्या जो वस्तु तुमको प्रत्यक्ष न हो, वह नहीं होता और जो प्रत्यक्ष है वही होता है, ऐसा नियम है? तुम प्रत्यक्ष छः प्रकार का मानते हो। एक श्रावण, दूसरा त्वाच, तीसरा चाक्षुष, चौथा रासन, पाँचवाँ घ्राण और छठा मानस। **जैसे पृथिवी के गन्धादि गुण कठिनत्वादि स्वभाव को देख के पृथिवी प्रत्यक्ष होती है, वैसे ही परमेश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव और नियम, सृष्टि में रचना आदि गुण, कर्म और स्वभाव कार्यनियम**

देखकर सर्वज्ञ, सर्वव्यापी, अनादि ईश्वर का प्रत्यक्ष करना चाहिये। और जब जीवात्मा किसी दुष्ट वा श्रेष्ठ काम का ध्यान करता है, उस समय वह तदाकार उसके अभिमुख होता है। उसी समय उसके भीतर से दूसरी प्रेरणा अर्थात् पाप में भय, शंका, लज्जा और पुण्य में निर्भय, उत्साह और प्रसन्नता की रहनेवाली बुद्धि होती है, वह ईश्वर की ओर से है। वहां गुण-गुणी का तादात्म्य सम्बन्ध है, इसलिये परमात्मा प्रत्यक्ष है। जैसे किसी कृत्रिम पदार्थ को देखकर, उसमें रचनाविशेष लिंग को देखकर, अदृष्ट कर्त्ता को निश्चित जानना होता है। क्या यह ईश्वर में अनुमान का लिङ्ग नहीं [अतः ईश्वर को ही सर्वज्ञ मानना चाहिए, किसी पुरुषविशेष को नहीं]।

आगम अर्थात् आप्त के कहे का प्रमाण मानना चाहिये। तुम्हारे पुस्तकों में अनादि ईश्वर का निरूपण नहीं किया, सो भूल है। जो नित्य सर्वज्ञ न हो तो सादि ज्ञानयुक्त पुरुष का शरीर पालने के पदार्थ कहाँ से हो सकें? क्योंकि शरीर का आदि-अन्त होता है, इसका कर्त्ता जीव नहीं हो सकता। जो शरीरादि का कर्त्ता होता, तो शारीरिक क्रिया भी जानता कि इस आँख में कितनी नाड़ी आदि पदार्थों के संयोग-वियोग हैं, जैसे सांचे में किसी धातु को ढालते हैं, तादृश पात्र बन जाता है। अथवा बीज में जैसी रचना करता है, वैसा ही अंकुर, मूल, शाखा, पत्र, पुष्प, फल उत्पन्न होता है, यह सामर्थ्य जीव वा जड़ का नहीं है, **क्योंकि जीव को जब शरीर प्राप्त होता है, तभी कुछ कर सकता [है] और ज्ञान का सामर्थ्य बढा सकता है, अन्यथा नहीं।** तो जो अनादि ईश्वर जीव के शरीर वा बीज

आदि का योग न करता, तो जगत् में कुछ भी न हो सकता। देखलो! कितना ही कोई विद्वान् वा योगी हो, जब सुषुप्ति को प्राप्त होते हैं, तब कुछ भी भान नहीं रहता।

दूसरा, जब दुःख प्राप्त होता है तब ज्ञान न्यून हो जाता है। जीव वा जड़ परमाणुओं से स्वतः कुछ भी रचनाविशेष नहीं हो सकती। और यथार्थवाद भी ईश्वर में यथावत् घटता है, क्योंकि जगत् में अनन्त विद्या के यथावत् रचित कार्यों को देखने से ईश्वर प्रशंसनीय होता है। जब अन्तर्यामी ईश्वर अपने गुण, कर्म और स्वभाव का प्रकाश जीवात्मा में करे, पुनः दूसरे के सामने परमेश्वर का अनुवाद करना भी सहज है। अन्योऽन्याश्रय दोष अनित्य पदार्थ में आता है, नित्य में नहीं; क्योंकि जो साधनसाध्य हो उसी में अनवस्था आती है, नित्य में नहीं। जैसे सूर्य और प्रदीप का प्रकाशक और प्रकाश्य सूर्य और दीप होता है, दूसरा नहीं। इसी प्रकार परमेश्वर का वचन और परमेश्वर नित्य और स्वयं प्रकाश होने से अनवस्था नहीं आ सकती। वैसे उपमान से भी ईश्वर सिद्ध होता है; क्योंकि परमेश्वर के सदृश परमेश्वर है वा एकदेश अथवा एक गुण, कर्म, स्वभाव तुल्य, दूसरा आकाश, न्यायाधीश आदि होते हैं। उसकी उपमा से भी ईश्वर सिद्ध होता है। इसलिये जो तीर्थंकरों को परमेश्वर मानते हो तो उनके माता-पिता को उत्पन्न किसने किया था? जो कहो कि वे स्वभाव से हुये थे, तो अब भी स्वभाव से मनुष्य क्यों नहीं होते?॥

आस्तिक और नास्तिक का संवाद

इसके आगे **'प्रकरणरत्नाकर'** दूसरे भाग से, जिसको बड़े-बड़े जैनियों ने अपनी सम्मति के साथ माना और मुम्बई में छपवाया है, जैनियों के ईश्वरखण्डन में आस्तिक नास्तिक संवाद के प्रश्नोत्तर यहाँ लिखते हैं—

[ईश्वरीय व्यवस्था से ही जीव कर्मफलों को भोगते हैं]

नास्तिक—ईश्वर की इच्छा से कुछ नहीं होता है, जो कुछ होता है वह कर्म से होता है।

आस्तिक—कर्म से जो होता है, तो कर्म किससे होता है? जो कहो जीव आदि से, तो उनके फल भोगना जीव की इच्छानुकूल होगा, परन्तु पाप के फल 'दुःख' को जीव अपनी इच्छा से नहीं भोगता, ईश्वर के भोगाने से भोगता है; जैसे, चोर सुख अपनी इच्छा से भोगता है और दुःख राजा की व्यवस्था से।

[जीव अपने जीवत्व स्वभाव को छोड़ ईश्वर नहीं बन सकता]

नास्तिक—ईश्वर अक्रिय है, क्योंकि जो कर्म करता होता, तो कर्म का फल भी भोगना पड़ता।

आस्तिक—ईश्वर अक्रिय नहीं, क्योंकि वह चेतन और सृष्टिकर्त्ता है, जैसे तुम्हारा कृत्रिम बनावट का ईश्वर, जैसे कि तुमने तीर्थंकरों को जीव से

ईश्वर बने हुये माना है, वैसे होनेवाले इस प्रकार के ईश्वर को कोई विद्वान् कदाचित् नहीं मान सकता; क्योंकि जो निमित्तों से वह ईश्वर बने तो अनित्य हो जाय। क्योंकि ईश्वर बनने के पहले जीव था, पश्चात् किसी निमित्त से ईश्वर बना, तो वह फिर भी जीव हो जायगा। क्योंकि वह अनादि काल से जीव था, अनन्त काल तक रहेगा, फिर बीच में ईश्वर बना, वह भी अन्त में पुनः जीव हो जायगा। इसलिये इस अनादि-सिद्ध ईश्वर को ही मानना योग्य है।

परमेश्वर पाप कभी नहीं करता। जैसे स्वाभाविक चेष्टा होती है, उसी प्रकार जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय करता है, इसलिये जगत् का कर्त्ता ईश्वर है। जो स्वभाव से जगत् बनता है, तो जगत् के कारण का स्वभाव जड़त्व है, वह ज्ञानपूर्वक श्रेष्ठ नहीं हो सकता, क्योंकि उसमें यथायोग्य बनने का ज्ञान ही नहीं। जैसे, मिट्टी में घट और रूई में कपड़े बनने का स्वतःसामर्थ्य नहीं, दूसरे ज्ञानवाले के बनाने से घड़ा तथा वस्त्र बनता है।

[ईश्वर के व्यापक होनेमात्र से सब जगत् चेतन नहीं हो सकता]

नास्तिक—ईश्वर व्यापक नहीं है। जो व्यापक होता तो सब चेतन होता और [सबमें] बराबर चेतनता क्यों नहीं? ब्राह्मणादि में उत्तमता, मध्यमता, निकृष्टता क्यों हुई? यदि सबमें ईश्वर एक-सा व्यापक है, तो छोटाई-बड़ाई क्यों हुई?

आस्तिक—व्याप्य और व्यापक एक नहीं, किन्तु दो होते हैं। जैसे आकाश सब में व्यापक है और सब आकाश के सदृश नहीं होता वैसे परमेश्वर के चेतन होने से सब जड़वस्तु चेतन नहीं होता। जैसे आकाश सबमें बराबर है, पृथ्वी आदि के अवयव बराबर नहीं, **वैसे परमेश्वर के बराबर कोई नहीं।**

[अपने गुण-कर्मों से मनुष्य छोटा बड़ा होता है]

जैसे विद्वान्-अविद्वान्, धर्मात्मा-अधर्मात्मा बराबर नहीं होते, वैसे विद्यादि सद्गुण और सत्यभाषणादि कर्म तथा सुशीलतादि स्वभाव के अधिक-न्यून होने से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और अन्त्यज बड़े-छोटे माने जाते हैं। वर्णों की व्याख्या जैसी चतुर्थ समुल्लास में लिख आये हैं, वहाँ देख लो।

[ईश्वर में ही अधिपतित्व और जगत् रूप ऐश्वर्य है]

नास्तिक—ईश्वर ने जगत् का अधिपतित्व और जगत् रूप ऐश्वर्य किस कारण स्वीकार किया?

आस्तिक—ईश्वर ने कभी अधिपतित्व न छोड़ा था, न ग्रहण किया है, किन्तु अधिपतित्व और जगत् रूप ऐश्वर्य ईश्वर में ही है। जब कभी [कुछ] उससे अलग न हो सकता है, तो ग्रहण क्या करेगा? क्योंकि अप्राप्त का ग्रहण होता है। व्याप्य से व्यापक और व्यापक से व्याप्य पृथक् कभी नहीं हो सकता, इसलिये सदैव स्वामित्व और अनन्त ऐश्वर्य अनादि काल से ईश्वर में है। इसका ग्रहण और त्याग जीवों में घट सकता है, ईश्वर में नहीं।

[जीवों के कर्त्तव्य कर्म ईश्वर नहीं करता, उनके कर्म अन्य हैं]

नास्तिक—जो ईश्वर की रचना से सृष्टि होती है, तो माता- पिता का क्या काम? जब परमात्मा शाश्वत, अनादि, चिदानन्द, ज्ञानस्वरूप है, तो जगत् के प्रपञ्च और दुःखरूप में क्यों पड़ा? आनन्द को छोड़ दुःख को ग्रहण करना, ऐसा काम कोई साधारण मनुष्य भी नहीं करता, तो ईश्वर ने क्यों किया?

आस्तिक—ईश्वर की सृष्टि भिन्न और मानुषी सृष्टि भिन्न होती है, इसलिये माता-पिता की आवश्यकता है। जैसे परमात्मा अनादि प्रकृति परमाणुरूप कारण से सृष्टि करता है, वैसे परमात्मा ने माता-पिता-रूप निमित्त कारण से उत्पत्ति का प्रबन्ध किया है। इसमें कोई दोष नहीं।

परमात्मा किसी प्रपञ्च और दुःख में नहीं गिरता, न अपने आनन्द को छोड़ता है; क्योंकि प्रपञ्च और दुःख में गिरना, जो एकदेशी हो उसका हो सकता है, सर्वदेशी का नहीं। जो अनादि, चिदानन्द, ज्ञानस्वरूप परमात्मा जगत् को न बनावे तो अन्य कौन बना सके? जगत् बनाने का जीव में सामर्थ्य नहीं और जड़ में भी स्वयं बनने का भी सामर्थ्य नहीं। इससे यह सिद्ध हुआ कि परमात्मा ही जगत् को बनाता और सदा आनन्द में रहता है। जैसे परमात्मा परमाणु रूप कारण से सृष्टि करता है वैसे माता-पिता-रूप निमित्तकारण से भी उत्पत्ति का प्रबन्ध-नियम उसी ने किया है।

[ईश्वर जगत् का कर्त्ता धर्ता हर्त्ता होकर भी बन्धनमुक्त है]

नास्तिक—ईश्वर मुक्तिरूप सुख को छोड़ जगत् में अनेकरूप पदार्थों की सृष्टि, धारण और प्रलय करने के बखेड़े में क्यों पड़ा?

आस्तिक—ईश्वर सदा मुक्त है। तुम्हारे तीर्थंकरों के सदृश बन्धपूर्वक मुक्ति का होना ईश्वर में नहीं। वह जगत् को बनाता, धरता, पालन करता और प्रलय करता हुआ भी बन्ध में नहीं पड़ता, क्योंकि बन्ध और मुक्त सापेक्ष है। जो बन्ध न हो तो मुक्ति नहीं और मुक्ति हो तो बन्ध नहीं। परमेश्वर में बन्ध-मोक्ष नहीं घट सकता, किन्तु वह सदा मुक्त है। और जो एकदेशी जीव हैं, वे ही बद्ध और मुक्त सदा हुआ करते हैं। अनन्त, सर्वदेशी, सर्वव्यापक, ईश्वर बन्धन वा नैमित्तिक मुक्ति के चक्र में, जैसे कि तुम्हारे तीर्थंकर हैं, कभी नहीं पड़ता।

[कोई भी जीव अपने कुकर्मों का फल भोगना नहीं चाहता]

नास्तिक—पी हुई भांग के नशे के समान जीव अपने-अपने कर्मों के फलों को प्राप्त होता है, इसमें ईश्वर का कुछ काम नहीं।

आस्तिक—विना राजा के डाकू, चोर आदि दुष्ट मनुष्य स्वयं फांसी नहीं चढ़ते और न कारागार में जाते हैं, किन्तु राजा उनके कर्मों का फल देता है। वैसे ईश्वर की न्याय-व्यवस्था के विना कर्मों का फल कोई भी नहीं भोगना चाहेगा, इसलिये न्यायाधीश 'ईश्वर' का होना आवश्यक है।

[ईश्वर अनेक हों, तो जीववत् परस्पर लड़ा-भिड़ा करेंगे]

नास्तिक—जगत् में एक ईश्वर नहीं, किन्तु जितने मुक्त जीव ईश्वररूप हैं वे सब ईश्वररूप हैं।

आस्तिक—यह कहना व्यर्थ है, क्योंकि जो प्रथम बद्ध होकर मुक्त हो, तो पुनः अवश्य बन्ध में पड़ेगा, जैसे कि तुम्हारे तिर्थंकर, और जो सदा मुक्त है वह कभी बन्ध में न गिरेगा। और जब बहुत से ईश्वर होंगे, तो जैसे जीव अनेक होने से लड़ते-भिड़ते फिरते हैं वैसे ईश्वर भी लड़ा-भिड़ा करेंगे।

[कर्त्ता के बिना कोई कार्य जगत् में नहीं होता]

नास्तिक—हे मूढ! जगत् का कर्त्ता कोई नहीं, किन्तु जगत् स्वयंसिद्ध है।

आस्तिक—कर्त्ता के विना कोई कर्म और कर्म के विना कोई कार्य नहीं हो सकता, इसलिये ईश्वर जगत् का कर्त्ता है। जो जगत् स्वयंसिद्ध होता तो तुम्हारे खेत के गेहूं स्वयं पिसान, रोटी बन, तुम्हारे पास आकर, मुख में घुसकर, पेट में चले जायें। [यदि ऐसा होता हो] तो विना ईश्वर के किये जगत् भी स्वयं बन जाय।

[ईश्वर न विरक्त है न मोही; ये तो जीव के धर्म हैं]

नास्तिक—ईश्वर विरक्त है वा मोही? जो विरक्त है, तो जगत् के प्रपञ्च में क्यों पड़ा? जो मोहित है तो जगत् बनाने का सामर्थ्य ही नहीं होगा।

आस्तिक—परमेश्वर में वैराग्य वा मोह कभी नहीं घट सकता, क्योंकि वह सर्वव्यापक, सर्वोत्तम होने से किसी से पृथक् वा किसी से राग नहीं कर सकता। ईश्वर से उत्तम वा उसको अप्राप्त कोई पदार्थ नहीं है, इसलिये किसी में मोह भी नहीं होता। वैराग्य और मोह का होना जीव में घटता है, ईश्वर में नहीं।

[न्यायाधीश के समान ईश्वर निर्लिप्त रहता है]

नास्तिक—जो जगत् का कर्त्ता, कर्मों के फलों का दाता ईश्वर को मानोगे, तो ईश्वर प्रपञ्ची होकर दुःखी हो जायगा।

आस्तिक—दुःख अज्ञान और अधर्माचरण से होता है। परमेश्वर में ये दोनों नहीं, इसलिये परमेश्वर प्रपञ्ची नहीं। प्रपंची-अप्रपंची जीव होते हैं, इत्यादि विचार से ईश्वर की सिद्धि होती है। जो कोई इसको नहीं मानता, वह मूढमति है। हां, अज्ञान से अपने और अपने तीर्थंकरों के समान परमेश्वर को भी समझते हो, सो तुम्हारी अविद्या की लीला है। **जो अविद्यादि दोषों से छुटना चाहो, तो वेदादि सत्यशास्त्रों का आश्रय ले लो। क्यों भ्रम में पड़े-पड़े ठोकरें खाते हो?**

[जैनियों का संसार को अनादि और अनन्त मानना भूल है]

अब, जैनी लोग जीव को अनादि, अनन्त मानते हैं सो ठीक है, परन्तु जो-जो विरुद्ध है, उस-उस को दिखलाकर खण्डन किया जायेगा। छः द्रव्यों में एक **जीवद्रव्य** भी जैनी लोग मानते हैं अर्थात् जगत् में जीव और अजीव दो ही पदार्थ हैं, तीसरा नहीं। ऐसा उनके केवली आचार्य तीर्थंकर

का वचन है।

उत्तर— अब विचारना चाहिये कि **जीव** अल्प और अल्पज्ञ है। जगत् का कार्य और कारण जड़ हैं। जो तीसरा अनन्त शक्तियुक्त परमात्मा न हो तो जगत् के उत्पादन, धारण आदि कर्मों को कोई न कर सके।

अब जैन लोग जगत् को जैसा मानते हैं, वैसा इनके सूत्रों के अनुसार दिखलाते और संक्षेपतः मूलार्थ के किये पश्चात् सत्य-झूठ की समीक्षा करके दिखलाते है—

मूल—सामि अणाई अणन्ते, चउगइ संसारघोरकान्तारे।

मोहाइ कम्मगुरुठिइ, विवागवसउ भमइ जीवो॥

प्रकरणरत्नाकर, भाग दूसरा, सूत्र २॥

यह प्रकरणरत्नाकर नामक ग्रन्थ के सम्यक् त्वप्रकाश प्रकरण में गौतम और महावीर का संवाद है।

इसका संक्षेप से उपयोगी यह अर्थ है कि यह संसार अनादि, अनन्त है। न कभी इसकी उत्पत्ति हुई, न कभी विनाश होता है अर्थात् किसी का बनाया जगत् नहीं। सो ही आस्तिक-नास्तिक के संवाद में [भी कहा

है]—''हे मूढ! जगत् का कर्त्ता कोई नहीं; न कभी बना और न कभी नाश होगा।"

जो संयोग से उत्पन्न होता है वह अनादि और अनन्त कभी नहीं हो सकता। और उत्पत्ति तथा विनाश हुए विना कर्म नहीं रहता। जगत् में जितने पदार्थ उत्पन्न होते हैं वे सब संयोगज=उत्पत्ति-विनाशवाले देखे जाते हैं, पुनः जगत् उत्पन्न और विनाशवाला क्यों नहीं? इसलिये तुम्हारे तीर्थंकरों को सम्यग्बोध नहीं था। जो उनको सम्यग्ज्ञान होता तो ऐसी असम्भव बातें क्यों लिखते?

[जैनियों की असम्भव बातें]

जैसे तुम्हारे गुरु हैं, वैसे तुम शिष्य भी हो। **तुम्हारी बातें सुननेवाले को पदार्थविद्या का ज्ञान कभी नहीं हो सकता।**

भला, जो प्रत्यक्ष संयुक्त पदार्थ दीखता है उसकी उत्पत्ति और विनाश क्योंकर नही मानते? अर्थात् **इनके आचार्य वा जैनियों को भूगोल-खगोल विद्या भी नहीं आती थी और न अब यह विद्या इनमें है, नहीं तो निम्नलिखित ऐसी असंभव बातें क्योंकर मानते और कहते?**

अब, पृथिव्यादि भूत और भूगोलों को भी जैनी लोग जीव के शरीर मानते हैं, क्योंकि काची मिट्टी सजीव है, क्षार मट्टी अजीव है, इसलिये उसमें

वनस्पति नहीं उगती। वाह रे जैनी लोगो! और धन्य हैं तुम्हारे केवली तीर्थंकर जिनको **पदार्थविद्या** में बहुत ही भ्रम था! जो पृथिव्यादि किसी एक जीव का शरीर हो तो जैसे बड़ी-बड़ी तिमिंगल मच्छी जिधर चाहती, उधर जाती-आती है, वैसे पृथिवी आदि क्यों नहीं स्वेच्छित चाल चलते हैं?

क्या मीठीली मट्टी में वनस्पति उगती और क्षार मट्टी में नहीं उगती? हाँ! यह तो बात है कि मीठी मिट्टी की वनस्पतियां आदि खारी मिट्टी में, खारी मिट्टी के वृक्ष आदि मीठी मिट्टी में नहीं होते होंगे, किन्तु अपने-अपने ठिकाने सब होते हैं।

[योनिभेद से जीव का परिमाण मानना मूर्खता है]

प्रश्न—जीव का आकार शरीर के सदृश होता है, जैसे घट में जल का आकार बनता है।

उत्तर—जो यह बात सत्य हो तो हाथी का जीव कीड़ी और कीड़ी का जीव हाथी में न समा सके। इसलिये यह बात झूठी है। यह भी एक मूर्खता की बात है; क्योंकि जीव एक सूक्ष्म पदार्थ है जो कि एक परमाणु में भी रह सकता है परन्तु उसकी शक्तियां शरीर में प्राण, बिजुली और नाड़ी आदि के साथ संयुक्त हो रहती हैं, उनसे सब शरीर का वर्तमान जानता है। अच्छे संग से अच्छा और बुरे संग से बुरा हो जाता है।

जिनदत्त सूरि ने इस प्रकार कहा—

जिनो देवो गुरुः सम्यक् तत्त्वज्ञानोपदेशकः।
ज्ञानदर्शनचारित्र्याण्यपवर्गस्य वर्तनी॥१॥

स्याद्वादस्य प्रमाणे द्वे प्रत्यक्षमनुमापि च।

नित्यानित्यात्मकं सर्वं नवतत्त्वानि सप्त वा॥२॥

जीवाजीवौ पुण्यपापे चास्त्रवः संवरोऽपि च।

बन्धो निर्जरणं मुक्तिरेषां व्याख्याधुनोऽच्यते॥३॥

चेतनालक्षणो जीवः स्यादजीवस्तदन्यकः।

सत्कर्मपुद्गला पुण्यं पापं तस्य विपर्ययः॥४॥

आस्रवः स्रोतसो द्वारं संवृणोतीति संवरः।

प्रवेशः कर्मणां बन्धो निर्जरस्तद्वियोजनम्॥५॥

अष्टकर्मक्षयान् मोक्षोऽथान्तर्भावश्च कैश्चन।

पुण्यस्य संवरे पापस्यास्रवे क्रियते पुनः॥६॥

[जैन साधुओं के दो भेद-श्वेताम्बर और दिगम्बर]

सरजोहरणा भैक्षभुजो लुञ्चितमूर्द्धजाः।

श्वेताम्बराः क्षमाशीला निःसंगा जैनसाधवः॥७॥

लुञ्चिताः पिच्छिकाहस्ताः पाणिपात्रा दिगम्बराः।

ऊर्ध्वाशिनो गृहे दातुर्द्वितीया स्युर्जिनर्षयः॥८॥

भुङ्क्ते न केवली, न स्त्री मोक्षमेति दिगम्बरः।

प्राहुरेषामयं भेदो महान् श्वेताम्बरैः सह॥९॥

—इति [सर्वदर्शनसंग्रह, आर्हतदर्शन श्लोक ५३-५८, ६०-६१]

अर्थ—जिन देव अर्थात् तीर्थंकर, तत्त्वज्ञान का उपदेशक है, ज्ञान, दर्शन और चरित्र ये 'त्रिरत्न' अपवर्ग=मोक्ष के मार्ग हैं॥१॥

स्याद्वाद के सिद्धान्त में प्रत्यक्ष और अनुमान दो प्रमाण हैं। नित्य और अनित्यस्वरूप सब जगत् है, और जैनमत में नव वा सात तत्त्व हैं॥२॥

एक जीव, दूसरा अजीव, तीसरा पुण्य, चौथा पाप, पांचवां आस्रव, छठा संवर, सातवां बन्ध, आठवां निर्जरण और नववां मुक्ति तत्त्व मानते हैं। इन नव तत्त्वों की यह व्याख्या है॥३॥

चेतना **'जीव'** का लक्षण है, अचेतन=जड़ **'अजीव'** कहाता है। सत्कर्मों के पुद्गल=परमाणु **'पुण्य'** और बुरे कामों के पुद्गल **'पाप'** हैं। आत्मा में पापकर्मों के प्रवेशद्वार को **'आस्रव'** और जो उसको ढक ले उसको **'संवर'** कहते हैं। आत्मा में प्रविष्ट कर्मों के संचय को **'बन्ध'** और उनको क्षीण कर देने को **'निर्जर'** कहते हैं॥ ४-५॥

सभी अष्टविध कर्मों का पूर्ण क्षय हो जाना **'मोक्ष'** कहाता है। कुछ लोग **'पुण्य'** का अन्तर्भाव 'संवर' में करते हैं तथा **'पाप'** का 'आस्रव' में। इस प्रकार उनके मत से सात तत्त्व रह जाते हैं॥६॥

अब जैन साधुओं के लक्षण—धूल झाड़ने की 'चमरी' सदा साथ रखनेवाले, भिक्षान्न का भोजन करनेवाले, सिर आदि के बाल लुंचित करनेवाले, क्षमाशील, संगदोष से रहित, श्वेत वस्त्र धारण करनेवाले जैनियों के **'श्वेताम्बर'** साधु होते हैं, जिन्हें **'जती'** कहते हैं।

दूसरे दिगम्बर=नग्न अर्थात् जो वस्त्र धारण न करनेवाले, सिर के बाल लुंचित करनेवाले, पिच्छिका= मोर पंखों से बना 'झाड़न' हाथ मे रखनेवाले, पाणिपात्र=हाथ को ही पात्र मान उसमें भोजन रखकर खानेवाले, भिक्षा देनेवाले गृहस्थ जब भोजन कर चुकें उसके पश्चात् भिक्षा मांगकर भोजन करनेवाले, ये **'दिगम्बर'** दूसरे प्रकार के साधु होते हैं, इन्हें **'जिनर्षि'** भी कहते हैं॥७-८॥

[दिगम्बरों और श्वेताम्बरों में मतभेद]

दिगम्बर साधुओं का मत है कि कैवल्य ज्ञान से युक्त **'केवली'** साधु भोजन पर आश्रित नहीं रहता और स्त्रियों को मोक्ष नहीं मिलता है, जबकि श्वेताम्बर इनके विपरीत मानते हैं कि स्त्रियों को भी मोक्ष मिलता है। दिगम्बरों का श्वेताम्बरों के साथ यही बड़ा मतान्तर है। दिगम्बर पहले के हैं और श्वेताम्बर पीछे हुए हैं॥९॥

जैनी—हमारे धर्म-अधर्म भी द्रव्य हैं।

विवेकी—धर्म-अधर्म गुण हैं, द्रव्य कभी नहीं हो सकते। जो धर्माधर्म को द्रव्य मानते हो तो रूप, स्पर्श आदि को भी द्रव्य मानो।

[जगत् जीव के कर्म और बन्ध अनादि नहीं हो सकते]

प्रश्न—जैनी लोग जगत्, जीव, जीव के कर्म और बन्ध को अनादि मानते हैं।

उत्तर—यहाँ भी जैनियों के तीर्थंकर भूल गये हैं, क्योंकि संयुक्त जगत् का कार्य-कारण अनादिरूप और कार्य प्रवाहरूप से अनादि हो सकता है। जैसा तुम इस स्थूल जगत् को अनादि मानते हो, सो नहीं बन सकता, क्योंकि संयोगजन्य पदार्थ संयोग से पूर्व संयुक्तावस्था में नहीं होता, किन्तु वियोगावस्था में होता है। जो जीव को अनादिकाल बन्ध है, वह कभी न छूट सकेगा और जो अनादि का भी छूटना मानोगे तो जितने अनादि द्रव्य तुम्हारे मत में हैं, वे सब अनित्य हो जायेंगे। और मुक्ति सब कर्मों के छूटने से तुम मानते हो, तो सब कर्मों के छूटने रूप निमित्त से मुक्ति होने से नैमित्तिक हुई। जो निमित्त से होता है वह सदा नहीं रह सकता, और कर्म, कर्त्ता का नित्य सम्बन्ध होने से कर्म भी कभी न छूटेंगे। इसलिये तुम्हारे मत में जो-जो तीर्थंकर आदि मुक्ति में गये होंगे, वे सब फिर आवेंगे। पुनः तुम्हारे मत में मुक्ति अनित्य हो गई।

प्रश्न—जैसे मैल लगने के कारणों से वस्त्र में मैल लगता है और धोने से छूट जाता है, पुनः मैल लग जाता है; वैसे मिथ्यात्वादि हेतुओं से रागद्वेषादि के आश्रय से जीव को कर्मरूप मैल लगता है।

उत्तर—जो मिथ्यात्वादि हेतुओं से जीव मलीन होता है, तो उन निमित्तों के पूर्व जीव को निर्मल मानना पड़ेगा और जो निर्मल को मैल लगा, तो अनिर्मोक्षापत्ति तुम्हारे मत में आवेगी; क्योंकि मुक्ति में जीव को तुम निर्मल मानते हो और मैल लगने के कारणों से मैल का लगना मानते हो, तो मुक्त जीव 'संसारी' और संसारी जीव 'मुक्त' होता है, ऐसा अवश्य ही मानना पड़ेगा।

प्रश्न—जीव अनादि काल से कर्मसहित है। कर्म छूटे पीछे नहीं लगते।

उत्तर—जो अनादि से कर्मसहित है, उसका छूटना असम्भव है और विना छूटे मुक्ति कहाँ? इसलिये जीवों के कर्म और मुक्ति को प्रवाह रूप से अनादि मानो। अनादि अनन्तता से नहीं।

[राग-द्वेषादि के आश्रय से जीव मलिन होता है]

प्रश्न—जीव निर्मल कभी नहीं था।

उत्तर—जो कभी निर्मल नहीं था, तो कभी भी निर्मल नहीं हो सकेगा।

जैसे श्वेत वस्त्र पर पीछे से लगा मैल धोने से छूट जाता है, पुनः मैल लग जाता है; परन्तु उसका श्वेतपन कभी नहीं छूट सकता।

[कोई भी जीव स्वयं दुःखरूप फल भोगना नहीं चाहता]

प्रश्न—जीव पूर्वोपार्जित कर्मों ही से स्वयं शरीर धारण कर लेता है। ईश्वर का मानना व्यर्थ है।

उत्तर—जो केवल कर्म ही शरीर धारण करने में निमित्त हों, ईश्वर कारण न हो, तो वह जीव बुरा जन्म कि जहां बहुत दुःख हो उसको धारण कभी न करे किन्तु सदा अच्छे-अच्छे जन्म धारण किया करे। जो कहो कर्म प्रतिबन्धक हैं, तो भी जैसे चोर आप से आके बन्दीगृह में नहीं जाता और स्वयं फांसी भी नहीं खाता किन्तु राजा देता है। इसी प्रकार जीव को शरीर धारण कराने और उसके कर्मानुसार फल देने वाले परमेश्वर को तुम भी मानो।

[कर्मफल स्वयं प्राप्त हो, तो पापी मजे में रहेंगे]

प्रश्न—मद=नशा के समान कर्म स्वयं प्राप्त होता है फल देने में दूसरे की आवश्कता नहीं।

उत्तर—जो ऐसा हो तो जैसे मदपान करने वालों को मद कम चढ़ता; अनभ्यासी को बहुत चढ़ता है वैसे नित्य बहुत पाप, पुण्य करने वालों को न्यून और कभी-कभी थोड़ा-थोड़ा पाप, पुण्य करने वालों को अधिक फल होना चाहिये और छोटे कर्म वालों को अधिक फल होवे।

[स्वभाव से कर्मफल का मिलना वा छूटना नहीं हो सकता]

प्रश्न—जिसका जैसा स्वभाव होता है उसको वैसा ही फल हुआ करता है।

उत्तर—जो स्वभाव से है तो उसका छूटना-वा मिलना नहीं हो सकता। हां! ऐसा मानना ठीक है।

प्रश्न—संयोग के विना कर्म परिणाम को प्राप्त नहीं होता। जैसे दूध और खटाई के संयोग के विना दही नहीं होता।

[जीव स्वयं अपने कर्मफल को प्राप्त नहीं हो सकता]

उत्तर—जैसे दूध और खटाई को मिलानेवाला तीसरा होता है वैसे ही जीवों के कर्मों के फल के साथ मिलानेवाला तीसरा ईश्वर होना चाहिये, क्योंकि जड़ पदार्थ स्वयं नियम से संयुक्त नहीं होते और जीव भी अल्पज्ञ होने से स्वयं अपने कर्मफल को प्राप्त नहीं हो सकते। इससे सिद्ध हुआ कि विना ईश्वरस्थापित सृष्टिक्रम के कर्मफलव्यवस्था नहीं हो सकती।

[जीव को कर्म-बन्धन से सदा के लिए मुक्ति नहीं]

प्रश्न—जो कर्म से मुक्त होता है, वह ईश्वर कहाता है।

उत्तर—जब अनादि काल से जीव के साथ कर्म लगे हैं तो मुक्त कैसे हो सकता है? और जिसको कर्म लगता है, वह ईश्वर ही नहीं। और कर्म,

कर्त्ता का **'समवाय'** अर्थात् नित्यसम्बन्ध होता है, यह कभी नहीं छूटता; इसलिये **जैसा ९वें समुल्लास में लिख आये हैं,** वैसा ही मानना ठीक है।

[जीव ईश्वर के समान कभी नहीं हो सकता]

जीव चाहै जैसा अपना ज्ञान और सामर्थ्य बढ़ावे, तो भी उसमें परिमितज्ञान और समीम सामर्थ्य रहेगा। ईश्वर के समान कभी नहीं हो सकता। हाँ जितना सामर्थ्य बढ़ना उचित है, उतना योग से बढ़ा सकता है।

प्रश्न—कर्म का बन्ध सादि है।

उत्तर—जो सादि है तो संयोग की आदि से पूर्व जीव निष्कर्म था। जब निष्कर्म को कर्म लग गया, तो जितने तुम्हारे निष्कर्म मुक्त जीव हैं, उनको भी कर्म लगके संसार में गिरेंगे।

प्रश्न—जैसे तुम्बी में से मिट्टी थोड़ी निकलने से वह ऊपर आती है, वैसे जीव के कर्मबन्धन कम-कम होने से जीव की ऊर्ध्वगति होकर वे सिद्धशिला में जाते हैं।

उत्तर—जैनियों ने ऊपर-नीचे की बातें गमारूपन की समझ रक्खी हैं, जो

विद्या होती, तो ऐसी निर्मूल बात क्योंकर मानते! देखो, जिसको हम ऊपर कहते हैं, उसी को उससे परे वाले लोग नीचा कहते हैं और जिसको हम नीचा कहते हैं, उसी को उससे नीचे रहनेवाले ऊँचा कहते हैं। ऐसे ही अगल-बगल में रहनेवालों की बात है। इसलिये **'सिद्धशिला'** और **'शिवपुर'** को 'मुक्ति-स्थान' मानना अविद्या की बात है।

प्रश्न—हमारे मत में साधुओं को रागद्वेष नहीं।

उत्तर—देखो! तुम्हारे मूल **'आवश्यक सूत्र'** में क्या लिखा है—

अरिहन्ते सुयरागो सारीसूवं भयारीसु —इत्यादि

अर्थात् अशुभ के छोड़ने में द्वेष, श्रेष्ठ और शुभ कामों में राग करना अच्छा, यह राग-द्वेष किसी का नहीं छूटता, अर्थात् बुरे कामों पर द्वेष और अच्छे कामों में प्रीति करना बहुत अच्छी बात है।

[मूल—] अब **'प्रकरणरत्नाकर'** के पहले भाग में जो देवचन्द्र जी कृत **'नयचक्रसार'** है, उसी की बातें लिखते हैं। जिसको सब जैन लोग मानते हैं—

तत्र द्रव्यभेदा यथा जीवा अनन्ताः,......... तत्रैकस्मिन् द्रव्ये प्रतिप्रदेशे स्वरूप एककार्यकरणसामर्थ्यरूपा अनन्ता अविभागरूपपर्याया......... एवं गुणा अप्यनन्ताः प्रतिगुणं प्रतिदेशं पर्याया..... अप्यनन्ताः......... प्रति वस्तुनि अनन्तास्ततोऽनन्तगुणाः सामर्थ्यपर्यायाः॥

प्रकरणरत्नाकर, भाग १ [नयचक्रसार पृ० १८५-१८६]

उत्तर—जीव अनन्त हैं, उनका ज्ञान [करना] किसी जीव का सामर्थ्य नहीं, [यह] केवल अटकलपच्चासी की बात है। अनन्त के स्थान में असंख्य कहता तो ठीक बात थी, क्योंकि हम जीव लोग जीवों की गणना नहीं कर सकते।

[द्रव्यपर्यायों को अनादि अनन्त मानना बुद्धिविरुद्ध है]

अब एक-एक द्रव्य में अपने-अपने एक कार्य-करण सामर्थ्य को अविभाग पर्यायों से अनन्त मानना केवल अविद्या की बात है। क्योंकि जब एक परमाणु द्रव्य की सीमा है, तो उसमें अनन्त अविभाग रूप पर्याय कैसे रह सकते हैं? और एक-एक द्रव्य में अनन्त गुण और एक-एक गुण और प्रदेश से अविभागरूप अनन्त पर्याय का मानना केवल बालकों की बातें हैं। और एक-एक वस्तु सामर्थ्य पर्याय भी अनन्त मानना केवल अविद्या की बात है, क्योंकि जिसके अधिकरण का अन्त है, उसमें अनन्त कभी नहीं रह सकता। जैसे जैनी कहते हैं कि छोटे-से कन्द में अनन्त जीव हैं। जब कन्द का अन्त है, तो जीवों का अन्त क्यों नहीं? **जितनी विद्याशून्य**

मिथ्या बातें जैनों के ग्रन्थों में है, उतनी अन्यत्र नहीं; और जहाँ कहीं हैं, उनका मूल जैनमार्ग है।

[जैनियों का प्रसिद्ध नवकार मन्त्र और उसका महत्त्व]

[मूल—] एक उनका **'नवकार मन्त्र'** है। उसका स्वरूप—

नमो अरिहन्ताणं नमो सिद्धाणं नमो आयरियाणं नमो उवज्झायाणं नमो लोए सव्वसाहूणं। एसो पंच नमुक्कारो सव्व पावप्पणासणो। मंगलाचाणं च सव्वेसिं पढमं हवइ मंगलम्॥

[रत्नसार, भाग १। पृ० १]

इस मन्त्र का अर्थ यह है—

अर्थ—(नमो अरिहन्ताणं) [जैनमत के] सब तीर्थंकरों को नमस्कार। **(नमो सिद्धाणं)** जैनमत के सब सिद्धों को नमस्कार। **(नमो आयरियाणं)** जैनमत के सब आचार्यों को नमस्कार। **(नमो उवज्झायाणं)** जैनमत के सब उपाध्यायों को नमस्कार। **(नमो लोए सव्वसाहूणं)** जितने जैनमत के साधु इस लोक में हैं, उन सबको नमस्कार है।

[(एसो पंच नमुक्कारो) यह पूर्वोक्त पांच परमेष्ठियों=पांच प्रकार के महान् आत्माओं को किया गया नमस्कार **(सव्व पावप्पणासणो)** सब

पापों का नाश करनेवाला है **(सव्वेसिं पढमं मंगललाणं)** मंगलाचरणों में सबसे प्रथम=श्रेष्ठ मंगलाचरण है, **(मंगलम् हवई)** इसके पढ़ने से मंगल होता है।]

[समीक्षक—] यद्यपि मन्त्र में 'जैन' पद नहीं है तथापि जैनियों के अनेक ग्रन्थों में सिवाय जैनमत के अन्य किसी को 'नमस्कार भी न करना' लिखा है। इसलिये यही अर्थ ठीक है। इसका ऐसा माहात्म्य धरा है कि तन्त्रों, पुराणों और भाटों की कथाओं को भी मात कर दिया है। अर्थात् इस मन्त्र के जप से सब पाप नष्ट हो जाते हैं।

[मूल—] श्राद्धदिनकृत्य [पृ० ३] और **'आत्मनिन्दाभावना'** में इसका ऐसा फल लिखा है—

नमुक्कारं तउ पढे॥९॥

जउ कब्बं। मन्ताणमंतो परमो इमुत्ति धेयाणधेयं परमं इमुत्ति।

तत्ताणतत्तं परमं पवित्तं संसार सत्ताण दुहाहयाणं॥१०॥

ताणं अन्नन्तु नो अत्थि जीवाणं भवसायरे। बुड्डूं ताणं इमं मुत्तुं। नमुक्कारं सुपोययम्॥११॥

कब्बं। अणेगजम्मं तरसं चिआणं। दुहाणं सारीरिअमाणुसाणुसाणं।

कत्तोय भव्वाणभविज्जनासो न जावपत्तो नवकारमंतो ॥१२॥

[श्राद्धदिनकृत्य, पृ० ३। सूत्र १३]

अर्थ—सब मन्त्रों में यह पवित्र और परम मन्त्र है। ध्येयों के मध्य में परम ध्येय, तत्त्वों में परम तत्त्व, दुःखों से पीड़ित संसारी जीवों का यह नवकार मन्त्र, जैसी समुद्र से पार उतारने की नौका होती है उस नौका के समान है। संसार में डूबनेवाले जीवों का एक यही रक्षक है। अनेक जन्मान्तर के शरीर और मन सम्बन्धी दुःख भव्यजीवों के नहीं नष्ट होते, जब तक नवकार मन्त्र का ग्रहण न करे। [इसको ग्रहण करने से] अग्निप्रमुख आठ महाभय नहीं होते। भवसागर से तर जाते हैं॥ जैसे महारत्न वैदूर्य नामक मणि ग्रहण करने में आवे अथवा शत्रुभय में अमोघ शस्त्र ग्रहण करने में आवे, वैसे श्रुतकेवली का ग्रहण करे। और सब द्वादशाङ्गी का नवकार मन्त्र रहस्य है॥९-१२॥

समीक्षक—यह गपोड़ा नहीं तो क्या है?

[मूल—] जो संसार में पाषाणादि मूर्तिपूजा चली है, वह सब बौद्धों और जैनियों से चली है कि जिसने सब जगत् को भरमाया है। देखलो! **'श्राद्धदिनकृत्य'** के पहले पृष्ठ पर लिखा है कि—सन्ध्या के भोजन-समय में जिनबिम्ब अर्थात् तीर्थंकरों की मूर्तियों का पूजना। द्वारपूजन में बड़े-बड़े बखेड़े हैं। और मन्दिर बनाने और पुराने मन्दिरों की मरम्मत करने से मुक्ति हो जाती है।

यह वीसवें पृष्ठ और तेईसवें पृष्ठ पर है—मन्दिर में इस प्रकार जावे, जाकर बैठे, बड़े प्रीतिभाव से पूजा करे। "**नमो जिनेन्द्रेभ्यः**" इत्यादि मन्त्रों से स्नानादि करावे, और "**जलचन्दनपुष्पधूपदीपनैः** [विवेकसार पृ० ५२]" इत्यादि से जल, चन्दनादि चढ़ावे।

[मूर्त्ति-पूजा द्वारा तथा कथित असम्भव फलों को प्राप्ति]

वैसे ही **'रत्नसार'** भाग [१] के बारहवें पृष्ठ पर मूर्त्तिपूजा का फल यह लिखा है—'पुजारी को राजा और प्रजा कोई न रोक सके।'

तेरहवें पृष्ठ पर—मूर्त्तिपूजा से रोग, पीड़ा, महादोष छूट जाय। एक किसी ने पांच कौड़ी का फूल चढ़ाया, उसने १८ देशों का राज पाया, उसका नाम कुमारपाल हुआ था, इत्यादि।

समीक्षक—जो ये बातें सच्ची हों, तो जैनी लोगों में से राजा और प्रजा का दण्ड, रोग, पीड़ा क्यों भोगते हैं? और महादोषों में क्यों फस रहे हैं? जो मूर्त्तिपूजा से भवसागर से छूट जाय तो ज्ञान, सम्यग्दर्शन और चारित्र की प्राप्ति क्यों करते हो? वाह! पांच कौड़ी के फूल चढ़ाने से १८ देशों का राज मिल जाये, तो सौ रुपयों के फूल चढ़ाने से क्या मिल जाय अर्थात् ब्रह्माण्ड में सब लोक-लोकान्तरों का भी राजा हो सकता है।

[मूल—] और गौतम का अंगूठा धोके पीये तो अमृत का फल पावे। यह बारहवें पृष्ठ पर में लिखा है।

समीक्षक—तो जैनी लोग गौतम का अंगूठा धोकर पीके अमर क्यों नहीं हो जाते?

अब इनकी मुक्ति का थोड़ा-सा वर्णन करते हैं—

[मूल—] उसी **'रत्नसार'** भाग [१] के २३वें पृष्ठ पर [लिखा है] **'सिद्धशिला'** अर्थात् जिस पर सिद्धपुरुष रहते हैं, वह पैंतालीस लाख योजन लम्बी, पोली और आठ योजन मोटी है अर्थात् एक करोड़, अस्सी लाख कोश लम्बी और पोली है और बत्तीस कोश मोटी है [इतनी पौराणिक प्रमाण से है। जैन प्रमाण से पैंतालीस अरब कोश लम्बी और पोली है तथा अस्सी हजार कोश मोटी है] वह **'सिद्धशिला'** चौदहवें लोक की शिखा पर है।

समीक्षक—यह बात महावीर तीर्थंकर के मुख की है और यहीं **'शिवपुर'** का भी वर्णन किया है। भला, यह बात किसी बुद्धिमान् के मन में आ सकती है? जो यही मुक्ति का स्थान हो तो बन्धन हो जाय; क्योंकि इसके ऊपर और चारों ओर आकाश ही होगा। फिर उस धाम से बाहर जाने में डरते होंगे। और इतनी लम्बी-चौड़ी एक शिला जैनीयों के तीर्थंकर नाप और देखके कहने को आये होंगे? जो ऐसा ही हो तो अब क्यों नहीं कहने को आते? यह जैनी भी मुक्तिविषय में भ्रम से फसे हैं। **यह सच है कि विना वेदों के यथार्थ अर्थबोध के मुक्ति के स्वरूप को कभी नहीं**

जान सकते।

मूल—उसी **'रत्नसार'** पृष्ठ २९ पर—**आबू, गिरनार, शत्रुञ्जय, शम्मेत शिखर** आदि तीर्थ करें, वे धन्य हैं। और कर्म का क्षय मुक्तिपर्यन्त माना है।

समीक्षक—यह भी बुद्धिमानों की समझ से सब प्रकार विरुद्ध है।

[जैन तीर्थों की प्रशंसा, अन्यों की निन्दा करना मूर्खता है]

मूल—और देखो, बड़ा पक्षपात और अन्धाधुंध लेख **'विवेकसार'** के ५५ पृष्ठ पर—गंगादि तीर्थ और काशी आदि क्षेत्रों के सेवने से कुछ भी परमार्थ सिद्ध नहीं होता।

समीक्षक—वाह रे जैनी लोगो! अपने जल, स्थल, पाषाणरूप मूर्त्ति आदि की सेवा से सब पापक्षय और मुक्तिपर्यन्त फल मानो और दूसरे के जल, स्थल, पाषाणमूर्त्ति का खण्डन करो, यह अपनी मूर्खता, छल, झूठ, मतलबसिन्धु की बात नहीं तो क्या है? सच तो यह है कि तुम दोनों झूठे हो। **जल, स्थल और पाषाणादि मूर्त्तियों से पापक्षय और मुक्ति कभी नहीं होती।**

[जैन किन पदार्थों से तीर्थङ्करों की पूजा करें ?]

[मूल—] यह इनका श्लोक है, जल, चन्दनादि चढ़ाने का—

जलचन्दनपुष्प-धूपनैरथदीपाक्षतकैर्नैवेद्यवस्त्रैः।

उपचारवरैर्वयं जिनेन्द्रान् रुचिरैरद्य मुदा यजामहे॥१॥

[विवेकसार, पृ० ५२]

अर्थात् जल, चन्दन, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, वस्त्र, अतिरुचिकारक उत्तम उपचार से आनन्दपूर्वक जिनेन्द्रों अर्थात् तीर्थंकरों की मूर्त्तियों की पूजा करते हैं॥१॥

समीक्षक—जितना यह पूजा का आडम्बर चला है, वह सब जैनों के घर से चला है। यह श्लोक **'विवेकसार'** के ५२ पृष्ठ पर लिखा है।

[जैनियों की कुछ और असम्भव बातें]

[मूल—] अब **और थोड़ी-सी असम्भव बातें** इनकी सुनो—

'विवेकसार' पृष्ठ ७८—एक करोड़ साठ लाख कलशों से महावीर को जन्म समय में स्नान कराया।

पृष्ठ १३६ **'विवेकसार'** में—दशार्ण राजा चौवीसवें तीर्थंकर महावीर के दर्शन करने को गया। वहाँ कुछ अभिमान किया तो वहां महावीर के दर्शन को १६,७७, ७२,१६००० इतने इन्द्र के स्वरूप और १३,३७,०५,७२, ८०,००००००० इतनी इन्द्राणियां आई थीं। देखकर राजा साश्चर्य हो गया।

समीक्षक—अब विचारना चाहिये कि इन्द्र और इन्द्राणियों के खड़े रहने के लिए ऐसे-ऐसे कई भूगोल हों तो भी नहीं समा सकें। परन्तु इसमें ऐसा होगा कि कितने ही ग्रन्थकार के घर में बैठे होंगे। कितने ही उनके चेलों के घर में और कितने उनके कन्धों पर बैठे होंगे और कितने ही पुकारते होंगे।

[मूल—] अब इनके **पक्षपात की** बातें देखो! अपने तीर्थंकरों, जिन्होंने गृहाश्रम किया, पुत्रोत्पत्ति की, संसार भोगा, पश्चात् साधु हुए, उनका मान करते हैं।

और **'विवेकसार'** १०३ पृष्ठ पर—श्री स्थूलभद्र स्वामी की कथा।

'रत्नसार' भाग १, पृष्ठ ११० पर—ब्रह्मा, विष्णु, महादेव स्त्री के गुलाम बताये हैं।

'रत्नसार' भाग १, पृष्ठ १११ पर—कृष्णादि नव वासुदेव और प्रह्लादादि प्रतिवासुदेव नरक में गये।

'रत्नसार' भाग १, पृष्ठ २०—ब्रह्मा, विष्णु, नारायण आदि सब कामी हैं। इसलिये उनको छोड़ने योग्य कहा है।

समीक्षक—और जिन ऋषभदेव आदि ने विवाह कर गृहाश्रम भोगा, वे त्यक्तव्य क्यों नहीं? जो ये त्यक्तव्य नहीं, तो नारायण आदि अच्छे क्यों नहीं? 'ऋषभदेव संसारदु:ख के तरने के लिये काष्ठ की नौका के समान तारनेवाले और महादेव, विष्णु आदि पत्थर की नौका के समान डुबाने वाले हैं', भला, यह झूठ, पक्षपात की बात जैसे कुंजड़ी अपने खट्टे बेरों को मीठे बतलाती है, क्या वैसी नहीं है?

[जैनमतानुसार मूर्त्तिपूजा से तथाकथित फल-प्राप्ति]

[मूल—] 'विवेकसार' पृष्ठ २१—जिन-मन्दिर में मोह नहीं आता। [वह] भवसागर के पार उतारनेवाला है।

विवेकसार पृष्ठ ५१ और ५२—मूर्त्तिपूजा से मुक्ति होती हैं और जिन-मन्दिर में जाने से सद्गुण आते हैं। जो जल, चन्दनादि से जिन-मूर्त्तियों की पूजा करे वह नरक से छूट स्वर्ग को जाय।

'विवेकसार' पृष्ठ ५५ में—जिन-मन्दिर में ऋषभदेव आदि की मूर्त्तियों के पूजने से धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष सिद्ध होता है।

'विवेकसार' पृष्ठ ६१ में—जिन-मूर्त्तियों की पूजा से सब पाप छूट जाते हैं।

पृष्ठ ६७ में—जिन-मूर्त्तियों की पूजा करें तो जगत् के क्लेश छूट जायें।

पृष्ठ ८१ में—श्री जिन की पूजा से सब पाप छूट जाते हैं।

[फिर जैनी सब फलों की प्राप्ति क्यों नहीं कर लेते ?]

[समीक्षक—] इत्यादि बड़े-बड़े विचित्र, असम्भव बातों के गपोड़े उड़ाये हैं। और यह भी **'विवेकसार'** के तीसरे पृष्ठ में लिखा है कि—'जो 'जिन' की मूर्त्ति-स्थापन करते हैं, उन आचार्यों ने अपनी और अपने कुटुम्ब की आजीविका चलाई है', ऐसा खण्डन भी करते हैं।

[मूर्त्तिपूजा सब मतों की व्यर्थ है]

[मूल—] और उसी ग्रन्थ के २२५ पृष्ठ पर [लिखा है]—शिव, विष्णु आदि कि मूर्त्ति की पूजा करना बहुत बुरा है अर्थात् नरक का साधन है।

समीक्षक—भला, इनके पत्थर और जैनियों के पत्थरों में कुछ भेद है? जो कहें कि हमारी मूर्त्तियां त्यागी और शान्त हैं। भला, हम इनसे पूछते हैं कि तुम्हारी मूर्त्तियां तो लाखों रुपयों के मन्दिरों में रहतीं है, और चन्दन, पुष्पादि चढ़ता है, पुनः त्यागी कैसे? इससे तो अधिक त्यागी और तपस्वी पहाड़ हैं,। और तुम्हारी नंगी मूर्त्तियां मनुष्यों के बीच में लज्जाकारक हैं। भला, वे तो 'ऐब ढांक रखते' हैं। **इससे तुम दोनों मूर्त्तिपूजा छोड़ दो। सब मतों की मूर्त्तिपूजा व्यर्थ है।**

[मूल—] अब और देखिये लड़केपन की बातें—

'विवेकसार' पृष्ठ १०१ में—एक नन्दीषेण ने दश 'पूर्व' तक भोग किया। एक मुनि वेश्या के घर में रहा, भोग किया, फिर मुनि की दीक्षा ले, स्वर्ग को गया।

और स्थूलभद्र मुनि भी ऐसा ही काम करके स्वर्ग को गया।

[विवेकसार पृ० १०३]

[दुष्टकर्म करके भी स्वर्ग-प्राप्ति]

'विवेकसार' पृष्ठ २२८ पर—एक पुरुष ने कोशा वेश्या का भोग किया, पश्चात् त्यागी होकर स्वर्ग को गया।

'विवेकसार' पृष्ठ १०१ पर—अर्णकमुनि ने चारित्र से चूककर कई वर्ष दत्त सेठ के घर में भोग किया, पश्चात् देवलोक को गया।

[जैनमतस्थ न होने से अनेक महापुरुष भी नरक में]

'विवेकसार' पृष्ठ १०६ पर—श्रीकृष्ण तीसरे नरक में गये।

'विवेकसार' पृष्ठ १४५ पर—धन्वन्तरि वैद्य नरक को गया।

और देखो विचित्र लीला! **'विवेकसार'** पृष्ठ १०६ में—श्री कृष्ण के पुत्र ढण्ढण मुनि को स्यालिया उठा ले गया और खा गया, पश्चात् [स्यालिया] देवता हुआ।

'विवेकसार' पृष्ठ ४८ पर—जोगी, जंगम, काजी, मुल्ला कितने ही अज्ञान से तप-कष्ट करके कुगति को पाते हैं।

'रत्नसार' भा० १, पृष्ठ १७०-१७१ पर लिखा है कि नव वासुदेव अर्थात् त्रिपृष्ठ वासुदेव, द्विपृष्ठ वासुदेव, स्वयंभू वासुदेव, पुरुषोत्तम वासुदेव, सिंहपुरुष वासुदेव, पुरुषपुण्डरीक वासुदेव, दत्त वासुदेव, लक्ष्मण वासुदेव, और श्रीकृष्ण वासुदेव ये सब ग्यारहवें, बारहवें, चौदहवें, पन्द्रहवें, अठारहवें, विसवें और वाईसवें तीर्थंकरों के समय नरक को गये। और नव प्रतिवासुदेव अर्थात् अश्वग्रीव प्रतिवासुदेव, तारक प्रतिवासुदेव, मोदक प्रतिवासुदेव, मधु प्रतिवासुदेव, निशुम्भ प्रतिवासुदेव, बली प्रतिवासुदेव, प्रह्लाद प्रतिवासुदेव, रावण प्रतिवासुदेव, और जरासन्ध प्रतिवासुदेव ये भी सब नरक को गये।

और **'कल्पभाष्य'** में लिखा है कि—"ऋषभदेव से लेकर महावीर पर्यन्त २४ तीर्थंकर सब मोक्ष को प्राप्त हुए।"

[श्रीकृष्णादि महापुरुष नरक में गये, यह कहना बुरी बात है]

[समीक्षक—] 'जैनियों के सर्व तीर्थंकर और उनके गण तथा उनके

शिष्य और जैनमतस्थ करोड़ों-करोड़ों मनुष्य कोई **'शिवपुर'**, कोई **'सिद्धशिला'**, कोई **'देवलोक'** और कोई स्वर्ग में गये, परन्तु श्रीकृष्णादि और अन्य भी अनेक नरक को गये और जायेंगे'। भला, अब विचारिये कि ये बातें, क्या जैनियों के ही हाथ में स्वर्ग-नरक की कुंजी है? इनको ऐसा महाझूठ लिखते-बोलते लज्जा भी नहीं आई कि श्रीकृष्णादि महात्मा नरक में गये और इनके रण्डीबाज भी स्वर्ग और मुक्ति को चले गये। हम जानते हैं कि जितने झूठे, महामूर्ख, हठी और पक्षपाती जैनी लोगों में थे, और हैं, वैसे अन्य लोगों में नहीं। भला, 'इन जैनियों के ऋषभदेवादि तीर्थंकर नरक में गये, महापापी थे, और सब उनके चेले भी वैसे थे और हैं', ऐसा कोई लिखे वा कहे तो इनको कितना बुरा लगेगा? वैसे ही दूसरे का भी समझ लेना चाहिये। क्योंकि इन महाहठी, दुराग्रही, मूर्खों के संग से, सिवाय बुराइयों के, अन्य कुछ भी पल्ले न पड़ेगा। हां! **जो जैनियों में उत्तमजन* हैं, उनसे सत्संगादि करने में कुछ भी दोष नहीं।**

[मूल—] और भी इनकी धर्म से उलटी बातें सुनो—

'विवेकसार' पृष्ठ ७ में— जो शुद्ध जिनवचन यथास्थितक है, उसी को सुगुरु अर्थात् अन्य को कुगुरु मानते हैं। **'विवेकसार'** पृष्ठ १५४ में—"**अदेवा गुरवो धर्मेषु या देवगुरुधर्मधीः।"** यह श्री हेमचन्द्र सूरि ने लिखा है। अर्थात् ब्रह्मादि अदेव, जैन से भिन्न मार्ग के उपदेशक अगुरु

और जैनधर्म से भिन्न सब अधर्म हैं; इनमें देवगुरु धर्मबुद्धि करना मिथ्यादृष्टि है।

[समीक्षक—] चौथे गुण ठाणे वाले, असंयति, अविरति, रजोहरणादि साधुवेश रहित जीवों को सम्यग् दृष्टि कहते हैं तो रजोहरणादि भगवान् का वेश तथा शुद्ध धर्म, जैनमार्ग का उपदेशक सम्यग् दृष्टि क्यों कहाता है?

[चरित्रहीन भी जैन साधु पूजनीय हैं]

[मूल—] 'विवेकसार' पृष्ठ १५६ पर—लिंगधारी अर्थात् वेशधारी मात्र का भी सत्कार श्रावक लोग करें। चाहे वे शुद्ध चरित्र हों वा अशुद्ध चरित्र।

'विवेकसार' पृष्ठ १६८ पर—जैन साधु चरित्रहीन भी हो तो भी अन्य साधुओं से श्रेष्ठ ही है।

'विवेकसार' पृष्ठ १७१ पर—श्रावक लोग, जैन [मत] के साधुओं को धर्मरहित, भ्रष्ट देखकर भी निस्नेह न होने चाहियें।

---

*जो उत्तम जन होगा वह इस असार जैनमत में कभी न रहेगा।

(स्वामी दयानन्द)

'विवेकसार' पृष्ठ १९४ पर—जिन मत में स्थित होना सार, शेष सब संसार के मत असार हैं।

'विवेकसार' पृष्ठ १९६ पर—अन्य मत की अभिलाषा जैनी को न करनी चाहिये। उनकी बात सुनने में भी दोष है।

'विवेकसार' पृष्ठ २१६ पर—एक चोर ने पांच मूठी लोंच के चारित्र ग्रहण किया। बड़ा कष्ट और पश्चात्ताप किया। छठे महीने में केवलज्ञान पाके सिद्ध हो गया।

'विवेकसार' पृष्ठ २२१ पर—१. अन्य मतवाले को खाने-पीने की चीज़ भी न देनी चाहिये।

[जैनियों की दया सच्ची होती, तो वे ६ यतना न मानते]

'विवेकसार' पृष्ठ २२१ पर—१. **'पर-मती की स्तुति'** अर्थात् उनका गुण कीर्तन, २. **'नमस्कार'** अर्थात् उनकी वन्दना करना, ३. **'आलपन'** अर्थात् उनसे थोड़ा [भी] बोलना, ४. **'संलपन'** अर्थात् उनसे वार-वार बोलना, ५. **'अन्नादिदान'** अर्थात् उनको खाने-पीने की चीज देना, ६. **'गन्धपुष्पादिदान'** अर्थात् पर-मती की प्रतिमा के पूजने के लिये गन्ध, पुष्प देना। ये **छः यतना** अर्थात् इन छ: कर्मों को जैनी लोगों को नहीं करना चाहिये। ऐसे इनके सब ग्रन्थों में लिखा है।

समीक्षक—अब बुद्धिमानों को यहां विचार करना चाहिये कि जैसे जैन-मती दूसरे मत के विरोधी, निन्दक, हानिकारक हैं, वैसे दूसरे मत-वाले नहीं हैं। जहां देखो वहां बहुधा अपने मत की प्रशंसा-स्तुति और दूसरे मतवालों की निन्दा से इनके ग्रन्थों का खजाना भरा है। सच है, जो ऐसा जाल न रचते, तो [लोग] ऐसे अज्ञानियों के विद्याविरुद्ध मत में फसकर बन्धन में फसे क्योंकर रहते! इसीलिये **जैनी लोग कुत्ते आदि को तो लड्डू-लप्सी खिलावें, परन्तु दूसरे मत के मनुष्यों में प्रीति करनेवाला करोड़ों में एक-आध है।**

अब देखिये, इनका साधु कैसा ही भ्रष्ट-नष्ट हो तो भी उत्तम, और दूसरा चाहे कितना भी श्रेष्ठ हो, तो कुछ नहीं समझते। यद्यपि **'विवेकसार'** पृष्ठ २१७ पर—'अनुकम्पा अर्थात् दुःखियों का निष्कारण दुःख दूर करने की इच्छा अर्थात् कुछ प्रयोजन न विचारना कि मुझको स्वर्ग, देवलोक वा मुक्ति होगी, ऐसे ही इच्छा करनी', यह कहना-मात्र है; वा कोई कभी जैनमत में आग्रही न होगा, वा किसी के दबाव से करता होगा, वह जानो नहीं करने के समान है। क्योंकि—

'प्रयोजनमननुद्दिश्य मन्दोऽपि न प्रवर्तते' इति न्यायात्।

अर्थात् 'प्रयोजन के विना किसी की भी प्रवृत्ति नहीं होती है।'

[अन्य मत-वालों से वैर बुद्धि रखना कहाँ की दया है ?]

[मूल—] **'विवेकसार'** पृष्ठ १०८ में लिखा है कि मथुरा के राजा के नमुची नामक दीवान को जैनमतियों ने अपना विरोधी समझकर मार डाला और आलोयणा करके शुद्ध हो गये।

[समीक्षक—] यह भी दया और क्षमा का नाशक कर्म है। जब अन्य मतवालों पर प्राण लेने पर्यन्त वैर-बुद्धि रखते हैं, तो इनको 'दयालु' के स्थान पर 'हिंसक' कहना ही सार्थक है।

[जैनियों की असम्भव बातें; पल्योपमादि काल की व्याख्या]

[मूल—] और भी देखो इनकी **मिथ्या बातें!** जिन तीर्थंकरों को जैन लोग सम्यग्ज्ञानी और परमेश्वर मानते हैं, उनकी मिथ्या बातों के ये नमूने हैं—

'रत्नसार' भाग १ के पृष्ठ १४५—इस ग्रन्थ को जैन लोग मानते हैं, और यह ईसवी सन् १८७९ अप्रैल तारीख २८ में बनारस जैनप्रभाकर प्रेस में नानकचन्द जती ने छपवाकर प्रसिद्ध किया है। उसके पूर्वोक्त पृष्ठ [एवं पृष्ठ १४६-१४७] में **काल** की इस प्रकार व्याख्या की है—

'समय' का नाम सूक्ष्मकाल है। असंख्यात समयों को **'आवलि'** कहते हैं। एक करोड़, सड़सठ लाख, सतत्तर सहस्र, दो-सौ सोलह आवलियों का एक **'मुहूर्त्त'** होता है। तीस मुहूर्त्तों का एक **'दिवस'**, वैसे पन्द्रह दिवसों का एक **'पक्ष'**, वैसे दो पक्षों का एक **'महीना'**, वैसे बारह

महीनों का एक **'वर्ष'** होता है। सत्तर लाख करोड़ और छप्पन सहस्र करोड़ वर्षों का एक **'पूर्व'**, असंख्यात 'पूर्वों' का एक **'पल्योपम'** काल होता है।

'असंख्यात' उसको कहते हैं कि एक चार कोश का चौरस और गहिरा भी कुआ हो। चार कोश के उस कुए को जुगुलिये मनुष्य के शरीर के निम्नलिखित बालों के टुकड़ों से भरना, अर्थात् वर्तमान मनुष्य के शरीर के बालों से जुगुलिये मनुष्य के बाल चार हजार छानवें भाग सूक्ष्म हैं, अर्थात् **'जुगुलिये'** मनुष्य के चार सहस्र छानवे बालों को इकट्ठा करने से मनुष्यों का एक बाल होता है। ऐसे जुगुलिये मनुष्य के एक बाल का एक अंगुल टुकड़ा सात वार करना, फिर उसके आठ-आठ टुकड़े करना, तो २०९३७६ अर्थात् दो लाख, उनतीस सहस्र, तीन सौ छिहत्तर एक बाल के इतने होते हैं। ऐसे टुकड़ों से वह कुआ भरना, सौ वर्ष के अन्तरे एक-एक टुकड़ा निकालना। जब सब टुकड़े निकल जावें और कुआ खाली हो जाय, वह भी **'संख्यात'** काल है। और एक-एक टुकड़े का असंख्यात टुकड़े करना, टुकड़े करके उसी कुए को ऐसा [ठसा-] ठस भरना कि ऊपर से चक्रवर्त्ती राजा की सेना चली जाय, तो भी दबे नहीं। उन टुकड़ों में से एक-सौ वर्ष में एक टुकड़ा निकालना, जब वह कुआ खाली हो जाय, तब उसका नाम **'असंख्यात'** [काल है] असंख्यात **'पूर्व वर्ष'** पड़ें, तब एक **'पल्योपम'** होता है। वह पल्योपम कुए के दृष्टान्त से जानना।

जब दश करोड़ान्-करोड़ 'पल्योपम' काल बीत जायें, तब एक **'सागरोपम'** होता है। जब दश करोड़ान्-करोड़ 'सागरोपम' काल व्यतीत हो जायें, तब एक **'उत्सर्पणी'** काल हो। जब दश करोड़ान्-करोड़ 'उत्सर्पणीकाल' व्यतीत हो जायें तब एक **'अवसर्पणी'** काल हो। एक 'उत्सर्पणी' और 'अवसर्पणी' काल व्यतीत हो जाय तब एक **'कालचक्र'** हो। अनन्त कालचक्र व्यतीत होंवे तब एक **'पुद्गलपरावर्त्त'** होता है।

अब 'अनन्तकाल' किसको कहते हैं कि जो सिद्धान्त पुस्तकों में नव दृष्टान्तों से काल की संख्या कही है, उससे उपरान्त **'अनन्तकाल'** कहाता है। वैसे अनन्त **'पुद्गलपरावर्त्त'** काल जीव को भ्रमते हुए बीते हैं।

[पूर्वोक्त कालगणना सब अनर्गल है]

[समीक्षक] सुनो भाई **गणितविद्या** वाले लोगो! जैनियों के ग्रन्थों की कालसंख्या कर सकोगे वा नहीं? और तुम इसको सच भी मान सकोगे वा नहीं? देखो, इन तीर्थंकरों ने ऐसी **गणितविद्या** पढ़ी थी!!! ऐसे-ऐसे तो इनके मत में गुरु और शिष्य हैं, जिनकी अविद्या का कुछ पारावार नहीं।

[जैनियों की अन्य असम्भव बातें]

[मूल—] और भी इनका अन्धेर सुनो—

'रत्नसार' भाग १, पृष्ठ १३४ से लेके जो कुछ **'बूटाबोल'** अर्थात् जैनियों के सिद्धान्तग्रन्थ, जो कि उनके 'तीर्थंकर' अर्थात् ऋषभदेव से लेके

महावीर पर्यन्त चौवीस हुए हैं, उनके वचनों का सारसंग्रह है—

[पृथिवीकाय जीवों का परिमाण और आयुमान]

ऐसा **'रत्नसार'** भाग १, पृ० १४८ में लिखा है कि—पृथिवीकाय के जीव मिट्टी, पाषाणादि पृथिवी के भेद जानना। उनमें रहनेवाले जीवों के शरीर का परिमाण एक अंगुल का असंख्यातवाँ भाग समझना, अर्थात् अतीव सूक्ष्म होते हैं। उनका आयुमान अर्थात् वे अधिक से अधिक २२ सहस्र वर्ष पर्यन्त जीते हैं।

[साधारण वनस्पति के जीवों का आयुमान]

'रत्नसार' पृष्ठ १४९—वनस्पति के एक शरीर में अनन्त जीव होते हैं, वे साधारण वनस्पति कहाती हैं। जो कि कन्दमूलप्रमुख और अनन्तकायप्रमुख होते हैं, उनको साधारण वनस्पति के जीव कहना चाहिये। उनका आयुमान अनन्तमुहूर्त होता है परन्तु यहाँ पूर्वोक्त इनका मुहूर्त समझना चाहिये।

और एक शरीर में जो **'एकेन्द्रिय'** अर्थात् स्पर्श-इन्द्रिय इनमें है और उसमें एक जीव रहता है उसको प्रत्येक-वनस्पति कहते हैं। उसका देहमान **एक सहस्र योजन अर्थात् पुराणियों का योजन ४ कोश का परन्तु जैनियों का योजन १०००० दश सहस्र कोशों का होता है।** ऐसे चार सहस्त्र कोश का [पौराणिक प्रमाण के अनुसार तथा जैन-प्रमाण के अनुसार एक करोड़ कोश का] शरीर होता है, उसका आयुमान अधिक से अधिक दश सहस्र वर्ष का होता है।

[शंख कौड़ी जूँ आदि का शरीर-परिमाण और आयुमान]

अब दो इन्द्रियवाले जीव अर्थात् एक उनका शरीर और एकमुख जो शङ्ख, कौड़ी और जूं आदि होते हैं, उनका देहमान अधिक से अधिक अड़तालीस कोश का स्थूल शरीर होता है और उनका आयुमान अधिक से अधिक बारह वर्ष का होता है।

[और का ऐसा भाग्य कहाँ कि इतनी बड़ी जूँ को देखे !!]

[समीक्षक—] यहाँ बहुत ही भूल गया, क्योंकि इतने बड़े शरीर का आयु अधिक लिखता। और अड़तालीस कोश की स्थूल जूं जैनियों के शरीर में पड़ती होगी और उन्हींने देखी भी होगी!! और का भाग्य ऐसा कहाँ, जो इतनी बड़ी जूं को देखे!!!

[जैन मतानुसार बिच्छू आदि के शरीरों का परिमाण]

[मूल—] **'रत्नसार'** भाग १ पृष्ठ १५०—और देखो इनका अन्धाधुंध! बिच्छू, बगाई, कंसारी और मक्खी [आदि] एक योजन [=दश हजार कोश] के शरीरवाले होते हैं। इनका आयुमान अधिक से अधिक छः महीने का है।

[समीक्षक—] देखो भाई! चार-चार कोश का [पौराणिक प्रमाण से, तथा जैन-प्रमाण से दश-दश सहस्र कोश का] बिच्छू अन्य किसी ने देखा न होगा। जो आठ-आठ मील के [पौराणिक प्रमाण से तथा जैन-प्रमाण से वीस सहस्र मील तक के] शरीरवाले बिच्छू और मक्खी भी जैनियों के मत में होती हैं, ऐसे बिच्छू और मक्खी उन्हींके घर में रहते होंगे और

उन्हींने देखे होंगे। अन्य किसी ने संसार में नहीं देखे होंगे। कभी ऐसे बिच्छू किसी जैनी को काटें तो उसका क्या होता होगा?

[एक सहस्र योजन परिमाण की मक्खियाँ !!]

[मूल—] जलचर मच्छी आदि के शरीर का मान एक सहस्र योजन अर्थात् १०,००० कोश के [प्रति] योजन के हिसाब से १,००,००,००० एक करोड़ कोश का [जैन-प्रमाण से तथा पौराणिक प्रमाण से चार सहस्र कोश का] होता है और एक करोड़ 'पूर्ववर्ष' का इनका आयु होता है। [रत्नसार भाग २, पृ० १५०]

[समीक्षक—] वैसा स्थूल जलचर सिवाय जैनियों के अन्य किसी ने न देखा होगा।

[हाथी आदि का देहमान वा आयुमान]

[मूल—] और चतुष्पात् हाथी आदि का देहमान दो कोश से नव कोशपर्यन्त और आयुमान चौरासी सहस्र वर्षों का [होता है], इत्यादि। [रत्नसार, भाग १, पृ० १५०]

[समीक्षक—] ऐसे बड़े-बड़े शरीरवाले जीव भी जैनी लोगों ने देखे होंगे। और [वे ही] मानते हैं, और कोई बुद्धिमान् नहीं मान सकता।

[गर्भज जलचर जीवों का देहमान और आयुमान]

[मूल—] **'रत्नसार'** भाग १ पृष्ठ १५१—जलचर गर्भज जीवों का

देहमान उत्कृष्ट एक सहस्र योजन अर्थात् १,००,००,००० एक करोड़ कोशों का [जैन-प्रमाण से तथा पौराणिक प्रमाण से चार सहस्र कोशों का] और आयुमान एक करोड़ 'पूर्ववर्ष' का होता है।

[समीक्षक—] इतने बड़े शरीर और आयुवाले जीवों को भी इन्हीं के आचार्यों ने स्वप्न में देखा होगा! क्या यह महा-झूठ बात नहीं कि जिसका कदापि सम्भव न हो सके?

[जैनियों का भूगोल-ज्ञान; भूमि का परिमाण]

[मूल—] अब सुनिये भूमि के प्रमाण को—

'रत्नसार' भाग १ पृष्ठ १५२—इस तिरछे लोक में असंख्यात द्वीप और असंख्यात समुद्र हैं। इन असंख्यातों का प्रमाण अर्थात् अढ़ाई **'सागरोपम'** काल में जितना समय हो, उतने द्वीप तथा समुद्र जानना।

इस पृथिवी में एक **'जम्बूद्वीप'** प्रथम सब द्वीपों के बीच में है। इसका प्रमाण एक लाख योजन अर्थात् चार लाख कोश का [पौराणिक-प्रमाण से, तथा जैन-प्रमाण से एक अरब कोश का] है और इसके चारों ओर **'लवण'** समुद्र है, उसका प्रमाण दो लाख योजन का है अर्थात् आठ लाख कोश का [पौराणिक-प्रमाण से, तथा जैन-प्रमाण से दो अरब कोश का]। इस जम्बूद्वीप के चारों ओर जो **'धातकीखण्ड'** नाम द्वीप है, उसका चार लाख योजन अर्थात् सोलह लाख कोश का

[पौराणिक-प्रमाण से, तथा जैन-प्रमाण से चार अरब कोश का] प्रमाण है और उसके पीछे **'कालोदधि'** समुद्र है, उसका आठ लाख [योजन] अर्थात् बत्तीस लाख कोश का [पौराणिक-प्रमाण से, तथा जैन-प्रमाण से, आठ अरब कोश का] प्रमाण है। उसके पीछे **'पुष्करावर्त'** द्वीप है, उसका प्रमाण सोलह [लाख योजन अर्थात् चौंसठ लाख कोश का पौराणिक-प्रमाण से, तथा जैन-प्रमाण से सोलह अरब] कोश का है। उस द्वीप के भीतर की ओर कोरें हैं। उस द्वीप के आधे में मनुष्य बसते हैं और उसके उपरान्त असंख्यात द्वीप समुद्र हैं, उनमें तिर्यग् योनि के जीव रहते हैं।

'रत्नसार' भाग १ पृष्ठ १५३—जम्बूद्वीप में एक हिमवन्त, एक ऐरण्यवन्त, एक हरिवर्ष, एक रम्यक्, एक देवकुरु, एक उत्तरकुरु ये छः क्षेत्र हैं।

[जैन आचार्य भूगोल-खगोलादि विद्या नहीं जानते थे]

समीक्षक—सुनो भाई **'भूगोलविद्या'** के जाननेवाले लोगो! भूगोल का परिमाण करने में तुम भूले वा जैन? जो जैन भूल गये हों तो तुम उनको समझाओ और जो तुम भूले हो, तो उनसे समझ लो । **थोड़ा-सा विचारकर देखो, तो यही निश्चय होता है कि जैनियों के आचार्य और शिष्यों ने 'भूगोल', 'खगोल' और 'गणितविद्या' कुछ भी नहीं पढ़ी थी। जो पढ़े होते, तो महा-असम्भव गपोड़ा क्यों मारते?**

[जैन-ग्रन्थों में अविद्यायुक्त बातें भरी पड़ी हैं]

भला, ऐसे अविद्वान् पुरुष जगत् को अकर्तृक मानें और ईश्वर को न मानें

तो इसमें क्या आश्चर्य है? इसलिये **जैनी लोग अपने पुस्तकों को किन्हीं अन्यमतस्थ विद्वानों को नहीं देते, क्योंकि जिनको ये लोग तीर्थंकरों के बनाये हुए प्रामाणिक सिद्धान्तग्रन्थ मानते हैं, उनमें इसी प्रकार की अविद्यायुक्त बातें भरी पड़ी हैं, इसलिये नहीं देखने देते। जो देवें तो पोल खुल जाय।** इनके विना जो कोई मनुष्य कुछ भी बुद्धि रखता होगा, वह कदापि इस गपोड़ाध्याय को सत्य नहीं मान सकेगा।

[यह सब प्रपञ्च जगत् को अनादि मानने के लिए है]

यह सब प्रपञ्च जैनियों ने जगत् को अनादि मानने के लिये खड़ा किया है, परन्तु यह निरा झूठ है। हां, जगत् का कारण अनादि है, क्योंकि वह आदितत्त्वस्वरूप परमाणु अकर्तृक हैं, उनमें नियमपूर्वक बनने वा बिगड़ने का सामर्थ्य कुछ भी नहीं। क्योंकि जब एक परमाणु द्रव्य किसी का नाम है और स्वभाव से पृथक्-पृथक्-रूप और जड़ हैं, वे अपने आप यथायोग्य नहीं बन सकते। इसलिये उनका बनानेवाला चेतन अवश्य है और वह बनानेवाला ज्ञानस्वरूप है।

[सूर्यादि लोकों को नियम में रखना ईश्वर का काम है]

देखो, पृथिवी, सूर्यादि सब लोकों को नियम में रखना अनन्त, अनादि, चेतन परमात्मा का काम है। जिसमें संयोगरचना-विशेष दीखता है, वह स्थूल जगत् अनादि कभी नहीं हो सकता। जो कार्य जगत् को नित्य मानोगे, तो उसका कारण कोई न होगा, किन्तु वही कार्य कारणरूप हो जायगा। जो ऐसा कहोगे तो अपना कार्य और कारण आप ही होने से **'अन्योऽन्याश्रय'** और **'आत्माश्रय'** दोष आवेगा, जैसे अपने कन्धे पर

आप चढ़ना। और अपना पिता और पुत्र आप नहीं हो सकता। इसलिये जगत् का कर्त्ता अवश्य ही मानना होगा।

[कर्त्ता का कर्त्ता और कारण का कारण नहीं होता]

प्रश्न—जो ईश्वर को जगत् का कर्त्ता मानते हो, तो ईश्वर का कर्त्ता कौन है?

उत्तर—कर्त्ता का कर्त्ता और कारण का कारण कोई भी नहीं हो सकता; क्योंकि प्रथम कर्त्ता और कारण के होने से ही कार्य होता है। जिसमें संयोग-वियोग नहीं होता, जो प्रथम संयोग-वियोग का कारण है, उसका कर्त्ता वा कारण किसी प्रकार नहीं हो सकता। इसकी **विशेष व्याख्या आठवें समुल्लास सृष्टि की व्याख्या** में लिखी है, देख लेना।

[जड़ पुद्गल पाप-पुण्य-युक्त नहीं हो सकते]

[मूल—] अब, 'जीव' और 'अजीव' इन दो पदार्थों के विषय में जैनियों का निश्चय ऐसा है—

चेतनालक्षणो जीवः स्यादजीवस्तदन्यकः।

सत्कर्मपुद्गलाः पुण्यं पापं तस्य विपर्ययः॥

[सर्वदर्शनसंग्रह, आर्हतदर्शन, श्लोक ५६]

यह 'जिनदत्तसूरि' का वचन है; और यही **'प्रकरणरत्नाकर'** भाग पहले में **'नयचक्रसार'** में भी लिखा है कि चेतनालक्षण **'जीव'** और

चेतनारहित **'अजीव'** अर्थात् जड़ है। सत्कर्मरूप पुद्गल **'पुण्य'** और पापकर्मरूप पुद्गल **'पाप'** कहाते हैं।

समीक्षक—जीव और जड़ का लक्षण तो ठीक है, परन्तु जो जड़रूप पुद्गल हैं, वे पाप-पुण्य-युक्त कभी नहीं हो सकते, क्योंकि पाप-पुण्य करने का स्वभाव चेतन में होता है। देखो, ये जितने जड़ पदार्थ हैं, वे सब पाप-पुण्य से रहित हैं। जो जीवों को अनादि मानते हैं, यह तो ठीक है। **परन्तु उसी अल्प और अल्पज्ञ जीव को मुक्ति दशा में सर्वज्ञ मानना झूठ है; क्योंकि जो अल्प और अल्पज्ञ है, उसका सामर्थ्य भी सर्वदा ससीम रहेगा।**

[साधनों से सिद्ध मुक्ति नित्य कभी नहीं हो सकती]

प्रश्न—जैसे धान्य का छिलका उतारने वा अग्नि के संयोग होने से बीज पुनः नहीं उगता, उसी प्रकार मुक्ति में गया हुआ जीव पुनः जन्ममरणरूप संसार में नहीं आता।

उत्तर—जीव और कर्म का सम्बन्ध छिलके और बीज के समान नहीं है, किन्तु इनका समवायसम्बन्ध है, इससे अनादि काल से जीव और उसमें कर्म और कर्तृत्वशक्ति का सम्बन्ध है। जो उसमें कर्म करने की शक्ति का भी अभाव मानोगे, तो सब जीव पाषाणवत् हो जायेंगे और मुक्ति को भोगने का भी सामर्थ्य नहीं रहेगा। जैसे अनादि काल का कर्मबन्धन छूटकर जीव मुक्त होता है, तो तुम्हारी नित्य मुक्ति से भी छूटके बन्धन में

पड़ेगा। साधनों से सिद्ध हुआ पदार्थ नित्य कभी नहीं हो सकता और जो साधन-सिद्ध के विना मुक्ति मानोगे, तो कर्मों के विना ही बन्ध प्राप्त हो सकेगा।

[जैनियों के मोक्ष के तीन साधन]

[मूल—] अब सम्यक्त्व-दर्शनादि के लक्षण—वे आर्हत- प्रवचन-संग्रह **'परमागमसार'** में कथित हैं। **सम्यक् श्रद्धान**=**सम्यक् दर्शन, [सम्यक्] ज्ञान** और **[सम्यक्] चारित्र** ये तीन मोक्षमार्ग के साधन हैं। इनकी व्याख्या योगदेव ने की है। जिस रूप से जीवादि द्रव्य अवस्थित हैं, उसी रूप से जिन-प्रतिपादित ग्रन्थानुसार [और] विपरीत अभिनिवेश-आदि रहित जो 'श्रद्धा' अर्थात् जिनमत में प्रीति है, सो **'सम्यक् श्रद्धान'** और **'सम्यग् दर्शन'** है।

रुचिर्जिनोक्ततत्त्वेषु सम्यक् श्रद्धानमुच्यते।

[सर्वदर्शनसंग्रह, आर्हतदर्शन, श्लोक १८]

अर्थ—जिनोक्त तत्त्वों में सम्यक् श्रद्धा करनी चाहिये, अर्थात् अन्यत्र कहीं नहीं।

यथावस्थिततत्त्वानां संक्षेपाद्विस्तरेण वा।

योऽवबोधस्तमत्राहुः सम्यग्ज्ञानं मनीषिणः॥

[सर्वदर्शनसंग्रह, आर्हतदर्शन, श्लोक १९]

अर्थ—जिस प्रकार के जीवादि तत्त्व हैं, उनका संक्षेप वा विस्तार से जो [यथार्थ] बोध होना है, उसी को **'सम्यग् ज्ञान'** बुद्धिमान् कहते हैं।

सर्वथावद्ययोगानां त्यागश्चारित्रमुच्यते।

कीर्तितं तदहिंसादिव्रतभेदेन पञ्चधा॥

अहिंसासूनृतास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहाः॥

[सर्वदर्शनसंग्रह, आर्हतदर्शन, श्लोक २१]

अर्थ—सब प्रकार से निन्दनीय 'अन्य मत के सम्बन्ध' का त्याग **'चारित्र'** कहाता है। और [वह] अहिंसादि भेद से पाँच प्रकार का व्रत है। एक **(अहिंसा)** अर्थात् किसी प्राणिमात्र को न मारना। दूसरा **(सूनृत)** प्रिय [और सत्य] वाणी बोलना। तीसरा **(अस्तेय)** अर्थात् चोरी न करना। चौथा **(ब्रह्मचर्य)** अर्थात् उपस्थ इन्द्रिय का संयमन। और पाँचवाँ **(अपरिग्रह)** सब वस्तुओं [के संग्रह की इच्छा] का त्याग करना।

[पर-निन्दा आदि अच्छी बातें भी दोषयुक्त हो गईं]

[समीक्षक—] इनमें बहुत-सी अच्छी बातें हैं, अर्थात् अहिंसा और चोरी आदि निन्दनीय कर्मों का त्याग अच्छी बातें हैं। परन्तु 'अन्य मत की निन्दा करना' आदि दोषों से ये सब अच्छी बातें भी दोषयुक्त हो गई हैं। जैसे प्रथम सूत्र में लिखा है—"अन्य हरि, हर-आदि का धर्म संसार से उद्धार करनेवाला नहीं।" क्या यह छोटी निन्दा है कि जिनके ग्रन्थ देखने

से ही पूर्ण विद्या और धार्मिकता पाई जाती है, उसको बुरा कहना? और अपनी महा-असम्भव, जैसी कि पूर्व लिख आये, वैसी बातों के कहनेवाले अपने तीर्थंकरों की स्तुति करना, ये केवल हठ और मूर्खता की बातें हैं। ऐसे कथन करनेवाले मनुष्यों को भ्रान्त और बालबुद्धि न कहा जाय तो क्या कहा जाय?

इससे यही विदित होता है कि इनके आचार्य बड़े स्वार्थी थे [और] पूर्ण विद्वान् नहीं थे, क्योंकि जो सबकी निन्दा न करते तो ऐसी झूठी बातों में कोई न फसता, न उनका प्रयोजन सिद्ध होता। **देखो, यह तो सिद्ध होता है कि जैनियों का मत डुबानेवाला और वेद-मत सबका उद्धार करनेहारा है।**

प्रकरणरत्नाकर और जैनियों के सिद्धान्तग्रन्थों से किया संग्रह

[मूल—] 'प्रकरणरत्नाकर' भाग दूसरा, पत्र ६२७ में लिखा है कि—'चाहे कुछ भी न कर सके, एक अर्हन्देव को माने अर्थात् जैनमत को ही माने, क्योंकि जैनियों के वीतराग का कहा धर्म [है और] वही धर्म तारनेहारा है, दूसरा कोई नहीं। जो जैनों के देव, वे ही देव हैं, अन्य हरि, हर-आदि कुदेव हैं।'

समीक्षक—हरि, हर-आदि देव 'सुदेव' और इनके ऋषभदेवादि सब

'कुदेव' [हैं, यदि यह] दूसरे लोग कहैं, तो क्या वैसा ही उनको बुरा न लगेगा?

[मूल—] 'प्रकरणरत्नाकर' पृष्ठ ६२० पर—'जिनमत के सिवाय न कोई तरा, न कोई सुनने में आया और न आवेगा।'

[समीक्षक—] वाह ! वाह !! क्या कहना!!!

[दूसरे इनकी बुराई करें, तो क्या इन्हें बुरा न लगेगा ?]

[मूल—] **जइ न कुणसि तव चरणं, न पढसि न गुणेसि देसि नो दाणं।**

ता इत्तियं न सक्किसि जं देवो इक्क अरिहन्तो॥२॥

प्रकरणरत्नाकर, दूसरा भाग, षष्ठीशतक ६०, सूत्र २॥

संक्षिप्त अर्थ—हे मनुष्य! जो तू तप-चारित्र नहीं कर सकता, न सूत्र पढ़ सकता, न प्रकरणादि का विचार कर सकता और सुपात्रादि को दान नहीं दे सकता, तो भी जो तू देवता एक अरिहन्त को ही अपनी आराधना के योग्य सुगुरु मानता है और सुधर्म जैन-मत में श्रद्धा रखता है, यही एक सर्वोत्तम बात है और उद्धार का कारण है॥२॥

समीक्षक—भला, जो जैनी कुछ चारित्र न कर सके, न पढ़ सके, न दान देने का सामर्थ्य हो, तो भी 'जैनमत सच्चा है', क्या इतना कहने से ही

वह उत्तम हो जाय? और अन्य मत वाले श्रेष्ठ भी अश्रेष्ठ हो जायें?

[जैन धर्म, देव और गुरु ही को उत्तम मानना पक्षपात]

मूल— रे जीव भव दुहाइं, इक्कं चिय हरइ जिणमयं धम्मं।

इयराणं पणमन्तो, सुहकय्ये मूढ मुसिओसि॥३॥

प्रकरण०, भाग २ । षष्टी० ६० । सूत्र ३॥

संक्षेप से अर्थ—रे जीव! एक ही जिनमत श्री वीतराग-भाषित धर्म संसार-सम्बन्धी जन्म-जरा-मरणादि दुःखों का हरणकर्त्ता है। इसी प्रकार सुदेव और सुगुरु भी जैन मत-वाले को जानना। इतर=जो वीतराग ऋषभदेव से लेके महावीर पर्यन्त वीतराग देवों से भिन्न अन्य हरि, हर, ब्रह्म-आदि कुदेव हैं, उनकी अपने कल्याणार्थ जो जीव पूजा करते हैं, वे सब मनुष्य ठगाये गये हैं। इसका यह भावार्थ है कि जैनमत के सुदेव, सुगुरु तथा सुधर्म को छोड़के अन्य कुदेव, कुगुरु तथा कुधर्म को सेवने से कुछ भी कल्याण नहीं होता॥३॥

[हरिहर ब्रह्मादि को कुदेव कहना उचित नहीं]

समीक्षक—अब विद्वानों को विचारना चाहिये कि कैसे निन्दायुक्त इनके धर्म के पुस्तक हैं।

[क्या केवल जैनधर्म से ही प्राणियों का उद्धार होगा ?]

मूल— अरिहं देवो सुगुरू, सुद्धं धम्मं च पंच नवकारो।

धन्नाणं कयच्छाणं, निरंतरं वसइ हिययम्मि॥१॥

प्रकरण०, भाग २ । षष्टी० ६० । सूत्र १॥

सं० अर्थ—जो अरिहन् देवेन्द्रकृत पूजादिकन के योग्य, दूसरा पदार्थ उत्तम कोई नहीं, ऐसा जो देवों का देव शोभायमान अरिहन्त देव ज्ञान-क्रियावान्, शास्त्रों का उपदेष्टा; शुद्ध, कषायमलरहित, सम्यक्त्व, विनय, दयामूल श्रीजिन-भाषित जो धर्म है, वही दुर्गति में पड़नेवाले प्राणियों का उद्धार करनेवाला है और अन्य हरि, हर-आदि का धर्म संसार से उद्धार करनेवाला नहीं। और पञ्च अरिहन्तादिक परमेष्ठी तत्सम्बन्धी उनको नमस्कार, ये चार पदार्थ धन्य हैं अर्थात् श्रेष्ठ हैं। अर्थात् दया, क्षमा, सम्यक् ज्ञान-दर्शन और चारित्र यह जैनों का धर्म है॥१॥

[जैनियों की दया कथनमात्र है, वह दया नहीं]

समीक्षक—जब मनुष्यमात्र पर दया नहीं, वह न दया न क्षमा; ज्ञान के बदले अज्ञान; दर्शन, अन्धेर; और चारित्र के बदले भूखे मरना कौन-सी अच्छी बात है। ये केवल मूर्खों को प्रलोभन देकर अपने मत में फसाने की बातें हैं, अर्थात् जो इनके आचार्य ऐसा न लिखें तो उनके मत में कौन फसे ? और जो न फसे तो उनका प्रयोजन सिद्ध न हो। जैनियों के वीतरागोक्त दया, क्षमा, ज्ञान, दर्शन, चारित्र यही हैं। इसमें **दया** का नाश—क्षुद्र जीवों और अपने मत-वालों के अतिरिक्त दूसरे किसी को न मानना, उनकी निन्दा करना, सुख न देना है, यह दया कहाँ? और **क्षमाशील** होते तो दूसरे की निन्दा और अपने मुख अपनी बड़ाई क्यों करते? तीसरा **ज्ञान,** जो कि उनके जीव, अजीवादि नव तत्त्व हैं, उनका जानना; सो भी ठीक-ठीक नहीं है। **सम्यक् दर्शन** उनके तीर्थंकरों को होता, तो सहस्रों प्रकार की असम्भव बातें क्यों लिखते? **चारित्र** अर्थात् उपवास करना, स्नान न करना इत्यादि से भी क्या हो सकता है?

इसलिये जो इतनी ही बातों का नाम धर्म मानकर फूले-फूले फिरना, बेसमझ का काम है। इनका धर्म तारनेवाला नहीं, किन्तु डुबानेवाला है। देखो, हरि, हर-आदि श्रेष्ठ पुरुषों को कुदेव कहना और अपने मलिनों को देव कहना, अपने मत वालों के विना संसार से कोई भी नहीं तरा, यह केवल असम्भव और झूठी बात है।

यद्यपि दया और क्षमा अच्छी वस्तु हैं, तथापि पक्षपात में फसने से दया अदया और क्षमा अक्षमा हो जाती है। इसका प्रयोजन यह है कि किसी जीव को दु:ख न देना, यह बात सर्वथा सम्भव नहीं हो सकती; क्योंकि दुष्टों को दण्ड देना भी दया में गणनीय है। जो एक दुष्ट को दण्ड न दिया जाय तो सहस्रों मनुष्यों को दु:ख प्राप्त हो। इसलिये वह दया अदया और क्षमा अक्षमा हो जाय।

[केवल जल छानकर पी लेना ही 'दया' नहीं]

यह तो ठीक है कि सब प्राणियों के दु:खनाश और सुख की प्राप्ति का उपाय करना दया कहाती है। केवल जल छानके पीना, क्षुद्र जन्तुओं को बचाना ही दया नहीं कहाती, किन्तु इस प्रकार की दया जैनियों के कथनमात्र में ही है, क्योंकि वैसा वर्तते नहीं। क्या मनुष्यादि पर, चाहे किसी मत में क्यों न हो, दया करके उसका अन्नपानादि से सत्कार करना और दूसरे मत के विद्वानों का मान्य और सेवा करना दया नहीं है?

[स्वयं अपनी प्रशंसा करना मूर्खता है]

[मूल—] और भी इनके आचार्य और माननेवालों की भूल देख लो—

जिणवर आणा भंगं, उमग्ग उस्सुत्त लेस देसणउ।

आणा भंगे पावं ता जिणमय दुक्करं धम्मम् ॥११॥

प्रकरण०, भाग २, षष्ठी०, सूत्र ११॥

सं० अर्थ—उन्मार्ग, उत्सूत्र के लेख दिखाने से जो जिनवर अर्थात् वीतराग तीर्थंकरों की आज्ञा का भंग होता है वह दुःख का हेतु पाप है। जिनेश्वर के कहे सम्यक्त्वादि धर्मों को ग्रहण करना बड़ा कठिन है, इसलिये जिस प्रकार जिन-आज्ञा का भंग न हो तो वैसा करना चाहिए॥११॥

समीक्षक—जो अपने ही मुख से अपनी प्रशंसा [करना] और अपने धर्म को बड़ा कहना और दूसरे की निन्दा करना है, वह मूर्खता की बात है; क्योंकि प्रशंसा उसी की ठीक है जिसकी दूसरे विद्वान् करें। अपने मुख से अपनी प्रशंसा तो चोर भी करते हैं, तो क्या वे प्रशंसनीय हो सकते हैं? इसी प्रकार की इनकी बातें हैं।

[जैनियों जैसा पक्षपाती दूसरा न होगा]

मूल— बहु गुण विज्झा निलओ, उस्सुत्तभासी तहा विमुत्तव्वो।

जह वरमणिजुत्तो विहु, विग्घकरो विसहरो लोए॥१८॥

प्रकरण०, भाग २, षष्ठी० । सूत्र १८॥

सं० अर्थ—जैसे विषधर सर्प में मणि त्यागने योग्य है, वैसे उत्सूत्रभाषी, द्रव्यलिंगी अर्थात् अन्यमार्गी= जो जैनमत में नहीं है, वह कितना बड़ा

पण्डित हो, उसका त्याग कर देना ही जैनियों को उचित है॥१८॥

समीक्षक—देखो, कितनी पक्षपात की बात है कि अपने मत का कैसा भी दुराचारी हो उसको मान्य करें, और अन्य मत का कितना ही श्रेष्ठ विद्वान् हो उसको जैन लोग कभी मान्य न करें, इससे बड़ी मूर्खता और पक्षपात की बात कौन-सी होगी? क्या सुवर्ण को मल वा धूड़ में पड़े को कोई त्यागता है?॥१८॥

[अन्य धर्मवालों की निन्दा करना शठता है]

[मूल—] और उसी के सत्ताईसवें सूत्र में—

नामंपि तस्स असुहं, जेण निदिट्ठाइ मिच्छ पव्वाइ।

जेसिं अणुसंगाउ, धम्मीणवि होइ पाव मइ॥२७॥

[प्रकरण०, भाग २। षष्ठी सूत्र २७]

सं० अर्थ—[उस व्यक्ति का नाम लेना भी अशुभ है, जिसने जैन-पर्वों से भिन्न पर्वों को, जो कि मिथ्या हैं, मनाने का विधान किया है। अन्य धर्मावलम्बी लोगों की संगति करके उनके पर्वों को मानने से धर्मात्मा मनुष्यों की बुद्धि भी पापयुक्त हो जाती है]॥२७॥

समीक्षक—इससे यह सिद्ध होता है कि सबको डुबोनेवाला जैन मार्ग है, क्योंकि [वे] सबकी सब प्रकार निन्दा करते हैं। इसलिये जिन्होंने ऐसा

लिखा है, वे ही महा-अधर्मी थे। हाँ, ऐसा लिखते कि सबकी सच्ची बातें मान लें और अपनी झूठी बातें छोड़ दें, तो धर्मात्मा गिने जाते।

[जिसका मत सच्चा है, उसे किसी से डर नहीं]

[मूल—] इसी प्रकार बहुत से सूत्र **'रत्नसार'** भाग २, षष्ठीशतक में लिखे हैं, अर्थात् २९वें सूत्र में—

अइसय पाविय पावा, धम्मिअ पव्वेसु तोवि पावरया।

न चलंति सुद्ध धम्मा, धन्ना किविपाव पव्वेसु॥२९॥

प्रकरण० भाग २ । षष्ठी० सूत्र २९ [पृ० ६३९ पं० २४-२५]

सं० अर्थ—[पापी प्रवृत्ति के लोग धार्मिक पर्वों पर भी हिंसा बलि करते हैं। जैनी लोग धन्य हैं वे पर्वों में हिंसा नहीं करते। वे ही दर्शन-संग करने योग्य हैं।] अन्यदर्शनी कुलिंगी अर्थात् जैनमत विरोधी और अन्यमार्गी अर्थात् जो जैनी न हो, उसका दर्शन भी न करना चाहिये॥२९॥

समीक्षक—[हिंसा की बात तो पामरपन की है किन्तु दूसरे मत के श्रेष्ठ लोगों का दर्शन दर्शन-संग करना निषेध न करना चाहिये] क्योंकि जो दूसरे का दर्शन करे, तो इनकी पोल निकल जाय।

[क्या अपने ही धर्म और गुरुओं को अच्छा कहना उचित है ?]

[मूल—] और ३५वें सूत्र में—

हा हा गुरु अ अकज्झं, सामी न हु अच्छि कस्स पुक्करिमो।

कह जिण वयण कह सुगुरु, सावया कह इय अकज्झं॥३५॥

[प्रकरण०, भाग २ । षष्ठी सूत्र ३५]

सं० अर्थ—सर्वज्ञभाषित जिनवचन, जैन-सुगुरु कहाँ और कहाँ उनसे विरुद्ध कुगुरु अर्थात् अन्यमार्गी के भाषित और उपदेशक? अर्थात् हमारी सब बातें अच्छी, अन्य की सब बुरी॥३५॥

समीक्षक—हाँ, कुंजड़ी भी अपने बेरों को खट्टे नहीं कहती!!

[दूसरे मतवालों को साँप से भी बुरा बताना ठीक नहीं]

[मूल—] अपने मार्ग से भिन्न मार्गी की सेवा में बड़ा अकार्य अर्थात् पाप गिनते हैं; और देखो—

सप्पो इक्कं मरणं, कुगुरु अणंताइ देइ मरणाइ।

तो वरि सप्पं गहियुं, मा कुगुरुसेवणं भद्दं॥३७॥

प्रकरण०, भाग २, षष्ठी, सूत्र ३७॥

सं० अर्थ— इस सूत्र में लिखा है कि जैन भिन्न कुगुरु सर्प से भी बुरे हैं। उनकी सेवा-पूजा कभी न करनी चाहिये, क्योंकि सर्प के संग से एक बार

मरण होता है और अन्यमार्गी कुगुरुओं से अनेक बार जन्म-मरण में गिरना पड़ता है। इसलिये है भद्र! अन्यमार्गी गुरुओं के पास भी मत खड़ा रह, क्योंकि जो अन्यमार्गी की कुछ भी सेवा करेगा तो बहुत दुःख में पड़ेगा॥३५॥

समीक्षक—देखिये, कितने दुराग्रही हैं कि इनके सदृश कठोर, भ्रान्त, निन्दक, मूर्ख, दूसरे मत-वाले नहीं हैं। यह सब स्वार्थ की बातें हैं कि हमारा मान्य, हमारी सेवा और हमारी ही प्रतिष्ठा हो, अन्य किसी की न हो। तभी इनके चेले महामूढ़ता में ऐसे फसे हैं कि वे किसी अच्छे महात्मा पुरुष की न सेवा, न दर्शन और संग भी नहीं करते; यह इनके दौर्भाग्य की बात है। **जो सब मतवालों में योग्य पुरुषों की सेवा करते, उनके मार्ग की बातें सुनते और अपनी कहते तो उनके गुण [ग्रहण कर] और अपनी भूल को छोड़कर, सत्यमार्ग को जानकर अपने मनुष्य-जन्म के सुफल को प्राप्त होते।**

[क्या अन्य मार्गियों के उपकार से अपना नाश होगा]

मूल— किं भणिमो किं करिमो, ताण हयासाण धिठ दुठाणं।

जे दंसिऊण लिंगं खिवंति नरयम्मि मुद्ध जणं॥४०॥

प्रकरण०, भाग २, सूत्र ४०॥

सं० अर्थ—अन्यमार्गी के कुगुरु मुनि का वेष धारण करके लोगों के लिये ऐसे हैं कि जैसे अन्धे सिंह की आँख खोलने को जाय, तो सिंह उसी को खाय; वैसे उन अन्य मार्गी कुगुरुओं का उपकार करना, अपना नाश कर

लेना है। इसलिये उनका उपकार कभी न करना चाहिये॥४०॥

समीक्षक—जैसा जैनी लोग विचारते हैं, वैसा दूसरे मत-वाले भी विचारें तो जैनियों की कितनी दुर्दशा हो? और उनका कोई किसी प्रकार का उपकार न करे तो उनके बहुत से काम नष्ट होकर कितना दु:ख प्राप्त हो, वैसा अन्य के लिये जैनी लोग क्यों नहीं विचारते?

[जैनियों में जितना ईर्ष्या-द्वेष है, उतना अन्यों में नहीं]

मूल— जह जह तुट्टइ धम्मो, जह जह दुट्ठाण होइ अइ उदउं।

समद्दिट्ठि जियाणं, तह तह उल्लसइ समत्तं॥४२॥

प्रकरण०, भाग २, सूत्र ४२॥

सं० अर्थ—जैसे-जैसे अन्यदर्शनी, त्रिदण्डी, परिव्राजक और विप्रादि दुष्ट लोगों का अति उदय होता है, वैसे-वैसे जैनधर्म के सम्यक्-दृष्टि जीवों का सम्यक्त्व विशेष प्रकाशित होता है॥४२॥

समीक्षक—यह बड़ा आश्चर्य है अर्थात् जैनों के साधु भी आपस में लड़ मरते हैं। अब देखो, इन जैनों से अधिक ईर्ष्या-द्वेषयुक्त, निन्दक दूसरा कौन होगा? और द्वेष ही पाप का मूल है, इसलिये जैनियों में पापाचर क्यों न हो?

[अन्य मतों को चोर मत कहना अनुचित है]

मूल— संगोवि जाण अहिउ, तेसिं धम्माइ जे पकुब्बन्ति।

मुत्तूण चोरसंगं, करंति ते चोरियं पावा॥७५॥

प्रकरण०, भाग २, षष्ठी०, सूत्र ७५॥

सं० अर्थ—इसका मुख्य आशय इतना है कि जैसे मूढजन चोर के संग से नासिका-छेदादि दण्ड से भय नहीं करते, वैसे जैन-भिन्न चोरधर्मों में स्थित जन अपने अकल्याण से भय नहीं करते॥७५॥

समीक्षक—यहाँ इतना ही वक्तव्य है कि जैनी स्वयं चोरधर्म वाले हैं। दूसरों के साथ अतीव ईर्ष्या, द्वेष आदि दुष्टता से युक्त जैसा जैनमत है, वैसा अन्य नहीं।

[अन्य धर्मों के व्रत-उपवासों की निन्दा करना मूर्खता है]

मूल— जच्छ पसुमहिस लरका, पव्वं होमंति पाव नवमीए।

पूअंति तंपि सढ्ढा, हा हीला वीयरायस्स॥७६॥

सं० अर्थ—[जिन दुर्गा नवमी आदि पर्वों पर पशुओं को मारकर उनसे होम किया जाता है, वह पर्व नहीं, पापनवमी है। जो उस पर्व को मनाते हैं वे शठ हैं, क्योंकि वे जैनेद्र के वचनों का तिरस्कार करते हैं]॥७६॥

समीक्षक—देखो, नवमी का नाम पापनवमी कहना और गणेश चतुर्थी आदि व्रतों की निन्दा करना और अपने पच्चखाण आदि व्रतों को श्रेष्ठ कहना, मूढपुरुषों का काम है। वैसे क्या तुम्हारे पजूसण आदि व्रत बुरे नहीं हैं, जिनसे महाकष्ट होता है? ये दोनों के झूठे हैं, और **जो सत्यभाषणादि व्रत हैं वे दोनों के सच्चे हैं।**

[अन्य मत-वालों के नाश की इच्छा, क्या यही दया धर्म हैं ?]

मूल— किं सोपि जणणि जाओ जाणो जगणीइ किं गओ विड्ढिं।

जइ मिच्छरओ जाओ, गुणेसु तह मच्छरं वहइ॥८१॥

[अन्य मत के देवताओं की निन्दा करना पक्षपात है]

मूल— वेसाण बंदियाणय, माहण डुंबाण जरकसिरकाणं।

भत्ता भरकट्ठाणं, वियाणं जंति दूरेणं॥८२॥

प्रकरण०, भाग २, षष्ठी०, सू० ८१, ८२॥

सं० अर्थ—देखो इनका न्याय! जैनमत-विरोधी सब मिथ्यात्वी अर्थात् मिथ्या धर्मवाले हैं। वे क्यों जन्मे? और जो जन्मे तो बढे क्यों? अर्थात् शीघ्र ही नष्ट हो जाते तो अच्छा होता॥८१॥

इसका मुख्य प्रयोजन यह है कि जो वेश्या, चारण, भाट-आदि लोगों और ब्राह्मण, यक्ष, गणेशादिक तथा देवताओं, मिथ्यादृष्टि देवी आदि का भक्त है, जो उनको माननेवाले हैं, वे सब डूबने और डुबानेवाले हैं। जो देवी-देवता आदि को मानते हैं, वे दुःख पाते हैं; क्योंकि देवी-देवता उन्हीं

के पास से सब वस्तुएँ माँगते और बलिदान मांगते हैं। वे वीतराग पुरुषों [जैनियों] से दूर रहते हैं॥८२॥

समीक्षक—देखो, जैनमत की दया की लहरें कि अपने मत से भिन्न मनुष्यों का जन्म होना और बढना अच्छा नहीं मानते, किंतु उनका नाश ही होना अच्छा मानते हैं, तो दया और क्षमा कहाँ रही? जब अन्य के देवों-देवियों को नहीं मानते, तो अपनी हिंसक शासनदेवी आदि, **'श्राद्धदिनकृत्य'** के पृष्ठ ४६ में लिखा है कि रात्रि में भोजन करने के करण जिसने थप्पड़ मारके मनुष्य की आँख निकाल दी, उसके बदले बकरे की आँख निकालकर उस मनुष्य के लगादी, इस देवी को हिंसक क्यों नहीं मानते? क्या यह दुर्गा और काली की छोटी बहिन नहीं है?

'रत्नसार' भाग १ पृष्ठ ६७ में देखो क्या लिखा है—मरुतदेवी पथिकों को पत्थर की मूर्ति होकर सहाय करती थी। इसको भी सच न मानना चाहिये।

[मुक्ति केवल जैनियों को मिलेगी, यह कहना पागलपन है]

मूल— सुद्धे मग्गे जाया, सुहेण गच्छत्ति सुद्ध मग्गंमि।
जे पुण अमग्ग जाया, मग्गे गच्छन्ति तं चुय्यं॥८३॥

प्रकरण०, भाग २, षष्ठी०, सूत्र, ८३॥

सं० अर्थ—जो जैनकुल में जन्म लेकर मुक्ति को जाय तो कुछ आश्चर्य

नहीं, परन्तु जैनभिन्न कुल में जन्मे हुये मिथ्यात्वी, अन्यमार्गी मुक्ति को प्राप्त होवे, इसमें बड़ा आश्चर्य है, अर्थात् उनकी मुक्ति ही नहीं होती। और कुमार्ग अर्थात् जैनभिन्न सम्प्रदाय में उत्पन्न होकर अर्थात् चेले-चांटे होकर सुमार्ग में चलें, यह बड़ा आश्चर्य है; क्योंकि जो उन्मार्गी अर्थात् जैनभिन्न मार्ग में हैं, वे सब नरक में पडेंगे, जो ऐसा जानके भी जैनमत में नहीं आवे [तो बड़ा आश्चर्य है।]॥८३॥

समीक्षक—क्या जैनकुल में कोई दुष्ट वा नरकगामी नहीं होता? और सभी मुक्ति को जायेंगे? और अन्य कुलों में कोई भी श्रेष्ठ नहीं और मुक्ति को न जायेगा? क्या पागलपन की बातें हैं !! [इनको] महामूढ मनुष्यों के विना और कौन मान सकता है?

[मूर्त्तिपूजा तो जैसी दूसरों की मिथ्या, वैसी ही जैनियों की]

मूल— तिच्छयराणं पूआ, सम्मत्तगुणाणकारिणी भणिया।

साविय मिच्छत्तयरी, जिण समये देसिया पूआ॥९०॥

प्रकरण०, भाग २, षष्ठी०, सूत्र ९०॥

सं० अर्थ—जिन-मूर्तियों की पूजा सार, इससे भिन्न अन्य मार्गियों की मूर्तिपूजा असार है। जो जिन-आज्ञा को पालता है वह तत्त्वज्ञानी, और जो नहीं पालता है, वह तत्त्वज्ञानी नहीं॥९०॥

समीक्षक—वाह! क्या कहना!! क्या तुम्हारी मूर्त्तियां पाषाणादि जड़ पदार्थों की नहीं जैसी वैष्णवादि की हैं? वैसी ही तुम्हारी पाषाणादिपूजा है। जैसी तुम्हारी मूर्तिपूजा मिथ्या है, वैसी ही वैष्णवादिकों की भी मिथ्या है। जैसे तुम जैनी तत्त्वज्ञानी बनते हो और अन्य को अतत्त्वज्ञानी बनाते हो, इससे विदित होता है कि तुम्हारे मत में तत्त्वज्ञान नहीं है॥

[क्या जैनी ही धर्मात्मा हैं, अन्य नहीं ?]

मूल— जिण आणाए धम्मो, आणा रहिआण फुडं अहमुत्ति।

इय मुणि ऊणय तत्तं, जिण आणाए कुणहु धम्मं॥९२॥

प्रकरण०, भाग २, षष्ठी०, सूत्र ९२॥

सं० अर्थ—जिनदेव की आज्ञा, क्षमा, दयादि रूप धर्म हैं, उनसे अन्य सब अधर्म हैं।

समीक्षक—यह कितने बड़े अन्याय की बात है! कोई जैनमत से भिन्न पुरुष सत्य आज्ञा [का पालन] करे, क्या वह धर्म न मानना चाहिये? हां, जो जैनमतस्थ पुरुषों के मुख-जिह्वा चमड़े-हाड़ के न होंगे, औरों के चमड़े-हाड़ के होंगे! इससे उन्हीं के मुख के वचन की बड़ाई करना, जानो भाटों के बड़े भाई की बातें हैं।

[अन्य मतस्थों के ऐश्वर्य और बढ़ती से ईर्ष्या]

मूल— वन्नेमि नारयाउवि, जेसिं दुरकाइ सम्भरं ताणम्।

भव्वाण जणइ हरि हर, रिद्धि समिद्धी वि उद्घोसं॥९५॥

मूल— [इअराण ठक्कुराणवि, आणाभंगेण होइ मरण दुहं।
किं पुण तिलोअ पहुणों, जिणिंददेवाइ देवस्स]॥९८॥

प्रकरण०, भाग २, षष्ठी०, सूत्र ९५, ९८॥

सं० अर्थ—इसका मुख्य तात्पर्य यह है कि जो हरि हर-आदि की विभूति है, वह नरक का हेतु है, उसको देखके [भय से] जैनियों के रोमांच खड़े हो जाते हैं॥९५॥

जैसे राजाज्ञा भंग करने से [मनुष्य] मरण तक दुःख पाता है, [वैसे] जिनेन्द्र आज्ञाभङ्ग से क्यों न जन्म-मरण दुःख पावेगा?॥९८॥

समीक्षक—देखिए, जैन लोग दूसरे की उन्नति नहीं देख सकते! देखकर भीतर जलते हैं अर्थात् चाहते होंगे कि हरि-हर-आदि की यह विभूति हमको मिल जाय। बहुधा वैसे व्यवहार भी करते होंगे। यह फोकट राजाज्ञाभंग के दृष्टान्त से मूर्खों को भय दिखलाकर मूंडने की बातें हैं और राजाज्ञा का दृष्टान्त इसलिये देते हैं कि ये जैन लोग राज्य के बड़े खुशामदी, झूठे और डरपुकने हैं। क्या झूठी बात भी राजा की मान लेनी चाहिये? जो ईर्ष्या-द्वेषी होगा, तो जैनियों से बढ़के दूसरा कोई भी न होगा।

[जैनधर्म से भिन्न को मूर्ख कहना मूढ़ता है]

मूल— जो देई सुद्धधम्मं, सो परमप्पा जयम्मि न हु अन्नो।

किं कप्पद्दुम सरिसो, इयर तरू हो कइया वि॥१०१॥

प्रकरण०, भाग २, षष्ठी०, सूत्र १०१॥

सं० अर्थ—मूर्ख लोग वे हैं जो जैनधर्म से विरुद्ध हैं और जो जिनेन्द्रभाषित धर्मोपदेष्टा हैं, वे तीर्थंकरों के तुल्य हैं। [जो जैन तीर्थंकर हैं वे परमात्मा हैं] उनके तुल्य दूसरा कोई भी नहीं। [क्या कल्पवृक्ष के समान अन्य वृक्ष कहीं होता है?]॥१०१॥

समीक्षक—क्यों न हो, जो जैनी लोग छोकर-बुद्धि न होते तो ऐसी बातें क्यों मानते और क्यों करते? जैसे जैनमार्ग के उपदेष्टा को अच्छा मानते हो, वैसे दूसरे को क्यों नहीं मानते? यह सब तुम्हारा अज्ञान का माहात्म्य है।

[जैनियों की थोड़ी बातें छोड़ सब त्यक्तव्य हैं]

मूल— मूलं जिणिंद देवो, तव्वयणं गुरुजणं महासयणं।

सेसं पावट्ठाणं, परमप्पाणं च वज्जंमि॥१०३॥

प्रकरण०, भाग २, षष्ठी०, सूत्र १०३॥

सं० अर्थ—जिनेन्द्र देव, तदुक्त सिद्धान्त और उपदेष्टा ग्राह्य, और सब अन्य मत के वचन, सिद्धान्त और उपदेष्टाओं का त्याग करना चाहिये॥१०३॥

समीक्षक—यह तुम्हारा हठ, पक्षपात और अविद्या का फल है, क्यो कि तुम्हारी थोड़ी-सी बातें छोड़कर सब बातें त्यक्तव्य हैं। जिसको थोड़ी-सी बुद्धि होगी, वह जैनियों के देव, सिद्धान्तग्रन्थ और उपदेष्टाओं को देखे, सुने, विचारे, तो उसी समय निःसन्देह छोड़ देगा।

[केवल जैनमतस्थों को पूज्य मानना पक्षपात है]

मूल— वयणे वि सुगुरु जिणवल्लहस्स केसिं न उल्लसइ सम्मं।

अह कह दिणमणि तेयं, उलुआणं हरइ अंधत्तं॥१०८॥

प्रकरण० भा० २। षष्ठी० सू० १०८॥

सं० अ०—जो जिनवचन के अनुकूल चलते हैं, वे पूजनीय और जो विरुद्ध चलते हैं, वे अपूज्य हैं। जैन गुरुओं को मानना और अन्यमार्गियों को न मानना चाहिये॥१०८॥

समीक्षक—भला, जो जैन लोग अन्य अज्ञानियों को चेले करके पशुवत् न बाँधते तो उनके जाल में से छूटकर, अपनी मुक्ति के साधन कर, जन्म सफल कर लेते। भला, जो कोई तुमको कुमार्गी, कुगुरु, मिथ्यात्वी और कूपदेष्टा कहैं, तो तुमको कितना दुःख लगे? वैसे ही जो तुम दूसरे को दुःखदायक हो, इसीलिये तुम्हारे मत में असार बातें बहुत-सी भरी हैं।

[कृषि-व्यापारादि नरक के हेतु हैं, तो क्यों नहीं छोड़ते ?]

मूल— जे रज्ज धणाईणं कारणभूय हवंति वावारा।

ते वि हु अइपावजुया, धन्ना छड्डंति भवभिया॥११९॥

प्रकरण० भाग २, षष्ठी०, सूत्र ११९॥

सं० अर्थ—जो मृत्युपर्यन्त दुःख हो तो भी [राज्य-संचालन], कृषि-व्यापार-आदि कर्म जैनी लोग न करें, क्योंकि ये कर्म नरक में लेजाने वाले हैं॥११९॥

समीक्षक—अब कोई जैनियों से पूछे कि तुम व्यापारादि कर्म क्यों करते हो? इन कर्मों को क्यों नहीं छोड़ देते? और जो छोड़ दो तो तुम्हारे शरीर का पालन-पोषण भी न हो सके। **और जो तुम्हारे कहने से सब लोग छोड़ दें, तो तुम क्या पत्थर खाके जीओगे? अत्याचार का ऐसा उपदेश करना सर्वथा व्यर्थ है। क्या करें बेचारे! विद्या, सत्सङ्ग के विना जो मन में आया, सो बक दिया।**

[अपने प्रयोजन की सिद्धि के लिए सब कुछ कर लेते हैं]

मूल— तइया हमाण अहमा, कारण रहिया अनाणगव्वेण।

जे जंपंति उसुत्तं, तेसिं धिद्धिच्छ पंडिच्चं॥१२१॥

प्रकरण० भा० २। षष्ठी०, सूत्र १२१॥

सं० अर्थ—जो जैनागम से विरुद्ध शास्त्रों के माननेवाले हैं, वे अधमाधम हैं। चाहें कोई प्रयोजन भी सिद्ध होता हो, तो भी जैनमत से विरुद्ध न बोले, न माने। चाहे कोई प्रयोजन सिद्ध होता है, तो भी अन्य मत का त्याग कर दे॥१२१॥

समीक्षक—तुम्हारे मूलपुरुषाओं से लेके आजतक जितने हो गये और होंगे, उन्होंने विना दूसरे मत को गालिप्रदान के अन्य कुछ भी दूसरी बात न की और न करेंगे। भला, जहाँ-जहाँ जैनी लोग अपना प्रयोजन सिद्ध होना देखते हैं, वहाँ चेलों के भी चेले बन जाते हैं, तो ऐसी मिथ्या लम्बी-चौड़ी बातों के हाँकने में तनिक भी लज्जा नहीं आती, यह बड़े शोक की बात है।

[समन्वय की भावना को छोड़ देना बुद्धिमत्ता नहीं]

मूल— जं वीरजिणस्स जिओ, मिरई उस्सुत्त लेस देसणओ।
सागर कोडाकोडिं, हिंडइ अइ भीमभवरण्णे॥१२२॥

प्रकरण० भा० २ । षष्ठी०, सूत्र १२२॥

सं० अर्थ—जो कोई ऐसा कहे कि जैन साधुओं में धर्म है, तो हमारे और अन्य में भी धर्म है; तो [लेशमात्र भी जैन-ग्रन्थों के विरुद्ध बोलनेवाला] वह मनुष्य करोड़ों-करोड़ों वर्ष तक नरक में रहकर फिर भी नीच जन्म पाता है॥१२२॥

समीक्षक—वाह रे वाह विद्या के शत्रुओ! तुमने यही विचारा होगा कि हमारे मिथ्या वचनों का कोई खण्डन न करे, इसीलिये यह भयङ्कर वचन लिखा है, जो असम्भव है। अब कहां तक तुमको समझावें? तुमने तो झूठ, निन्दा और अन्य मतों से वैर-विरोध करने पर ही कमर बांध अपना प्रयोजन सिद्ध करना 'मोहनभोग' के समान समझ लिया है।

[जैनधर्म को सच्चा माननेमात्र से दुःखसागर तरना झूठ है]

मूल— दूरे करणं दूरम्मि साहणं तह पभावणा दूरे।

जिणधम्म सद्दहाणं, पि तिरकदुरकाइ निट्ठवइ॥१२७॥

प्रकरण० भाग २। षष्ठी०, सूत्र १२७॥

सं० अर्थ—जिस मनुष्य से जैनधर्म का कुछ भी अनुष्ठान न हो सके तो भी जो 'जैनधर्म सच्चा है, अन्य कोई नहीं' इतनी श्रद्धामात्र से ही वह दुःखों से तर जाता है॥१२७॥

समीक्षक—भला, इससे अधिक मूर्खों को अपने मतजाल में फसाने की दूसरी कौन-सी बात होगी? क्योंकि कुछ कर्म करना न पड़े और मुक्ति हो ही जाय, ऐसा भोंदू मत कौन-सा होगा?

[जिनागम श्रवणेच्छामात्र से दुःखसागर तरना असम्भव]

मूल— कइया होही दिवसो, जइया सुगुरूण पायमूलम्मि।

उस्सुत्त लेस विसलव, रहिओ निसुणेसु जिणधम्मं॥१२८॥

प्रकरण० भाग २ । षष्ठी०, सूत्र १२८॥

सं० अर्थ—मनुष्य 'जिनागम' अर्थात् 'जैनों के शास्त्रों को सुनूँगा, उत्सूत्र अर्थात् अन्य मत के ग्रन्थों को कभी न सुनूँगा' इतनी इच्छामात्र से ही दुःखसागर से तर जाता है॥१२८॥

समीक्षक—यह भी बात भोले मनुष्यों को फसाने के लिए है; क्योंकि इस पूर्वोक्त इच्छा से यहाँ के दुःखसागर से भी नहीं तरता और पूर्वजन्म के भी सञ्चित पापों के दुःखरूपी फल भोगे विना नहीं छूट सकता। जो ऐसी-ऐसी झूठ अर्थात् विद्याविरुद्ध बात न लिखते तो इनके अविद्यारूप ग्रन्थों को वेदादिशास्त्र देख-सुन सत्यासत्य जानकर इनके पोकल ग्रन्थों को छोड़ देते, परन्तु ऐसा जकड़कर इन अविद्वानों को बांधा है कि इस जाल से कोई- एक बुद्धिमान् सत्संगी चाहे, केवल वही छूट सके तो सम्भव है, परन्तु अन्य जड़बुद्धियों का छूटना तो अति कठिन है।

[भूखे मरना आदि कष्ट-सहन को चारित्र कहना ठीक नहीं]

मूल— जह्मा जिणेहिं भणियं, सुय ववहारं विसोहियं तस्स।

जायइ विसुद्ध बोही, जिण आणाराह गत्ताओ॥१३८॥

प्रकरण० भाग २। षष्ठी०, सूत्र १३८॥

सं० अर्थ—जो जिनाचार्यों ने कहे सूत्र, निरुक्ति, वृत्ति, भाष्य, चूर्णी [आदि को] मानते हैं, वे ही शुद्ध व्यवहार और दुर्लभ व्यवहार के करने से चारित्रयुक्त होकर सुखों को प्राप्त होते हैं, अन्य मत के ग्रन्थ देखने से नहीं॥१३८॥

समीक्षक—क्या अत्यन्त भूखा मरने आदि कष्ट सहने को 'चारित्र' कहते हैं? जो भूखा-प्यासा मरना आदि ही 'चारित्र' है, तो बहुत से मनुष्य अकाल वा जिनको अन्नादि नहीं मिलते, भूखे मरते हैं, वे शुद्ध होकर शुभ फलों को प्राप्त होने चाहियें। सो न ये शुद्ध होवें और न तुम, किन्तु

पित्तादि के प्रकोप से रोगी होकर सुख के बदले दुःख को प्राप्त होते हो।

'धर्म' तो न्यायाचरण, ब्रह्मचर्य, सत्यभाषणादि है और असत्यभाषण अन्यायाचरणादि 'पाप' है, और सबसे प्रीतिपूर्वक परोपकारार्थ वर्तना 'शुभ चरित्र' कहाता है। जैनमतस्थों का भूखा-प्यासा रहना आदि धर्म नहीं। इन सूत्रादि को मानने से थोड़े-से सत्य और अधिक झूठ को प्राप्त होकर दुःखसागर में डूबते हैं।

[क्या अन्य मतों में श्रेष्ठ प्रारब्धी नहीं हैं ?]

[मूल— जंचिअ लोओ मन्नइ, तंचिअ मन्नंति सयल लोआवि।

जं मन्नइ जिणनाहो, तंचि अ मन्नंति किवि विरला॥१४६॥]

[मूल— साहंमि आउ अहिओ, बंधसुआईसु जाण अणुराओ।

तेसिं नहु सम्मत्तं, विन्नेयं समयनीईये॥१४७॥]

[मूल— जइ जाणिसि जिण नाहो, लोयायारा विपरकए भूओ।

ता तं तं मन्नंतो, कह मन्नसि लोअ आयारं॥१४८॥

[मूल— जे मन्न वि जिणिदं, पुणोवि पणमन्ति इअर देवाणं।

मिच्छत्त सन्निवायग, गच्छाणं ताण को विज्जो ॥१४९॥]

प्रकरण० भाग २ । षष्ठी० सूत्र [१४६-१४७ पृ०६९१] १४८ [१४९, पृ० ६९२]॥

सं० अर्थ—जो उत्तम प्रारब्धवान् मनुष्य होते हैं, वे [विरले] ही जिन-धर्म का ग्रहण करते हैं। अर्थात् जो जिनधर्म का ग्रहण नहीं करते, उनका प्रारब्ध नष्ट है॥[१४६]॥

समीक्षक—क्या यह बात मूर्खता की और झूठ नहीं है? क्या अन्य मत में श्रेष्ठ-प्रारब्धी और जैनमत में नष्ट-प्रारब्धी कोई भी नहीं है?

[जैनी दूसरों से कलह करना बुरा नहीं मानते]

[स० अर्थ—] और जो यह कहा कि "साधर्मी अर्थात् जैनधर्मवाले आपस में क्लेश न करें किन्तु प्रीतिपूर्वक वर्त्तें," ॥१४७॥

[प्रकरण०, भाग २, सू० १४७]

[समीक्षक—] इससे यह बात सिद्ध होती है कि दूसरे [मत-वालों] के साथ कलह करने में बुराई जैन लोग नहीं मानते होंगे। यह भी उनकी बात अयुक्त है, क्योंकि **सज्जन पुरुष सज्जनों के साथ प्रेम और दुष्टों को शिक्षा देकर सुशिक्षित करते हैं।**

[जब सबको शत्रु समझा, तो दयाधर्म समाप्त]

[स० अर्थ—] और जो यह लिखा है कि "ब्राह्मण, त्रिदण्डी, परिव्राजकाचार्य अर्थात् संन्यासी और तापसादि अर्थात् वैरागी आदि सब जैनमत के शत्रु हैं।" ॥१४८॥

[प्रकरण०, सू० १४८]

[समीक्षक—] अब देखिये, कि सबको शत्रुभाव से देखते और निन्दा करते हैं तो जैनियों की दया और क्षमारूप धर्म कहां रहा? क्योंकि दूसरे पर द्वेष रखना दया-क्षमा का नाश और इसके समान कोई दूसरा हिंसारूप दोष नहीं। जैसे द्वेषमूर्त्तियाँ जैनी लोग हैं, वैसे दूसरे थोड़े ही होंगे!

[अन्य मतस्थों को अपशब्द कहना अच्छी बात नहीं]

[सं० अर्थ— और जो यह लिखा है कि—'हरि हर-आदि मिथ्यात्वी, अन्य मतवाले सन्निपात रोगग्रस्त और उनके धर्म विष के समान हैं'।] ॥१४९॥

[समीक्षक—] जो ऋषभदेव से लेके महावीरपर्यन्त २४ तीर्थंकरों को रागी, द्वेषी, मिथ्यात्वी कहैं और जैनमत माननेवालों को सन्निपातज्वर से फसे हुए मानें और उनका धर्म नरक और विष के समान समझें, तो जैनियों को कितना बुरा लगेगा? इसलिये जैनी लोग निन्दा और पर-मत-द्वेषरूप नरक में डूबकर महाक्लेश भोग रहे हैं। इस बात को छोड़ दें तो बहुत अच्छा होवे।

[मूर्ति पूजा का पाखण्ड जैनियों से चला]

मूल— एगो अ गुरू एगो वि सावगो चेइआणि विवहाणि।

तच्छय जं जिणदव्वं, परुप्परं तं न विच्चंति॥१५०॥

प्रकरण०, भाग २। षष्ठी०, सूत्र १५०॥

सं० अर्थ—सब श्रावकों के देव, गुरु, धर्म एक हैं, चैत्यवन्दन अर्थात् जिन-प्रतिबिम्ब मूर्त्ति, देवल और जिन-द्रव्य की रक्षा और मूर्त्ति की पूजा करना धर्म है॥१५०॥

समीक्षक—अब देखो, जितना मूर्त्तिपूजा का झगड़ा चला है, वह सब जैनियों के घर से ही चला है, और पाखण्डों का मूल भी जैनमत है।

[मूर्त्तिपूजा का प्रकार]

[देखिये, सन् १८७६ में बनारस जैनप्रभाकर प्रेस में मुद्रित] **'श्राद्धदिनकृत्य'** पृष्ठ १ में मूर्त्तिपूजा के प्रमाण—

नवकारेण विवोहो॥१॥ अणुसरणं सावउ॥२॥ वयाइं इमे॥३॥ जोगो॥४॥ चिय वन्दणगो॥५॥ पच्चरखाणं तु विहि पुब्बं ॥६॥ इत्यादि।

अर्थ—श्रावकों को पहले द्वार में 'नवकार' का जप करके जाना चाहिये॥१॥

दूसरा 'नवकार' जपे पीछे 'मैं श्रावक हूँ' स्मरण करना चाहिये॥२॥

तीसरे, 'अणुव्रत'- आदिक हमारे कितने हैं॥३॥

चौथे द्वारे, चार वर्ग में अग्रगामी मोक्ष है। उसका कारण ज्ञानादिक है सो 'योग' है। उसका सब अतिचार निर्मल करने से छ: आवश्यक कारण हैं, सो भी उपचार से 'योग' कहाता है, सो योग कहेंगे॥४॥

पाँचवें, चैत्यवन्दन अर्थात् मूर्त्ति को नमस्कार द्रव्यभाव पूजा कहेंगे॥५॥

छठा, प्रत्याख्यान द्वार नवकारसीप्रमुख विधिपूर्वक कहूंगा, इत्यादि॥६॥

[लकड़ी पत्थर को देवबुद्धि से पूजना व्यर्थ]

[मूल—] 'तत्त्वविवेक' पृष्ठ १६९—जो मनुष्य लकड़ी-पत्थर को देवबुद्धि कर पूजता है, वह अच्छे फलों को प्राप्त होता है।

समीक्षक—जो ऐसा हो तो सब कोई दर्शन करके सुखरूप फलों को प्राप्त क्यों नहीं होते?

[मूल—] 'रत्नसार' भाग १ पृष्ठ १०—पार्श्वनाथ की मूर्त्ति के दर्शन से पाप नष्ट हो जाते हैं।

'कल्पभाष्य' पृष्ठ ५१ में लिखा है कि—"सवा-लाख मन्दिरों का जीर्णोद्धार किया"

समीक्षक—इत्यादि मूर्त्तिपूजा-विषय में इनका बहुत-सा लेख है, इसी से समझा जाता है कि मूर्त्तिपूजा का मूलकारण जैनमत है।

[कुआ, तालाब आदि बनवाने का निषेध मूर्खतापूर्ण]

[मूल—] 'श्राद्धदिनकृत्य' आत्मनिन्दा भावना पृष्ठ ३१ में लिखा है कि—बावड़ी, कुआ और तालाब न बनवाना चाहिये।

समीक्षक—भला, जो सब मनुष्य जैनमत में हो जायें और कुआ, तालाब, बावड़ी आदि कोई भी न बनवावें, तो सब लोग जल कहाँ से पीयें?

प्रश्न—तालाब आदि बनवाने से [उसमें] जीव पड़ते हैं, उससे बनवानेवाले को पाप लगता है, इसलिये हम जैनी लोग इस काम को नहीं करते।

उत्तर—तुम्हारी बुद्धि नष्ट क्यों हो गई? क्योंकि जैसे क्षुद्र-क्षुद्र जीवों के मरने से पाप गिनते हो, **तो बड़े-बड़े गाय आदि पशु और मनुष्यादि प्राणियों के जल पीने आदि से महापुण्य होगा,** उसको क्यों नहीं गिनते?

[महावीर की मिथ्या और असम्भव बात]

[मूल—] 'तत्त्वविवेक' पृष्ठ १९६—इस नगरी में एक नन्द मणिकार

सेठ ने बावड़ी बनवाई। उससे धर्मभ्रष्ट होकर उसको सोलह महारोग हुए, मरके उसी बावड़ी में मेंढ़का हुआ। महावीर के दर्शन से उसको जातिस्मरण हो गया। महावीर कहते हैं कि मेरा आना सुनकर वह पूर्व जन्म के धर्माचार्य जान वन्दना को आने लगा। मार्ग में श्रेणिक के घोड़े की टाप से मरकर शुभ ध्यान के योग से दर्दुरांक नाम महर्द्धिक देवता हुआ। अवधिज्ञान से मुझको यहाँ आया जान वन्दनापूर्वक ऋद्धि दिखाके गया।

समीक्षक—इत्यादि विद्याविरुद्ध, असम्भव, मिथ्या बात के कहनेवाले महावीर को सर्वोत्तम मानना महाभ्रान्ति की बात है।

[जैन साधुओं के महाब्राह्मणों जैसे काम]

[मूल—] 'श्राद्धदिनकृत्य' पृष्ठ ३६ पर लिखा है कि—मृतकवस्त्र साधु ले लेवें।

समीक्षक—देखिये, इनके साधु भी 'महाब्राह्मणों' के समान हो गये। वस्त्र तो साधु लेवें, परन्तु मृतक के आभूषण कौन लेवे? बहुमूल्य होने से घर में रख लेते होंगे, तो आप कौन हुए?

[अन्न पीसने वा पकाने में पाप मानना मूर्खता]

[मूल—] 'रत्नसार' पृष्ठ १०५—भूंजने, कूटने, पीसने, अन्न पकाने आदि में पाप होता है।

समीक्षक—अब देखिये इनकी विद्याहीनता! भला ये कर्म न किये जायें, तो मनुष्यादि प्राणी कैसे जी सकें? और जैनी लोग भी पीड़ित होकर मर जायें।

[अच्छे कामों को बुरा बताना भी अज्ञानता]

[मूल—] 'रत्नसार' पृष्ठ १०४—बगीचा लगाने से एक-लक्ष पाप माली को लगते हैं।

समीक्षक—जो माली को लक्ष पाप लगता हैं, तो अनेक जीव पुष्प, फल और छाया से आनन्दित होते हैं, तो करोड़ों गुणा पुण्य भी होता ही है। इस पुण्य पर कुछ भी ध्यान न दिया, यह कितना अन्धेर है?

[जैन साधु द्वारा वेश्या के घर में अशफयों को वर्षा !!]

[मूल—] 'तत्त्वविवेक' पृष्ठ २०२—एक दिन लब्धि साधु भूल से वेश्या के घर में चला गया और धर्म से भिक्षा मांगी। वेश्या बोली कि यहां धर्म का काम नहीं, किन्तु अर्थ का काम है, तो उस लब्धि साधु ने साढ़े बारह-लाख अशर्फियों की वर्षा उसके घर में कर दी।

समीक्षक—इस बात को सिवाय नष्टबुद्धि पुरुष के कौन सत्य मानेगा?

[पाषाण-मूत्ति घोड़े पर कैसे चढ़ सकती है ?]

[मूल—] 'रत्नसार' भाग १ पृष्ठ ६७ पर लिखा है कि—एक पाषाण की मूर्त्ति घोड़े पर चढ़कर, उसका जहाँ स्मरण करे, वहां उपस्थित होकर रक्षा करती है।

समीक्षक—कहो जैनी जी! आजकल तुम्हारे यहां चोरी, डाका आदि का और शत्रु से भय होता ही है, तो तुम उसका स्मरण करके अपनी रक्षा क्यों नहीं करा लेते हो? क्यों जहाँ-तहाँ पुलिस आदि राज-स्थानों में मारे-मारे फिरते हो?

[केश-लुञ्चन में कष्ट होने से वह हिंसा है]

[मूल—] 'कल्पसूत्रभाष्य' पृष्ठ १०८—केशलुञ्चन करे, गौ के बालों के तुल्य रक्खे।

समीक्षक—अब कहिये जैन लोगो! तुम्हारा दया-धर्म कहाँ रहा? क्या यह हिंसा रूप कर्म करने से अर्थात् चाहें अपने हाथ से लुञ्चन करे, उसका गुरु करे वा अन्य कोई, परन्तु कितना बड़ा कष्ट उस जीव को होता होगा? **जीवों को कष्ट देना ही हिंसा कहाती है।**

[ढूंढिया और तेरहपन्थी; तथा मुख पर पट्टी बाँधना]

[मूल—] 'विवेकसार' पृष्ठ ७—संवत् १६३३ के साल में **'श्वेताम्बरों'** में से **'ढूँढिया'** और 'ढूँढियों' में से तेरहपन्थी आदि ढोंगी निकले हैं। 'ढूंढिये' लोग पाषाणादि मूर्त्ति को नहीं मानते और वे भोजन-स्नान को छोड़ सर्वदा मुख पर पट्टी बांधे रहते हैं। और जती आदि भी जब पुस्तक बाँचते हैं, तभी मुख पर पट्टी बांधते हैं, अन्य समय नहीं।

[मुख पर पट्टी बाँधने की समीक्षा]

प्रश्न—मुख पर पट्टी अवश्य बांधनी चाहिये, क्योंकि 'वायुकाय' अर्थात् जो वायु में सूक्ष्म शरीरवाले जीव रहते हैं, वे मुख के वाष्प की उष्णता से

मरते हैं और उसका पाप मुख पर पट्टी न बांधनेवाले पर होता है। इसलिये हम लोग मुख पर पट्टी बाँधना अच्छा समझते हैं।

उत्तर—यह बात विद्या और प्रत्यक्ष प्रमाणादि की रीति से अयुक्त है, क्योंकि जीव अजर-अमर हैं; फिर वे मुख की भाप से कभी नहीं मर सकते। इनको तुम भी अजर-अमर मानते हो।

प्रश्न—जीव तो नहीं मरता, परन्तु जो मुख के उष्ण वायु से उनको पीड़ा पहुँचती है, उस पीड़ा पहुँचानेवाले को पाप होता है, इसलिये मुख पर पट्टी बाँधना अच्छा है।

उत्तर—यह भी तुम्हारी बात सर्वथा असम्भव है, क्योंकि पीड़ा दिये विना किसी जीव का किञ्चित् भी निर्वाह नहीं हो सकता। जब मुख के वायु से तुम्हारे मत में जीवों को पीड़ा पहुँचती है, तो चलने, फिरने, बैठने, हाथ उठाने और नेत्रादि के चलाने में भी पीड़ा अवश्य पहुँचती होगी; इसलिये तुम भी जीवों को पीड़ा पहुँचाने से पृथक् नहीं रह सकते।

प्रश्न—हाँ, जहाँ तक बन सके, वहाँ तक जीवों की रक्षा करनी चाहिये और जहाँ हम नहीं बचा सकते, वहाँ अशक्त हैं; क्योंकि सब वायु आदि पदार्थों में जीव भरे हुए हैं। जो हम मुख पर कपड़ा न बाँधें तो बहुत जीव मरें, कपड़ा बाँधने से कम मरते हैं।

[मुख पर पट्टी बाँधने में अनेक दोष]

उत्तर—यह भी तुम्हारा कथन युक्तिशून्य है, क्योंकि कपड़ा बाँधने से जीवों को अधिक दुःख पहुँचता है। जब कोई मुख पर कपड़ा बाँधे, तो उसका मुख का वायु रुकके, नीचे वा पार्श्व और मौन समय में नासिका द्वारा इकट्ठा होकर वेग से निकलता है, उससे उष्णता अधिक होकर जीवों को विशेष पीड़ा, तुम्हारे मतानुसार, पहुँचती होगी। देखो, जैसे घर वा कोठरी के सब दरवाजे बंद किये वा परदे डाले जायें तो उसमें उष्णता विशेष होती है, खुला रखने से उतनी नहीं होती; वैसे मुख पर कपड़ा बाँधने से उष्णता अधिक होती है और खुला रखने से न्यून, वैसे तुम अपने मतानुसार जीवों को अधिक दुःखदायक हो। और जब मुख बंद किया जाता है, तब नासिका के छिद्रों से वायु रुक, इकट्ठा होकर वेग से निकलता हुआ, जीवों को अधिक धक्का और पीड़ा करता होगा।

देखो, जैसे कोई मनुष्य अग्नि को मुख से फूँकता और कोई नली से, तो मुख का वायु फैलने से कम बल और नली का वायु इकट्ठा होने से अधिक बल से अग्नि में लगता है, वैसे ही मुख-पर पट्टी बाँधकर वायु को रोकने से नासिका द्वारा अति वेग से निकलकर जीवों को अधिक दुःख देता है। इससे मुख-पट्टी बाँधनेवालों से नहीं बाँधनेवाले धर्मात्मा हैं।

और मुख पर पट्टी बाँधने से अक्षरों का यथायोग्य स्थान-प्रयत्न के साथ उच्चारण भी नहीं होता। निरनुनासिक अक्षरों को सानुनासिक बोलने से

तुमको दोष लगता है।

तथा मुख पर पट्टी बाँधने से दुर्गन्ध भी अधिक बढ़ता है; क्योंकि शरीर के भीतर दुर्गन्ध भरा है। शरीर से जितना वायु निकलता है, वह दुर्गन्धयुक्त प्रत्यक्ष है। जो वह रोका जाय तो दुर्गन्ध भी अधिक बढ़ जाय, जैसे कि बंद 'जाजरूर' अधिक दुर्गन्धयुक्त और खुला हुआ न्यून दुर्गन्धयुक्त होता है, वैसे ही मुख-पट्टी बाँधने; दन्तधावन, मुखप्रक्षालन, स्नान न करने से तथा अच्छे प्रकार वस्त्र न धोने से तुम्हारे शरीरों से अधिक दुर्गन्ध उत्पन्न होकर संसार में बहुत रोग फैला करके जीवों को जितनी पीड़ा पहुँचाता है, उतना पाप तुमको अधिक होता है।

जैसे 'मेले' आदि में अधिक दुर्गन्ध होने से विसूचिका अर्थात् हैजा आदि बहुत प्रकार के रोग उत्पन्न होकर जीवों को दु:खदायक होते हैं, और न्यून दुर्गन्ध होने से रोग भी न्यून होकर जीवों को बहुत दुःख नहीं पहुँचता। इससे तुम अधिक दुर्गन्ध बढ़ाने में अधिक अपराधी [हो] और जो मुख-पट्टी नहीं बाँधते, दन्तधावन, मुखप्रक्षालन, स्नान करके स्थान-वस्त्रों को शुद्ध रखते हैं, वे तुमसे बहुत अच्छे हैं। जैसे अन्त्यजों की दुर्गन्ध के सहवास से पृथक रहने वाले बहुत अच्छे हैं, जैसे अन्त्यजों की दुर्गन्ध के सहवास से निर्मल बुद्धि नहीं होती, वैसे तुम और तुम्हारे संगियों की भी बुद्धि नहीं बढ़ती। जैसे रोग की अधिकता से और बुद्धि के स्वल्प होने से धर्मानुष्ठान में बाधा होती है, वैसे ही दुर्गन्धयुक्त तुम्हारा और तुम्हारे

संगियों का भी वर्तमान होता होगा।

[बाहर के वायु के योग विना मनुष्यादि प्राणी जी नहीं सकते]

प्रश्न—जैसे बन्द मकान में जलाये हुए अग्नि की ज्वाला बाहर निकलके बाहर के जीवों को दुःख नहीं पहुँचा सकती, वैसे हम मुखपट्टी बाँधके वायु को रोककर बाहर के जीवों को न्यून दुःख पहुँचानेवाले हैं। मुखपट्टी बाँधने से बाहर के वायु के जीवों को पीड़ा नहीं पहुँचती। और जैसे सामने अग्नि जलाता है, उसको आड़ा हाथ देने से आँच कम लगती है, और वायु के जीव शरीरवाले होने से उनको पीड़ा अवश्य पहुँचती है।

उत्तर—यह तुम्हारी बात लड़केपन की है। प्रथम तो देखो, जहाँ छिद्र और भीतर के वायु का योग बाहर के वायु के साथ न हो तो वहाँ अग्नि जल ही नहीं सकता। जो इसको प्रत्यक्ष देखना चाहो तो किसी फानूस में दीप जलाकर सब छिद्र बंद करके देखो तो दीप उसी समय बुझ जायगा। जैसे पृथिवी पर रहनेवाले मनुष्यादि प्राणी बाहर के वायु के योग के विना नहीं जी सकते, वैसे अग्नि भी नहीं जल सकता। जब एक ओर से अग्नि का वेग रोका जाय, तो दूसरी ओर अधिक वेग से निकलेगा और हाथ की आड़ करने से मुख पर आँच न्यून लगती है, परन्तु वह आँच हाथ पर अधिक लग रही है, इसलिये तुम्हारी बात ठीक नहीं।

[मुख पर पल्ला रखकर बात करने के अन्य प्रयोजन हैं]

प्रश्न—इसको सब कोई जानता है कि जब किसी बड़े मनुष्य से छोटा मनुष्य कान में वा निकट होकर बात कहता है तब मुख पर पल्ला वा हाथ

लगाता है, इसलिये कि मुख से थूक उड़कर वा दुर्गन्ध उसको न लगे। और जब पुस्तक बाँचता है तब अवश्य थूक उड़कर उस पर गिरने से उच्छिष्ट होकर वह बिगड़ जाता है, इसलिये मुख-पट्टी बाँधना अच्छा है।

उत्तर—इससे यह सिद्ध हुआ कि जीवरक्षार्थ मुखपट्टी बाँधना व्यर्थ है। और जब कोई बड़े मनुष्य से बात करता है, तब मुख पर हाथ वा पल्ला इसलिये रखता है कि उस गुप्त बात को दूसरा कोई न सुन लेवे; क्योंकि जब कोई प्रसिद्ध बात करता है, तब कोई भी मुख पर हाथ वा पल्ला नहीं धरता। इससे क्या विदित होता है कि गुप्त बात के लिये यह बात है। **दन्तधावनादि न करने से तुम्हारे मुखादि अवयवों से अत्यन्त दुर्गन्ध निकलता है** और जब तुम किसी के पास वा कोई तुम्हारे पास बैठता होगा, तो विना दुर्गन्ध के अन्य क्या आता होगा? इत्यादि।

मुख के आड़ा हाथ वा पल्ला देने के प्रयोजन अन्य बहुत हैं; जैसे बहुत मनुष्यों के सामने गुप्त बात करने में जो हाथ वा पल्ला न लगाया जाय तो दूसरों की ओर वायु के फैलने से बात भी फैल जाय। जब वे दोनों एकान्त में बात करते हैं, तब मुख पर हाथ वा पल्ला इसलिये नहीं लगाते कि यहाँ तीसरा कोई सुननेवाला नहीं।

जो बड़ों के ही ऊपर थूक न गिरे, इससे क्या छोटों के ऊपर थूक गिराना चाहिये? और उस थूक से बच भी नहीं सकते, क्योंकि हम दूरस्थ बात

करें और वायु हमारी ओर से दूसरे की ओर जाता हो तो सूक्ष्म होकर उसके शरीर पर वायु के साथ त्रसरेणु अवश्य गिरेंगे, उसका दोष गिनना अविद्या की बात है।

[मुख की उष्णता से जीव नहीं मर सकते]

क्योंकि जो मुख की उष्णता से जीव मरते वा उनको पीड़ा पहुँचती हो, तो वैशाख वा ज्येष्ठ महीने में सूर्य की महा-उष्णता से वायुकाय के जीवों में से मरे विना एक भी न बच सके। सो, उस उष्णता से भी वे जीव नहीं मर सकते। इसलिये यह तुम्हारा सिद्धान्त झूठा है। यदि तुम्हारे तीर्थंकर भी पूर्ण विद्वान् होते, तो ऐसी व्यर्थ बातें क्यों करते?

[किन अवस्थाओं में जीव को पीड़ा नहीं पहुँचती ?]

देखो, **पीड़ा उसी जीव को पहुँचती है, जिसकी वृत्ति सब अवयवों के साथ विद्यमान हो।** इसमें प्रमाण—

पञ्चावयवयोगात्सुखसंवित्तिः॥

यह सांख्यशास्त्र का सूत्र है [५।२७]॥

=**जब पाँचों इन्द्रियों का पाँचों विषयों के साथ सम्बन्ध होता है तभी सुख वा दुःख की प्राप्ति जीव को होती है।** जैसे बधिर को गाली प्रदान, अन्धे को रूप वा आगे से सर्प-व्याघ्रादि भयदायक जीवों का चला जाना, शून्य बहिरीवाले को स्पर्श, पिन्नस रोगवाले को गन्ध और शून्य जिह्वावाले को रस प्राप्त नहीं हो सकता, इसी प्रकार उन जीवों की भी व्यवस्था है।

देखो, जब मनुष्य का जीव सुषुप्ति दशा में रहता है तब उसको सुख वा दुःख की प्राप्ति कुछ भी नहीं होती, क्योंकि वह शरीर के भीतर तो है, परन्तु उसका बाहर के अवयवों के साथ उस समय सम्बन्ध न रहने से सुख-दुःख की प्राप्ति नहीं कर सकता।

और जैसे वैद्य वा आजकाल के डाक्टर लोग नशे की वस्तु खिला वा सुंघा के रोगी-पुरुष के शरीर के अवयवों को काटते वा चीरते हैं, उसको उस समय कुछ भी दुःख विदित नहीं होता, वैसे 'वायुकाय' अथवा अन्य स्थावर शरीरवाले जीवों को सुख वा दुःख प्राप्त कभी नहीं हो सकता।

जैसे मूर्च्छित प्राणी सुख-दुःख को प्राप्त नहीं हो सकता, वैसे वे 'वायुकाय'-आदि के जीव भी अत्यन्त मूर्च्छित होने से सुख-दुःख को प्राप्त नहीं हो सकते, फिर उनको पीड़ा से बचाने की बात सिद्ध कैसे हो सकती है? जब उनको सुख-दुःख की प्राप्ति ही प्रत्यक्ष नहीं होती, तो अनुमान-आदि यहाँ कैसे युक्त हो सकते हैं।

[सुख-दुःख की प्राप्ति का हेतु प्रसिद्ध सम्बन्ध है]

प्रश्न—जब वे जीव हैं तो उनको सुख-दुःख क्यों नहीं होता होगा?

उत्तर—सुनो भोले भाइयो! जब तुम सुषुप्ति में होते हो तब तुमको सुख-दुःख प्राप्त क्यों नहीं होते? सुख-दुःख की प्राप्ति के हेतु प्रसिद्ध सम्बन्ध है। अभी हम इसका उत्तर दे आये हैं कि नशा सुंघाके डाक्टर

लोग अंगो को चीरते-फाड़ते और काटते हैं, जैसे उनको दुःख विदित नहीं होता, उसी प्रकार अतिमूर्च्छित जीवों को सुख-दुःख क्योंकर प्राप्त होवें? क्योंकि वहाँ [सुख-दुःख की] प्राप्ति होने का साधन कोई भी नहीं है।

[हरे शाक वा कन्दमूल के भक्षण न करने की समीक्षा]

प्रश्न—देखो, 'निलोति' अर्थात् जितने हरे शाक-पात और कन्दमूल हैं, उनको हम लोग नहीं खाते, क्योंकि 'निलोति' में बहुत और कन्दमूल में अनन्त जीव हैं। जो हम उनको खावें तो उन जीवों को मारने और पीड़ा पहुँचने से हम लोग पापी हो जायें।

उत्तर—यह तुम्हारी बड़ी अविद्या की बात है, क्योंकि हरित शाक के खाने में जीव का मरना वा उनको पीड़ा पहुँचना क्योंकर मानते हो? भला, जब तुमको पीड़ा प्राप्त होती प्रत्यक्ष नहीं दीखती, और जो दीखती है तो हमको भी दिखलाओ। तुम कभी प्रत्यक्ष न देख वा हमको दिखा सकोगे। जब प्रत्यक्ष नहीं, तो अनुमान, उपमान और शब्दप्रमाण भी कभी नहीं घट सकते।

फिर जो हम ऊपर उत्तर दे आये हैं, वह इस बात का भी उत्तर है, क्योंकि जो **अत्यन्त अन्धकार, महासुषुप्ति और महा-नशे में जीव हैं, उनको सुख-दुःख की प्राप्ति मानना तुम्हारे तीर्थंकरों की भी भूल विदित होती है,** जिन्होंने तुमको ऐसी युक्ति और विद्याविरुद्ध उपदेश किया है।

[सान्त कन्दमूल में अनन्त जीव कैसे हो सकते हैं ?]

भला, जब घर का अन्त है तो उसमें रहनेवाले अनन्त क्योंकर हो सकते हैं? जब कन्द का अन्त हम देखते हैं, तो उसमें रहनेवाले जीवों का अन्त क्यों नहीं? इससे यह तुम्हारी बात बड़ी भूल की है।

[जैनियों के उष्ण जलपान की समीक्षा]

प्रश्न—देखो, तुम लोग विना उष्ण किये कच्चा पानी पीते हो, वह बड़ा पाप करते हो। जैसे हम उष्ण पानी पीते हैं, वैसे तुम लोग भी पीया करो।

उत्तर—यह भी तुम्हारी बात भ्रमजाल की है; क्योंकि जब तुम पानी को उष्ण करते हो, तब पानी के सब जीव मरते होंगे और उनका शरीर भी जल में रंधकर वह पानी सोंफ के अर्क के तुल्य होने से, जानो, तुम उनके शरीरों का 'तेजाब' पीते हो। इससे तुम बड़े पापी हो और जो ठंढा जल पीते हैं वे नहीं; क्योंकि जब ठंढा पानी पीयेंगे, तब उदर में जाने से किञ्चित् उष्णता पाकर श्वास के साथ वे जीव बाहर निकल जायेंगे। जलकाय जीवों को सुख-दुःख पूर्वोक्त रीति से प्राप्त नहीं हो सकता, पुनः इसमें पाप किसी को नहीं होगा।

प्रश्न—जैसे जाठराग्नि की उष्णता पाके श्वास के साथ जीव बाहर निकल जाते हैं, वैसे अग्नि की उष्णता पाके जल से बाहर जीव क्यों न निकल जायेंगे?

उत्तर—हाँ, निकल तो जाते, परन्तु जब तुम मुख के वायु की उष्णता से जीव का मरना मानते हो, तो जल उष्ण करने से तुम्हारे मतानुसार जीव मर जावेंगे वा अधिक पीड़ा पाकर निकलेंगे, वा उनके शरीर उस जल में रंध जायेंगे। इससे तुम अधिक पापी होगे वा नहीं?

प्रश्न—हम अपने हाथ से उष्ण जल नहीं करते और न किसी गृहस्थ को उष्ण जल करने की आज्ञा देते हैं, इसलिये हमको पाप नहीं।

उत्तर—जो तुम उष्ण जल न लेते, न पीते, तो गृहस्थ उष्ण क्यों करते? इसलिये उस पाप के भागी तुम ही हो, प्रत्युत अधिक पापी हो; क्योंकि जो तुम किसी एक गृहस्थ को उष्ण करने को कहते, तो एक ही ठिकाने उष्ण होता, जब वे गृहस्थ इस भ्रम में रहते हैं कि न जाने साधु जी किसके घर को आवेंगे, इसलिये प्रत्येक गृहस्थ अपने-अपने घर में उष्ण जल कर रखता हैं, इसके पाप के भागी मुख्य तुम ही हो।

दूसरा—अधिक काष्ठ और अग्नि के जलने-जलाने से भी ऊपर लिखे प्रमाणे रसोई, खेती और व्यापारादि में अधिक पापी और नरकगामी होते हो। फिर जब तुम उष्ण जल कराने के मुख्य निमित्त और तुम उष्ण जल के पीने और ठंढे के न पीने के उपदेश करने से तुम ही मुख्य पाप के भागी हो। और जो तुम्हारा उपदेश मानकर ऐसी बातें करते हैं, वे भी पापी हैं।

[तुम्हारे ईश्वर ने सूर्य का ताप और वर्षा क्यों न रोकी ?]

अब देखो, कि तुम बड़ी अविद्या में होते हो, वा नहीं, कि छोटे-छोटे जीवों पर दया करनी और अन्य मत-वालों की निन्दा अनुपकार करना, क्या थोड़ा पाप है? जो तुम्हारे तीर्थंकरों का मत सच्चा होता, तो सृष्टि में इतनी वर्षा, नदियों का चलना और इतना जल ईश्वर ने क्यों उत्पन्न किया? और सूर्य को भी उत्पन्न न करता? क्योंकि इनमें करोड़ान्-करोड़ जीव तुम्हारे मतानुसार मरते ही होंगे। जब वे विद्यमान थे और तुम जिनको ईश्वर मानते हो, उन्होंने दया कर सूर्य के ताप और मेघ को बंद क्यों न किया? और पूर्वोक्त प्रकार से विना विद्यमान साधनों के प्राणियों को दुःख-सुख की प्राप्ति, कन्दमूलादि पदार्थों में रहनेवाले जीवों को नहीं होती।

सर्वथा सब जीवों पर दया करना भी दुःख का कारण होता है; क्योंकि जो तुम्हारे मतानुसार सब मनुष्य हो जावें, चोर-डाकुओं को कोई भी दण्ड न देवे तो कितना बड़ा पाप खड़ा हो जाय? **इसलिये दुष्टों को यथावत् दण्ड देने और श्रेष्ठों के पालन करने में दया, और इससे विपरीत करने में दया-क्षमारूप धर्म का नाश है।**

[जैन-समाज के सुधारने का काम क्यों नहीं करते ?]

कितने ही जैनी लोग दुकान करते, उन व्यवहारों में झूठ बोलते, पराया धन मारते और गरीबों को छलना आदि कुकर्म करते हैं। उनके निवारण में विशेष उपदेश क्यों नहीं करते? और मुख-पट्टी बाँधने आदि ढोंग में क्यों रहते हो?

[केशलुञ्चन से क्यों आत्मा को पीड़ा देते हो ?]

जब तुम चेला-चेली करते हो तब केशलुञ्चन और बहुत दिवस भूखे रहने में पराये वा अपने आत्मा को पीड़ा दे और पीड़ा को प्राप्त होके, दूसरों को दुःख देते और **'आत्महत्या'** अर्थात् आत्मा को दुःख देनेवाले होकर हिंसक क्यों बनते हो?

[हाथी घोड़े आदि पर क्यों चढ़ते हो ?]

हाथी, घोड़े, बैल, ऊँट पर चढ़ने, मनुष्यों से मजदूरी कराने में पाप, जैनी लोग क्यों नहीं गिनते? जब तुम्हारे चेले ऊटपटांग बातों को सत्य नहीं कर सकते, तो तुम्हारे तीर्थंकर भी सत्य नहीं कर सकते।

[अत्यन्त मूर्च्छित जीवों को सुख-दुःख नहीं होता]

जब तुम कथा बाँचते हो, तब मार्ग में, श्रोताओं के और तुम्हारे मतानुसार, जीव मरते ही होंगे, इसलिये तुम इस पाप के मुख्य कारण क्यों होते हो? इस थोड़े कथन से बहुत समझ लेना कि उन जल, स्थल, वायु के स्थावर शरीरवाले अत्यन्त मूर्च्छित जीवों को दुःख वा सुख कभी नहीं पहुँच सकता।

[जैन तीर्थङ्करों का असम्भव शरीर वा आयु परिमाण]

अब जैनियों की और भी थोड़ी-सी असम्भव कथायें लिखते हैं, [उनको] सुनना चाहिये। और यह भी ध्यान में रखना कि अपने हाथ से **'साढ़े तीन हाथ'** का **'एक धनुष'** होता है और काल की संख्या जैसी पूर्व लिख आये हैं, वैसी ही समझना।

[मूल—] 'रत्नसार' भाग १, पृष्ठ १६६-१६७ तक में लिखा है—

(१) ऋषभदेव का शरीर ५०० (पाँच सौ) धनुष लम्बा और ८४००००० (चौरासी लाख) 'पूर्व वर्ष' का आयु।

(२) अजितनाथ का ४५० (साढ़े चार सौ) धनुष परिमाण का शरीर और ७२००००० (बहत्तर लाख) 'पूर्व वर्ष' का आयु।

(३) संभवनाथ का ४०० (चार सौ) धनुष परिमाण शरीर और ६००००००(साठ लाख) 'पूर्व वर्ष' का आयु।

(४) अभिनन्दन का ३५० (साढ़े तीन सौ) धनुष [परिणाम] का शरीर और ५०००००० (पचास लाख) 'पूर्व वर्ष' का आयु।

(५) सुमतिनाथ का ३०० (तीन सौ) धनुष परिमाण का शरीर और ४०००००० (चालीस लाख) 'पूर्व वर्ष' का आयु।

(६) पद्मप्रभ का १४० (एक सौ चालीस) धनुष [परिणाम] का शरीर और ३०००००० (तीस लाख) 'पूर्व वर्ष' का आयु।

(७) सुपार्श्वनाथ का २०० (दौ सौ) धनुष [परिणाम] का शरीर और २०००००० (वीस लाख) 'पूर्व वर्ष' का आयु।

(८) चन्द्रप्रभ का १५० (डेढ सौ) धनुष परिमाण का शरीर और १०००००० (दश लाख) 'पूर्व वर्ष' का आयु।

(९) सुविधिनाथ का १०० (एक सौ) धनुष [परिणाम] का शरीर और २००००० (दो लाख) 'पूर्व वर्ष' का आयु।

(१०) शीतलनाथ का ९० (नव्वे) धनुष [परिणाम] का शरीर और १००००० (एक लाख) 'पूर्व वर्ष' का आयु।

(११) श्रेयांसनाथ का ८० (अस्सी) धनुष [परिणाम] का शरीर और ८४००००० (चौरासी लाख) वर्षों का आयु।

(१२) वासुपूज्य स्वामी का ७० (सत्तर) धनुष [परिणाम] का शरीर और ७२००००० (बहत्तर लाख) वर्षों का आयु।

(१३) विमलनाथ का ६० (साठ) धनुष [परिणाम] का शरीर और ६०००००० (साठ लाख) वर्षों का आयु।

(१४) अनन्तनाथ का ५० (पचास) धनुष [परिणाम] का शरीर और ३०००००० (तीस लाख) वर्षों का आयु।

(१५) धर्मनाथ का ४५ (पैंतालीस) धनुष [परिणाम] का शरीर और १०००००० (दश लाख) वर्षों का आयु।

(१६) शान्तिनाथ का ४० (चालीस) धनुष [परिणाम] का शरीर और १००००० (एक लाख) वर्षों का आयु।

(१७) कुन्थुनाथ का ३५ (पैंतीस) धनुष [परिणाम] का शरीर और ९५००० (पच्चानवे सहस्र) वर्षों का आयु।

(१८) अमरनाथ का ३० (तीस) धनुष [परिणाम] का शरीर और ८४००० (चौरासी सहस्र) वर्षों का आयु।

(१९) मल्लीनाथ का २५ (पच्चीस) धनुष [परिणाम] का शरीर और ५५००० (पचपन सहस्र) वर्षों का आयु।

(२०) मुनि सुव्रत का २० (वीस) धनुष [परिणाम] का शरीर और ३०००० (तीस सहस्र) वर्षों का आयु।

(२१) नमिनाथ का १४ (चौदह) धनुष [परिणाम] का शरीर और १०००० (दशसहस्र) वर्षों का आयु।

(२२) नेमिनाथ का १० (दस) धनुष [परिणाम] का शरीर और १००० (एक सहस्र) वर्षों का आयु।

(२३) पार्श्वनाथ का ९ (नौ) हाथ [परिणाम] का शरीर और १०० (सौ) वर्षों का आयु।

(२४) महावीर स्वामी का ७ (सात) हाथ [परिणाम] का शरीर और ७२ (बहत्तर) वर्षों का आयु।

[इतनी लम्बी आयु और शरीर-परिमाण होना असम्भव है]

ये चौवीस तीर्थंकर जैनियों के मत चालनेवाले आचार्य और गुरु हैं, इन्हीं को जैनी लोग परमेश्वर मानते हैं और ये सब मोक्ष को गये हैं। इसमें बुद्धिमान् लोग विचार लेवें कि इतना बड़ा शरीर और इतना आयु मनुष्यदेह का होना कभी सम्भव है? इस भूगोल में [इतने बड़े परिणाम के] बहुत ही थोड़े मनुष्य वस सकते हैं। **इन्हीं जैनियों के गपोड़े लेकर जो पुराणियों ने एक लाख, दश सहस्र और एक सहस्र वर्षों का आयु लिखा, सो भी सम्भव नहीं हो सकता, तो जैनियों का कथन सम्भव कैसे हो सकता है?**

[जैनियों की कुछ अन्य असम्भव और निकृष्ट बातें]

[**मूल**—] अब और भी सुनो—**'कल्पभाष्य'** पृष्ठ ४—नागकेत ने ग्राम (=गांव) के बराबर एक शिला अंगुली पर धर ली!

'कल्पभाष्य' पृष्ठ ३५—महावीर ने अंगूठे से पृथिवी दबाई, उससे शेषनाग कांप गया॥२॥

'कल्पभाष्य' पृष्ठ ४६—महावीर को सर्प ने काटा, रुधिर के बदले दूध निकला, और वह सर्प ८वें स्वर्ग को गया॥३॥

'कल्पभाष्य' पृष्ठ ४७—महावीर के पगों पर खीर पकाई और पग न जले॥४॥

'कल्पभाष्य' पृष्ठ १६—छोटे से पात्र में ऊँट बुलाया॥५॥

'रत्नसार' भाग १, पृष्ठ १४—**शरीर के मैल को न उतारें और न खुजलावें॥६॥**

'विवेकसार' भाग १, पृष्ठ १५—जैनियों के एक दमसार साधु ने क्रोधित होकर उद्वेगजनक सूत्र पढ़कर एक शहर में आग लगा दी और [वह] महावीर तीर्थङ्कर का अतिप्रिय था॥७॥

'विवेकसार' भाग १, पृष्ठ १२७—राजा की आज्ञा अवश्य माननी चाहिये॥८॥

'विवेकसार' पृष्ठ २२७—एक कोशा वेश्या ने थाली में सरसों की ढेरी लगा, उसके ऊपर फूलों से ढकी हुई सुई खड़ी कर, उस पर अच्छे प्रकार नाच किया, परन्तु सुई पगों में गड़ने न पाई और सरसों की ढेरी बिखरी नहीं॥९॥

'तत्त्वविवेक' पृष्ठ २२८—इसी कोशा वेश्या के साथ एक स्थूलमुनि ने १२ वर्ष तक भोग किया और पश्चात् दीक्षा लेकर सद्गति को गया और कोशा वेश्या भी जैनधर्म को पालती हुई सद्गति को गई॥१०॥

'विवेकसार' भाग १, पृष्ठ १८४—एक सिद्ध की कन्था जो गले में पहनी जाती है, वह ५०० अशर्फियां एक वैश्य को नित्य देती रही॥११॥

'विवेकसार' भाग १, पृष्ठ २२८—बलवान् पुरुष की आज्ञा; देव की आज्ञा; घोर वन में कष्ट से निर्वाह; गुरु, माता, पिता, कुलाचार्य, ज्ञातीय लोग और धर्मोपदेष्टा इन छः के रोकने से, इन कारणों से यदि धर्म में न्यूनता हो तो धर्म की हानि नहीं होती॥१२॥

[पूर्वोक्त असम्भव और निकृष्ट बातों को आलोचना]

समीक्षक—अब देखिये इनकी मिथ्या बातें! एक मनुष्य ग्राम (=गांव) के बराबर पाषाण की शिला को अंगुली पर कभी धर सकता है?॥१॥

और पृथिवी के ऊपर अंगूठे से दाबने से पृथिवी कभी दब सकती है? और जब शेषनाग ही नहीं, तो कंपेगा कौन?॥२॥

भला, शरीर के काटने से दूध निकलना किसी ने कभी देखा है? यह सिवाय इन्द्रजाल के दूसरी बात नहीं॥ उसको काटनेवाला सर्प तो स्वर्ग में गया और महात्मा श्रीकृष्ण आदि तीसरे नरक को गये, यह कितनी मिथ्या बात है?॥३॥

जब महावीर के पगों पर खीर पकाई तब उसके पग जल क्यों न गये?॥४॥

भला, छोटे से पात्र में कभी ऊंट आ सकता है?॥५॥

जो शरीर का मैल नहीं उतारते और न खुजलाते होंगे, वे दुर्गन्धरूप महा-नरक भोगते होंगे॥६॥

जिस साधु ने नगर जलाया उसकी दया और क्षमा कहाँ गई? जब महावीर के संग से भी उसका आत्मा पवित्र न हुआ, तो अब महावीर के मरे पीछे, उसके आश्रय से जैन लोग कभी पवित्र न होंगे॥७॥

राजा की आज्ञा माननी चाहिये [यह तो ठीक है], परन्तु जैन लोग बनिये हैं, इसलिये राजा से डरकर यह बात लिख दी होगी॥८॥

कोशा वेश्या चाहे उसका शरीर कितना ही हल्का हो, तो भी सरसों की ढेरी पर सुई खड़ी करके उसके ऊपर नाचना, सुई से पगों का न छिदना और सरसों का न बिखरना, अतीव झूठ नहीं तो क्या है?॥९॥

इनको ऐसा महाझूठ लिखते-बोलते लज्जा भी नहीं आई कि श्रीकृष्ण आदि महात्मा नरक में गये और इनके रण्डीबाज भी स्वर्ग और मुक्ति को चले गये॥१०॥

भला, कन्था वस्त्र का होता है, वह नित्यप्रति ५०० अशर्फियां किस प्रकार दे सकता है?॥११॥

धर्म किसी को किसी अवस्था में भी न छोड़ना चाहिये, चाहे कुछ भी हो जाय।१२॥

अब ऐसी-ऐसी **'असम्भव कहानियां'** इनकी लिखें तो जैनियों के थोथे पोथों के सदृश बहुत बढ़ जायें, इसलिये अधिक नहीं लिखते। अर्थात् **इन जैनियों की थोड़ी-सी बातों को छोड़के शेष सब मिथ्या-जाल भरा है।** देखिये—

[जैनियों की भूगोल-खगोल सम्बन्धी मिथ्या बातें]

मूल— दो ससि दो रवि पढमे। दुगुणा लवणंमि धायई संडे॥

बारस ससि बारस रवि। तप्पभिइ निदिट्ठ ससिरविणो॥

तिगुणा पुव्विल्ल जुया। अणंतरा णंतरं मिखित्तंमि॥

कालो ए बायाला। बिसत्तरी पुरकर द्धंमि॥७८॥

प्रकरणरत्नाकर, भा० ४। संग्रहणी सूत्र ७७-७८॥

अर्थ—जो **जम्बूद्वीप** लाख योजन अर्थात् चार लाख कोश का [पौराणिक प्रमाण से तथा जैन-प्रमाण से एक अरब कोश] का लिखा है, उन द्वीपों में यह पहला द्वीप कहाता है। इसमें दो चन्द्र और दो सूर्य हैं और वैसे ही लवण समुद्र में उससे दुगुणे अर्थात् चार चन्द्रमा और चार सूर्य हैं तथा **धातकीखण्ड** में बारह चन्द्रमा और बारह सूर्य हैं॥७७॥

और इनको तिगुणा करने से छत्तीस होते हैं। उनके साथ दो **जम्बूद्वीप** के और चार लवण समुद्र के मिलकर बयालीस चन्द्रमा और बयालीस सूर्य **कालोदधि** समुद्र में हैं। इसी प्रकार अगले-अगले द्वीप और समुद्रों में

पूर्वोक्त बयालीस को तिगुणा करें तो एक सौ छब्बीस होते हैं। उनमें **धातकीखण्ड** के बारह, लवण समुद्र के चार और **जम्बूद्वीप** के दो इस रीति से मिला कर १४४ (एक सौ चवालीस) चन्द्र, १४४ (एक सौ चवालीस) सूर्य **पुष्करद्वीप** में हैं। यह भी आधे मनुष्यक्षेत्र की गणना है। परन्तु जहां मनुष्य नहीं रहते हैं, वहां बहुत से सूर्य और बहुत से चन्द्र हैं। और जो पिछले **अर्ध पुष्करद्वीप** में बहुत चन्द्र और बहुत सूर्य हैं, वे स्थिर हैं। पूर्वोक्त एक-सौ चवालीस को तिगुणा करने से ४३२ और उनमें पूर्वोक्त **जम्बूद्वीप** के दो चन्द्रमा, दो सूर्य, चार-चार **लवण समुद्र** के और बारह-बारह **धातकीखण्ड** के और बयालीस[-बयालीस] **कालोदधि** के मिलाने से ४९२ चन्द्रमा तथा ४९२ सूर्य **पुष्कर समुद्र** में हैं॥७८॥

ये सब बातें श्री जिनभद्रगणी क्षमा श्रमण ने बड़ी **'संघयणी'** में तथा **'योतीसकरण्डक पयन्ना'** मध्ये और **'चंदपन्नती'** तथा **'सूरपन्नती'** [आदि] प्रमुख सिद्धान्तग्रन्थों में इसी प्रकार कही हैं।

[पूर्वोक्त असम्भव सूर्यचन्द्र-संख्या की समीक्षा]

समीक्षक—अब सुनिये भूगोल-खगोल के जाननेवालो! इस एक भूगोल में एक प्रकार ४९२ (चार सौ बानवे) और दूसरी प्रकार से असंख्य चन्द्र और सूर्य जैनी लोग मानते हैं! आप लोगों का बड़ा भाग्य है कि वेदमतानुयायी **'सूर्य-सिद्धान्त'** आदि ज्योतिष ग्रन्थों के अध्ययन से ठीक-ठीक **भूगोल-खगोल** विदित हुए। **जो कहीं जैन के महा-अन्धेर मत में होते तो जन्मभर अन्धेर में रहते, जैसे कि जैनी लोग**

आजकाल हैं। इन अविद्वानों को यह शंका हुई कि **जम्बूद्वीप** में एक सूर्य और एक चन्द्र से काम नहीं चलता, क्योंकि तीस घड़ी में इतनी बड़ी पृथिवी के दूसरे भाग में चन्द्र-सूर्य कैसे आ सकें? **क्योंकि पृथिवी को ये लोग सूर्यादि से भी बड़ी और स्थिर मानते हैं, यही इनकी बड़ी भूल है।**

मूल—दो ससि दो रवि पंती, एगंतरिया छसट्ठि संखाया॥
मेरुं पयाहिणंता। माणुस खित्ते परिअडंति॥

प्रकरण०, भाग ४, संग्रहणी सूत्र ७९॥

अर्थ—मनुष्यलोक में चन्द्रमाओं और सूर्यों की पंक्तियों की संख्या करते हैं। दो चन्द्रमाओं और दो सूर्यों की पंक्तियां (श्रेणियां) हैं, वे एक-एक लाख-लाख योजन अर्थात् चार-चार लाख कोश [पौराणिक प्रमाण से तथा जैन-प्रमाण से एक-एक अरब कोश] के आन्तरे चलती हैं। जैसे एक सूर्यों की पंक्ति के आन्तरे एक पंक्ति चन्द्रमाओं की है, इसी प्रकार चन्द्रमाओं की पंक्ति के आन्तरे सूर्यों की पंक्ति है, इसी रीति से चार पंक्तियां हैं। वे एक-एक चन्द्र-पंक्ति में ६६ चन्द्रमा और एक-एक सूर्य की पंक्ति में ६६ सूर्य हैं। वे चारों पंक्तियां **जम्बूद्वीप** के मेरु पर्वत की प्रदक्षिणा करती हुई मनुष्यक्षेत्र में परिभ्रमण करती हैं। अर्थात् जिस समय **जम्बूद्वीप** के मेरु से एक सूर्य दक्षिण दिशा में विहरता है, उस समय दूसरा सूर्य उत्तर दिशा में फिरता है। वैसे ही **लवण समुद्र** की

एक-एक दिशा में दो-दो सूर्य चलते-फिरते है। **धातकीखण्ड** के ६, **कालोदधि** के २१, **पुष्करार्द्ध** के ३६, इस प्रकार सब मिलकर ६६ सूर्य दक्षिण दिशा और ६६ सूर्य उत्तर दिशा में अपने-अपने क्रम से फिरते हैं। और जब इन दोनों दिशाओं के सब सूर्य मिलाये जायें तो १३२ सूर्य, ऐसे ही छासठ-छासठ चन्द्रमाओं की दोनों दिशाओं की पंक्तियां मिलाई जायें, तो १३२ चन्द्रमा मनुष्यलोक में चाल चलते हैं। इसी प्रकार चन्द्रमा के साथ नक्षत्रादि की भी पंक्तियां बहुत-सी जाननी चाहियें॥७९॥

[१३२ सूर्य और १३२ चन्द्र बताना मूर्खता]

समीक्षक—अब देखो भाई! इस भूगोल में १३२ सूर्य और १३२ चन्द्रमा जैनियों के घर पर तपते होंगे! भला, जो तपते होंगे तो वे जीते कैसे हैं? और रात्रि में भी शीत के मारे जैनी लोग जकड़ जाते होंगे? ऐसी असम्भव बातों में भूगोल-खगोल के न जाननेवाले फसते हैं, अन्य नहीं। जब एक सूर्य इस भूगोल के सदृश, अन्य अनेक भूगोलों को प्रकाशता है तो इस छोटे-से भूगोल की क्या कथा कहनी? और जो पृथिवी न घूमे और सूर्य पृथिवी के चारों ओर घूमे तो कई वर्षों के दिन और रात होवें। **और सुमेरु विना हिमालय के दूसरा कोई भी नहीं।** यह सूर्य के सामने, एक घड़े के सामने तिल के बराबर भी नहीं है। इन बातों को जैनी लोग, जब तक उसी मत में रहेंगे, तब तक नहीं जान सकते, किन्तु सदा अन्धेर में रहेंगे।

[केवली का १४ राज्यलोकों में फिरना]

मूल— सम्मत्त चरण सहिया। सव्वं लोगं फुसे निरवसेसं।

सत्तय चउदसभाए। पंचय सुय देस विरईए॥

प्रकरण०, भाग ४, संग्रहणी सूत्र १३५॥

अर्थ—सम्यक् चरित्र सहित जो केवली हैं, वे केवल समुद्घात अवस्था से सर्व चौदह राज्य-लोक अपने आत्मप्रदेश करके फिरेंगे॥१३५॥

[केवली तीर्थङ्कर सर्वज्ञ सर्वव्यापक नहीं हो सकता]

समीक्षक—जैनी लोग १४ चौदह राज्य मानते हैं, उनमें से चौदहवें की शिखा पर सर्वार्थसिद्धि विमान की ध्वजा से ऊपर थोड़े दूर पर **'सिद्धशिला'** तथा दिव्य आकाश को **'शिवपुर'** कहते हैं। उसमें केवली अर्थात् जिनको केवलज्ञान, सर्वज्ञता, पूर्ण पवित्रता प्राप्त हुई है, वे उस लोक में जाते हैं और अपने आत्मप्रदेश से सर्वज्ञ रहते हैं। जिसका प्रदेश होता है वह विभु नहीं, जो विभु नहीं, वह केवलज्ञानी सर्वज्ञ कभी नहीं हो सकता, क्योंकि जिसका आत्मा एकदेशी है, वही आत्मा जाता-आता है और बद्ध-मुक्त, ज्ञानी-अज्ञानी होता है, सर्वव्यापी, सर्वज्ञ [जैसा कि परमात्मा है] वैसा कभी नहीं हो सकता। जो जैनियों के तीर्थंकर जीवरूप अल्प-अल्पज्ञ होकर स्थित थे, वे सर्वव्यापक-सर्वज्ञ कभी नहीं हो सकते। किन्तु जो परमात्मा अनादि, अनन्त, सर्वव्यापक, पवित्र, ज्ञानस्वरूप है, उसको जैनी लोग नहीं मानते कि जिसमें सर्वज्ञतादि गुण यथातथ्य घटते हैं।

[जैनियों का असम्भव आयु वा शरीर-परिमाण]

मूल— गब्भनर ति पलियाऊ। तिगाउ उक्कोस ते जहन्नेणं।

मुच्छिम दुहावि अंत मुहु। अंगुल असंख भागतणू॥

प्रकरण०, भाग ४, संग्रहणी २४१॥

अर्थ—यहाँ मनुष्य दो प्रकार के हैं, एक गर्भज, दूसरे जो गर्भ के विना उत्पन्न हुए। उनमें गर्भज मनुष्य का उत्कृष्ट तीन पल्योपम का आयु जानना और तीन कोश का शरीर॥२४१॥

[३ कोश का शरीर और लाखों वर्ष की आयु असम्भव]

समीक्षक—भला, तीन पल्योपम के आयुवाले और तीन कोश के शरीरवाले मनुष्य इस भूगोल में बहुत थोड़े ही समा सकें। और फिर तीन 'पल्योपम' कि जैसा पूर्व लिख आये हैं, उतने समय तक जीयें और वैसे ही उनके सन्तान भी तीन-तीन कोश के शरीरवाले हों तो वैसे मुम्बई में दो-एक और कलकत्ता में तीन वा चार मनुष्य ही निवास कर सकते हैं। जो ऐसा है, तो जैनियों ने एक नगर में लाखों मनुष्य लिखे हैं, तो उनके रहने का नगर भी लाखों कोशों का चाहिये, तो सब भूगोल में वैसा एक नगर भी न बस सके।

[जैन सिद्धशिला का असम्भव वर्णन]

मूल— पणयाल लरकजोयण। विरकंभा सिद्धिसिल फलिह विमला। तदुवरि गजोयणंते। लोगंतो तच्छ सिद्धठिई॥२५८॥

[प्रकरण०, भाग ४, संग्रहणी सू० २५८]

अर्थ—जो सर्वार्थसिद्धि विमान की ध्वजा से १२ योजन ऊपर **सिद्धशिला** है, वह वाटला और लम्बेपन और पोलपन में ४५ पैंतालीस लाख योजन प्रमाण की है। वह सब धवलार्जुन सुवर्णमय स्फटिक के समान निर्मल **'सिद्धशिला'** की सिद्धभूमि है। इसका कोई **'ईषत् प्राग्भारा'** ऐसा नाम भी कहते हैं। यह **'सर्वार्थ-सिद्धशिला'** विमान से १२ योजन अलोक भी है। यह परमार्थ केवली बहुश्रुत जानता है। यह सिद्धशिला सर्वथा मध्य

भाग में ८ योजन स्थूल है। वहाँ से ४ दिशाओं और ४ उपदिशाओं में घटती-घटती मक्खी की पाँख के सदृश पतली उत्तानछत्र और आकार करके सिद्धशिला की स्थापना है, उस शिला से ऊपर १ (एक) योजन के आन्तरे लोकान्त है, वहाँ सिद्धों की स्थिति अर्थात् निवास होता है॥२५८॥

[सिद्धशिला-स्थित जीव एक प्रकार से बद्ध ही हैं]

समीक्षक—अब विचारना चाहिये कि जैनियों की मुक्ति का स्थान सर्वार्थसिद्धि विमान की ध्वजा के ऊपर पैंतालीस लाख योजन की शिला अर्थात् चाहे ऐसी अच्छी और निर्मल हो तथापि उसमें रहनेवाले मुक्त जीव एक प्रकार के बद्ध हैं, क्योंकि उस शिला से बाहर निकलने से मुक्ति के सुख से छूट जाते होंगे। और जो भीतर रहते होंगे तो उनको वायु भी न लगता होगा। यह केवल कल्पनामात्र [है और] अविद्वानों को फसाने के लिए भ्रमजाल है।

[कीड़े मकौड़े आदि के असम्भव शरीर परिमाण]

मूल— जोयण सहस्स महियं। एगिंदियदेह मुक्कोसं॥

बि ति चउरिंदिय सरीरं। बारस जोयणं तिकोस चउकोसं।

जोयण सहस पणिंदिय। उहे वुच्छं विसेसंतु॥

प्रकरण०, भाग ४, संग्रहणी सू० २६६-२६७॥

अर्थ—सामान्यपन से एकेन्द्रिय का शरीर १ सहस्र योजन के शरीरवाला उत्कृष्ट जानना॥२६६॥

और दो इन्द्रियवाले शंखादि का शरीर १२ योजन का जानना। वैसे ही कीड़ी-मकोड़ा आदि तीन इन्द्रियवालों का ३ तीन कोश का जानना। और चतुरिन्द्रिय भ्रमरादि का शरीर ४ कोश का और पञ्चेन्द्रिय एक सहस्र योजन अर्थात् चार सहस्र कोश के [पौराणिक प्रमाण से तथा जैन-प्रमाण से एक करोड़ कोश] के शरीरवाले जानना॥२६६-२६७॥

[फिर तो सैकड़ों मनुष्यों से ही सारा भूगोल भर जाये]

समीक्षक—चार-चार सहस्र कोश के [पौराणिक प्रमाण से तथा जैन-प्रमाण से एक-एक करोड़ कोश] के प्रमाणवाले शरीरवाले हों तो भूगोल में तो बहुत थोड़े मनुष्य रह पायें अर्थात् सैकड़ों मनुष्यों से भूगोल [ठसा-] ठस भर जाय, किसी को चलने की जगह भी न रहे। फिर वे जैनियों से रहने का ठिकाना और मार्ग पूछें, जो इन्होंने लिखा है, और अपने घर में रख लें!!

[ऐसे लोगों के लिये गृह-निर्माण कार्य कैसे होगा ?]

परन्तु चार सहस्र कोश [अर्थात् जैन-प्रमाण से एक करोड़ कोश] के शरीरवाले को निवासार्थ कोई एक के लिए ३२ सहस्र कोश [पौराणिक प्रमाण से तथा जैन-प्रमाण से आठ करोड़ कोश] का घर तो चाहिये। ऐसे एक घर के बनाने में जैनियों का सब धन चुक जाय, तो भी घर न बन सके। इतने बड़े [घर की] आठ सहस्र कोश [पौराणिक प्रमाण से तथा जैन-प्रमाण से दो करोड़ कोश] की छत बनाने के लिए लट्ठे कहाँ से लावेंगे? और जो उसमें खंभे लगावें तो वह भीतर प्रवेश भी नहीं कर सकता। इसलिये ऐसी बातें मिथ्या हुआ करती हैं।

[असम्भव काल-परिमाण]

मूल— ते थूला पल्ले विहु। संखिज्जाचेवहुंति सव्वेवि।

ते इक्किक्क असंखे। सुहुमे खंडे पकप्पेह॥

प्रकरण०, भाग ४। लघुक्षेत्रसमास प्रकरण, सूत्र ४॥

अर्थ—पूर्वोक्त एक अंगुल लोम के खण्डों से ४ कोश का चौरस और उतना ही गहिरा कुआ हो, अंगुल प्रमाण लोम का खण्ड सब मिलके दो लाख उनतीस सहस्र तीन सौ छिहत्तर होते हैं और अधिक से अधिक (३३०७६२१०४, २४६५६२५, ४२१९९६०, ९७५३६००, ००००००००) तैंतीस करोड़-करोड़ी, सात लाख बासठ हजार एक सौ चार करोड़-करोड़ी, चौवीस लाख पैंसठ हजार छः सौ पच्चीस इतने करोड़-करोड़ी तथा बयालीस लाख उन्नीस हज़ार नौ सौ साठ इतनी करोड़-करोड़ी तथा सत्तानवे लाख त्रेपन हजार और छः सौ करोड़-करोड़ी, इतनी वाटला घन योजन पल्योपम में सर्व स्थूल रोम खण्ड की संख्या होवे, यह भी संख्यातकाल होता है। पूर्वोक्त एक लोम खण्ड के असंख्यात खंड मन में कल्पे तब असंख्यात सूक्ष्म रोमाणु होवें॥४॥

[जैनियों को गिनती का विचित्र ढंग]

समीक्षक—अब देखिये इनकी गिनती की रीति! एक अंगुल प्रमाण लोम के कितने खंड किये! यह कभी किसी की गिनती में आ सकते हैं? और उसके उपरान्त मन से असंख्य खंड कल्पते हैं। इससे पूर्वोक्त खंड जैनियों ने हाथों से किये होंगे! जब हाथ से न हो सके तब मन से किये। भला,

यह बात कभी सम्भव हो सकती है कि एक अंगुल रोम के असंख्य खण्ड हो सकें!!

[जम्बूद्वीप आदि का जैनप्रोक्त असंभव वर्णन]

मूल— जंबूद्दीव पमाणं गुलजोयण लरक वट्ट विरकंभो।

लवणाई यासेसा। वलयाभा दुगुण दुगुणाय॥१२॥

प्रकरण०, भाग ४, लघुक्षेत्रस० १२॥

[अर्थ—] प्रथम **जम्बूद्वीप** का लाख योजन का प्रमाण और पोला है। और बाकी लवणादि सात समुद्र तथा सात द्वीप, जम्बूद्वीप के प्रमाण से दुगुणे-दुगुणे हैं। इस एक पृथिवी में जम्बूद्वीपादि सात द्वीप और सात समुद्र हैं, जैसा कि पूर्व लिख आये हैं॥१२॥

[इस भूगोल में ये जैनियों के जम्बूद्वीपादि कैसे समा सकते हैं ?]

समीक्षक—अब **जम्बूद्वीप** से दूसरा द्वीप दो लाख योजन, तीसरा चार लाख योजन, चौथा आठ लाख योजन, पाँचवाँ सोलह लाख योजन, छठा बत्तीस लाख योजन और सातवाँ चौसठ लाख योजन और उतने प्रमाण वा उनसे अधिक समुद्र के प्रमाण से इस पन्द्रह सहस्र कोश परिधिवाले भूगोल में क्योंकर समा सकते हैं? इससे यह बात केवल मिथ्या है।

[कुरुक्षेत्र में ८४ सहस्र नदियाँ बताना मूर्खता]

मूल— कुरु नइ चुलसी सहसा। छच्चेवंतर नईउ पइ विजयं।

दो दो महा नईउ। चउ दस सहसाउ पत्तेयं॥६३॥

प्रकरण०, भाग ४, लघुक्षेत्रस०, सूत्र ६३॥

[अर्थ—] **कुरुक्षेत्र** में चौरासी सहस्र नदियां हैं॥६३॥

समीक्षक—भला, **कुरुक्षेत्र** बहुत छोटा देश है, उसको न देखकर एक मिथ्या बात लिखने में इनको लज्जा भी न आई।

[तीर्थङ्करों के बैठने के लिए सिंहासन]

मूल—जामुत्तराउ ताउ। इगेग सिंहासणाउ अइपुव्वं।

चउसुवि तास नियासण, दिसिभवजिणमज्जणं होइ॥

प्रकरण०, भाग० ४, लघुक्षेत्रस०, सूत्र ११९॥

उस शिला के विशेषतः दक्षिण और उत्तर दिशा में एक-एक सिंहासन जानना चाहिये। उन शिलाओं के नाम दक्षिण दिशा में **'अति-पाण्डु-कम्बला'**, उत्तर दिशा में **'अति-रक्त-कम्बला'** शिला है। उन सिंहासनों पर तीर्थङ्कर बैठते हैं॥११९॥

समीक्षक—देखिये इनके तीर्थङ्करों के जन्मोत्सवादि करने की शिला को! ऐसी ही मुक्ति की **'सिद्धशिला'** है। ऐसी इनकी बातें गोलमाल-पोलपाल बहुत-सी हैं, कहाँ तक लिखें?

किन्तु **जल छान के पीना, और सूक्ष्म जीवों पर नाममात्र दया करना, रात्रि को भोजन न करना, ये तीन बातें अच्छी हैं।** बाकी जितना इनका कथन है सब असम्भव-ग्रस्त है।

इतने ही लेख से बुद्धिमान् लोग बहुत-सा जान लेंगे, यह थोड़ा-सा दृष्टान्तमात्र लिखा है। जो इनकी असम्भव सब बातें लिखें तो इतने पुस्तक हो जायें कि एक पुरुष आयुभर में भी पाठ न कर सके।इसलिये [जैसे] एक हण्डे में चुड़ते चावलों में से एक चावल की परीक्षा से कच्चे वा पक्के हैं, सब चावल विदित हो जाते हैं। ऐसे ही इस थोड़े-से लेख से सज्जन लोग बहुत-सी बातें समझ लेंगे। बुद्धिमानों के सामने बहुत लिखना आवश्यक नहीं, क्योंकि दिग्दर्शनवत् सम्पूर्ण आशय को बुद्धिमान् लोग जान ही लेते हैं।

इसके आगे ईसाइयों के मत के विषय में लिखा जायगा।

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिनिर्मिते सत्यार्थप्रकाशे सुभाषाविभूषिते नास्तिकमतान्तर्गतचार्वाक-बौद्धजैनमतखण्डनमण्डनविषये द्वादशः समुल्लासः सम्पूर्णः॥१२॥

ओ३म्

अनुभूमिका (३)

जो यह **'बाइबल'** का मत है, वह केवल **'ईसाइयों'** का है सो नहीं, किन्तु **इससे यहूदी आदि भी गृहीत होते हैं।** जो यहाँ (१३) तेरहवें समुल्लास में ईसाई मत के विषय में लिखा है, इसका यही अभिप्राय है कि आजकल **'बाइबल'** के मत में **'ईसाई'** मुख्य हो रहे हैं और **'यहूदी'** आदि गौण हैं। मुख्य के ग्रहण से गौण का ग्रहण हो जाता है, **इससे यहूदियों का भी ग्रहण समझ लीजिये।**

इनका जो विषय यहां लिखा है सो केवल **'बाइबल'** में से [है] कि जिसको ईसाई और यहूदी आदि सब मानते हैं और इसी पुस्तक को अपने धर्म का मूलकारण समझते हैं। **इस पुस्तक के भाषान्तर बहुत-से हुए हैं, जो कि इनके मत में बड़े-बड़े पादरी हैं, उन्हीं ने किये हैं। उनमें से देवनागरी व संस्कृत भाषान्तर देखकर मुझको 'बाइबल' में बहुत-सी शङ्कायें हुई हैं, उनमें से कुछ थोड़ी-सी इस १३ तेरहवें समुल्लास में सबके विचारार्थ लिखी हैं। यह लेख केवल सत्य की वृद्धि और असत्य के ह्रास होने के लिये है, न कि किसी को दुःख देने वा हानि करने अथवा मिथ्या दोष लगाने के अर्थ है।** इसका अभिप्राय उत्तर-लेख में सब कोई समझ लेंगे कि यह पुस्तक कैसा है और इनका मत भी कैसा है?

इस लेख से यही प्रयोजन है कि सब मनुष्यमात्र को देखना, सुनना, लिखना आदि करना सहज होगा और पक्षी-प्रतिपक्षी होके विचारकर ईसाई मत का आन्दोलन सब कोई कर सकेंगे। **इससे एक यह प्रयोजन सिद्ध होगा कि मनुष्यों को धर्मविषयक ज्ञान बढ़कर यथायोग्य सत्यासत्य मत और कर्त्तव्याकर्त्तव्य कर्मसम्बन्धी विषय विदित होकर सत्य और कर्त्तव्य कर्म का स्वीकार, असत्य और अकर्त्तव्य कर्म का परित्याग करना सहजता से हो सकेगा।**

सब मनुष्यों को उचित है कि सबके मतविषयक पुस्तकों को देख-समझकर कुछ सम्मति वा असम्मति देवें वा लिखें, नहीं तो सुना करें; **क्योंकि जैसे पढ़ने से 'पण्डित' होता है, वैसे सुनने से 'बहुश्रुत' होता है।** यदि श्रोता दूसरे को नहीं समझा सके, तथापि आप स्वयं तो समझ ही जाता है। **जो कोई पक्षपातरूप यानारूढ़ होके देखते हैं, उनको न अपने, न पराये गुण-दोष विदित हो सकते हैं।**

मनुष्य का आत्मा सत्यासत्य का यथायोग्य निर्णय करने का सामर्थ्य रखता है। जितना अपना पठित वा श्रुत है, उतना निश्चय कर सकता है। यदि एक मत-वाले दूसरे मत-वालों के विषयों को जानें और अन्य न जानें तो यथावत् संवाद नहीं हो सकता, किन्तु अज्ञानी किसी भ्रमरूप बाड़े में घिर जाते हैं। ऐसा न हो, इसलिए इस ग्रंथ में प्रचरित सब मतों का विषय थोड़ा-थोड़ा लिखा है। इतने से ही शेष विषयों में अनुमान कर सकता है कि वे सच्चे हैं वा झूठे?

जो-जो सर्वमान्य सत्य विषय हैं वे तो सबमें एक-से हैं, झगड़ा झूठे विषयों में होता है। अथवा एक सच्चा और दूसरा झूठा हो, तो भी कुछ थोड़ा-सा विवाद चलता है। यदि वादी-प्रतिवादी सत्यासत्य निश्चय के लिये वाद-प्रतिवाद करें, तो अवश्य निश्चय हो जाय।

अब मैं इस १३वें समुल्लास में ईसाईमत विषयक थोड़ा-सा लिखकर सबके सम्मुख स्थापित करता हूँ, विचारिये कि कैसा है?

अलमतिलेखेन विचक्षणवरेषु॥

अथ त्रयोदशसमुल्लासारम्भः

अथ कृश्चीनाख्यमतविषयं व्याख्यास्यामः

अब इसके आगे ईसाइयों के मत-विषय में लिखते हैं, जिससे सबको विदित हो जायगा कि इनका मत निर्दोष और इनकी **'बाइबल'** पुस्तक ईश्वरकृत है वा नहीं? प्रथम **'बाइबल'** के **'तौरेत'** का विषय लिखा जायगा। उसमें से प्रथम **'उत्पत्ति'** के विषय में कुछ-कुछ विषय दिखलाया जाता है—

[ईसाई मतानुसार आकाश और पृथिवी की रचना]

मूल—१. आरंभ में ईश्वर ने आकाश और पृथिवी को सृजा।१। और पृथिवी बेडौल और सूनी थी और गहिराव पर अंधियारा था और ईश्वर का आत्मा जल पर डोलता था।२।

[इलाहबाद मिशन प्रेस से सन् १८६६ में मुद्रित, पुराने नियम का पहला भाग अर्थात् तौरेत की पुस्तक 'उत्पत्ति']

[उत्पत्ति], पर्व १। आयत १।२॥

[बाइबल के सृष्टि-सम्बन्धी मत की आलोचना]

समीक्षक—आरम्भ किसको कहते हो?

ईसाई—सृष्टि के प्रथमोत्पत्ति को।

समीक्षक—क्या यही सृष्टि प्रथम हुई, इसके पूर्व कभी नहीं हुई थी?

ईसाई—हम नहीं जानते हुई थी वा नहीं, ईश्वर जाने।

समीक्षक—जब नहीं जानते तो तुमने इस पुस्तक पर विश्वास क्यों किया कि जिससे सन्देह का निवारण नहीं हो सकता? और इसी के भरोसे लोगों को उपदेश कर इस सन्देह से भरे हुये मत में क्यों फसाते हो? और निःसन्देह सर्वशङ्कानिवारक वेदमत का स्वीकार क्यों नहीं करते? **जब तुम ईश्वर की सृष्टि का हाल नहीं जानते, तो ईश्वर को कैसे जानते होगे?**

आकाश किसको मानते हो?

ईसाई—पोल और ऊपर को।

[जब आकाश नहीं सृजा था, तब ईश्वरादि कहाँ रहते थे ?]

समीक्षक—पोल की उत्पत्ति किस प्रकार हुई? क्योंकि यह पदार्थ विभु और अति सूक्ष्म है और ऊपर-नीचे एक-सा है। जब आकाश नहीं सृजा था तब पोल और अवकाश था वा नहीं? जो नहीं था तो ईश्वर, जगत् का कारण और जीव कहाँ रहते थे? विना अवकाश के कोई पदार्थ स्थित नहीं हो सकता, इसलिये तुम्हारी **'बाइबल'** का कथन युक्त नहीं।

[ईश्वर की सृष्टि को बेडौल बताना भूल है]

ईश्वर बेडौल [और] उसके ज्ञान, कर्म=कार्य **'बेडौल'** होते हैं वा सब डौलवाले?

ईसाई—सब डौलवाले होते है।

समीक्षक—तो यहाँ ईश्वर की बनाई पृथिवी "**बेडौल थी",** ऐसा क्यों लिखा?

ईसाई—'बेडौल' का अर्थ यह है कि ऊँची-नीची थी, बराबर नहीं थी।

समीक्षक—फिर बराबर किसने की? और क्या अब भी ऊँची-नीची नहीं है? इसलिये ईश्वर का काम बेडौल नहीं हो सकता, क्योंकि वह सर्वज्ञ है। उसके काम में भूल-चूक कभी नहीं होती है। और **'बाइबल'** में ईश्वर की सृष्टि बेडौल लिखी [है], इसलिये यह पुस्तक ईश्वरकृत नहीं हो सकता।

[व्यापक ईश्वर सनाई पर्वत वा चौथे आसमान पर कैसे ?]

प्रश्न—'ईश्वर का आत्मा' क्या पदार्थ है?

ईसाई—चेतन।

समीक्षक—वह साकार है वा निराकार तथा व्यापक है वा एकदेशी?

ईसाई—निराकार, चेतन और व्यापक है, परन्तु किसी एक **'सनाई पर्वत', 'चौथा आसमान'** आदि स्थानों में विशेष करके रहता है।

[सर्वव्यापक ईश्वर का जल पर डोलना नहीं हो सकता]

समीक्षक—जो निराकार है तो उसको किसने देखा? और व्यापक का जल पर डोलना कभी नहीं हो सकता। भला, जब ईश्वर का आत्मा जल पर डोलता था, तब ईश्वर कहाँ था? इससे यही सिद्ध होता है कि ईश्वर का शरीर कहीं अन्यत्र स्थित होगा अथवा अपने आत्मा के कुछ-एक टुकड़े को जल पर डोलाया होगा। जो ऐसा है तो विभु और सर्वज्ञ कभी नहीं हो सकता। जो विभु नहीं तो जगत् की रचना, धारण, पालन और जीवों के कर्मों की व्यवस्था वा प्रलय कभी नहीं कर सकता; क्योंकि **जिस पदार्थ का स्वरूप एकदेशी है उसके गुण, कर्म, स्वभाव भी एकदेशी होते हैं, जो ऐसा है, तो वह ईश्वर नहीं हो सकता; क्योंकि ईश्वर सर्वव्यापक, अनन्त गुण-कर्म-स्वभावयुक्त, सच्चिदानन्दस्वरूप, नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्त-स्वभाव, अनादि, अनन्तादि लक्षणयुक्त वेदों में कहा है, उसी को मानो तभी तुम्हारा कल्याण होगा, अन्यथा नहीं॥१॥**

[ईसाई मतानुसार सूर्यादि की उत्पत्ति]

२. और ईश्वर ने कहा कि उजियाला होवे और उजियाला हो गया।३। और ईश्वर ने उजियाले को देखा कि अच्छा है....।४।

[तौरेत, उत्पत्ति], पर्व १। आ० ३। ४॥

[जड़ उजियाले ने ईश्वर की बात कैसे सुनली ?]

समीक्षक—क्या ईश्वर की बात जड़स्वरूप उजियाले ने सुन ली? जो सुनी हो, तो इस समय भी सूर्य और दीप-अग्नि का प्रकाश हमारी-तुम्हारी

बात क्यों नहीं सुनता? प्रकाश जड़ होता है, वह कभी किसी की बात नहीं सुन सकता। क्या जब ईश्वर ने उजियाले को देखा तभी जाना कि उजियाला अच्छा है? पहले नहीं जानता था? जो जानता होता, तो देखकर अच्छा क्यों कहता? जो नहीं जानता था, तो वह ईश्वर ही नहीं। इसीलिये तुम्हारी 'बाइबल' ईश्वरोक्त और उसमें कहा हुआ ईश्वर सर्वज्ञ नहीं है॥२॥

[पानियों के मध्य आकाश बनाकर उन्हें विभक्त करना]

३. और ईश्वर ने कहा कि पानियों के मध्य में आकाश होवे और पानियों को पानियों से विभाग करे।६। तब ईश्वर ने आकाश को बनाया और आकाश के नीचे के पानियों को आकाश के ऊपर के पानियों से विभाग किया और ऐसा हो गया।७। और ईश्वर ने आकाश को स्वर्ग कहा और सांझ और बिहान दूसरा दिन हुआ।८।

[तौरेत, उत्पत्ति], पर्व १। आ० ६। ७। ८॥

[विना आकाश के जल कहाँ और कैसे रहा ?]

समीक्षक—क्या आकाश और जल ने भी ईश्वर की बात सुन ली? और जो जल के बीच में आकाश न होता तो जल रहता ही कहाँ? प्रथम आयत में "आकाश को सृजा था", [यह लिखा है], पुनः आकाश का बनाना व्यर्थ हुआ।

[आकाश सर्वव्यापक है, फिर स्वर्ग ऊपर कैसे ?]

जो आकाश को स्वर्ग कहा, तो वह सर्वव्यापक है, इसलिये सर्वत्र स्वर्ग हुआ। फिर ऊपर को स्वर्ग है, यह कहना व्यर्थ है। जब सूर्य

उत्पन्न ही नहीं हुआ था, तो पुनः दिन और रात कहां से हो गये? ऐसी ही असम्भव बातें आगे की आयतों में भरी हैं॥३॥

[आदम की ईश्वर के स्वरूप में उत्पत्ति]

४. तब ईश्वर ने कहा कि हम आदम को अपने स्वरूप में अपने समान बनावें....।२६। तब ईश्वर ने आदम को अपने स्वरूप में उत्पन्न किया, उसने उसे ईश्वर के स्वरूप में उत्पन्न किया, उसने उन्हें नर और नारी बनाया।२७। और ईश्वर ने उन्हें आशीष दिया....।२८।

[तौरेत, उत्पत्ति], पर्व० १। आ० २६। २७। २८॥

[ईश्वर से उत्पत्ति हुई, तो आदम ईश्वर-सदृश क्यों न हुआ ?]

समीक्षक—यदि आदम को ईश्वर ने अपने स्वरूप में बनाया तो ईश्वर का स्वरूप पवित्र, ज्ञानस्वरूप, आनन्दमय आदि लक्षणयुक्त है, उसके सदृश आदम क्यों नहीं हुआ? जो नहीं हुआ, तो उसके स्वरूप में नहीं बना। और आदम को उत्पन्न किया तो ईश्वर ने अपने स्वरूप को ही उत्पत्तिवाला किया, पुनः वह अनित्य क्यों नहीं?

[ईसाई मतानुसार ईश्वर के विना कोई वस्तु न था]

और आदम को उत्पन्न कहाँ से किया?

ईसाई—मिट्टी से बनाया।

समीक्षक—मिट्टी कहां से बनाई?

ईसाई—अपनी कुदरत अर्थात् सामर्थ्य से।

समीक्षक—ईश्वर का सामर्थ्य अनादि है वा नवीन?

ईसाई—अनादि है।

समीक्षक—जब अनादि है तो जगत् का कारण सनातन हुआ, फिर अभाव से भाव क्यों मानते हो?

ईसाई—सृष्टि के पूर्व ईश्वर के विना कोई वस्तु नहीं था।

[जगत् का कारण कुछ नहीं था, तो सृष्टि कहाँ से बनी ?]

समीक्षक—जो नहीं था तो यह जगत् कहाँ से बना? और ईश्वर का सामर्थ्य द्रव्य है वा गुण? जो द्रव्य है तो ईश्वर से भिन्न दूसरा पदार्थ था, और जो गुण है तो गुण से द्रव्य कभी नहीं बन सकता, जैसे रूप से अग्नि और रस से जल नहीं बन सकता। और जो ईश्वर से जगत् बना होता तो ईश्वर के सदृश गुण-कर्म-स्वभाववाला होता। उसके गुण-कर्म-स्वभाव के सदृश न होने से यही निश्चय है कि ईश्वर से नहीं बना, किन्तु 'जगत् के कारण' अर्थात् 'परमाणु' आदि नामवाले जड़ से बना है।

जैसी जगत् की उत्पत्ति वेदादि शास्त्रों में लिखी है, वैसी ही मान लो, जिससे ईश्वर जगत् को बनाता है। जो **आदम** के भीतर का स्वरूप जीव और बाहर का मनुष्य के सदृश है तो वैसा ईश्वर का स्वरूप क्यों नहीं? क्योंकि **जब आदम ईश्वर के सदृश बना तो ईश्वर आदम के सदृश अवश्य होना चाहिये॥४॥**

[आदम को बनाकर अदन के बाग में रखा]

५. तब परमेश्वर ईश्वर ने भूमि की धूली से आदम को बनाया और उसके नथुनों में जीवन का श्वास फूंका और आदम जीवता प्राणी हुआ।७। और परमेश्वर ईश्वर ने अदन * में पूर्व की ओर एक बाड़ी लगाई और उस आदम को जिसे उसने पहले बनाया था, उसमें रक्खा।८। और उस बाड़ी के मध्य में जीवन का पेड़ और भले-बुरे के ज्ञान का पेड़ भूमि से उगाया।९।

तौरेत उत्पत्ति की पुस्तक, पर्व २। आ० ७। ८। ९॥

[आदम को धूल से बनाया, तो वह ईश्वर का स्वरूप नहीं था]

समीक्षक—जब ईश्वर ने अदन में बाड़ी बनाकर उसमें आदम को रक्खा तब ईश्वर नहीं जानता था कि इसको वहां से पुनः निकालना पड़ेगा? और जब ईश्वर ने आदम को धूली से बनाया तो ईश्वर का स्वरूप नहीं हुआ, और जो है तो ईश्वर भी धूली से बना होगा? जब उसके नथुनों में ईश्वर ने श्वास फूंका तो वह श्वास ईश्वर का स्वरूप था वा भिन्न? जो भिन्न था, तो आदम ईश्वर के स्वरूप में नहीं बना। जो एक है, तो आदम और ईश्वर एक-से हुए। और जो एक-से हैं, तो आदम के सदृश जन्म-मरण, वृद्धि-क्षय, क्षुधा-तृषा आदि दोष ईश्वर में आये; फिर वह ईश्वर क्योंकर हो सकता है? इसलिये यह **'तौरेत'** की बात ठीक नहीं विदित होती, और यह पुस्तक भी ईश्वरकृत नहीं है॥५॥

---

* **अदन**—इस विषयक मत है कि **'अदन'** संस्कृत **'उद्यान'** का अपभ्रंश है। दोनों का भाव एक है और ध्वनिसाम्य भी है।

[आदम की पसली से नारी की रचना]

६. और परमेश्वर ईश्वर ने आदम को बड़ी नींद में डाला और वह सो गया। तब उसने उसकी पसलियों में से एक पसली निकाली और उसकी संति मांस भर दिया।२१। और परमेश्वर ईश्वर ने आदम की उस पसली से एक नारी बनाई और उसे आदम पास लाया।२२।

[तौरेत उत्पत्ति] पर्व २॥ आ० २१। २२॥

[स्त्री को धूली से न बनाकर, हड्डी से क्यों बनाया ?]

समीक्षक—जो ईश्वर ने आदम को धूली से बनाया तो उसकी स्त्री को धूली से क्यों नहीं बनाया? और जो नारी को हड्डी से बनाया तो आदम को हड्डी से क्यों नहीं बनाया? और जैसे नर से निकलने से नारी नाम हुआ तो नारी से निकलकर नर भी होना चाहिये। और उनमें परस्पर प्रेम भी रहै, **जैसे स्त्री के साथ पुरुष प्रेम करे वैसे ही स्त्री भी पुरुष के साथ प्रेम करे।**

[पसली से नारी बनी, तो मनुष्यों में एक पसली कम क्यों नहीं ?]

देखो विद्वान् लोगो! ईश्वर की कैसी **पदार्थविद्या** अर्थात् **'फिलासफ़ी'** चलकती है! जो आदम की एक पसली निकालकर नारी बनाई तो सब मनुष्यों की एक पसली कम क्यों नहीं होती? और स्त्री के शरीर में एक ही पसली होनी चाहिये, क्योंकि वह एक पसली से बनी है। क्या जिस सामग्री से सब जगत् बनाया, उस सामग्री से स्त्री का शरीर नहीं बन सकता था ? इसलिये यह **'बाइबल' का सृष्टिक्रम सृष्टिविद्या से विरुद्ध है**॥६॥

[शैतान ने आदम और उसकी स्त्री को बहकाया; तीनों को शाप]

७. अब सर्प भूमि के हर एक पशु से, जिसे परमेश्वर ईश्वर ने बनाया था, धूर्त था। और उसने स्त्री से कहा, "क्या निश्चय ईश्वर ने कहा है कि तुम इस बाड़ी के हर एक पेड़ से न खाना?।१।" और स्त्री ने सर्प से कहा कि "हम तो इस बाड़ी के पेड़ों का फल खाते हैं।२। परन्तु उस पेड़ का फल जो बाड़ी के बीच में है, ईश्वर ने कहा है कि तुम उससे न खाना और न छूना, न हो कि मर जाओ।३।" तब सर्प ने स्त्री से कहा कि "तुम निश्चय न मरोगे।४। क्योंकि ईश्वर जानता है कि जिस दिन तुम उससे खाओगे, तुम्हारी आँखें खुल जायेंगी और तुम भले और बुरे की पहचान में ईश्वर के समान हो जाओगे।५।" और जब स्त्री ने देखा वह पेड़ खाने में सुस्वाद और दृष्टि में सुन्दर और बुद्धि देने के योग्य है तो उसके फल में से लिया और खाया और अपने पति को भी दिया और उसने खाया।६। तब उन दोनों की आँखें खुल गईं और वे जान गये कि हम नंगे हैं। सो उन्होंने गूलर के पत्तों को मिलाके सीआ और अपने लिये ओढ़ना बनाया।७।

तब परमेश्वर ईश्वर ने सर्प से कहा कि "जो तूने यह किया है, इस कारण तू सारे ढोर और हर एक वन के पशुन से अधिक शापित होगा, तू अपने पेट के बल चलेगा और अपने जीवनभर धूल खाया करेगा।१४। और मैं तुझमें और स्त्री में और तेरे वंश और उसके वंश में बैर डालूंगा। वह तेरे शिर को कुचलेगा और तू उसकी एड़ी को काटेगा।१५।" और उसने स्त्री को कहा कि "मैं तेरी पीड़ा और

गर्भधारण को बहुत बढ़ाऊँगा। तू पीड़ा से बालक जनेगी और तेरी इच्छा तेरे पति पर होगी और वह तुझपर प्रभुता करेगा।१६।" और उसने आदम से कहा कि "तूने जो अपनी पत्नी का शब्द माना है और जिस पेड़ का फल मैंने तुझे खाने से वर्जा था, तूने खाया है; इस कारण भूमि तेरे लिये शापित है। अपने जीवनभर तू उससे पीड़ा के साथ खायेगा।१७। और वह काँटे और ऊँटकटारे तेरे लिये उगायेगी और तू खेत का साग-पात खायेगा।१८।"

तौरेत, उत्पत्ति, पर्व० ३। आ० १। २। ३। ४। ५। ६। ७। १४। १५। १६। १७। १८॥

[विना पूर्व अपराध के शैतान को दुष्ट क्यों बनाया ?]

समीक्षक—जो ईसाइयों का ईश्वर सर्वज्ञ होता तो इस **'धूर्त सर्प'** अर्थात् **'शैतान'** को क्यों बनाता? और जो बनाया, तो वही ईश्वर अपराध का भागी है, क्योंकि जो वह उसको दुष्ट न बनाता तो वह दुष्टता क्यों करता? और वह पूर्वजन्म नहीं मानता, तो विना अपराध उसको पापी क्यों बनाया? और सच पूछो तो वह सर्प नहीं था किन्तु मनुष्य था; क्योंकि जो मनुष्य न होता; तो मनुष्य की भाषा क्योंकर बोल सकता?

[झूठे को शैतान कहते हैं, सत्यवादी को नहीं]

और जो आप झूठा [हो] और दूसरे को झूठ में चलावे, उसको **'शैतान'** कहना चाहिये। सो यहां शैतान सत्यवादी [है], इससे कि उसने उस स्त्री को नहीं बहकाया किन्तु सच कहा। और ईश्वर ने **आदम** और **हव्वा** से झूठ कहा कि इसके खाने से तुम मर जाओगे। जब वह पेड़ ज्ञानदाता और अमर करनेवाला था, तो उसके फल खाने से क्यों वर्जा? और जो वर्जा

तो वह ईश्वर झूठा और बहकानेवाला ठहरा, क्योंकि उस वृक्ष के फल मनुष्यों को ज्ञान और सुख-कारक थे, अज्ञान और मृत्यु-कारक नहीं।

[आजकल ज्ञानवाता वृक्ष क्यों नहीं होते ?]

जब ईश्वर ने फल खाने से वर्जा तो उस वृक्ष की उत्पत्ति किसलिये की थी? जो अपने लिये की, तो क्या आप अज्ञानी और मृत्युधर्मवाला था? और जो दूसरों के लिये बनाया तो फल खाने में अपराध कुछ भी न हुआ। और आजकल कोई भी वृक्ष ज्ञानकारक और मृत्युनिवारक देखने में नहीं आता, क्या ईश्वर ने उसका बीज भी नष्ट कर दिया?

[विना अपराध तीनों को स्राप देना अन्याय था]

ऐसी बातों से मनुष्य छली-कपटी होता है, तो ईश्वर वैसा क्यों नहीं हुआ? क्योंकि जो कोई दूसरे से छल-कपट करेगा, वह [स्वयं] छली-कपटी क्यों न होगा? और जो इन तीनों को शाप दिया, वह विना अपराध के है, पुनः वह ईश्वर अन्यायकारी भी हुआ। और **यह शाप ईश्वर को होना चाहिये, क्योंकि उसने झूठ बोला और उनको बहकाया।**

[क्या विना पीड़ा के बच्चा पैदा हो सकता था ?]

यह **'फिलासफी'** देखो! क्या विना पीड़ा के गर्भधारण और बालक का जन्म हो सकता था? और विना श्रम के कोई अपनी जीविका कर सकता है? क्या प्रथम काँटे आदि के वृक्ष न थे? **और जब शाक-पात खाना सब मनुष्यों को ईश्वर के कहने से उचित हुआ, तो जो उत्तर में मांस का खाना 'बाइबल' में लिखा, वह झूठा क्यों नहीं? और जो वह सच्चा हो, तो यह झूठा है।**

[आदम निर्दोष था, फिर उसकी सन्तान अपराधी क्यों ?]

जब **आदम** का कुछ भी अपराध सिद्ध नहीं होता तो ईसाई लोग सब मनुष्यों को आदम के अपराध से सन्तान होने पर अपराधी क्यों कहते हैं? भला, ऐसा पुस्तक और ऐसा ईश्वर कभी बुद्धिमानों के मानने योग्य हो सकता है?॥७॥

[आदम को अदन के बाग से निकालना]

८. और परमेश्वर ईश्वर ने कहा कि देखो, आदम भले-बुरे के जानने में हममें से एक की नाईं हुआ और अब ऐसा न होवे कि वह अपना हाथ डाले और जीवन के पेड़ में से भी लेकर खावे, और अमर हो जाय।२२। सो उसने आदम को निकाल दिया और अदन की बाड़ी की पूर्व ओर करोबीम ठहराये। चमकते हुए खड्ग को, जो चारों ओर घूमता था, जिसतें जीवन के पेड़ के मार्ग की रखवाली करें।२४॥

[तौरेत, उत्पत्ति], पर्व ३। आ० २२। २४॥

[ईसाइयों का ईश्वर कोई भ्रान्त मनुष्य था]

समीक्षक—भला, ईश्वर को ऐसी ईर्ष्या और भ्रम क्यों हुआ कि ज्ञान में [आदम] हमारे तुल्य हुआ? क्या यह बुरी बात हुई? यह शङ्का ही क्यों पड़ी? क्योंकि ईश्वर के तुल्य कभी कोई नहीं हो सकता। परन्तु **इस लेख से यह भी सिद्ध होता है कि वह ईश्वर नहीं था किन्तु मनुष्यविशेष था। 'बाइबल' में जहाँ कहीं ईश्वर की बात आती है वहां मनुष्य के तुल्य ही लिखी आती है।**

[ईर्ष्या करना, तलवार का पहरा रखना मनुष्य के काम हैं]

अब देखो, **आदम** के ज्ञान की बढ़ती में ईश्वर कितना दु:खी हुआ और फिर **'अमर-वृक्ष'** के फल खाने में कितनी ईर्ष्या की! और प्रथम जब उसको बारी में रक्खा तब उसको भविष्य का ज्ञान नहीं था कि इसको पुनः निकालना पड़ेगा? इसलिये ईसाइयों का ईश्वर सर्वज्ञ नहीं था। और चमकते खड्ग का पहरा रक्खा यह भी मनुष्य का काम है, ईश्वर का नहीं। हमको बड़ा आश्चर्य होता है कि ऐसे गुणवाले को ईसाई लोग ईश्वर क्यों मानते हैं, क्योंकि ये सब बातें मनुष्य के स्वभाव में घट सकती हैं, ईश्वर में नहीं॥८॥

[हाबील की भेंट का आदर, काइन की नहीं]

९. और कितने दिनों के पीछे यों हुआ कि काइन भूमि के फलों में से परमेश्वर के लिये भेंट लाया॥ और हाबिल भी अपने [भेड़-बकरियों के] झुंड में से पहलौठी और मोटी-मोटी लाया और परमेश्वर ने हाबील का और उसकी भेंट का आदर किया।४। परन्तु काइन का और उसकी भेंट का आदर न किया, इसलिये काइन अति कुपित हुआ और अपना मुंह फुलाया।५। तब परमेश्वर ने काइन से कहा कि "तू क्यों क्रुद्ध है? और तेरा मुंह क्यों फूल गया?"।६।

तौरेत, [उत्पत्ति], पर्व ४। आ० ३। ४। ५। ६॥

[ईसाइयों का मांसाहारी ईश्वर लोगों से बातें भी करता था]

समीक्षक—यदि ईश्वर मांसाहारी न होता तो भेड़ की भेंट और हाबिल का सत्कार, और काइन तथा उसकी भेंट का तिरस्कार क्यों करता? और ऐसा झगड़ा लगाने और हाबिल के मृत्यु का कारण भी ईश्वर ही हुआ।

और जैसी आपस में मनुष्य लोग एक दूसरे से बातें करते हैं, वैसी ही ईसाइयों के ईश्वर की बातें हैं। बगीचे में आना-जाना, उसका बनाना भी मनुष्यों का कर्म है। इससे विदित होता है कि यह 'बाइबल' मनुष्यों की बनाई है, ईश्वर की नहीं॥९॥

[लोहू का भूमि से पुकारना]

१०. तब परमेश्वर ने काइन से कहा—"तेरा भाई हाबिल कहाँ है?" और वह बोला, "मैं नहीं जानता, क्या मैं अपने भाई का रखवाला हूँ?"।९। तब उसने कहा—"तूने क्या किया?" तेरे भाई के लोहू का शब्द भूमि से मुझे पुकारता है।१०। .....और अब तू पृथिवी से शापित है....।११।

तौरेत, [उत्पत्ति], पर्व ४। आ० ९। १०। ११॥

[क्या लोहू का शब्द किसी को पुकार सकता है ?]

समीक्षक—क्या ईश्वर काइन से पूछे विना हाबिल का हाल नहीं जानता था? और लोहू का शब्द भूमि से किसी को कभी पुकार सकता है? ये सब बातें अविद्वानों की हैं। इसीलिये यह पुस्तक न ईश्वर और न विद्वान् का बनाया हो सकता है॥१०॥

[तीन सौ वर्ष तक ईश्वर के चलने की बात मूर्खतापूर्ण]

११. और हनूक मतूसिलह की उत्पत्ति के पीछे तीन-सौ वर्ष लों ईश्वर के साथ-साथ चलता था....।२२।

तौरेत, [उत्पत्ति], पर्व ५। आ० २२॥

समीक्षक—भला, ईसाइयों का ईश्वर मनुष्य न होता, तो हनूक के साथ-साथ क्यों चलता? इससे जो वेदोक्त निराकार, व्यापक ईश्वर है, उसी को ईसाई लोग मानें, तो उनका कल्याण होवे॥११॥

[ईश्वर का पछताना और सृष्टि को नष्ट करना]

१२. (और यों हुआ कि) जब आदमी पृथिवी पर बढ़ने लगे और उनसे बेटियाँ उत्पन्न हुई।१। तो ईश्वर के पुत्रों ने आदमी की पुत्रियों को देखा कि वे सुन्दरी हैं और उनमें से जिन्हें उन्होंने चाहा उन्हें ब्याहा।२। और उन दिनों में पृथिवी पर दानव थे और उसके पीछे भी जब ईश्वर के पुत्र आदमी की पुत्रियों से मिले तो उनसे बालक उत्पन्न हुए, जो बलवान् हुए, जो आगे से नामी थे।४। और ईश्वर ने देखा कि आदमियों की दुष्टता पृथिवी पर बहुत हुई और उनके मन की चिन्ता और भावना प्रतिदिन केवल बुरी होती है।५। तब आदमी को पृथिवी पर उत्पन्न करने से परमेश्वर पछताया और उसे अति शोक हुआ।६। तब परमेश्वर ने कहा कि आदमी को, जिसे मैंने उत्पन्न किया, आदमी से लेके पशुन लों और रेंगवैयों को और आकाश के पक्षियों को पृथिवी पर से नष्ट करूँगा क्योंकि उन्हें बनाने से मैं पछताता हूँ।७।

तौरेत, [उत्पत्ति], पर्व ६। आ० १। २। ४। ५। ६। ७॥

[जब ईश्वर के पुत्र थे, तो उसके मनुष्य होने में क्या सन्देह ?]

समीक्षक—ईसाइयों से पूछना चाहिये कि ईश्वर के बेटे कौन हैं? और ईश्वर की स्त्री, सास, ससुर, साला और सम्बन्धी कौन हैं? क्योंकि अब तो आदमी की बेटियों के साथ विवाह होने से ईश्वर इनका सम्बन्धी हुआ,

और जो उनसे उत्पन्न होते हैं, वे पुत्र और प्रपौत्र हुए। क्या ऐसी बात ईश्वर और ईश्वर के पुस्तक की हो सकती है? किन्तु यह सिद्ध होता है कि उन जंगली मनुष्यों ने यह पुस्तक बनाया है।

[पश्चात्ताप और अज्ञानता मानव का धर्म है]

वह ईश्वर ही नहीं, क्योंकि जो सर्वज्ञ न हो, और न भविष्यत् की बात जाने; वह तो जीव है। क्या जब सृष्टि की थी तब 'आगे मनुष्य दुष्ट होंगे' ऐसा नहीं जानता था? और पछताना, अति-शोकादि होना, भूल से काम करके पीछे पश्चात्ताप करना आदि ईसाइयों के ईश्वर में घट सकता है, वेदोक्त ईश्वर में नहीं। और इससे यह भी सिद्ध होता है कि **ईसाइयों का ईश्वर पूर्ण विद्वान्, योगी भी नहीं था, नहीं तो शान्ति और विज्ञान से अति-शोकादि से पृथक् हो सकता था।**

[ईसाइयों का ईश्वर सर्वज्ञ होता, तो विषादी न होता]

भला पशु-पक्षी भी दुष्ट हो गये! यदि वह ईश्वर सर्वज्ञ होता तो ऐसा विषादी क्यों होता? इसलिये न वह ईश्वर और न यह ईश्वरकृत पुस्तक हो सकता है। जैसे वेदोक्त परमेश्वर सब पाप, क्लेश, दुःख, शोकादि से रहित 'सच्चिदानन्दस्वरूप' है, उसको ईसाई लोग [पहले से] मानते, वा अब भी मानें, तो अपने मनुष्यजन्म को सफल कर सकें॥१२॥

[नूह ने नाव में सब प्राणियों का एक-एक जोड़ा रक्खा]

१३. ....उस नाव की लम्बाई तीन-सौ हाथ और चौड़ाई पचास हाथ और ऊँचाई तीस हाथ की होवे....।१५। ....तू नाव में जाना, तू और तेरे बेटे और तेरी पत्नी और तेरे बेटों की पत्नियां तेरे साथ।१८। और सारे शरीरों में से जीवते जन्तु दो-दो अपने साथ नाव में लेना,

जिससे वे तेरे साथ जीते रहें, वे नर और नारी होंवे।१९। पंछियों में से उसके भाँति-भाँति के और ढोरों में से उसके भाँति-भाँति के और पृथिवी के हर एक रेंगवैयों में से भाँति-भाँति के, हर एक में से दो-दो तुझ पास आवें, जिसतें जीते रहें।२०। और तू अपने लिये खाने को सब सामग्री अपने पास इकट्ठा कर। वह तुम्हारे और उनके लिये भोजन होगा।२१। सो ईश्वर की सारी आज्ञा के अनुसार नूह ने किया।२२।

तौरेत, [उत्पत्ति], पर्व ६। आ० १५। १८। १९। २०। २१। २२॥

[नूह की उस नाव में करोड़ों जीव कैसे समा गये ?]

समीक्षक—भला, कोई भी विद्वान् ऐसी विद्या से विरुद्ध असम्भव बात के वक्ता को ईश्वर मान सकता है? क्योंकि इतनी [कम] बड़ी, चौड़ी, ऊँची नाव में हाथी-हथनी, ऊँट-ऊँटनी आदि करोड़ों जन्तु और उनके खाने-पीने की चीजें, वे सब और कुटुम्ब के भी [जन क्या] समा सकते हैं? इसीलिये यह मनुष्यकृत पुस्तक है। जिसने यह लेख किया है, वह विद्वान् भी नहीं था॥१३॥

[पशु-पक्षियों से होम, और ईश्वर का उनकी सुगन्ध सूँघना]

१४. और नूह ने परमेश्वर के लिये एक वेदी बनाई और सारे पवित्र पशु और हर एक पवित्र पंछियों में से लिये, और होम की भेंट उस वेदी पर चढ़ाई।२०। और परमेश्वर ने सुगंध सूंघा और परमेश्वर ने अपने मन में कहा कि 'आदमी के लिये मैं पृथिवी को फिर कभी शाप न दूंगा, इस कारण कि आदमी के मन की भावना उसकी

लड़काई से बुरी है, और जिस रीति से मैंने सारे जीवधारियों को मारा, फिर कभी न मारूंगा।२१।'

तौरेत, [उत्पत्ति], पर्व ८। आ० २०। २१॥

[क्या ईश्वर सुगन्ध भी सूँघता है, और पछताता भी है ?]

समीक्षक—वेदी के बनाने, होम करने के लेख से यही सिद्ध होता है कि ये बातें वेदों से 'बाइबल' में गई हैं।

क्या परमेश्वर के नाक भी है कि जिससे उसने सुगन्ध सूंघा? क्या यह ईसाइयों का ईश्वर मनुष्यवत् अल्पज्ञ नहीं है कि कभी शाप देता है और कभी पछताता है? कभी कहता है शाप न दूंगा। पहले दिया था और फिर भी देगा। प्रथम सबको मार डाला और अब कहता है कि कभी न मारूंगा। ये सब बातें लड़केपन की हैं, ईश्वर की नहीं, और न किसी विद्वान् की; क्योंकि **विद्वान् की भी बात और प्रतिज्ञा स्थिर होती है॥**१४॥

[नूह परिवार को पशु-पक्षी खाने का आशीर्वाद]

१५. और ईश्वर ने नूह को और उसके बेटों को आशीष दिया और उन्हें कहा कि....।१। "हर एक जीता-चलता जन्तु तुम्हारे भोजन के लिये होगा, मैंने हरी तरकारी के समान सारी वस्तु तुम्हें दीं।३। केवल मांस उसके जीव अर्थात् उसके लोहू समेत मत खाना।४।"

तौरेत, उत्पत्ति, पर्व ९। आ० १। ३। ४॥

[ईसाइयों का ईश्वर निर्दय होने से पापी क्यों नहीं ?]

समीक्षक—क्या एक को प्राणकष्ट देकर दूसरों को आनन्द कराने से ईसाइयों का ईश्वर दयाहीन नहीं है? जो माता-पिता एक लड़के को

मरवाकर दूसरे को खिलावें तो महापापी नहीं हों? इसी प्रकार यह बात है; क्योंकि ईश्वर के लिये सब प्राणी पुत्रवत् हैं। **ऐसा न होने से इनका ईश्वर कसाईवत् काम करता है और सब मनुष्यों को हिंसक भी इसी ने बनाया है। इसलिये ईसाइयों का ईश्वर निर्दय होने से पापी क्यों नहीं?॥१५॥**

[ईश्वर का डरकर नीचे उतरना, और भाषा-भेद करना]

१६. और सारी पृथिवी पर एक ही बोली और एक ही भाषा थी।१। फिर उन्होंने कहा कि आओ हम एक नगर और एक गुम्मट जिसकी चोटी स्वर्ग लों पहुँचे अपने लिये बनावें और अपना नाम करें, न हो कि हम सारी पृथिवी पर छिन्न-भिन्न हो जायें।४। तब ईश्वर उस नगर और उस गुम्मट को जिसे आदम के सन्तान बनाते थे, देखने को उतरा।५। तब परमेश्वर ने कहा कि 'देखो ! ये लोग एक ही हैं और इन सबकी एक ही बोली है।' अब वे ऐसा-ऐसा कुछ करने लगे सो वे जिस पर मन लगावेंगे उससे अलग न किये जायेंगे।६। आओ, हम उतरें और वहाँ उनकी भाषा को गड़बड़ावें, जिससे एक-दूसरे की बोली न समझें।७। तब परमेश्वर ने उन्हें वहाँ से सारी पृथिवी पर छिन्न-भिन्न किया और वे उस नगर के बनाने से अलग रहे।८।

तौरेत, [उत्पत्ति], पर्व ११। आ० १। ४। ५। ६। ७। ८॥

[एकभाषा-भाषियों की भाषा को बिगाड़ना शैतान से भी बुरा काम]

समीक्षक—जब सारी पृथिवी पर एक भाषा और बोली होगी, उस समय सब मनुष्यों को परस्पर अत्यन्त आनन्द प्राप्त हुआ होगा। परन्तु क्या किया जाय, ईसाइयों के ईर्ष्यक ईश्वर ने सबकी भाषा गड़बड़ाके यह

सबका सत्यानाश किया!! उसने यह बड़ा अपराध किया। क्या यह शैतान के काम से भी बुरा काम नहीं है? और इससे यह भी विदित होता है कि ईसाइयों का ईश्वर **'सनाई पहाड़'** आदि पर रहता था और जीवों की उन्नति भी नहीं चाहता था। यह विना एक अविद्वान् के ईश्वर की बात [क्योंकर हो सकती है?] और यह पुस्तक ईश्वरोक्त क्योंकर हो सकता है?॥१६॥

[अबिरहाम का संकट में पत्नी को बहन बनाना]

१७. ....तब उसने अपनी पत्नी सारै से कहा कि देख मैं जानता हूँ कि तू देखने में सुन्दर स्त्री है।११। इसलिये यों होगा कि जब मिश्री तुझे देखेंगे तब वे कहेंगे कि यह उसकी पत्नी है और मुझे मार डालेंगे, परन्तु तुझे जीती रखेंगे।१२। तू कहियो कि मैं उसकी बहिन हूँ, जिसतें तेरे कारण मेरा भला होय और मेरा प्राण तेरे हेतु से जीता रहे।१३।

तौरेत, [उत्पत्ति], पर्व १२। आ० ११। १२। १३॥

[जिनके ऐसे पैगम्बर हों, उनका कल्याण कैसे हो ?]

समीक्षक—अब देखिये! जो अबिरहाम 'बड़ा पैग़म्बर' ईसाई और मुसलमानों का बजता है और उसके कर्म मिथ्याभाषणादि बुरे हैं। और अपनी स्त्री का पातिव्रत्य धर्म भंग कराके व्यभिचारिणी बनाता है। भला, जिनके ऐसे पैग़म्बर हों, उनको विद्या वा कल्याण का मार्ग कैसे मिल सके?॥१७॥

[ईश्वर का खतनः करने का कठोर आदेश]

१८. और ईश्वर ने इब्राहीम से कहा तू और तेरे पीछे तेरा वंश उनकी पीढ़ियों में मेरे नियम को माने।९। तुम मेरा नियम जो मुझसे और तुमसे और तेरे पीछे तेरे वंश से है जिसे तुम मानोगे सो यह है कि तुममें से हर एक पुरुष का खतनः (खतना) किया जाय।१०। और तुम अपने शरीर [के गुप्तांग] की खलड़ी काटो और वह मेरे और तुम्हारे मध्य में नियम का चिह्न होगा।११। और तुम्हारी पीढ़ियों में हर एक आठ दिन के पुरुष का खतनः किया जाय, जो घर में उत्पन्न होय अथवा जो किसी परदेशी से जो तेरे वंश का न हो, रूपे से मोल लिया जाय॥१२। जो तेरे घर में उत्पन्न हुआ हो और जो तेरे रूपे से मोल लिया गया हो, अवश्य उसका खतनः किया जाय, और मेरा नियम तुम्हारे मांस [=देह] में सर्वदा नियम के लिये होगा।१३। और जो अखतनः बालक जिसकी खलड़ी का खतनः न हुआ हो, सो प्राणी अपने लोगों से कट जाय कि उसने मेरा नियम तोड़ा है।१४॥

तौरेत, [उत्पत्ति], पर्व १७। आ० ९। १०। ११। १२। १३। १४॥

[खतनः ईश्वर को इष्ट था, तो वह चमड़ी क्यों बनाई ?]

समीक्षक—अब देखिये ईश्वर की अन्यथा आज्ञा कि जो यह खतना करना ईश्वर को इष्ट होता तो उस चमड़े को आदि-सृष्टि में नहीं बनाता। और जो यह बनाया गया है वह रक्षार्थ है, जैसा आँख के ऊपर का चमड़ा। क्योंकि वह गुप्तस्थान अति कोमल है, जो उस पर चमड़ा न हो तो एक कीड़ी के भी काटने और थोड़ी-सी चोट लगने से बहुत-सा दुःख होवे; और

लघुशंका के पश्चात् कुछ मूत्रांश कपड़ों में न लगे, इत्यादि बातों के लिये इसका काटना बुरा है।

[ईसाई इस आज्ञा को अब क्यों नहीं मानते ?]

और अब ईसाई लोग इस आज्ञा को क्यों नहीं करते? यह आज्ञा सदा के लिये है, इसके न करने से ईसा की गवाही जो कि 'व्यवस्था के पुस्तक का एक बिन्दु भी झूठा नहीं है,' मिथ्या हो गई। इसका सोच-विचार ईसाई कुछ भी नहीं करते॥१८॥

[इब्राहीम से बातें कर ईश्वर का ऊपर जाना]

१९. तब उससे बात करने से रह गया और इब्राहीम के पास से ईश्वर ऊपर जाता रहा।२२।

तौरेत, [उत्पत्ति], पर्व० १७। आ० २२॥

[इनका ईश्वर कोई इन्द्रजाली पुरुषवत् था]

समीक्षक—इससे यह सिद्ध होता है कि [ईसाइयों का] ईश्वर मनुष्य वा पक्षिवत् था जो ऊपर से नीचे और नीचे से ऊपर आता-जाता रहता था। यह कोई इन्द्रजाली पुरुषवत् विदित होता है॥१९॥

[ईश्वर ने रोटी मक्खन और बछड़े का मांस खाया]

२०. फिर ईश्वर उसे ममरे के बलूतों में दिखाई दिया और वह दिन को घाम के समय में अपने तम्बू के द्वार पर बैठा था।१। और उसने अपनी आँखें उठाईं और देखा कि तीन मनुष्य उसके पास खड़े हैं और उन्हें देखके वह तम्बू के द्वार पर से उनकी भेंट को दौड़ा और भूमि लों दंडवत् किया।२। और कहा—"हे मेरे स्वामी ! यदि मैंने अब आपकी दृष्टि में अनुग्रह पाया है तो मैं आपकी विनती करता हूँ कि

अपने दास के पास से चले न जाइये।३। इच्छा होय तो थोड़ा जल लाया जाय और अपने चरण धोइये और पेड़ तले विश्राम कीजिये।४। और मैं एक कौर रोटी लाऊँ और आप तृप्त हूजिये। उसके पीछे आगे बढ़िये, क्योंकि आप इसीलिये अपने दास के पास आये हैं।" तब वे बोले कि "जैसा तूने कहा तैसा कर।५।" और इब्राहीम तंबू में सरः पास उतावली से गया और उसे कहा कि "फुरती कर और तीन नपुआ चोखा पिसान लेके गूंध और उसके फुलके पका।६।" और इब्राहीम झुंड की ओर दौड़ा गया और एक अच्छा कोमल बछड़ा लेके दास को दिया। उसने भी उसे सिद्ध करने में चटक किया।७। और उसने मक्खन और दूध और वह बछड़ा जो पकाया था, लिया और उनके आगे धरा और आप उनके पास पेड़ तले खड़ा रहा और उन्होंने खाया।८।

तौरेत, [उत्पत्ति], पर्व १८। आ० १। २। ३। ४। ५। ६। ७। ८॥

[यह ईश्वर जंगली लोगों की मण्डली का कोई सरदार था]

समीक्षक—अब देखिये सज्जन लोगो ! **जिनका ईश्वर बछड़े का मांस खावे, उसके उपासक गाय, बछड़े आदि पशुओं को क्यों छोड़ें? जिसको कुछ दया नहीं, मांस के खाने में आतुर रहे, वह विना हिंसक मनुष्य के, 'ईश्वर' कभी हो सकता है?** और ईश्वर के साथ दो मनुष्य न जाने कौन थे? इससे विदित होता है कि जंगली मनुष्यों की एक मण्डली थी। उनका जो प्रधान मनुष्य था, उसका नाम **'बाइबल'** में **'ईश्वर'** रक्खा होगा। इन्हीं बातों से बुद्धिमान् लोग इनके पुस्तक को ईश्वरकृत नहीं मान सकते और न ऐसे को ईश्वर समझते हैं॥२०॥

[ईश्वर का स्त्रियों के समान ताना मारना]

२१. और परमेश्वर ने इब्राहीम से कहा कि "सरः क्यों यह कहके मुस्कुराई कि जो मैं बुढ़िया हूँ सचमुच बालक जनूंगी?।१३। क्या परमेश्वर के लिये कोई बात असाध्य है?".....।१४।

तौरेत, [उत्पत्ति], पर्व १८। आ० १३। १४॥

समीक्षक—अब देखिये कि क्या-क्या ईसाइयों के ईश्वर की लीला है कि जो लड़कों वा स्त्रियों के समान चिड़ता और ताना मारता है !!॥२१॥

[ईश्वर का क्रुद्ध हो नगरों पर आग बरसाना]

२२. तब परमेश्वर ने सदूम और अमूरः पर गंधक और आग परमेश्वर की ओर से स्वर्ग से वर्षाई।२४। और उन नगरों को, सारे चौगानें को और नगरों के सारे निवासियों को और जो कुछ भूमि पर उगता था, उलट दिया।२५।

तौरेत, उत्पत्ति, पर्व १९। आ० २४। २५॥

[निरपराधों को कष्ट देना अन्याय है]

समीक्षक—अब यह भी लीला 'बाइबल' के ईश्वर की देखिये कि जिसको बालक आदि पर भी कुछ दया न आई! क्या वे सब ही अपराधी थे, जो सबको भूमि उलटाके दबा मारा? यह न्याय, दया और विवेक से विरुद्ध है। **जिनका ईश्वर ऐसा काम करे, उसके उपासक क्यों न करें?**॥२२॥

[लूत का अपनी पुत्रियों से संम्भोग करना]

२३. आओ, हम अपने पिता को दाख रस पिलावें और हम उनके साथ शयन करें कि हम अपने पिता से वंश जुगावें।३२। तब उन्होंने

उस रात अपने पिता को दाखरस पिलाया और पहलौठी गई और अपने पिता के साथ शयन किया....।३३। हम उसे आज रात भी दाखरस पिलावें, तू जाके उसके साथ शयन कर....।३४। सो लूत की दोनों बेटियाँ अपने पिता से गर्भिणी हुईं....।३६।

तौरेत, उत्पत्ति, पर्व १९। आ० ३२। ३३। ३४। ३६॥

[शराब के नशे में ऐसे ही कुकर्म होते हैं]

समीक्षक—देखिये! जब पिता-पुत्री भी जिस मद्यपान के नशे में कुकर्म करने से न बच सके, ऐसे दुष्ट मद्य को जो ईसाई आदि पीते हैं, उनकी बुराई का क्या पारावार है? इसलिये **सज्जन लोगों को मद्य के पीने का नाम भी न लेना चाहिये**॥२३॥

[परमेश्वर से सरः का गर्भिणी होना]

२४. और अपने कहने के समान परमेश्वर ने सरः से भेंट की और अपने वचन के समान परमेश्वर ने सरः के विषय में किया।१। और सरः गर्भिणी हुई....।२।

तौरेत, उत्पति, पर्व २१। आ० १। २॥

[ईसाइयों का ईश्वर परस्त्रीगमन भी करता था]

समीक्षक—अब विचारिये कि सरः से भेंट कर उसको गर्भवती किया, यह काम कैसे हुआ? क्या विना परमेश्वर और सरः के तीसरा कोई गर्भस्थापना का कारण दीखता है? ऐसा विदित होता है कि सरः परमेश्वर की कृपा से गर्भवती हुई॥२४॥

[हाजिरः को घर से निकलवाना]

२५. तब इब्राहीम ने बड़े तड़के उठके रोटी और एक पखाल में जल लिया और हाजिरः के कन्धे पर धर दिया और लड़के को भी उसे सौंपके उसे विदा किया....।१४। .....उसने उस लड़के को एक झाड़ी के तले डाल दिया।१५। .....और वह उसके सम्मुख बैठके चिल्ला-चिल्ला रोई।१६। तब ईश्वर ने उस बालक का शब्द सुना......।१७।

तौरेत, उत्पत्ति, पर्व २१। आ० १४। १५। १६। १७॥

[बाइबल में साधारण लोगों की बातें भरी हैं]

समीक्षक—अब देखिये ईसाइयों के ईश्वर की लीला कि प्रथम तो सरः का पक्षपात करके हाजिरः को वहाँ से निकलवा दी, और चिल्ला-चिल्ला रोई हाजिरः, और शब्द सुना लड़के का, यह कैसी अद्भुत बात है? यह ऐसा हुआ होगा कि ईश्वर को भ्रम हुआ होगा कि यह बालक ही रोता है। भला, यह ईश्वर और ईश्वर के पुस्तक की बात कभी हो सकती है, विना साधारण मनुष्य के वचन के? **इस पुस्तक में थोड़ी-सी सत्य बात के अतिरिक्त सब असार भरा है॥**२५॥

[ईश्वर का इब्राहीम से बेटे की बलि माँगना]

२६. और इन बातों के पीछे यों हुआ कि ईश्वर ने इब्राहीम की परीक्षा की और उसे कहा—"हे इब्राहीम....।१। तू अपने बेटे को, अपने इकलौते इज़हाक को जिसे तू प्यार करता है ले....उसे होम की भेंट के लिये चढ़ा।२।".....और अपने बेटे इज़हाक को बाँधके उस वेदी में लकड़ियों पर धरा।९। और इब्राहीम ने छुरी लेके अपने बेटे को

घात करने के लिये हाथ बढ़ाया।१०। तब परमेश्वर के दूत ने स्वर्ग पर से उसी को पुकारा कि "हे इब्राहीम-इब्राहीम !....।११।....अपना हाथ लड़के पर मत बढ़ा और उसे कुछ मत कर, क्योंकि अब मैं जानता हूं कि तू ईश्वर से डरता है"....।१२॥

तौरेत, उत्पत्ति, पर्व २२। आ॰ १। २। ९। १०। ११। १२॥

[क्यों न अपनी सर्वज्ञता से उसकी भक्ति को जाना ?]

समीक्षक—अब स्पष्ट हो गया कि यह 'बाइबल' का ईश्वर अल्पज्ञ है, सर्वज्ञ नहीं। और इब्राहीम भी एक भोला मनुष्य था, नहीं तो ऐसी चेष्टा क्यों करता? **'बाइबल'** का ईश्वर सर्वज्ञ होता तो क्यों कराता और उसकी भविष्यत्-श्रद्धा को भी सर्वज्ञता से जान लेता?॥२६॥

[मृतकों को गाड़ने का आदेश]

२७. ....सो आप हमारी समाधिन में से चुनके एक में अपने मृतक को गाड़िये....जिसतें आप अपने मृतक को गाड़ें.......॥।६।

तौरेत, उत्पत्ति, पर्व २३। आ॰ ६॥

[मुर्दों को गाड़ने में अनेक दोष हैं]

समीक्षक—मुर्दों के गाड़ने से संसार की बड़ी हानि होती है, क्योंकि वह सड़के वायु को दुर्गन्धमय कर रोग फैला देता है।

प्रश्न—देखो, जिससे प्रीति हो उसको जलाना अच्छी बात नहीं। और गाड़ना [ऐसा है] जैसा कि उसको सुला देना है। इसलिये गाड़ना अच्छा है।

उत्तर—जो मृतक से प्रीति करते हो तो अपने घर में क्यों नहीं रखते? और गाड़ते भी क्यों हो? जिस जीवात्मा से प्रीति थी वह निकल गया, अब दुर्गन्धिमय मिट्टी से क्या प्रीति? और जो प्रीति करते हो तो उसको पृथिवी में क्यों गाड़ते हो? क्योंकि किसी से कोई कहे कि 'तुझको भूमि में गाड़ देवें' तो वह सुनकर प्रसन्न कभी नहीं होता। उसके मुख, आँख, और शरीर पर धूल, पत्थर, ईंट, चूना डालना, छाती पर पत्थर रखना कौन-सा प्रीति का काम है?

और सन्दूक में डालके गाड़ने से बहुत दुर्गन्ध होकर पृथिवी से निकल, वायु को बिगाड़कर दारुण रोगोत्पत्ति करता है।

दूसरा, एक मुर्दे के लिये कम से कम ६ हाथ लम्बी और ४ हाथ चौड़ी भूमि चाहिये। इसी हिसाब से सौ, हजार वा लाख अथवा करोंड़ों मनुष्यों के लिये कितनी भूमि व्यर्थ रुक जाती है! न वह खेत, न बग़ीचा, और न वसने के काम की रहती है। इसलिये सबसे बुरा गाड़ना है।

उससे कुछ थोड़ा बुरा जल में डालना है, क्योंकि उसको जलजन्तु उसी समय चीर-फाड़के खा लेते हैं परन्तु जो कुछ हाड़ वा मल जल में रहेगा वह सड़कर जगत् को दुःखदायक होगा।

उससे कुछ-एक थोड़ा बुरा जंगल में छोड़ना है, क्योंकि उसको मांसाहारी पशु-पक्षी लूंच खायेंगे, तथापि जो उसके हाड़, हाड़ की मज्जा और मल सड़कर जितना दुर्गन्ध करेगा, उतना जगत् का अनुपकार होगा।

और जो जलाना है वह सर्वोत्तम है, क्योंकि उसके सब पदार्थ अणु होकर वायु में उड़ जायेंगे।

[विधिपूर्वक मुर्दे को जलाना सर्वोत्तम है]

प्रश्न—क्या मुर्दे के धुएं से दुर्गन्ध नहीं होता?

उत्तर—हाँ, जो अविधि से जलावे तो थोड़ा-सा होता है, परन्तु गाड़ने आदि से बहुत कम होता है।

और जो विधिपूर्वक जैसा कि वेद में लिखा है—वेदी, मुर्दे के तीन हाथ गहिरी, साढ़े तीन हाथ चौड़ी, पांच हाथ लम्बी, तले में डेढ़ बीता अर्थात् चढ़ा- उतार खोदकर शरीर के बराबर घी, उसमें एक सेर में रत्तीभर कस्तूरी, मासाभर केशर डाल, न्यून से न्यून आध मन चन्दन लें, अधिक चाहें जितना लें। अगर, तगर, कपूर आदि और पलाश आदि की लकड़ियों को वेदी में जमा, उस पर मुर्दा रखके पुनः चारों ओर ऊपर वेदी के मुख से एक बीता तक, भरके, उस घी की आहुति देकर जलाना लिखा है। इस प्रकार से दाह करें तो कुछ भी दुर्गन्ध न हो। **इसी का नाम अन्त्येष्टि, नरमेध, पुरुषमेध यज्ञ है।** और जो दरिद्र हो तो वीस सेर से कम घी चिता में न डाले, चाहे वह भीख मांगने वा जातिवालों के देने अथवा राज्य

से मिलने से प्राप्त हो, परन्तु उसी प्रकार दाह करे। और जो घृतादि किसी प्रकार न मिल सके तथापि गाड़ने आदि से केवल लकड़ी से भी मृतक का जलाना उत्तम है, क्योंकि एक बिस्वाभर भूमि में अथवा एक वेदी में लाखों-करोड़ों मृतक जल सकते हैं। भूमि भी गाड़ने के समान अधिक नहीं बिगड़ती। और क़ब्र के देखने से भय भी होता है। इससे गाड़ना आदि सर्वथा निषिद्ध है॥२७॥

[ईश्वर का इब्राहीम की अगुवाई करना]

२८. ....परमेश्वर मेरे स्वामी इब्राहीम का ईश्वर धन्य है जिसने मेरे स्वामी को अपनी दया और अपनी सच्चाई विना न छोड़ा, मार्ग में परमेश्वर ने मेरे स्वामी के भाइयों के घर की ओर मेरी अगुआई की।२७।

तौरेत, उत्पत्ति, पर्व २४। आ॰ २७॥

[ईश्वर अब क्यों बातें और अगुवाई नहीं करता ?]

समीक्षक—क्या वह इब्राहीम का ही ईश्वर था? और जैसे आजकल बेगारी वा अगवे लोग अगुआई अर्थात् आगे-आगे चलकर मार्ग दिखलाते हैं, वैसा ईश्वर ने भी किया तो आजकल मार्ग क्यों नहीं दिखलाता? और मनुष्यों से बातें क्यों नहीं करता? इसलिये ऐसी बातें ईश्वर वा ईश्वर के पुस्तक की कभी नहीं हो सकतीं, किन्तु जंगली मनुष्य की हैं॥२८॥

[भाटों की पोथीवत् इश्माएल बेटों के नाम गिनाना]

२९. इश्माएल के बेटों के नाम ये हैं—इश्माएल का पहिलौठा नबायोत और केदार और अदबेल और मिबसाम।१३। और मिश्मा

और दूमः और मस्सा।१४। हदर और तेमा, यतूर, नफीस और किदमः।१५।

तौरेत, उत्पत्ति, पर्व २५। आ० १३। १४। १५॥

समीक्षक—यह इश्माएल, इब्राहीम से उसकी हाजिरः दासी का पुत्र हुआ था॥२९॥

[याक़ूब का छल-कपट से आशीर्वाद लेना]

३०. ....मैं तेरे पिता की रुचि के समान स्वादित भोजन बनाऊंगी।९। और तू अपने पिता के पास ले जाइयो जिसतें वह खाय और अपने मरने से आगे तुझे आशीष देवे।१०। और रिबकः ने घर में से अपने जेठे बेटे एसाव का अच्छा पहरावा लिया और अपने छोटे बेटे याक़ूब को पहनाया।१५। और बकरी के मेम्नों का चमड़ा उसके हाथों और गले की चिकनाई पर लपेटा।१६। तब याक़ूब अपने पिता से बोला कि "मैं आपका पहिलौठा एसाव हूं, आपके कहने के समान मैंने किया है, उठ बैठिये और मेरे अहेर के मांस में से खाइये, जिसतें आपका प्राण मुझे आशीष दे।१९।"

तौरेत, उत्पत्ति, पर्व २७। आ० ९। १०। १५। १६। १९॥

[छल कपट करनेवाले भी पैग़म्बर बने]

समीक्षक—देखिये, ऐसे झूठ-कपट से आशीर्वाद लेके पश्चात् सिद्ध और पैग़म्बर बनते हैं, क्या यह आश्चर्य की बात नहीं है? और ऐसे ईसाइयों के ऐसे 'अगुआ' हुए हैं! पुनः इनके मत की गड़बड़ में क्या न्यूनता हो॥३०॥

[पत्थर का खंभा खड़ा कर ईश्वर का घर बनाना]

३१. और याक़ूब बिहान को तड़के उठा और उस पत्थर को जिसे उसने अपना उसीसा किया था, खंभा खड़ा किया और उस पर तेल डाला।१८। और उस स्थान का नाम बेतएल रक्खा....।१९। और यह पत्थर जो मैंने खंभा-सा खड़ा किया, ईश्वर का घर होगा....।२२।

तौरेत, उत्पत्ति, पर्व २८। आ० १८। १९। २२॥

[क्या 'बैतएलमुकद्दस' ही ईश्वर का घर था ?]

समीक्षक—अब देखिये, जंगलियों के काम! इन्होंने पत्थर पूजे और पुजवाये। और इसको मुसलमान लोग [भी] **'बैतएलमुकद्दस'** कहते हैं। क्या यही पत्थर ईश्वर का घर [है], और उसी पत्थरमात्र में ईश्वर रहता था? वाह-वाह! क्या कहना है ईसाई लोगो! महाबुतपरस्त तो तुम ही हो॥३१॥

[ईश्वर ने राख़िल की कोख खोली]

३२. और ईश्वर ने राख़िल को स्मरण किया और ईश्वर ने उसकी सुनी और उसकी कोख को खोला।२२। और वह गर्भिणी हुई और बेटा जनी और बोली कि ईश्वर ने मेरी निन्दा दूर की।२३।

तौरेत, उत्पत्ति, पर्व ३०। आ० २२। २३॥

[क्या ईश्वर के पास डाक्टरी के भी औजार थे ?]

समीक्षक—वाह-वाह! ईसाइयों का ईश्वर क्या बड़ा डाक्टर है! स्त्रियों की कोख खोलने को कौन-से शस्त्र वा औषध थे जिनसे खोली? ये सब बातें अन्धाधुन्ध की हैं॥३२॥

[लाबान को ईश्वर का स्वप्न में मिलना]

३३. परन्तु ईश्वर अरामी लाबान कने स्वप्न में रात को आया और उसे कहा कि चौकस रह, तू याक़ूब को भला बुरा मत कहना....।२४। क्योंकि तू अपने पिता के घर का निपट अभिलाषी है, तूने किसलिये मेरे देवों को चुराया है?।३०।

तौरेत, उत्पत्ति, पर्व ३१। आ० २४। ३०॥

[अब ईश्वर स्वप्न वा जाग्रत् में किसी को क्यों नहीं मिलता ?]

समीक्षक—यह हम नमूना लिखते हैं, हजारों मनुष्यों को स्वप्न में आया, बातें की; जाग्रत में साक्षात् मिला; खाया-पीया, आया-गया आदि **'बाइबल'** में लिखा है; परन्तु अब न जाने वह है वा नहीं? क्योंकि अब किसी को स्वप्न वा जाग्रत में भी ईश्वर नहीं मिलता और यह भी विदित हुआ कि ये जंगली लोग पाषाणादि मूर्तियों को देव मानकर पूजते थे। परन्तु ईसाइयों का ईश्वर भी पत्थर को ही देव मानता है, नहीं तो देवों का चुराना कैसे घटे?॥३३॥

[याक़ूब ने ईश्वर की सेना को देखा]

३४. और याक़ूब अपने मार्ग चला गया और ईश्वर के दूत उसे आ मिले।१। और याक़ूब ने उन्हें देखके कहा कि यह ईश्वर की सेना है....।२।

तौरेत, उत्पत्ति, पर्व ३२। आ० १। २॥

[ईश्वर को सेना रखने की क्या आवश्यकता थी ?]

समीक्षक—अब ईसाइयों के ईश्वर का मनुष्य होना कुछ भी संदिग्ध नहीं रहा, क्योंकि ईश्वर के पास सेना भी है जब सेना हुई तो सब शस्त्र भी

होंगे तथा किसी से लड़ाई-बखेड़े भी होते होंगे; नहीं तो सेना रखने का क्या प्रयोजन है?॥३४॥

[ईश्वर के साथ याक़ूब का मल्लयुद्ध]

३५. और याक़ूब अकेला रह गया और वहाँ पौ फटे लों एक जन उससे मल्ल युद्ध करता रहा।२४। और जब उसने देखा कि वह प्रबल न हुआ तो उसकी जांघ को भीतर से छूआ, तब याक़ूब के जांघ की नस उसके संग मल्लयुद्ध करने में चढ़ गई।२५। तब वह बोला कि "मुझे जाने दे क्योंकि पौ फटती है" और वह बोला "मैं तुझे जाने न देऊंगा जब लों तू मुझे आशीष न देवे।२६।" तब उसने उसे कहा कि "तेरा नाम क्या [है]?" और वह बोला कि "याक़ूब"।२७। तब उसने कहा कि "तेरा नाम आगे को याक़ूब न होगा परन्तु इस्राएल, क्योंकि तूने ईश्वर के और मनुष्यों के आगे राजा की नाईं मल्लयुद्ध किया और जीता।२८।" तब याक़ूब ने उससे पूछा कि "अपना नाम बताइये" और वह बोला कि "तू मेरा नाम क्यों पूछता है?" और उसने उसे वहाँ आशीष दिया।२९। और याक़ूब ने उस स्थान का नाम पनीएल रक्खा, क्योंकि मैंने ईश्वर को प्रत्यक्ष देखा और मेरा प्राण बचा है।३०। और जब वह पनूएल से पार चला तो सूर्य की ज्योति उस पर पड़ी और वह अपनी जांघ से लंगड़ाता था।३१। इसलिये इस्राएल के वंशज [पशुओं की] उस जांघ की नस को, जो [याक़ूब की] चढ़ गई थी, आज लों नहीं खाते, क्योंकि उसने याक़ूब के जांघ की नस को, जो चढ़ गई थी, छूआ था।३२।

तौरेत, उत्पत्ति, पर्व ३२। आ० २४। २५। २६। २७। २८। २९। ३०। ३१। ३२॥

[मल्लयुद्ध करनेवाले के मनुष्य होने में क्या सन्देह ?]

समीक्षक—ईसाइयों का ईश्वर अखाड़मल्ल है! तभी तो सरः और राख़िल पर पुत्र होने की कृपा की। भला, यह कभी ईश्वर हो सकता है? और देखो लीला कि एक जन नाम पूछे तो दूसरा अपना नाम ही न बतालावे!

[अपने भक्त की जाँघ क्यों न ठीक की ?]

और ईश्वर ने उसकी नाड़ी चढ़ा तो दी और जीत गया परन्तु जो डाक्टर होता तो जांघ की नाड़ी को अच्छा भी करता। और ऐसे ईश्वर की भक्ति से जैसा कि याक़ूब लंगड़ाता रहा तो अन्य भक्त भी लंगड़ाते होंगे। जब ईश्वर को प्रत्यक्ष देखा और मल्लयुद्ध किया, यह बात विना शरीरवाले के कैसे हो सकती है? यह केवल लड़केपन की लीला है॥३५॥

[क्या ईश्वर के मुँह भी है ?]

३६. ......ईश्वर का मुंह देखा....।१०।

तौरेत, उत्पत्ति, पर्व ३३। आ० १०॥

समीक्षक—जब ईश्वर के मुँह है तो और भी सब अवयव होंगे और वह जन्म-मरणवाला भी होगा॥३६॥

[नियोग की बात न मानने पर ओनान को मारा]

३७. और यहूदाह का पहिलौठा एर परमेश्वर की दृष्टि में दुष्ट था, सो परमेश्वर ने उसे मार डाला।७। तब यहूदाह ने ओनान को कहा कि

"अपने भाई की पत्नी के पास जा और उससे ब्याह कर और अपने भाई के लिये वंश चला।८।" और ओनान ने जाना कि यह वंश मेरा न होगा और यों हुआ कि जब वह अपने भाई की पत्नी पास गया तो वीर्य को भूमि पर गिरा दिया....।९। और उसका वह कार्य परमेश्वर की दृष्टि में बुरा था, इसलिये उसने उसे भी मार डाला।१०।

तौरेत, उत्पत्ति, पर्व ३८। आ० ७। ८। ९। १०॥

[नियोग की प्रथा पहले से ही चली आ रही है]

समीक्षक—अब देख लीजिये! ये मनुष्यों के काम हैं कि ईश्वर के? जब उसके साथ नियोग हुआ तो उसको क्यों मार डाला? उसकी बुद्धि शुद्ध क्यों न कर दी? **और वेदोक्त नियोग भी प्रथम सर्वत्र चलता था। यह निश्चय हुआ कि नियोग की बातें सब देशों में चलती थीं**॥३७॥

"तौरेत यात्रा की पुस्तक"

[मूसा का एक मिश्री को मार डरकर भागना]

३८. ...जब मूसा सयाना हुआ... और अपने भाइयों में से एक इबरानी को देखा कि मिश्री उसे मार रहा है।११। तब उसने इधर-उधर दृष्टि की और देखा कि कोई नहीं, तब उसने उस मिश्री को मार डाला और बालू में उसे छिपा दिया।१२। जब वह दूसरे दिन बाहर गया तो देखा कि दो इबरानी आपस में झगड़ रहे हैं। तब उसने उस अंधेरी को कहा कि तू अपने पड़ोसी को क्यों मारता है?।१३। तब उसने कहा कि किसने तुझे हम पर अध्यक्ष अथवा न्यायी ठहराया? क्या तू

चाहता है कि जिस रीति से तूने मिश्री को मार डाला, मुझे भी मार डाले? तब मूसा डरा और कहा कि निश्चय यह बात खुल गई।१४। जब फ़िरौन ने यह बात सुनी तो चाहा कि मूसा को मार डाले। परन्तु मूसा फ़िरौन के आगे से भाग निकला.....।१५।

तौ०, यात्रा, प० २। आ० ११, १२, १३, १४, १५॥

[मूसा आदि विद्याहीन और लड़ाकू लोग थे]

समीक्षक—अब देखिये, **ऐसे कर्मों का करनेहारा मूसा पैगम्बर बन गया!!** जो **'बाइबल'** का मुख्य सिद्धकर्त्ता, मत का आचार्य मूसा कि जिसका चरित्र क्रोधादि दुर्गुणों से युक्त, मनुष्य की हत्या करनेवाला और चोरवत् राजदण्ड से बचनेहारा अर्थात् जब बात को छिपाता था तो झूठ बोलनेवाला भी अवश्य होगा। ऐसे को भी जो ईश्वर मिला, वह पैगम्बर बना। उसने यहूदी आदि का मत चलाया। वह भी ईश्वर के ही सदृश हुआ। इसलिये ईसाइयों के जो मूल पुरुषा हुए हैं, वे सब मूसा आदि से ले करके जंगली अवस्था में थे, विद्यावस्था में नहीं, इत्यादि॥३८॥

[पवित्र स्थान पर जूता उतार कर आने का आदेश]

३९. जब परमेश्वर ने देखा कि वह देखने को एक अलंग फिरा तो ईश्वर ने झाड़ी के मध्य में से उसे पुकारके कहा कि "हे मूसा! हे मूसा!" तब वह बोला "मैं यहां हूँ।४।" तब उसने कहा कि "इधर पास मत आ, अपने पाओं से जूता उतार, क्योंकि यह स्थान जिस पर तू खड़ा है पवित्र भूमि है।५।"

तौ० यात्रा, प० ३। आ० ४। ५॥

[फिर ईसाई पवित्र स्थान पर जूता क्यों ले जाते हैं ?]

समीक्षक—देखिये ऐसे मनुष्य को, जो कि मनुष्य को मारके बालू में गाड़नेवाले से अपने ईश्वर की मित्रता और उसको पैग़म्बर मानते हैं! और देखो, जब तुम्हारे ईश्वर ने मूसा से कहा कि पवित्र स्थान में जूती न ले जानी चाहिये, तुम ईसाई इस आज्ञा के विरुद्ध क्यों चलते हो?॥

प्रश्न—हम जूती के स्थान में टोपी उतार लेते हैं।

उत्तर—यह दूसरा अपराध तुमने किया, क्योंकि टोपी उतारना न ईश्वर ने कहा, न तुम्हारे पुस्तक में लिखा है। और उतारने योग्य को नहीं उतारते, जो नहीं उतारना चाहिये उसको उतारते हो। ये दोनों प्रकार तुम्हारे पुस्तक से विरुद्ध हैं।

प्रश्न—हमारे यूरोप देश में शीत अधिक है, इसलिये हम लोग जूती नहीं उतारते।

उत्तर—क्या शिर में शीत नहीं लगता? जो यही है तो जब यूरोप देश में जाओ तब ऐसा ही करना। परन्तु जब हमारे घर में वा बिछौने में आया करो तब तो जूती उतार दिया करो और जो न उतारोगे तो तुम अपने **'बाइबल'** पुस्तक के विरुद्ध चलते हो। ऐसा तुमको न करना चाहिये॥३९॥

[ईश्वर ने मूसा को जादू का खेल दिखाया]

४०. तब परमेश्वर ने उससे कहा कि 'तेरे हाथ में यह क्या है?' और वह बोला कि "छड़ी"॥ तब उसने कहा कि "उसे भूमि पर डाल दे" और उसने उसे भूमि पर डाल दिया और वह सर्प बन गई और मूसा उसके आगे से भागा।२। तब परमेश्वर ने मूसा से कहा कि "अपना हाथ बढ़ा और उसकी पूंछ पकड़ ले," तब उसने अपना हाथ बढ़ाया और उसे पकड़ लिया......।३।......और वह उसके हाथ में छड़ी हो गई।४। तब परमेश्वर ने उसे कहा कि "फिर तू अपना हाथ अपनी गोद में कर" और उसने अपना हाथ अपनी गोद में किया, जब उसने उसे निकाला तो देखा कि उसका हाथ हिम के समान कोढ़ी था।६। और उसने कहा कि अपना हाथ फिर अपनी गोद में कर, उसने फिर अपने हाथ को अपनी गोद में किया और अपनी गोद से उसे निकाला तो देखा कि जैसी उसकी सारी देह थी वह वैसा फिर हो गया।७। ......तू नील नदी का जल लेके सूखी [भूमि] पर डालियो और वह जो जल तू नदी से निकालेगा सो सूखी [भूमि] पर लोहू हो जायगा।९।

तौ०, यात्रा, प० ४। आ० २। ३। ४। ६। ७। ९॥

[जादूगरी के खेल दिखाना क्या ईश्वर का काम है ?]

समीक्षक—अब देखिये, कैसा बाजीगर का खेल है! खिलाड़ी ईश्वर, उसका सेवक मूसा! और इन बातों को माननेहारे कैसे हैं? क्या आजकल बाजीगर लोग इससे कम करामात करते हैं? यह ईश्वर क्या, यह तो बड़ा खिलाड़ी है ! इन बातों को विद्वान् क्योंकर मानेंगे? और हर-एक वार मैं

परमेश्वर हूँ और मैं इब्राहीम, इज़हाक और याक़ूब का ईश्वर हूँ, इत्यादि हर-एक से अपने मुख से अपनी प्रशंसा करता-फिरता है। यह बात उत्तम जन की नहीं हो सकती, किन्तु किसी दंभी मनुष्य की हो सकती है॥४०॥

[खून की छाप देख ईश्वर का भक्तों के घरों को पहचानना]

४१. ....और फसह का मेम्ना मारो।२१। और एक मूठी जूफा लेओ और उसे उस लोहू में, जो बासन में है, बोरके, ऊपर की चौखट के और द्वार की दोनों ओर उससे छापो और तुममें से कोई बिहान लों अपने घर के द्वार से बाहर न जावे।२२। क्योंकि परमेश्वर मिश्र के मारने के लिये आर-पार जायगा और जब वह ऊपर की चौखट पर और द्वार की दोनों ओर लोहू को देखेगा तब परमेश्वर द्वार से बीत जायगा और नाशक तुम्हारे घरों में न जाने देगा कि मारे।२३।

तौ०, यात्रा, प० १२। आ० २१। २२। २३॥

[क्या ईश्वर विना छाप के घरों को न पहचानता ?]

समीक्षक—भला, यह जो टोने-टामन करनेवाले के समान है, वह ईश्वर सर्वज्ञ कभी हो सकता है? जब लोहू का छापा देखे तभी इस्राएल-कुल का घर जाने, अन्यथा नहीं। यह काम क्षुद्रबुद्धि वाले मनुष्य के सदृश है। इससे यह विदित होता है कि ये बातें किसी जंगली मनुष्य की लिखी हैं॥४१॥

[परमेश्वर द्वारा आधी रात में मिश्रियों की हत्या]

४२. और यों हुआ कि परमेश्वर ने आधी रात को मिश्र के देश में सारे पहिलौठों को फ़िरौन के पहिलौठे से लेके जो अपने सिंहासन पर बैठता था उस बंधुआ के पहिलौठे लों, जो बंदीगृह में था, पशुन के

पहिलौठों समेत नाश किये।२९। और रात को फ़िरौन उठा, वह और उसके सब सेवक और सारे मिश्री उठे और मिश्र में बड़ा विलाप था, क्योंकि कोई घर न रहा जिसमें एक न मरा।३०।

तौ०, यात्रा, प० १२। आ० २९। ३०॥

[निरपराधों की हत्या करना ईश्वर का काम नहीं]

समीक्षक—वाह!! अच्छा! आधी रात को डाकू के समान निर्दयी होकर ईसाइयों के ईश्वर ने लड़के-बाले, वृद्ध और पशु तक भी विना अपराध मार दिये और कुछ भी दया न आयी और मिश्र में बड़ा विलाप होता रहा, तो भी ईसाइयों के ईश्वर के चित्त से निष्ठुरता नष्ट न हुई! ऐसा काम ईश्वर के तो क्या किन्तु किसी साधारण मनुष्य के भी करने का नहीं है। यह आश्चर्य नहीं, क्योंकि यह लिखा है कि **'मांसाहारिणः कुतो दया'**=जब ईसाइयों का ईश्वर मांसाहारी है तो उसको दया का क्या काम है?॥४२॥

[परमेश्वर का इस्राएल के लिये युद्ध करना]

४३. परमेश्वर तुम्हारे लिये युद्ध करेगा....।१४। .....इस्राएल के संतान से कह कि वे आगे बढ़ें।१५। परन्तु तू अपनी छड़ी उठा और समुद्र पर अपना हाथ बढ़ा और उसे दो भाग कर और इस्राएल के सन्तान समुद्र के बीचों-बीच में से सूखी भूमि में होकर चले जायेंगे।१६।

तौ०, यात्रा, प० १४। आ० १४। १५। १६॥

[ईश्वर इस्राएल की सहायता अब क्यों नहीं करता ?]

समीक्षक—क्यों जी! आगे तो ईश्वर भेड़ों के पीछे गड़रिये के समान इस्राएल कुल के पीछे-पीछे डोला करता था, अब न जाने कहाँ गया? नहीं

तो समुद्र के बीच में से चारों ओर की रेलगाड़ियों की सड़क बनवा लेते, जिससे सब संसार का उपकार होता और नाव आदि बनाने का श्रम छूट जाता। परन्तु क्या किया जाय, ईसाइयों का ईश्वर न जाने कहाँ छिप रहा है? इत्यादि बहुत-सी असम्भव लीलायें मूसा के साथ ईश्वर ने की हैं। परन्तु यह विदित हुआ कि ऐसा ईश्वर, ऐसे उसके सेवक और ऐसा ईश्वरकृत पुस्तक हम लोगों से दूर रहै॥४३॥

[परमेश्वर का चौथी पीढ़ी तक वैर निकालना]

४४. ....क्योंकि मैं परमेश्वर तेरा ईश्वर ज्वलित सर्वशक्तिमान् हूँ। पितरों के अपराध का दण्ड, उनके पुत्रों को, जो मेरा वैर रखते हैं, उनकी तीसरी और चौथी पीढ़ी लों देवैया हूँ।५।

तौ॰ यात्रा, प॰ २०। आ॰ ५॥

[पिता के अपराध से चार पीढ़ी तक दण्ड देना अन्याय है]

समीक्षक—भला, यह किस घर का न्याय है कि जो पिता के अपराध से चार पीढ़ी तक दण्ड देना, अच्छा मानना। क्या अच्छे पिता के दुष्ट और दुष्ट के श्रेष्ठ सन्तान नहीं होते? जो ऐसा होगा तो चौथी पीढ़ी तक दण्ड कैसे दे सकेगा? और जो पाँचवीं पीढ़ी से आगे दुष्ट होगा उसको दण्ड न दे सकेगा। **विना अपराध किसी को दण्ड देना अन्यायकारी की बात है॥**४४॥

[रविवार ईश्वर का विश्राम का दिन]

४५. विश्राम के दिन को उसे पवित्र रखने के लिये स्मरण कर।८। छः दिन लों तू परिश्रम कर....।९। और सातवां दिन परमेश्वर तेरे ईश्वर

का विश्राम है....।१०।....परमेश्वर ने विश्राम दिन को आशीष दी....।११।

तौ॰ यात्रा, प॰ २०। आ॰ ८। ९। १०। ११॥

[रविवार में क्या विशेषता थी, जो उसे पवित्र माना ?]

समीक्षक—क्या रविवार एक ही पवित्र दिन है और छः दिन अपवित्र हैं? और क्या परमेश्वर ने छः दिन तक बड़ा परिश्रम किया था कि जिससे थकके सातवें दिन सो गया? और जो रविवार को आशीर्वाद दिया तो सोमवार आदि छः दिनों को क्या दिया? अर्थात् शाप दिया होगा! ऐसा काम विद्वान् का भी नहीं [हो सकता] तो ईश्वर का क्योंकर हो सकता है? भला, रविवार में क्या गुण था और सोमवार आदि ने क्या दोष किया था कि जिससे एक को पवित्रता का वर दिया और अन्यों को ऐसे ही अपवित्र कर दिया!॥४५॥

[पड़ोसी की वस्तु का लालच न करो]

४६. अपने पड़ोसी पर झूठा साक्ष्य मत दे।१६। ....अपने पड़ोसी की स्त्री और उसके दास, उसकी दासी और उसके बैल और उसके गदहे और किसी वस्तु का जो तेरे पड़ोसी की है, लालच मत कर।१७।

तौ॰, यात्रा, प॰ २०। आ॰ १६। १७॥

[क्या परदेशी के माल को हजम कर लें ?]

समीक्षक—वाह! तभी तो ईसाई लोग परदेशियों के माल पर ऐसे झुकते हैं कि जानो प्यासा जल पर, भूखा अन्न पर। जैसी यह केवल मतलबसिन्धु और पक्षपात की बात है, ऐसा ही ईसाइयों का ईश्वर भी है। यदि कोई कहे कि हम सब मनुष्यमात्र को पड़ोसी मानते हैं तो

सिवाय मनुष्यों के अन्य कौन स्त्री और दासी आदि वाले हैं कि जिनको अपड़ोसी गिनें? इसलिये ये बातें स्वार्थी मनुष्यों की हैं, ईश्वर की नहीं॥४६॥

[मनुष्य के हत्यारे को अवश्य दण्ड मिले]

४७. जो कोई किसी मनुष्य को मारे और वह मर जाय, वह निश्चय घात किया जाय।१२। और यदि वह मनुष्य घात में न लगा हो परन्तु ईश्वर ने उसके हाथ में सौंप दिया हो, तब मैं तुझे भागने का स्थान बता दूँगा।१३।

तौ०, यात्रा, प० २१। आ० १२। १३॥

[मनुष्य-हत्या के दोषी मूसा को दण्ड क्यों न दिया ?]

समीक्षक—जो यह ईश्वर का न्याय सच्चा है, तो मूसा एक आदमी को मार, गाड़कर भाग गया था, उसको यह दण्ड क्यों नहीं हुआ? जो कहो ईश्वर ने मूसा को मारने के निमित्त सौंपा था तो ईश्वर पक्षपाती हुआ, क्योंकि उस मूसा का राजा से न्याय क्यों न होने दिया?॥४७॥

[परमेश्वर के लिये बैल की बलि]

४८. ....और कुशल का बलिदान बैलों से परमेश्वर के लिये चढ़ाया।५। और मूसा ने आधा लोहू लेके पात्रों में रक्खा और आधा लोहू वेदी पर छिड़का....।६। और मूसा ने उस लोहू को लेके लोगों पर छिड़का और कहा कि यह लोहू उस नियम का है जिसे परमेश्वर ने इन बातों के कारण तुम्हारे साथ किया है।८। और परमेश्वर ने मूसा से कहा कि "पहाड़ पर मुझ पास आ और वहाँ रह, और मैं तुझे

पत्थर की पटियाँ और व्यवस्था और आज्ञा जो मैंने लिखी है, दूंगा।१२।"

तौ॰, यात्रा, प॰ २४। आ॰ ५। ६। ८। १२॥

[बैल की बलि लेना, वेदी पर लोहू छिड़कना जंगलीपन है]

समीक्षक—अब देखिये, ये सब जंगली लोगों की बातें हैं वा नहीं? और परमेश्वर बैलों का बलिदान लेता, और वेदी पर लोहू छिड़कना, यह कैसी जंगलीपन और असभ्यता की बात है! जब ईसाइयों का खुदा भी बैलों का बलिदान लेवे तो उसके भक्त बैल-गाय के बलिदान की प्रसादी से पेट क्यों न भरें? और जगत् की हानि क्यों न करें?

[क्या ईश्वर को स्याही कलम कागज का भी ज्ञान न था ?]

ऐसी-ऐसी बुरी बातें 'बाइबल' में भरी हैं। इन्हीं के कुसंस्कारों से वेदों में भी ऐसा झूठा दोष लगाना चाहते हैं परन्तु वेदों में ऐसी बातों का नाम भी नहीं।

और यह भी निश्चय हुआ कि ईसाइयों का ईश्वर एक पहाड़ी मनुष्य था, पहाड़ पर रहता था। जब वह खुदा स्याही, लेखनी, काग़ज नहीं बना जानता [था] और न उसको प्राप्त था, इसीलिये पत्थर की पटियों पर लिख-लिख देता था और इन्हीं जंगलियों के सामने ईश्वर भी बन बैठा॥४८॥

[परमेश्वर का मूसा से प्रपञ्च करना]

४९. और बोला कि "तू मेरा रूप नहीं देख सकता, क्योंकि मुझे देखके कोई मनुष्य न जीयेगा।२०।" और परमेश्वर ने कहा कि "देख,

एक स्थान मेरे पास है और तू उस टीले पर खड़ा रह।२१। और यों होगा कि जब मेरा विभव चलकर निकलेगा, तो मैं तुझे पहाड़ के दरार में रक्खूंगा और जब लों जा निकलूं तुझे अपने हाथ से ढांपूंगा।२२। फिर अपना हाथ उठा लूंगा और तू मेरा पीछा देखेगा परन्तु मेरा रूप दिखाई न देगा।२३।"

तौ०, यात्रा, प० ३३। आ० २०। २१। २२। २३॥

[मूसा को प्रपञ्च दिखा कोई व्यक्ति ईश्वर बन बैठा]

समीक्षक—अब देखिये, ईसाइयों का ईश्वर केवल मनुष्यवत् शरीरधारी है और मूसा से कैसा प्रपञ्च रचके आप स्वयं ईश्वर बन गया! जो पीछा देखेगा, रूप न देखेगा, तो हाथ से उसको ढांप भी दिया होगा। जब खुदा ने अपने हाथ से मूसा को ढांपा होगा तब क्या उसके हाथ का रूप उसने न देखा होगा?॥४९॥

"लैव्य व्यवस्था की पुस्तक" (तौरेत)

[परमेश्वर का मूसा के द्वारा बैल की भेंट माँगना]

५०. और परमेश्वर ने मूसा को बुलाया और मंडली के तम्बू में से यह वचन उसे कहा।१। कि इस्राएल के सन्तानों से बोल और उन्हें कह, यदि कोई तुममें से परमेश्वर के लिये भेंट लावे तो तुम ढोर में से अर्थात् गाय-बैल और भेड़ बकरी में से अपनी भेंट लाओ।२।

तौ०, लैव्य व्यवस्था की पुस्तक, प० १। आ० १। २॥

[ईसाइयों का ईश्वर निश्चय ही मांसाहारी था]

समीक्षक—अब विचारिये! ईसाइयों का परमेश्वर गाय, बैल आदि की भेंट लेने वाला, जो कि अपने लिये बलिदान कराने के लिये उपदेश करता है वह बैल, गाय आदि पशुओं के लोहू-मांस का प्यासा-भूखा है वा नहीं? इसी से वह अहिंसक और ईश्वर कोटि में गिना कभी नहीं जा सकता किन्तु मांसाहारी, प्रपञ्ची मनुष्य के सदृश है॥५०॥

[पशुओं को यज्ञवेदी में भूनकर खाना]

५१. और वह उस बैल को परमेश्वर के आगे बलि करे और हारून के बेटे याजक लोहू को निकट लावें और लोहू को यज्ञवेदी के चारों ओर जो मंडली के तंबू के द्वार पर है, छिड़कें।५। तब वह उस भेंट के बलिदान की खाल निकाले और उसे टुकड़ा-टुकड़ा करे।६। और हारून के बेटे याजक यज्ञवेदी पर आग रक्खें और उसपर लकड़ी चुनें।७। और हारून के बेटे याजक उसके टुकड़ों को ओर शिर और चिकनाई को उन लकड़ियों पर जो यज्ञवेदी की आग पर हैं, विधि से धरें।८। ....जिसतें बलिदान की भेंट होवे, जो आग से परमेश्वर के सुगंध के लिये भेंट किया गया।९।

तौ०, लै० व्यवस्था की पुस्तक, प० १। आ० ५। ६। ७। ८। ९॥

[जो ईश्वर बैल आदि की बलि माँगे, वह पापी है]

समीक्षक—तनिक विचारिये! कि बैल को परमेश्वर के आगे उसके भक्त मारें और वह मरवावे और लोहू को चारों ओर छिड़कें, अग्नि में होम करें, ईश्वर सुगन्ध लेवे, भला, यह कसाई के घर से कुछ कमती लीला है? इसी

से न **'बाइबल'** ईश्वरकृत, और न वह, जंगली मनुष्य के सदृश लीलाधारी 'ईश्वर' हो सकता है॥५१॥

[बछिया के बलिदान से पाप की निवृत्ति]

५२. फिर परमेश्वर मूसा से यह कहके बोला।१। कि यदि वह अभिषेक किया हुआ याजक लोगों के पाप के समान पाप करे, तो वह अपने पाप के कारण, जो उसने किया है, अपने पाप की भेंट के लिये निष्खोट एक बछिया परमेश्वर के लिये लावे।३। ....और बछिया के शिर पर अपना हाथ रक्खे और बछिया को परमेश्वर के आगे बलि करे।४।

तौ०, लै० व्य०, प० ४। आ० १। ३। ४॥

[पापों को छुड़ाने के निकृष्टतम प्रायश्चित्त]

समीक्षक—अब देखिये पापों के छुड़ाने के प्रायश्चित्त! स्वयं पाप करें, गाय आदि उत्तम पशुओं की हत्या करें, और परमेश्वर करवावे! धन्य हैं ईसाई लोग कि जो ऐसी बातों के करने-करानेहारे को भी ईश्वर मानकर अपनी मुक्ति आदि की आशा करते हैं!!॥५२॥

[बकरी के बच्चे की भेंट से भी पापों की निवृत्ति]

५३. जब कोई अध्यक्ष पाप करे....।२२।....तब वह बकरी का निष्खोट नर मेम्ना अपनी भेंट के लिये लावे।२३। और....उसे....परमेश्वर के आगे बलि करे ...यह पाप की भेंट है।२४।

तौ०, लै० व्य, पु, प० ४। आ० २२। २३। २४॥

[फिर तो अध्यक्षादि पाप करने से क्यों डरेंगे ?]

समीक्षक—वाह जी, वाह! यदि ऐसा है तो इनके अध्यक्ष अर्थात् न्यायाधीश तथा सेनापति आदि पाप करने से क्यों डरते होंगे? आप तो यथेष्ट पाप करें और प्रायश्चित्त के बदले में गाय, बछिया, बकरे आदि के प्राण लेवें, **तभी तो ईसाई लोग किसी पशु वा पक्षी के प्राण लेने में शङ्कित नहीं होते।**

सुनो ईसाई लोगो! अब तो इस जंगली मत को छोड़के सुसभ्य, धर्ममय वेदमत को स्वीकार करो कि जिससे तुम्हारा कल्याण हो॥५३॥

[भेड़ न मिले, तो कबूतर के दो बच्चे ही सही]

५४. और यदि उसके पास भेड़ लाने की पूँजी न हो तो वह अपने किये हुए अपराध के लिए दो पिंडुकियां और कपोत के दो बच्चे परमेश्वर के लिये लावे....।७।.....और उसका शिर उसके गले के पास से मरोड़ डाले परन्तु अलग न करे।८। ....उसके किये हुए पाप का प्रायश्चित्त करे और उसके लिये क्षमा किया जायगा।१०।

[यदि निर्धन हो, तो कुछ आटा ही ले आवे]

पर यदि उसके पास दो पिंडुकियां और कपोत के दो बच्चे लाने की पूंजी न हो तो ....सेर भर चोखा पिसान का दशवां हिस्सा पाप की भेंट के लिये लावे,* उस पर तैल न डाले....।११। ....और वह क्षमा किया जायगा।१३।

तौ०, लै० व्य० पु०, प० ५। आ० ७। ८। १०। ११। १३॥

[पाप के द्वारा पाप से छुटकारा नहीं मिल सकता]

समीक्षक—अब सुनिये! ईसाइयों में पाप करने से कोई धनाढ्य न डरता होगा और न दरिद्र ही; क्योंकि इनके ईश्वर ने पापों का प्रायश्चित्त करना सहज कर रक्खा है। एक यह बात ईसाइयों की **'बाइबल'** में बड़ी अद्भुत है कि विना कष्ट पाये पाप से पाप छूट जाय! क्योंकि **एक तो पाप किया और दूसरी जीवों की हिंसा की और खूब आनन्द से मांस खाया, और पाप भी छूट गया!!**

[जहाँ ऐसे उपदेश हों, वहाँ दया का क्या काम ?]

भला! कपोत के बच्चे का गला मरोड़ने से वह बहुत देर तक तड़पता होगा, तब भी ईसाइयों को दया नहीं आती! दया क्योंकर आवे? इनके ईश्वर का उपदेश ही हिंसा करने का है। और जब सब पापों का ऐसा ही प्रायश्चित्त है, तो 'ईसा के विश्वास से पाप छूट जाता है', यह बड़ा आडम्बर क्यों करते हैं?॥५४॥

---

* इस ईश्वर को धन्य है कि जिसने बछड़ा, भेड़ी और बकरी का बच्चा, कपोत और पिसान (आटे) तक लेने का नियम किया ! अद्भुत बात तो यह है कि कपोत के बच्चे 'गर्दन मरोड़वाके' लेता था अर्थात् गर्दन तोड़ने का परिश्रम न करना पड़े। इन सब बातों के देखने से विदित होता है कि जंगलियों में कोई चतुर पुरुष था, वह पहाड़ पर जा बैठा और अपने को ईश्वर प्रसिद्ध किया। जंगली अज्ञानी थे, उन्होंने उसी को ईश्वर स्वीकार कर लिया। अपनी युक्तियों से वह पहाड़ पर ही खाने के लिए पशु, पक्षी और अन्नादि मँगा लिया करता था और मौज करता था। उसके

दूत=फरिश्ते काम किया करते थे। सज्जन लोग विचारें कि कहाँ तो बाइबल में बछड़ा, भेड़ी, बकरी का बच्चा, कपोत और 'अच्छे' पिसान का खानेवाला ईश्वर और कहाँ सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, अजन्मा, निराकार, सर्वशक्तिमान् और न्यायकारी इत्यादि उत्तम गुणयुक्त वेदोक्त ईश्वर?

[बलि-पशु की खाल वा भोजन याजक का]

५५. ....सो उसी बलिदान की खाल उसी याजक की होगी, जिसने उसे चढ़ाया।८। और समस्त भोजन की भेंट जो तन्दूर में पकाई जावें और सब जो कड़ाही में अथवा तवे पर, सो उसी याजक की होगी।९।

तौ०, लै० व्य० पु०, प० ७। आ० ८। ९॥

[ईसाई-पुजारी देवी के भोपों से भी बढ़ गये]

समीक्षक—हम जानते थे कि यहां देवी के भोपों और मन्दिरों के पुजारियों की पोपलीला विचित्र है, परन्तु ईसाइयों के ईश्वर और उनके पुजारियों की पोपलीला इससे सहस्रगुणा बढ़कर है, क्योंकि चाम के दाम और भोजन के पदार्थ खाने को आवें तो फिर ईसाइयों के याजकों ने खूब मौज उड़ाई होगी, और अब भी उड़ाते होंगे!

[ईश्वर की दृष्टि में सब प्राणी पुत्रवत् हैं]

भला, कोई मनुष्य एक लड़के को मरवावे और दूसरे लड़के को उसका मांस खिलावे, ऐसा कभी हो सकता है? **वैसे ही मनुष्य और पशु, पक्षी आदि सब जीव ईश्वर के पुत्रवत् हैं। परमेश्वर ऐसा काम कभी नहीं कर सकता।** इसी से यह **'बाइबल'** ईश्वरकृत और इसमें लिखा ईश्वर

और इसके माननेवाले धर्मत्मा कभी नहीं हो सकते। ऐसे ही सब बातें **'लैव्य व्यवस्था'** आदि पुस्तकों में भरी है, कहां तक गिनावें?॥५५॥

"गिनती की पुस्तक" [तौरेत]

[गदही की ईश्वर के दूत बलआम से बातचीत]

५६. सो गदही ने परमेश्वर के दूत को अपने हाथ में तलवार खींचे हुए मार्ग में खड़े देखा, तब गदही मार्ग से अलग खेत में फिर गई, उसे मार्ग में फिरने के लिये बलआम ने गदही को लाठी से मारा।२३। तब परमेश्वर ने गदही का मुंह खोला और उसने बलआम से कहा कि "मैंने तेरा क्या किया है कि तूने मुझे अब तीन वार मारा।२८।"

तौ०, गिनती, प० २२। आ० २३। २८॥

[अब ईसाई-पादरियों तक को भी दूत क्यों नहीं दीखते ?]

समीक्षक—प्रथम तो गदहे तक ईश्वर के दूतों को देखते थे और आज कल बिशप, पादरी आदि श्रेष्ठ वा अश्रेष्ठ मनुष्यों को भी खुदा वा उसके दूत नहीं दीखते हैं! क्या आजकल परमेश्वर और उसके दूत हैं वा नहीं? यदि हैं तो क्या बड़ी नींद में सोते हैं, वा रोगी [हैं?] अथवा किसी अन्य भूगोल में चले गये? वा किसी अन्य धन्धे में लग गये? वा अब ईसाइयों से रुष्ट हो गये? अथवा मर गये? विदित नहीं होता कि क्या हुआ? अनुमान तो ऐसा होता है कि जो अब नहीं हैं, नहीं दीखते, तो तब भी नहीं थे और नहीं दीखते होंगे। ये केवल मनमाने गपोड़े उड़ाये हैं॥५६॥

[सबको मार कुमारियों को अपने लिये जीवित रखना]

५७. सो अब लड़कों में से हर एक बेटे को और हर एक स्त्री को जो पुरुष से संयुक्त हुई हो प्राण से मारो।१७। परन्तु वे बेटियां जो पुरुष से संयुक्त नहीं हुई हैं, उन्हें अपने लिये जीती रक्खो।१८।

तौ०, गिनती०, प० ३१। आ० १७। १८॥

[यह मूषा हिंसक और विषयो व्यक्ति था]

समीक्षक—वाह जी! मूसा पैग़म्बर और तुम्हारा ईश्वर धन्य है कि जो स्त्री-बाल-वृद्ध और पशु-हत्या करने से भी अलग न रहै। और इससे स्पष्ट निश्चित होता है कि मूसा विषयी था; क्योंकि जो विषयी न होता तो अक्षतयोनि अर्थात् पुरुषों से समागम न की हुई कन्याओं को अपने लिये क्यों मँगाता? वा उनको ऐसी निर्दयी वा विषयीपन की आज्ञा क्यों देता?॥५७॥

"समुएल की दूसरी पुस्तक"

[शरणार्थियों की भाँति ईश्वर का तम्बू में रहना]

५८. और उसी रात ऐसा हुआ कि परमेश्वर का वचन यह कहके नाता को पहुंचा।४। कि जा और मेरे सेवक दाऊ से कह कि परमेश्वर यों कहता है कि क्या मेरे निवास के लिये तू एक घर बनावेगा।५। क्योंकि जब से इस्राएल के सन्तानों को मिश्र से निकाल लाया, मैंने तो आज के दिन लों घर में वास न किया, परन्तु तंबू में और डेरे में फिरा किया।६।

तौ॰, समुएल की दूसरी पु॰, प॰ ७। आ॰ ४। ५। ६॥

[तम्बू में ईश्वर नहीं, मनुष्य ही रह सकता है]

समीक्षक—अब [इसमें] कुछ सन्देह न रहा कि 'ईसाइयों का ईश्वर मनुष्यवत् देहधारी नहीं है।' और उलाहना देता है कि मैंने बहुत परिश्रम किया, इधर-उधर डोलता फिरा, अब दाऊद घर बनादे तो उसमें आराम करूं। ईसाइयों को ऐसे ईश्वर और ऐसे पुस्तक को मानने में लज्जा नहीं आती? परन्तु क्या करें बिचारे फस गये। सो फस ही गये। अब निकलने के लिये बड़ा पुरुषार्थ करना उचित है॥५८॥

"राजाओं की पुस्तक" (२)

[परमेश्वर के घर और यरुसलम का विनाश]

५९. और बाबुल के राजा नबूख़ुदनज़र के राज्य के उन्नीसवें बरस के पाँचवें मास सातवीं तिथि में बाबुल के राजा का एक सेवक नबूसरअदान जो निजसेना का प्रधान अध्यक्ष था, यरुसलम में आया।८। और उसने परमेश्वर के मन्दिर और राजा के भवन और यरुसलम के सारे घर और हर एक बड़े घर को जला दिया।९। और कसदियों की सारी सेना ने जो उस निजसेना के अध्यक्ष के साथ थीं, यरुसलम की भीतों को चारों ओर से ढा दिया।१०।

तौ॰, रा॰ पु॰, प॰ २५। आ॰ ८। ९। १०॥

[जो ईश्वर अपना घर भी न बचा सका, वह क्या ईश्वर ?]

समीक्षक—क्या किया जाय, ईसाइयों के ईश्वर ने तो अपने आराम के लिये दाऊद आदि से घर बनवाया था, उसमें आराम करता होगा। परन्तु नबूसरअदान ने ईश्वर के घर को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया और ईश्वर वा उसके दूतों की सेना कुछ भी न कर सकी।

प्रथम तो, इनका ईश्वर बड़ी-बड़ी लड़ाइयाँ मारता था और विजयी होता था परन्तु अब अपना घर जला-तुड़वा बैठा। न जाने चुपचाप क्यों बैठा रहा? और न जाने उसके दूत किधर भाग गये? ऐसे समय पर कोई भी काम न आया और ईश्वर का पराक्रम भी न जाने कहाँ उड़ गया? यदि यह बात सच्ची हो तो जो-जो विजय की बातें प्रथम लिखीं सो-सो सब व्यर्थ हो गईं। क्या मिश्र के लड़के-लड़कियों को मारने में ही शूरवीर बना था? अब शूरवीरों के सामने चुपचाप हो बैठा? यह तो ईसाइयों के ईश्वर ने अपनी निन्दा और अप्रतिष्ठा करा ली!! **ऐसी ही हज़ारों निकम्मी कहानियाँ इस पुस्तक में भरी हैं**॥५९॥

ज़बूर का दूसरा भाग

"काल के समाचार की पहली पुस्तक [इतिहास-१]"

[मरी भेजकर ७० सहस्र पुरुषों को मारना]

६०. सो परमेश्वर मेरे ईश्वर ने इस्राएल पर मरी भेजी और इस्राएल में

से सत्तर सहस्र पुरुष गिर गये।१४।

जबूर, काल०, प० २१ । आ० १४॥

[अपने ही भक्तों को मारना ईश्वर का काम नहीं]

समीक्षक—अब देखिये, इस्राएल के ईसाइयों के ईश्वर की लीला! जिस इस्राएल कुल को बहुत से वर दिये थे और रात-दिन जिनके पालन में डोलता था, अब झट क्रोधित होकर मरी डालके ७०००० (सत्तर सहस्र) मनुष्यों को मार डाला। जो यह किसी कवि ने लिखा है, सत्य है कि—

क्षणे रुष्टः क्षणे तुष्टो रुष्टस्तुष्टः क्षणे क्षणे।

अव्यवस्थितचित्तस्य प्रसादोऽपि भयङ्करः॥

[सुभाषितरत्नभाण्डागार, प्रक० ३। श्लोक १७४]

जैसे कोई मनुष्य क्षण में प्रसन्न, क्षण में अप्रसन्न होता है अर्थात् क्षण-क्षण में प्रसन्न-अप्रसन्न होवे, उसकी प्रसन्नता भी भयदायक होती है, वैसी लीला ईसाइयों के ईश्वर की है॥६०॥

"ऐयूब की पुस्तक"

[शैतान से ऐयूब के प्राणों की भिक्षा माँगना]

६१. और एक दिन ऐसा हुआ कि परमेश्वर के आगे ईश्वर के पुत्र आ

खड़े हुये और शैतान भी उनके मध्य में परमेश्वर के आगे आ खड़ा हुआ।१। और परमेश्वर ने शैतान से कहा कि "तू कहां से आता है?" तब शैतान ने उत्तर देके परमेश्वर से कहा कि "पृथिवी पर घूमते और इधर-उधर से फिरते चला आता हूं।२।" तब परमेश्वर ने शैतान से पूछा कि "तूने मेरे दास ऐयूब को जांचा है कि उसके समान पृथिवी पर कोई नहीं है, वह सिद्ध और खरा जन ईश्वर से डरता और पाप से अलग रहता है और अब लों अपनी सच्चाई को धर रक्खा है और तूने मुझे उसे अकारण नाश करने को उभारा है।३।" तब शैतान ने उत्तर देके परमेश्वर से कहा कि "चाम के लिये चाम; हां, जो मनुष्य का है सो अपने प्राण के लिये देगा।४। परन्तु अब अपना हाथ बढ़ा और उसके हाड़-माँस को छू, तब वह निःसन्देह तुझे तेरे सामने त्यागेगा।५।" तब परमेश्वर ने शैतान से कहा कि "देख, वह तेरे हाथ में है, केवल उसके प्राण को बचा।६।" तब शैतान परमेश्वर के आगे से चला गया और ऐयूब को सिर से तलवे लों बुरे फोड़ों से मारा।७।

जबूर, ऐयूब, प० २। आ० १।२।३।४।५।६।७॥

[जो शैतान से भक्तों को नहीं बचा सका, वह क्या ईश्वर ?]

समीक्षक—अब देखिये ईसाइयों के ईश्वर का सामर्थ्य कि शैतान उसके सामने उसके भक्तों को दुःख देता है!! न शैतान को दण्ड दे सकता है, न अपने भक्तों को बचा सकता है और न उसके दूतों में से कोई उसका सामना कर सकता है। एक शैतान ने सबको भयभीत कर रक्खा है। और ईसाइयों का ईश्वर सर्वज्ञ भी नहीं, जो सर्वज्ञ होता तो ऐयूब की परीक्षा शैतान से क्यों कराता?॥६१॥

"उपदेश की पुस्तक [सभोपदेशक]"

[बुद्धि की वृद्धि से शोक की वृद्धि]

६२. ....हां, मेरे अन्त:करण ने बुद्धि और ज्ञान बहुत देखा है।१६। और मैंने बुद्धि और बौड़ाहपन और मूढ़ता जानने को मन लगाया, मैंने जान लिया कि यह भी मन का झंझट है।१७। क्योंकि अधिक बुद्धि में बड़ा शोक है और जो ज्ञान में बढ़ता है सो दु:ख में बढ़ता है।१८।

जबूर, उ० पु०, प० १। आ० १६। १७। १८॥

[बुद्धिवृद्धि में शोक वा दु:ख मानना मूर्खता है]

समीक्षक—अब देखिये! [यहाँ] जो बुद्धि और ज्ञान पर्यायवाची हैं, उनको दो मानते हैं। और बुद्धि की वृद्धि में शोक और दु:ख मानना, विना अविद्वान् के ऐसा लेख कौन लिख सकता है? इसलिये यह **'बाइबल'** ईश्वर की बनाई तो क्या किसी विद्वान् की भी बनाई नहीं है॥६२॥

यह थोड़ा-सा **तौरेत** और **ज़बूर** के विषय में लिखा। इसके आगे थोड़ा-सा **'मत्ती-रचित इंजील'** आदि के विषय में लिखा जायगा। अब जिसको ईसाई लोग बहुत प्रमाणभूत मानते हैं, जिसका नाम, **'इंजील'** रक्खा है, उसकी परीक्षा थोड़ी-सी लिखते हैं कि यह कैसी है—

"मत्ती-रचित इंजील"

[यीशु ख्रीष्ट की कुमारी मरियम से उत्पत्ति]

६३. यीशु ख्रीष्ट का जन्म इस रीति से हुआ—उसकी मां मरियम की यूसुफ से मंगनी हुई थी परन्तु उनके इकट्ठे होने के पहिले वह देख पड़ी कि 'पवित्र-आत्मा' से गर्भवती है।१८। ....देखो, परमेश्वर के एक दूत ने स्वप्न में उसे दर्शन दे कहा—"हे दाऊद के सन्तान यूसुफ! तू अपनी स्त्री मरियम को यहां लाने से मत डर, क्योंकि उसको जो गर्भ रहा है सो 'पवित्र-आत्मा' से है।२०।"

मत्तीरचित इंजील, प० १। आ० १८। २०॥

[कुमारी से पुत्रोत्पत्ति सृष्टि-नियम के विपरीत है]

समीक्षक—इन बातों को कोई विद्वान् नहीं मान सकता कि जो प्रत्यक्षादि प्रमाण और सृष्टिक्रम से विरुद्ध हैं। इन बातों का मानना मूर्ख मनुष्यों, जंगलियों का काम है, सभ्य विद्वानों का नहीं। भला, जो परमेश्वर का नियम है उसको कोई तोड़ सकता है? और जो परमेश्वर भी अपने नियम को उलटा-पलटा करे तो उसकी आज्ञा को कोई न माने, और वह भी सर्वज्ञ और निर्भ्रम न रहै।

[क्यों न सब कुमारियों के बालक ईश्वर के माने जायें]

ऐसे तो जिस-जिस कुमारिका के गर्भ रह जाय, तब सब कोई ऐसे कह सकते हैं कि इसमें गर्भ का रहना ईश्वर की ओर से है। और झूठ-मूठ कह दे कि परमेश्वर के दूत ने मुझको स्वप्न में कह दिया है

कि यह गर्भ परमात्मा की ओर से है।

[सूर्य से कुन्ती का गर्भवती होना भी ऐसा हो पाखण्ड है]

जैसा यह असम्भव प्रपंच रचा है, वैसा ही सूर्य से कुन्ती का गर्भवती होना भी पुराणों में असम्भव लिखा है। ऐसी-ऐसी बातों को **'आँख के अन्धे गाँठ के पूरे'** लोग मानकर भ्रमजाल में गिरते हैं। यह ऐसी बात हुई होगी कि किसी पुरुष के साथ समागम होने से मरियम गर्भवती हुई होगी, उसने वा किसी दूसरे ने ऐसी असम्भव बात उड़ा दी होगी कि इसमें गर्भ ईश्वर की ओर से है॥६३॥

६४. यीशु बपतिस्मा लेके तुरन्त जल से ऊपर आया, और देखो! उसके लिये स्वर्ग खुल गया और उसने ईश्वर के आत्मा को कपोत की नांईं उतरते और अपने ऊपर आते देखा।१६।

मत्ती इं०, प० ३, आ० १६॥

समीक्षक—भला, ईश्वर का आत्मा आंख से कभी दीख सकता है? और व्यापक ईश्वर कपोत की नाईं न कभी उतरता, न चढ़ता है। और जो चढ़ता-उतरता है, वह ईश्वर ही नहीं होता॥६४॥

[यीशु की परीक्षा; उसका ४० दिन भूखा रहना]

६५. तब आत्मा यीशु को जंगल में ले गया कि शैतान से उसकी परीक्षा की जाय।१। वह चालीस दिन और चालीस रात उपवास करके पीछे भूखा हुआ।२। तब परीक्षा करनेहारे ने कहा कि "जो तू ईश्वर का पुत्र है तो कह दे कि ये पत्थर रोटियां बन जावें।३।"

मत्ती इं०, प० ४। आ० १।२।३॥

[ईश्वर ने शैतान से ईसा को परीक्षा क्यों कराई ?]

समीक्षक—इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि ईसाइयों का ईश्वर सर्वज्ञ नहीं, क्योंकि जो सर्वज्ञ होता तो उसकी परीक्षा शैतान से क्यों कराता? स्वयं जान लेता। भला, किसी ईसाई को आजकल चालीस रात-दिन भूखा रक्खें तो कभी बच सकेगा? और इससे यह भी सिद्ध हुआ कि न वह ईश्वर का बेटा [था] और न कुछ उसमें करामात अर्थात् सिद्धि थी। नहीं तो शैतान के सामने पत्थर को रोटियां क्यों न बना देता? और आप भूखा क्यों रहता? और सिद्धान्त यह है कि जो परमेश्वर ने पत्थर बनाये हैं, उनको रोटी कोई भी नहीं बना सकता। और ईश्वर भी पूर्वकृत नियम को उलटा नहीं कर सकता, क्योंकि वह सर्वज्ञ [है] और उसके सब काम विना भूल-चूक के हैं॥६५॥

६६. जब यीशु ने सुना कि योहन बन्दीगृह में डाला.....।१२।

मत्ती इं०, प० ४। आ० १२॥

समीक्षक—जब 'सुनकर' योहन का बन्दीगृह में पड़ना जाना, तो [ईसाइयों का ईश्वर] सर्वज्ञ नहीं; क्योंकि सुनके जानना असर्वज्ञ जीवों का काम है। यह सुनके जानना, जानके भूलना यह ईश्वर का स्वभाव नहीं, किन्तु जीव का स्वभाव है॥६६॥

[मछुवों को मनुष्यों के मछुवे बनाने का प्रलोभन]

६७. उसने उनसे कहा—"तुम मेरे पीछे आओ, मैं तुमको मनुष्यों के मछुवे बनाऊंगा।१९।" वे तुरन्त जालों को छोड़के उसके पीछे हो लिये।२॥

मत्ती० इं०, प० ४। आ० १९। २०॥

[इसीसे ईसाई गरीबों को अपने जाल में फँसाते हैं]

समीक्षक—विदित होता है कि इसी पाप अर्थात् जो **'तौरेत'** में 'दश-आज्ञाओं' में लिखा है कि **'सन्तान लोग अपने माता-पिता की सेवा और मान्य करें जिससे उनकी उमर बढ़े' और ईसा ने न अपने माता-पिता की सेवा की और दूसरों को भी माता-पिता की सेवा से छुड़ाया, इसी अपराध से चिरंजीवी न रहा।** और यह भी विदित हुआ कि ईसा ने मनुष्यों को फसाने के लिये एक मत चलाया है कि जाल में मच्छी के समान मनुष्यों को स्वमत के जाल में फसाकर अपना प्रयोजन साधें।

जब ईसा ही ऐसा था तो आजकल के पादरी लोग अपने जाल में मनुष्यों को फसावें तो क्या आश्चर्य है? क्योंकि जैसे बड़ी-बड़ी और बहुत मच्छियों को जाल में फसानेवाले की प्रतिष्ठा और जीविका अच्छी होती है, इसी से जो बहुतों को अपने मत में फसा ले, उसकी अधिक प्रतिष्ठा और जीविका होती है। इसी से ये लोग, जिन्होंने वेद और शास्त्रों को न पढ़ा, न सुना, उन बेचारे भोले मनुष्यों को अपने जाल में फसाके, उनके मा-बाप, कुटुम्ब

आदि से पृथक् कर देते हैं,

[आर्य लोग भोले लोगों को ईसाई होने से बचायें]

इससे सब विद्वान् आर्यों को उचित है कि आप इनके भ्रमजाल से बचें और अन्य भोले-भाले अपने भाइयों को भी बचावें॥६७॥

[ईसा का सब तरह के रोगियों को नीरोग करना]

६८. तब यीशु सारे गलील देश में उनकी सभाओं में उपदेश करता हुआ और राज्य का सुसमाचार प्रचार करता हुआ और लोगों में हर एक रोग और हर एक व्याधि को चंगा करता हुआ फिरा किया।२३।....सब रोगियों को जो नाना प्रकार के रोगों और पीडाओं से दु:खी थे और भूतग्रस्तों और मृगी-वालों और अर्धांगियों को उसके पास लाये और उसने उन्हें चंगा किया।२४।

मत्ती० इं०, प० ४। आ० २३। २४॥

[रोगियों को ठीक करने का प्रचार पाखण्ड है]

समीक्षक—जैसे आजकल पोपलीला, भूत निकालने के मन्त्र और भस्म की चुटकी देने से भूतों को निकालना, पुरश्चरण, आशीर्वाद, ताबीज और रोगों को छुड़ाना सच्चा हो, तो वह **'इंजील'** की बात भी सच्ची होवे। इसलिये भोले मनुष्यों को भ्रम में फसाने के लिये ये बातें हैं। जो ईसाई लोग ईसा की बातों को मानते हैं, तो यहाँ के देवी-भोपों की बातें क्यों नहीं मानते? क्योंकि ये बातें उन्हीं के सदृश हैं॥६८॥

[जो मन में दीन हैं, उन्हें ही स्वर्ग मिलेगा]

६९. धन्य हैं वे जो मन में दीन हैं, क्योंकि स्वर्ग का राज्य उन्हीं का है।३।

मत्ती० इं०, प० ५ । आ० ३॥

[सब दीन स्वर्ग में जायेंगे, तो वहाँ राज्याधिकारी कौन होगा ?]

समीक्षक—जो स्वर्ग एक है तो राजा भी एक होना चाहिये। इसलिये जितने दीन हैं, वे सब स्वर्ग को जावेंगे, तो स्वर्ग में राज्य का अधिकार किसको होगा? अर्थात् परस्पर लड़ाई-भिड़ाई करेंगे और राज्यव्यवस्था खण्ड-बण्ड हो जायगी। और 'दीन' के कहने से जो कंगला अर्थ लोगे, तब तो ठीक नहीं; जो निरभिमानी [अर्थ] लोगे, तो भी ठीक नहीं, क्योंकि दीन और निरभिमानी का एकार्थ नहीं। किन्तु जो मन में दीन होता है, उसको सन्तोष कभी नहीं होता, इसलिये यह बात ठीक नहीं॥६९॥

[स्वर्ग में सबसे छोटा गिने जाने की बात भयमात्र है]

७०. ....क्योंकि मैं तुमसे सच कहता हूँ कि जब लों आकाश और पृथिवी टल न जायें, तब लों व्यवस्था से एक मात्रा अथवा एक बिन्दु विना पूरा हुए नहीं टलेगा।१८। इसलिये जो कोई इन अति छोटी आज्ञाओं में से एक को लोप करे और लोगों को वैसे ही सिखावे, वह स्वर्ग के राज्य में सबसे छोटा कहावेगा।१९।

मत्ती इं०, प० ५, आ० १८।१९॥

समीक्षक—जब आकाश और पृथिवी टल जायें तब व्यवस्था भी टल जायगी। ऐसी अनित्य व्यवस्था मनुष्यों की होती है, सर्वज्ञ ईश्वर की नहीं। और यह एक प्रलोभन और भयमात्र दिया है कि जो इन आज्ञाओं को न मानेगा वह स्वर्ग में सबसे छोटा गिना जायगा॥

जब यह ईसा की साक्षी है तो **'तौरेत'** और **'जबूर'** के लेख को भी ईसाई लोगों को अवश्य मानना होगा। **यद्यपि उन पुस्तकों में जो बातें अच्छी हैं, वे वेदानुकूल होने से खण्डनीय नहीं हो सकतीं, किन्तु मन्तव्य हैं। परन्तु उनमें जितने दोष हैं, उनका उत्तर देना ईसाइयों पर निर्भर रखता है।** उस पुस्तक में बहुतांश तो इतिहास ही भरा है और बहुत-सी बातें असम्भव भी हैं। ऐसे पुस्तक के सत्य होने में ईसा का साक्ष्य देना ईसा को अविद्वान् [सिद्ध] कर देता है॥७०॥

७१. मैं तुमसे कहता हूं, यदि तुम्हारा धर्म अध्यापकों और फरीसियों के धर्म से अधिक न होवे, तो तुम स्वर्ग के राज्य में प्रवेश करने न पाओगे।२०।

[मत्ती इं०, प० ५, आ० २०॥]

समीक्षक—जब धर्माचरण से ही स्वर्ग प्राप्त है, तो चाहे वहां, चाहे उस समय में, चाहे जो कोई मनुष्य धर्मात्मा होगा, वह स्वर्ग पावेगा। ईसा के मानने की आवश्यकता नहीं ॥७१॥

७२. सो जैसा तुम्हारा स्वर्गवासी पिता सिद्ध है तैसे तुम भी सिद्ध होओ।४८।

मत्ती इं०, प० ५, आ० ४८॥

समीक्षक—जब सबका पिता परमेश्वर है, तो ईसाई लोग केवल ईसा का पिता परमेश्वर को कहते हैं, यह इनकी बड़ी भूल की बात है॥७२॥

[अपने लिये पृथिवी पर धन-संचय न करो]

७३. हमारी दिनभर की रोटी आज हमें दे।१०। अपने लिये पृथिवी पर धन का संचय मत करो....।१९।

मत्ती इं०, ६ । आ० ११। १९॥

[फिर ईसाई लोग क्यों धन-संचय करते हैं ?]

समीक्षक—इससे विदित होता है कि जिस समय ईसा का जन्म हुआ था, उस समय लोग जंगली और दरिद्र थे तथा ईसा भी वैसा ही दरिद्र था। इसी से तो दिनभर की रोटी की प्राप्ति के लिये ईश्वर से प्रार्थना करता और सिखलाता है॥ जब ऐसा है तो ईसाई लोग धनसंचय क्यों करते हैं? उनको चाहिये कि ईसा के वचन से विरुद्ध न चलकर सब दान-पुण्य करके दीन हो जायें॥७३॥

[यीशु को प्रभु कहनेवालों को स्वर्ग न मिलेगा]

७४. हर एक जो मुझसे "हे प्रभु! हे प्रभु!" कहता है, स्वर्ग के राज्य में प्रवेश नहीं करेगा....।२१।

मत्ती इं०, ७। आ० २१॥

[तब तो सारे पादरी नरक में जायेंगे ?]

समीक्षक—अब विचारिये, बड़े-बड़े पादरी-बिशप साहब और कृश्चीन लोग, 'जो यह ईसा का वचन सत्य है', ऐसा समझें, तो ईसा को प्रभु अर्थात् ईश्वर कभी न कहें, यदि इस बात को न मानेंगे, तो पाप से कभी नहीं बच सकेंगे॥७४॥

[ईसा स्वर्ग में कुकर्मियों को सहयोग न देगा]

७५. उस दिन में बहुतेरे मुझसे कहेंगे....।२२। तब मैं उनसे खोलके कहूँगा—"मैंने तुमको कभी नहीं जाना है। हे कुकर्म करनेहारो मुझसे दूर होओ।२३।"

मत्ती इं०, प०७। आ० २२। २३॥

[यह केवल भोले लोगों को प्रलोभन देने की बात है]

समीक्षक—देखिये, ईसा जंगली मनुष्यों को विश्वास कराने के लिए स्वर्ग में न्यायाधीश बनना चाहता था। यह केवल भोले मनुष्यों को प्रलोभन देने की बात है॥७५॥

[हाथ से छूते ही कोढ़ी का कोढ़ दूर]

७६. और देखो, एक कोढ़ी ने आ उसको प्रणाम कर कहा—"हे प्रभु! जो आप चाहें तो मुझे शुद्ध कर सकते हैं।२।" यीशु ने हाथ बढ़ा उसे छूके कहा—'मैं तो चाहता हूँ शुद्ध होजा', और उसका कोढ़ तुरन्त शुद्ध हो गया।३।

मत्ती इं०, प० ८ । आ० २। ३॥

[फिर पुराणों की ऐसी ही बातें असत्य क्यों ?]

समीक्षक—ये सब बातें भोले मनुष्यों के फसाने की हैं, क्योंकि जब ईसाई लोग इन विद्या और सृष्टिक्रमविरुद्ध बातों को सत्य मानते हैं तो शुक्राचार्य, धन्वन्तरि, कश्यप आदि की बातें, जो कि पुराणों और **'महाभारत'** में [वर्णित है कि] अनेक दैत्यों की मरी हुई सेना को जिला दिया; बृहस्पति के पुत्र कच को टुकड़े-टुकड़े कर जानवरों और मच्छियों को खिला दिया, फिर भी शुक्राचार्य ने जीवित कर दिया; पश्चात् कच को मारकर शुक्राचार्य को खिला दिया, फिर उसको पेट में जीवित कर बाहर निकाला; आप मर गया उसको कच ने जीवित किया; कश्यप ऋषि ने मनुष्यसहित वृक्ष को तक्षक से भस्म हुए पीछे, पुनः वृक्ष और मनुष्य को जिला दिया; धन्वन्तरि ने लाखों मुर्दे जिलाये, लाखों कोढ़ी आदि रोगियों को चंगा किया, लाखों अन्धों और बहिरों को आँख और कान दिये, आदि कथाओं को मिथ्या क्यों कहते हैं? जो उनकी बातें मिथ्या हैं, तो ईसा की बातें मिथ्या क्यों नहीं? जो दूसरों की [सच्ची] बातों को मिथ्या और अपनी झूठी को सच्ची कहते हैं, तो वे हठी क्यों नहीं? इसलिये ईसाइयों की बातें केवल हठ और लड़कों के समान हैं॥७६॥

[तथाकथित भूतों को सूअरों में बिठाया]

७७. .... तब दो भूतग्रस्त मनुष्य कब्र-स्थान से निकलकर उससे आ मिले, जो यहाँ लों अतिप्रचंड थे कि उस मार्ग से कोई नहीं जा सकता था।२८। और देखो, उन्होंने चिल्लाके कहा—"हे यीशु ईश्वर के पुत्र! आपको हमसे क्या काम, क्या आप समय के आगे हमें पीड़ा देने को यहाँ आये हैं।२९।" बहुत-से सुअरों का झुण्ड उनसे

कुछ दूर चरता था।३०। सो भूतों ने उससे विनति कर कहा—"जो आप हमको निकालते हैं तो सूअरों के झुंड में पैठने दीजिये"।३१। उसने उनसे कहा—"जाओ", और वे निकल के सुअरों के झुंड में पैठे और देखो सुअरों का सारा झुंड कड़ाड़े पर से समुद्र में दौड़के गिर गया और पानी में डूब मरा।३२।

मत्ती इं०, प० ८। आ० २८। २९। ३०। ३१। ३२॥

[मुर्दों का कब्र से निकलकर आना असम्भव है]

समीक्षक—भला, यहाँ तनिक विचार करें तो ये बातें सब झूठी हैं, क्योंकि मरा हुआ मनुष्य कब्र-स्थान से कभी नहीं निकल सकता। वे किसी पर न जाते, न संवाद करते हैं, ये सब बातें अज्ञानी लोगों की हैं। जो कि महाजंगली हैं, वे ऐसी बातों पर विश्वास लाते हैं।

[तथाकथित भूतों के साथ बेचारे सूअर क्यों मरवा दिये ?]

और उन सुअरों की हत्या कराई। सूअरवालों की हानि करने का पाप ईसा को हुआ होगा। और ईसाई लोग ईसा को 'पाप को क्षमा और पवित्र करनेवाला' मानते हैं, तो उन भूतों को पवित्र क्यों न कर सका? और सूअरवालों की हानि क्यों न भर दी? क्या आजकल के सुशिक्षित ईसाई अंगरेज लोग इन गपोड़ों को भी मानते होंगे? यदि मानते हैं, तो भ्रमजाल में पड़े हैं॥७७॥

[एक अर्धांगी का रोग दूर करना]

७८. देखो! लोग एक अर्धांगी को, जो खटोले पर पड़ा था, उसके पास लाये और यीशु ने उनका विश्वास देखके कहा—"हे पुत्र!

ढाढ़स कर, तेरे पाप क्षमा किये गये हैं।२।"

मत्ती इं०, प० ९ । आ० २॥

[पाप कभी क्षमा नहीं होते; अर्धांगी का ठीक होना ढोंग]

समीक्षक—यह भी वैसी ही असम्भव बात है, जैसी पूर्व लिख आये हैं। और जो पाप को क्षमा करने की बात है, वह केवल भोले लोगों को प्रलोभन देकर फसाना है। जैसे दूसरे के पीये मद्य, भांग और अफीम खाये का नशा दूसरे को नहीं प्राप्त हो सकता, वैसे ही **किसी का किया हुआ पाप किसी के पास नहीं जाता, किन्तु जो करता है वही भोगता है; यही ईश्वर का न्याय है।** यदि दूसरे का किया पाप-पुण्य दूसरे को प्राप्त होवे अथवा न्यायाधीश स्वयं ले लेवे वा कर्त्ताओं को ही यथायोग्य फल ईश्वर न देवे, वह अन्यायकारी हो जावे॥७८॥

७९. .....क्योंकि मैं धर्मियों को नहीं, परन्तु पापियों को पश्चात्ताप के लिये बुलाने को आया हूँ।१३।

मत्ती इं०, प० ९ । आ० १३॥

समीक्षक—अब विचारिये कि धर्मात्माओं को ईसाई होना कुछ आवश्यक नहीं, क्योंकि वे तो धर्म से ही मुक्ति को जायेंगे। और इससे यह सिद्ध हुआ कि **धर्मादि आचरण ही मुक्ति के साधन हैं,** ईसा नहीं; क्योंकि ईसाई भी जब तक धर्म न करेंगे, तब तक उनकी भी सद्गति नहीं होगी॥७९॥

[बारह शिष्यों को भूतों पर अधिकार देना]

८०. यीशु ने अपने बारह शिष्यों को अपने पास बुलाके उन्हें अशुद्ध भूतों पर अधिकार दिया कि उन्हें निकालें और हर-एक रोग और हर-एक व्याधि को चंगा करें।१।

मत्ती इं०, प० १० । आ० १॥

[भूतों का आना और विना इलाज रोग दूर होना असम्भव]

समीक्षक—ये वे ही शिष्य हैं, जिनमें से एक ३०) रुपयों के लोभ पर ईसा को पकड़ावावेगा और अन्य बदलकर अलग-अलग भागेंगे। भला, जब ये बातें विद्या से ही विरुद्ध हैं कि भूतों का आना वा निकालना, विना औषधि वा पथ्य के व्याधियों का छूटना, सृष्टिक्रम के अनुसार असम्भव है, इसलिये ऐसी-ऐसी बातों का मानना अज्ञानियों का काम है॥८०॥

[जीव में यदि ईश्वर बोलता है, तो वही फल भोगेगा]

८१. बोलनेहारे तो तुम नहीं हो, परन्तु तुम्हारे पिता का आत्मा तुममें बोलता है।२०।

मत्ती इं०, प० १० । आ० २० ॥

समीक्षक—जब 'परमेश्वर का आत्मा' ही सबमें बोलता है तो वही मिथ्याभाषणादि पापों से लिप्त होकर दुःखरूपी नरक में पड़ेगा। जो ऐसा है, तो मूसा ने 'दश आज्ञा' -विषय में उपदेश किया कि 'मिथ्या मत बोलो', [फिर] यह उपदेश क्यों किया? इसलिये जीवों के व्यवहार में जीव ही बोलते हैं, ईश्वर नहीं ॥८१॥

[लोगों में फूट डालना बुरी बात है]

८२. मत समझो कि मैं पृथिवी पर मिलाप करवाने को आया हूँ, मैं मिलाप कराने नहीं, परन्तु खड्ग चलवाने को आया हूँ।३४। मैं मनुष्य को उसके पिता से, बेटी को उसकी माँ से, और पतोहू को उसकी सास से अलग करने आया हूँ।३५। मनुष्य के घर के ही लोग उसके वैरी होंगे।३६।

मत्ती इं०, प० १० । आ० ३४ । ३५। ३६॥

समीक्षक—ऐसी फूट कराके, लड़ाई-झगड़ा मचाके मनुष्यों को दुःख देनेहारे और खड्ग चलानेहारे पिता-पुत्र, मा-बेटी, पतोहू-सास आदि में फूट करा परस्पर वैर बढ़ानेहारे मनुष्य के लिये यह बहुत बुरा काम है। **विदित होता है कि इसी उपदेश को ईसाई लोगों ने अधिक प्रचार में लाया है। जहाँ ये लोग जाते हैं, वहीं भरपूर फूट हो जाती है। मेल का नाम-निशान भी नहीं रहता। इसी से अपने पड़ोसियों का, आपस में उनको लड़ाकर माल मारना, किसी के लड़के को बहकाकर माता-पिता से अलग कर [जीवन] नष्ट कर देना सिखलाया है।** यह केवल दोष है। इसको 'तर्क कर देना' बहुत अच्छी बात है ॥८२॥

८३. यीशु लोगों से बात करता ही था कि देखो, उसकी माता और उसके भाई बाहर खड़े हुए उससे बोलना चाहते थे।४६। तब किसी ने उससे कहा—"देखिये! आपकी माता और आपके भाई बाहर खड़े

हुए आपसे बोलना चाहते हैं।४७।" .... उसने कहनेहारे को उत्तर दिया कि "मेरी माता कौन है?॥ और मेरे भाई कौन हैं?"....।४८।

मत्ती इं०, प० १२ । आ० ४६ । ४७। ४८॥

समीक्षक—देखिये, प्रथम तो **'तौरेत'** और **'ज़बूर'** की ईसा साक्षी देता है कि उसका एक बिन्दु भी झूठा नहीं। और **उसमें अपने माता, पिता का मान करना लिखा है। और यहाँ माता आदि का अपमान करता है। यह केवल हठ की बात है। और इसी से उसने आयुविशेष न पाया। क्योंकि जो ईसा अपने माता-पिता की सेवा करता तो उसका आयु भी बढ़ता।** और यह पूर्वापरविरुद्ध बात होने से ईसा कुछ विद्वान् भी नहीं था। हाँ, उन जंगली मनुष्यों में कुछ अच्छा था॥८३॥

[सात रोटियों से ४ सहस्र की तृप्ति]

८४. तब यीशु ने उनसे कहा—"तुम्हारे पास कितनी रोटियाँ हैं?" उन्होंने कहा—"सात और थोड़ी-सी छोटी मछलियाँ।३४।" तब उसने लोगों को भूमि पर बैठने की आज्ञा दी।३५। तब उसने उन सात रोटियों को और मछलियों को लेके धन्य मानके तोड़ा और अपने शिष्यों को दिया और शिष्यों ने लोगों को दिया।३६। सो सब खाके तृप्त हुए और जो टुकड़े बच रहे, उनके सात टोकरे भरे उठाये।३७। जिन्होंने खाया सो स्त्रियों और बालकों को छोड़ चार सहस्र पुरुष थे।३८।

मत्ती इं०, प० १५ । आ० ३४। ३५। ३६। ३७। ३८॥

[ईसा ऐसा सिद्ध था, तो भूख में गूलर क्यों खाता था ?]

समीक्षक—अब देखिये, क्या यह आजकल के झूठे सिद्धों और इन्द्रजाली आदि के समान छल की बात नहीं है? उन रोटियों में अन्य रोटियाँ कहां से आ गईं? **यदि ईसा में ऐसी सिद्धियाँ होतीं तो आप भूखा हुआ गूलर के फल खाने को क्यों भटका करता था?** अपने लिये मिट्टी, पानी और पत्थर आदि से मोहनभोग और रोटियाँ क्यों न बना लीं? ये सब बातें लड़कों के खेलपन की हैं। जैसे, कितने ही साधु, वैरागी ऐसी छल की बातें करके भोले मनुष्यों को ठगते हैं, वैसे ही ये भी हैं॥८४॥

[हर एक कर्मानुसार फल पावेगा]

८५. ....और तब वह हर एक मनुष्य को उसके कार्य के अनुसार फल देगा।२७।

मत्ती इं०, प० १६ । आ० २७॥

[कर्मानुसार फल मिलेगा, तो पाप-क्षमा की बात व्यर्थ]

समीक्षक—जब कर्मानुसार फल दिया जायगा तो ईसाइयों का पाप-क्षमा होने का उपदेश करना व्यर्थ है। और वह सच्चा हो, तो यह झूठा होवे। यदि कोई कहे कि क्षमा करने के योग्य क्षमा किये जाते और क्षमा न करने योग्य क्षमा नहीं किये जाते हैं, यह भी ठीक नहीं; क्योंकि सब कर्मों के फल यथायोग्य देने से ही न्याय और दया पूरी होती है॥८५॥

[तनिक से विश्वास से असम्भव भी सम्भव]

८६. ....हे अविश्वासी और हठीले लोगो!....।१७। मैं तुमसे सत्य

कहता हूँ, यदि तुमको राई के एक दाने के तुल्य विश्वास हो, तो तुम इस पहाड़ से जो कहोगे कि यहाँ से वहां चला जा, वह चला जायगा और कोई काम तुमसे असाध्य नहीं होगा।२०।

मत्ती इं०, प० १७ आ० १७। २०॥

[विश्वास कराकर शिष्य को क्यों न पवित्र किया !]

समीक्षक—अब, जो ईसाई लोग उपदेश करते-फिरते हैं कि 'आओ, हमारे मत में पाप-क्षमा कराओ, मुक्ति पाओ' आदि, वह सब मिथ्या है; क्योंकि जो ईसा में पाप छुड़ाने, विश्वास जमाने और पवित्र करने का सामर्थ्य होता, तो अपने शिष्यों के आत्माओं को निष्पाप, विश्वासी, पवित्र क्यों न कर देता जो ईसा के साथ-साथ घूमते थे? जब उन्हीं को शुद्ध, विश्वासी, और उनका कल्याण न कर सका, तो वह मरे पर न जाने कहाँ है? इस समय किसी को पवित्र नहीं कर सकेगा।

[विश्वासरहित चेलों की बनाई इंजील प्रमाण के अयोग्य]

जब ईसा के चेले राई-भर विश्वास से [भी] रहित थे, और उन्हीं ने यह 'इंजील' पुस्तक बनाई है, तब इसका प्रमाण नहीं हो सकता, क्योंकि जो अविश्वासी, अपवित्रात्मा, अधर्मी मनुष्यों का लेख होता है, उस पर विश्वास करना कल्याण की इच्छा करनेवाले मनुष्यों का काम नहीं। और इसी से यह भी सिद्ध हो सकता है कि जो ईसा का यह वचन सच्चा है, तो किसी ईसाई में एक राई के दाने के समान 'विश्वास' अर्थात् ईमान नहीं है।

[क्या विश्वासी ईसाई किसी पहाड़ को हटा सकते हैं ?]

जो कोई कहे कि हम में पूरा वा थोड़ा विश्वास है, तो उससे कहना कि आप इस पहाड को मार्ग में से हटा देवें। यदि उनके हटाने से हट जाय, तो भी पूरा विश्वास नहीं, किन्तु एक राई के दाने के बराबर है और जो न हटा सके तो समझो एक छींटा भी विश्वास अर्थात् धर्म का 'ईमान' ईसाइयों में नहीं है।

[असम्भव बात कहने से ईसा की अज्ञानता प्रकट होती है]

यदि कोई कहे कि यहाँ अभिमान आदि दोषों का नाम पहाड़ है, तो भी ठीक नहीं; क्योंकि जो ऐसा हो तो मुर्दों, अन्धों, कोढ़ियों, भूतग्रस्तों को चंगा करना भी आलसी, अज्ञानी, विषयी और भ्रान्तों को बोध कराके सचेत, कुशल किया होगा। जो ऐसा मानें, तो भी ठीक नहीं; क्योंकि जो ऐसा होता, तो स्वशिष्यों को ऐसा क्यों न कर सका? इसलिये ऐसी असम्भव बातें कहना ईसा की अज्ञानता को प्रकट करता है।

[इस शिक्षा के युग में ईसा की क्या गणना ?]

भला, जो कुछ भी विद्या ईसा में होती, तो ऐसी अटाटूट जंगलीपन की बातें क्यों कहता? तथापि—**'यत्र देशे द्रुमो नास्ति तत्रैरण्डोऽपि द्रुमायते'**=जिस देश में कोई भी वृक्ष न हो, तो उस देश में एरण्ड का ही वृक्ष सबसे बड़ा और अच्छा गिना जाता है, वैसे महाजंगली देश में ईसा का भी होना ठीक था। आजकल ईसा की क्या गणना हो सकती है?॥८६॥

[बालक जैसा बने विना स्वर्ग नहीं]

८७. ....मैं तुम्हें सच कहता हूँ, जो तुम मन न फिरावो और बालकों

के समान न हो जावो, तो स्वर्ग के राज्य में प्रवेश न करने पाओगे।३।

मत्ती इं०, प० १८। आ० ३॥

[विद्याविरुद्ध बातें बाल-बुद्धि ही मान सकते हैं]

समीक्षक—जब अपनी ही इच्छा से मन का फिराना स्वर्ग का कारण और न फिराना नरक का कारण है, तो किसी का पाप-पुण्य कभी नहीं ले सकता, ऐसा सिद्ध होता है। और बालक के समान होने के लेख से यह विदित होता है कि ईसा की बहुत-सी बातें विद्या और सृष्टिक्रम से विरुद्ध थीं और यह भी उसके मन में था कि लोग मेरी बातों को बालक के समान मान लेंवें, पूछें-गाछें कुछ भी नहीं, आँख मीचके मान लेवें। बहुत-से ईसाइयों की बालबुद्धिवत् चेष्टा है, नहीं तो ऐसी युक्ति और विद्या से विरुद्ध बातों को क्यों मानते? और यह भी सिद्ध हुआ कि जो ईसा आप विद्याहीन, बालबुद्धि न होता, तो अन्य को बालवत् बनने का उपदेश क्यों करता? क्योंकि **जो जैसा होता है, वह दूसरे को भी अपने सदृश बनाना चाहता ही है** ॥८७॥

८८. ....मैं तुमसे सच कहता हूं कि धनवान् को स्वर्ग के राज्य में प्रवेश करना कठिन होगा।२३। फिर भी मैं तुमसे कहता हूं कि ईश्वर के राज्य में धनवान् के प्रवेश करने से 'ऊंट का सूई के नाके में से जाना' सहज है।२४।

मत्ती इं०, प० १९ । आ० २३ । २४॥

[क्या सभी धनवान् दुष्ट होते हैं ?]

समीक्षक—इससे यह सिद्ध होता है कि ईसा दरिद्र था। धनवान् लोग उसकी प्रतिष्ठा नहीं करते होंगे, इसलिये यह लिखा होगा। परन्तु यह बात सच नहीं, क्योंकि धनाढ्यों और दरिद्रों में अच्छे-बुरे होते हैं। **जो कोई अच्छा काम करेगा, सुख पावेगा।**

[क्या ईश्वर का राज्य सर्वत्र नहीं है ?]

और इससे यह भी सिद्ध होता है कि ईसा ईश्वर का राज्य किसी एक देश में मानता था, सर्वत्र नहीं। जब ऐसा है, तो वह ईश्वर ही नहीं, जो ईश्वर है उसका राज्य सर्वत्र है; पुनः उसमें प्रवेश करेगा वा न करेगा, यह कहना केवल अविद्या की बात है।

[ईसा के मतानुसार सब धनिक ईसाई नरकगामी होंगे]

और इससे यह भी आया कि जितने ईसाई धनाढ्य हैं, वे सब नरक में ही जायेंगे? और दरिद्र सब स्वर्ग में जायेंगे। भला, तनिक-सा विचार तो ईसा मसीह करते कि **जितनी सामग्री धनाढ्यों के पास होती है, उतनी दरिद्रों के पास नहीं। यदि धनाढ्य लोग विवेक से धर्ममार्ग में व्यय करें, तो दरिद्र नीच गति में पड़े रह सकते हैं और धनाढ्य उत्तम गति को प्राप्त हो सकते हैं॥८८॥**

[ईसाइयों को स्वर्ग में सिंहासन; त्याग का १०० गुणा फल]

८९. यीशु ने उनसे कहा—"मैं तुमसे सच कहता हूं कि नई सृष्टि में जब मनुष्य का पुत्र अपने ऐश्वर्य के सिंहासन पर बैठेगा, तब तुम भी जो मेरे पीछे हो लिये हो, बारह सिंहासनों पर बैठके इस्राएल के बारह कुलों का न्याय करोगे।२८। जिस किसी ने मेरे नाम के लिये घरों वा

भाइयों वा बहिनों वा पिता वा माता वा स्त्री वा लड़कों वा भूमि को त्यागा है, सो सौ-गुणा पावेगा और अनन्त जीवन का अधिकारी होगा।२९।

मत्ती इं०, प० १९ । आ० २८। २९॥

[स्वर्ग में ईसाइयों को ही सिंहासन की बात पक्षपातपूर्ण]

समीक्षक—अब देखिये ईसा के भीतर की लीला! [यह इसलिये है] कि मेरे जाल से मरे पीछे भी लोग न निकल जायें! **और जिसने ३०) रुपयों के लोभ से अपने गुरु को पकड़वाके मरवाया, वैसे पापी भी उसके पास सिंहासन पर बैठेंगे।**

[इस्राएल के कुल का न्याय क्यों न किया जायेगा ?]

और इस्राएल के कुल का पक्षपात के कारण न्याय ही न किया जायगा, किन्तु उनके सब गुनाह माफ़ और अन्य कुलों का न्याय करेंगे। अनुमान होता है कि **इसी से ईसाई लोग ईसाइयों का बहुत पक्षपात कर किसी गोरे ने काले को मार दिया हो तो भी बहुधा पक्षपात से [उसको] निरपराधी कर छोड़ देते हैं,** ऐसा ही ईसा के स्वर्ग का भी न्याय होगा।

[एक साथ ही सबका न्याय होना अन्याय है]

और इससे बड़ा दोष आता है, क्योंकि एक सृष्टि के आदि में मरा और एक 'क़यामत की रात' के निकट मरा; एक तो आदि से अन्त तक आशा में ही पड़ा रहा कि कब न्याय होगा और दूसरे का उसी समय न्याय हो गया, यह कितना बड़ा अन्याय है!

[सदा के लिये स्वर्ग-नरक की प्राप्ति भी दोषपूर्ण]

और जो नरक में जायगा, सो अनन्तकाल तक नरक भोगेगा और जो स्वर्ग में जायगा, वह सदा स्वर्ग भोगेगा, यह भी बड़ा अन्याय है; क्योंकि अन्तवाले साधनों और कर्मों का फल भी अन्तवाला होना चाहिये।

[सबके कर्म समान नहीं, तो फल समान कैसे ?]

और तुल्य पाप वा पुण्य दो जीवों का भी नहीं हो सकता, इसलिये तारतम्य से अधिक-न्यून सुख-दुःखवाले अनेक स्वर्ग और नरक हों, तभी सुख-दुःख भोग सकते हैं। सो ईसाइयों के पुस्तक में कहीं व्यवस्था नहीं, इसलिये यह पुस्तक ईश्वरकृत और ईसा 'ईश्वर का बेटा' कभी नहीं हो सकता।

[स्वर्ग में प्रत्येक वस्तु का सौगुणा मिलना हास्यजनक]

यह बड़े अनर्थ की बात है कि कदापि किसी के मा-बाप सौ-सौ नहीं हो सकते किंतु एक की एक मा और एक ही बाप होता है। अनुमान है कि मुसलमानों ने 'एक को ७२ स्त्रियाँ बहिश्त में मिलती हैं' लिखा है, [सो यहीं से लिया होगा]॥८९॥

[गूलर के वृक्ष को शाप]

९०. भोर को जब वह नगर को फिर जाता था तब उसको भूख लगी।१८। और मार्ग में एक गूलर का वृक्ष देखके वह उस पास आया, परन्तु उसमें और कुछ न पाया, केवल पत्ते। और उसको कहा तुझमें फिर कभी फल न लगें, इस पर गूलर का वृक्ष तुरन्त सूख गया।१९।

मत्ती इं०, प० २१ । आ० १८। १९॥

[पेड़ों तक को शाप देना क्रोध की पराकाष्ठा]

समीक्षक—सब ईसाई पादरी लोग कहते हैं कि वह ईसा बड़ा शान्त, क्षमान्वित, क्रोधादि दोषरहित था, परन्तु इस बात को देख [ज्ञात होता है कि ईसा] क्रोधी और ऋतु के ज्ञान से रहित था और वह जंगली मनुष्यपन के स्वभावयुक्त वर्तता था। भला, जो वृक्ष जड़ पदार्थ है, उसका क्या अपराध था कि उसको शाप दिया और वह सूख गया! इसके शाप से तो न सूखा होगा, किन्तु कोई औषधी डालने से सूख गया हो, तो आश्चर्य नहीं॥९०॥

[तारों का गिरना; आकाश की सेना का डिगना]

९१. उन दिनों के क्लेश के पीछे तुरन्त सूर्य अन्धियारा हो जायगा और चांद अपनी ज्योति न देगा, तारे आकाश से गिर पड़ेंगे और आकाश की सेना डिग जायगी।२९।

मत्ती इं०, प० २४। आ० २९॥

[तारों का गिरना, और आकाश को सेना बताना अल्पज्ञता]

समीक्षक—वाह जी ईसा! तारों को किस विद्या से गिर पड़ना आपने जाना? और आकाश की सेना कौन-सी है, जो डिग जायगी? जो कभी ईसा थोड़ी भी विद्या पढ़ता, तो अवश्य जान लेता कि ये सब तारे भूगोल हैं, [और वे] क्योंकर गिरेंगे? इससे विदित होता है कि वह ईसा बढ़ई के कुल में उत्पन्न हुआ था, सदा लकड़े चीरना, छीलना, काटना और जोड़ना करता रहा होगा। जब तरंग उठी कि मैं भी इस जंगली देश में पैगम्बर हो

जाऊँ तो वैसी ही बातें करने लगा। कितनी बातें उसके मुख से अच्छी भी निकलीं और बहुत-सी बुरी [भी]। वहां के लोग जंगली थे, [अतः सबको] मान बैठे।

जैसा आजकल यूरोप उन्नतियुक्त है, वैसा पूर्व होता तो ईसा की सिद्धाई कुछ भी न चलती। अब कुछ विद्या हुए पश्चात् भी व्यवहार के पेच और हठ से इस पोकल मत को न छोड़कर सर्वथा सत्य वेदमार्ग की ओर नहीं झुकते, यही इनमें कमी है॥९१॥

[मेरी बात कभी न टलेगी]

९२. आकाश और पृथिवी टल जायेंगे, परन्तु मेरी बातें कभी न टलेंगी।३५।

मत्ती इं०, प० २४। आ० ३५॥

[क्या आकाश भी कभी हिल सकता है ?]

समीक्षक—यह भी बात अविद्या और मूर्खता की है। भला, आकाश हिलकर कहाँ जायगा? जब आकाश अतिसूक्ष्म होने से नेत्र से दीखता ही नहीं तो इसका हिलना कौन देख सकता है? और अपने मुख से अपनी बड़ाई करना अच्छे मनुष्यों का काम नहीं॥९२॥

[वामपक्षी नरक की अनन्त आग में]

९३. तब वह उनसे जो बाईं ओर हैं, कहेगा—"हे शापित लोगो! मेरे पास से उस अनन्त आग में जाओ, जो शैतान और उसके दूतों के

लिये तैयार की गई है।४१।"

मत्ती इं०, प० २५ । आ० ४१॥

[अपने शिष्यों को स्वर्ग और दूसरों को नरक की बात पक्षपात]

समीक्षक—भला, यह कितनी बड़ी पक्षपात की बात है, जो अपने शिष्य हैं उनको स्वर्ग [देना] और जो दूसरे हैं उनको 'अनन्त आग' में गिराना! परन्तु जब 'आकाश ही न रहेगा' लिखा, तो 'अनन्त आग, नरक, बहिश्त कहां रहेंगे?

[जो शैतान को भी वश में न कर सका, वह क्या ईश्वर ?]

जो शैतान और उसके दूतों को ईश्वर न बनाता, तो नरक की इतनी तैयारी क्यों करनी पड़ती? और एक शैतान ही ईश्वर के भय से न डरा तो वह ईश्वर ही क्या है? क्योंकि वह उसी का दूत होकर बागी हो गया और ईश्वर उसको प्रथम ही पकड़कर बन्दीगृह में न डाल सका, न मार सका, पुनः उसकी ईश्वरता क्या? जिसने ईसा को भी चालीस दिन दुःख दिया, ईसा भी उसका कुछ न कर सका, तो 'ईश्वर का बेटा' होना व्यर्थ हुआ। इसलिये ईसा ईश्वर का न बेटा और **'बाइबल'** का ईश्वर न ईश्वर हो सकता है॥९३॥

[एक शिष्य ने लोभ के वश ही यीशु को पकड़वाया]

९४. तब बारह शिष्यों में से एक यहूदा इस्करियोती नामक एक शिष्य प्रधान याजकों के पास गया और कहा।१४। जो मैं यीशु को आप लोगों के हाथ पकड़वाऊँ तो आप लोग मुझे क्या देंगे? उन्होंने उसे तीस रुपये देने को ठहराया।१५।

मत्ती इं०, प० २६ । आ० १४। १५॥

[जिससे शिष्य भी पवित्र न हुआ, वह क्या करामाती ?]

समीक्षक—अब देखिये, ईसा की सब करामात और ईश्वरता यहाँ खुल गई! क्योंकि जो उसका प्रधान शिष्य था, वह भी उसके साक्षात् संग से पवित्रात्मा न हुआ, तो औरों को वह मरे पीछे पवित्रात्मा क्या कर सकेगा? और उसके विश्वासी लोग उसके भरोसे में कितने ठगाये जाते हैं, क्योंकि जिसने साक्षात् सम्बन्ध में शिष्य का कुछ कल्याण न किया, वह मरे पीछे किसी का कल्याण क्या कर सकेगा?॥९४॥

[रोटी मेरी देह है, और पानी लोहू]

९५. ....जब वे खाते थे तब यीशु ने रोटी लेके धन्यवाद किया और उसे तोड़के शिष्यों को दिया और कहा—"लेओ, खाओ यह मेरा देह है।२६।" और उसने कटोरा लेके धन्य माना और उनको देके कहा—"तुम सब इससे पीओ।२७। क्योंकि यह मेरा लोहू अर्थात् नये नियम का लोहू है"......।२८।

मत्ती इं०, प० २६ । आ० २६ । २७। २८॥

[गुरु के मांस-लोहू में खाने-पीने की भावना जंगलीपन]

समीक्षक—भला, यह ऐसी बात कोई भी सभ्य करेगा विना अविद्वान् और जंगली मनुष्य के? शिष्यों से, खाने की चीज को अपना मांस और पीने की चीजों को लोहू [कोई] नहीं कह सकता। और इसी बात को आजकल के ईसाई लोग **'प्रभु-भोजन'** कहते हैं, अर्थात् खाने-पीने की चीजों में ईसा के मांस और लोहू की भावना कर खाते-पीते हैं, यह

कितनी बुरी बात है? जिन्होंने अपने गुरु के मांस और लोहू को भी खाने-पीने की भावना से न छोड़ा, तो और का कैसे छोड़ सकते हैं?॥९५॥

[यीशु का शोक करना और उदास रहना]

९६. और वह पितर को और जब्दी के दोनों पुत्रों को अपने संग ले गया और शोक करने और बहुत उदास होने लगा।३७। तब उसने उनसे कहा कि "मेरा मन यहाँ लों अति उदास है कि मैं मरने पर हूं...."।३८। और थोड़ा आगे बढ़के वह मुंह के बल गिरा और प्रार्थना की—"हे मेरे पिता! जो हो सके तो यह कटोरा मेरे पास से टल जाय"....।३९।

मत्ती इं०, प० २६ । आ० ३७। ३८। ३९॥

[ईसा की सब करामात धरी रह गई]

समीक्षक—देखो, जो वह केवल मनुष्य न होता, 'ईश्वर का बेटा' और त्रिकालदर्शी और विद्वान् होता, तो ऐसी अयोग्य चेष्टा न करता। इससे स्पष्ट विदित होता है कि यह प्रपञ्च ईसा ने अथवा उनके चेलों ने झूठमूठ बनाया है कि 'वह ईश्वर का बेटा है, भूत-भविष्यत् का वेत्ता और पाप का क्षमा-कर्त्ता है। इससे समझना चाहिये कि वह केवल साधारण, सूधा-सच्चा अविद्वान् था; न विद्वान्, न योगी, न सिद्ध था॥९६॥

[शिष्य ने यीशु को पकड़वाया; बड़ी दुर्गति हुई]

९७. वह बोलता ही था कि देखो यहूदा, जो बारह शिष्यों में से एक था, आ पहुंचा और लोगों के प्रधान याजकों और प्राचीनों की ओर से

बहुत लोग खड्ग और लाठियाँ लिये उसके संग।४७। यीशु के पकड़वानेहारे ने उन्हें यह पता दिया था 'जिसको मैं चूमूं, उसको पकड़ो'।४८। और वह तुरन्त यीशु पास आ बोला—"हे गुरु प्रणाम" और उसको चूमा।४९।....तब उन्होंने यीशु पर हाथ डालके उसे पकड़ा।५०। ....तब सब शिष्य उसे छोड़के भागे।५६।....अन्त में दो झूठे साक्षी आके बोले, इसने कहा कि "मैं ईश्वर का मन्दिर ढा सकता और उसे तीन दिन में फिर बना सकता हूं।६१।" तब महायाजक ने खड़ा हो यीशु से कहा—"क्या तू कुछ उत्तर नहीं देता है, ये लोग तेरे विरुद्ध क्या साक्ष्य देते हैं।" परन्तु यीशु चुप रहा। इसपर महायाजक ने उससे कहा—।६२। "मैं तुझे जीवते ईश्वर की क्रिया देता हूं, हमसे कह तू 'ईश्वर का पुत्र' ख्रीष्ट है कि नहीं?।६३।" यीशु उससे बोला—"तू तो कह चुका।६४।" ....तब महायाजक ने अपने वस्त्र फाड़के कहा—"यह ईश्वर की निन्दा कर चुका है, अब हमें साक्षियों का और क्या प्रयोजन?"।६५। "देखो, तुमने अभी उसके मुख से ईश्वर की निन्दा सुनी है। अब क्या विचार करते हो?" तब उन्होंने उत्तर दिया—"यह वध के योग्य है।६६।" तब उन्होंने उसके मुंह पर थूका और उसे घूंसे मारे। औरों ने थपेड़े मारके कहा—।६७। "हे ख्रीष्ट! हमसे भविष्यद्वाणी बोल, किसने तुझे मारा?।६८।" पितर बाहर अंगने में बैठा था और एक दासी उस पास आके बोली—"तू भी यीशु गलीली के संग था?।६९।" उसने सभों के सामने मुकरके कहा—"मैं नहीं जानता तू क्या कहती है।७०।" जब वह बाहर डेवढ़ी में गया तो दूसरी दासी ने उसे देखके, जो लोग

वहां थे, उनसे कहा—"यह भी यीशु नासरी के संग था"।७१। वह क्रिया खाके फिर मुकरा कि मैं उस मनुष्य को नहीं जानता हूं।७२। तब वह धिक्कार देने और क्रिया खाने लगा कि "मैं उस मनुष्य को नहीं जानता हूं....।७४।"

मत्ती इं०, प० २६ । आ० ४७-५०। ५६। ६१-७२। ७४॥

[अन्त समय एक भी शिष्य ने साथ न दिया]

समीक्षक—अब देख लीजिये कि उसका इतना भी सामर्थ्य वा प्रताप नहीं था कि अपने चेले को भी दृढ़ विश्वास करा सके और वे चेले भी चाहे प्राण भी क्यों न जाते, तो भी अपने गुरु को लोभ से न पकड़ाते, न मुकरते, न मिथ्याभाषण करते, न झूठी क्रिया खाते।

[ईसा भी अपनी कोई करामात न दिखा सका]

और ईसा भी कुछ करामाती नहीं था। नहीं तो **'तौरेत'** में लिखा है कि—"लूत के घर पर पाहुनों को बहुत से मारने को चढ़ आये थे, वहाँ ईश्वर के दो दूत थे, उन्होंने उन्हीं को अन्धा कर दिया।" [बाइबल उत्पत्ति, पर्व १९। आ० ११] यद्यपि वह भी बात असंभव है तथापि ईसा में तो इतना भी सामर्थ्य न था।

[इस दुर्गति से तो समाधि चढ़ा प्राण छोड़ना अच्छा था]

और आजकल कितना भडम्बा उसके नाम पर ईसाइयों ने बढ़ा रक्खा है। भला, **ऐसी दुर्दशा से मरने से आप स्वयं जूझ वा समाधि चढ़ा अथवा किसी प्रकार से प्राण छोड़ता, तो अच्छा था, परन्तु वह बुद्धि विना विद्या के कहाँ से उपस्थित हो?॥९७॥**

वह ईसा यह भी कहता है कि—

[याजकों को स्वर्ग से १२ सेनाओं के आने की धमकी देना]

९८. मैं अभी अपने पिता से विनति नहीं करता हूँ, वह मेरे पास स्वर्गदूतों की बारह सेनाओं से अधिक पहुँचा देगा।५३।

मत्ती इं०, प० २६ । आ० ५३॥

[ईश्वर की सेना पर झूठा विश्वास; सच क्यों न बोला ?]

समीक्षक—धमकाता जाता, अपनी और अपने पिता की बड़ाई भी करता जाता, और उसका कुछ भी नहीं कर सका। देखो, आश्चर्य की बात! जब महायाजक ने पूछा था कि 'ये लोग तेरे विरुद्ध साक्ष्य देते हैं, इसका उत्तर दे' तो ईसा चुप रहा। यह भी ईसा ने अच्छा न किया; क्योंकि जो सच था, वह वहाँ अवश्य कह देता, तो भी अच्छा होता। बहुत-सी अपने घमण्ड की बातें करनी उचित न थीं।

[झूठा दोष लगाकर ईसा को मारना ठीक न था]

और **जिन्होंने ईसा पर झूठ-फरेब डालकर बुरे हाल कर मारा, उनको भी उचित न था; क्योंकि ईसा का उस प्रकार का अपराध नहीं था, जैसा उसके विषय में उन्होंने किया।** परन्तु वे भी तो जंगली थे। न्याय की बातों को क्या समझें?

[झूठमूठ अपने को ईश्वरपुत्र बताना अच्छा न था]

यदि ईसा झूठ-मूठ 'ईश्वर का बेटा' न बनता और वे उसके साथ ऐसी बुराई न वर्तते, तो दोनों के लिये उत्तम काम था। परन्तु इतनी विद्या,

धर्मात्मता और न्यायशीलता कहाँ से लावें?॥९८॥

[यीशू पर अभियोग और उसे क्रूस पर चढ़ाना]

९९. यीशु, अध्यक्ष के आगे खड़ा हुआ और अध्यक्ष ने उससे पूछा—"क्या तू यहूदियों का राजा है?" यीशु ने उससे कहा—"आप ही तो कहते हैं।११।" जब प्रधान याजक और प्राचीन लोग उसपर दोष लगाते थे, तब उसने कुछ उत्तर नहीं दिया।१२। तब पिलातुस ने उससे कहा—"क्या तू नहीं सुनता कि ये लोग तेरे विरुद्ध कितने साक्ष्य देते हैं।१३।" परन्तु उसने एक वार भी उसको उत्तर न दिया, यहाँ लों कि अध्यक्ष ने बहुत अचम्भा किया।१४। पिलातुस ने उनसे कहा—"तो मैं यीशु से, जो 'ख्रीष्ट' कहावता है, क्या करूँ?", सभों ने उससे कहा—"वह क्रूस पर चढ़ाया जाय....।२२।" और यीशु को कोड़े मारके क्रूस पर चढ़ाये जाने को सौंप दिया।२६। तब अध्यक्ष के योद्धाओं ने यीशु को अध्यक्ष-भवन में ले जाके सारी पलटन उस पास इकट्ठी की।२७। और उन्होंने उसका वस्त्र उतारके उसे लाल बागा पहिराया।२८। और कांटों का मुकुट गूंथके उसके सिर पर रक्खा और उसके दाहिने हाथ में नरकट दिया और उसके आगे घुटने टेकके यह कहके उससे ठट्टा किया—"हे यहूदियों के राजा! प्रणाम।२९।" और उन्होंने उसपर थूका और उस नरकट को ले उसके शिर पर मारा।३०। जब वे उससे ठट्ठा कर चुके तब उससे वह बागा उतारके मसीह का वस्त्र पहिराके उसे क्रूस पर चढ़ाने को ले गये।३१।

जब वे एक स्थान पर जो गलगथा अर्थात् खोपड़ी का स्थान कहाता है, पहुंचे।३३। तब उन्होंने सिरके में पित्त मिलाके उसे पीने को दिया परन्तु उसने चीखके पीना न चाहा।३४। तब उन्होंने उसे क्रूस पर चढ़ाया....।३५। और उन्होंने उसका दोषपत्र उसके शिर के ऊपर लगाया....।३६। तब दो डाकू, एक दाहिनी ओर और दूसरा बाईं ओर उसके संग क्रूसों पर चढ़ाये गये।३८।

जो लोग उधर से आते-जाते थे, उन्होंने अपने सिर हिलाके और यह कहके उसकी निन्दा की।३९। 'हे मन्दिर के ढानेहारे! अपने को बचा; जो तू ईश्वर का पुत्र है तो क्रुस पर से उतर आ।४०।' इसी रीति से प्रधान याजकों ने भी अध्यापकों और प्राचीनों के संगियों ने ठट्ठा कर कहा—'उसने और को बचाया, अपने को बचा नहीं सकता है।४१। जो वह इस्राएल का राजा है तो क्रूस पर से अब उतर आवे और हम उसका विश्वास करेंगे।४२। वह ईश्वर पर भरोसा रखता है, यदि ईश्वर उसको चाहता है, तो उसको अब बचावे। क्योंकि उसने कहा—"मैं ईश्वर का पुत्र हूँ।४३।" जो डाकू उसके संग चढ़ाये गये, उन्होंने भी इसी रीति से उसकी निन्दा की।४४।

दो पहर से तीसरे पहर लों सारे देश में अंधकार हो गया।४५। तीसरे पहर के निकट यीशु ने बड़े शब्द से पुकारके कहा—"एली एली लमा शबक्तनी" अर्थात् 'हे मेरे ईश्वर! हे मेरे ईश्वर! तूने क्यों मुझे

त्यागा है।४६।' जो लोग वहाँ खड़े थे उनमें से कितनों ने यह सुन के कहा, वह एलियाह को बुलाता है।४७। उनमें से एक ने तुरन्त दौड़के इस्पंज लेके सिरके में भिगोया और नरकट पर रख के उसे पीने [=चूसने] को दिया।४८। ....तब यीशु ने फिर बड़े शब्द से पुकार के प्राण त्यागा।५०।

मत्ती इं०, प० २७। आ० ११-१४। २२। २६-३१। ३३-३५। ३७-४८। ५०॥

[अपने को ईश्वरपुत्र कहना ठीक न था]

समीक्षक—सर्वथा, यीशु के साथ उन दुष्टों ने बुरा काम किया, परन्तु यीशु का भी दोष है, क्योंकि ईश्वर का न कोई पुत्र, न वह किसी का बाप है; क्योंकि जो वह किसी का बाप होवे, तो किसी का श्वसुर, साला, सम्बन्धी आदि भी होवे।

[अन्त समय कोई करामात न दिखा सका]

और जब अध्यक्ष ने पूछा था, तब जैसा सच था, उत्तर देना था। और यह ठीक है कि जो-जो आश्चर्यकर्म प्रथम किये हुए सच्चे होते, तो अब भी क्रूस पर से उतर, आ, सबको अपना शिष्य बना लेता। और जो वह 'ईश्वर का पुत्र' होता तो ईश्वर भी उसको बचा लेता।

[सत्य अवश्य उजागर होकर रहता है]

जो वह त्रिकालदर्शी होता, तो सिरके में पित्त मिले हुए को चीखके क्यों छोड़ता? वह पहले से ही जानता होता। और जो वह करामाती होता, तो पुकार-पुकार के प्राण क्यों त्यागता? अर्थात् चाहे कितने ही कोई चतुराई करे, परन्तु अन्त में सच, सच और झूठ, झूठ हो

जाता है।

[हाँ, ईसा उस समय के जंगलियों में कुछ अच्छा था]

इससे यह सिद्ध हुआ कि यीशु एक उस समय के जंगली मनुष्यों में से कुछ अच्छा था। न वह करामाती, न 'ईश्वर का पुत्र' और न विद्वान् था, क्योंकि जो ऐसा होता, तो वह दुःख क्यों भोगता?॥९९॥

[यीशु का जी उठना, और पृथिवी स्वर्ग का राज्य मिलना]

१००. और देखो, बड़ा भुईंडोल हुआ कि परमेश्वर का एक दूत [स्वर्ग से] उतरा और आके कब्र के द्वार पर से पत्थर लुढ़काके उसपर बैठा।२। ....वह यहाँ नहीं है, जैसे उसने कहा वैसे जी उठा है।६। जब वे उसके शिष्यों को सन्देश देने जाती थीं, देखो, यीशु उनसे आ मिला, कहा—"कल्याण हो" और उन्होंने निकट आ उसके पांव पकड़के उसको प्रणाम किया।९। तब यीशु ने कहा—मत डरो, जाके मेरे भाइयों से कह दो, कि वे गलील को जावें और वहाँ वे मुझे देखेंगे।१०।

ग्यारह शिष्य गलील में उस पर्वत पर गये जो यीशु ने उन्हें बताया था।१६। और उन्होंने उसे देखके उसको प्रणाम किया, पर कितनों को सन्देह हुआ।१७। यीशु ने उनके पास आ उनसे कहा—"स्वर्ग में और पृथिवी पर समस्त अधिकार मुझको दिया गया है।१८। ....और देखो मैं जगत् के अन्त लों सब दिन तुम्हारे संग हूँ।२०।"

मत्ती इं०, प० २८ । आ० २।६।९।१०।१६।१७।१८।२०॥

[ईसा के पुनः जीवित होने की बात कोरी गप्प]

समीक्षक—यह बात भी मानने योग्य नहीं, क्योंकि सृष्टिक्रम और विद्याविरुद्ध है। प्रथम, ईश्वर के पास दूतों का होना, उनको जहाँ-तहाँ भेजना, ऊपर से उतरना [आदि बातों ने] क्या तहसीलदार, कलेक्टर के समान ईश्वर को बना दिया?

[वह शरीर तो सड़ गया होगा, फिर जीवित कैसे हुआ ?]

क्या उसी शरीर से स्वर्ग को गया और जी उठा? क्योंकि उन स्त्रियों ने उसके पग पकड़के प्रणाम किया तो क्या वही शरीर था? और वह तीन दिन लों सड़ क्यों न गया?

[मरकर अब क्यों नहीं जीवित होते ?]

और अपने मुख से सबका अधिकारी बनना केवल दम्भ की बात है। शिष्यों से मिलना और उनसे सब बातें करना असंभव है; क्योंकि जो ये बातें सच हों, तो आजकल भी कोई क्यों नहीं जी उठते? और उसी शरीर से स्वर्ग को क्यों नहीं जाते॥१००॥

यह **'मत्ती-रचित्त इंजील'** का विषय हो चुका। अब **'मार्क-रचित-इंजील'** के विषय में लिखा जाता है।

"मार्क रचित इंजील"

[बढ़ई का बेटा पैगम्बर हो ईश्वरपुत्र ही बन बैठा]

१०१. यह क्या बढ़ई नहीं है......।३।

मार्क इं०, प० ६। आ० ३॥

समीक्षक—असल में यूसुफ बढ़ई था, इसलिये ईसा भी बढ़ई था। कितने ही वर्ष तक बढ़ई का काम करता था। पश्चात् पैगम्बर बनता-बनता 'ईश्वर का बेटा' ही बन गया और जंगली लोगों ने बना लिया। तभी बड़ी कारीगरी चलाई। काट-कूट, फूट-फाट करना उसका काम है॥१०१॥

"लूक रचित इंजील"

[एक ईश्वर को छोड़ तीन की कल्पना क्यों ?]

१०२. यीशु ने उससे कहा—"तू मुझे उत्तम क्यों कहता है, कोई उत्तम नहीं, [केवल] एक अर्थात् ईश्वर के।१९।"

लूक इं०, प० १८ । आ० १९॥

समीक्षक—जब ईसा ही एक अद्वितीय ईश्वर कहता है, तो ईसाइयों ने 'पवित्रात्मा', 'पिता' और 'पुत्र' तीन कहाँ से बना लिये?॥१०२॥

[हेरोद को करामात क्यों न दिखाई ?]

१०३. .....तब उसे हेरोद के पास भेजा....।७। हेरोद यीशु को देखके अति आनन्दित हुआ, क्योंकि वह उसको बहुत दिनों से देखना चाहता था, इसलिये कि उसके विषय में बहुत-सी बातें सुनी थीं और

उसका कुछ 'आश्चर्य-कर्म' देखने की उसको आशा हुई।८। उसने उससे बहुत बातें पूछीं, परन्तु उसने उसे कुछ उत्तर न दिया।९।

लूक इं०, प० २३ । आ० ७।८।९॥

समीक्षक—यह बात **'मत्ती-रचित'** में नहीं है। [ईसा ने किसी भी प्रश्न का उत्तर नहीं दिया] इसलिये वे साक्षी बिगड़ गये। और जो ईसा चतुर और करामाती होता तो हेरोद को उत्तर देता और करामात भी दिखलाता, इससे विदित होता है कि ईसा में विद्या और करामात कुछ भी न थे॥१०३॥

"योहन (योहन्ना) रचित सुसमाचार"

[सब कुछ वचन द्वारा बना]

१०४. आदि में वचन था और वचन ईश्वर के संग था और वचन ईश्वर था....।१। वह आदि में ईश्वर के संग था।२। सब कुछ उसके द्वारा सृजा गया, और जो सृजा गया है कुछ भी उस विना नहीं सृजा गया।३। उसमें जीवन था और वह जीवन मनुष्यों का उजियाला था।४।

[योहनरचित सु०], प० १ । आ० १।२।३।४॥

[कारण के विना वचन द्वारा सृष्टि नहीं हो सकती]

समीक्षक—आदि में वचन विना वक्ता के नहीं हो सकता, और जो वचन ईश्वर के संग था, तो "आदि में वचन था" यह कहना व्यर्थ हुआ। और वचन ईश्वर कभी नहीं हो सकता, क्योंकि जब वह आदि में ईश्वर के संग था, तो पूर्व वचन वा ईश्वर था, यह नहीं घट सकता। वचन के द्वारा सृष्टि कभी नहीं हो सकती, जब तक उसका कारण न हो। और वचन के विना भी चुपचाप रहकर कर्त्ता सृष्टि कर सकता है।

[जीवन मनुष्यों का ही उजियाला क्यों है ?]

जीवन किसमें वा क्या था, इस वचन से जीव अनादि मानोगे। जो अनादि है, तो आदम के नथुनों में श्वास फूंकना झूठा हुआ और क्या जीवन मनुष्यों का ही उजियाला है, पशु-आदि का नहीं?॥१०४॥

[शैतान ने यहूदा को बहकाया]

१०५. और बियारी के समय में जब शैतान शिमोन के पुत्र यहूदा इस्करियोती के मन में उसे पकड़वाने का मत डाल चुका था।२।

[योहन० सु०], प० १३। आ० २॥

[सबको बहकानेवाले शैतान को कौन बहकाता है ?]

समीक्षक—यह बात सच नहीं, क्योंकि जब कोई ईसाइयों से पूछेगा कि शैतान सबको बहकाता है, तो शैतान को कौन बहकाता है? जो कहो शैतान आप से आप बहकता है, तो मनुष्य भी आप से आप बहक सकते हैं, पुनः शैतान का क्या काम? और यदि शैतान का बनाने और बहकानेवाला परमेश्वर है, तो वही **'शैतान का शैतान'** ईसाइयों का

'ईश्वर' ठहरा। परमेश्वर ने ही सबको उसके द्वारा बहकाया।

[शैतान तो ईसा को ईश्वरपुत्र बतानेवाले हैं]

भला, ऐसे काम ईश्वर के हो सकते हैं? सच तो यही है कि यह पुस्तक ईसाइयों का और ईसा को 'ईश्वर का बेटा' जिन्होंने बनाया, वे शैतान हों तो हों, किन्तु न यह ईश्वरकृत पुस्तक, न इसमें कहा ईश्वर और न ईसा 'ईश्वर का बेटा' हो सकता है॥१०५॥

[विना मेरे ईश्वर के पास नहीं पहुँच सकते]

१०६. तुम्हारा मन व्याकुल न होवे, ईश्वर पर विश्वास करो और मुझपर विश्वास करो।१। मेरे पिता के घर में बहुत से रहने के स्थान हैं, नहीं तो मैं तुमसे कहता हूं, मैं तुम्हारे लिये स्थान तैयार करने जाता हूं।२। और जो मैं जाके तुम्हारे लिये स्थान तैयार करूं, तो फिर आके तुम्हें अपने यहां ले जाऊंगा कि जहां मैं रहूं वहां तुम भी रहो।३। यीशु ने उससे कहा—"मैं ही मार्ग और सत्य और जीवन हूं, विना मेरे द्वारा कोई पिता के पास नहीं पहुंचता है।६। जो तुम मुझे जानते, तो मेरे पिता को भी जानते....।७।"

[योहन० सु०], प० १४ । आ० १।२।३।६।७॥

[क्या ईसा ने ईश्वर का ठेका ले रक्खा था ?]

समीक्षक—अब देखिये, ये ईसा के वचन क्या पोपलीला से कमती हैं? जो ऐसा प्रपञ्च न रचता, तो उसके मत में कौन फसता? क्या ईसा ने अपने पिता को ठेके में ले लिया है? और जो वह ईसा के वश्य है, तो पराधीन होने से वह ईश्वर ही नहीं, क्योंकि ईश्वर किसी की सिफारिश नहीं

सुनता।

[अपने को ही मार्ग सत्य व जीवन बताना दम्भ है]

क्या ईसा के पहले कोई भी ईश्वर को प्राप्त न हुआ होगा? जो ऐसा स्थान आदि का प्रलोभन देता और जो अपने मुख से आप मार्ग, सत्य और जीवन बनता है, वह सब प्रकार से दम्भी कहाता है, इससे यह

बात सत्य कभी नहीं हो सकती॥१०६॥

[मुझ पर विश्वास से मेरे सदृश कार्य करेगा]

१०७. मैं तुमसे सच-सच कहता हूं जो मुझपर विश्वास करे, जो काम मैं करता हूं उन्हें वह भी करेगा और इनसे बड़े काम भी करेगा तो वह सब आश्चर्यकर्म करेगा।१२।

[योहन० सु०], प० १४ । आ० १२॥

[ईसा पर विश्वास, पर आश्चर्यकर्म एक भी नहीं]

समीक्षक—अब देखिये, जो ईसाई लोग ईसा पर पूरा विश्वास रखते हैं, वैसे ही मुर्दे जिलाने आदि का काम क्यों नहीं कर सकते? और जो विश्वास से भी 'आश्चर्य-कर्म' नहीं कर सकते, तो ईसा ने भी 'आश्चर्य-कर्म' नहीं किये थे, ऐसा निश्चित जानना चाहिये। क्योंकि स्वयं ईसा ही कहता है कि तुम भी 'आश्चर्य-कार्य' करोगे, तो भी इस समय ईसाई कोई एक भी नहीं कर सकता, तो किसकी **'हिये की आँख फूट गई है'** कि वह ईसा को मुर्दे जिलाना आदि काम का कर्त्ता मान लेवे?॥१०७॥

[अद्वैत का सिद्धान्त मानते हो, तो तीन क्यों कहते हो ?]

१०८. ....जो अद्वैत सत्य ईश्वर है....।३।

[योहन० सु०], प० १७। आ० ३॥

समीक्षक—जब अद्वैत=एक ईश्वर है, तो ईसाइयों का **'तीन कहना'** सर्वथा मिथ्या है॥१०८॥

इसी प्रकार बहुत ठिकाने **'इंजील'** में अन्यथा बातें भरी हैं॥

"योहन [योहन्ना] के प्रकाशित वाक्य"

अब योहन की अद्भुत बातें सुनो—

[योहन के स्वप्न में स्वर्ग के ठाठ-बाट]

१०९. ....और अपने-अपने शिर पर सोने के मुकुट दिये हुए थे।४। ....और सात अग्निदीपक सिंहासन के आगे जलते हैं, जो ईश्वर के सातों आत्मा हैं।५। और सिंहासन के आगे कांच का समुद्र है ....और सिंहासन के आस-पास चार प्राणी हैं जो आगे और पीछे नेत्रों से भरे हैं।६।

यो० प्र०, प० ४ आ० ४।५।६॥

[आगे-पीछे नेत्रों का होना असम्भव]

समीक्षक—अब देखिये, एक नगर के तुल्य ईसाइयों का स्वर्ग है। और इनका ईश्वर भी दीपक के समान अग्नि है। और [उसके द्वारा] सोने का मुकुटादि आभूषण धारण करना और आगे-पीछे नेत्रों का होना असम्भावित है। इन बातों को कौन मान सकता है? और वहां सिंहादि चार पशु भी लिखे हैं॥१०९॥

[सात छापों में बन्द एक किताब]

११०. और मैंने सिंहासन पर बैठनेहारे के दहिने हाथ में एक पुस्तक देखा जो भीतर और पीठ पर लिखा हुआ था और सात छापों से उस पर छाप दी हुई थी।१। ....यह पुस्तक खोलने और उसकी छापें तोड़ने के योग्य कौन है।२। और न स्वर्ग में और न पृथिवी पर, न पृथिवी के नीचे कोई वह पुस्तक खोलने अथवा उसे देखने सकता था।३। और मैं बहुत रोने लगा, इसलिये कि पुस्तक खोलने और पढ़ने अथवा उसे देखने के योग्य कोई नहीं मिला।४।

योο प्रο, पर्व ५ । आο १।२।३।४॥

[उस किताब को ईसा के बिना कोई खोलनेवाला न था ?]

समीक्षक—अब देखिये, ईसाइयों के स्वर्ग में सिंहासनों और मनुष्यों के ठाठ! और पुस्तक कई छापों से बंद किया हुआ जिसको खोलने आदि कर्म करनेवाला स्वर्ग और पृथिवी पर कोई नहीं मिला। योहन का रोना और पश्चात् एक प्राचीन ने कहा कि वही ईसा खोलनेवाला है। प्रयोजन यह है कि **'जिसका विवाह उसके गीत'**। देखो, ईसा के ही ऊपर सब

माहात्म्य झुकाते जाते हैं; परन्तु ये बातें केवल कथन-मात्र हैं॥११०॥

[मेम्ने = ईसा के ७ सींग ७ नेत्र]

१११. और मैंने दृष्टि की, और देखो सिंहासन के और चारों प्राणियों के बीच में और प्राचीनों के बीच में एक मेम्ना जैसा वध किया हुआ खड़ा है, जिसके सात सींग और सात नेत्र हैं, जो सारी पृथिवी में भेजे हुए ईश्वर के सातों आत्मा हैं।६।

यो० प्र०, प० ५। आ० ६॥

[स्वर्ग में जाकर बेचारे ईसा के ७ सींग लग गए]

समीक्षक—अब देखिये, इस योहन के स्वप्न का मनोव्यापार! उस स्वर्ग के बीच में सब ईसाई और चार पशु तथा ईसा भी है और कोई नहीं! यह बड़ी अद्भुत बात हुई कि यहां तो ईसा के दो नेत्र थे और सींग का नाम-निशान भी न था और स्वर्ग में जाके सात सींग और सात आंखवाला हुआ! और वे सातों ईश्वर के आत्मा ईसा के सींग और नेत्र बन गये! **हाय! ऐसी बातों को ईसाइयों ने क्यों मान लिया? भला, कुछ तो बुद्धि काम में लाते!**॥१११॥

[२४ प्राचीन मेम्ने के आगे झुक गये]

११२. और जब उसने पुस्तक लिया तब चारों प्राणी और चौबीसों प्राचीन उस मेम्ने के आगे गिर पड़े और हर एक के पास बीण थी और धूप से भरे हुए सोने के प्याले; ये पवित्र लोगों की प्रार्थनाएँ हैं॥

यो० प्र०, म० ५। आ० ८॥

[ईसाइयों का स्वर्ग, बुतपरस्ती का घर]

समीक्षक—भला, जब ईसा स्वर्ग में न होगा तब ये बिचारे धूप, दीप, नैवेद्य, आर्त्ती (आरती) आदि पूजा किसकी करते होंगे? और यहां प्रोटस्टेंट ईसाई लोग बुतपरस्ती (मूर्त्तिपूजा) का तो खण्डन करते हैं किन्तु इनका स्वर्ग बुतपरस्ती का घर बन रहा है॥११२॥

[स्वप्न में पुस्तक में से घोड़े और सवारों का निकलना]

११३. और जब मेम्ने ने छापों में से एक को खोला तब मैंने दृष्टि की, चारों प्राणियों में से एक को जैसे, मेघ के गर्जन के शब्द को यह कहते सुना कि आ और देख।१। और मैंने दृष्टि की, और देखो, एक श्वेत घोड़ा है, और जो उसपर बैठा है उसके पास धनुष और उसे मुकुट दिया गया और वह जय करता हुआ और जय करने को निकला।२।

और जब उसने दूसरी छाप खोली.... ।३। ....दूसरा घोड़ा जो लाल था, निकला; उसको यह दिया गया कि पृथिवी पर से मेल उठा देवे....।४।

और जब उसने तीसरी छाप खोली ....देखो काला घोड़ा है....।५। और जब उसने चौथी छाप खोली.... ।७। ....और देखो एक पीला-सा घोड़ा और जो उस पर बैठा है उसका नाम मृत्यु है, इत्यादि।८।

योο प्रο, पο ६। आο १।२।३।४।५।७।८॥

[स्वप्न की बातों पर विश्वास अज्ञानता की पराकाष्ठा]

समीक्षक—अब देखिये, यह पुराणों से भी अधिक मिथ्या लीला है, वा नहीं? भला, पुस्तकों के बन्धनों के छापे के भीतर घोड़ा-सवार क्योंकर रह सके होंगे? यह स्वप्ने का बरड़ाना, जिन्होंने इसको भी सत्य माना है, उनमें अविद्या जितनी कहें, उतनी ही थोड़ी है॥११३॥

[स्वर्ग में न्याय के लिए प्रतीक्षा]

११४. और वे बड़े शब्द से पुकारते थे कि "हे स्वामी, पवित्र और सत्य! कब लों तू न्याय नहीं करता है और पृथिवी के निवासियों से हमारे लोहू का पलटा नहीं लेता है।१०।" और हर एक को उजला वस्त्र दिया गया और उनसे कहा गया कि जब लों तुम्हारे संगी दास भी और तुम्हारे भाई तुम्हारे नाईं वध किये जाने पर हैं, पूरे न हों, तब लों और थोड़ी देर विश्राम करो।११।

योο प्रο, पο ६। आο १०। ११॥

[ईसाई न्याय के लिये रोते ही रहा करेंगे]

समीक्षक—जो कोई ईसाई होंगे, वे दौरासुपुर्द होकर ऐसे न्याय कराने के लिये रोया करेंगे। **जो वेदमार्ग का स्वीकार करेगा, उसके न्याय होने में कुछ भी देर न होगी।** ईसाइयों से पूछना चाहिये—'क्या ईश्वर की कचहरी आजकल बन्द है, और न्याय का काम भी नहीं होता? न्यायाधीश निकम्मे बैठे हैं?' तो कुछ भी ठीक-ठीक उत्तर न दे सकेंगे।

[ये लोग सदा, अशान्त ही रहेंगे]

और ईश्वर को भी बहकाते हैं, और इनका ईश्वर बहक भी जाता है, क्योंकि इनके कहने से झट इनके शत्रुओं से पलटा लेने लगता है। और **दंशिले स्वभाववाले हैं कि मरे पीछे स्व-वैर लिया करते हैं, शान्ति कुछ भी नहीं** और जहां शान्ति नहीं, वहां दु:ख का क्या पारावार होगा?॥११४॥

[तारों का गिरना आकाश का लपेटना]

११५. और जैसे बड़ी बयार से हिलाये जाने पर गूलर के वृक्ष से उसके कच्चे गूलर झड़ते हैं, तैसे आकाश के तारे पृथिवी पर पड़े।१३। और आकाश पत्र की नाईं जो लपेटा जाता है, अलग हो गया....।१४।

यो० प्र०, प० ६। आ० १३ । १४॥

[तारे पृथिवी पर कैसे गिर सकते हैं ?]

समीक्षक—अब देखिये, **योहन** भविष्यद्वक्ता ने, जब विद्या नहीं है तभी तो, ऐसी अण्ड-बण्ड कथा गाई [है]। भला, तारे सब भूगोल हैं, एक पृथिवी पर कैसे गिर सकते हैं? और सूर्यादि का आकर्षण उनको इधर-उधर क्यों आने-जाने देगा?

[निराकार आकाश को चटाई के समान कैसे लपेटा ?]

और क्या आकाश को चटाई के समान समझता है? यह आकाश साकार पदार्थ नहीं है, जिसको कोई लपेटे वा इकठ्ठा कर सके। इसलिये योहन आदि सब जंगली मनुष्य थे, उनको इन बातों की क्या समझ?॥११५॥

[इस्राएल और यहूदा के कुलों पर छाप लगाना]

११६. ....मैंने उनकी संख्या सुनी, इस्राएल के संतानों के समस्त कुलों में से एक लाख चवालीस सहस्र पर छाप दी गई।४। यहूदा के कुल में से बारह सहस्र पर छाप दी गई....।५।

यो० प्र०, प० ७। आ० ४ । ५॥

[क्या बाइबल का ईश्वर केवल इस्राएलियों का ही है ?]

समीक्षक—क्या जो **'बाइबल'** में ईश्वर लिखा है, वह इस्राएल आदि कुलों का स्वामी है, वा सब संसार का? जो ऐसा न होता तो उन्हीं जंगलियों का साथ क्यों देता? और उन्हीं का सहाय्य करता था, दूसरे का नाम-निशान भी नहीं लेता, इससे वह ईश्वर नहीं। और इस्राएल कुलादि के मनुष्यों पर छाप लगाना अल्पज्ञता अथवा योहन की मिथ्या कल्पना है॥११६॥

[ईश्वर की रात-दिन सेवा]

११७. इस कारण वे ईश्वर के सिंहासन के आगे हैं और उस मन्दिर में रात-दिन उसकी सेवा करते हैं....।१५।

यो० प्र०, प० ७। आ० १५॥

[जहाँ रात-दिन पूजा चले, वहाँ सोने का क्या काम ?]

समीक्षक—क्या यह महाबुतपरस्ती नहीं है? अथवा उनका ईश्वर देहधारी मनुष्य के तुल्य एकदेशी नहीं है? और ईसाइयों का ईश्वर रात में सोता भी नहीं है। यदि सोता है, तो रात में पूजा क्योंकर करते होंगे? तथा उसकी

नींद भी उड़ जाती होगी? और जो रात-दिन जागता होगा तो विक्षिप्त वा अति-रोगी होगा॥११७॥

[वेदी की आग से गर्जना वा भूकम्प का होना]

११८. और दूसरा दूत आके वेदी के निकट खड़ा हुआ जिसके पास सोने की धूपदानी थी और उसको बहुत धूप दिया गया....।३। और धूप का धुंआ पवित्र लोगों की प्रार्थनाओं के संग दूत के हाथ में से ईश्वर के आगे चढ़ गया।४। और दूत ने वह धूपदानी लेके उसमें वेदी की आग भरके उसे पृथिवी पर डाला और शब्द और गर्जन और बिजलियाँ और भुईंडोल हुए।५।

योο प्रο, पο ८। आο ३ । ४ । ५॥

[वैरागियों के मन्दिर से ईसाइयों का स्वर्ग कम नहीं]

समीक्षक—अब देखिये, स्वर्ग तक वेदी, धूप, दीप, नैवेद्य, तुरही के शब्द होते हैं! क्या वैरागियों के मन्दिर से ईसाइयों का स्वर्ग कम है? कुछ धूम-धाम अधिक ही है॥११८॥

[पहले दूत ने पृथिवी पर ओले और आग बरसाई]

११९. पहले दूत ने तुरही फूंकी और लोहू से मिले हुए ओले और आग हुए, वे पृथिवी पर डाले और पृथिवी की एक तिहाई जल गई....।७।

योο प्रο, पο८ । आο ७॥

[योहन को प्रलय के विषय में कुछ भी पता न था]

समीक्षक—वाह रे ईसाइयों के भविष्यद्वक्ता ईश्वर! ईश्वर के दूत! तुरही का शब्द और प्रलय की लीला केवल लड़कों का ही खेल दीखता है॥११९॥

[पाँचवें दूत द्वारा पृथिवी पर टिड्डियों की भरमार]

१२०. और पाँचवें दूत ने तुरही फूंकी और मैंने एक तारे को देखा जो स्वर्ग में से पृथिवी पर गिरा हुआ था और अथाह कुंड के कूप की कुंजी उसको दी गई।१। और उसने अथाह कुंड का कूप खोला और कूप में से बड़ी भट्ठी के धूएँ की नाईं धुआँ उठा....।२। और उस धुएं में से टिड्डियां पृथिवी पर निकल गईं और जैसा पृथिवी के बिच्छुओं को अधिकार होता है तैसा उन्हें दिया गया।३। और उनसे कहा गया कि ....'उन मनुष्यों को जिनके माथे पर ईश्वर की छाप नहीं है।४। ....पाँच मास उन्हें पीड़ा दी जाय।५।'

योo प्रo, पo ९ । आo १।२।३।४।५॥

[क्या तारों और टिड्डियों ने छापवालों को पहचान लिया ?]

समीक्षक—तुरही का शब्द सुनकर तारे क्या उन्हीं दूतों पर और उसी स्वर्ग में गिरे होंगे? यहाँ तो नहीं गिरे। भला, वह कूप और टिड्डियां भी प्रलय के लिये ईश्वर ने पाली होंगी। और छाप को देख बांच भी लेती होंगी कि छापवालों को मत काटो! यह केवल भोले मनष्यों को डराके ईसाई बना लेने का धोखा देना है कि जो तुम ईसाई न होगे, तो तुमको टिड्डियां काटेंगी। परन्तु **ऐसी बातें विद्याहीन देश में चल सकती हैं, आर्यावर्त में**

नहीं। और क्या वह प्रलय की बात हो सकती है?॥१२०॥

[२० करोड़ घोड़ों को लीद से स्वर्ग भी नरक हो गया होगा]

१२१. और घुड़चढ़ों की सेनाओं की संख्या बीस करोड़ थी....।१६।

यो० प्र०, प० ९ । आ० १६॥

समीक्षक—भला, इतने घोड़े स्वर्ग में कहां ठहरते, कहाँ चरते और कहाँ रहते और कितनी लीद करते थे? उसका दुर्गन्ध भी स्वर्ग में कितना हुआ होगा?

बस ऐसे स्वर्ग, ऐसे ईश्वर और ऐसे मत के लिये हम सब आर्यों ने [उत्तम वैदिक मत को] तिलाञ्जलि दे दी है। ऐसा बखेड़ा ईसाइयों के शिर पर से भी सर्वशक्तिमान् की कृपा से दूर हो जाय, तो बहुत अच्छा हो॥१२१॥

[मेघ को ओढ़े हुए विशालाकृति स्वर्गदूत]

१२२. और मैंने दूसरे पराक्रमी दूत को स्वर्ग से उतरते देखा जो मेघ को ओढ़े था और उसके शिर पर मेघधनुष था और उसका मुख सूर्य की नाईं और उसके पांव आग के खम्भे ऐसे थे।१। ....और उसने अपना दाहिना पावं समुद्र पर और बायां पृथिवी पर रक्खा।२।

यो० प्र०, प० १०। आ० १।२॥

समीक्षक—अब देखिये इन दूतों की कथा! जो पुराणों वा भाटों की कथाओं से भी बढ़कर है॥१२२॥

[स्वर्ग में ईश्वर के मन्दिर और वेदी को नापा]

१२३. और लग्गी के समान एक नरकट मुझे दिया गया और कहा गया कि उठ! ईश्वर के मन्दिर को और वेदी को और उसमें के भजन करनेहारों को नाप।१।

यो० प्र०, प० ११ । आ० १॥

[बुतपरस्ती से स्वर्ग भी न बच सका]

समीक्षक—यहां तो क्या, परन्तु ईसाइयों के तो स्वर्ग में भी मन्दिर बनाये और नापे जाते हैं। अच्छा है, उनका जैसा स्वर्ग है, वैसी ही बातें हैं। इसीलिये यहां **'प्रभुभोजन'** में ईसा के शरीरावयव मांस, लोहू की भावना करके खाते-पीते हैं, और गिरजा में भी क्रूस आदि का आकार बनाना आदि भी बुतपरस्ती है॥१२३॥

[स्वर्ग के मन्दिर में नियमों का सन्दूक]

१२४. और स्वर्ग में ईश्वर का मन्दिर खोला गया और उसके नियम का सन्दूक उसके मन्दिर में दिखाई दिया....।१९।

यो० प्र०, प० ११ । आ० १९॥

[क्या परमेश्वर का भी मन्दिर हो सकता है ?]

समीक्षक—स्वर्ग में जो मन्दिर है सो हर समय बन्द रहता होगा, कभी-कभी खोला जाता होगा। क्या परमेश्वर का भी कोई मन्दिर हो

सकता है? जो वेदोक्त परमात्मा सर्वव्यापक है, उसका कोई भी मन्दिर नहीं हो सकता। हां, ईसाइयों का जो परमेश्वर 'आकारवाला' है, उसका [मन्दिर] चाहे स्वर्ग में हो चाहे भूमि पर होता [होगा]। और जैसी लीला 'टं टन् पूँ पूँ' की यहां होती है, वैसी ही ईसाइयों के स्वर्ग में भी [होती होगी]। और नियम का संदूक भी कभी-कभी ईसाई लोग देखते होंगे, उससे न जाने क्या प्रयोजन सिद्ध करते हैं? सच तो यह है कि ये सब बातें मनुष्यों को भुलाने की हैं॥१२४॥

[स्वर्ग के दो आश्चर्य]

१२५. एक बड़ा आश्चर्य स्वर्ग में दिखाई दिया अर्थात् एक स्त्री जो सूर्य पहने है और चाँद उसके पांवों तले है और उसके शिर पर बारह तारों का मुकुट है।१। और वह गर्भवती होके चिल्लाती है, क्योंकि प्रसव की पीड़ा उसे लगी है और वह जनने को पीड़ित है।२। और दूसरा आश्चर्य स्वर्ग में दिखाई दिया है; देखो, एक बड़ा लाल अजगर है, जिसके सात शिर और दश सींग हैं और उसके शिरों पर सात राजमुकुट हैं।३। और उसकी पूंछ ने आकाश के तारों की एक तिहाई को खींचके उन्हें पृथिवी पर डाला....।४।

यो० प्र०, प० १२ । आ० १।२।३।४॥

[छोटी-सी पृथिवी पर एक तिहाई तारे कैसे समाये ?]

समीक्षक—अब देखिये लम्बे-चौड़े गपोड़े!! इनके स्वर्ग में भी बिचारी स्त्री चिल्लाती है, उसका दु:ख कोई नहीं सुनता, न मिटा सकता है। और उस अजगर की पूंछ इतनी बड़ी थी कि जिसने तारों के एक तिहाई पृथिवी पर डाले!! भला, पृथिवी तो छोटी है और तारे बड़े-बड़े भी लोक

हैं, इस पृथिवी पर एक भी नहीं समा सकता। किन्तु यहाँ यही अनुमान करना चाहिये कि ये तारों की तिहाई इस बात के लिखनेवाले के घर पर गिरे होगें, और जिस अजगर की पूंछ इतनी बड़ी थी कि जिससे सब तारों की तिहाई लपेटकर भूमि पर गिरा दी, वह अजगर भी उसी के घर में रहता होगा!॥१२५॥

[जिस स्वर्ग में उपद्रव हो, वह क्या स्वर्ग ?]

१२६. और स्वर्ग में युद्ध हुआ, मीकाईल और उसके दूत अजगर से लड़े और अजगर और उसके दूत उससे लड़े।७।

यो० प्र०, प० १२ । आ० ७॥

समीक्षक—जो कोई ईसाइयों के स्वर्ग में जाता होगा, वह भी लड़ाई में दुःख पाता होगा। ऐसे स्वर्ग की यहीं से आश छोड़, हाथ-जोड़ बैठ रहो। जहां शान्तिभंग और उपद्रव मचा रहे, वह [स्वर्ग] ईसाइयों के ही योग्य है॥१२६॥

[शैतान को भूमि पर गिराना]

१२७. और वह बड़ा अजगर गिराया गया; हां, वह प्राचीन सांप जो दियाबल और शैतान कहाता है, जो सारे संसार का भरमानेहारा है....।९।

यो० प्र०, प० १२ । आ० ९॥

[शैतान स्वर्ग में भी लोगों को बहकाता होगा]

समीक्षक—क्या जब वह शैतान स्वर्ग में था तब लोगों को नहीं भरमाता था? और उसको जन्मभर बंदीगृह में अथवा मार क्यों न डाला? उसको पृथिवी पर क्यों डाल दिया? जो सब संसार को भरमानेवाला शैतान है, तो शैतान को भरमानेवाला कौन है ? यदि शैतान स्वयं भरमा है, तो शैतान के विना भरमानेहारे भरमेंगे और जो उसको भरमानेहारा परमेश्वर है, तो वह 'ईश्वर' ही नहीं ठहरा।

[शैतान से ईसाइयों का ईश्वर भी डरता था]

विदित तो यह होता है कि ईसाइयों का ईश्वर भी शैतान से डरता होगा? क्योंकि जो शैतान से प्रबल होता तो ईश्वर ने उसको अपराध करने समय ही दण्ड क्यों न दिया? **जगत् में शैतान का जितना राज है उसके सामने सहस्रांश भी ईसाइयों के ईश्वर का राज्य नहीं। इसीलिये ईसाइयों का ईश्वर उसको हटा नहीं सकता होगा।** इससे यह सिद्ध हुआ कि जैसा इस समय के ईसाई राज्याधिकारी, डाकू-चोर आदि को शीघ्र दण्ड देते हैं, वैसा [दण्ड] भी ईसाइयों के ईश्वर का नहीं। पुनः कौन ऐसा निर्बुद्धि मनुष्य है कि जो वैदिकमत को छोड़ पोकल ईसाईमत का स्वीकार करे?॥१२७॥

[शैतान को यहाँ क्यों भेजा ? वहीं क्यों न मार दिया ?]

१२८. ......हाय, पृथिवी और समुद्र के निवासियो! क्योंकि शैतान तुम पास उतरा है....।१२।

यो० प्र०, प० १२ । आ० १२॥

समीक्षक—क्या वह ईश्वर वहाँ का रक्षक और स्वामी है? पृथिवी के मनुष्यादि प्राणियों का रक्षक और स्वामी नहीं है? यदि भूमि का भी राजा है, तो शैतान को क्यों न मार सका? ईश्वर देखता रहता है और शैतान बहकाता फिरता है, तो भी उसको वर्जता नहीं। विदित तो यह होता है कि एक अच्छा ईश्वर है, और एक समर्थ दुष्ट दूसरा ईश्वर [शैतान] हो रहा है॥१२८॥

[शैतान को युद्ध करने वा बहकाने का अधिकार]

१२९. ....और बयालीस मास लों युद्ध करने का अधिकार उसे दिया गया।५। और उसने ईश्वर के विरुद्ध निन्दा करने को अपना मुंह खोला कि उसके नाम की और उसके तम्बू की और स्वर्ग में वास करनेहारों की निन्दा करे।६। और उसको यह दिया गया कि पवित्र लोगों से युद्ध करे और उन पर जय करे और हर एक कुल और भाषा और देश पर उसको अधिकार दिया गया।७।

यो० प्र०, प० १३ । आ० ५।६।७॥

[ईसाइयों के ईश्वर के डाकुओं वाले काम हैं]

समीक्षक—भला, जो पृथिवी के लोगों को बहकाने के लिये शैतान और पशु आदि को भेजे और पवित्र मनुष्यों से युद्ध करावे, वह काम डाकुओं के सरदार के समान नहीं है? ऐसा काम ईश्वर वा ईश्वर के भक्तों का नहीं हो सकता॥१२९॥

[लाखों लोगों के साथ मेम्ना सियोन पर्वत पर]

१३०. और मैंने दृष्टि की, और देखो मेम्ना सियोन पर्वत पर खड़ा है।

और उसके संग एक लाख, चवालीस सहस्र जन थे जिनके माथे पर उनका नाम और उनके पिता का नाम लिखा है।१।

यो० प्र०, प० १४ । आ० १॥

[ये लाखों लोग स्वर्ग से पृथिवी पर कैसे आये ?]

समीक्षक—अब देखिये, जहाँ ईसा का बाप रहता था, वहीं उसी **'सियोन'** पहाड़ पर उसका लड़का भी रहता है। परन्तु एक लाख चवालीस सहस्र मनुष्यों की गणना क्योंकर की? एक लाख चवालीस सहस्र ही स्वर्गवासी हुए, शेष करोड़ों ईसाइयों के शिर पर मोहर न लगी, क्या ये सब नरक में गये? ईसाइयों को चाहिये कि **'सियोन'** पर्वत पर जाके देखें कि ईसा का उक्त बाप और उनकी सेना वहां है वा नहीं? जो हों तो यह लेख ठीक है, नहीं तो मिथ्या। यदि कहीं से वहां आया, तो कहां से आया? जो कहो स्वर्ग से, तो क्या वे पक्षी हैं कि इतनी बड़ी सेना और आप ऊपर-नीचे उड़कर आया-जाया करते [हैं]?

[फिर तो ब्रह्माण्ड के शासन के लिये अनेक ईश्वर चाहियें]

यदि वह आया-जाया करता है, तो एक जिले के न्यायाधीश के समान हुआ। और वह एक, दो वा तीन हो, तो नहीं बन सकेगा, किन्तु न्यून से न्यून एक-एक भूगोल में एक-एक ईश्वर चाहिये; क्योंकि वे एक, दो, तीन अनेक ब्रह्माण्डों का न्याय करने और सर्वत्र युगपत् घूमने में समर्थ कभी नहीं हो सकते॥१३०॥

[आत्मा के कर्म आत्मा के संग]

१३१. ....आत्मा कहता है, "हां, कि वे अपने परिश्रम से विश्राम

करेंगे परन्तु उनके कार्य उनके संग हो लेते हैं।१॥"

यो० प्र०, प० १४। आ० १३॥

[कर्मानुसार फल मिलेगा, तो पाप-क्षमा की बात व्यर्थ]

समीक्षक—देखिये, ईसाइयों का ईश्वर तो कहता है **'उनके कर्म उनके संग रहेंगे' अर्थात् कर्मानुसार फल सबको दिये जायेंगे, और ये लोग कहते हैं कि ईसा पापों को ले लेगा और क्षमा भी किये जायेंगे।** यहां बुद्धिमान् विचारें कि ईश्वर का वचन सच्चा है वा ईसाइयों का? एक बात में दोनों तो सच्चा हो ही नहीं सकते? इनमें से एक झूठा अवश्य होगा। हमको क्या, चाहे ईसाइयों का ईश्वर झूठा हो, वा ईसाई लोग!!॥१३१॥

[ईश्वर के कोप के कुण्ड]

१३२. ....और उसे ईश्वर के कोप के बड़े रस के कुण्ड में डाला।१९। और रस के कुण्ड का रौंदन नगर के बाहर किया गया और रस के कुण्ड में से घोड़ों की लगाम तक लोहू एक-सौ कोश तक बह निकला।२०।

यो० प्र०, प० १४। आ० १९ । २०॥

[क्या ईश्वर का कोप कोई द्रवित पदार्थ है ?]

समीक्षक—अब देखिये, इनके गपोड़े पुराणों से भी बढ़कर हैं, वा नहीं? ईसाइयों का ईश्वर कोप करते समय बहुत दुःखित हो जाता होगा, और जो उसके कोप के कुण्ड भरे हैं, क्या उसका कोप जल है वा अन्य द्रवित पदार्थ है कि जिससे कुण्ड भरे हैं? और सौ कोश तक रुधिर का बहना असम्भव है, क्योंकि रुधिर वायु लगने से झट जम जाता है, पुनः क्योंकर

बह सकता है? इसलिये ऐसी बातें मिथ्या होती हैं॥१३२॥

[स्वर्ग में साक्षी के तम्बू]

१३३. ....और देखो, स्वर्ग में साक्षी के तम्बू का मन्दिर खोला गया।५।

यो० प्र०, प० १५। आ० ५॥

[ईश्वर को साक्षियों को क्या आवश्यकता पड़ी ?]

समीक्षक—जो ईसाइयों का ईश्वर सर्वज्ञ होता तो साक्षियों का क्या काम? क्योंकि वह स्वयं सब कुछ जानता होता। इससे सर्वथा यही निश्चय होता है कि इनका ईश्वर सर्वज्ञ नहीं, किन्तु मनुष्यवत् अल्पज्ञ है। क्या वह ईश्वरता कर सकता है? नहीं, नहीं, नहीं!! और इसी प्रकरण में दूतों की बड़ी-बड़ी असम्भव बातें लिखी हैं, उनको सत्य कोई नहीं मान सकता। कहाँ तक लिखें, इस प्रकरण में सर्वथा ऐसी ही बातें भरी हैं॥१३३॥

[कर्मों का दूना फल]

१३४. ....और ईश्वर ने उसके कुकर्मों को स्मरण किया है।५। जैसा तुम्हें उसने दिया है तैसा उसको भर देओ और उसके कर्मों के अनुसार दूना उसे दे देओ....।६।

यो० प्र० प० १८। आ० ५।६॥

[कर्म का दूना फल देना अन्याय है]

समीक्षक—देखो, प्रत्यक्षतः ईसाइयों का ईश्वर अन्यायकारी है। क्योंकि

न्याय उसी को कहते हैं कि जिसने जैसा वा जितना कर्म किया उसको वैसा और उतना ही फल देना। उससे अधिक-न्यून देना अन्याय है। जो अन्यायकारी की उपासना करते हैं, वे अन्यायकारी क्यों न हों?॥१३४॥

[मेम्ने (= यीश) का विवाह]

१३५. ....क्योंकि मेम्ने का विवाह आ पहुँचा है और उसकी स्त्री ने अपने को तैयार किया है।७।

यो० प्र०, प० १९। आ० ७॥

[स्वर्ग में विवाह हुआ, तो सुसर साले आदि कौन थे ?]

समीक्षक—अब सुनिये, ईसाइयों के स्वर्ग में विवाह भी होते हैं! क्योंकि ईसा का विवाह ईश्वर ने वहीं किया। पूछना चाहिये कि उसका श्वसुर, सास, साला आदि कौन थे और लड़के-बाले कितने हुए? **और वीर्य के नाश होने से बल, बुद्धि, पराक्रम, आयु आदि भी घटके अब तक ईसा ने वहां शरीर त्याग कर दिया होगा,** क्योंकि संयोगजन्य पदार्थ का वियोग अवश्य होता है। अब तक ईसाइयों ने उसके विश्वास में धोखा खाया और न जाने कब तक धोखे में रहेंगे॥१३५॥

[शैतान को सीलबन्द कर दिया]

१३६. ....और उसने अजगर को अर्थात् प्राचीन सांप को जो दियाबल और शयतान (शैतान) है, पकड़के उसे सहस्र वर्ष लों बाँध रक्खा।२। और उसको अथाह कुण्ड में डाला और बन्द ऊपर करके उसके छाप दी, जिसतें वह जब लों सहस्र वर्ष पूरे न हों, तब लों फिर

देशों के लोगों को न भरमावे.....।३।

योο प्रο, पο २० । आο २।३॥

[शैतान को सदा के लिये कैद में क्यों न रक्खा ?]

समीक्षक—देखो, मरूँ-मरूँ करके शयतान (शैतान) को पकड़ा और सहस्र वर्ष तक बन्द किया; फिर भी छूटेगा। क्या फिर न भरमावेगा? ऐसे दुष्ट को तो बन्दीगृह में सदा रखना वा मारे विना छोड़ना ही नहीं [चाहिये]।

[शैतान का डर दिखा भोले लोगों को फँसाना]

परन्तु यह शयतान (शैतान) का होना ईसाइयों का भ्रममात्र है, वास्तव में कुछ भी नहीं। केवल लोगों को डराके अपने जाल में लाने का उपाय रचा है।

जैसे किसी धूर्त्त ने किन्हीं भोले मनुष्यों से कहा कि 'चलो, तुमको देवता का दर्शन कराऊँ,' किसी एकान्त देश में ले जाके एक मनुष्य को चतुर्भुज बनाकर रक्खा। झाड़ी में खड़ा करके कहा कि 'आँख मीच लो। जब मैं कहूँ तब खोलना और फिर जब कहूँ तभी मीच लेना। जो न मीचेगा वह अन्धा हो जायगा।' जब वह सामने आया तब कहा—'देखो'। पुनः शीघ्र कहा कि 'मीच लो।' जब फिर झाड़ी में छिप गया, तब कहा—'खोलो, देखा, नारायण का सबने दर्शन किया'।

वैसी लीला इन मज़हबियों की है कि 'जो हमारे मज़हब को न मानेगा, वह शयतान (शैतान) का बहकाया हुआ है', ऐसे उसको फसा लेते हैं। इसलिये इनकी माया में किसी को न फसना चाहिये॥१३६॥

[पृथिवी आकाश का भागना; पुस्तक देखकर कर्मफल देना]

१३७. ....जिसके सम्मुख से पृथिवी और आकाश भाग गये और उनके लिये जगह न मिली।११। और मैंने क्या छोटे, क्या बड़े, सब मृतकों को ईश्वर के आगे खड़े देखा और पुस्तक खोले गये और दूसरा पुस्तक अर्थात् जीवन का पुस्तक खोला गया और पुस्तकों में लिखी हुई बातों से मृतकों का विचार उनके कर्मों के अनुसार किया गया।१२।

यो० प्र०, प० २० । आ० ११।१२॥

[पृथिवी आकाश भाग गये, तो वह किस पर ठहरा]

समीक्षक—यह देखो लड़केपन की बात! भला, पृथिवी और आकाश कैसे भाग सकेंगे? और वे किस पर ठहरेंगे, जिनके सामने से भागें। और उसका सिंहासन और वह कहाँ ठहरा थे?

[क्या परमेश्वर के पास भी बही है ? उसे कौन लिखता है ?]

और मुर्दे परमेश्वर के सामने खड़े किये गये तो परमेश्वर भी बैठा वा खड़ा होगा? क्या यहां की कचहरी और दूकान के समान ईश्वर का व्यवहार है जो कि पुस्तक लेखानुसार होता है? और सब जीवों का हाल ईश्वर ने लिखा वा उसके गुमाश्तों ने? ऐसी-ऐसी बातों से अनीश्वर को ईश्वर और ईश्वर को अनीश्वर ईसाई आदि मत-वालों ने बना दिया॥१३७॥

[मेम्ने की दुलहिन को दिखाना]

१३८. ....उनमें से एक मेरे पास आया और मेरे संग बोला कि आ मैं दुलहिन को अर्थात् मेम्ने की स्त्री को तुझे दिखाऊँगा।९।

यो० प्र०, प० २१ । आ० ९॥

[ईसा स्वर्ग में जाकर विषयभोग में क्यों पड़ा ?]

समीक्षक—भला, ईसा ने स्वर्ग में 'दुलहिन' अर्थात् अच्छी स्त्री पाई! मौज करता होगा! जो-जो ईसाई वहाँ जाते होंगे, उनको भी स्त्रियाँ मिलती होंगी, लड़के-बाले होते होंगे और बहुत भीड़ के हो जाने से रोगोत्पत्ति होकर मरते भी होंगे। ऐसे स्वर्ग को दूर से ही हाथ ही जोड़ना अच्छा है॥१३८॥

[ईसाइयों के स्वर्ग की रचना]

१३९. ....और उसने उस नल से नगर को नापा कि साढ़े सात-सौ कोश का है, उसकी लंबाई और चौड़ाई और ऊंचाई एक समान हैं।१६। और उसने उसकी भीत को मनुष्य के अर्थात् दूत के नाप से नापा कि एक सौ चवालीस हाथ की है।१७। और उसकी भीत की जोड़ाई सूर्यकान्त की थी और नगर निर्मल सोने का था, जो निर्मल कांच के समान था।१८। और नगर की भीत की नेवें हर एक बहुमूल्य पत्थर से सँवारी हुई थीं; पहिली नेव सूर्यकान्त की थी, दूसरी नीलमणि की, तीसरी लालड़ी की, चौथी मरकत की।१९। पांचवीं गोमेदक की, छठवीं माणिक्य की, सातवीं पीतमणि की, आठवीं पेरोज की, नवीं पुखराज की, दशवीं लहसनिये की, ग्यारहवीं

धूम्रकान्त की, बारहवीं मर्टीष की।२०। और बारह फाटक बारह मोतीयों के थे, एक-एक मोती से एक-एक फाटक बना था और नगर की सड़क स्वच्छ कांच के ऐसे निर्मल सोने की थी।२१।

योो प्र०, प० २१ । आ० १६।१७।१८।१९।२०।२१॥

[सीमित नगर में अपार जनसमूह कैसे समाया ?]

समीक्षक—सुनो ईसाइयों के स्वर्ग का वर्णन! यदि ईसाई मरते जाते और [वहां] जन्मते जाते हैं तो इतने बड़े शहर में [भी] कैसे समा सकेंगे? क्योंकि उसमें मनुष्यों का आगम तो होता है और उससे निकलते नहीं।

[नगर के निर्माण और चमक-दमक का वर्णन कल्पित]

और जो यह बहुमूल्य रत्नों की बनी हुई नगरी मानी है, और सर्व सोने की है, इत्यादि लेख केवल भोले-भाले मनुष्यों को बहकाकर फसाने की लीला है। भला, लंबाई-चौड़ाई तो जो उस नगर की लिखी, सो हो सकती है; परन्तु ऊंचाई साढ़े सात-सौ कोश क्योंकर हो सकती है? यह सर्वथा मिथ्या, कपोलकल्पना की बात है। और इतने बड़े मोती कहाँ से आये होंगे? इस लेख के लिखनेवाले के घर के घड़े में से? यह गपोड़ा पुराण का भी बाप है॥१३९॥

[घृणित कर्मों और झूठ बोलनेवालों को स्वर्ग नहीं]

१४०. और कोई अपवित्र वस्तु अथवा घिनित कर्म करनेहारा अथवा झूठ पर चलनेहारा उसमें किसी रीति से प्रवेश न करेगा....।२७।

यो० प्र० प० २१ । आ० २७॥

[योहन्ना जैसे असत्यवक्ता को स्वर्ग कैसे मिला ?]

समीक्षक—जो ऐसी बात है, तो ईसाई लोग क्यों कहते हैं कि "पापी लोग भी ईसाई होने से स्वर्ग में जा सकते हैं", यह झूठ बात है। यदि ऐसा है, तो **योहन्ना** स्वप्ने की मिथ्या बातों का कहनेहारा स्वर्ग में प्रवेश कभी न कर सका होगा,

[अनेक पापियों के पाप-भार से युक्त ईसा को भी स्वर्ग कैसे ?]

और **ईसा भी स्वर्ग में न गया होगा, क्योंकि जब अकेला पापी स्वर्ग को प्राप्त नहीं हो सकता, तो जो अनेक पापियों के पाप के भार से युक्त है क्योंकर स्वर्गवासी हो सकता है?**॥१४०॥

[ईसाइयों के स्वर्ग में क्या-कुछ होगा]

१४१. और अब कोई शाप न होगा और ईश्वर का और मेम्ने का सिंहासन उसमें होगा और उसके दास उसकी सेवा करेंगे।३। और उसका मुंह देखेंगे और उसका नाम उनके माथे पर होगा।४। और वहां रात न होगी और उन्हें दीपक का अथवा सूर्य की ज्योति का प्रयोजन नहीं, क्योंकि परमेश्वर ईश्वर उन्हें ज्योति देगा वे सदा-सर्वदा राज्य करेंगे।५।

योο प्रο, पο २२ । आο ३।४।५॥

[क्या सिंहासन पर ईसा और ईश्वर निरन्तर बैठे रहेंगे ?]

समीक्षक—देखिये, यही ईसाइयों का स्वर्ग-वास! क्या ईश्वर और ईसा सिंहासन पर निरन्तर बैठे रहेंगे? और उनके दास उनके सामने सदा मुंह देखा करेंगे? अब यह तो कहिये तुम्हारे ईश्वर का मुंह यूरोपियन के सदृश

गोरा है वा अफ्रीकावालों के सदृश काला अथवा अन्य देशवालों के समान है?

[यह स्वर्ग भी बन्धन है; क्या ईश्वर के मुँह भी है ?]

यह तुम्हारा स्वर्ग भी बन्धन है, क्योंकि जहाँ छोटाई-बड़ाई है और उसी एक नगर में रहना अवश्य है, तो वहाँ दुःख क्यों न होता होगा? जो मुखवाला है, वह ईश्वर सर्वज्ञ, सर्वेश्वर कभी नहीं हो सकता॥१४१॥

[कर्मानुसार ही फल मिलेगा]

१४२. देख, मैं शीघ्र आता हूँ और मेरा प्रतिफल मेरे साथ है जिसतें हर एक को जैसा उसका कार्य ठहरेगा, वैसा फल देऊं।१२।

यो० प्र०, प० २२ । आ० १२॥

[जो कर्मानुसार फल मिलेगा, तो पाप क्षमा की बात व्यर्थ]

समीक्षक—जब यही बात है कि **कर्मानुसार फल पाते हैं तो पापों की क्षमा कभी नहीं होती, और जो क्षमा होती है तो 'इंजील' की बातें झूठी [हैं]।** यदि कोई कहे कि क्षमा करना भी **'इंजील'** में लिखा है तो **'पूर्वापरविरुद्ध'** अर्थात् 'हल्फ़दरोगी' हुई तो वह झूठ है, इसका मानना छोड़ दो॥१४२॥

अब कहाँ तक लिखें। **इनकी 'बाइबल' में लाखों बातें खण्डनीय हैं। यह तो थोड़ा-सा चिह्नमात्र ईसाइयों की 'बाइबल' पुस्तक का दिखलाया है,** इतने से ही बुद्धिमान् लोग बहुत-सा समझ लेंगे। थोड़ी-सी

बातों को छोड़ शेष सब झूठ भरा है। **जैसे झूठ के संग से सत्य भी शुद्ध नहीं रहता, वैसा ही 'बाइबल' पुस्तक भी माननीय नहीं हो सकता, किन्तु वह सत्य तो वेदों के स्वीकार में गृहीत होता ही है॥**

[यह कृश्चीन मत के विषय में लिखा, इसके आगे मुसलमानों के मत के विषय में लिखा जायगा]।

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिनिर्मिते सत्यार्थप्रकाशे

सुभाषाविभूषिते कृश्चीनाख्यमतविषये

त्रयोदशः समुल्लासः सम्पूर्णः॥१३॥

अनुभूमिका (४)

जो यह १४ चौदहवां समुल्लास मुसलमानों के मत-विषय में लिखा है सो केवल **'क़ुरान'** के अभिप्राय से [है,] अन्य ग्रन्थ के मत से नहीं; क्योंकि मुसलमान **'क़ुरान'** पर ही पूरा-पूरा विश्वास रखते हैं। यद्यपि फ़िरके होने के कारण किसी शब्द, अर्थ आदि विषय में विरुद्ध बात है, तथापि **'क़ुरान'** पर सब ऐकमत्य हैं।

जो 'क़ुरान' अरबी भाषा में है, उस पर मौलवियों ने उर्दू में अर्थ लिखा है। उस अर्थ का देवनागरी अक्षर और आर्यभाषान्तर कराके पश्चात् अरबी के बड़े-बड़े विद्वानों से शुद्ध करवाके लिखा गया है। यदि कोई कहे कि यह अर्थ ठीक नहीं है, तो उसको उचित है कि मौलवी साहबों के तर्जुमाओं का पहिले खण्डन करे, पश्चात् इस विषय पर लिखे; क्योंकि यह लेख केवल मनुष्यों की उन्नति और सत्यासत्य के निर्णय के लिये [है] अर्थात् सब मतों के विषयों का थोड़ा-थोड़ा ज्ञान होवे, इससे मनुष्यों को परस्पर विचार करने का समय मिले और एक-दूसरे के दोषों का खण्डन कर गुणों का ग्रहण करें। **मेरा न किसी अन्य मत पर, न इस मत पर झूठ-मूठ बुराई वा भलाई लगाने का प्रयोजन है किन्तु जो भलाई है, वही भलाई और जो बुराई है, वही बुराई सबको विदित होवे। न कोई किसी पर झूठ चला सके और न सत्य को रोक सके। और सत्यासत्य विषय प्रकाशित किये पर भी जिसकी इच्छा हो, वह न माने, वा माने; किसी पर बलात्कार नहीं किया जाता।**

और यही सज्जनों की रीति है कि अपने वा पराये दोषों को दोष और गुणों को गुण जानकर गुणों का ग्रहण और दोषों का त्याग करें और हठियों का हठ-दुराग्रह न्यून करें-करावें; क्योंकि पक्षपात से क्या-क्या अनर्थ जगत् में न हुए और न होते हैं? सच तो यह है कि इस अनिश्चित क्षणभंगुर जीवन में पराई हानि करके लाभ से स्वयं रिक्त रहना और अन्य को रखना मनुष्यपन से बहिः है।

इसमें जो कुछ विरुद्ध लिखा गया हो, उसको सज्जन लोग विदित कर देंवें। तत्पश्चात् जो उचित होगा तो माना जायेगा, क्योंकि यह लेख हठ-दुराग्रह, ईर्ष्या-द्वेष, वाद-विवाद और विरोध घटाने के लिये किया गया है, न कि इनको बढ़ाने के अर्थ। क्योंकि एक-दूसरे की हानि करने से पृथक् रह परस्पर को लाभ पहुँचाना, हमारा मुख्य कर्म है। अब यह (१४) चौदहवें समुल्लास में मुसलमानों का मत-विषय सब सज्जनों के सामने निवेदन करता हूँ। विचार कर, इष्ट का ग्रहण, अनिष्ट का परित्याग कीजिये।

अलमतिविस्तरेण बुद्धिमद्वर्य्येषु।

इत्यनुभूमिका॥

अथ चतुर्दशसमुल्लासारम्भः

अथ यवनमतविषयं व्याख्यास्यामः

इसके आगे मुसलमानों के मत-विषय में लिखेंगे—

[अल्लाह के नाम के साथ आरम्भ]

१. आरंभ साथ नाम अल्लाह के, क्षमा करनेवाला दयालु।१।

मंजिल १। सिपारा १। सूरत १॥

[अल्लाह के नाम के साथ आरम्भ करनेवाला कौन है ?]

समीक्षक—मुसलमान लोग ऐसा कहते हैं कि **'यह 'क़ुरान'**[१] **ख़ुदा का कहा है',** परन्तु इस वचन से विदित होता है कि इसका बनानेवाला कोई दूसरा है, क्योंकि जो परमेश्वर का बनाया होता तो **"आरम्भ साथ नाम अल्लाह के"** ऐसा न कहता, किन्तु **"आरम्भ वास्ते उपदेश मनुष्यों के"** ऐसा कहता। यदि मनुष्यों को शिक्षा करता है कि तुम ऐसा कहो तो भी ठीक नहीं, क्योंकि इससे पाप का आरम्भ भी ख़ुदा के नाम से होकर उसका नाम भी दूषित हो जाएगा।

[दयालु मांस खाने की आज्ञा नहीं दे सकता]

जो वह क्षमा और दया करनेहारा है तो उसने अपनी सृष्टि में मनुष्यों के सुखार्थ अन्य प्राणियों को मार, दारुण पीड़ा दिलाकर मरवाके, मांस खाने की आज्ञा क्यों दी? क्या वे प्राणी अनपराधी और परमेश्वर के बनाये हुए नहीं हैं?

[क्या पाप-कर्म भी ईश्वर के नाम पर आरम्भ होवें ?]

और यह भी कहना था कि 'मैं परमेश्वर के नाम पर अच्छी बातों का आरम्भ करता हूँ, बुरी बातों का नहीं'। इस कथन में गोलमाल है। क्या चोरी, जारी, मिथ्या-भाषणादि अधर्म का भी आरम्भ परमेश्वर के नाम पर किया जाय? इसी से देख लो, कसाई आदि मुसलमान, गाय आदि के गले काटने में भी **'बिस्मिल्लाह'** इस वचन को पढ़ते हैं; जो यही इसका पूर्वोक्त अर्थ है तो बुराइयों का आरम्भ भी परमेश्वर के नाम पर मुसलमान करते हैं।

[हिंसा की आज्ञा देने से ख़ुदा 'दयालु' न रहेगा]

और मुसलमानों का 'ख़ुदा' दयालु भी न रहेगा, क्योंकि उसकी दया उन पशुओं पर न रही। और जो मुसलमान लोग इसका अर्थ नहीं जानते तो इस वचन का प्रकट होना व्यर्थ है। यदि मुसलमान लोग इसका अर्थ उलटा करते हैं तो सीधा अर्थ क्या है? इत्यादि॥१॥

---

१. **क़ुरान**—क़ुरान की मूलभाषा अरबी है। 'क़ुरान' मूलतः अरबी भाषा का शब्द है जिसका शुद्ध रूप 'क़ुर्आन' और 'क़ुरआन' है। फारसी में इसे

'क़ुरान' लिखा जाता है। 'क़ुरान' का अर्थ है—'पढ़ना'। इस प्रकार इसका अर्थ है—'पठनीय पुस्तक'।

[ख़ुदा परवरदिगार और दयालु है]

२. सब स्तुति परमेश्वर के वास्ते है जो परवरदिगार अर्थात् पालन करनेहारा है सब संसार का।१। क्षमा करनेवाला दयालु है।२।

मं० १। सि० १। सूरतुल्फातिहा आयत १। २॥

[परवरदिगार है तो अन्य मतवालों के मारने की आज्ञा क्यों ?]

समीक्षक—जो **'क़ुरान'** का ख़ुदा संसार का पालनेहारा होता और सब पर क्षमा और दया करता होता, तो अन्य मत-वालों और पशु आदि को भी मुसलमानों के हाथ से मरवाने का हुक्म न देता।

[क्या पापियों पर भी क्षमा करेगा ?]

जो क्षमा करनेहारा है तो क्या पापियों पर भी क्षमा करेगा? और जो वैसा है तो आगे लिखेंगे कि **"काफ़िरों का क़त्ल करो"** अर्थात् जो **'क़ुरान'** और पैग़म्बर को न मानें वे काफ़िर हैं, ऐसा क्यों कहता? इसलिये **'क़ुरान'** ईश्वरकृत नहीं दीखता॥२॥

[ईश्वर से ही सहाय चाहना]

३. मालिक दिन न्याय का।३। तुझ को ही हम भक्ति करते हैं और तुझसे ही सहाय्य चाहते हैं।४। दिखा हमको सीधा रास्ता।५।

मं०१। सि० १। सू० १। आ० ३। ४। ५॥

[नित्य न्याय न कर एक ही दिन क्यों ?]

समीक्षक—क्या ख़ुदा नित्य न्याय नहीं करता? किसी एक दिन न्याय करता है? इससे तो अंधेर विदित होता है! उसी की भक्ति करना और उसी से सहाय चाहना तो ठीक है, परन्तु क्या बुरी बात का भी सहाय चाहना [ठीक है]

[फिर सोधे मार्ग को क्यों नहीं ग्रहण करते ?]

और सूधा मार्ग एक मुसलमानों का ही है वा दूसरों का भी? सूधे मार्ग को मुसलमान क्यों नहीं ग्रहण करते? क्या सूधा रास्ता बुराई की ओर का तो नहीं चाहते? यदि भलाई सबकी एक है, तो फिर मुसलमानों में ही विशेष कुछ भी न रहा और जो दूसरों की भलाई नहीं मानते, तो पक्षपाती हैं॥३॥

[हमें श्रेष्ठों का मार्ग दिखा, दुष्टों का नहीं]

४. [दिखा] उन लोगों का रास्ता कि जिन पर तूने निआमत अर्थात् ऐश्वर्य दोनों लोकों का, वा अत्यन्त दया की।६। और उनका मार्ग मत दिखा कि जिनके ऊपर तूने ग़ज़ब अर्थात् अत्यन्त क्रोध की दृष्टि की और न गुमराहों का मार्ग हमको दिखा।७।

मं० १। सि० १। सू० १। आ० ६। ७॥

[पूर्व जन्म के पाप-पुण्य के विना श्रेष्ठ और दुष्ट कैसे ?]

समीक्षक—जब मुसलमान लोग पूर्वजन्म और पूर्वकृत पुण्य-पाप नहीं मानते, तो किन्हीं को दोनों लोकों के ऐश्वर्य देने और किन्हीं को न देने से ख़ुदा पक्षपाती हो जायगा, क्योंकि विना पुण्य-पाप के सुख-दुःख देना केवल अन्याय की बात है,

[निष्कारण दया और क्रोध ईश्वर नहीं कर सकता]

और विना कारण किसी पर दया और किसी पर क्रोधदृष्टि करना भी ख़ुदा के स्वभाव से बहिः है। क्योंकि विना भलाई-बुराई के वह दया अथवा क्रोध नहीं कर सकता और जब उनके पूर्वसञ्चित पुण्य-पाप ही नहीं, तो किसी पर दया और किसी पर क्रोध करना नहीं हो सकता॥

और जो **'गुमराह'** शब्द का अर्थ नोट में **'क़ाफिर', 'बेदीन'** (=जो मुसलमान नहीं है) यह लिखा है, तो वह ख़ुदा केवल मुसलमानों का ही पक्षपाती होगा, अन्य का नहीं। क्योंकि जो सब मत-मतान्तरों में धर्मात्मा और पापात्मा होते हैं, तो धर्मात्मा भी इस लेख से काफ़िर हो सकते हैं, और जो मुसलमानों में बुरे काम करते हैं, क्या वे काफ़िर नहीं हैं? **और जो काफ़िर हैं, वे सब मतों में बुरे हैं, और जो धर्मात्मा हैं वे सब मतों में उत्तम हैं, तो मुसलमानों से भिन्न मनुष्यों को काफ़िर कहना अविद्या की बात है।**

[अल्लाह ने इस सूरः को मनुष्यों से कैसे बुलवाया ?]

और इस सिपारे और इस सूरः की टिप्पणी पर— **"यह सूरः अल्लाह साहेब ने मनुष्यों के मुख से कहलाई कि सदा इस प्रकार से कहा करें",** [लिखा है]। जो यह बात है तो **'अलिफ़, बे'** आदि अक्षर भी ख़ुदा ने ही पढ़ाये होंगे! जो कहो कि नहीं, तो विना अक्षरज्ञान के इस सूरः को कैसे पढ़ सके? क्या कण्ठ से ही बुलाये और बोलते गये? जो ऐसा है तो सब **'क़ुरान'** ही कण्ठ से पढ़ाया होगा।

[देशविशेष की भाषा में ज्ञान देना ख़ुदा का पक्षपात]

इससे ऐसा समझना चाहिये कि जिस पुस्तक में पक्षपात की बातें पाई जायें, वह पुस्तक ईश्वरकृत नहीं हो सकता। जैसा कि अरबी भाषा में उतारने से अरबवालों को तो इसका पढ़ना सुगम, अन्य भाषाओं को बोलनेवालों को कठिन होता है, इसी से ख़ुदा में पक्षपात आता है। और जैसे परमेश्वर ने सृष्टिस्थ सब देशस्थ मनुष्यों पर न्यायदृष्टि से सब देशभाषाओं से विलक्षण संस्कृत-भाषा कि जो सब देशवालों के लिये एक-से परिश्रम से विदित होती है, उसी में वेदों का प्रकाश किया है, [वैसे] करता तो यह दोष न होता॥४॥

[क़ुरान परहेजगारों के लिये मार्गदर्शक]

५. यह पुस्तक कि जिसमें सन्देह नहीं, परहेज़गारों को मार्ग दिखलाती है।२। जो कि ईमान लाते हैं साथ ग़ैब (परोक्ष) के, नमाज पढ़ते, और उस वस्तु से जो हमने उनको दी, खर्च करते हैं और वे लोग जो उस किताब पर ईमान लाते हैं जो तेरी ओर वा तुझसे पहले उतारी गई, और विश्वास क़यामत पर रखते हैं।३। ये लोग अपने मालिक की शिक्षा पर हैं और ये ही छुटकारा पानेवाले हैं।४। निश्चय जो काफ़िर हुए और उन पर तेरा डराना, न डराना समान है, वे कभी ईमान न लावेंगे।५। अल्लाह ने उनके दिलों, कानों पर मोहर कर दी और उनकी आँखों पर परदा है और उनके वास्ते बड़ा अज़ाब है।६।

मं॰ १। सि॰१। सू॰ २। आ॰ २। ३। ४। ५। ६। ७॥

[मार्गदर्शन तो पथभ्रष्टों के लिये आवश्यक है]

समीक्षक—क्या अपने ही मुख से अपनी किताब की प्रशंसा करना ख़ुदा की दम्भ की बात नहीं? जो 'परहेज़गार' अर्थात् धार्मिक लोग हैं वे स्वतः सच्चे मार्ग में हैं, और जो झूठे मार्ग पर हैं, उनको यह **'क़ुरान'** मार्ग ही नहीं दिखला सकता, फिर किस काम का रहा?

[ख़ुदा ने दौलत सबको क्यों न दी ?]

क्या पाप-पुण्य और पुरुषार्थ के विना ख़ुदा अपने ही ख़जाने से खर्च करने को देता है? जो देता है तो सबको क्यों नहीं देता? और मुसलमान लोग परिश्रम क्यों करते हैं?

[क्या ख़ुदा पहली किताब में कुछ लिखना भूल गया था ?]

और जो **'बाइबल', 'इंजील'** आदि पर विश्वास करना योग्य है तो मुसलमान **'इंजील'** आदि पर ईमान, जैसा **'क़ुरान'** पर है, वैसा क्यों नहीं लाते? और जो लाते हैं तो **'क़ुरान'** का होना किसलिये? जो कहें कि **'क़ुरान'** में अधिक बातें हैं, तो पहली किताब में लिखना ख़ुदा भूल गया होगा! और जो नहीं भूला तो **'क़ुरान'** का बनाना निष्प्रयोजन है।

[वेद जैसी एक पुस्तक न बनाकर दो क्यों बनाई ?]

और हम देखते हैं तो **'बाइबल'** और **'क़ुरान'** की बातें कोई-कोई नहीं मिलती होंगी, नहीं तो सब मिलती हैं। एक ही पुस्तक जैसा कि वेद है, क्यों न बनाया? क्या क़यामत पर ही विश्वास रखना चाहिये, अन्य पर नहीं?॥

[क्या ईसाई-मुसलमान ही ख़ुदा की शिक्षा पर हैं ?]

क्या ईसाई और मुसलमान ख़ुदा की शिक्षा पर हैं, उनमें कोई भी पापी नहीं हैं? क्या जो ईसाई और मुसलमान अधर्मी हैं, वे भी छुटकारा पावें और दूसरे धर्मात्मा भी न पावें, तो बड़े अन्याय [और] अन्धेर की बात नहीं है?

[अन्य मतस्थों को काफिर कहना ठीक नहीं]

और क्या जो लोग मुसलमानी मत को न मानें, उन्हीं को क़ाफिर कहना, यह एकतरफ़ा डिगरी नहीं है?॥

जो परमेश्वर ने ही उनके अन्तःकरण और कानों पर मोहर लगाई और उसी से वे पाप करते हैं, तो उनका कुछ भी दोष नहीं, यह दोष ख़ुदा का ही है, फिर उन पर सुख-दुःख वा पाप-पुण्य नहीं हो सकता। पुनः उनको सज़ा-जज़ा क्यों करता है? क्योंकि उन्होंने पाप वा पुण्य स्वतन्त्रता से नहीं किया॥५॥

[अल्लाह ने रोग बढ़ाया]

६. वे अल्लाह और ईमानदारों को फरेब देते हैं....।९। उनके दिलों में रोग है, अल्लाह ने उनका रोग बढ़ा दिया।१०।

मं० १। सि० १। सू० २। आ० ९।१०॥

[विना अपराध रोगादि बढ़ाना अन्याय है]

समीक्षक—क्या ईश्वर से किसी का कपट-छल अज्ञात रहता है? यदि रहता है तो वह खुदा ही नहीं। इससे ऐसा लिखना ही व्यर्थ है। भला, परमेश्वर को कौन भरमा सकता है? और जो भरमाने से बहक जाता है,

वह ईश्वर ही नहीं हो सकता। क्यों विना अपराध खुदा ने उनका रोग बढ़ाया? दया न आई? उन बेचारों को बड़ा दुःख हुआ होगा! क्या यह शयतान (शैतान) से बढ़कर शयतानपन (शैतानपन) का काम नहीं है? किसी के मन पर मोहर लगाना, किसी का रोग बढ़ाना, यह खुदा का काम नहीं हो सकता, **क्योंकि रोग का बढ़ना अपने पापों से है॥६॥**

[पृथिवी बिछौना और आसमान छत]

७. ....उनसे अल्लाह ठट्ठा करता है।१५। जिसने तुम्हारे वास्ते पृथिवी बिछौना और आसमान की छत को बनाया....।२२।

मं० १। सि० १। सू० २। आ० १५।२२॥

[आकाश को छत बताना अविद्या की बात है]

समीक्षक—जब किसी का ठट्ठा करना उत्तम पुरुष का काम नहीं, तो खुदा को ठट्ठा करना योग्य कभी नहीं हो सकता, और जो ठट्ठेबाज़ है, वह खुदा ही नहीं॥

भला, आसमान छत किसी की हो सकती है? यह अविद्या की बात है। आकाश को छत के समान मानना हंसी की बात है। यदि किसी प्रकार की पृथिवी को आसमान मानते हों, तो यह उनकी घर की बात है॥७॥

[उस जैसी सूरत लाओ]

८. जो तुम उस वस्तु से सन्देह में हो जो हमने पैग़म्बर के ऊपर उतारी, तो उस कैसी एक सूरत (=सूरः) ले आओ और अपने साक्षी लोगों को पुकारो, अल्लाह के विना जो तुम सच्चे हो।२३। जो तुम न करो और कभी न कर सकोगे, तो उस आग से डरो कि जिसका

इन्धन मनुष्य और पत्थर है, और जो काफ़िरों के वास्ते तैयार की गई है।२४।

मं० १। सि० १। सू० २। आ० २३, २४॥

[कुरान जैसी सूरतें बनाई जा सकती हैं]

समीक्षक—भला, यह कोई बात है कि उसके सदृश कोई सूरत न बने? क्या अकबर बादशाह के समय में **मौलवी फ़ैजी** ने विना नुक़्ते का **'क़ुरान'** नहीं बना लिया था?

[क्या भौतिक आग से न डरें ?]

और वह कौन-सी आग है जो दोज़ख की है? क्या इस [पृथवी की] आग से न डरना चाहिये? इसका भी इन्धन जो कुछ पड़े, सब है। जैसे **'क़ुरान'** में लिखा है कि काफ़िरों के वास्ते दोज़ख की आग तैयार की गई है, तो वैसे पुराणों में लिखा है म्लेच्छों के लिये घोर नरक बना है! अब कहिये किसकी बात सच्ची मानी जाय?

[धार्मिक किसी भी मत के हों, वे सुख पावेंगे पापी नहीं]

अपने-अपने वचन से दोनों स्वर्गगामी और दूसरे के मत से दोनों नरकगामी होते हैं, इसलिये यह सबका झगड़ा झूठा है। किन्तु **जो धार्मिक हैं वे सुख और जो पापी हैं वे दुखः सब मतों में पावेंगे॥८॥**

[मुसलमानों का बहिश्त]

९. और आनन्द का संदेशा दे उन लोगों को जो कि ईमान लाये और काम किये अच्छे, यह कि उनके वास्ते बहिश्तें हैं जिनमें चलती हैं नहरें, जब उसमें से मेवों के भोजन दिये जावेंगे तब कहेंगे कि यह वो

वस्तु है जो हम पहले इससे दिये गये थे; निश्चय और उनके लिये पवित्र बीबियाँ हैं, और वे सदैव वहाँ रहने वाले हैं।२४।

मं॰ १। सि॰ १। सू॰ २। आ॰ २५॥

[अब बहिश्त में स्त्रियों के दिन कैसे कटते होंगे ?]

समीक्षक—भला, यह **'क़ुरान'** का बहिश्त संसार से कौन-सी उत्तम बातवाला है? क्योंकि जो पदार्थ संसार में हैं, वे ही मुसलमानों के स्वर्ग में हैं। और इतना विशेष है कि यहाँ जैसे [स्त्री-] पुरुष जन्मते-मरते और आते-जाते हैं, उसी प्रकार स्वर्ग में नहीं। किन्तु यहाँ की स्त्रियाँ सदा नहीं रहतीं और वहाँ बीबियाँ अर्थात् उत्तम स्त्रियाँ [भी] सदा काल रहती हैं, तो जब तक क़यामत की रात न आवेगी, [और बहिश्त में जाने वाले पुरुषों का निर्णय होकर जब तक कि वे वहां नहीं जावेंगे] तब तक उन बिचारियों के दिन कैसे कटते होंगे?

हाँ, जो खुदा की उन पर कृपा होती होगी और खुदा के ही आश्रय समय काटती होंगी, तो ठीक है!

[बहिश्त में औरतों की ही पूछ है, मर्दों की नहीं]

क्योंकि यह मुसलमानों का स्वर्ग गोकुलिये गोसांइयों के गोलोक और मन्दिर के सदृश दीखता है; क्योंकि वहाँ स्त्रियों का मान्य बहुत है, पुरुषों का नहीं। वैसे ही खुदा के घर में भी स्त्रियों का मान्य अधिक है और उन पर खुदा का प्रेम भी बहुत है, उतना पुरुषों पर नहीं; क्योंकि बीबियों को खुदा ने बहिश्त में सदा [के लिये पहले से ही] रक्खा है और पुरुषों को

नहीं। वे बीबियाँ विना ख़ुदा की मर्ज़ी स्वर्ग में कैसे ठहर सकतीं? जो यह बात ऐसी ही हो, तो ख़ुदा स्त्रियों में फस जाय॥९॥

[खुदा का फरिश्तों को धोखा देना]

१०. आदम को सारे नाम सिखाये, फिर फ़रिश्तों के सामने करके कहा—"जो तुम सच्चे हो मुझे इनके नाम बताओ।३९।" फिर कहा—"हे आदम! इनको इनके नाम बता दे", तब उसने बता दिये, तो खुदा ने फ़रिश्तों से कहा कि "क्या मैंने तुमसे नहीं कहा था कि निश्चय मैं पृथिवी और आसमान की छिपी वस्तुओं को और प्रकट-छिपे कर्मों को जानता हूँ।३३।"

मं० १। सि० १। सू० २। आ० ३१। ३३॥

[फरिश्तों को धोखा दे अपनी बड़ाई करना खुदा का काम नहीं]

समीक्षक—भला ऐसे, फ़रिश्तों को धोखा देकर अपनी बड़ाई करना खुदा का काम हो सकता है? यह तो एक दम्भ की बात है। इसको कोई विद्वान् नहीं मान सकता और न ऐसा अभिमान करता। क्या ऐसी बातों से ही खुदा अपनी सिद्धाई जमाना चाहता है? हां, जंगली लोगों में कोई कैसा ही पाखण्ड चला लेवे, चल सकता है; सभ्यजनों में नहीं॥१०॥

[शैतान ने खुदा का कहना न माना]

११. जब हमने फ़रिश्तों से कहा कि "बाबा आदम को दण्डवत् करो", देखो, सभों ने दण्डवत् किया परन्तु शैतान ने न माना और अभिमान किया, क्योंकि वो भी एक काफ़िर था।३४।

मं० १। सि० १। सू० २। आ० ३४॥

[ख़ुदा शैतान का कुछ भी न बिगाड़ सका]

समीक्षक—इससे ख़ुदा सर्वज्ञ नहीं, अर्थात् भूत, भविष्यत् और वर्तमान की पूरी बातें नहीं जानता। जो जानता होता तो शैतान को पैदा ही क्यों करता? और ख़ुदा में कुछ तेज भी नहीं है, क्योंकि शैतान ने ख़ुदा का हुक्म ही न माना और ख़ुदा उसका कुछ भी न कर सका।

[करोड़ों काफिररूप शैतान खुदा को भारी हो जायेंगे]

और देखिये! एक शैतान काफ़िर ने ख़ुदा के भी छक्के छुड़ा दिये, तो मुसलमानों के कथनानुसार जहाँ उससे भिन्न करोड़ों काफ़िर हैं, वहाँ मुसलमानों के ख़ुदा और मुसलमानों की क्या चल सकती है?

[शैतान में शैतानी खुदा से ही आई होगी]

कभी-कभी ख़ुदा भी किसी का रोग बढ़ा देता है, किसी को गुमराह कर देता है। ख़ुदा ने ये बातें शैतान से सीखी होंगी और शैतान ने ख़ुदा से! क्योंकि विना ख़ुदा के शैतान का उस्ताद और कोई नहीं हो सकता॥११॥

[शैतान की बहक से आदम को पृथिवी पर आना पड़ा]

१२. हमने कहा कि "ओ आदम! तू और तेरी जोरू बहिश्त में रहकर आनन्द से१ जहाँ चाहो खाओ, परन्तु मत समीप जाओ उस वृक्ष के, कि पापी हो जाओगे।३५।" शैतान ने उनको डिगाया और उनको बहिश्त के आनन्द से खो दिया। तब हमने कहा कि "उतरो, तुम परस्पर शत्रु होगे। तुम्हारा ठिकाना पृथिवी है और एक समय तक लाभ है।३६।" आदम अपने मालिक की कुछ बातें सीखकर पृथिवी पर आ गया।३७।

मं० १। सि० १। सू० २। आ० ३५। ३६। ३७॥

[क्या खुदा नहीं जानता था कि आदम को शैतान बहकायेगा ?]

समीक्षक—अब देखिये ख़ुदा की अल्पज्ञता! अभी तो स्वर्ग में रहने का आशीर्वाद दिया और पुनः थोड़ी देर में कहा कि 'निकलो'। जो भविष्यत् [की] बातों को जानता होता तो वर ही क्यों देता? और बहकानेवाले शैतान को दण्ड देने में असमर्थ भी दीख पड़ता है। और वह वृक्ष किसके लिये उत्पन्न किया था? क्या अपने लिये वा दूसरे के लिये? जो अपने लिये किया तो उसको क्या जरूरत थी? और जो दूसरे के लिये, तो क्यों रोका? इसलिये ऐसी बातें न ख़ुदा की और न उसके बनाये पुस्तक में हो सकती हैं।

[स्वर्ग से आदम पृथिवी पर कैसे आये ?]

आदम साहेब ख़ुदा से कितनी बातें सीख आये? और जब पृथिवी पर आदम साहेब आये तब किस प्रकार आये? क्या वह बहिश्त पहाड़ पर है वा आकाश पर? उससे कैसे उतर आये? अथवा पक्षी के तुल्य आये? अथवा ऊपर से पत्थर जैसे गिर पड़े?

[स्वर्ग के फरिश्तों के शरीर किस पदार्थ के बने थे ?]

इसमें यह विदित होता है कि जब आदम साहब मिट्टी से बनाये गये, तो इनके स्वर्ग में भी मिट्टी होगी। और जितने वहां और हैं वे भी वैसे ही फ़रिश्ते आदि होंगे, क्योंकि मट्टी के शरीर विना इन्द्रिय-भोग नहीं हो सकता।

[मिट्टी के बने हैं, तो रोग-भोग और मौत भी होगी]

जब पार्थिव शरीर है, तो मृत्यु भी अवश्य होना चाहिये। यदि मृत्यु होता है, तो वे वहां से कहां जाते हैं? और मृत्यु नहीं होता, तो उनका जन्म भी

नहीं हुआ। जब जन्म है, तो मृत्यु अवश्य ही है। यदि ऐसा है, तो जो **'क़ुरान'** में लिखा है कि बीबियाँ सदैव बहिश्त में रहती हैं, सो झूठा हो जायगा, क्योंकि उनका भी मृत्यु अवश्य होगा। जब ऐसा है तो बहिश्त में जानेवालों का भी मृत्यु निश्चित होगा॥१२॥

[कयामत के दिन से डरो]

१३. उस दिन से डरो कि जब कोई जीव किसी जीव से कुछ भरोसा न रक्खेगा, न उसकी सिफ़ारिश स्वीकार की जावेगी, न उससे बदला लिया जावेगा और न वे सहाय्य पावेंगे।४८।

मं० १। सि० १। सू० २। आ० ४८॥

[बुराई करने से सब दिन डरना चाहिए]

समीक्षक—क्या वर्तमान दिनों में न डरें? बुराई करने से सब दिन डरना चाहिये। जब सिफ़ारिश न मानी जावेगी, तो फिर पैग़म्बर की गवाही वा सिफ़ारिश से ख़ुदा स्वर्ग देगा, यह बात क्योंकर सच हो सकेगी? क्या खुदा बहिश्तवालों का ही सहायक है, दोज़ख़वालों का नहीं? यदि ऐसा है, तो ख़ुदा पक्षपाती है॥१३॥

[मूसा को किताब और मौजिजे देना]

१४. हमने मूसा को किताब और मोज़िजे दिये....।५३।

मं० १। सि० १। सू० २। आ० ५३॥

[मूसा को किताब दी, तो कुरान का होना निरर्थक]

समीक्षक—जो मूसा को किताब दी तो **'क़ुरान'** का होना निरर्थक है। और उसको आश्चर्यशक्ति दी, यह **'बाइबल'** और **'क़ुरान'** में भी लिखा

है, परन्तु यह बात मानने योग्य नहीं, क्योंकि जो ऐसा होता तो अब भी होता; जो अब नहीं, तो पहिले भी न था।

[आश्चर्यशक्ति खुदा अब क्यों नहीं देता]

जैसे स्वार्थी लोग आजकल भी अविद्वानों के सामने सिद्ध बन जाते हैं, वैसे उस समय भी कपट किया होगा। क्योंकि खुदा और उसके सेवक अब भी विद्यमान हैं, पुनः इस समय खुदा आश्चर्यशक्ति क्यों नहीं देता और [वे आश्चर्यकर्म क्यों] नहीं कर सकते?

[क्या मूसा आदि की पुस्तकों में खुदा कुछ भूल गया था ?]

जो मूसा को किताब दी थी, तो पुनः **'क़ुरान'** का देना क्या आवश्यक था? क्योंकि जो भलाई-बुराई करने-न करने का उपदेश [होता है वह] सर्वत्र एक-सा होता है, तो पुनः भिन्न-भिन्न पुस्तक करने से पुनरुक्त दोष होता है। क्या मूसा जी आदि को दिये हुये पुस्तक में खुदा [कुछ] भूल गया था?॥१४॥

[पाप क्षमा किये जायेंगे]

१५. ....और कहो कि क्षमा मांगते हैं, हम क्षमा करेंगे तुम्हारे पाप और अधिक भलाई करनेवालों के।५८।

मं० १। सि० १। सू० २। आ० ५८॥

[पाप-क्षमा की बात से पापों की वृद्धि होती है]

समीक्षक—भला, यह खुदा का उपदेश सबको पापी बनानेवाला है वा नहीं? क्योंकि जब पाप क्षमा होने का आश्रय मनुष्यों को मिलता है तब पापों से कोई भी नहीं डरता। इसलिये ऐसा कहनेवाला ख़ुदा और यह ख़ुदा का बनाया हुआ पुस्तक नहीं हो सकता;

[पाप-क्षमा से खुदा भी अन्यायकारी बनता है]

क्योंकि वह न्यायकारी है, अन्याय कभी नहीं करता, और पाप-क्षमा करने में अन्यायकारी हो ही जाता है, किन्तु यथापराध दण्ड देने में ही न्यायकारी हो सकता है॥१५॥

[पत्थर पर डण्डा मारने से १२ चश्मे बह निकले]

१६. जब मूसा ने अपनी क़ौम के लिये पानी माँगा हमने कहा कि "अपना असा पत्थर पर मार।" उसमें से बारह चश्मे बह निकले।६०।

मं० १। सि० १। सू० २। आ० ६०॥

[डण्डा मारने से झरनों का निकलना सर्वथा असम्भव]

समीक्षक—अब देखिये, इन गपोड़ों के तुल्य दूसरा कोई होगा? एक पत्थर की शिला में डंडा मारने से बारह झरने निकलना सर्वथा असम्भव है। हाँ, उस पत्थर को भीतर से पोला कर, उसमें पानी भर, बाहर छिद्र करने से तो सम्भव है। अन्यथा नहीं॥१६॥

[तुम बन्दर हो जाओ]

१७. ....हमने उनको कहा कि "तुम निन्दित बन्दर हो जाओ।६५।" यह एक भय दिया जो उनके सामने और पीछे थे उनको, और शिक्षा ईमानदारों को।६६।

मं० १। सि० १। सू० २। आ० ६५,६६॥

[झूठा भय दिखाना खुदा का काम नहीं हो सकता]

समीक्षक—जो ख़ुदा ने 'निन्दित बन्दर हो जाना' केवल भय देने के लिये कहा था, तो उसका कहना मिथ्या हुआ वा छल किया। जो ऐसी बातें

करता [है] और जिसमें ऐसी बातें हैं, वह न ख़ुदा और न यह पुस्तक ख़ुदा का बनाया हो सकता है॥१७॥

[खुदा का मुर्दों को जिलाना]

१८. इस तरह मुर्दों को अल्लाह जिलाता है और तुमको अपनी निशानियाँ दिखलाता है कि तुम समझो।७३।

मं० १। सि० १। सू० २। आ० ७३॥

[खुदा मुर्दों को अब क्यों नहीं जिलाता ?]

समीक्षक—क्या मुर्दों को अल्लाह जिलाता था तो अब क्यों नहीं जिलाता? क्या क़यामत की रात तक क़ब्रों में पड़े रहेंगे? आजकल दौरासुपुर्द हैं? क्या इतनी ही ईश्वर की निशानियाँ हैं? पृथिवी, सूर्य, चन्द्रादि निशानियाँ नहीं हैं? क्या जगत् में जो विविध रचनाविशेष प्रत्यक्ष दीखती हैं ये निशानियाँ कम हैं?॥१८॥

[बहिश्त में सदा रहना]

१९. किन्तु जो बुराई कमायें और उन्हें उनका अपराध घेर लेवे तो वे लोग सदैव आग में वास करेंगे।८१। ....[जो ईमान लाये और अच्छे कर्म किये] वे सदैव काल बहिश्त अर्थात् वैकुण्ठ में वास करेंगे।८२।

मं० १। सि० १। सू० २। आ० ८१,८२॥

[स्वर्ग-नरक अनन्त काल के लिए नहीं हो सकता]

समीक्षक—कोई भी जीव अनन्त पुण्य-पाप करने का सामर्थ्य नहीं रखता, इसलिये सदैव स्वर्ग-नरक में नहीं रह सकते। और जो ख़ुदा ऐसा करे तो वह अन्यायकारी और अविद्वान् हो जावे।

[सबके पाप-पुण्य बराबर नहीं, तो समान फल कैसे ?]

क़यामत की रात न्याय होगा तो [उस एक रात तक के लिये] मनुष्यों के पुण्य-पाप बराबर होना उचित है। जो अनन्त नहीं है उसका फल अनन्त कैसे हो सकता है? और सृष्टि हुए सात-आठ हज़ार वर्षों से इधर ही बतलाते हैं, क्या इसके पूर्व ख़ुदा निकम्मा बैठा था, और क़यामत के पीछे भी निकम्मा रहेगा? ये सब बातें लड़कों के समान हैं, क्योंकि परमेश्वर के काम सदैव वर्तमान रहते हैं, और जितने जिसके पाप-पुण्य हैं, उतना ही उसको फल देता है। इसलिये **'क़ुरान'** की यह बात सच्ची नहीं॥१९॥

[मुसलमान परस्पर न लड़ें]

२०. जब हमने तुमसे प्रतिज्ञा कराई न बहाना लोहू किसी अपने आपस में, और किसी अपने आपस के घरों से न निकालना, फिर प्रतिज्ञा की तुमने, इसके तुम ही साक्षी हो।८४। फिर तुम वे लोग हो कि अपने आपस को मार डालते हो, [और] अपनों में से एक फ़िरके को उनके घरों से निकाल देते हो.... ।८५।

मं० १। सि० १। सू० २। आ० ८४। ८५॥

[दूसरों को मारना वा घर से निकालना अन्याय है]

समीक्षक—भला, प्रतिज्ञा करानी और करनी अल्पज्ञों की बात है वा परमात्मा की? जब परमेश्वर सर्वज्ञ है, तो ऐसा कड़ाकूट संसारी मनुष्य के समान क्यों करेगा? भला, यह कौन-सी भली बात है कि आपस का लोहू न बहाना, अपने मतवालों को घर से न निकालना, अर्थात् दूसरे मतवालों का लोहू बहाना और घर से निकाल देना! यह मिथ्या, मूर्खता और पक्षपात की बात नहीं है क्या?

[क्या ईश्वर जानता न था कि मुसलमान प्रतिज्ञा तोड़ेंगे ?]

क्या परमेश्वर प्रथम से ही नहीं जानता था कि ये प्रतिज्ञा से विरुद्ध करेंगे? इससे विदित होता है कि मुसलमानों का ख़ुदा भी ईसाइयों [के ईश्वर] की बहुत-सी उपमा रखता है। और यह **'क़ुरान'** स्वतन्त्र पुस्तक नहीं बन सकता, क्योंकि इसमें से थोड़ी-सी बातों को छोड़कर बाकी सब बातें **'बाइबल'** की हैं॥२०॥

[पाप हल्के न किये जायगे]

२१. ये वे लोग हैं कि जिन्होंने आख़िरत के बदले जिन्दगी यहां की मोल ले ली, उनसे पाप कभी हलका न किया जावेगा और न उनको सहायता दी जावेगी।८६।

मं० १। सि० १। सू० २। आ० ८६॥

[विना भोगे पाप-पुण्य किसी के हल्के भारी नहीं होते]

समीक्षक—भला, ऐसी ईर्ष्या-द्वेष की बातें कभी ईश्वर की ओर से हो सकती हैं? 'दूसरों की कहानी और दूसरों से कहनी' और किसी का पक्ष करना ख़ुदा की बात नहीं हो सकती किन्तु किसी मतावलम्बी मनुष्य की ओर से है। जिन लोगों के पाप हलके किये जायेंगे वा जिनको सहायता दी जावेगी वे कौन हैं? यदि वे पापी हैं और पापों का दण्ड दिये विना हलके किये जावेंगे, तो अन्याय होगा। जो सजा देकर हलके किये जावेंगे, तो जिनका बयान इस आयत में है, ये भी सजा पाके हलके हो सकते हैं। और दण्ड देकर भी हलके न किये जावेंगे, तो भी अन्याय होगा।

[प्रत्येक को सुख-दुःख कर्मानुसार ही मिलता है]

जो पापों से हलके किये जानेवालों से प्रयोजन धर्मात्माओं से है, तो उनके पाप तो आप ही हलके हैं, खुदा क्या करेगा? इससे यह लेख विद्वान् का नहीं। और **वास्तव में धर्मात्माओं को सुख और अधर्मियों को दुःख उनके कर्मों के अनुसार सदैव देना चाहिये॥२१॥**

[मूसा और ईसा को प्रकट करना]

२२. निश्चय हमने मूसा को किताब दी और उसके पीछे हम पैगम्बर को लाये और मरियम के पुत्र ईसा को प्रकट मौज़िजे अर्थात् दैवीशक्ति और सामर्थ्य दिये उसके साथ रूहुल्कुदुस* के। जब तुम्हारे पास उस वस्तुसहित पैग़म्बर आया कि जिसको तुम्हारा जी चाहता नहीं, फिर तुमने अभिमान किया, एक मत को झुठलाया और एक को मार डालते हो।८७।

मं० १। सि० १। सू० २। आ० ८७॥

[तब तो बाइबल भी मुसलमानों का धर्म-पुस्तक है]

समीक्षक—जब **'क़ुरान'** में साक्षी है कि मूसा को किताब दी, तो उसका मानना मुसलमानों को आवश्यक हुआ और जो-जो उस पुस्तक में दोष हैं वे भी मुसलमानों के मत में आ गिरे।

[मौजिजों की बातें लोगों को बहकाने के लिए हैं]

और 'मोजिज़े' अर्थात् दैवीशक्ति की बातें सब अन्यथा हैं। भोले-भाले मनुष्यों को बहकाने के लिये लोगों ने झूठ-मूठ चला ली हैं, क्योंकि सृष्टिक्रम और विद्या से विरुद्ध सब बातें झूठी ही होती हैं। जो उस समय

'मोजिज़े' थे, तो इस समय क्यों नहीं? जो इस समय भी नहीं, तो उस समय भी न थे, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं॥२२॥

[काफिरों पर खुदा की लानत]

२३. .....और इससे पहिले काफ़िरों पर विजय चाहते थे, जो कुछ पहचाना था, जब उनके पास वह आया, झट काफ़िर हो गये, काफ़िरों पर लानत है अल्लाह की।८९।

मं० १। सि० १। सू० २। आ० ८९॥

[आपस में एक-दूसरे को काफिर कहना मूर्खता है]

समीक्षक—क्या जैसे तुम अन्य मत-वालों को काफ़िर कहते हो, वैसे वे तुमको काफ़िर नहीं कहते हैं? और उनके मत के ईश्वर की ओर से धिक्कार देते हैं? फिर कहो कौन सच्चा और कौन झूठा? जो **विचार कर देखते हैं तो सब मत-वालों में झूठ पाया जाता है जो सच है सो सबमें एक-सा है। ये सब लड़ाइयाँ मूर्खता की हैं॥**२३॥

[अल्लाह काफिरों का शत्रु है]

२४. आनन्द का सन्देशा ईमानदारों को।९७। अल्लाह, फ़रिश्तों, पैग़म्बरों, ज़िबरईल और मीकाईल का जो शत्रु है, अल्लाह भी ऐसे काफ़िरों का शत्रु है।९८।

मं० १। सि० १। सू० २। आ० ९७।९८॥

---

* 'रूहुल्कुदुस' कहते हैं जिबरईल को, जो कि हरदम मसीह के साथ रहता था।

[ईश्वर किसी का शत्रु नहीं हो सकता]

समीक्षक—जब मुसलमान कहते हैं कि 'ख़ुदा लाशरीक है' फिर यह फौज की फौज 'शरीक' कहां से कर दी? क्या जो शैतान का शत्रु है वह परमेश्वर का भी शत्रु है? क्या वह ख़ुदा की आज्ञा से विरुद्ध नहीं चलता? इससे ख़ुदा पक्षपाती होता है॥२४॥

[अल्लाह जिसे चाहता है, प्रधान बनाता है]

२५. ....और अल्लाह ख़ास करता है, जिसको चाहता है दया करता है।१०५।

मं॰ १। सि॰ १। सू॰ २। आ॰ १०५॥

[खुदा की मर्जी ही से सब होवे, तो अच्छा काम कौन करेगा ?]

समीक्षक—क्या जो मुख्य [बनाने] और दया करने के योग्य न हो, उसको भी प्रधान बनाता और उस पर दया करता है? जो ऐसा है तो ख़ुदा बड़ा गड़बड़िया है; क्योंकि फिर अच्छा काम कौन करेगा और बुरे कर्म को कौन छोड़ेगा? क्योंकि ख़ुदा की प्रसन्नता पर सब बातें निर्भर करती हैं, कर्मफल पर नहीं। इससे सबको अनास्था होकर कर्मोच्छेदप्रसङ्ग होगा॥२५॥

[काफिरों से ईमान के फिरने का डर]

२६. ....ऐसा न हो कि काफ़िर लोग ईर्ष्या करके तुमको ईमान से फेर देवें, क्योंकि उनमें से ईमानवालों के बहुत से दोस्त हैं....।१०९।

मं॰ १। सि॰ १। सू॰ २। आ॰ १०९॥

[काफिरों के काम का ईश्वर को सही पता न था]

समीक्षक—अब देखिये, ख़ुदा ही उनको चिताता है कि तुम्हारे ईमान को काफ़िर लोग न डिगा देवें, अर्थात् क्या वह सर्वज्ञ नहीं है? ऐसी बातें ख़ुदा की नहीं हो सकती हैं॥२६॥

[अल्लाह का मुँह सब ओर]

२७. ....तुम जिधर मुँह करो, उधर ही मुँह अल्लाह का है..... ।११५।

मं० १। सि० १। सू० २। आ० ११५॥

[फिर मुसलमान किबले की ओर मुँह क्यों करते हैं ?]

समीक्षक—जो यह बात सच्ची है तो मुसलमान **'क़िब्ले'** की ओर मुंह क्यों करते हैं? जो कहें हमको क़िब्ले की ओर मुंह फेरने का हुक्म है, तो यह भी हुक्म है कि चाहे जिधर की ओर मुख करो। क्या एक बात सच्ची और दूसरी झूठी होगी?

[यदि अल्लाह का मुख है, तो वह सब ओर कैसे ?]

और जो अल्लाह का मुख है, तो वह सब ओर हो ही नहीं सकता, क्योंकि एक मुख एक ओर रहेगा, सब ओर क्योंकर रह सकेगा? इसलिये यह संगत नहीं॥२७॥

[हो जा कहनेमात्र से सृष्टि की रचना]

२८. वो आसमान और भूमि का उत्पन्न करने वाला है, जब वो कुछ करना चाहता है यह नहीं कि उसको करना पड़ता है, किन्तु उसे कहता है कि 'हो जा'; बस हो जाता है।११७।

मं० १। सि० १। सू० २। आ० ११७॥

[ख़ुदा ने होने का किसे हुक्म दिया, और किसने सुना ?]

समीक्षक—भला, ख़ुदा ने हुक्म दिया कि **"हो जा"**, तो हुक्म किसने सुना? और किसको सुनाया? और कौन बन गया? किस कारण से बनाया? जब यह लिखते हैं कि सृष्टि के पूर्व सिवाय ख़ुदा के कोई भी दूसरा वस्तु न था, तो यह संसार कहां से आया? विना कारण के कोई भी कार्य नहीं होता, तो इतना बड़ा जगत् कारण के विना कहां से हुआ? यह बात केवल लड़केपन की है।

[कोई भी पदार्थ विना तीन कारणों के नहीं बन सकता]

पूर्वपक्षी—ख़ुदा की इच्छा से [जगत् हुआ]।

उत्तरपक्षी—क्या तुम्हारी इच्छा से मक्खी की एक टांग भी बन सकती है? जो कहते हो कि ख़ुदा की इच्छा [मात्र] से यह सब कुछ जगत् बन गया।

पूर्वपक्षी—ख़ुदा सर्वशक्तिमान् है, इसलिये जो चाहे सो कर लेता है।

उत्तरपक्षी—सर्वशक्तिमान् शब्द का क्या अर्थ है?

पूर्वपक्षी—जो चाहे सो कर सके।

उत्तरपक्षी—क्या ख़ुदा दूसरा ख़ुदा भी बना सकता है? अपने आप मर सकता है? मूर्ख, रोगी और अज्ञानी भी बन सकता है?

पूर्वपक्षी—ऐसा कभी नहीं बन सकता।

उत्तरपक्षी—इसलिये परमेश्वर अपने और दूसरों के गुण, कर्म, स्वभाव के विरुद्ध कुछ भी नहीं कर सकता। जैसे, संसार में किसी वस्तु के बनने-बनाने में तीन पदार्थ प्रथम अवश्य होते हैं—एक, बनानेवाला, जैसे कुम्हार; दूसरा, घड़ा बननेवाली मिट्टी; और तीसरा, उसका साधन जिससे घड़ा बनाया जाता है। जैसे कुम्हार, मिट्टी और साधन से घड़ा बनता है और बननेवाले घड़े के पूर्व कुम्हार, मिट्टी और साधन होते हैं, वैसे ही जगत् के बनने से पूर्व परमेश्वर, जगत् का कारण प्रकृति और उनके गुण, कर्म, स्वभाव अनादि हैं। इसलिये यह **'क़ुरान'** की बात सर्वथा असम्भव है॥२८॥

[काबे को पवित्र स्थान बनाया]

२९. जब हमने लोगों के लिये काबे को पवित्र स्थान, सुख देने वाला, उपद्रव रहित बनाया, तुम नमाज़ के लिये इब्राहीम के स्थान को पकड़ो।१२५।

मं॰ १। सि॰ १। सू॰ २। आ॰ १२५॥

[काबे से पहिले पवित्र स्थान खुदा ने क्यों न बनाया]

समीक्षक—क्या **'काबा'** के पहले पवित्र स्थान खुदा ने कोई भी बनाया था वा नहीं? जो बनाया था तो **'काबा'** के बनाने की कुछ आवश्यकता नहीं थी। जो नहीं बनाया था, तो बेचारे पूर्वोत्पन्नों को पवित्र स्थान के विना ही रक्खा था। जब **'क़ुरान'** बनाया था, तब ईश्वर को पहला पवित्र स्थान बनाने का स्मरण न हुआ होगा॥२९॥

[इब्राहीम के दीन से मत फिरो]

३०. वो कौन मनुष्य है जो इब्राहीम के दीन से फिर जावे सिवाय उसके जिसने अपनी जान को मूर्ख बनाया। और निश्चय हमने दुनिया में उसी [इब्राहीम] को पसन्द किया और निश्चय आख़िरत में वो ही नेक है।१३०।

मं० १। सि० १। सू० २। आ० १३०॥

[इब्राहीम को ही खुदा ने क्यों पसन्द किया ?]

समीक्षक—यह कैसे सम्भव है कि जो इब्राहीम के दीन को नहीं मानते वे सब मूर्ख हैं? इब्राहीम को ही खुदा ने पसन्द किया इसका क्या कारण है? यदि धर्मात्मा होने के कारण से किया तो धर्मात्मा और भी बहुत हो सकते हैं? यदि बिना धर्मात्मा होने के ही पसन्द किया तो अन्याय हुआ। हाँ! **यह तो ठीक है कि जो धर्मात्मा है वही ईश्वर को प्रिय होता है; अधर्मी नहीं॥३०॥**

[क़िब्ले की ओर मुँह करो]

३१. निश्चय हम तेरे मुख को आसमान में फिरता देखते हैं, अवश्य हम तुझे उस क़िब्ले को फेरेंगे कि पसन्द करे उसको, बस, अपना मुख मस्जिदुलहराम की ओर फेर, जहां कहीं तुम हो अपना मुख उसकी ओर फेर लो।१४४।

मं० १। सि० २। सू० २। आ० १४४॥

[क़िब्ले की ओर मुँह करना बुतपरस्ती है]

समीक्षक—क्या यह छोटी बुतपरस्ती है? नहीं, किन्तु बड़ी है।

प्रश्न—हम मुसलमान लोग बुतपरस्त नहीं हैं किन्तु बुतशिकन अर्थात् बुतों=मूर्तियों के तोड़नेहारे हैं, क्योंकि हम **'काबा'** को ख़ुदा नहीं समझते।

उत्तर—जिनको तुम बुतपरस्त समझते हो वे भी उस-उस मूर्त्ति को ईश्वर नहीं समझते, किन्तु उसके सामने परमेश्वर की भक्ति करते हैं। **यदि बुतों के तोड़नेहारे हो तो उस मस्जिद 'काबा' के बड़े बुत को क्यों न तोड़ा?**

[मुसलमान बुतपरस्ती में पुराणियों से कम नहीं]

प्रश्न—वाह जी! हमारे तो **'काबा'** की ओर मुख फेरने का **'क़ुरान'** में हुक्म है और इनको वेद में [मूर्ति के सामने भक्ति करने का] हुक्म नहीं है, फिर वे बुतपरस्त क्यों नहीं? और हम क्यों? क्योंकि हमको ख़ुदा का हुक्म बजाना आवश्यक है।

उत्तर—जैसे तुम्हारे लिये **'क़ुरान'** में हुक्म है वैसे इनके लिये पुराण में आज्ञा है। जैसे तुम **'क़ुरान'** को ख़ुदा का कलाम समझते हो वैसे पुराणी भी पुराणों को ईश्वर के अवतार व्यास जी का वचन समझते हैं। तुममें और इनमें बुतपरस्ती का कुछ भिन्न भाव नहीं है, प्रत्युत तुम बड़े बुतपरस्त [हो] और ये छोटे हैं,

[मक्के की मस्जिद भी एक बड़ा बुत् है]

क्योंकि जब तक कोई मनुष्य अपने घर में से प्रविष्ट हुई बिल्ली को निकालने लगे, तब तक उसके घर में ऊंट प्रविष्ट हो जाय, वैसे ही मुहम्मद

साहब ने छोटे बुत को मुसलमानों के मन से निकाला, परन्तु बड़ा बुत जो कि पहाड़ सदृश मक्के की मस्जिद है, वह सब मुसलमानों के मन में प्रविष्ट करा दी; क्या यह छोटी बुतपरस्ती है?

[मुसलमानों को मूर्त्तिपूजा के खण्डन का अधिकार नहीं]

हां, जो हम लोग वैदिक हैं वैसे ही तुम भी वैदिक हो जाओ, तो बुतपरस्ती आदि बुराइयों से बच सको, अन्यथा नहीं। तुमको, जब तक अपनी बड़ी बुतपरस्ती को न निकाल दो, तब तक, दूसरे छोटे बुतपरस्तों के खण्डन से लज्जित होके, निवृत्त रहना चाहिये और अपने को बुतपरस्ती से पृथक् करके पवित्र करना चाहिये॥३१॥

[अल्लाह के मार्ग में मारे गये जीवित हैं]

३२. जो लोग अल्लाह के मार्ग में मारे जाते हैं उनके लिये यह मत कहो कि 'ये मृतक हैं', किन्तु वे जीवित हैं..... ।१५४।

मं॰ १। सि॰ २। सू॰ २। आ॰ १५४॥

[ईश्वर के मार्ग में मरने-मारने की क्या आवश्यकता ?]

समीक्षक—भला, ईश्वर के मार्ग में मरने-मारने की क्या आवश्यकता है? यह क्यों नहीं कहते हो कि यह बात अपने मतलब सिद्ध करने के लिये है कि यह लोभ देंगे तो लोग खूब लड़ेंगे, अपना विजय होगा, मारने से न डरेंगे, लूट-मार करने से ऐश्वर्य प्राप्त होगा, पश्चात् विषयानन्द करेंगे, इत्यादि स्वप्रयोजन के लिये यह विपरीत व्यवहार किया है॥३२॥

३३. इन* लोगों पर इनके मालिक की ओर से दया और दरुद हैं और ये ही मार्ग पानेवाले हैं।१५७।

मं० १। सि० २। सू० २। आ० १५७॥

समीक्षक—अब देखिये, यह काम भी एक प्रकार की बुतपरस्ती है। भला, मुर्दों पर आयतें पढ़ने से क्या होता है? क्योंकि उसका जीवात्मा तो पहले ही चला गया, पुनः पाठ कौन सुनेगा? इसलिये यह व्यर्थ कर्म है; इत्यादि से यह पुस्तक ईश्वरकृत वा विद्वत्कृत भी नहीं है॥३३॥

३४. ....जो लोग छिपाते हैं उसको जो कि हमने प्रमाणों और शिक्षा से उतारा। उसके बीच में जो कुछ है अल्लाह की और धिक् देनेवालों की धिक्कार है.... ।१५९। परन्तु जिन्होंने तौबा और भलाई करी, उनके ऊपर फिर दया करता हूं और करूंगा.... ।१६०। जो लोग काफ़िर हुए, और काफ़िर ही रहे, फिर मर गये, उन पर खुदा, फरिश्तों और सब आदमियों की धिक्कार है।१६१। वे सदैव उसी में रहेंगे। उनका पाप हलका न किया जायगा और न वे ढील दिये जायेंगे।१६२। तुम्हारा एक ही मालिक है और कोई नहीं। वह क्षमा करनेवाला दयालु है।१६३।

मं० १। सि० २। आ० १५९-१६३॥

---

* यह वाक्य आशीर्वाद में नहीं समझा जाता है। इसका प्रचार मुसलमानों में ही है। कब्रवासियों पर पढ़ते हैं **दरुद** और **फ़ातिहः**॥

समीक्षक—यह बात जो कि पहले पैगम्बरों के सामने, जैसा कि इब्राहिम साहब के सामने खतनः आदि के नियम बांधे थे उनको जो नहीं करते, और शहर मक्के में 'सफ़ा' और 'मुरब्बः' दो पहाड़ हैं, अरब के लोग इब्राहिम के समय से सदैव हज करते रहे, परन्तु मुसलमानों ने किसी कारण से छोड़ दी थी, उस पर यह आयत उतरी, उन्हीं को धिक्कार दिया जाता है और जो मुसलमान तौबा करले तो माफ हो जाय, परन्तु जो काफ़िर अर्थात् मुसलमान के मज़हब में नहीं हैं, उन पर ख़ुदा बड़ा खार खाता है। भला, ऐसी बातें कभी ख़ुदा की हो सकती हैं? और जो पक्षपाती है, वह ईश्वर कभी नहीं हो सकता। क्या मुसलमानों पर क्षमा करनेवाला दयालु है, अन्य पर दयाकर्त्ता 'दयाहीन' कहा जावे? इसी से न यह ईश्वरकृत पुस्तक और न इसमें कहा हुआ ईश्वर हो सकता है॥३४॥

[शैतान के पीछे मत चलो]

३५. ....और यह कि अल्लाह कठोर दुःख देने वाला है।१६५। ....शैतान का अनुसरण मत करो, निश्चय वो तुम्हारा प्रत्यक्ष शत्रु है।१६८। उसके विना और कोई नहीं जो बुराई और निर्लज्जता की आज्ञा दे और यह कि तुम कहो अल्लाह पर जो नहीं जानते।१६९।

मं० १। सि० २। सू० २। आ० १६५। १६८। १६९॥

[क्या अन्य मतस्थ धर्मात्माओं को भी ख़ुदा कष्ट देगा ?]

समीक्षक—क्या कठोर दुःख देनेवाला ख़ुदा सब पापियों- पुण्यात्माओं पर दयालु है अथवा मुसलमानों पर दयालु और अन्य पर दयाहीन है? जो ऐसा है, तो वह ईश्वर ही नहीं हो सकता। और पक्षपाती नहीं है तो जो मनुष्य जहां कहीं धर्म करेगा उस पर ईश्वर दयालु और जो अधर्म करेगा

उस पर दण्डदाता होगा। तो फिर बीच में मुहम्मद साहब और **'क़ुरान'** को मानना आवश्यक न रहा।

[पथभ्रष्ट करनेवाले शैतान को खुदा ने क्यों बनाया ?]

और जो सबको बुराई करानेवाला मनुष्यमात्र का शत्रु शैतान है, उसको खुदा ने उत्पन्न ही क्यों किया? क्या वह भविष्यत् की बात नहीं जानता था? जो कहो कि जानता था, परन्तु परीक्षा के लिये बनाया, तो भी नहीं बन सकता, क्योंकि परीक्षा करना अल्पज्ञ का काम है। सर्वज्ञ तो सब जीवों के अच्छे-बुरे कर्मों को सदा से ठीक-ठीक जानता है।

[जो शैतान सबको बहकाता है, उसे कौन बहकाता है ?]

और शैतान सबको बहकाता है, तो शैतान को किसने बहकाया? जो कहो कि शैतान आपसे-आप बहका, तो अन्य भी आपसे-आप बहक सकते हैं, बीच में शैतान का क्या काम? और जो ख़ुदा ने ही शैतान को बहकाया, तो ख़ुदा शैतान का भी शैतान ठहरेगा। ऐसी बात ईश्वर की नहीं हो सकती। और जो कोई बहकाता है वह कुसंग तथा अविद्या से भ्रमित होता है॥३५॥

[मुर्दार लोहू और सूअर का गोश्त हराम]

३६. तुम पर मुर्दार, लोहू और गोश्त सूअर का हराम है और अल्लाह के विना जिस पर कुछ पुकारा जावे... ।१७३।

मं० १। सि० २। सू० २। आ० १७३॥

[क्या मनुष्य का मांस खाया जा सकता है ?]

समीक्षक—यहां विचारना चाहिये कि मुर्दा, चाहे आपसे-आप मरे वा किसी के मारने से दोनों बराबर हैं। हां, इनमें कुछ भेद भी है तथापि

मृतकपन में कुछ भेद नहीं। जो लोहू हराम है, तो मरे पीछे लोहू शरीर में ही जमकर मांस हो जाता है, फिर मांस खाना मुसलमानों के लिये सर्वथा हराम रहा। और जब एक सूअर का निषेध किया, तो क्या मनुष्य का मांस खाना उचित है?

[क्या ईश्वर दूसरों को पुत्रवत् नहीं मानता ?]

क्या यह बात अच्छी हो सकती है कि परमेश्वर के नाम पर पशु आदि को अत्यन्त दुःख देके प्राणहत्या करनी? इससे ईश्वर का नाम कलंकित हो जाता है। **हाय! ईश्वर ने विना पूर्वजन्म के अपराध के मुसलमानों के हाथ से दारुण दुःख क्यों दिलाया? क्या वह उन पर दयालु नहीं हैं? उनको पुत्रवत् नहीं मानता?**

[उपकारक गाय आदि पशुओं को मारना महापाप है]

जिस वस्तु से अधिक उपकार होवे, उन गाय आदि के मारने का निषेध न करना, जानो हत्या कराकर खुदा जगत् का हानिकारक है और हिंसारूप पाप से कलंकित भी हो जाता है। ऐसी बातें खुदा और खुदा के पुस्तक की कभी नहीं हो सकतीं॥३६॥

[रोजे की रात हलाल]

३७. रोज़े की रात तुम्हारे लिये हलाल की गई कि मदनोत्सव करना अपनी बीबियों से। वे तुम्हारे वास्ते परदा हैं और तुम उनके लिये परदा हो। अल्लाह ने जाना कि तुम चोरी करते हो अर्थात् व्यभिचार, बस फिर अल्लाह ने क्षमा किया तुमको। बस, उनसे मिलो और ढूंढो जो अल्लाह ने तुम्हारे लिये लिख दिया है अर्थात् सन्तान;

खाओ-पीयो, यहां तक कि प्रकट हो तुम्हारे लिये काले तागे से सुफेद तागा वा रात से जब दिन निकले.... ।१८७।

मं॰ १। सि॰ २। सू॰ २। आ॰ १८७॥

[रोजा पौराणिकों के चान्द्रायण व्रत का विकृत रूप है]

समीक्षक—यहाँ यह निश्चित होता है कि जब मुसलमानों का मत चला वा उसके पहिले किसी ने किसी पौराणिक को पूछा होगा कि चान्द्रायण व्रत जो एक महीने-भर का होता है उसका विधि क्या है? वह शास्त्रविधि जो कि चन्द्र की कला घटने-बढ़ने के अनुसार ग्रासों को घटाना-बढ़ाना, और मध्याह्न में खाना लिखा है, उसको न जानकर कहा होगा कि चन्द्रमा का दर्शन करके खाना। उसको इन मुसलमान लोगों ने इस प्रकार का कर लिया।

[यह क्या व्रत, दिन में न खाया, रात को खा लिया ?]

परन्तु व्रत में स्त्री-समागम का त्याग है, वह एक बात खुदा ने बढ़ाकर कह दी कि तुम स्त्रियों का भी समागम भले ही किया करो, और रात में चाहे अनेक वार खाओ। भला, यह व्रत क्या हुआ? दिन में न खाया, रात को खाते रहे। परन्तु **यह सृष्टिक्रम से विपरीत है कि दिन में न खाना रात में खाना**॥३७॥

[कत्ल से कुफ़्र बुरा]

३८. अल्लाह के मार्ग में लड़ो उनसे जो तुमसे लड़ते हैं.... ।१९०। मार डालो तुम उनको जहां पाओ, क़त्ल से कुफ़्र बुरा है.... ।१९१। यहां तक उनसे लड़ो कि कुफ़्र न रहे और होवे दीन अल्लाह

का।१९३। ....उन्होंने जितनी ज़ियादती करी. उतनी ही तुम उनके साथ करो.... ।१९४।

मं० १। सि० २। सू० २। आ० १९०। १९१। १९३। १९४॥

[क़ुरान की इस शिक्षा से आपस में विरोध ही बढ़ा]

समीक्षक—जो **'क़ुरान'** में ऐसी बातें न होती, तो मुसलमान लोग इतना बड़ा अपराध जो कि अन्य मत-वालों पर किया है, न करते; और विना अपराधियों को मारना उन पर बड़ा पाप है।

[अन्य मतस्थों को मारने की बात अच्छी नहीं]

जो मुसलमान के मत का ग्रहण न करे, उसको कुफ़्र कहते हैं अर्थात् कुफ़्र से क़त्ल को मुसलमान लोग अच्छा मानते हैं। अर्थात् जो हमारे दीन को न मानेगा उसको हम क़त्ल करेंगे, सो करते ही आये। मज़हब पर लड़ते-लड़ते आप ही राज्य आदि से नष्ट हो गये।

[वैर से वैर कभी शान्त नहीं होता]

और उनका मन अन्य मत-वालों पर अति कठोर रहता है। **क्या चोरी का बदला चोरी है कि जितना हमारा चोरी आदि अपराध चोर करें, क्या हम भी [उतनी ही] चोरी करें? यह सर्वथा अन्याय की बात है। क्या कोई अज्ञानी हमको गालियां दे, क्या हम भी उसको गालियां देवें?** यह बात न ईश्वर, न ईश्वर के भक्त विद्वान् की और न ईश्वरोक्त पुस्तक की हो सकती है। यह तो केवल स्वार्थी, अज्ञानी मनुष्य की है॥३८॥

[इस्लाम में प्रवेश करो]

३९. ....अल्लाह झगड़ा करनेवालों को मित्र नहीं करता।२०५। ऐ लोगो ! जो ईमान लाये हो इस्लाम में प्रवेश करो.... ।२०८।

मं० १। सि० २। सू० २। आ० २०५। २०८॥

[खुदा को झगड़ा पसन्द नहीं, तो उसकी प्रेरणा क्यों ?]

समीक्षक—जो झगड़ा करनेवालों को ख़ुदा मित्र नहीं समझता तो क्यों आप ही मुसलमानों को झगड़ा करने में प्रेरणा करता है? और झगड़ालू मुसलमानों से मित्रता क्यों करता है?

[क्या ख़ुदा मुसलमानों का ही है, अन्यों का नहीं ?]

क्या मुसलमान के मत में मिलने में ख़ुदा राज़ी है? तो वह मुसलमानों का ही पक्षपाती है, सब संसार का ईश्वर नहीं। इससे यहां यह विदित होता है कि न **'क़ुरान'** ईश्वरकृत [है] और इसमें कहा हुआ ईश्वर भी नहीं हो सकता है॥३९॥

[जिसको चाहे अनन्त रिजक देवे]

४०. ....खुदा जिसको चाहे अनन्त रिज़क देवे।२१२।

मं० १। सि० २। सू० २। आ० २१२॥

[ख़ुदा की मर्ज़ी से ही पदार्थ मिलें, तो परिश्रम व्यर्थ]

समीक्षक—क्या विना पुण्य के ख़ुदा ऐसे ही रिज़क देता है? फिर भलाई-बुराई का करना एक-सा ही हुआ, क्योंकि सुख-दुःख प्राप्त होना उसकी इच्छा पर है। इससे धर्म से विमुख होकर मुसलमान लोग यथेष्टाचार करते हैं और कोई-कोई इस **'क़ुरानोक्त'** पर विश्वास न करके धर्मात्मा भी होते हैं॥४०॥

[रजस्वला से बचो; बीबियाँ खेती हैं]

४१. प्रश्न करते हैं तुझसे, रजस्वलाओं को कह वो अपवित्र हैं, पृथक् रहो, ऋतु समय में उनके समीप मत जाओ, जब तक कि वे पवित्र न

हों। जब नहा लेवें, उनके पास उस स्थान से जाओ ख़ुदा ने आज्ञा दी....।२२२। तुम्हारी बीबियां तुम्हारे लिये खेतियां हैं, बस जाओ जिस तरह चाहो अपने खेत में....।२२३। तुमको अल्लाह लग़ब (=बेकार, व्यर्थ) शपथ के तोड़ने में नहीं पकड़ता....।२२५।

मं० १। सि० २। सू० २। आ० २२२। २२३। २२५॥

[रजस्वला से दूर रहना तो ठीक; उन्हें खेती बताना ठीक नहीं]

समीक्षक—जो यह रजस्वला का स्पर्श-संग न करना लिखा है, यह अच्छी बात है। परन्तु जो यह स्त्रियों को खेती के तुल्य लिखा और **'जैसा जिस तरह से चाहो, जाओ'** यह विषयी करने का भी कारण हो सकता है। जो ख़ुदा बेकार शपथ पर नहीं पकड़ता, तो सब झूठ बोलेंगे, शपथ तोड़ेंगे। इससे ख़ुदा झूठ का प्रवर्त्तक होगा॥४१॥

[खुदा का उधार मांगना, और दूना देना]

४२. वो कौन मनुष्य है जो अल्लाह को उधार देवे। अच्छा, बस, अल्लाह द्विगुण करे उसके वास्ते....।२४५।

मं० १। सि० २। सू० २। आ० २४५॥

[क्या खुदा दीवालिया हो गया था, जो दुगुने पर कर्ज लिया ?]

समीक्षक—अब देखिये, यह **'क़ुरान'** बनाने वा बनवानेवाले की मतलबसिन्धु की बात कि ईश्वर के नाम से लोगों से ठगके स्वप्रयोजन सिद्ध करना चाहता है! क्या ईश्वर खुद को धन नहीं दे सकता था और क्या उसका ख़जाना खाली हो गया था? क्या वह हुंडी, पुड़िया व्यापारादि में मग्न होने से टोटे में फंस गया था जो उधार* लेने लगा? और एक का दो-दो देना स्वीकार करता है, क्या यह साहूकारों का काम है? किन्तु

ऐसा काम तो दिवालियों वा जिनके ख़र्च अधिक हो और आय न्यून हो उनको करना पड़ता है, ईश्वर को नहीं॥४२॥

[अल्लाह जो चाहता है, करता है]

४३. ....उनमें से कोई ईमान लाया और कोई काफ़िर हुआ। जो अल्लाह चाहता न लड़ते, जो चाहता है अल्लाह करता है।२५३।

मं० १। सि० २। सू० २। आ० २५३॥

[क्या सब लड़ाई ईश्वर की इच्छा से होती है ?]

समीक्षक—क्या जितनी लड़ाई होती है वह ईश्वर की ही इच्छा से [होती है]? क्या वह अधर्म करना चाहे, तो कर सकता है? जो ऐसी बात है, तो वह ख़ुदा ही नहीं, क्योंकि भले मनुष्यों का यह कर्म नहीं कि शान्तिभंग करके लड़ाई करावें। इससे विदित होता है कि यह **'क़ुरान'** न ईश्वर का बनाया और न किसी धार्मिक विद्वान् का रचित है॥४३॥

---

* इसी आयत के भाष्य में तफ़सीर हुसैनी में लिखा है कि एक मनुष्य मुहम्मद साहब के पास आया। उसने कहा कि "ऐ रसूलल्लाह! खुदा कर्ज़ क्यों माँगता है?" उन्होंने उत्तर दिया कि "तुमको बहिश्त में ले जाने के लिये।" उसने कहा कि "जो आप ज़मानत लें, तो मैं दूँ।" मुहम्मद साहब ने उसकी ज़मानत ले ली। खुदा का भरोसा न हुआ, उसके दूत का हुआ।

[खुदा की कुर्सी]

४४. ....जो कुछ आसमान और पृथिवी पर है सब उसी के लिये है।.... उसकी कुर्सी ने आसमान और पृथिवी को समा लिया है....।२५५।

मं० १। सि० ३। सू० २। आ० २५५॥

[सृष्टि के पदार्थ जीवों के लिए हैं; कुर्सीवाला ईश्वर कैसे ?]

समीक्षक—जो आकाश और भूमि में पदार्थ हैं वे सब जीवों के लिये परमात्मा ने उत्पन्न किये हैं, अपने लिये नहीं; क्योंकि वह पूर्णकाम है। उसको किसी पदार्थ की अपेक्षा नहीं। जब उसकी कुर्सी है, तो वह एकदेशी है। जो एकदेशी होता है वह ईश्वर नहीं कहाता, क्योंकि ईश्वर तो व्यापक है॥४४॥

[खुदा पापियों को मार्ग नहीं दिखाता]

४५. .....अल्लाह सूर्य को पूर्व से लाता है। बस, तू पश्चिम से ले आ। जो क़ाफिर था, हैरान हुआ। निश्चय अल्लाह पापियों को मार्ग नहीं दिखलाता।२५८।

मं० १। सि० ३। सू० २। आ० २५८॥

[सूर्य कहीं नहीं आता-जाता, अपनी परिधि में घूमता है]

समीक्षक—देखिये, यह अविद्या की बात! भला **सूर्य न पूर्व से पश्चिम और न पश्चिम से पूर्व कभी आता-जाता है। वह तो अपनी परिधि में घूमता रहता है।** इससे निश्चित जाना जाता है कि **'क़ुरान'** के कर्त्ता को न **'खगोल'** और **'भूगोल विद्या'** आती थी।

[मार्गदर्शन तो पापियों को ही चाहिये]

जो पापियों को मार्ग नहीं बतलाता तो पुण्यात्माओं के लिये भी मुसलमानों के ख़ुदा की आवश्यकता नहीं, क्योंकि धर्मात्मा तो धर्म-मार्ग में ही होते हैं; मार्ग तो धर्म से भूले हुए मनुष्यों को बतलाना होता है। सो कर्त्तव्य के न करने से **'क़ुरान'** के कर्त्ता की बड़ी भूल है॥४५॥

[ख़ुदा की बाजीगरी]

४६. .....कहा, चार जानवरों [में] से ले उनकी सूरत पहिचान रख, फिर हर पहाड़ पर उनमें से एक-एक टुकड़ा रख दे, फिर उनको बुला, दौड़ते तेरे पास चले आवेंगे....।२६०।

मं० १। सि० ३। सू० २। आ० २६०॥

[क्या ऐसी ही बातों से खुदा की खुदाई है ?]

समीक्षक—वाह-वाह देखो जी! मुसलमानों का ख़ुदा भानमती के समान खेल कर रहा है ! क्या ऐसी ही बातों से ख़ुदा की ख़ुदाई है? बुद्धिमान् लोग ऐसे ख़ुदा को तिलाञ्जलि देके दूर रहेंगे और मूर्ख लोग फसेंगे। इससे ख़ुदा को बड़ाई के बदले बुराई पल्ले पड़ेगी॥४६॥

[किसी को नीति, किसी को अनीति देना खुदा का काम नहीं]

४७. जिसको चाहे नीति देता है....।२६९।

मं० १। सि० ३। सू० २। आ० २६९॥

समीक्षक—जब जिसको चाहता नीति देता है। तो जिसको नहीं चाहता है उसको अनीति देता होगा? यह बात ईश्वरता की नहीं। किन्तु जो पक्षपात

छोड़ सबको नीति का उपदेश करता है, वही ईश्वर और आप्त हो सकता है, अन्य नहीं॥४७॥

[क्या ब्याजखोर सदा क़ब्र में ही रहेंगे ?]

४८. जो लोग ब्याज खाते हैं वे क़ब्र से नहीं खड़े होंगे....।२७५।

मं॰ १। सि॰ ३। सू॰ २। आ॰ २७५॥

समीक्षक—क्या वे क़ब्रों में ही पड़े रहेंगे? और जो पड़े रहेंगे, तो कब तक? ऐसी असम्भव बात ईश्वर के पुस्तक की तो नहीं हो सकती है, किन्तु बालबुद्धियों की तो हो सकती है॥४८॥

[क्षमा और दण्ड खुदा की मर्ज़ी से]

४९. .....वह कि जिसको चाहे क्षमा करेगा, जिसको चाहे पापी बनावेगा, क्योंकि वह सब वस्तु पर बलवान् है।२८४।

मं॰ १। सि॰ ३। सू॰ २। आ॰ २८४॥

[यथायोग्य न्याय न करने से खुदा स्वयं ही पापी होगा]

समीक्षक—क्या क्षमा के योग्य पर क्षमा न करना, अयोग्य पर क्षमा करना गवरगंड राजा के तुल्य यह कर्म नहीं है? यदि ईश्वर जिसको चाहता पापी वा पुण्यात्मा बनाता है तो जीव को पाप-पुण्य न लगना चाहिये,

[ईश्वर की मर्ज़ी से किया, तो जीव को सुख-दुःख क्यों ?]

क्योंकि जब ईश्वर ने उसको वैसा किया तो जीव को दुःख-सुख न होना चाहिये। जैसे सेनापति की आज्ञा से किसी भृत्य ने किसी को मारा वा रक्षा की उसका फलभागी वह नहीं होता, वैसे वे भी नहीं॥४९॥

[मुसलमानों का बहिश्त; नहरें बीबियाँ और सेवक]

५०. कह इससे अच्छी और क्या परहेज़गारों को खबर दें कि अल्लाह की ओर से बहिश्तें हैं, जिनमें नहरें चलती हैं। उसी में सदैव रहनेवाली शुद्ध बीबियाँ हैं, अल्लाह की प्रसन्नता से। अल्लाह उनको देखनेवाला है साथ बन्दों के।१५।

मं० १। सि० ३। सू० ३। आ० १५॥

[यह स्वर्ग है वा वेश्यावन ?]

समीक्षक—भला, यह स्वर्ग है किंवा वेश्या-वन? इसको ईश्वर कहना [चाहिये] वा स्त्रैण अर्थात् स्त्रियों में प्रसक्त? कोई भी बुद्धिमान्, ऐसी बातें जिसमें हों, उसको परमेश्वर का किया पुस्तक कभी नहीं मान सकते। यह पक्षपात क्यों करता है? जो बीबियां बहिश्त में सदा रहती हैं, वे यहां जन्म पाके वहां गई हैं वा वहीं उत्पन्न हुई हैं? यदि यहां जन्म पाकर वहां गई हैं, और क़यामत की रात से पहले ही वहां बीबियों को बुला लिया तो उनके खाविन्दों को क्यों न बुला लिया? और क़यामत की रात में सब न्याय होगा, इस नियम को क्यों तोड़ा? यदि वहीं जन्मीं हैं, तो क़यामत तक वे क्योंकर निर्वाह करती हैं? यदि फरिश्तों से निर्वाह करती हैं, तो यहाँ से बहिश्त में जानेवाले मुसलमानों को ख़ुदा बीबियां कहां से देगा? क्या क्षतयोनि ही उनको देगा?

[बीबियाँ सदा से वहाँ हैं, तो पुरुष क्यों नहीं ?]

और जैसे बीबियां बहिश्त में सदा रहनेवाली बनाई, वैसे पुरुषों को वहां सदा रहने वाले क्यों नहीं बनाया? इसलिये मुसलमानों का ख़ुदा अन्यायकारी, बेसमझ है॥५०॥

[क्या इस्लाम से पहले कोई ईश्वरीय मत न था ?]

५१. निश्चय अल्लाह की ओर से दीन इसलाम है....।१९।

मं० १। सि० ३। सू० ३। आ० १९॥

समीक्षक—क्या अल्लाह मुसलमानों का ही है, अन्यों का नहीं? क्या तेरह-सौ वर्षों के पूर्व ईश्वरीय मत था ही नहीं? इसी से यह **'क़ुरान'** ईश्वर का बनाया तो नहीं, किन्तु किसी पक्षपाती का बनाया है॥५१॥

[सबके साथ न्याय होगा; सब कुछ खुदा की मर्जी पर]

५२. ....प्रत्येक जीव को पूरा दिया जावेगा जो कुछ उसने कमाया और वे न अन्याय किये जावेंगे।२५। कह—'या अल्लाह तू ही मुल्क का मालिक है जिसको चाहे देता है जिससे चाहे छीनता है, जिसको चाहे प्रतिष्ठा देता है जिसको चाहे अप्रतिष्ठा देता है। सब कुछ तेरे ही हाथ में है, प्रत्येक वस्तु पर तू ही बलवान् है।२६। रात को दिन में और दिन को रात में पैठाता है और मृतक को जीवित से, जीवित को मृतक से निकालता है और जिसको चाहे अनन्त अन्न देता है।२७।'

मुसलमानों को उचित है कि काफ़िरों को मित्र न बनावें सिवाय मुसलमानों के जो कोई यह करे, बस, वह अल्लाह की ओर से नहीं....।२८। कह—'जो तुम चाहते हो अल्लाह को, तो पक्ष करो मेरा, अल्लाह चाहेगा तुमको, और तुम्हारे पाप क्षमा करेगा। निश्चय ही करुणामय है।३१।

मं० १। सि० ३। सू० ३। आ० २५। २६। २७। २८। ३१॥

[कर्मानुसार फल मिलेगा तो पाप-क्षमा की बात व्यर्थ]

समीक्षक—जब प्रत्येक जीव को कर्मों का पूरा-पूरा फल दिया जावेगा तो क्षमा नहीं किया जायगा, और जो क्षमा किया जायगा तो पूरा फल नहीं दिया जायगा, और [इस प्रकार] अन्याय होगा। जब विना उत्तम कर्मों के राज्य [और] प्रतिष्ठा देगा, तो भी ईश्वर अन्यायी हो जायगा और विना पाप के राज्य और प्रतिष्ठा छीन लेगा, तो भी अन्यायकारी हो जायगा।

[असम्भव काम ईश्वर भी नहीं कर सकता]

भला, रात में दिन, दिन में रात और जीवित से मृतक और मृतक से जीवित कभी हो सकता है? क्योंकि ईश्वर की व्यवस्था अछेद्य-अभेद्य है, कभी अदल-बदल नहीं हो सकती।

[केवल मुसलमानों से ही मैत्री की बात पक्षपात]

अब देखिये पक्षपात की बातें! कि जो मुसलमान के मज़हब में नहीं हैं उनको **'काफ़िर'** ठहराना, उनमें श्रेष्ठों से भी मित्रता न रखने और मुसलमानों में दुष्टों से भी मित्रता रखने के उपदेश करना ईश्वर को ईश्वरता से बहिः कर देता है। इससे यह **'क़ुरान'**, **'क़ुरान'** का ख़ुदा और मुसलमान लोग केवल पक्षपात, अविद्या के भरे हुए हैं, इसीलिये मुसलमान लोग अन्धेरे में हैं।

[खुदा किसी का पक्ष नहीं किया करता, चाहे वह कोई भी हो]

और देखिये मुहम्मद साहब की लीला कि जो तुम मेरा पक्ष करोगे तो ख़ुदा तुम्हारा पक्ष करेगा और जो तुम पक्षपातरूप पाप करोगे उसको क्षमा भी करेगा! इससे सिद्ध होता है कि मुहम्मद साहब का अन्तःकरण

शुद्ध नहीं था। इसीलिये अपने मतलब सिद्ध करने के लिये मुहम्मद साहब ने **'क़ुरान'** बनाया वा बनवाया, ऐसा विदित होता है॥५२॥

[खुदा ने मरियम को पसन्द किया]

५३. जिस समय कहा फरिश्तों ने कि ऐ मरियम! तुझको अल्लाह ने पसन्द किया और पवित्र किया ऊपर जगत् की स्त्रियों के।४२।

मं० १। सि० ३। सू० ३। आ० ४२॥

[अब खुदा और फरिश्ते किसी से बातें क्यों नहीं करते ?]

समीक्षक—भला, जब आजकल ख़ुदा के फ़रिश्ते और ख़ुदा किसी से बातें करने को नहीं आते, तो प्रथम भी नहीं आये होंगे। जो कहो कि पहिले के मनुष्य पुण्यात्मा थे, अब के नहीं, तो यह बात मिथ्या है। किन्तु जिस समय ईसाई और मुसलमानों का मत चला था, उस समय उन देशों में जंगली और विद्याहीन मनुष्य अधिक थे, इसीलिये ऐसे विद्याविरुद्ध मत चल गये। अब विद्वान् अधिक हैं, इसलिये नहीं चल सकते। किन्तु जो-जो ऐसे पोकल मज़हब हैं, वे भी अस्त होते जाते हैं, वृद्धि की तो कथा ही क्या है!॥५३॥

[अल्लाह ने कहा—हो जा, और हो गया]

५४. ....उसको कहता है कि 'हो', बस हो जाता है।४७। काफ़िरों ने धोखा दिया, ख़ुदा ने धोखा दिया, ख़ुदा बहुत मकर करने वाला है।५४।

मं० १। सि० ३। सू० ३। आ० ४७। ५४॥

[खुदा ने किससे कहा—और कौन हो गया ?]

समीक्षक—जब मुसलमान लोग ख़ुदा के सिवाय दूसरी चीज़ नहीं मानते तो ख़ुदा ने किससे कहा? और उसके कहने से कौन हो गया? इसका उत्तर मुसलमान सात जन्म में भी नहीं दे सकेंगे, क्योंकि विना उपादान कारण के कार्य कभी नहीं हो सकता। विना कारण के कार्य कहना, जानो 'अपने मा-बाप के विना मेरा शरीर हो गया' ऐसी बात है।

[धोखा खाने और देनेवाला खुदा कभी नहीं हो सकता]

जो धोखा खाता और मकर अर्थात् छल और दम्भ करता है वह ईश्वर तो कभी नहीं हो सकता, किन्तु उत्तम मनुष्य भी ऐसा काम नहीं करता॥५४॥

[तीन हज़ार फ़रिश्तों के साथ मदद]

५५. ....मत मरो, परन्तु मुसलमान हो।१०२। ....क्या तुमको यह बहुत न होगा कि अल्लाह तुमको तीन हज़ार फ़रिश्तों के साथ सहाय्य देवे।१२३।

मं॰ १। सि॰ ३। सू॰ ३। आ॰ १०२।१२३॥

[अब फरिश्तों को लेकर क्यों नहीं आता ?]

समीक्षक—देखिये, इससे यह ठीक सिद्ध होता है कि मुसलमान न होगे तो हम तुमको मार डालेंगे। यह केवल अधर्म की बात है। जो मुसलमानों को तीन हज़ार फ़रिश्तों के साथ सहाय्य देता था, तो अब मुसलमानों की बादशाही बहुत-सी नष्ट हो गई और होती जाती है, क्यों सहाय्य नहीं देता? इसलिये यह बात केवल लोभ देके मूर्खों को फसाने के लिये महा-अन्याय की है॥५५॥

[काफिरों पर हमको सहाय कर]

५६. ....और काफ़िरों पर हमको सहाय्य कर।१४७। अल्लाह तुम्हारा उत्तम सहायक और कारसाज़ है।१५०। जो तुम अल्लाह के मार्ग में मारे जाओ वा मर जाओ, अल्लाह की दया बहुत अच्छी है....।१५७।

मं० १। सि० ४। सू० ३। आ० १४७। १५०। १५७॥

[खुदा ऐसी प्रार्थना कभी नहीं सुना करता]

समीक्षक—देखिये मुसलमानों की मूर्खता कि जो अपने मत से भिन्न हैं उनको मारने के लिये ख़ुदा से प्रार्थना करते हैं! क्या परमेश्वर भोला है जो इनकी बात मान लेवे? यदि मुसलमानों का कारसाज़ अल्लाह ही है, तो फिर मुसलमानों के कार्य नष्ट क्यों होते हैं? और ख़ुदा भी मुसलमानों के साथ मोह से फसा हुआ दीख पड़ता है। जो ऐसा पक्षपाती ख़ुदा है, तो धर्मात्मा पुरुषों का उपासनीय कभी नहीं हो सकता॥५६॥

५७. यह लड़ाई इसलिये कि अल्लाह तुम्हारी परीक्षा लेवे......।१६६।

मं० १। सि० ४। सू० ३। आ० १६६॥

समीक्षक—जो लड़ाई के विना परीक्षा नहीं कर सकता, तो वह सर्वज्ञ नहीं। इससे वह ईश्वर क्योंकर हो सके?॥५७॥

[अल्लाह और रसूल पर ईमान लाओ]

५८. ....और अल्लाह तुमको परोक्षज्ञ नहीं करता परन्तु अपने पैग़म्बरों में से जिसको चाहे पसन्द करे, बस अल्लाह और उसके रसूल के साथ ईमान लाओ....।१७९।

मं० १। सि० ४। सू० ३। आ० १७९॥

[फिर तो खुदा को लाशरीक कहना बेकार]

समीक्षक—क्या किसी पैग़म्बर को ख़ुदा अपने सदृश कर सकता है? जो कर सकता है, तो दूसरा 'ख़ुदा-शरीक' ख़ुदा हुआ। जो नहीं कर सकता तो इस आयत के झूठ होने से ख़ुदा ने झूठ बोला। जिसकी बात झूठ हो, वह स्वयं झूठा हुआ। जब मुसलमान लोग सिवाय ख़ुदा के न किसी के साथ ईमान लाते, न किसी को ख़ुदा का साझी मानते हैं तो ईमान में ख़ुदा के साथ पैग़म्बर साहब को क्यों शरीक क्यों किया? अल्लाह ने पैगम्बर के साथ ईमान लाना लिखा, इसी से पैग़म्बर भी [खुदा के साथ] शरीक हो गया, पुनः [खुदा को] 'लाशरीक' कहना झूठा हुआ॥

[क्या खुदा पैगम्बर के विना अपना काम नहीं कर सकता ?]

यदि इसका अर्थ यह समझा जाय कि मुहम्मद साहब के पैग़म्बर होने पर विश्वास लाना चाहिये तो यह प्रश्न होता है कि मुहम्मद साहब के होने की क्या आवश्यकता है? यदि खुदा उनको पैग़म्बर किये विना अपना अभीष्ट कार्य नहीं कर सकता, तो अवश्य असमर्थ हुआ॥५८॥

[लड़ाई में लगे रहो]

५९. ऐ ईमानवालो! संतोष करो, परस्पर थामे रक्खो और लड़ाई में लगे रहो, अल्लाह से डरो कि तुम छुटकारा पाओ।२००।

मं० १। सि० ४। सू० ३। आ० २००॥

[कुरान का खुदा और पैगम्बर दोनों लड़ाईबाज]

समीक्षक—यह **'क़ुरान'** का ख़ुदा और पैग़म्बर दोनों लड़ाईबाज़ थे। जो लड़ाई की आज्ञा देता है वह शान्तिभंग करनेवाला होता है। क्या ख़ुदा के

नाममात्र से डरने से छुटकारा पाया जाता है वा अधर्मयुक्त लड़ाई आदि से डरने से? जो प्रथम पक्ष है तो डरना-न डरना बराबर [है]; और जो द्वितीय पक्ष है, तो ठीक है॥५९॥

[अल्लाह और रसूल के भक्तों को ही बहिश्त]

६०. ये अल्लाह की हद्दें हैं, जो अल्लाह और उसके रसूल का कहा मानेगा वह बहिश्त में पहुँचेगा, जिनमें नहरें चलती हैं और यही बड़ा प्रयोजन है।१३। जो अल्लाह की और उसके रसूल की आज्ञा भंग करेगा और उसकी हद्दों से बाहर हो जायगा वो सदैव रहनेवाली दोज़ख की आग में जलाया जावेगा और उसके लिये ख़राब करनेवाला दुःख है।१४।

मं० १। सि० ४। सू० ४। आ० १३। १४॥

[बहिश्त में रसूल की भी साझेदारी, तो खुदा स्वतन्त्र नहीं]

समीक्षक—जब ख़ुदा ने ही मुहम्मद साहब पैग़म्बर को अपना शरीक कर लिया है और खुद **'क़ुरान'** में ही लिखा है, तो मुसलमानों का ख़ुदा को 'लाशरीक' कहना व्यर्थ है। और देखो, ख़ुदा पैग़म्बर साहब के साथ कैसा फसा है कि जिसने बहिश्त में रसूल का साझा कर दिया है। इस एक बात में भी स्वतन्त्र न रहा। ऐसी-ऐसी बातें ईश्वरोक्त पुस्तक में नहीं हो सकतीं॥६०॥

[अल्लाह अन्याय नहीं करता]

६१. और एक अणु की बराबर भी वह अन्याय नहीं करता और जो भलाई होवे उसको दुगुणा करेगा।४०।

मं० १। सि० ५। सू० ४। आ० ४०॥

[कम या अधिक फल देने से खुदा अन्यायी हो जावेगा]

समीक्षक—जो एक अणु भी अन्याय ख़ुदा नहीं करता तो पुण्य को दुगुणा क्यों देता है? और मुसलमानों का पक्षपात क्यों करता है? जीव को आप ही पापी क्यों बनता [है, और उसे] फिर दुःख क्यों देता है? क्योंकि अधिक-न्यून करने से अधिष्ठाता को भलाई-बुराई का फल मिलता है, आधीन को नहीं; जैसे सेना की लड़ाई में राजा को जय-पराजय रूप फल होता है, भृत्यों को नहीं। वैसे ही द्विगुण वा न्यून फल कर्मों का जो देवे तो वह ख़ुदा भी अन्यायी हो जावे॥६१॥

६२. ....अवश्य बहिश्त में भेजेंगे, जिनमें नहरें चलती हैं और उनके लिये पवित्र बीबियां हैं तथा सायेदार वृक्ष हैं, उसमें सदा रहेंगे।५७।

मं० १। सि० ५। सू० ४। आ० ५७॥

समीक्षक—यह केवल अज्ञानियों को लोभ देकर मुहम्मद साहब ने फसाया है। और आप भी स्त्रियों में आसक्त होंगे, नहीं तो ऐसी बातें क्यों कहते?॥६२॥

६३. .....बस, उनको चाहिये ख़ुदा के मार्ग में लड़ें....।७५। जो लोग ईमान लाये ख़ुदा के मार्ग में लड़ते हैं, जो काफ़िर हैं वे बुतों के मार्ग में लड़ते हैं। बस, शैतान के मित्रों से लड़ो, निश्चय उसका धोखा निर्बल है।७६। जो उनको भलाई पहुंचती है, तो कहते हैं कि यह

अल्लाह की ओर से है और बुराई को तेरी ओर से बतलाते हैं, कह सब अल्लाह की ओर से है....।७९।

मं० १। सि० ५। सू० ४। आ० ७५। ७६। ७९॥

समीक्षक—भला, ईश्वर के मार्ग में लड़ाई का क्या काम? और जो बुतपरस्त काफ़िर हैं, तो मुसलमान बड़े बुतपरस्त होने से बड़े काफ़िर होते हैं; क्योंकि ये बुतपरस्त लोग छोटी-छोटी मूर्तियों के सम्मुख नमते और भक्ति करते हैं, वैसे ही मुसलमान लोग मक्का की जो एक बड़ी मस्जिद है, उसके सामने नमते हैं। जो कहें कि हम मस्जिद को ख़ुदा नहीं समझते और **'क़ुरान'** की आज्ञा है, इससे उधर को मुखमात्र करके ख़ुदा की बन्दगी करते हैं। अच्छा, तो ये लोग भी पत्थर को ईश्वर नहीं समझते, किन्तु पत्थर में ईश्वर की भावना करके भक्ति करते हैं और इनको भी पुराण में वैसी आज्ञा व्यास जी जिनको लोग ईश्वरावतार मानते हैं, उनकी है कि तुम मूर्त्ति पूजो।

इसलिये बड़ी मस्जिद को ईश्वर की भक्ति में सामने रखनेवाले मुसलमान बड़े बुतपरस्त और ये लोग छोटे बुतपरस्त हैं। जैसे कोई मनुष्य अपने घर में से बिल्ली को जब लों निकाले, तब लों उसके घर में ऊंट प्रविष्ट हो जाय, वैसी ही दशा मुहम्मद साहब आदि मुसलमानों की है। क्योंकि बिल्ली के समान छोटी-छोटी पाषाणादि की मूर्त्तियों को तो फोड़-तोड़ के अपने घर में से निकाल दिया, परन्तु ऊंट के समान मस्जिद हृदयरूपी घर में प्रविष्ट हो गई। इससे मुसलमान लोग बड़ी हानि को प्राप्त हो गये। जब

ये बड़े बुतपरस्त हैं तो किस मुख से दूसरे छोटे बुतपरस्तों का खण्डन कर सकते हैं। हां! पहले आप बुतपरस्ती को छोड़ें, तो अन्य का खण्डन कर सकें॥६३॥

[खुदा के गुमराह किये को मार्ग नहीं]

६४. जब तेरे पास से निकलते हैं तो तेरे [सामने कहे के] विरूद्ध सोचते हैं, अल्लाह उनकी बात को लिखता है....।८१। अल्लाह ने उनकी कमाई वस्तु के कारण से उनको उलटा किया, क्या तुम चाहते हो कि अल्लाह के गुमराह किये हुये को मार्ग पर लाओ ? बस, जिसको वह गुमराह करे उसको कदाचिदपि मार्ग न पावेगा।८८।

मं॰ १। सि॰ ५। सू॰ ४। आ॰ ८१। ८८॥

[गुमराह करने से खुदा भी शैतान क्यों नहीं ?]

समीक्षक—जो अल्लाह बातों को लिख बही-खाता बनाता जाता है, तो सर्वज्ञ नहीं; और जो सर्वज्ञ है तो लिखने का क्या काम? और जो मुसलमान कहते हैं कि शैतान ही सबको बहकाने से दुष्ट हुआ है, तो जब ख़ुदा ही जीवों को गुमराह करता है, तो ख़ुदा और शैतान में क्या भेद रहा? हां, इतना भेद कह सकते हैं कि ख़ुदा बड़ा शैतान [और] वह फरिश्ता छोटा शैतान [है]; क्योंकि मुसलमानों का यही कौल है कि जो बहकाता है वही शैतान है, तो इस प्रतिज्ञा से ख़ुदा को भी शैतान बना दिया॥६४॥

[काफिरों को मारो; मुसलमानों को नहीं]

६५. ....और अपने हाथों को न रोकें, तो उनको पकड़ लो और जहाँ पाओ मार डालो...।९१। मुसलमानों को मुसलमान का मारना योग्य

नहीं, जो कोई अनजाने से मार डाले....। बस, एक गर्दन मुसलमान का छोड़ना है..... और खून बहा उन लोगों की ओर साई हुई जो उस क़ौम से होवें, तुम्हारे लिये दान कर देंगे, जो दुश्मन की क़ौम से हैं।९२। और जो कोई मुसलमान को जानकर मार डाले वह सदैव काल दोज़ख़ में रहेगा। उस पर अल्लाह का क्रोध और लानत है।९३।

मं० १। सि० ५। सू० ४। आ० ९१। ९२। ९३॥

[अन्य की हत्या से बहिश्त, मुसलमान की हत्या से दोजख ?]

समीक्षक—अब देखिये महा-पक्षपात की बात कि जो मुसलमान न हो, जहाँ पाओ मार डालना और मुसलमानों को न मारना!! **भूल से मुसलमानों के मारने में प्रायश्चित्त और अन्य को मारने से बहिश्त मिलेगा, ऐसे उपदेश को कुए में डालना चाहिये। ऐसे-ऐसे पुस्तकों, ऐसे-ऐसे पैग़म्बरों, ऐसे-ऐसे ख़ुदाओं और ऐसे-ऐसे मतों से सिवाय हानि के लाभ कुछ भी नहीं, ऐसों का न होना अच्छा और ऐसे प्रामादिक मतों से बुद्धिमानों को अलग रहकर वेदोक्त सब बातों को मानना चाहिये, क्योंकि उसमें असत्य किञ्चिन्मात्र भी नहीं है।**

[अन्य मतवालों का इससे विपरीत मत]

और जो मुसलमान को मारे उसको दोज़ख़ मिले, लिखा है; और दूसरे मतवाले कहते हैं कि मुसलमान को मारे तो स्वर्ग मिले। अब कहो, इन दोनों मतों में से किसको मानें, किसको छोड़ें? किन्तु **ऐसे मूढ़-प्रकल्पित मतों को छोड़कर वेदोक्त मत सब मनुष्यों के लिये स्वीकार करने योग्य है कि जिसमें आर्य मार्ग अर्थात् श्रेष्ठ पुरुषों के मार्ग में चलना**

और दस्यु अर्थात् दुष्टों के मार्ग से अलग रहना लिखा है, सर्वोत्तम है॥६५॥

[रसूल का विरोधी दोज़ख़ में]

६६. और शिक्षा प्रकट होने के पीछे जिसने रसूल से विरोध किया और मुसलमानों से विरुद्ध पक्ष किया, अवश्य हम उसको दोज़ख़ में भेजेंगे।११५।

मं० १। सि० ५। सू० ४। आ० ११५॥

[ये सब बातें अनाप्त की हैं]

समीक्षक—अब देखिये ख़ुदा और रसूल की पक्षपात की बातें! मुहम्मद साहब आदि समझते थे कि जो ख़ुदा के नाम से ऐसी [बातें] हम न लिखेंगे तो अपना मज़हब न बढ़ेगा और पदार्थ न मिलेंगे, आनन्द भोग न होगा। इसी से विदित होता है कि वे अपने मतलब [सिद्ध] करने में पूरे थे और अन्य के प्रयोजन बिगाड़ने में। इससे वे अनाप्त थे। उनकी बात का प्रमाण आप्त विद्वानों के सामने कभी नहीं हो सकता॥६६॥

[गुमराह कौन ?]

६७. .....जो अल्लाह, रसूलों, फरिश्तों, किताबों और क़यामत के साथ कुफ़्र करे निश्चय वह गुमराह है।१३६। निश्चय जो लोग ईमान लाये फिर काफ़िर हुए फिर-फिर ईमान लाये, पुनः फिर गये और कुफ़्र में अधिक बढ़े। अल्लाह उनको कभी क्षमा न करेगा और न मार्ग दिखलावेगा॥१३७॥

मं० १। सि० ५। सू० ४। आ० १३६। १३७॥

[फरिश्ते भी साथ हैं, तो खुदा लाशरीक कैसे ?]

समीक्षक—क्या अब भी ख़ुदा 'लाशरीक' रह सकता है? क्या 'लाशरीक' कहते जाना और उसके साथ बहुत से 'शरीक' भी मानते जाना, यह परस्पर-विरुद्ध बात नहीं है?

[पाप क्षमा करने से तो पाप और भी बढ़ेंगे]

क्या तीन वार क्षमा के पश्चात् ख़ुदा क्षमा नहीं करता? और तीन वार कुफ़्र करने पर रास्ता दिखलाता है? वा चौथी वार से आगे नहीं दिखलाता? यदि चार-चार वार भी कुफ़्र सब लोग करें, तो कुफ़्र बहुत ही बढ़ जावे॥६७॥

[काफिरों को दोजख, उन्हें मित्र न बनाओ]

६८. .....निश्चय अल्लाह बुरे लोगों को और काफ़िरों को जमा करेगा दोज़ख़ में।१४०। निश्चय बुरे लोग धोखा देते हैं अल्लाह को और उनको वह धोखा देता है।१४२। ऐ ईमानवालो! मुसलमानों को छोड़ काफ़िरों को मित्र मत बनाओ.....।१४४।

मं० १। सि० ५। सू० ४। आ० १४०। १४२। १४४॥

[जिनका खुदा धोखेबाज, वे धोखोबाज क्यों न हों ?]

समीक्षक—मुसलमानों के बहिश्त और अन्य लोगों के दोज़ख़ में जाने का क्या प्रमाण? वाह जी वाह! जो बुरे लोगों के धोखे में आता और अन्य को धोखा देता है ऐसा ख़ुदा हम से अलग रहे; किन्तु जो धोखेबाज़ हैं उनसे जाकर मेल करे और वे उससे मेल करें। क्योंकि—

“यादृशी शीतला देवी तादृशो वाहनः खरः।”

='जैसे को तैसा' मिले तभी निर्वाह होता है।

जिसका ख़ुदा धोखेबाज़ है उसके उपासक मुसलमान लोग धोखेबाज़ क्यों न हों? तभी तो मुसलमान लोग धोखा देने में तत्पर रहते हैं।

[क्या दुष्ट से मित्रता और श्रेष्ठ से शत्रुता उचित है ?]

क्या दुष्ट मुसलमान हो उससे मित्रता और मुसलमान-भिन्न अन्य श्रेष्ठ से शत्रुता करना, किसी को उचित हो सकती है?॥६८॥

[पैगम्बर पर ईमान लाओ]

६९. ऐ लोगो! निश्चय तुम्हारे पास सत्य के साथ ख़ुदा की ओर से पैग़म्बर आया, बस, तुम उन पर ईमान लाओ।१७०। ....अल्लाह माबूद अकेला है....।१७१।

मं० १। सि० ६। सू० ४। आ० १७०। १७१॥

[क्या खुदा का पैगम्बरों के विना काम नहीं चलता ?]

समीक्षक—क्या जब पैग़म्बरों पर ईमान लाना लिखा, तो ईमान में पैग़म्बर ख़ुदा का शरीक अर्थात् साझी हुआ वा नहीं? जब अल्लाह एकदेशी है, व्यापक नहीं, इसी से उसके पास से पैग़म्बर आते-जाते हैं; तो वह ईश्वर भी नहीं हो सकता। कहीं सर्वदेशी लिखते हैं, कहीं एकदेशी। **इससे विदित होता है कि 'क़ुरान' एक का बनाया नहीं, किन्तु बहुतों ने मिलके बनाया है**॥६९॥

[मुर्दार; लोहू, सूअर का मांस हराम]

७०. तुम पर हराम किया गया मुर्दार, लोहू, सुअर का मांस, जिस पर अल्लाह के विना कुछ और पढ़ा जावे, गला घोटे [हुए], लाठी से मारे, ऊपर से गिर पड़े, सींग से मारे [हुए] और गोश्त खाने वाले [जानवर से खाये हुए].....।३।

मं० २। सि० ६। सू० ५। आ० ३॥

[हलाल हराम की कल्पना ईश्वरीय नहीं]

समीक्षक—क्या इतने ही पदार्थ हराम हैं? अन्य बहुत-से पशु तथा तिर्यक् जीव कीड़ी आदि मुसलमानों को हलाल होंगे? इसलिये यह मनुष्यों की कल्पना है, ईश्वर की नहीं। इससे इसका प्रमाण भी नहीं॥७०॥

[अल्लाह को उधार दो]

७१. ....और अल्लाह को अच्छा उधार दो अवश्य, मैं तुम्हारी बुराई दूर करूंगा और तुम्हें बहिश्त में भेजूंगा....।१२।

मं० २। सि० ६। सू० ५। आ० १२॥

[क्या खुदा का भी दिवाला निकल गया ?]

समीक्षक—वाह जी! मुसलमानों के खुदा के घर में कुछ भी धन-विशेष नहीं रहा होगा, जो विशेष होता तो उधार क्यों मांगता? और उनको क्यों बहकाता कि तुम्हारी बुराई छुड़ाके तुमको स्वर्ग में भेजूंगा? यहां विदित होता है कि खुदा के नाम से मुहम्मद साहब ने अपना मतलब साधा है॥७०॥

[खुदा की मर्जी से क्षमा वा दण्ड]

७२. ....जिसको चाहता है पुण्यात्मा बनाता है जिसको चाहे पापात्मा बना देता है...।१८। ....जो कुछ किसी को भी न दिया वह तुम्हें दिया।२०।

मं० २। सि० ६। सू० ५। आ० १८। २०॥

[फिर तो बहिश्त वा दोजख में खुदा ही जाये]

समीक्षक—जैसे शैतान जिसको चाहता पापी बनाता [है], वैसे मुसलमानों का ख़ुदा भी [विना पाप के दुःख देकर] शैतान का काम करता है। जो ऐसा है, तो फिर बहिश्त और दोज़ख़ में ख़ुदा जावे, क्योंकि वह पाप-पुण्य करनेवाला हुआ, जीव पराधीन है; जैसे, सेना सेनापति के आधीन रक्षा करती और किसी को मारती है, उसकी भलाई-बुराई सेनापति की होती है, सेना पर नहीं॥७२॥

७३. काफ़िरों पर ग़म मत खा।२६।

मं० २। सि० ६। सू० ५। आ० २६॥

समीक्षक—क्या अधर्म और पक्षपात की बात है कि जो मुसलमान न हो उस पर ग़म न खाना और मुसलमानों पर ग़म खाना! [यह] केवल अधर्म की बात है॥७३॥

[खुदा और रसूल साथ, तो खुदा लाशरीक कैसे ?]

७४.आज्ञा मानो अल्लाह की और आज्ञा मानो रसूल की, ...।९२।

मं० २। सि० ७। सू० ५। आ० ९२॥

समीक्षक—देखिये, यह बात ख़ुदा के 'शरीक' होने की है, फिर ख़ुदा को 'लाशरीक' मानना व्यर्थ है॥७४॥

[खुदा ने माफ किया, जो हो चुका]

७५. ....अल्लाह ने माफ़ किया जो हो चुका, और जो कोई फिर करेगा अल्लाह उससे बदला लेगा।९५।

मं॰ २। सि॰ ७। सू॰ ५। आ॰ ९५॥

[पाप-क्षमा की बात खुदा की नहीं हो सकती]

समीक्षक—किये हुए पापों का क्षमा करना जानो पापों को करने की आज्ञा देके बढ़ाना है। पाप-क्षमा करने की बात जिस पुस्तक में हो, वह न ईश्वर और न किसी विद्वान् का बनाया है, किन्तु पापवर्द्धक है। **हां, आगामी पाप छुड़वाने के लिये किसी से प्रार्थना और स्वयं छोड़ने के लिये पुरुषार्थ, पश्चात्ताप करना उचित है; परन्तु केवल पश्चात्ताप करता रहे, छोड़े नहीं, तो भी कुछ नहीं हो सकता॥७५॥**

[जाली पैगम्बर बनना पाप है]

७६. और उस मनुष्य से अधिक पापी कौन है जो अल्लाह पर झूठ बांध लेता है और कहता है कि मेरी ओर वही की गई और जो कहता है कि मैं भी उतारूंगा कि जैसे अल्लाह उतारता है......।९४।

मं॰ २। सि॰ ७। सू॰ ६। आ॰ ९४॥

[क्या किसी और ने भी पैगम्बर बनने का यत्न किया ?]

समीक्षक—इस बात से सिद्ध होता है कि जब मुहम्मद साहब कहते थे कि मेरे पास ख़ुदा की ओर से आयतें आती हैं तब किसी दूसरे ने भी मुहम्मद साहब के तुल्य लीला रची होगी कि मेरे पास भी आयतें उतरती हैं, मुझको भी पैगम्बर मानो; उसको हटाने के और अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिये मुहम्मद साहब ने यह उपाय किया होगा॥७६॥

[खुदा और शैतान का झगड़ा]

७७. अवश्य हमने तुमको उत्पन्न किया, फिर तुम्हारी सूरतें बनाई [फिर] फ़रिश्तों से कहा कि "आदम को सिज़्दा करो।" बस, उन्होंने सिज़्दा किया परन्तु शैतान सिज़्दा करनेवालों में से न हुआ।११। कहा, "जब मैंने तुझे आज्ञा दी फिर किसने रोका कि तूने सिज़्दा न किया।" कहा, "मैं उससे अच्छा हूं, तूने मुझको आग से और उसको मिट्टी से उत्पन्न किया।१२।" कहा, "बस उसमें से उतर, यह तेरे योग्य नहीं है कि तू उसमें अभिमान करे।१३। कहा, "उस दिन तक ढील दे कि [लोग] क़ब्रों से उठाये जावें।१४।" कहा, "निश्चय तू ढील दिये गयों से है।१५।" कहा, "बस इसकी क़सम है कि तूने मुझको गुमराह किया। अवश्य मैं उनके लिये तेरे सीधे मार्ग पर बैठूंगा।१६। .....और प्रायः तू उनको धन्यवाद करनेवाला न पावेगा।१७।" कहा, "उससे दुर्दशा के साथ निकल। अवश्य जो कोई उनमें से तेरा पक्ष करेगा तुम सबसे दोज़ख़ को भरूंगा।१८।"

मं० २। सि० ८। सू० ७। आ० ११। १२। १३। १४। १५। १६। १७। १८॥

[खुदा शैतान का कुछ भी न बिगाड़ सका]

समीक्षक—अब ध्यान देकर सुनो ख़ुदा और शैतान के झगड़े को! एक फ़रिश्ता जैसा कि चपरासी हो, [शैतान] था। वह भी ख़ुदा से न दबा और ख़ुदा उसके आत्मा को पवित्र भी न कर सका। फिर ऐसे बागी को, जो पापी बनाकर ग़दर करनेवाला था, उसको ख़ुदा ने छोड़ दिया। यह ख़ुदा की बड़ी भूल है।

[क्या यह ख़ुदा शैतान का भी शैतान नहीं ?]

शैतान तो सबको बहकानेवाला और ख़ुदा शैतान को बहकानेवाला होने से यह सिद्ध होता है कि शैतान का भी शैतान ख़ुदा है; क्योंकि शैतान प्रत्यक्ष कहता है कि तूने मुझे गुमराह किया। इससे ख़ुदा में पवित्रता भी नहीं पाई जाती और सब बुराइयों का चलानेवाला मूल कारण ख़ुदा हुआ। ऐसा ख़ुदा मुसलमानों का ही ख़ुदा हो सकता है, अन्य श्रेष्ठ विद्वानों का नहीं।

[जो फरिश्तों से बातें करे, वह देहधारी क्यों नहीं ?]

और फ़रिश्तों से मनुष्यवत् वार्तालाप करने से देहधारी, अल्पज्ञ, न्यायरहित मुसलमानों का ख़ुदा है। इसी से बुद्धिमान् लोग इस्लाम के मज़हब को प्रसन्न नहीं करते॥७७॥

[छः दिन में जगत् को बना पुनः आराम]

७८. निश्चय तुम्हारा मालिक अल्लाह है जिसने आसमानों और पृथिवी को छः दिन में उत्पन्न किया, फिर करार पकड़ा अर्श पर।५४। दीनता से अपने मालिक को पुकारो....।५५।

मं॰ २। सि॰ ८। सू॰ ७। आ॰ ५४। ५५॥

[जो सर्वशक्तिमान् और सर्वव्यापक नहीं, वह क्या ख़ुदा ?]

समीक्षक—भला, जो छः दिन में जगत् को बनावे, अर्श अर्थात् ऊपर के आकाश में सिंहासन पर आराम करे, वह ईश्वर सर्वशक्तिमान् और व्यापक कभी नहीं हो सकता। इनके न होने से वह ख़ुदा भी नहीं कहा सकता।

[क्या खुदा पुकारने पर ही सुनता है ?]

क्या तुम्हारा ख़ुदा बधिर है जो पुकारने से सुनता है? ये सब बातें अनीश्वरकृत हैं, इससे **'क़ुरान'** ईश्वरकृत नहीं हो सकता।

[आजकल खुदा क्या कर रहा है ?]

यदि छः दिनों में जगत् बनाया, सातवें दिन अर्श पर आराम किया तो थक भी गया होगा। और अब तक सोता है वा जागा है? यदि जागता है तो अब कुछ काम करता है वा निकम्मा सैल-सपट्टा और ऐश करता फिरता है॥७८॥

[पृथिवी पर झगड़ते मत फिरो]

७९. ....मत फिरो पृथिवी पर झगड़ा करते।७४।

मं॰ २। सि॰ ८। सू॰ ७। आ॰ ७४॥

[झगड़ा न करने और जिहाद की बात परस्पर विरुद्ध]

समीक्षक—यह बात तो अच्छी है, परन्तु इससे विरुद्ध जिहाद करना [और] काफ़िरों को मारना भी लिखा है। अब कहो, क्या यह पूर्वापरविरुद्ध नहीं है? इससे यह विदित होता है कि जब मुहम्मद साहब निर्बल हुए होंगे तब यह उपाय रचा होगा और जब सबल हुए होंगे, तब झगड़ा मचाया होगा। इसी से ये बातें झूठी हैं॥७९॥

[लाठी साँप बन गई]

८०. बस, एक ही वार अपना असा डाल दिया और वह अजगर था प्रत्यक्ष।१०७।

मं॰ २। सि॰ ९। सू॰ ७। आ॰ १०७॥

[ऐसी झूठी बातों को मानना अविद्या है]

समीक्षक—अब इसके लिखने से विदित होता है कि ऐसी झूठी बातों को ख़ुदा और मुहम्मद साहब भी मानते थे। जो ऐसा है तो ये दोनों विद्वान् नहीं थे, क्योंकि जैसे आँख से देखने और कान से सुनने को अन्यथा कोई नहीं कर सकता! इसी से ये इन्द्रजाल की बातें हैं॥८०॥

[एक को डुबोया; दूसरे को पार किया]

८१. ....अवश्य हम क़त्ल करेंगे बेटों उनके को, और जीती रक्खेंगे बीबियों उनकी को।१२७। बस, हमने उन पर मेह का तूफ़ान भेजा, टिड्डी, चिचड़ी और मेंढक और लोहू।१३३। बस, उनसे हमने बदला लिया और उनको डुबो दिया दरिया में....।१३६। और हमने बनी-इस्राएल को दरिया से पार उतार दिया....।१३८। निश्चय वह दीन झूठा है कि जिसमें वे हैं और उनका कार्य भी झूठा है।१३९।

मं० २। सि० ९। सू० ७। आ० १२७। १३३। १३६। १३८। १३९॥

[एक जाति को डुबोना, दूसरी को पार करना अधर्म]

समीक्षक—भला, जो लड़कों को क़त्ल करे और स्त्रियों को जीता रक्खे, उससे निर्दय, राक्षस स्वभाव-युक्त, विषयासक्त मनुष्य और दुष्टमत दूसरा कोई भी होगा? अब देखिये, जैसे कोई पाखण्डी किसी को डरावे कि हम तुझ पर काटने के लिये सर्पों को भेज देंगे, ऐसी ही यह भी बात है। भला, जो ऐसा पक्षपाती [हो] कि एक जाति को डुबा दे और दूसरी को पार उतारे उस पक्षपाती, अधर्मी के समान ख़ुदा क्यों नहीं?

[दूसरे मतों को झूठा बताना महामूर्खता है]

जो दूसरे मत को कि जिसमें हज़ारों-करोड़ों मनुष्य हों, झूठा बतलावे और अपने को सच्चा, उससे परे झूठा दूसरा मत कौन हो सकता है? क्योंकि **किसी मत में सब मनुष्य बुरे और भले नहीं हो सकते।** यह एकतरफा डिगरी करना महामूर्खों का मत है।

[क्या तौरेत जबूर का मत झूठा था ?]

क्या **'तौरेत'** और **'ज़बूर'** का दीन, जो कि उनका था, क्योंकर अपने किये को ख़ुदा ने झूठा किया? वा उनका कोई अन्य मज़हब था कि जिसको झूठा कहा। और जो वह अन्य मज़हब था, तो कौन-सा था, कहो कि जिसका नाम **'क़ुरान'** में हो?॥८१॥

[खुदा को देख मूसा का बेहोश होना]

८२. ....बस, तू मुझको अलबत्ता देख सकेगा, जब प्रकाश किया उसके मालिक ने पहाड़ की ओर, उसको परमाणु-परमाणु किया, गिर पड़ा मूसा बेहोश।१४३।

मं० २। सि० ९। सू० ७। आ० १४३॥

[खुदा अब अपने चमत्कार क्यों नहीं दिखलाता ?]

समीक्षक—जो देखने में आता है वह व्यापक नहीं हो सकता। और ऐसे चमत्कार करता फिरता था तो ख़ुदा इस समय ऐसा चमत्कार किसी को क्यों नहीं दिखलाता? सर्वथा विद्या-विरुद्ध होने से यह बात मानने योग्य नहीं॥८२॥

८३. यह कि मार सात असा अपने के पत्थर को, बस फूट निकले बारह चश्मे....।१६०।

मं० २। सि० ९। सू० ७। आ० १६०॥

समीक्षक—अब देखिये, बढ़कर भानुमती के जैसी ख़ुदा की ख़ुदाई, पैग़म्बर की पैग़म्बराई। इसको कोई भी बुद्धिमान् लोग सच नहीं मान सकते, सिवाय जंगली मनुष्यों के॥८३॥

[खुदा को सुबह शाम याद करो]

८४. ....और अपने मालिक को दीनता, डर से मन में याद कर, धीमी आवाज़ से सुबह को और शाम को.....।२०५।

मं० २। सि० ९। सू० ७। आ० २०५॥

[धीमी और ऊँची आवाज की पुकार में से कौन-सी सत्य ?]

समीक्षक—कहीं-कहीं **'क़ुरान'** में लिखा है कि बड़ी आवाज़ से अपने मालिक को पुकार, कहीं-कहीं धीरे-धीरे मन में ईश्वर का स्मरण कर। अब कहिये कौन-सी बात सच्ची और कौन-सी झूठी? **जो एक दूसरी बात से विरोध करती है वह बात प्रमत्त गीत के समान होती है। यदि कोई बात भ्रम से विरुद्ध निकल जाय, उसको मान ले, तो कुछ चिन्ता नहीं॥**८४॥

[अल्लाह और रसूल के लिए लूट का माल]

८५. प्रश्न करते हैं तुझको लूटों से कहें लूटें वास्ते अल्लाह के और रसूल के, और डरो अल्लाह से....।१।

मं० २। सि० ९। सू० ८। आ० १॥

[क्या डाका लूटमार आदि भी उत्तम काम हैं ?]

समीक्षक—जो लूट मचावें, डाकू के कर्म करें-करावें और ख़ुदा तथा पैग़म्बर और ईमानदार भी बनें, यह बड़े आश्चर्य की बात है! और अल्लाह का डर बतलाते और डाका-आदि बुरे काम भी करते जायें, और 'उत्तम मत हमारा है' कहते लज्जा भी नहीं [आती]। हठ छोड़के सत्य वेदमत का ग्रहण न करें, इससे अधिक बुराई दूसरी कौन-सी होगी?॥८५॥

[काफिरों को मारो, मैं मदद दूंगा]

८६. .....और काटे जड़ काफ़िरों की।७। मैं तुमको सहाय्य दूंगा। साथ सहस्र फ़रिश्तों के पीछे-पीछे आनेवाले।९। ....अवश्य मैं काफ़िरों के दिलों में भय डालूंगा। बस, मारो ऊपर गर्दनों के, मारो उनमें से हर पोरी सन्धि पर।१२।

मं० २। सि० ९। सू० ८। आ० ७। ९। १२॥

[मारकाट की बातें खुदा की नहीं हो सकतीं]

समीक्षक—वाह जी वाह! कैसा ख़ुदा और कैसे पैग़म्बर दयाहीन [हैं], जो मुसलमानी मत से भिन्न काफ़िरों की जड़ कटवावे। और ख़ुदा आज्ञा देवे उनकी गर्दन पर मारो और हाथ-पग [के] जोड़ों को काटने का सहाय्य और सम्मति देवे! भला, ऐसा ख़ुदा **'लंकेश'** से क्या कुछ कम है? यह सब प्रपञ्च **'क़ुरान'** के कर्त्ता का है, ख़ुदा का नहीं। यदि ख़ुदा का हो, तो ऐसा ख़ुदा हमसे दूर और हम उससे दूर रहैं॥८६॥

[अल्लाह और रसूल को पुकारो; उनकी चोरी मत करो]

८७. ....अल्लाह मुसलमानों के साथ है।१९। ऐ लोगो! जो ईमान लाये हो पुकारना स्वीकार करो, वास्ते अल्लाह के और वास्ते रसूल

के।२४। ऐ लोगो जो ईमान लाये हो मत चोरी करो अल्लाह की, रसूल की; और मत चोरी करो अमानत अपनी की।२७। ....और मकर करता था अल्लाह और अल्लाह भला मकर करनेवालों का है।२०।

मं० २। सि० ९। सू० ८। आ० १९। २४। २७। ३०॥

[क्या खुदा बधिर है, जो पुकारे विना नहीं सुनता ?]

समीक्षक—क्या अल्लाह मुसलमानों का पक्षपाती है? जो ऐसा है तो अधर्म करता है। नहीं तो ईश्वर सब सृष्टि-भर का है। क्या ख़ुदा विना पुकारे नहीं सुन सकता? बधिर है? और उसके साथ रसूल को 'शरीक' करना [क्या] बहुत बुरी बात नहीं है?

[खुदा और रसूल का कौन-सा खजाना भरा था, जिसे चुराते ?]

अल्लाह का कौन-सा खज़ाना भरा है जो चोरी करेगा [कोई]? क्या रसूल और अपनी अमानत की चोरी छोड़कर अन्य सबकी चोरी किया करे? ऐसा उपदेश अविद्वान् और अधर्मियों का हो सकता है।

[क्या मकर करनेवाला खुदा अधर्मी नहीं ?]

भला, जो मकर करता और जो मकर करनेवालों का संगी है, वह ख़ुदा कपटी-छली और अधर्मी क्यों नहीं? इसलिये यह **'क़ुरान'** ख़ुदा का बनाया हुआ नहीं है, किसी कपटी-छली का बनाया होगा, नहीं तो ऐसी अन्यथा बातें लिखी ही क्यों होतीं?॥८७॥

[लूट के माल में खुदा वा रसूल का ५वाँ भाग]

८८. और लड़ो उनसे यहां तक कि न रहे फ़ितना अर्थात् बल काफ़िरों का और होवे दीन तमाम वास्ते अल्लाह के....।३९। और

जानो तुम यह कि जो कुछ तुम लूटो, किसी वस्तु से निश्चय वास्ते अल्लाह के है पांचवां हिस्सा उसका, और वास्ते रसूल के.....।४१।.....निश्चय मैं तुम्हारा पक्षी हूं....।४८।

मं० २। सि० ९। सू० ८। आ० ३९। ४१। ४८॥

[मजहब के नाम पर लड़ाई की बात सिखाना अच्छा नहीं]

समीक्षक—ऐसे अन्याय से लड़ाका अर्थात् लड़ने-लड़ानेवाला मुसलमानों के ख़ुदा से भिन्न शान्तिभंगकर्त्ता दूसरा कौन होगा?

[क्या लूट के माल में खुदा भी हिस्सा बटाने लगा ?]

अब देखिये, यह मज़हब कि अल्लाह और रसूल के लिये सब जगत् को लूटना-लुटवाना, लुटेरों का-सा काम नहीं है? और लूट के माल में ख़ुदा का हिस्सेदार बनना जानो डाकू बनना है। और ऐसे लुटेरों का पक्षपाती बनकर, ख़ुदा अपनी ख़ुदाई में बट्टा लगाता है।

[ऐसे मत न चलते तो संसार आनन्द में रहता]

बड़े आश्चर्य की बात है, ऐसा पुस्तक, और ऐसा ख़ुदा, ऐसे ख़ुदा की ओर के पैग़म्बर और ऐसा उपाधिखोर मज़हब संसार में महाशान्तिभंग करके मनुष्यों के लिए दुःखदायी कहां से हुआ? जो ऐसे-ऐसे मत जगत् में प्रचलित न होते तो सब जगत् आनन्द में बना रहता॥८८॥

[फरिश्तों द्वारा काफिरों का नाश]

८९. और कभी देखे जब काफ़िरों को फ़रिश्ते कब्ज करते हैं, मारते हैं, मुख उनके और पीठें उनकी और कहते— "चखो .अज़ाब जलने का।५०। हमने उनके पाप से उनको मारा और हमने फ़िरौन की क़ौम

को डुबो दिया....।५४।" और तैयारी करो वास्ते उनके जो कुछ तुम कर सको....।६०।

मं० २। सि० १०। सू० ८। आ० ५०। ५४। ६०॥

[वे फरिश्ते अब कहाँ सो गये ?]

समीक्षक—क्यों जी! आजकल रूस ने रूम आदि और इंगलैण्ड ने मिश्र की दुर्दशा कर डाली, फ़रिश्ते कहां सो गये? और अपने सेवकों के शत्रुओं को ख़ुदा पूर्व मारता-डुबाता था, यह बात सच्ची हो, तो आजकल भी ऐसा करे। जिससे ऐसा नहीं होता, इसलिये यह बात मानने योग्य नहीं।

[विधर्मियों को मारने की आज्ञा ईश्वर की नहीं हो सकती]

अब देखिये, यह कैसी बुरी आज्ञा है कि जो कुछ तुम कर सको वह भिन्न मत-वालों के लिये दुःखदायक कर्म करो, ऐसी आज्ञा विद्वान् और धार्मिक-दयालु की नहीं हो सकती। फिर लिखते हैं कि ख़ुदा दयालु और न्यायकारी है। ऐसी बातों से मुसलमानों के ख़ुदा से न्याय और दयादि सद्गुण दूर बसते हैं॥८९॥

[नबी को युद्ध भड़काने का आदेश; लूट का माल हलाल]

९०. ऐ नबी! किफ़ायत है तुझको अल्लाह और उनको जिन्होंने मुसलमानों से तेरा पक्ष किया।६४। ऐ नबी! रग़बत अर्थात् चाह-चस्का दे मुसलमानों को ऊपर लड़ाई के। जो हों तुम में से वीस आदमी जमे रहनेवाले लड़ाई में, तो पराजय करें दो सौ का।६५। बस, खाओ उस वस्तु से कि लूटा है तुमने हलाल=पवित्र और डरो अल्लाह से। वह क्षमा करने वाला दयालु है।६९।

मं० २। सि० १०। सू० ८। आ० ६४। ६५। ६९॥

[युद्ध भड़काने और लूटमार की बातें खुदा नहीं कह सकता]

समीक्षक—भला, यह कौन-सी न्याय, विद्वत्ता और धर्मात्मता की बात है कि जो अपना पक्ष करे और चाहे अन्याय भी करे, उसी का पक्ष [करे] और लाभ ख़ुदा पहुंचावे? और जो प्रजा में शान्तिभंग करके लड़ाई करे-करावे और लूट-मार के पदार्थों को हलाल बतलावे और फिर उसी का नाम 'क्षमावान्' 'दयालु' लिखे; यह बात ख़ुदा की तो क्या किन्तु किसी भले आदमी की भी नहीं हो सकती। ऐसी-ऐसी बातों से **'क़ुरान'** ईश्वरवाक्य कभी नहीं हो सकता॥९०॥

[माँ-बाप को छोड़ दो; काफिरों से लड़ो]

९१. सदा रहेंगे बीच उसके, अल्लाह समीप है उसके पुण्य बड़ा।२२। ऐ लोगो! जो ईमान लाये हो तो मत पकड़ो [मित्र बनाओ] बापों अपने को, और भाइयों अपने को, मित्र जो दोस्त रक्खें कुफ्र को ऊपर ईमान के [जो कोई उनसे मित्रता का नाता जोड़ेगा, वे ज़ालिम होंगे]।२३। फिर उतारी अल्लाह ने तसल्ली अपनी ऊपर रसूल अपने के और ऊपर मुसलमानों के, और उतारे लश्कर, नहीं देखा तुमने उनको और अज़ाब किया उन लोगों को, और यही सजा है काफ़िरों को।२६। फिर-फिर आवेगा अल्लाह पीछे उसके ऊपर [जिसको चाहे]।२७।और लड़ाई करो उन लोगों से जो ईमान नहीं लाते.....।२९।

मं० २। सि० १०। सू० ९। आ० २२। २३। २६। २७। २९॥

[सर्वव्यापक ईश्वर बहिश्तवालों के ही पास कैसे ?]

समीक्षक—भला, जो बहिश्तवालों के समीप अल्लाह रहता है, तो सर्वव्यापक नहीं हो सकता। जो सर्वव्यापक नहीं तो सृष्टिकर्त्ता और न्यायाधीश नहीं हो सकता।

[माँ-बाप को छुड़वाना अन्याय]

और अपने मा, बाप, भाई और मित्र को छुड़वाना केवल अन्याय की बात है। हां, **जो वे बुरा उपदेश करें, [तो उसको] न मानना; परन्तु उनकी सेवा सदा करनी चाहिये।**

[अब खुदा अपनी फौज लेकर क्यों नहीं आता ?]

जो पहले ख़ुदा मुसलमानों पर सन्तोषी था और उनके सहाय्य के लिये लश्कर उतारता था, [यदि यह] सच हो, तो अब ऐसा क्यों नहीं करता? और जो प्रथम काफ़िरों को दण्ड देता और पुनः-पुनः उसके ऊपर आता था, तो अब कहां गया? क्या ख़ुदा विना लड़ाई के ईमान नहीं बना सकता? ऐसे ख़ुदा को हमारी ओर से सदा तिलांजलि है। ख़ुदा क्या है, एक खिलाड़ी है!॥९१॥

[खुदा के हुक्म की प्रतीक्षा]

९२. ....बस, मत अन्याय करो बीच उसके आपस में, और लड़ो मुश्रिकों से इकट्ठे, जैसा लड़ते हैं।३६। और हम बाट देखनेवाले हैं वास्ते तुम्हारे यह कि पहुंचावे तुम को अल्लाह अज़ाब अपने पास से वा हमारे हाथों से।५२।

मं० २। सि० १०। सू० ९। आ० ३६। ५२॥

[क्या मुसलमान ही ईश्वर की पुलिस बन गए हैं ?]

समीक्षक—क्या मुसलमान लोग आपस में न्याय और दूसरों पर अन्याय करना धर्म समझते हैं? और ऐसा है, तो मुसलमान लोग अन्याय की मूर्तियाँ हैं।

क्या मुसलमान ही अल्लाह की पुलिस बन गये हैं कि वह अपने हाथ वा मुसलमानों के हाथों से अन्य किन्हीं मत-वालों को दण्ड देता है? क्या दूसरे करोड़ों मनुष्य अल्लाह को अप्रिय हैं? [और] मुसलमानों में पापी भी प्रिय हैं? इसलिये **अन्धेर नगरी गवरगण्ड राजा** की- सी व्यवस्था दीखती है। आश्चर्य है कि जो बुद्धिमान् मुसलमान हैं, वे भी इस निर्मूल, अयुक्त मत को मानते हैं॥९२॥

[मुसलमानों का बहिश्त; अल्लाह से हास्य-विनोद]

९३. प्रतिज्ञा की है अल्लाह ने ईमानवालों से और ईमानवालियों से, बहिश्तें चलती हैं नीचे उनके से नहरें, सदैव रहनेवाली बीच उसके; और घर पवित्र बीच बहिश्तों अदन के और प्रसन्नता अल्लाह की और सबसे बड़ी है और यह कि वह है मुराद-पाना बड़ा।७२। ....बस जो ठट्ठा करते हैं उनसे, ठट्ठा किया है अल्लाह ने उनसे।७९।

मं॰ २। सि॰ १०। सू॰ ९। आ॰ ७२। ७९॥

[बहिश्त का लालच देकर लोगों को बहकाना]

समीक्षक—यह ख़ुदा की ओर से स्त्री-पुरुषों को लोभ देना है अपने मतलब के लिये; क्योंकि जो ऐसा प्रलोभन न देते तो कोई मुहम्मद साहब के जाल में न फसता। ऐसे ही अन्य मत-वाले भी किया करते हैं। भला,

मनुष्य लोग तो आपस में ठट्ठा किया ही करते हैं, परन्तु ख़ुदा को किसी से ठट्ठा करना उचित नहीं है। यह **'क़ुरान'** ग्रन्थ क्या है, बड़ा खेल है॥९३॥

[जिहाद करनेवाले अच्छे; काफिरों के दिलों पर मोहर]

९४. परन्तु रसूल और जो लोग कि साथ उसके ईमान लाये जिहाद किया उन्होंने साथ धन अपने के तथा जान अपनी के और इन्हीं लोगों के लिये भलाई है।८८। ....और मोहर रक्खी अल्लाह ने ऊपर दिलों उनके के, बस वे नहीं जानते।९३।

मं० २। सि० १०। सू० ९। आ० ८८। ९३॥

[ईमान न लानेवालों को बुरा बताना ठीक नहीं]

समीक्षक—अब देखिये मतलबसिन्धु की बात कि वे ही भले हैं जो मुहम्मद साहब के साथ ईमान लाये! और जो नहीं लाये, वे बुरे हैं! क्या यह बात पक्षपात और अविद्या से भरी हुई नहीं है?

[भलाई करने से रोकना अन्याय]

जब ख़ुदा ने मोहर ही लगा दी, तो उनका पाप करने में कोई अपराध भी नहीं, किन्तु ख़ुदा का ही अपराध है, क्योंकि उन बेचारों को भलाई से, दिलों पर मोहर लगाके रोक दिया, यह कितना बड़ा अन्याय है!॥९४॥

[माल के बदले पवित्रता; काफिरों से लड़नेवालों को बहिश्त]

९५. ले माल उनके से ख़ैरात कि पवित्र करे तू उनको और शुद्ध करे तू उनको साथ उसके अर्थात् गुप्त में।१०३। ....निश्चय अल्लाह ने मोल ली हैं मुसलमानों से जानें उनकी और धन उनके बदले, कि

वास्ते उनके बहिश्त है; लड़ेंगे बीच मार्ग अल्लाह के, बस मारेंगे और मर जावेंगे....।१११।

मं० २। सि० ११। सू० ९। आ० १०३। १११॥

[माल लेकर पवित्र करना पूरा पाखण्ड]

समीक्षक—वाह जी वाह मुहम्मद साहब! आपने तो गोकुलिये गोसाँइयों की बराबरी कर ली, क्योंकि उनका माल लेना और उनको गुप्त में पवित्र करना, यही बात तो गोसाँइयों की है।

[मुसलमानों के हाथ से गरीबों को मरवाना कहाँ का धर्म है ?]

वाह ख़ुदा जी! आपने अच्छी सौदागरी लगाई कि मुसलमानों के हाथ से अन्य गरीबों के प्राण लेना ही लाभ समझा!! और उन अनाथों को मरवाकर उन निर्दयी मनुष्यों को स्वर्ग देने से, दया और न्याय से मुसलमानों का ख़ुदा हाथ धो बैठा और अपनी खुदाई में बट्टा लगाके बुद्धिमान् धार्मिकों में घृणित हो गया॥९५॥

[पड़ोसी काफिरों को धोखे से मरवाना]

९६. ऐ लोगो! जो ईमान लाये हो, लड़ो उन लोगों से कि पास तुम्हारे हैं काफ़िरों से, और चाहिये कि पावें बीच तुम्हारे सख्ती....।१२३। क्या नहीं देखते यह कि वे बलाओं में डाले जाते हैं बीच हर वर्ष के एक वार वा दो वार, फिर वे नहीं तौबा करते और न वे शिक्षा पकड़ते हैं।१२६।

मं० २। सि० ११। सू० ९। आ० १२३। १२६॥

[पड़ोसियों को धोखे से मारना विश्वासघात]

समीक्षक—देखिये, ये भी विश्वासघात की बातें ख़ुदा मुसलमानों को सिखलाता है कि चाहे पड़ोसी हों वा किसी के नौकर हों, जब अवसर पावें, तभी लड़ाई वा घात करें। ऐसी बातें मुसलमानों से बहुत बन गई हैं इसी **'क़ुरान'** के लेख से। अब तो मुसलमान, समझके, इन **'क़ुरानोक्त'** बुराइयों को छोड़ दें, तो बहुत अच्छा है॥९६॥

[६ दिन में जगत् की रचना, फिर विश्राम]

९७. निश्चय परवरदिगार तुम्हारा अल्लाह है जिसने पैदा किया आसमानों और पृथिवी को बीच छः दिन के। फिर क़रार पकड़ा ऊपर अर्श के तदबीर करता है काम की...।३।

मं० ३। सि० ११। सू० १०। आ० ३॥

[आकाश अनादि है, उसे बनाने की बात अज्ञानता]

समीक्षक—क्या अल्लाह तुम्हारी नित्य सेवा करता है? **आसमान=आकाश एक, और विना बनाया हुआ अनादि है, उसका बनाना लिखने से निश्चय हुआ कि वह 'क़ुरान' का कर्त्ता 'पदार्थविद्या' को नहीं जानता था।**

[६ दिन में जगत् बनाया; 'होजा और होगया' में कौन सत्य ?]

क्या परमेश्वर को सृष्टि को छः दिन तक बनाना पड़ता है? तो जो **"हो मेरे हुक्म से और हो गया"** जब **'क़ुरान'** में ऐसा लिखा है फिर छः दिन कभी नहीं लग सकते। और छः दिन लगना झूठ है।

[व्यापक होता तो ऊपर सिंहासन पर कैसे बैठता ?]

जो वह व्यापक होता, तो ऊपर अर्श के क्यों ठहरता? और जब तदबीर करता है काम की तो ठीक तुम्हारा ख़ुदा मनुष्य के समान है, क्योंकि जो सर्वज्ञ है, वह बैठा-बैठा तदबीर क्या करेगा? इससे विदित होता है कि ईश्वर को न जाननेवाले जंगली लोगों ने यह पुस्तक बनाया होगा॥९७॥

[क्या खुदा की शिक्षा और दया केवल मुसलमानों के लिए है ?]

९८. शिक्षा और दया वास्ते मुसलमानों के...।५७।

मं॰ ३। सि॰ ११। सू॰ १०। आ॰ ५७॥

समीक्षक—क्या यह ख़ुदा मुसलमानों का ही है? दूसरों का नहीं? और पक्षपाती है, जो मुसलमानों पर ही दया करे अन्य मनुष्यों पर नहीं। यदि मुसलमान ईमानदारों को कहते हैं, तो उनके लिये शिक्षा की आवश्यकता ही नहीं। और मुसलमानों से भिन्नों को उपदेश नहीं करता, तो ख़ुदा की विद्या ही व्यर्थ है॥९८॥

[कर्मों की परीक्षा; मृत्यु के पीछे उठाया जाना]

९९. .....और था अर्श अर्थात् सिंहासन उसका ऊपर पानी के, तो कि परीक्षा लेवे तुमको, कौन तुममें से अच्छा है कर्मों में, जो कहे तू, अवश्य उठाये जाओगे तुम पीछे मृत्यु के....।७।

मं॰ ३। सि॰ ११। सू॰ ११। आ॰ ७॥

[परीक्षा करता है, तो खुदा सर्वज्ञ नहीं]

समीक्षक—जब पानी पर ख़ुदा का सिंहासन है, तो वह एकदेशी होने से ख़ुदा ही नहीं बन सकता और जब कर्मों की परीक्षा करता है, तो सर्वज्ञ ही नहीं। और जो मृत्यु पीछे उठाता है, तो दौरासुपुर्द रखता है और अपने

नियम जो कि **'मरे हुए न जीवें'**, [को] तोड़ता है। यह ख़ुदा को बट्टा लगता है॥९९॥

[अल्लाह की निशानी ऊँटनी]

१००. और कहा गया—'ऐ पृथिवी! अपना पानी निगल जा, और ऐ आसमान! बस कर, और पानी सूख गया....।४४। और ऐ क़ौम मेरे! यह है कि निशानी ऊंटनी अल्लाह की वास्ते तुम्हारे, बस, छोड़ दो उसको बीच पृथिवी अल्लाह के खाती फिरे'....।६४।

मं० ३। सि० ११। सू० ११। आ० ४४। ६४॥

[ख़ुदा के पास ऊँटनी है, तो हाथी घोड़े भी होंगे ?]

समीक्षक—क्या लड़केपन की बात है! पृथिवी और आकाश कभी बात सुन सकते हैं? वाह जी वाह! ख़ुदा के ऊंटनी भी है, तो ऊंट भी होगा? तो हाथी, घोड़े, गधे आदि भी होंगे? और ख़ुदा का ऊंटनी से खेत खिलाना क्या अच्छी बात है? क्या ऊंटनी पर चढ़ता भी है? जो ऐसी बातें हैं तो नवाबी की-सी घसड़-पसड़ ख़ुदा के घर में भी हुई॥१००॥

[सदा रहेंगे बहिश्त में]

१०१. और सदैव रहनेवाले बीच उसके जब तक कि रहें आसमान और पृथिवी...।१०७। और जो लोग सुभागी हुए, बस, बहिश्त के सदा रहनेवाले हैं, जब तक रहें आसमान और पृथिवी....।१०८।

मं० ३। सि० १२। सू० ११। आ० १०७। १०८॥

[बहिश्त में सदा कैसे, जब कि वह सावधि है ?]

समीक्षक—जब दोज़ख और बहिश्त में क़यामत के पश्चात् सब लोग जायेंगे फिर आसमान और पृथिवी किसलिये रहेगी? और तब दोज़ख

और बहिश्त के, आसमान-पृथिवी के रहने तक अवधि हुई तो **'सदा रहेंगे बहिश्त वा दोज़ख में'**, यह बात झूठी हुई। ऐसा कथन अविद्वानों का होता है, ईश्वर वा विद्वानों का नहीं॥१०१॥

[बाप-बेटे का संवाद]

१०२. जब यूसुफ़ ने अपने बाप से कहा कि "ऐ बाप मेरे! मैंने एक स्वप्न में देखा".....।४।

मं० ३। सि० १२। सू० १२। आ० ४ से ५९ तक [और आगे १०१ तक]॥

[जिस पुस्तक में इतिहास भरा हो, वह ईश्वरीय कैसे ?]

समीक्षक—इस प्रकरण में पिता-पुत्र का संवादरूप किस्सा-कहानी भरी है, इसलिये **'क़ुरान'** ईश्वर का बनाया नहीं। किसी मनुष्य ने मनुष्यों का इतिहास लिख दिया है॥१०२॥

[खुदा की सर्वशक्तिमत्ता]

१०३. अल्लाह वह है जिसने खड़ा किया आसमानों को विना खंभे के देखते हो तुम उसको, फिर आराम किया ऊपर अर्श के अर्थात् स्वर्ग में, आज्ञा वर्तनेवाला किया सूरज और चांद को।२। और वही है जिसने बिछाया पृथिवी को।३। उतारा आसमान से पानी; बस, बहे नाले साथ अन्दाजे के।१७। अल्लाह खोलता है भोजन को वास्ते जिसको चाहे और तंग करता है।२६।

मं० ३। सि० १३। सू० १३। आ० २। ३। १७। २६॥

[आकाश को खम्भों की क्या आवश्यकता ?]

समीक्षक—मुसलमानों का ख़ुदा **'पदार्थविद्या'** कुछ भी नहीं जानता था। जो जानता, तो गुरुत्व न होने से, आसमान को खंभा लगाने की

कथा कहने की कुछ भी आवश्यकता न थी। यदि ख़ुदा स्वर्गरूप=अर्शरूप एक स्थान में रहता है, तो वह सर्वशक्तिमान् और सर्वव्यापक नहीं हो सकता।

[यह खुदा वृष्टि-विज्ञान का ज्ञाता नहीं]

और जो ख़ुदा **'मेघविद्या'** जानता तो 'आकाश से पानी उतारा' लिखा, पुनः यह क्यों न लिखा कि 'पृथिवी से पानी ऊपर चढ़ाया'। इससे निश्चय हुआ कि **'क़ुरान'** का बनानेवाला **'मेघ की विद्या'** को भी नहीं जानता था। और जो विना अच्छे-बुरे कामों के सुख-दुःख देता है, तो पक्षपाती, अन्यायकारी, निरक्षर-भट्ट है॥१०३॥

[अल्लाह गुमराह भी करता है, और मार्ग भी दिखलाता है]

१०४. ....कह, निश्चय अल्लाह गुमराह करता है, जिसको चाहता है और मार्ग दिखलाता है, तरफ़ अपनी उस मनुष्य को रुजू करता है।२७।

मं० ३। सि० १३। सू० १३। आ० २७॥

[जो गुमराह करे खुदा नहीं, शैतान है]

समीक्षक—जब अल्लाह गुमराह करता है, तो ख़ुदा और शैतान में क्या भेद हुआ? जबकि शैतान दूसरों को गुमराह अर्थात् बहकाने से बुरा कहाता है, तो ख़ुदा भी वैसा ही काम करने से शैतान क्यों नहीं? और बहकाने के पाप से [उसको] दोज़खी क्यों नहीं होना चाहिये?॥१०४॥

[कुरान को अर्बी में उतारना]

१०५. इसी प्रकार उतारा हमने इस 'क़ुरान' को अरबी में, जो पक्ष करेगा तू उनकी इच्छा का पीछे इसके आई तेरे पास विद्या

से....।३७। बस, सिवाय इसके नहीं कि ऊपर तेरे पैग़ाम पहुंचाना है और ऊपर हमारे है हिसाब लेना।४०।

मं॰ ३। सि॰ १३। सू॰ १३। आ॰ ३७। ४०॥

[खुदा ऊपर रहता है, तो वह एकदेशी हुआ]

समीक्षक—'क़ुरान' किधर की ओर से उतारा? क्या ख़ुदा ऊपर रहता है? जो यह बात सच है, तो वह एकदेशी होने से ईश्वर ही नहीं हो सकता, क्योंकि ईश्वर सब ठिकाने एकरस व्यापक है।

[पैगाम पहुँचाना, हिसाब लेना-देना मानव-कार्य है]

पैग़ाम पहुँचाना हल्कारे का काम है और हल्कारे की आवश्यकता उसी को होती है, जो मनुष्यवत् एकदेशी हो। और हिसाब लेना-देना भी मनुष्य का काम है, ईश्वर का नहीं, क्योंकि वह सर्वज्ञ है। [इससे] यह निश्चय होता है कि किसी अल्पज्ञ मनुष्य का बनाया **'क़ुरान'** है॥१०५॥

[मनुष्य अन्यायी और पापी है]

१०६. और किया सूर्य, चन्द्र को सदैव फिरने वाले।३३। ....निश्चय आदमी अवश्य अन्याय और पाप करनेवाला है।३४।

मं॰ ३। सि॰ १३। सू॰ १४। आ॰ ३३। ३४॥

[क्या चन्द्र-सूर्य फिरते हैं; पृथिवी नहीं घूमती ?]

समीक्षक—क्या चन्द्र, सूर्य सदा फिरते और पृथिवी नहीं फिरती? जो पृथिवी नहीं फिरे तो कई वर्षों के दिन-रात होवें।

[संसार में पुण्यात्मा भी हैं, केवल पापी ही नहीं]

और जो मनुष्य निश्चय अन्याय और पाप करनेवाला है, तो **'क़ुरान'** से शिक्षा करना व्यर्थ है, क्योंकि जिनका स्वभाव पाप ही करने का है, तो

उनमें पुण्यात्मता कभी न होगी। और संसार में पुण्यात्मा और पापात्मा सदा दीखते हैं, इसलिये ऐसी बात ईश्वरकृत पुस्तक की नहीं हो सकती। और **'निश्चय', 'अवश्य'** ये दोनों शब्द एकार्थक होने से पुनरुक्त हैं। **पुनरुक्त प्रमत्त वाक्य होता है**॥१०६॥

[आदम में खुदा को रूह; खुदा ने शैतान को बहकाया]

१०७. ....बस, जब ठीक करूँ मैं उसको, और फूंक दूं बीच उसके रूह अपनी से। बस, गिर पड़ो वास्ते उसके सिज़्दा करते हुए।२९। कहा ऐ रब मेरे ! इस कारण कि गुमराह किया तूने मुझको, अवश्य ज़ीनत दूंगा मैं बीच वास्ते उसके पृथिवी के, और गुमराह करूंगा।३९।

मं० ३। सि० १४। सू० १५। आ० २९। से ३९॥

[फिर तो आदम भी खुदा का रूप हुआ ?]

समीक्षक—जो ख़ुदा ने अपनी रूह आदम साहब में डाली, तो वह भी ख़ुदा हुआ और जो वह ख़ुदा न था, तो सिज़्दा अर्थात् नमस्कारादि भक्ति करने में अपना 'शरीक' क्यों किया?

[खुदा ने शैतान को बहकाया, तो वह भी शैतान क्यों नहीं ?]

जब शैतान को गुमराह करनेवाला ख़ुदा ही है, तो वह शैतान का भी शैतान, बड़ा भाई [और] गुरु क्यों नहीं? क्योंकि तुम लोग बहकानेवाले को शैतान मानते हो, तो ख़ुदा ने भी शैतान को बहकाया और प्रत्यक्ष शैतान ने कहा कि "मैं बहकाऊंगा", फिर भी उसको दण्ड देकर क़ैद क्यों न किया? और मार क्यों न डाला?॥१०७॥

[हर समुदाय में पैगम्बर भेजे; कहा 'हो जा' बस हो जाती है]

१०८.उत्पन्न किया आदमी को शुक्र से।४। बस, एक ही वार.....और निश्चय भेजे हमने बीच हर उम्मत के पैग़म्बर....।३६। ....जब चाहते हैं हम उसको, यह कहते हैं हम उसको, 'हो', बस, हो जाती है।४०।

मं० ३। सि० १४। सू० १६। आ० ४। ३६। ४०॥

[तो फिर अन्य पैगम्बरों की बात मान्य क्यों नहीं ?]

समीक्षक—इससे एक जन्म सिद्ध होता है, परन्तु इसमें बड़ी भारी भूल है; क्योंकि जन्म अनेक होते हैं। जब जीव अनादि हैं तो उनके गुण, कर्म, स्वभाव भी अनादि हैं। उसका फल-भोग भी अनादि से चला आता है। पश्चात् एक जन्म का मानना व्यर्थ है। **इसका विशेष संवाद नवम समुल्लास में देख लेना।** जो सब क़ौमों पर पैग़म्बर भेजे हैं, तो सब लोग जो कि पैग़म्बर की राय पर चलते हैं, वे काफ़िर क्यों? क्या दूसरे पैग़म्बर का मान्य नहीं, सिवाय तुम्हारे पैग़म्बर के? यह सर्वथा पक्षपात की बात है। जो सब देश में पैग़म्बर भेजे, तो आर्यावर्त में कौन-सा भेजा? इसलिये यह बात मानने योग्य नहीं।

[किससे कहा कि—'हो जा', और कौन हो गया ?]

जब ख़ुदा चाहता है और कहता है कि **'पृथिवी हो जा'**, वह जड़ कभी नहीं सुन सकती। ख़ुदा का हुक्म क्योंकर बजा सकेगी? और सिवाय ख़ुदा के दूसरी चीज नहीं मानते, तो सुना किसने? और हो कौन गया? ये सब अविद्या की बातें हैं, ऐसी बातों को मूढ लोग मानते हैं॥१०८॥

[अल्लाह के लिए बेटियाँ]

१०९. और नियत करते हैं वास्ते अल्लाह के बेटियां, पवित्रता है उसको, और वास्ते उनके हैं जो कुछ चाहें।५७। क़सम अल्लाह की अवश्य भेजे हमने पैग़म्बर।६३।

मं० ३। सि० १४। सू० १६। आ० ५७। ६३॥

[अल्लाह को बेटियों की क्या आवश्यकता ?]

समीक्षक—अल्लाह बेटियों से क्या करेगा? बेटियां तो किसी मनुष्य को चाहियें। क्यों बेटे नियत नहीं किये जाते? और बेटियां नियत की जाती हैं, इसका क्या कारण है, बताइये?

[कसम खाना झूठों का काम है; और कसम कौन खा रहा है ?]

क़सम खाना झूठों का काम है, ख़ुदा की बात नहीं, क्योंकि बहुधा संसार में ऐसा देखने में आता है कि जो झूठा होता है वही क़सम खाता है, सच्चा सौगन्द क्यों खावे?॥१०९॥

[दिल कान और आँख पर मोहर लगाना]

११०. ये लोग वे हैं कि मोहर रक्खी अल्लाह ने ऊपर दिलों उनके और कानों उनके और आँखों उनकी के और ये लोग वे हैं बेख़बर।१०८। और पूरा दिया जावेगा हर जीव को जो कुछ किया है और वे अन्याय न किये जावेंगे।१११।

मं० ३। सि० १४। सू० १६। आ० १०८। १११॥

[कान आदि पर मोहर लगा दी, तो खुदा ही फल भोगे ?]

समीक्षक—जब ख़ुदा ही ने मोहर लगा दी तो वे बेचारे विना अपराध मारे गये, क्योंकि उनको पराधीन कर दिया। यह कितना बड़ा अपराध है?

और फिर कहते हैं कि जिसने जितना किया है उतना ही उनको दिया जायेगा, न्यूनाधिक नहीं। भला, उन्होंने स्वतन्त्रता से पाप किये ही नहीं किन्तु ख़ुदा के कराने से किये, पुनः उनका अपराध ही न हुआ, उनको फल न मिलना चाहिये। इसका फल ख़ुदा को मिलना उचित है

[पूरा फल मिलता है, तो क्षमा की बात समाप्त]

और जो पूरा दिया जाता है, तो क्षमा किस बात की की जाती है? जो क्षमा की जाती है, तो न्याय उड़ जाता है। ऐसा गड़बड़ाध्याय की बात ईश्वर की कभी नहीं हो सकती, किन्तु निर्बुद्धि छोकरों की होती है॥११०॥

[काफिरों के लिए दोजख; गर्दन में कर्मपत्र बाँधना]

१११. ....और किया हमने दोज़ख़ को, वास्ते काफ़िरों के घेरनेवाला स्थान।८। और हर आदमी को लगा दिया हमने उसको अमलनामा उसका बीच गर्दन उसकी के, और निकालेंगे हम वास्ते उसके दिन क़यामत के एक किताब कि देखेगा उसको खुला हुआ।१३। और बहुत मारे हमने क़ुरनून से पीछे नूह के....।१७।

मं० ४। सि० १५। सू० १७। आ० ८। १३। १७॥

[केवल काफिरों के लिए ही दोजख की बात पक्षपात]

समीक्षक—यदि काफ़िर वे ही हैं कि जो **'क़ुरान'**, पैग़म्बर और **'क़ुरान'** के कहे ख़ुदा, सातवें आसमान और **'नमाज़'** आदि को न मानने वाले [हैं], उन्हीं के लिये दोज़ख़ होवे; तो यह बात केवल पक्षपात की ठहरेगी। क्योंकि क्या **'क़ुरान'** के ही माननेवाले सब अच्छे और अन्य के माननेवाले सब बुरे कभी हो सकते हैं?

[हम तो की किसी गर्दन में कर्मपुस्तक बन्धी नहीं देखते]

यह बड़ी लड़केपन की बात है कि उसकी गर्दन पर कर्म की किताब खुदा ने लिख दी। यह बात सर्वथा विरुद्ध है, क्योंकि गर्दन की नाड़ी-नाड़ी और हाड़-हाड़ देखने से भी कुछ भी कहीं लिखा नहीं पाता,

[आजकल वह खुदा की बही कहाँ है ?]

और क़यामत की रात को ख़ुदा किताब निकालेगा तो आजकल वह किताब कहां है? क्या साहूकार की बही-समान लिखता रहता है? हां, यहां यह विचारना चाहिये कि जो पूर्वजन्म नहीं, तो जीवों के कर्म ही नहीं हो सकते, तो फिर कर्म की किताब क्या लिखी? जो विना कर्म के लिखा तो उन पर अन्याय किया, क्योंकि विना अच्छे-बुरे कर्मों के उनको सुख-दुःख क्यों दिया?

[अपनी मर्जी से विना कर्म के फल देना अन्याय]

जो कहो कि ख़ुदा की मर्ज़ी, तो भी उसने अन्याय किया। **अन्याय उसी को कहते हैं कि विना बुरे-भले कर्म किये दुःख-सुखरूप फल न्यूनाधिक देना।** और उस समय ख़ुदा ही किताब बांचेगा वा कोई सरिश्तःदार सुनावेगा? जो ख़ुदा ने ही दीर्घकाल सम्बन्धी जीवों को विना अपराध मारा तो वह अन्यायकारी हो गया। जो अन्यायकारी होता है वह ख़ुदा ही नहीं हो सकता॥१११॥

[समूद को ऊँटनी; दाहिने हाथ में अमलनामा]

११२. ....और दिया हमने समूद को ऊंटनी प्रमाण....।५९। और बहका जिसको बहका सके....।६४। जिस दिन बुलावेंगे हम उन

लोगों को साथ पेशवाओं उनके के; बस, जो कोई दिया गया अमलनामा उसका बीच दहिने हाथ उसके के.....।७१।

मं० ४। सि० १५। सू० १७। आ० ५९। ६४। ७१॥

[क्या केवल ऊँटनी ही खुदा के होने में प्रमाण है ?]

समीक्षक—वाह! जितनी ख़ुदा की निशानियां साश्चर्य हैं, उनमें से एक ऊंटनी भी ख़ुदा के होने में प्रमाण अथवा परीक्षा में साधक है !

[शैतान के द्वारा बहकानेवाला स्वयं शैतान क्यों नहीं ?]

यदि ख़ुदा ने शैतान को बहकाने का हुक्म दिया, तो ख़ुदा ही शैतान का सरदार और सब पाप करानेवाला ठहरा। ऐसे को ख़ुदा कहना केवल कम-समझ की बात है।

[उत्तम न्यायाधीश तो सदा शीघ्र न्याय करते हैं]

जब क़यामत की रात अर्थात् प्रलय में ही न्याय करने-कराने के लिये पैग़म्बर और उनके उपदेश माननेवालों को ख़ुदा बुलावेगा, तो जब तक प्रलय न होगा, तब तक सब दौरासुपुर्द रहे, और दौरासुपुर्द सबको दुःखदायक है जब तक न्याय न किया जाय। इसलिये **शीघ्र न्याय करना न्यायाधीश का उत्तम काम है।**

[यह तो पोपाँबाई का न्याय ठहरा; इसे न्याय नहीं कहते]

यह तो **'पोपाँबाई का न्याय'** ठहरा। जैसे कोई न्यायाधीश कहे कि जब तक पचास वर्ष तक के चोर और साहूकार इकट्ठे न हों, तब तक उनको दण्ड [न देना चाहिये] वा प्रतिष्ठा न करनी चाहिये; वैसे ही यह हुआ कि एक तो पचास वर्ष तक दौरासुपुर्द रहा और एक आज ही पकड़ा गया। ऐसा काम न्याय का नहीं हो सकता। **न्याय तो वेद और 'मनुस्मृति' का**

देखो जिसमें क्षणमात्र भी विलम्ब नहीं होता और अपने-अपने कर्मानुसार दण्ड वा प्रतिष्ठा सदा पाते रहते हैं।

[पैगम्बरों की गवाही की ईश्वर को क्या आवश्यकता ?]

दूसरा, पैग़म्बरों को गवाही के तुल्य रखने से ईश्वर की सर्वज्ञता की हानि है। भला, ऐसा पुस्तक ईश्वरकृत और ऐसे पुस्तक का उपदेश करनेवाला ईश्वर कभी ईश्वर हो सकता है? कभी नहीं॥११२॥

[मुसलमानों की बहिश्त]

११३. ये लोग वास्ते उनके हैं बाग़ हमेशह रहने के, चलती हैं नीचे उनके से नहरें, गहना पहिनाये जावेंगे बीच उसके कंगन सोने के-से, और पोशाक पहिनेंगे वस्त्र हरित लाहि के से, और ताफ़ते के से, तकिये किये हुए बीच उसके ऊपर तख़्तों के, अच्छा है पुण्य और अच्छी है बहिश्त लाभ उठाने की।३१।

मं० ४। सि० १५। सू० १८। आ० ३१॥

[उस बहिश्त में यहाँ से अधिक क्या है ?]

समीक्षक—वाह जी वाह! क्या **'क़ुरान'** का स्वर्ग है जिसमें बाग़, गहने, कपड़े, गद्दी, तकिये आनन्द के लिये हैं। भला, कोई बुद्धिमान् यहां विचार करे, तो यहां से वहां मुसलमानों के बहिश्त में अधिक कुछ भी नहीं है, सिवाय अन्याय के। वह यह कि कर्म उनके अन्तवाले, और फल उनके अनन्त।

[दुःख-भोग के विना सुख का मजा नहीं]

और जो मीठा नित्य खावे, तो थोड़े दिन में विष के समान प्रतीत होता है। जब सदा वे सुख भोगेंगे, तो उनको सुख ही दुःख रूप हो जायगा।

इसलिये **महाकल्प पर्यन्त मुक्तिसुख भोगके पुनर्जन्म पाना ही सत्य सिद्धान्त है॥**११३॥

[बस्तियों का नाश करना]

११४. और यह बस्तियां हैं कि मारा हमने उनको जब अन्याय किया उन्होंने, और हमने उनके मारने की प्रतिज्ञा स्थापन की।५९।

मं० ४। सि० १५। सू० १८। आ० ५९॥

[क्या कभी सारी बस्ती पापी हो सकती है ?]

समीक्षक—भला, सब बस्ती-भर पापी कभी हो सकती है? और पीछे से प्रतिज्ञा करने से ईश्वर सर्वज्ञ नहीं रहा, क्योंकि जब उनका अन्याय देखा तब प्रतिज्ञा की, पहले नहीं जानता था। इससे दयाहीन भी ठहरा॥११४॥

[खुदा का डरना; सूर्य का कीचड़ के चश्मे में डूबना]

११५. और वह जो लड़का, बस, थे मा-बाप उसके ईमानवाले। बस, डरे हम यह कि पकड़ उनको सरकशी में और कुफ़्र में।८०। यहां तक कि पहुंचा जगह डूबने सूर्य की, पाया उसको डूबता था बीच चश्मे कीचड़ के।८६। कहा, ऐ ज़ुलक़रनैन! निश्चय याजूज, माजूज फ़साद करनेवाले हैं बीच पृथिवी के....।९४।

मं० ४। सि० १६। सू० १८। आ० ८०। ८६। ९४॥

[भय की बात खुदा में कैसे हो सकती है ?]

समीक्षक—भला, यह ख़ुदा की कितनी बेसमझ है। शङ्का से डरा कि लड़क अपने मा-बाप को कहीं मेरे मार्ग से बहकाकर उलटे न कर दिये जावें। यह कभी ईश्वर की बात नहीं हो सकती।

[सूर्य किसी नदी झील वा समुद्र में कैसे डूब सकता है ?]

अब आगे की अविद्या की बात देखिये कि इस किताब का बनानेवाला सूर्य को एक झील में रात्रि में डूबा जानता है, फिर प्रातःकाल निकलता है। भला, सूर्य तो पृथिवी से बहुत बड़ा है, वह नदी वा झील वा समुद्र में कैसे डूब सकेगा? **इससे यह विदित हुआ कि 'क़ुरान' के बनानेवाले को 'भूगोल-खगोल की विद्या' नहीं थी।** जो होती तो ऐसी विद्याविरुद्ध बात क्यों लिखता? और इस पुस्तक के माननेवालों को भी विद्या नहीं है। जो होती तो ऐसी मिथ्या बातों से युक्त पुस्तक को क्यों मानते?

[खुदा ने पृथिवी पर फसाद क्यों होने दिया ?]

अब देखिये ख़ुदा का अन्याय! आप ही पृथिवी का बनानेवाला राजा न्यायाधीश है और याजूज, माजूज को पृथिवी में फ़साद भी करने देता है। यह ईश्वरता की बात से विरुद्ध है। इससे ऐसे पुस्तक को जंगली लोग माना करते हैं, विद्वान् नहीं॥११५॥

[फरिश्ते से मरियम का गर्भवती होना]

११६. और याद करो बीच किताब के मरियम को, जब जा पड़ी लोगों अपने से [अलग होकर] मकान पूर्वी में।१६। बस, पड़ा उनसे इधर परदा। बस, भेजा हमने रूह अपनी को अर्थात् फ़रिश्ता। बस, सूरत पकड़ी वास्ते उसके आदमी पुष्ट की।१७। कहने लगी, निश्चय मैं शरण पकड़ती हूं रहमान की तुझसे, जो है तू परहेज़गार।१८। कहने लगा, "सिवाय इसके नहीं कि मैं भेजा हुआ हूँ मालिक तेरे के से, तो कि दे जाऊं मैं तुझको लड़का पवित्र।१९।" [मरियम ने] कहा, "कैसे होगा वास्ते मेरे लड़का, नहीं हाथ लगाया मुझको [किसी]

आदमी ने, नहीं मैं बुरा काम करनेवाली।२०।" बस, गर्भित हो गई साथ उसके और जा पड़ी साथ उसके, मकान दूर अर्थात् जंगल में।२२।

मं० ४। सि० १६। सू० १९। आ० १६। १७। १८। १९। २०। २२॥

[तब तो फरिश्ते भी खुदा ठहरे, क्योंकि वे खुदा की रूह हैं]

समीक्षक—अब बुद्धिमान् विचार लें कि फ़रिश्ते सब खुदा की रूह हैं, तो खुदा से अलग पदार्थ नहीं हो सकते। और शैतान भी नापाक रूह खुदा की ही हुई, तो खुदा ही नापाक हुआ। यदि ऐसा है तो ऐसे नापाक खुदा के भक्त पाक कैसे हो सकेंगे?

[खुदा के हुक्म से मरियम को गर्भवती करना अन्याय]

दूसरा यह अन्याय कि वह मरियम कुमारी के लड़का होना। किसी का संग करना नहीं चाहती थी, परन्तु खुदा के हुक्म से फ़रिश्ते ने उसको बलात्कार-पूर्वक गर्भवती किया। यह न्याय से विरुद्ध बात है। यहाँ अन्य भी असभ्यता की बातें बहुत लिखी हैं, उनको लिखना उचित नहीं समझा॥११६॥

[काफिरों को बहकाने को शैतान भेजा]

११७. क्या नहीं देखा तू ने यह कि भेजा हमने शैतानों को ऊपर काफ़िरों के। बहकाते हैं उनको बहकाने पर।८३।

मं० ४। सि० १६। सू० १९। आ० ८३॥

[बहकाने का काम खुदा करवाता है, तो वही फल भी भोगे]

समीक्षक—जब खुदा ही बहकाने के लिये शैतानों को भेजता है तो बहकनेवालों का कुछ दोष नहीं हो सकता और न उनको दण्ड हो सकता

[है,] और न शैतानों को; क्योंकि यह खुदा के हुक्म से सब होता है, इसका फल खुदा को होना चाहिये। जो [वह] सच्चा न्यायकारी है, तो उसका फल दोज़ख़ आप ही भोगे, और जो न्याय को छोड़के अन्याय को करे, तो अन्यायकारी हुआ, **अन्यायकारी ही पापी कहाता है॥**११७॥

[तौबा करने से पाप-क्षमा]

११८. और निश्चय क्षमा करनेवाला हूं वास्ते उस मनुष्य के तौबा की और ईमान लाया और कर्म किये अच्छे, फिर मार्ग पाया।८२।

मं० ४। सि० १६। सू० २०। आ० ८२॥

[तौबा से पाप-क्षमा की बात पाप बढ़ाती है]

समीक्षक—जो तौबा से पाप क्षमा करने की बात **'क़ुरान'** में है, यह सबको पापी करने वाली है; क्योंकि पापियों को इससे पाप करने का साहस बहुत बढ़ जाता है। इससे यह पुस्तक और इसका बनानेवाला पापियों को पाप कराने में हौसला बढ़ानेवाले हैं। इससे यह पुस्तक परमेश्वरकृत और इसमें कहा हुआ परमेश्वर भी नहीं हो सकता॥११८॥

[पृथिवी को थामने के लिये पहाड़]

११९. ....और जिसको चाहा मारा हमने, हद्द से निकलनेवालों को।९। .....बस, पवित्रता है अल्लाह मालिक अर्श के को....।२२। और किये हमने बीच पृथिवी के पहाड़, ऐसा न हो कि हिल जावे....।३१।

मं० ४। सि० १७। सू० २१। आ० ९। २२। ३१॥

[तो भूकम्प आने पर पृथिवी क्यों हिलती है ?]

समीक्षक—देखिये, ग़दर-लूटमार कि जिसको चाहा उसको मारा और जिसको चाहा उसको बचाया। भले-बुरे कर्म की अपेक्षा कुछ नहीं करता। जब सातवें आसमान पर तख़्त का निवासी अल्लाह है, वह सब जगत् का स्रष्टा, धर्त्ता, ज्ञाता कभी नहीं हो सकता। यदि **'क़ुरान'** का बनानेवाला पृथिवी का घूमना आदि जानता, तो यह बात कभी नहीं कहता कि पहाड़ों के धरने से पृथिवी नहीं हिलती। शंका हुई कि जो पहाड़ न धरता, तो हिल जाती! इतने कहने पर भी भूकम्प में क्यों डिग जाती है?॥११९॥

[औरत के बीच रूह फूँकना]

१२०. (और शिक्षा दी हमने उस औरत को) और रक्षा की उसने अपने गुह्य अङ्गों की। बस, फूंक दिया हमने बीच उसके रूह अपनी को।९१।

मं० ४। सि० १७। सू० २१। आ० ९१॥

[कुरान में अश्लील बातें भरी पड़ी हैं]

समीक्षक—ऐसी अश्लील बातें ख़ुदा के पुस्तक, ख़ुदा की और सभ्य मनुष्य की भी नहीं होती। जबकि मनुष्यों में ऐसी-ऐसी बातों का लिखना अच्छा नहीं, तो परमेश्वर के सामने क्योंकर अच्छा हो सकता है? ऐसी-ऐसी बातों से **'क़ुरान'** दूषित होता है। यदि अच्छी बातें होती, तो अति प्रशंसा होती, जैसे वेदों की॥१२०॥

[सूर्यादि का अल्लाह को प्रणाम; खुदा के घर की परिक्रमा]

१२१. क्या नहीं देखा तूने कि अल्लाह को सिज़्दा करते हैं जो कोई बीच आसमानों और पृथिवी के हैं, सूर्य और चन्द्र, तारे और पहाड़,

वृक्ष और जानवर....।१८। ....पहनाये जावेंगे बीच उसके कंगन सोने और मोती के और पहनावा उनका बीच उसके रेशमी है।२३। ....और पवित्र रख घर मेरे को वास्ते गिर्द फिरनेवालों के और खड़े रहनेवालों के।२६। फ़िर चाहिये कि दूर करें मैल अपने और पूरी करें भेटें अपनी और चारों ओर फिरें घर क़दीम के।२९। .....तो कि नाम अल्लाह का याद करें....।३४।

मं० ४। सि० १७। सू० २२। आ० १८। २३। २६। २९। ३४॥

[जड़ पदार्थ किसी को प्रणाम नहीं कर सकते]

समीक्षक—भला, जो जड़ वस्तुयें हैं वे परमेश्वर को जान ही नहीं सकते, फिर वे उसकी भक्ति क्योंकर कर सकते हैं? इससे यह पुस्तक ईश्वरकृत तो कभी नहीं हो सकता, किन्तु किसी भ्रान्त का बनाया हुआ दीखता है।

[यहाँ के राजघरानों से बहिश्त में अधिक कुछ नहीं]

वाह! बड़ा अच्छा स्वर्ग है, जहां सोने, मोती के गहने और रेशमी कपड़ा पहरने को मिलें! यह बहिश्त यहाँ के राजाओं के घर से अधिक नहीं दीख पड़ता।

[खुदा का घर बनाकर परिक्रमा करना बुतपरस्ती है]

और जब परमेश्वर का घर है तो वह उसी घर में रहता भी होगा, फिर बुतपरस्ती क्यों न हुई? और दूसरे बुतपरस्तों का खण्डन क्यों करते हैं? जब ख़ुदा भेंट लेता है, अपने घर की परिक्रमा करने की आज्ञा देता है और पशुओं को मरवाके खिलाता है, तो यह ख़ुदा मन्दिरवाले भैरव और दुर्गा के सदृश हुआ और महाबुतपरस्ती का चलाने वाला हुआ; क्योंकि

मूर्त्तियों से मस्जिद बड़ा बुत है। इससे ख़ुदा और मुसलमान बड़े बुतपरस्त और पुराणी तथा जैनी छोटे बुतपरस्त हैं॥१२१॥

[कयामत के दिन मुर्दों को उठाना]

१२२. फिर निश्चय तुम दिन क़यामत के उठाये जाओगे।१६।

मं० ४। सि० १८। सू० २३। आ० १६॥

[क़यामत तक क़ब्र में पड़े सड़ने देना अन्याय है]

समीक्षक—क़यामत तक मुर्दे क़ब्रों में रहेंगे वा किसी अन्य जगह? जो उन्हीं में रहेंगे तो सड़े हुए दुर्गन्धरूप शरीर में रहकर पुण्यात्मा भी दुःख-भोग करेंगे? यह न्याय तो अन्याय है। और दुर्गन्ध अधिक होकर रोगोत्पत्ति करने से ख़ुदा और मुसलमान पापभागी होंगे॥१२२॥

[हाथ पाँव आदि की गवाही; अल्लाह का तेज]

१२३. उस दिन की गवाही देवेंगे ऊपर उनके, ज़बानें उनकी और हाथ उनके और पाँव उनके, साथ उस वस्तु के कि जो थे उनसे वे करते।२४। अल्लाह नूर है आसमानों का और पृथिवी का, नूर उसके कि मानिन्द ताक़ की है बीच उसके दीप हो, और दीप बीच कंदील शीशों के हैं, वह कंदील मानो कि तारा है चमकता, रोशन किया जाता है दीपक वृक्ष मुबारिक जैतून के तेल से, न पूर्व की ओर है न पश्चिम की, समीप है, तैल उसका रोशन हो जावे जो न लगे उसको रोशनी के ऊपर रोशनी, मार्ग दिखाता है अल्लाह नूर अपने की जिसको चाहता है.....।३५।

मं० ४। सि० १८। सू० २४। आ० २४। ३५॥

[जड़ हाथ पग कैसे गवाही दे सकते हैं ?]

समीक्षक—हाथ-पग आदि जड़ होने से गवाही कभी नहीं दे सकते। यह बात **'सृष्टिक्रम से विरुद्ध'** होने से मिथ्या है।

[खुदा आग वा बिजली जैसा नहीं]

क्या ख़ुदा आगी-बिजुली है? जैसा कि दृष्टान्त देते हैं, ऐसा दृष्टान्त ईश्वर में नहीं घट सकता। हां, किसी साकार वस्तु में घट सकता है॥१२३॥

[जानवरों की पानी से उत्पत्ति; खुदा व रसूल की आज्ञा मानो]

१२४. और अल्लाह ने उत्पन्न किया हर जानवर को पानी से। बस, कोई उनमें से वह है कि जो चलता है पेट के बल अपने के....।४५। और जो कोई आज्ञापालन करे अल्लाह की, रसूल उसके की....।५२। कह, आज्ञापालन करो खुदा की, रसूल उसके की....।५४।....और आज्ञापालन करो रसूल की, ताकि दया किये जाओ।५६।

मं० ४। सि० १८। सू० २४। आ० ४५। ५२। ५४। ५६॥

[सबकी पानी से उत्पत्ति बताना अज्ञानता]

समीक्षक—यह कौन-सी 'फ़िलासफ़ी' है कि जिन जानवरों के शरीर में सब तत्त्व दीखते हैं और कहना कि केवल पानी से उत्पन्न किये? यह केवल अविद्या की बात है।

[खुदा और पैगम्बर साथ-साथ, तो खुदा लाशरीक कैसे ?]

जब अल्लाह के साथ पैग़म्बर की सेवा करनी होती है तो [वह] खुदा का 'शरीक' हो गया वा नहीं? यदि ऐसा है, तो खुदा को **'लाशरीक' 'क़ुरान'** में क्यों लिखा है और कहते भी [क्यों] हो?॥१२४॥

[काफिरों से लड़ो; तौबा करने से पाप क्षमा]

१२५. और जिस दिन कि फट जावेगा आसमान साथ बदली के, और उतारे जावेंगे फ़रिश्ते।२५। बस, मत कहा मान काफ़िरों का, और झगड़ा कर उनसे साथ झगड़ा बड़ा।५२। और बदल डालता है अल्लाह बुराइयों उनकी को भलाइयों से।७०। और जो कोई तौबा करे और कर्म करे अच्छे, बस, निश्चय आता है तरफ़ अल्लाह की।७१।

मं॰ ४। सि॰ १९। सू॰ २५। आ॰ २५। ५२। ७०। ७१॥

[आकाश अमूर्त्त पदार्थ है, वह कैसे फट सकता है ?]

समीक्षक—यह बात कभी सच नहीं हो सकती है कि आकाश बद्दलों के साथ फट जावे। यदि आकाश कोई मूर्त्तिमान् पदार्थ हो, तो [तभी] फट सकता है [किन्तु वह मूर्त्तिमान् पदार्थ नहीं है]।

[बुराई को भलाई से कैसे बदल सकते हैं ?]

यह मुसलमानों का 'क़ुरान' और खुदा शान्तिभंग कर ग़दर, झगड़ा मचानेवाला है, इसीलिये धार्मिक विद्वान् लोग इसको नहीं मानते। यह भी अच्छा न्याय है कि जो पाप और पुण्य का अदला-बदला हो जाय! क्या यह तिल और उड़द की-सी बात है, जो पलटा हो जावे?

[तौबा से पाप छूटे, तो पाप का बोलबाला हो जावेगा]

जो तौबा करने से पाप छूटे और ईश्वर मिले, तो कोई भी पाप करने से न डरे, इसलिये ये सब बातें **'विद्या से विरुद्ध'** हैं॥१२५॥

[मूसा को बही देना; सबको खिलाना-पिलाना]

१२६. 'वही' (वह्य) की हमने तरफ़ मूसा की, यह कि ले चल रात को बन्दों मेरे को, निश्चय तुम पीछा किये जाओगे।५२। बस, भेजे लोग फ़िरौन ने बीच नगरों के जमा करनेवाले।५३। और वह पुरुष कि जिसने पैदा किया मुझको। बस, वही मार्ग दिखलाता है।७८। और वह जो खिलाता है मुझको पिलाता है मुझको।७९। और वह पुरुष कि आशा रखता हूं मैं यह कि क्षमा करे वास्ते मेरे, अपराध मेरा दिन क़यामत के।८२।

मं० ५। सि० १९। सू० २६। आ० ५२। ५३। ७८। ७९। ८२॥

[जब मूसा पर बही भेजी, तो फिर अन्यों पर क्यों भेजी ?]

समीक्षक—जब ख़ुदा ने मूसा की ओर **'वही'** भेजी, पुनः दाऊद, ईसा और मुहम्मद साहब की ओर किताब क्यों भेजी? क्योंकि परमेश्वर की बात सदा एक-सी और बे-भूल होती है। और उसके पीछे **'क़ुरान'** तक पुस्तकों के भेजने से पहले पुस्तक को अपूर्ण भूलयुक्त माना जायगा। यदि ये तीन पुस्तक सच्चे हैं, तो यह **'क़ुरान'** झूठा होगा। चारों का जो कि प्रायः **परस्परविरोध** रखते हैं, उनका सर्वथा सत्य होना नहीं हो सकता।

[जीव को पैदा किया, तो वह नष्ट भी अवश्य होगा]

यदि ख़ुदा ने रूह अर्थात् जीव पैदा किये हैं, तो वे मर भी जायेंगे अर्थात् उनका कभी-न-कभी अभाव भी होगा।

[वही खिलाता-पिलाता है, तो भोजन में भेदभाव क्यों ?]

जो परमेश्वर ही मनुष्यादि प्राणियों को खिलाता-पिलाता है, तो किसी को रोग न होना चाहिये और सबको तुल्य भोजन देना चाहिये। पक्षपात से एक को उत्तम और दूसरे को निकृष्ट जैसा कि राजा और कंगले को श्रेष्ठ, निकृष्ट भोजन मिलता है, न होना चाहिये। जब परमेश्वर ही खिलाने-पिलाने और पथ्य करानेवाला है, तो रोग ही न होने चाहियें, परन्तु मुसलमान आदि को भी रोग होते हैं। **यदि ख़ुदा ही रोग छुड़ाकर आराम करनेवाला है, तो मुसलमानों के शरीरों में रोग न रहना चाहिये। यदि रहता है तो ख़ुदा पूरा वैद्य नहीं है। यदि पूरा वैद्य है, तो मुसलमानों के शरीर में रोग क्यों रहते हैं?** वही मारता और जिलाता है, तो उसी ख़ुदा को पाप-पुण्य लगता होगा। यदि जन्म-जन्मान्तर के कर्मानुसार व्यवस्था करता है, तो उसको कुछ भी अपराध नहीं।

[क़यामत की रात में ही न्याय से खुदा पापी होगा]

वह पाप-क्षमा और न्याय **'क़यामत की रात'** में करता है, तो ख़ुदा पाप बढ़ानेवाला होकर पापयुक्त होगा। यदि क्षमा नहीं करता, तो यह **'क़ुरान'** की बात झूठी है॥१२६॥

[ऊँटनी की निशानी]

१२७. नहीं तू परन्तु आदमी मानिन्द हमारी, बस, ले आ कुछ निशानी जो है तू सच्चों से।१५४। [सालेह ने] कहा, यह ऊंटनी है वास्ते उसके पानी पीना है एक वार.....।१५५।

मं० ५। सि० १९। सू० २६। आ० १५४। १५५॥

[ऊंटनी की निशानी देना जङ्गली व्यवहार है]

समीक्षक—यह ख़ुदा को शंका और अभिमान क्यों हुआ कि वह हमारे तुल्य नहीं है और ऊंटनी की निशानी देना केवल जंगली व्यवहार है, ईश्वरकृत नहीं! यदि यह किताब ईश्वरकृत होती तो ऐसी व्यर्थ बातें इसमें न होतीं॥१२७॥

[करामात का प्रदर्शन; सातवें आसमान का स्वामी]

१२८. ऐ मूसा! बात यह है कि निश्चय मैं अल्लाह हूं ग़ालिब।९। और डाल दे असा अपना, बस, जबकि देखा उसको हिलता था मानो कि वह साँप है,....ऐ मूसा! मत डर, निश्चय नहीं डरते समीप मेरे पैग़म्बर।१०। अल्लाह नहीं कोई माबूद परन्तु वह मालिक अर्श बड़े का।२६। यह कि मत सरकशी करो ऊपर मेरे और चले आओ मेरे पास मुसलमान होकर।३१।

मं॰ ५। सि॰ १९। सू॰ २७। आ॰ ९। १०। २६। ३१॥

[बाजीगरी के खेल दिखाना ईश्वर का काम नहीं]

समीक्षक—और भी देखिये, अपने मुख से आप अल्लाह बड़ा ज़बरदस्त बनता है। अपने मुख से अपनी प्रशंसा करना श्रेष्ठ पुरुष का भी काम नहीं, तो ख़ुदा का क्योंकर हो सकता है? तभी तो इन्द्रजाल का लटका दिखला, जंगली मनुष्यों को वश कर, आप जंगलस्थ ख़ुदा बन बैठा। ऐसी बात ईश्वर के पुस्तक की कभी नहीं हो सकती।

[सातवें आसमान पर है, तो एकदेशी होने से ईश्वर नहीं]

यदि वह बड़े अर्श अर्थात् सातवें आसमान का मालिक है तो वह एकदेशी होने से ईश्वर ही नहीं हो सकता है।

[सरकशी बुरी है, तो कुरान में इनकी प्रशंसा क्यों ?]

यदि सरकशी करना बुरा है, तो ख़ुदा ने, मुहम्मद साहब और फरिश्तों ने ईमान लाने, सेवा करने में [दूसरे मत-वालों को बलात् अपने] साथ क्यों मिलाया? मुहम्मद साहब ने अनेक को मारा, इससे सरकशी हुई वा नहीं? **इससे यह 'क़ुरान' पुनरुक्त और पूर्वापरविरुद्ध बातों से भरा हुआ है॥**१२८॥

[पहाड़ों का बादलों की तरह चलना; खुदा खबरदार है]

१२९. और देखेगा तू पहाड़ों को, अनुमान करता है तू उनको जमे हुए और वे चले जाते हैं मानिन्द चलने बादलों की, कारीगरी अल्लाह की जिसने दृढ़ किया हर वस्तु को, निश्चय वह ख़बरदार है उस वस्तु के कि करते हो।८८।

मं० ५। सि० २०। सू० २७। आ० ८८॥

[बादलों की तरह पहाड़ किसी ने चलते नहीं देखे]

समीक्षक—भला, बद्दलों के समान पहाड़ का चलना **'क़ुरान'** बनानेवालों के देश में होता होगा, अन्यत्र नहीं।

[शैतान के सामने सब खबरदारी धरी रह गई]

और ख़ुदा की ख़बरदारी तो बाग़ी शैतान को न पकड़ने और न दंड देने से ही विदित होती है कि जो एक बाग़ी को भी अब तक न पकड़ पाया, न दंड दिया। इससे अधिक असावधानी क्या होगी?॥१२९॥

[हत्यारे मूसा को क्षमा करना]

१३०. ....बस, मुष्ट (=घूंसा) मारा उसको मूसा ने, बस, पूरी की आयु उसकी....।१५। कहा, ऐ रब मेरे! निश्चय मैंने अन्याय किया

जान अपनी को, बस, क्षमा कर मुझको, बस, क्षमा कर दिया उसको। निश्चय वह क्षमा करनेवाला दयालु है।१६। और मालिक तेरा उत्पन्न करता है, जो कुछ चाहता है और पसन्द करता है....।६८।

मं० ५। सि० २०। सू० २८। आ० १५। १६। ६८॥

[हत्यारे मूसा को क्षमा करना कहाँ का न्याय था ?]

समीक्षक—अब अन्य भी देखिये, मुसलमान और ईसाइयों के पैग़म्बर और ख़ुदा कि मूसा पैग़म्बर, मनुष्य की हत्या किया करे और ख़ुदा क्षमा किया करे, ये दोनों अन्यायकारी हैं वा नहीं?

[अपनी इच्छा से ही किसी को राजा वा रङ्क बनाना अन्याय]

क्या अपनी इच्छा से ही जैसा चाहता है वैसी उत्पत्ति करता है? क्या उसने अपनी इच्छा से ही एक को राजा, दूसरे को कंगाल और एक को विद्वान् दूसरे को मूर्ख-आदि किया है? यदि ऐसा है तो यह अन्यायकारी होने से **'क़ुरान'** सत्य और यह ख़ुदा ही नहीं हो सकता है॥१३०॥

[माँ-बाप की सेवा का आदेश; नूह का असम्भव आयुमान]

१३१. और आज्ञा दी हमने मनुष्य को साथ मा-बाप के भलाई करना, और जो झगड़ा करें तुझसे दोनों यह कि शरीक लावे तू साथ मेरे उस वस्तु को कि नहीं वास्ते तेरे साथ उस के ज्ञान; बस, मत कहा मान उन दोनों का, तरफ़ मेरी है....।८। और अवश्य भेजा हमने नूह को तरफ़ क़ौम उसके कि बस रहा बीच उनके हजार वर्ष परन्तु पचास वर्ष कम, उस दिन ढांक लेगा उसको अजाब ऊपर उनके से....।१४।

मं० ५। सि० २०-२१। सू० २९। आ० ८। १४॥

[माता-पिता की सेवा की बात ठीक है]

समीक्षक—माता-पिता की सेवा करनी तो अच्छी ही है। जो ख़ुदा के साथ शरीक करने के लिये कहे, तो उनका कहना न मानना, यह भी ठीक है; परन्तु यदि माता-पिता मिथ्याभाषणादि करने की आज्ञा देवें, तो क्या मान लेना चाहिये? इसलिये यह बात आधी अच्छी और आधी बुरी है।

[साढ़े नौ सौ वर्ष की आयु अब क्यों नहीं होती ?]

क्या नूह आदि पैग़म्बरों को ही ख़ुदा संसार में भेजता है? तो अन्य जीवों को कौन भेजता है? यदि सबको वही भेजता है, तो सभी पैग़म्बर क्यों नहीं? और **जो प्रथम मनुष्यों का पचास कम, हज़ार वर्ष का आयु होता था तो अब क्यों नहीं होता? इसलिये यह बात ठीक नहीं।** यदि खुदा के न्यायघर में भी नीचे शिर, ऊपर पग बांधकर दंड दिया जाता है, तो उससे आजकल का ही राज अच्छा है। आजकल दण्ड तो दिया जाता है, परन्तु पग नीचे और शिर ऊपर ही रक्खा जाता है। यदि ऐसा ही दण्ड हो तो भी मनुष्यों में संघटित हो सकता है॥१३१॥

[दो बार उत्पत्ति; ईमानवालों को बहिश्त]

१३२. अल्लाह पहली वार करता है उत्पत्ति, फिर दूसरी वार करेगा उसको, फिर उसी की ओर फेरे जाओगे।११। जिस दिन बरपा अर्थात् खड़ी होगी क़यामत, निराश होंगे पापी।१२। बस, जो लोग कि ईमान लाये और काम किये अच्छे, बस, वे बीच बाग़ के सिंगार किये जावेंगे।१५। और जो भेज दें हम एक बाव, बस, देखें उस खेती को

पीली हुई...।५१। इस प्रकार मोहर रखता है अल्लाह ऊपर दिलों उन लोगों के कि नहीं जानते।५९।

मं० ५। सि० २१। सू० ३०। आ० ११। १२। १५। ५१। ५९॥

[केवल दो बार ही उत्पत्ति करता है, तो फिर क्या करता है ?]

समीक्षक—यदि अल्लाह दो वार उत्पत्ति करता है, तीसरी वार नहीं, तो उत्पत्ति के आदि और दूसरी वार के अन्त में निकम्मा बैठा रहता होगा? और एक तथा दो वार उत्पत्ति के पश्चात् उसका सामर्थ्य निकम्मा और व्यर्थ हो जायगा।

[पापियों का न्याय के दिन निराश होना अच्छा है]

यदि न्याय करने के लिये दिन न रखकर, रात रक्खी जाय तो गवरगंड-सी लीला हो जाय। न्याय तो दिन में ही करना सर्वत्र प्रसिद्ध है। इसलिये यह मुसलमान और मुसलमानों के ख़ुदा की उलटी बात है। यदि न्याय करने क दिन पापी लोग निराश हों तो अच्छी बात है, परन्तु इसका प्रयोजन कहीं यह तो नहीं है कि मुसलमानों के सिवाय सब पापी समझकर निराश किये जायें? क्योंकि **'क़ुरान'** में कई स्थानों में पापियों से औरों (विधर्मियों) का ही प्रयोजन है।

[बहिश्त में यहाँ से कुछ भी विशेषता नहीं]

यदि बगीचे में रखना और श्रृंगार पहराना ही मुसलमानों का स्वर्ग है, तो इस संसार के तुल्य हुआ। और वहां माली और सुनार भी होंगे अथवा ख़ुदा ही माली और सुनार आदि का काम करता होगा।

[गहनों की चोरी पर फिर दोजख में डालता होगा]

यदि किसी को कम गहना मिलता होगा, तो चोरी भी होती होगी और बहिश्त से चोरी करनेवालों को दोज़ख में भी डालता होगा। यदि ऐसा होता होगा, तो **'सदा बहिश्त में रहेंगे'** यह बात झूठ हो जायगी।

[किसानों की खेती पर खुदा की दृष्टि]

जो किसानों की खेती पर भी ख़ुदा की दृष्टि है, सो यह **'विद्या'** खेती करने के अनुभव से ही होती है। और यदि माना जाय कि ख़ुदा ने अपनी विद्या से सब बात जान ली है, तो ऐसा भय देना अपना घमण्ड प्रसिद्ध करना है।

[दिलों पर मोहर लगाई, तो पाप का भागी भी खुदा होगा]

यदि अल्लाह ने जीवों के दिलों पर मोहर लगा पाप कराया, तो उस पाप का भागी वही होवे, जीव नहीं हो सकते; जैसे जय-पराजय सेनाधीश का होता है, वैसे यह सब पाप ख़ुदा को ही प्राप्त होवे॥१३२॥

[अल्लाह की कुछ विशेष निशानियाँ]

१३३. ये आयतें हैं किताब हिक्मत वाले की।२। उत्पन्न किया आसमानों को विना सुतून अर्थात् खम्भे के देखते हो तुम उसको, और डाले बीच पृथिवी के पहाड़ ऐसा न हो कि हिल जावे....।१०। क्या नहीं देखा तूने यह कि अल्लाह प्रवेश कराता है रात को बीच दिन के और प्रवेश कराता है दिन को बीच रात के....।२९। क्या नहीं देखा कि किश्तियां चलती हैं बीच दरिया के साथ निआमतों अल्लाह के, तोकि दिखलावे तुमको निशानियां अपनी।३१।

मं० ५। सि० २१। सू० ३१। आ० २। १०। २९। ३१॥

[आकाश की उत्पत्ति आदि बातें विद्याविरुद्ध हैं]

समीक्षक—वाह जी हिक्मतवाली किताब कि जिसमें सर्वथा **'विद्या से विरुद्ध'** आकाश की उत्पत्ति और उसमें खम्भे लगाने की शंका और पृथिवी को स्थिर रखने के लिये पहाड़ रखना [है]। थोड़ी-सी विद्यावाला भी ऐसा लेख कभी नहीं करता और न मानता।

[रात और दिन का एक-दूसरे में प्रवेश बताना अज्ञानता]

और हिक्मत देखो कि जहाँ दिन है वहां रात नहीं और जहां रात है वहां दिन नहीं, [किन्तु **'क़ुरान'** का कर्त्ता] उनको एक दूसरे में प्रवेश कराना लिखता है, यह बड़े अविद्वानों की बात है। इसलिये यह **'क़ुरान'** विद्या का पुस्तक नहीं हो सकता।

[पानी में नाव चलाने में खुदा की क्या कृपा ?]

क्या यह **'विद्याविरुद्ध'** बात नहीं है कि नौकायें खुदा की कृपा से चलती हैं? वे तो मनुष्यों और क्रियाकौशलादि से चलती हैं। यदि लोहे वा पत्थरों की नौकायें बनाकर समुद्र में चलावें तो ख़ुदा की निशानी डूब जाय वा नहीं? इसलिये यह पुस्तक न विद्वान् और न ईश्वर का बनाया हुआ हो सकता है॥१३३॥

[आसमान से आना-जाना; मौत का फरिश्ता; दोजख भरना]

१३४. तदबीर करता है काम की आसमान से तरफ़ पृथिवी की, फिर चढ़ जाता है तरफ़ उसकी बीच एक दिन के कि है अवधि उसकी सहस्र वर्ष, उन वर्षों से कि गिनते हो तुम।५। वह है जाननेवाला ग़ैब का और प्रत्यक्ष का ग़ालिब दयालु।६। फिर पुष्ट किया उसको और फूंका बीज उसके रूह अपनी से।९। यह क़ब्ज़ करेगा तुमको फ़रिश्ता

मौत का, वह जो नियत किया गया है साथ तुम्हारे।११। और जो चाहते हम अवश्य देते हर एक जीव को शिक्षा उसकी, परन्तु सिद्ध हुई बात मेरी ओर से कि अवश्य भरूंगा मैं दोज़ख़ को जिनसे और आदमियों से इकट्ठे।१३।

मं० ५। सि० २१। सू० ३२। आ० ५। ६। ९। ११। १३॥

[चढ़ने-उतरने का काम एकदेशी कर सकता है, व्यापक नहीं ?]

समीक्षक—अब ठीक सिद्ध हो गया कि मुसलमानों का ख़ुदा मनुष्यवत् एकदेशी है। क्योंकि जो व्यापक होता तो एकदेश से प्रबन्ध करना और उतरना-चढ़ना नहीं हो सकता।

[फरिश्तों से काम लेवे, तब भी कई दोष आते हैं]

यदि ख़ुदा फ़रिश्ते को भेजता है तो भी आप एकदेशी हो गया। आप आसमान पर टंगा बैठा है और फ़रिशतों को दौड़ाता है। यदि फ़रिश्ते रिश्वत लेकर कोई मामला बिगाड़ दें वा किसी मुर्दे को छोड़ जायें, तो ख़ुदा को क्या मालूम हो सकता है? मालूम तो उसको हो कि जो सर्वज्ञ तथा सर्वव्यापक हो, सो तो है ही नहीं। होता तो फ़रिश्तों के भेजने तथा कई लोगों की कई प्रकार से परीक्षा लेने का क्या काम था? और एक हजार वर्षों में प्रबन्ध करने से सर्वशक्तिमान् भी नहीं।

[मौत का फरिश्ता है, तो उसका मृत्यु कौन है ?]

यदि मौत का फ़रिश्ता है, तो उस फ़रिश्ते को मारनेवाला कौन-सा मृत्यु है? यदि वह नित्य है, तो अमरपन में ख़ुदा के बराबर 'शरीक' हुआ। एक फ़रिश्ता एक समय में यदि दोज़ख़ भरने के लिये जीवों को शिक्षा नहीं करता

[विना पाप किए दोजख में भेजना अन्याय है]

और उनको विना पाप किये अपनी मर्ज़ी से दोज़ख़ भरके उनको दुःख देकर तमाशा देखता है, तो वह ख़ुदा महापापी, अन्यायकारी और दयाहीन है। ऐसी बातें जिस पुस्तक में हों, न वह विद्वान् [कृत] और न ईश्वरकृत है। और जो दया-न्यायहीन है वह ईश्वर भी कभी नहीं हो सकता॥१३४॥

[लड़ाई से न भागो; नबी की बीवियों को डरावा]

१३५. कह कि कभी न लाभ देगा भागना तुमको, जो भागो तुम मृत्यु वा क़त्ल से।१६। ऐ बीबियो नबी की! जो कोई आवे तुममें से निर्लज्जता प्रत्यक्ष के, दुगुणा किया जायेगा वास्ते उसके अज़ाब, और है यह ऊपर अल्लाह के सहल।३०।

मं० ५। सि० २१। सू० ३३। आ० १६। ३०॥

[लड़ाई कराना शिष्टजनों का काम नहीं]

समीक्षक—यह मुहम्मद साहब ने इसलिये लिखा-लिखवाया होगा कि लड़ाई में कोई न भागे, हमारा विजय होवे, मरने से भी न डरे, ऐश्वर्य बढ़े, मज़हब बढ़ा लेवें।

[नबी के घरेलू मामलों में खुदा का पक्षपात]

और यदि **बीबी निर्लज्जता से पैग़म्बर के सामने न आवे, तो क्या पैग़म्बर साहब निर्लज्ज होकर उनके सामने जावें? बीबियों पर अज़ाब हो और पैग़म्बर साहब पर अज़ाब न होवे, यह किस घर का न्याय है?**॥१३५॥

[नबी की बीवियों पर पाबन्दी; बेटे की औरत से निकाह]

१३६. और अटकी रहो बीच घरों अपने के, ...और आज्ञापालन करो अल्लाह और रसूल की, सिवाय इनके नहीं।३३। बस, जब अदा कर ली ज़ैद ने हाजत उससे, ब्याह दिया हमने तुझसे उसको, तौकि न होवे ऊपर ईमानवालों के तंगी बीच बीबियों से लेपालकों उनके के, जब अदा कर लें उनसे हाजत, और है आज्ञा ख़ुदा की की गई।३७। नहीं है ऊपर नबी के कुछ तंगी बीच उस वस्तु के.....।३८। नहीं है मुहम्मद बाप किसी मर्द का....।४०। और हलाल की स्त्री ईमानवाली जो देवे विना महर के जान अपनी वास्ते नबी के.....।५०। ढील देवे तू जिसको चाहे उनमें से और जगह देवे तरफ़ अपनी जिसको चाहे, नहीं पाप ऊपर तेरे....।५१। ऐ लोगो ! जो ईमान लाये हो मत प्रवेश करो घरों में पैग़म्बर के....।५३।

मं० ५। सि० २२। सू० ३३। आ० ३३। ३७। ३८। ४०। ५०। ५१। ५३॥

[स्त्रियों को घर में बन्द रखना अन्याय है]

समीक्षक—यह बड़े अन्याय की बात है कि स्त्री घर में क़ैद के समान रहे और पुरुष खुल्ले रहें। क्या स्त्रियों का चित्त शुद्ध वायु, शुद्ध देश में भ्रमण करना, सृष्टि के अनेक पदार्थ देखना नहीं चाहता होगा? इसी अपराध से मुसलमानों के लड़के विशेषकर सैलानी और विषयी होते हैं।

[अपनी स्वार्थसिद्धि के लिये खुदा को भी साथ ले लिया]

अल्लाह और रसूल की एक अविरुद्ध आज्ञा है वा भिन्न-भिन्न =विरुद्ध? यदि एक है, तो 'दोनों की आज्ञा पालन करो' कहना व्यर्थ है, और जो

भिन्न-भिन्न=विरुद्ध है, तो एक सच्ची और दूसरी झूठी! एक ख़ुदा, दूसरा शैतान हो जायगा, और 'शरीक' भी होगा। वाह **'क़ुरान'** के ख़ुदा और पैग़म्बर तथा **'कुरान'** को! जिसको दूसरे का मतलब नष्टकर अपना मतलब सिद्ध करना इष्ट हो, ऐसी लीला अवश्य रचता है।

[बेटे की स्त्री को अपनी पत्नी बनाना अधर्म]

इससे यह भी सिद्ध हुआ कि मुहम्मद साहब बड़े विषयी थे। यदि न होते तो लेपालक बेटे (जैद) की स्त्री को, जो पुत्र की स्त्री थी, अपनी स्त्री क्यों कर लेते? और फिर ऐसी बातें करनेवाले का ख़ुदा भी पक्षपाती बना और अन्याय को न्याय ठहराया। भला, कोई भी मनुष्यों में से जो जंगली भी होगा, वह भी बेटे की स्त्री को छोड़ता है।

[नबी किसी का बाप न था, तो ज़ैद किसका बेटा था ?]

और यह कितनी बड़ी अन्याय की बात है कि नबी को विषयासक्ति की लीला करने में कुछ भी अटकाव नहीं होना! यदि नबी किसी का बाप न था तो ज़ैद 'लेपालक-बेटा' किस का था? और [उसको मुहम्मद का बेटा] क्यों लिखा? यह उसी मतलब की बात है कि जिससे बेटे की स्त्री को भी घर में डालने से पैग़म्बर साहब न बचे, अन्य से क्योंकर बचे होंगे? ऐसी चतुराई से भी बुरी बात में निन्दा होनी कभी नहीं छूट सकती।

[अनेक औरतें रखना दुःखदायी]

क्या जो कोई पराई स्त्री भी नबी से प्रसन्न होकर विवाह करना चाहे, तो वह भी हलाल है? और यह महाअधर्म की बात है कि नबी तो जिस स्त्री को चाहे छोड़ देवे और मुहम्मद साहेब की स्त्रीलोग यदि पैग़म्बर अपराधी भी हो, तो कभी न छोड़ सकें!

[व्यभिचार कोई भी करे, वह बुरा है]

जैसे पैग़म्बर के घरों में अन्य कोई व्यभिचार-दृष्टि से प्रवेश न करें, तो वैसे पैग़म्बर साहब भी किसी के घर में प्रवेश न करें ! क्या नबी जिस किसी के घर में चाहें निश्शङ्क प्रवेश करें और माननीय भी रहें?

[कुरान की बातें युक्ति-शून्य और धर्मविरुद्ध हैं]

भला, कौन ऐसा 'हृदय का अन्धा' है कि जो इस **'क़ुरान'** को ईश्वरकृत और मुहम्मद साहब को पैग़म्बर और **'कुरानोक्त'** ईश्वर को परमेश्वर मान सके? बड़े आश्चर्य की बात है कि ऐसे युक्तिशून्य, धर्मविरुद्ध बातों से युक्त इस मत को अरबदेशनिवासी-आदि मनुष्यों ने क्योंकर मान लिया?॥१३६॥

[रसूल को दुःख न दो; उसकी बीवियों से निकाह करना पाप]

१३७. ....नहीं योग्य वास्ते तुम्हारे यह कि दुःख दो रसूल को, यह कि निकाह करो बीबियों उसकी को पीछे उसके कभी, निश्चय यह है समीप अल्लाह के बड़ा पाप।५३। निश्चय जो लोग कि दुःख देते हैं अल्लाह को और रसूल उसके को, लानत की है उन को अल्लाह ने।५७। और वे लोग कि दुःख देते हैं मुसलमानों को और मुसलमान औरतों को विना इसके बुरा किया है उन्होंने, बस निश्चय उठाया उन्होंने बोहतान अर्थात् झूठ और प्रत्यक्ष पाप।५८। लानत मारे जावें, जहां पाये जावें पकड़े जावें, क़त्ल किये जावें, खूब मारा जाना।६१। ऐ रब हमारे ! दे उन को द्विगुणा अज़ाब से, और लानत से बड़ी लानत कर।६८।

मं० ५। सि० २२। सू० ३३। आ० ५३। ५७। ५८। ६१। ६८॥

[सबको ही दुःख देने की मनाई क्यों न की ?]

समीक्षक—वाह! क्या ख़ुदा अपनी खुदाई को धर्म के साथ दिखला रहा है! जैसे रसूल को दुःख देने का निषेध करना तो ठीक था, वैसे दूसरे को दुःख देने में रसूल को भी रोकना योग्य था, सों क्यों न रोका? क्या किसी के दुःख देने से अल्लाह भी दुःखी हो जाता है? यदि ऐसा है तो वह ईश्वर ही नहीं हो सकता। क्या अल्लाह और रसूल को दुःख देने का निषेध करने से यह नहीं सिद्ध होता कि अल्लाह और रसूल जिसको चाहें दुःख देवें?

[केवल मुसलमानों को दुःख न दो, की बात पक्षपात]

जैसे मुसलमानों और मुसलमानों की स्त्रियों को दुःख देना बुरा है तो [वैसे] इनसे अन्य मनुष्यों को दुःख देना भी अवश्य बुरा है॥ क्या अन्य सबको दुःख देना चाहिये? जो ऐसा माने, तो उसकी यह बात भी पक्षपात की है।

[अन्य लोगों को मारने की बात महा अधर्म]

वाह ग़दर मचाने वाले ख़ुदा और नबी! जैसे ये निर्दयी हैं वैसे निर्दयी संसार में बहुत थोड़े होंगे। जैसा यह कि **'अन्य लोग जहां पाये जावें, मारे जावें, पकड़े जावें'**, लिखा है [वैसे] ही मुसलमानों पर कोई ऐसी ही आज्ञा देवे तो मुसलमानों को यह बात बुरी लगेगी वा नहीं? वाह ! क्या हिंसक पैग़म्बर आदि हैं कि जो उन्होंने परमेश्वर से प्रार्थना करके अपने से दूसरों को दुगुणा दुःख देने के लिये प्रार्थना करना लिखा है! यह भी पक्षपात, मतलबसिन्धुपन और महा-अधर्म की बात है। इसी से अब तक

भी मुसलमान लोगों में से बहुत से शठ लोग ऐसा ही कर्म करने से नहीं डरते। **यह ठीक है कि सुशिक्षा के विना मनुष्य पशु के समान रहता है॥१३७॥**

[मुर्दों को जिलाना; अविनाशी घर]

१३८. और अल्लाह वह पुरुष है कि भेजता है हवाओं को; बस, उठाती हैं बादलों को; बस, हांक लेते हैं तरफ़ शहर मुर्दे की; बस, जीवित किया हमने साथ उसके पृथिवी को पीछे मृत्यु उसकी के, इसी प्रकार क़ब्रों में से निकालना है।९। जिसने उतारा बीच घर सदा रहने के दया अपनी से, नहीं लगती हमको बीच उसके मेहनत और नहीं लगती बीच उसके मांदगी।३५।

मं० ५। सि० २। सू० ३५। आ० ९। ३५॥

[मुर्दों को जिन्दा करने की बात अवैज्ञानिक और असम्भव]

समीक्षक—वाह! क्या 'फ़िलासफ़ी' है ख़ुदा की! भेजता है वायु को, वह उठाता फिरता है बद्दलों को! और ख़ुदा उससे मुर्दों को जिलाता फिरता है! यह बात ईश्वर सम्बन्धी कभी नहीं हो सकती, क्योंकि ईश्वर का काम निरन्तर एक-सा होता रहता है।

[अनेक स्त्रियों से संभोग दुःखदायी; नित्य घर कैसे ?]

जो घर होंगे वे विना बनावट के नहीं हो सकते और जो बनावट के हैं वे सदा नहीं रह सकते। **जिसका शरीर है वह परिश्रम के विना दुःखी होता है और शरीरवाला रोगी हुए विना कभी नहीं बचता।** जो एक स्त्री से समागम करता है वह विना रोग के नहीं बचता, तो जो बहुत स्त्रियों से विषयभोग करता है, उसकी क्या ही दुर्दशा होती होगी?

इसलिये मुसलमानों का बहिश्त भी सुखदायक सदा नहीं हो सकता॥१३८॥

[खुदा द्वारा कुरान की कसम]

१३९. कसम है 'क़ुरान' दृढ़ की।२। निश्चय तू भेजे हुओं से है।३। ऊपर मार्ग सीधे के।४। उतारा है ग़ालिब दयालु ने।५।

मं० ५। सि० २३। सू० ३६। आ० २। ३। ४। ५॥

[खुदा कुरान की कसम क्यों खाता है]

समीक्षक—अब देखिये, यह **'क़ुरान'** ख़ुदा का बनाया होता तो वह इस की सौगंद क्यों खाता? यदि नबी ख़ुदा का भेजा होता, तो लेपालक बेटे की स्त्री पर मोहित क्यों होता?

[कुरान-प्रोक्त मार्ग सीधा मार्ग नहीं है]

यह कथनमात्र है कि **'क़ुरान'** के माननेवाले सीधे मार्ग पर हैं, **क्योंकि सीधा मार्ग वही होता है जिसमें सत्य मानना, सत्य बोलना, सत्य करना, पक्षपातरहित-न्याय-धर्म का आचरण करना आदि हैं, और इनसे विपरीत का त्याग करना।** सो न **'क़ुरान'** में, न मुसलमानों में और न इनके ख़ुदा में ऐसा स्वभाव है।

[महाविद्वान् और गुणी ही सब पर प्रबल हो सकता है]

यदि सब पर प्रबल पैग़म्बर मुहम्मद साहब होते, तो सबसे अधिक विद्यावान् और शुभगुणयुक्त क्यों न होते? इसलिये जैसे कूंजड़ी अपने बेरों को खट्टा नहीं बतलाती, वैसी यह बात भी है॥१३९॥

[कब्रों से निकलकर भागना; कहनेमात्र से सृष्टि रचना]

१४०. और फूंका जावेगा बीच सूर के, बस नागहां, व कब्रों में से तरफ़ मालिक अपने की दौड़ेंगे।५१। ....और गवाही देंगे पाँव उनके साथ उस वस्तु के कि थे कमाते।६५। सिवाय इसके नहीं कि आज्ञा उसकी, जब चाहे उत्पन्न करना किसी वस्तु को, यह कि कहता वास्ते उसके कि 'हो जा', बस हो जाता है।८२।

मं० ५। सि० २३। सू० ३६। आ० ५१। ६५। ८२॥

[क्या पैर गवाही दे सकते हैं ?; किसे आज्ञा दी, और कौन बना ?]

समीक्षक—अब सुनिये ऊटपटांग बातें! [क्या] पग कभी गवाही दे सकते हैं? ख़ुदा के सिवाय उस समय कौन था जिसको आज्ञा दी? किसने सुनी? और कौन बन गया? यदि [आज्ञा] न थी तो यह बात झूठी, और जो थी तो वह बात कि 'जो सिवाय ख़ुदा के कुछ चीज नहीं थी और ख़ुदा ने सब कुछ बना दिया', वह झूठी हुई॥१४०॥

[बहिश्त में शराब और बीवियाँ; लूत को मुक्ति]

१४१. फिराया जावेगा उनके ऊपर प्याला शराब शुद्ध का।४५। सफ़ेद, मज़ा देने वाली, वास्ते पीनेवालों के।४६। समीप उनके बैठी होंगी नीचे आँख रखनेवालियां, सुन्दर आँखोंवालियां।४८। मानो कि वे अण्डे हैं छिपाये हुए।४९। क्या बस हम नहीं मरेंगे।५८। और अवश्य लूत निश्चय पैग़म्बरों से था।१३३। जब कि मुक्ति दी हमने उसको और लोगों उसके को सबको।१३४। परन्तु एक बुढ़िया पीछे रहनेवालों में है।१३५। फिर मारा हमने औरों को।१३६।

मं० ६। सि० २३। सू० ३७। आ० ४५। ४६। ४८। ४९। ५८। १३३। १३४। १३५। १३६॥

[स्वर्ग में शराब और बीवियों के कारण दुर्गति]

समीक्षक—क्यों जी! यहां तो मुसलमान लोग शराब को बुरा बतलाते हैं परन्तु इनके स्वर्ग में तो नदियां ही नदियां बहती हैं! **इतना तो अच्छा है कि यहां किसी प्रकार मद्य पीना तो छुड़ाया है,** परन्तु यहां के बदले वहां इनके स्वर्ग में बड़ी खराबी है! मारे स्त्रियों के वहां किसी का चित्त स्थिर नहीं रहता होगा! और बड़े-बड़े रोग भी होते होंगे! यदि शरीरवाले होंगे तो अवश्य मरेंगे और जो शरीरवाले न होंगे, तो भोग-विलास ही न कर सकेंगे। फिर उनका स्वर्ग में जाना व्यर्थ है।

[लूत जैसा शराबी और पतित भी पैगम्बर ?]

यदि लूत को पैग़म्बर मानते है तो जो **'बाइबल'** में लिखा है कि उससे उसकी लड़कियों ने समागम करके दो लड़के पैदा किये, इस बात को भी मानते हो वा नहीं? जो मानते हो, तो ऐसे को पैग़म्बर मानना व्यर्थ है।

[लूत जैसों को मुक्ति का दाता खुदा भी वैसा ही है]

और जो ऐसे और ऐसे के संगियों को खुदा मुक्ति देता है तो वह ख़ुदा भी वैसा ही है, क्योंकि बुढ़िया की कहानी कहनेवाला और पक्षपात से दूसरों को मारनेवाला ख़ुदा कभी नहीं हो सकता। ऐसा ख़ुदा मुसलमानों के ही घर में रह सकता है, अन्यत्र नहीं॥१४१॥

[बहिश्त का दृश्य; शैतान ने खुदा का हुक्म न माना]

१४२. बहिश्तें हैं सदा रहने की, खुले हुए हैं दर उनके वास्ते उनके।५०। तकिये किये हुए बीच उनके, मंगावेंगे बीच इसके मेवे

और पीने की वस्तु।५१। और समीप होंगी उनके, नीचे रखनेवालियां दृष्टि और दूसरों से सम-आयु।५२। बस, सिज़्दा किया फ़रिश्तों ने सबने।७३। परन्तु शैतान ने न माना, अभिमान किया और था काफ़िरों से।७४। ऐ शैतान! किस वस्तु ने रोका तुझको, यह कि सिज़्दा करे वास्ते उस वस्तु के कि बनाया मैंने साथ दोनों हाथ अपने के, क्या अभिमान किया तूने वा था तू बड़े अधिकारवालों से?।७५। कहा, कि मैं अच्छा हूँ उस वस्तु से, उत्पन्न किया तूने मुझको आग से, उसको मट्टी से।७६। कहा, बस निकल इन आसमानों में से, बस, निश्चय तू चलाया गया है।७७। निश्चय तेरे लानत है मेरी दिन जज़ा तक।७८। कहा, "ऐ मालिक मेरे ! ढील दे उस दिन तक कि उठाये जावेंगे मुर्दे।७९।" कहा कि "बस, निश्चय तू ढील दिये गयों से है।८०। उस दिन समय ज्ञात तक।८१।" कहा कि "बस, क़सम है प्रतिष्ठा तेरी की, अवश्य गुमराह करूंगा उनको मैं इकट्ठे।८२।"

मं० ६। सि० २३। सू० ३८। आ० ५०। ५१। ५२। ७३-८२॥

[बाग-बगीचे आदि अनित्य होने से बहिश्त भी अनित्य]

समीक्षक—यदि वहां, जैसे कि **'क़ुरान'** में बाग़-बगीचे, नहरें, मकान-आदि लिखे हैं, वैसे हैं, तो वे न सदा से थे, न सदा रह सकते हैं; क्योंकि जो संयोग से पदार्थ होता है वह संयोग के पूर्व न था, अवश्यम्भावी वियोग के अन्त में न रहेगा। जब वह बहिश्त ही न रहेगा तो उसमें रहनेवाले सदा क्योंकर रह सकते हैं? क्योंकि 'गद्दी, तकिये, मेवे और पीने के पदार्थ वहां मिलेंगे' लिखा है। इससे यह सिद्ध होता है कि जिस समय मुसलमानों का मज़हब चला, उस समय अरब देश विशेष

धनाढ्य न था, इसीलिये मुहम्मद साहब ने तकिये आदि की कथा सुनाकर ग़रीबों को अपने मत में फसा लिया।

[जहाँ स्त्रियाँ हैं, वहाँ निरन्तर सुख कभी नहीं]

और जहां स्त्रियां हैं वहां निरन्तर सुख कहां? वे स्त्रियां वहां कहां से आई हैं? अथवा बहिश्त की रहीस हैं? यदि आई हैं तो जावेंगी और जो वहीं की रहीस हैं तो क़यामत के पूर्व क्या करती थीं? क्या निकम्मी अपनी उम्र को बहा रही थीं?

[खुदा शैतान का कुछ भी न बिगाड़ सका]

अब देखिये ख़ुदा का तेज कि जिसका हुक्म अन्य सब फ़रिश्तों ने माना और आदम साहब को नमस्कार किया और शैतान ने न माना!

[आदम को बनानेवाला खुदा दो हाथवाला मनुष्य था]

खुदा ने शैतान से कहा कि 'मैंने तुझको अपने दोनों हाथों से बनाया, तू अभिमान न कर।' इससे यह सिद्ध होता है कि 'क़ुरान' का ख़ुदा दो हाथ वाला मनुष्य था। इसलिये वह व्यापक वा सर्वशक्तिमान् कभी नहीं हो सकता। और शैतान ने सत्य कहा कि मैं आदम से उत्तम हूं, इस पर ख़ुदा ने गुस्सा क्यों किया?

[क्या आसमान ही में खुदा का घर है, पृथिवी में नहीं ?]

क्या आसमान ही ख़ुदा का घर है, पृथिवी पर नहीं? तो काबे को ख़ुदा का घर प्रथम क्यों लिखा? भला, परमेश्वर अपने में से वा सृष्टि में से अलग कैसे निकाल सकता है? और वह सृष्टि सब परमेश्वर की है। इससे स्पष्ट विदित हुआ कि **'क़ुरान'** का खुदा बहिश्त का ज़िम्मेदार था।

[खुदा और शैतान में वाद-विवाद]

खुदा ने उसको लानत=धिक्कार दिया, और क़ैद कर लिया। शैतान ने कहा कि 'हे मालिक! मुझको क़यामत तक छोड़ दे।' खुदा ने ख़ुशामद से छोड़ दिया क़यामत के दिन तक। जब शैतान छूटा तो ख़ुदा से कहता है कि 'अब मैं खूब बहकाऊंगा और ग़दर मचाऊंगा।' तब ख़ुदा ने कहा कि 'जितनों को तू बहकावेगा, मैं उनको दोज़ख में डाल दूंगा और तुझ को भी।'

[शैतान को बहकानेवाला खुदा स्वयं शैतान]

अब सज्जन लोगो विचारिये कि शैतान को बहकानेवाला ख़ुदा है वा आप से वह बहका? यदि खुदा ने बहकाया, तो वह शैतान का शैतान ठहरा। यदि शैतान स्वयं बहका, तो अन्य जीव भी स्वयं बहकेंगे, शैतान की जरूरत नहीं!

[जो स्वयं चोरी कराके दण्ड देवे, वह महा अन्यायी]

और जिससे इस बाग़ी शैतान को ख़ुदा ने खुला छोड़ दिया, इससे विदित हुआ कि वह भी शैतान का शरीक अधर्म कराने में हुआ। यदि स्वयं चोरी कराके दण्ड देवे, तो उसके अन्याय का कुछ भी पारावार नहीं॥१४२॥

[पापों का क्षमा होना; एक साथ सब का फैसला]

१४३. ....अल्लाह क्षमा करता है पाप सारे, निश्चय वह है क्षमा करनेवाला दयालु।५३। ....और पृथिवी सारी मूठी में है उसकी दिन क़यामत के, और आसमान लपेटे हुए हैं बीच दाहिने हाथ उसके के....।६७। और चमक जावेगी पृथिवी साथ प्रकाश मालिक अपने

के और रक्खे जावेंगे कर्मपत्र और लाया जावेगा पैग़म्बरों को और गवाहों को और फैसला किया जावेगा।६९।

मं० ६। सि० २४। सू० ३९। आ० ५३। ६७। ६९॥

[पाप क्षमा करने से अपराधों का बोलबाला होगा]

समीक्षक—यदि समग्र पापों को खुदा क्षमा करता है तो जानो सब संसार को पापी बनाता है और दयाहीन है, **क्योंकि एक दुष्ट पर दया और क्षमा करने से वह अधिक दुष्टता करेगा और बहुत धर्मात्माओं को दुःख पहुँचावेगा। यदि किञ्चित् भी अपराध क्षमा किया जावे, तो अपराध ही अपराध जगत् में छा जावे।**

[पैगम्बरों के भरोसे खुदा न्याय करता है, तो वह असमर्थ है]

क्या परमेश्वर अग्निवत् प्रकाश वाला है? और कर्मपत्र कहां जमा रहते हैं और कौन लिखता है? यदि पैग़म्बरों और गवाहों के भरोसे ख़ुदा न्याय करता है, तो वह असर्वज्ञ और असमर्थ है।

[न्याय होगा, तो क्षमा करना वा दिलों पर मोहर लगाना अन्याय]

यदि वह अन्याय नहीं करता, न्याय ही करता है, तो कर्मों के अनुसार करता होगा। वे कर्म पूर्व और वर्तमान जन्मों के हो सकते हैं, तो फिर क्षमा करना, **'दिलों पर ताला लगाना'** और शिक्षा न करना, शैतान से बहकवाना, दौरासुपुर्द रखना केवल अन्याय है॥१४३॥

[खुदा की ओर से कुरान का उतारना; तौबा से पाप क्षमा]

१४४. उतारना किताब का अल्लाह ग़ालिब जाननेवाले की ओर से है।२। क्षमा करनेवाला पापों का और स्वीकार करनेवाला तौबा का.....।३।

मं० ६। सि० २४। सू० ४०। आ० २। ३॥

[भोले लोगों को फँसाने के लिए खुदा का नाम साथ में]

समीक्षक—यह बात इसलिये है कि भोले लोग अल्लाह के नाम से इस पुस्तक को मान लेवें कि जिसमें थोड़ा-सा सत्य छोड़ असत्य भरा है और वह सत्य भी असत्य के साथ मिलकर बिगड़ा-सा है।

[इसी से मुसलमान पाप करने में कम डरते हैं]

इसीलिये **'क़ुरान'** और **'क़ुरान'** का ख़ुदा और इसको माननेवाले पाप बढ़ानेहारे और पाप करने-करानेवाले हैं, क्योंकि **'पाप का क्षमा करना' अत्यन्त अधर्म है। किन्तु इसी से मुसलमान लोग पाप और उपद्रव करने में कम डरते हैं**॥१४३॥

[सात आसमानों की दो दिन में रचना; आँख आदि की गवाही]

१४५. बस, नियत किया उसको सात आसमान बीच दो दिन के, और डाल दिया हमने बीच उनके काम उनका....।१२। यहाँ तक कि जब जावेंगे उसके पास, साक्ष्य देंगे ऊपर उनके, कान उनके और आँखें उनकी और चमड़े उनके, उनके कर्म से।२०। और कहेंगे वास्ते चमड़े अपने के क्यों साक्षिता दी तूने ऊपर हमारे? कहेंगे कि बुलाया है हमको अल्लाह ने जिसने बुलाया हर वस्तु को।२१। ....अवश्य जिलानेवाला है मुर्दों को....।३९।

मं० ६। सि० २४। सू० ४१। आ० १२। २०। २१। ३९॥

[वह क्या सर्वशक्तिमान्, जिससे सात आसमान दो दिन में बने ?]

समीक्षक—वाह जी वाह मुसलमानो! तुम्हारा ख़ुदा जिसको तुम सर्वशक्तिमान् मानते हो, तो वह सात आसमानों को दो दिन में बना सका, और जो सर्वशक्तिमान् है वह क्षणमात्र में सबको बना सकता है।

[जड़ कान आँख आदि क्या गवाही देंगे ?]

भला कान, आंख और चमड़े को ईश्वर ने जड़ बनाया है, वे साक्ष्य कैसे दे सकेंगे? यदि साक्ष्य दिलावे, तो उसने प्रथम जड़ क्यों बनाया? और अपना पूर्वापर काम नियमविरुद्ध क्यों किया?

[जीवों को अपने चमड़ों से सफेद पूछना झूठ]

एक इससे भी बढ़के मिथ्या बात यह कि जब जीवों पर साक्षिता दी, तब वे जीव अपने-अपने चमड़े से पूछने लगे कि 'तूने हमारे पर साक्षिता क्यों दी? चमड़ा बोला कि खुदा ने दिलायी, मैं क्या करूं!' भला, यह बात कभी हो सकती है? जैसे कोई कहे कि 'वन्ध्या के पुत्र का मुख मैंने देखा', यदि पुत्र है तो वन्ध्या क्यों? जो वन्ध्या है तो उसके पुत्र ही होना असम्भव है। इसी प्रकार की यह भी मिथ्या बात है।

[मुर्दा कभी जीवित नहीं हो सकता]

यदि वह मुर्दों को जिलाता है, तो प्रथम मारा ही क्यों? क्या आप भी मुर्दा हो सकता है वा नहीं? यदि नहीं हो सकता, तो मुर्दापन को बुरा क्यों समझता है?

[जीवों का शीघ्र न्याय क्यों न किया ?]

और क़यामत की रात तक मृतक जीव किस मुसलमान के घर में रहे? और खुदा ने विना अपराध दौरासुपुर्द क्यों रक्खा? शीघ्र न्याय क्यों न किया? ऐसी-ऐसी बातों से ईश्वरता में बट्टा लगता है॥१४५॥

[सब कुछ खुदा की मर्जी से]

१४६. वास्ते उसके कुंजियां हैं आसमानों की और पृथिवी की, खोलता है भोजन जिसके वास्ते चाहता है और तंग करता है....।१२। उत्पन्न करता है जो कुछ चाहता है और देता है जिसको चाहे बेटियां और जिसको चाहे बेटे।४९। वा मिला देता है उनको बेटे-बेटियां और कर देता है जिसको चाहे बांझ....।५०। और नहीं है शक्ति किसी आदमी की कि बात करे उससे अल्लाह, परन्तु जी (दिल) में डालकर, वा पीछे परदे* के से, वा भेजे फ़रिश्ता पैग़ाम लानेवाला।५१।

मं० ६। सि० २५। सू० ४२। आ० १२। ४९। ५०। ५१॥

[ताले और कुञ्जियों को खुदा को क्या जरूरत थी ?]

समीक्षक—खुदा के पास कुंजियों का भण्डार भरा होगा, क्योंकि सब ठिकाने के ताले खोलने होते होंगे! यह लड़केपन की बात है।

[विना पाप-पुण्य के फल देना अन्याय]

क्या जिसको चाहता है उसको विना पुण्य कर्म के ऐश्वर्य देता है और [विना पाप के] तंग करता है? यदि ऐसा है तो वह बड़ा अन्यायकारी है।

[बेटे-बेटियाँ देने की बात औरतों को फँसाने की चाल]

अब देखिये **'क़ुरान'** बनाने वाले की चतुराई कि जिससे स्त्रीजन भी मोहित होके फसें। यदि जो कुछ चाहता है उत्पन्न करता है, तो दूसरे ख़ुदा को उत्पन्न कर सकता है वा नहीं? यदि नहीं कर सकता, तो सर्वशक्तिमत्ता यहां पर अटक गई। भला, मनुष्यों को तो जिसको चाहे बेटे-बेटियां ख़ुदा देता है परन्तु मुरगी, मच्छी, सुअरी आदि जिनके बहुत बेटे-बेटियां होती हैं, कौन देता है? और स्त्री-पुरुष के समागम विना क्यों नहीं देता? किसी को अपनी इच्छा से बांझ रखके दुःख क्यों देता है?

[तब तो फरिश्ते और पैगम्बर खूब स्वार्थ साधते होंगे]

वाह! क्या खुदा तेजस्वी है कि उसके सामने कोई बात ही नहीं कर सकता! परन्तु उसने पहले कहा है कि परदा डालके बात कर सकता है वा फ़रिश्ते लोग ख़ुदा से बात करते हैं अथवा पैग़म्बर। जो ऐसी बात है, तो फ़रिश्ते और पैग़म्बर खूब अपना मतलब [सिद्ध] करते होंगे!

[खुदा सर्वव्यापक है, तो परदे से बात करना व्यर्थ]

यदि कोई कहे ख़ुदा सर्वज्ञ, सर्वव्यापक है, तो 'परदे से बात करना' अथवा डाक के तुल्य खबर मंगाके जानना-लिखना व्यर्थ है। और जो ऐसा ही है, तो वह ख़ुदा ही नहीं, किन्तु कोई चालाक मनुष्य होगा। इसलिये यह **'क़ुरान'** ईश्वरकृत कभी नहीं हो सकता॥१४६॥

---

* इस आयत के भाष्य **'तफ़सीरहुसैनी'** में लिखा है कि "मुहम्मद साहब दो परदों में थे और खुदा की आवाज सुनी। एक परदा ज़री का था, दूसरा श्वेत मोतियों का और दोनों परदों के बीच में सत्तर वर्ष चलने योग्य

मार्ग था?" बुद्धिमान् लोग इस बात को विचारें कि यह खुदा है वा परदे की ओट से बात करनेवाली स्त्री? इन लोगों ने तो ईश्वर की ही दुर्दशा कर डाली। कहाँ वेद तथा उपनिषदादि सद्ग्रन्थों में प्रतिपादित शुद्ध परमात्मा और कहाँ कुरानोक्त परदे की ओट से बात करनेवाला खुदा! सच तो यह है कि अरब के लोग अविद्वान् थे, उत्तम बात लाते किसके घर से?

[ईसा का प्रमाण के साथ आना]

१४७. और जब आया ईसा साथ प्रमाण प्रत्यक्ष के.....।६३।

मं० ६। सि० २५। सू० ४३। आ० ६३॥

[फिर कुरान इंलील में परस्पर विरोध क्यों ?]

समीक्षक—यदि ईसा भी भेजा हुआ ख़ुदा का है तो उसके उपदेश से विरुद्ध **'क़ुरान'** ख़ुदा ने क्यों बनाया? और **'क़ुरान'** से विरुद्ध **'इंजील'** क्यों की? इसीलिये ये किताबें ईश्वरकृत नहीं हैं॥१४७॥

[दोजख में घसीटना; विवाह कराना]

१४८. पकड़ो उसको, बस, घसीटो उसको बीचों-बीच दोज़ख़ के।४७। इसी प्रकार रहेंगे और विवाह देंगे उनको साथ गोरियों, अच्छी आंखोंवालियों के।५४।

मं० ६। सि० २५। सू० ४४। आ० ४७। ५४॥

[ये काम तो मनुष्य के हैं, खुदा इन्हें कैसे कर सकता है ?]

समीक्षक—वाह! क्या ख़ुदा न्यायकारी होकर पकड़वाता और घसीटवाता है प्राणियों को? जब मुसलमानों का ख़ुदा ही ऐसा है तो

उसके उपासक मुसलमान अनाथ-निर्बलों को पकड़ें-घसीटें तो इसमें क्या आश्चर्य है!! और वह संसारी मनुष्यों के समान विवाह भी कराता है, जानो कि मुसलमानों का पुरोहित ही है॥१४८॥

[काफिरों की गर्दन काटो; बहिश्त में क्या कुछ है]

१४९. बस, जब तुम मिलो उन लोगों से कि काफ़िर हुए, बस, मारो गर्दन उनकी, यहां तक कि जब चूर कर दो उनको, बस, दृढ़ करो क़ैद करना....।४। और बहुत बस्तियां हैं कि वे बहुत कठिन थीं शक्ति में बस्ती तेरी से, जिसने निकाल दिया तुझको, मारा हमने उनको; बस, न कोई हुआ सहाय्य देनेवाला उनका।१३। तारीफ़ उस बहिश्त की कि प्रतिज्ञा किये गये हैं परहेज़गार, बीच उसके नहरें हैं बिन बिगड़े पानी की, और नहरें हैं दूध की कि नहीं बदला मज़ा उनका, और नहरें हैं शराब की मज़ा देनेवाली वास्ते पीनेवालों के, और नहरें हैं शहद साफ़ किये गये की, और वास्ते उनके बीच उसके मेवे हैं, प्रत्येक प्रकार से दान मालिक उनके से।१५।

मं० ६। सि० २६। सू० ४७। आ० ४। १३। १५॥

[काफिरों को मारने की बातें अशान्ति फैलानेवाली हैं]

समीक्षक—इसी से **यह 'क़ुरान', ख़ुदा और मुसलमान ग़दर मचानेवाले, सबको दुःख देने वाले [और] अपना मतलब साधनेवाले दयाहीन हैं।** जैसा यहां लिखा है वैसा ही दूसरा=कोई दूसरे मत-वाला मुसलमानों पर करे, तो मुसलमानों को वैसा ही दुःख, जैसा कि अन्य को देते हैं, हो वा नहीं?

[मुहम्मद साहब के विरोधियों को मारना पक्षपात]

और खुदा बड़ा पक्षपाती है कि जिन्होंने मुहम्मद साहब को [अपनी बस्तियों से] निकाल दिया, उनको ख़ुदा ने मारा।

[उस बहिश्त में यहाँ से विशेष कुछ नहीं]

भला, जिसमें शुद्ध पानी, दूध, मद्य और शहद की नहरें हैं, वह संसार से अधिक हो सकता है। और दूध की नहरें कभी नहीं हो सकती, क्योंकि वह थोड़े समय में बिगड़ जाता है। इसीलिये बुद्धिमान् लोग **'क़ुरान'** के मत को नहीं मानते॥१४९॥

[पृथिवी का हिलाना, पहाड़ का उड़ाना; बहिश्त में क्या मिलेगा ?]

१५०. जब कि हिलाई जावेगी पृथिवी हिलाये जाने कर।४। उड़ाये जावेंगे पहाड़ उड़ाये जाने कर।५। बस हो जावेंगे भुनगे टुकड़े-टुकड़े।६। बस, साहब दाहनी ओर वाले, क्या हैं साहब दाहिनी ओर के।८। और बाईं ओर वाले क्या हैं बाईं ओर वाले।९। ऊपर पलंग सोने के तारों से बुने हुए हैं। तकिये किये हुए हैं ऊपर उनके आमने-सामने।१५। और फिरेंगे ऊपर उनके लड़के सदा रहनेवाले।१६। साथ आबखोरों के, और आफ़ताबों के और प्यालों के शराब साफ़ से।१७। नहीं माथा दुखाये जावेंगे उससे और न विरुद्ध बोलेंगे।१८। और मेवे उस क़िस्म के कि पसन्द करें। और गोश्त ज़ानवर-पक्षियों के उस क़िस्म से कि पसन्द करें।१९। और वास्ते उनके औरतें हैं अच्छी आंखोंवालियां।२०। मानिन्द मोतियों छिपाये हुओं की।२१। और बिछौने बड़े।२२। निश्चय हमने उत्पन्न किया है औरतों को एक प्रकार का उत्पन्न करना है।२३। बस किया है हमने

उनको कुमारी।३४। सुहागवालियां बराबर अवस्थावालियां।३५। बस, भरनेवाले हो उससे पेटों को।३६। बस, क़सम खाता हूं मैं साथ गिरने तारों के।३७।

मं॰ ७। सि॰ २७। सू॰ ५६। आ॰ ४-६। ८। ९। १५-२३। ३४-३७। ५३। ७५॥

[क्या पृथिवी स्थिर है ? पहाड़ क्या पक्षी हैं, जो उड़ेंगे ?]

समीक्षक—अब देखिये **'क़ुरान'** बनानेवाले की लीला को! भला, पृथिवी तो हिलती ही रहती है, उस समय भी हिलती रहेगी। इससे यह सिद्ध होता है कि **'क़ुरान'** बनानेवाला पृथिवी को स्थिर जानता था! भला, पहाड़ों को क्या पक्षीवत् उड़ा देगा? यदि भुनगे हो जावेंगे तो भी सूक्ष्म शरीरधारी रहेंगे, तो फिर उनका दूसरा जन्म क्यों नहीं?

[ख़ुदा के दायें-बायें कैसे खड़े हुए हैं?]

वाह जी! जो ख़ुदा शरीरधारी न होता तो उसके दाहिनी ओर और बाईं ओर कैसे खड़े हो सकते?

[फिर तो बहिश्त में बड़ी दुर्गति होती होगी ?]

जब वहां पलंग सोने के तारों से बुने हुए हैं तो बढ़ई-सुनार भी वहां रहते होंगे? और खटमल काटते होंगे, जो उनको रात्रि में सोने भी नहीं देते होंगे? क्या वे तक़िये लगाकर बहिश्त में निकम्मे बैठे ही रहते हैं वा कुछ काम किया करते हैं?

[अपच से रोग भी बढ़ते होंगे]

यदि बैठे ही रहते होंगे, तो उनको अन्न का पचन न होने से वे रोगी होकर शीघ्र मर भी जाते होंगे? और जो काम किया करते होंगे, तो जैसे

मेहनत-मज़दूरी यहां करते हैं, वैसे ही वहां मेहनत=परिश्रम करके निर्वाह करते होंगे? फिर यहां से वहां बहिश्त में विशेष क्या है? कुछ भी नहीं।

[उन लड़कों के माँ-बाप भी होंगे, और रिश्तेदार भी ?]

यदि वहां लड़के सदा रहते हैं तो उनके मा-बाप भी रहते होंगे और सास-श्वसुर भी रहते होंगे? तब तो बड़ा भारी शहर बसता होगा? फिर मल-मूत्रादि के बढ़ने से रोग भी बहुत-से होते होंगे?

[वहाँ कसाइयों की दुकानें भी होंगी; पशु-पक्षी भी होंगे ?]

क्योंकि जब यथेष्ट मेवे खावेंगे, गिलासों में पानी पीवेंगे, और प्यालों में मद्य पीवेंगे, तो उनका शिर दूखेगा, और कोई विरुद्ध बोलेगा। यथेष्ट मेवे खायेंगे और जानवरों तथा पक्षियों के मांस भी खावेंगे, तो अनेक प्रकार के दुःख, पक्षी, जानवर वहाँ होंगे, हत्या होगी और हाड़ जहां-तहां बिखरे रहेंगे, और कसाइयों की दुकानें भी होंगी; वाह, क्या कहना इनके बहिश्त की प्रशंसा का कि वह अरब देश से भी बढ़कर दीखती है!

[मद्य माँस खायेंगे तो स्त्रियाँ और लौंडे भी वहाँ होने ही चाहियें]

और जो मद्य-मांस पी-खाके उन्मत्त होते हैं, इसीलिये अच्छी-अच्छी स्त्रियां और लौंडे भी वहां अवश्य रहने चाहियें, नहीं तो ऐसे नशेबाज़ों के शिर में गरमी चढ़के प्रमत्त हो जावेंगे। अवश्य, बहुत स्त्री-पुरुषों के बैठने-सोने के लिये बिछौने बड़े-बड़े चाहियें।

जब ख़ुदा कुमारियों को बहिश्त में उत्पन्न करता है, तभी कुमारे लड़कों को उत्पन्न करता है।

[वहाँ के लड़कों का विवाह कुमारियों से क्यों न किया ?]

भला, कुमारियों का तो विवाह जो यहां से उम्मीदवार होकर गये हैं, उनके साथ ख़ुदा ने लिखा, परन्तु उन सदा रहनेवाले लड़कों का किन्हीं कुमारियों के साथ विवाह न लिखा, तो क्या वे भी उन्हीं उम्मीदवारों के साथ कुमारीवत् दे दिये?, इसकी व्यवस्था कुछ भी न लिखी। यह ख़ुदा में बड़ी भूल क्यों हुई?

[स्त्री पुरुष की बराबर आयु में शादी होना ठीक नहीं]

यदि बराबर अवस्थावाली सुहागिन स्त्रियां पतियों को पाके बहिश्त में रहती हैं, तो ठीक नहीं हुआ, क्योंकि स्त्रियों से पुरुष का आयु डेढ़ गुना या दूना चाहिये। यह तो मुसलमानों के बहिश्त की कथा है!

[दोजख में कटीले वृक्षों के काँटे भी लगते होंगे ?]

और नरक-वाले, सिंहोड़ अर्थात् थोर के वृक्षों को खाके पेट भरेंगे, तो कण्टक वृक्ष भी दोज़ख़ में होंगे? तो कांटे भी लगते होंगे? गर्म पानी पीयेंगे, इत्यादि दुःख दोज़ख़ में पावेंगे।

[कसम खाना झूठों का काम है]

क़सम का खाना प्रायः झूठों का काम है, सच्चों का नहीं। यदि ख़ुदा ही क़सम खाता है तो वह भी झूठ से अलग नहीं हो सकता॥१५०॥

१५१. वही है जिसने उत्पन्न किया आसमानों को और पृथिवी को बीज छः दिनों के, फिर करार पकड़ा ऊपर अर्श के....।४। ईमान लाओ साथ अल्लाह के और रसूल उसके के....।७। कौन मनुष्य है

कि उधार देवे अल्लाह को, उधार अच्छा बस, दुगुना करे उसको वास्ते उसके।११।

मं० ७। सि० २७। सू० ५७। आ० ४। ७। ११॥

समीक्षक—यदि छः दिनों में पृथिवी और आकाश को बनाकर आकाश में आराम किया तो वह शरीरधारी, एकदेशी, असमर्थ और थकनेवाला होने से ईश्वर ही नहीं हो सकता। यदि ईमान में पैग़म्बर भी शरीक है तो ख़ुदा का शरीक हुआ वा नहीं? और मुसलमानों के मत में ख़ुदा के सिवाय [पैग़म्बर] पर भी ईमान रखना आवश्यक होने से ख़ुदा को **'लाशरीक'** कहना व्यर्थ है। क्या ख़ुदा के खजाने में टोटा पड़ गया, वा कोई लूट गया, अथवा ख़ुदा ने फैल-फतूरी में नाश कर दिया कि जिस किसी से उधार मांगता है और दूना देना स्वीकार करता है? भला, ऐसी-ऐसी बातें ईश्वर और ईश्वरकृत पुस्तक की कभी हो सकती हैं?

१५२. अल्लाह ने क्रोध किया ऊपर काफ़िरों के....।१४। और विशेषतः यहूदियों पर गालिब आया उनके शैतान, बस, भुला दी उनको याद ख़ुदा की, ये लोग-समुदाय शैतान के हैं....।११।

मं० ७। सि० २८। सू० ५८। आ० १४। १९॥

समीक्षक—यदि मुसलमानी मजहब को न मानें और वे अच्छे हों, उन पर ख़ुदा क्रोध करेगा तो अन्यायी होगा वा नहीं? और जो मुसलमानों में दुष्ट हों, उनसे प्रेम करेगा तो भी पक्षपाती होकर पापी होगा। यदि ख़ुदा की

सृष्टि में शैतान प्रबल होता है और उसको ख़ुदा न पकड़ [सकता है], न दण्ड [दे सकता है] और न मार सकता है, इसलिये ख़ुदा सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी भी नहीं है॥१५२॥

१५३. वह पृथिवी अल्लाह ने लूट के प्रकार से न बटवाई, हज़रत के इख़्तियार में रक्खी।६। यह ही भेद रक्खा लूट में और फ़ी में, जो माल लड़ाई से हाथ लगा वह लूट पांचवां भाग अल्लाह की भेंट, और चार भाग लश्कर को बांटने.....।७।

मं॰ ७। सि॰ २८। सू॰ ५९। आ॰ ६। ७॥

समीक्षक—क्या कहना है! तभी तो मुसलमान लोग लूट-मार और फ़साद करने में नहीं डरते कि जिनके ख़ुदा और पैग़म्बर ने लूट की पृथिवी आदि को भी स्वीकार कर लिया! क्योंकि उस लूट के माल में से पांचवां भाग अल्लाह का भी है। क्या यह ख़ुदा वा पैग़म्बर लूट के करानेवाले नहीं हुए? ऐसे ख़ुदा और पैग़म्बर को कोई बुद्धिमान् न मान सकेगा। और क्या ऐसे की बात का प्रमाण हो सकता है?॥१५३॥

[अल्लाह के मित्र]

१५४. निश्चय, अल्लाह मित्र रखता है उन लोगों को कि लड़ते हैं बीच मार्ग उसके के....।४।

मं॰ ७। सि॰ २८। सू॰ ६१। आ॰ ४॥

[मजहब के नाम पर लड़ाई कराना अनुचित]

समीक्षक—वाह, ठीक है! ऐसी-ऐसी बातों का उपदेश करके बेचारे अरबदेश-वासियों को सबसे लड़ाके शत्रु बनाकर परस्पर दुःख दिलाया। और मज़हब का झंडा खड़ा करके लड़ाई फैलावे, ऐसे को ईश्वर, बुद्धिमान् कभी नहीं मान सकते। **जो मनुष्य-जाति में विरोध बढ़ावे वही सबको दुःखदाता होता है॥१५४॥**

१५५. यदि क़र्ज़ दो तुम अल्लाह को, क़र्ज़ अच्छा, दुगुना करेगा उसको वास्ते, तुम्हारे क्षमा करेगा वास्ते तुम्हारे पाप....।१७।

मं० ७। सि० २८। सू० ६४। आ० १७॥

समीक्षक—यह क़र्ज़ का लेना-देना सब मुहम्मद साहब के मतलब की बात है। जैसे मूर्तिपूजक मूर्ति के नाम से लोगों से धन लेकर स्वकार्य सिद्ध करते हैं, ऐसी ही मुहम्मद साहब की लीला है; क्योंकि ईश्वर को क़र्ज़ लेने का कोई भी प्रयोजन नहीं॥१५५॥

नोट—हज़रत ने एक बीबी अपनी मोक़ूफ़ कर दी खातिर से और बीबियों से। हजरत की मरियम नामी एक बांदी से प्रीति बहुत थी। और इस बात को जानकर उनकी एक बीबी ने उनको रोका। हज़रत ने खफ़ा होकर उसको तलाक़ दे दिया। ये आयत हज़रत की औरतों की तरफ है। किसी दिन कोई बीबी रूस गई होगी, उस बात पर यह आयत उतरी कि 'ऐ नबी

की स्त्रियों! यह घमंड मत करो कि पैग़म्बर के लिये हम ही हैं, नहीं सिवाय तुम्हारे और भी बीबियां बदल सकते हैं—'

[रसूल के घरेलू मामलों में हस्तक्षेप]

१५६. ऐ नबी! क्यों हराम करता है उस वस्तु को कि हलाल किया है ख़ुदा ने तेरे लिये, चाहता है तू प्रसन्नता बीबियों अपनी की, और अल्लाह क्षमा करनेवाला दयालु है।१। जल्दी है मालिक उसका जो वह तुमको छोड़ दे, तो यह है कि उसको तुमसे अच्छी मुसलमान और ईमानवालियाँ बीबियाँ बदल दे सेवा करनेवालियाँ, तौबा करनेवालियाँ, भक्ति करनेवालियाँ, रोज़ा रखनेवालियाँ, पुरुष देखी हुई और बिन देखी हुई।५।

मं० ७। सि० २८। सू० ६६। आ० १। ५॥

[पैगम्बर के घरेलू झगड़े से खुदा भी चिन्तित]

समीक्षक—ध्यान देकर देखना चाहिये कि ख़ुदा क्या हुआ, मुहम्मद साहब के घर का भीतरी और बाहरी प्रबन्ध करने वाला भृत्य ठहरा!!

[पहली आयत पर दो रोचक कहानियाँ]

प्रथम आयत पर दो कहानियाँ हैं—**एक** तो यह कि मुहम्मद साहब को शहद का शर्बत प्रिय था। उनकी कई बीबियाँ थीं उनमें से एक के घर पीने में देर लगी तो दूसरियों को असह्य प्रतीत हुआ। उनके कहने-सुनने के पीछे मुहम्मद साहब सौगन्द खा गये कि हम न पीवेंगे।

दूसरी यह कि उनकी कई बीबियों में से एक की बारी थी। उसके यहाँ रात्री को गये तो वह न थी, अपने बाप के यहाँ गई थी। मुहम्मद साहब ने

एक लौंडी अर्थात् दासी को बुलाकर पवित्र किया। जब बीबी को इसकी ख़बर मिली तो वह अप्रसन्न हो गई। तब मुहम्मद साहब ने सौगन्द खाई कि मैं ऐसा न करूँगा, और बीबी से भी कह दिया तुम किसी से यह बात मत कहना। बीबी ने स्वीकार किया कि न कहूँगी। फिर उन्होंने दूसरी बीबी से जा कहा। इस पर यह आयत ख़ुदा ने उतारी "जिस वस्तु को हमने तेरे पर हलाल किया, उसको तू हराम क्यों करता है?"

[अनेक स्त्रियों के कारण पैगम्बर साहब की दुर्दशा]

बुद्धिमान् लोग विचारें कि भला, कहीं ख़ुदा भी किसी के घर का निमटेरा करता फिरता है? और **मुहम्मद साहब के तो आचरण इन बातों से प्रकट ही हैं, कहने की क्या बात है?**

[पैगम्बर के लिये नयी बीवियाँ लाने की पेशकश]

और दूसरी आयत से प्रतीत होता है कि मुहम्मद साहब से उनकी कोई बीबी अप्रसन्न हो गई होगी। उसपर खुदा ने यह आयत उतारकर उसको धमकाया होगा कि यदि तू गड़बड़ करेगी और मुहम्मद साहब तुझे छोड़ देंगे तो उनको ख़ुदा तुझसे अच्छी बीबियाँ देगा कि जो पुरुष से न मिली हों।

जिस मनुष्य को तनिक-सी बुद्धि है वह विचार ले सकता है कि खुदा-वुदा के काम हैं वा अपने प्रयोजन सिद्धि के? **ऐसी-ऐसी बातों से ठीक सिद्ध है कि खुदा कोई नहीं कहता था, केवल देश-काल देखकर अपने प्रयोजन के सिद्धि होने के लिये खुदा की तरफ़ से मुहम्मद साहब कह देते थे। जो लोग खुदा की ही तरफ़ लगाते हैं उनको हम क्या, सब**

बुद्धिमान् यही कहेंगे कि खुदा क्या ठहरा, मानो मुहम्मद साहब के लिये बीबियाँ लानेवाला नाई ठहरा!!!

भला, जो अनेक स्त्रियों को रक्खे वह ईश्वर का भक्त वा पैग़म्बर कैसे हो सके?

[अपनी औरतों को छोड़ बाँदियों में फँसना लज्जाजनक]

और जो एक स्त्री का पक्षपात से अपमान करे और दूसरी का मान्य करे, वह पक्षपाती होकर अधर्मी क्यों नहीं? और जो बहुत-सी स्त्रियों से भी सन्तुष्ट न होकर, बांदियों के साथ फसे, उसको लज्जा, भय और धर्म कहां से रहे? किसी ने कहा है कि—

कामातुराणां न भयं न लज्जा

=जो कामी मनुष्य हैं उनको अधर्म से भय वा लज्जा नहीं होती।

[खुदा पैगम्बर के घरेलू झगड़े में सरपंच]

और इनका ख़ुदा भी मुहम्मद साहब की स्त्रियों और पैग़म्बर के झगड़े को फैसला करने में जानो सरपंच बना है। अब बुद्धिमान् लोग विचार लें कि यह **'क़ुरान'** किसी विद्वान्-कृत वा ईश्वर-कृत है वा किसी अविद्वान् मतलबसिन्धु का बनाया, स्पष्ट विदित हो जायगा॥१५६॥

[काफिरों से झगड़ने की आज्ञा]

१५७. ऐ नबी! झगड़ा कर काफ़िरों और गुप्त शत्रुओं से, और सख्ती कर ऊपर उनके....।९।

मं० ७। सि० २८। सू० ६६। आ० ९॥

[लड़ाई के लिये मुसलमानों को उकसाना अदूरदर्शिता]

समीक्षक—और देखिये मुसलमानों के ख़ुदा की लीला! **अन्य मत-वालों से लड़ने के लिये पैग़म्बर और मुसलमानों को उचकाता है, इसीलिये आज तक मुसलमान लोग उपद्रव करने में प्रवृत्त रहते हैं। परमात्मा मुसलमानों पर कृपादृष्टि करे जिससे ये लोग उपद्रव करना छोड़के, सबसे मित्रता से वर्त्तें॥१५७॥**

[आठ जनों द्वारा खुदा का तख्त उठाना; हाथों में कर्मपत्र देना]

१५८. फट जावेगा आसमान, बस, वह उस दिन सुस्त होगा।१६। और फ़रिश्ते होंगे ऊपर किनारों उसके के, और उठावेंगे तख़्त मालिक तेरे का ऊपर अपने, उस दिन आठ जन।१७। उस दिन सामने लाये जाओगे तुम, न छिपी रहेगी कोई बात छिपी हुई।१८। बस, जो कोई दिया गया कर्मपत्र अपना बीच दाहिने हाथ अपने के, बस कहेगा—'लो पढ़ो कर्मपत्र मेरा'।१९। और जो कोई दिया गया कर्मपत्र बीच बायें हाथ अपने के, बस कहेगा हाय न दिया गया होता मैं कर्मपत्र अपना।२५।

मं० ७। सि० २९। सू० ६९। आ० १६। १७। १८। १९। २५॥

[क्या आसमान भी कभी फट सकता है ?]

समीक्षक—वाह क्या **'फ़िलासफ़ी'** और 'न्याय' की बात है! भला, आकाश भी कभी फट सकता है? क्या वह वस्त्र के समान है जो फट जावे? यदि ऊपर के लोक को आसमान कहते हैं तो यह बात विद्या से विरुद्ध है।

[कुरान का खुदा निःसन्देह शरीरधारी है]

अब **'क़ुरान'** का ख़ुदा शरीरधारी होने में कुछ संदिग्ध न रहा, क्योंकि तख़्त पर बैठना, आठ कहारों से उठवाना, विना मूर्त्तिमान् के कुछ भी नहीं हो सकता। और सामने वा पीछे भी आना-जाना मूर्तिमान् का ही हो सकता है। जब वह मूर्त्तिमान् है, तो एकदेशी होने से सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान् नहीं हो सकता और सब जीवों के सब कर्मों को कभी नहीं जान सकता।

[कर्मपत्र बाँचके न्याय करना सर्वज्ञ का काम नहीं]

यह बड़े आश्चर्य की बात है कि पुण्यात्माओं के दाहिने हाथ में पत्र देना, बँचवाना, बहिश्त में भेजना; और पापात्माओं के बांये हाथ में कर्मपत्र का देना, नरक में भेजना, कर्मपत्र बाँचके न्याय करना सर्वज्ञ का काम नहीं। यह सब लीला लड़केपन की है॥१५८॥

[पचास हज़ार वर्ष का दिन; क़ब्रों में से निकलकर दौड़ना]

१५९. चढ़ते हैं फ़रिश्ते और रूह तरफ़ उसकी, वह अज़ाब होगा बीच उस दिन के कि है परिमाण उसका पचास हज़ार वर्ष।४। जबकि निकलेंगे क़ब्रों में से दौड़ते हुए मानो कि वे बुतों के स्थानों की ओर दौड़ते हैं।४३।

मं० ७। सि० २९। सू० ७०। आ० ४। ४३॥

[पचास हज़ार वर्ष तक खुदा फरिश्ते आदि क्या करेंगे ?]

समीक्षक—यदि पचास हज़ार वर्ष दिन का परिमाण है, तो पचास हज़ार वर्षों की रात्रि क्यों नहीं? यदि उतनी बड़ी रात्रि नहीं है, तो उतना बड़ा दिन कभी नहीं हो सकता। रात्रि में न्याय करना अच्छा नहीं किन्तु दिन ही न्याय के लिए है। क्या पचास हज़ार वर्षों तक ख़ुदा, फ़रिश्ते और कर्मपत्र वाले खड़े वा बैठे अथवा जागते ही रहेंगे? यदि ऐसा है, तो सब रोगी होकर पुनः मर ही जायेंगे।

[क्या आजकल खुदा की कचहरी बन्द है ?]

क्या क़ब्रों से निकलकर ख़ुदा की कचहरी की ओर दौड़ेंगे? उनके पास सम्मन क़ब्रों में क्योंकर पहुंचेंगे? और उन बेचारों को जो कि पुण्यात्मा, पापात्मा हैं इतने समय तक सभी को क़ब्रों में दौरासुपुर्द क़ैद क्यों रक्खा? और आजकल ख़ुदा की कचहरी बन्द होगी और ख़ुदा तथा फ़रिश्ते निकम्मे बैठे होंगे? अथवा क्या काम करते हैं? अपने-अपने स्थानों में बैठे इधर-उधर घूमते, सोते, नाच-तमाशा देखते वा ऐश-आराम कर रहे होंगे? ऐसा अन्धेर किसी के राज्य में न होगा। ऐसी-ऐसी बातों को सिवाय जंगलियों के दूसरा कौन मानेगा?॥१५९॥

[ऊपर तले सात आसमान बनाना]

१६०. निश्चय, उत्पन्न किया तुमको कई प्रकार से।१४। क्या नहीं देखा तुमने कैसे उत्पन्न किया अल्लाह ने सात आसमानों को ऊपर-तले?।१५। और किया चांद को बीच उनके प्रकाशक और किया सूर्य को दीपक।१६।

मं॰ ७। सि॰ २९। सू॰ ७१। आ॰ १४। १५। १६॥

[जीवों को उत्पन्न किया, तो बहिश्त में सदा कैसे रहेंगे ?]

समीक्षक—यदि जीवों को ख़ुदा ने उत्पन्न किया है तो वे नित्य, अमर कभी नहीं रह सकते? फिर बहिश्त में सदा क्योंकर रह सकेंगे? जो उत्पन्न होता है, वह वस्तु अवश्य नष्ट हो जाता है।

[आकाश निराकार पदार्थ है, उसे ऊपर तले कैसे बनाया ?]

आसमान को [ख़ुदा] ऊपर-तले कैसे बना सकता है? क्योंकि वह निराकार और विभु पदार्थ है। यदि दूसरी चीज़ का नाम आकाश रखते हो, तो भी उसका आकाश नाम रखना व्यर्थ है।

[सात आसमानों में प्रकाश कैसे ?]

यदि ऊपर-तले आसमानों को बनाया है, तो उन सबके बीच में चाँद-सूर्य कभी नहीं रह सकते। जो बीच में रक्खा जाय, तो एक ऊपर और एक नीचे का पदार्थ प्रकाशित हो। दूसरे से लेकर सबमें अन्धकार रहना चाहिये। ऐसा नहीं दीखता, इसलिये यह बात सर्वथा मिथ्या है॥१६०॥

[अल्लाह के साथ किसी को मत पुकारो]

१६१. और यह कि मस्जिदें वास्ते अल्लाह के हैं; बस, मत पुकारो साथ अल्लाह के किसी को।१८।

मं॰ ७। सि॰ २९। सू॰ ७२। आ॰ १८॥

[कलमे में पैगम्बर का नाम खुदा के साथ कैसे ?]

समीक्षक—यदि यह बात सत्य है तो मुसलमान लोग **'लाइलाह इल्लिलाः मुहम्मदर्रसूलल्लाः'** इस कलमे में ख़ुदा के साथ मुहम्मद

साहब को क्यों पुकारते हैं? **यह बात 'क़ुरान' से विरुद्ध है। और जो विरुद्ध नहीं करते, तो इस 'क़ुरान' की बात को झूठ करते हैं।**

[मस्जिदें खुदा का घर हैं, तो यह बुतपरस्ती है]

जब मस्जिदें ख़ुदा के घर हैं, तो मुसलमान महाबुतरस्त हुए, क्योंकि जैसे पुराणी, जैनी छोटी-सी मूर्त्ति को ईश्वर का घर मानने से बुतपरस्त ठहरते हैं, [वैसे] ये लोग क्यों नहीं?॥१६१॥

[सूर्य चाँद को इकट्ठा करना]

१६२. इकट्ठा किया जावेगा सूर्य और चाँद को।९।

मं० ७। सि० २९। सू० ७५। आ० ९॥

[सूर्य और चाँद कभी इकट्ठे नहीं हो सकते]

समीक्षक—भला, सूर्य-चाँद कभी इकट्ठे हो सकते हैं? देखिये, यह कितनी बेसमझी की बात है। और सूर्य-चन्द्र के ही इकट्ठे करने में क्या प्रयोजन? तथा अन्य सब लोकों को इकट्ठे न करने में क्या युक्ति है? ऐसी-ऐसी असम्भव बातें परमेश्वरकृत कभी हो सकती हैं? विना अविद्वानों के अन्य किसी विद्वान् की भी नहीं होतीं॥१६२॥

[बहिश्त में लड़के; खुदा का उन्हें शराब पिलाना]

१६३. और फिरेंगे ऊपर उनके पास लड़के सदा [एक अवस्था में] रहनेवाले, जब देखेगा तू उनको, अनुमान करेगा तू उनको मोती बिखरे हुए जैसे।१९। ....और पहनाये जावेंगे कंगन चांदी के, और पिलावेगा उनको रब उनका शराब तहूरा।२१।

मं० ७। सि० २९। सू० ७६। आ० १९। २१॥

[बहिश्त में लड़के किसलिये हैं ?]

समीक्षक—क्यों जी! मोती के वर्ण-से लड़के किसलिये वहां रक्खे जाते हैं? क्या जवान लोग सेवा [से] वा स्त्रीजन उनको तृप्त नहीं कर सकतीं? क्या आश्चर्य है कि जो यह महा-बुराकर्म लड़कों के साथ दुष्टजन करते हैं उसका मूल यही **'क़ुरान'** का वचन हो!

[ख़ुदा स्वयं शराब पिलावेगा, तो उसकी महत्ता समाप्त]

और बहिश्त में स्वामी-सेवकभाव होने से स्वामी को आनन्द और सेवक को परिश्रम होने से स्वर्ग में दुःख तथा पक्षपात क्यों होता है? और जब ख़ुदा ही उनको मद्य पिलावेगा तो वह भी उनका सेवकवत् ठहरेगा, फिर ख़ुदा की बड़ाई क्योंकर रह सकेगी?

[वहाँ बाल-बच्चे भी होंगे, तो वे जीव कहाँ से आये ?]

और वहां बहिश्त में स्त्री-पुरुष का समागम और गर्भस्थिति और लड़के-बाले भी होते हैं वा नहीं? यदि नहीं होते तो उनका विषयसेवन करना व्यर्थ हुआ? और जो होते हैं तो वे जीव कहां से आये?

[विना ख़ुदा की सेवा के बहिश्त की प्राप्ति अन्याय]

और विना ख़ुदा की सेवा के बहिश्त में क्यों जन्मे? यदि जन्मे तो उनको विना ईमान लाये और ख़ुदा की भक्ति किये विना बहिश्त मुफ्त मिल गया। किन्हीं को तो ईमान लाने और किन्हीं को विना धर्म के सुख मिल जाने से दूसरा बड़ा अन्याय कौन-सा होगा?॥१६३॥

[कर्मानुसार फल]

१६४. बदला दिये जावेंगे कर्मानुसार।२६। और प्याले हैं भरे हुए।३४। जिस दिन खड़े होंगे रूह और फ़रिश्ते सफ़ बांध कर....।३८।

मं० ७। सि० ३०। सू० ७८। आ० २६। ३४। ३८॥

[फरिश्तों हूरों और लड़कों को बहिश्त कैसे मिला ?]

समीक्षक—यदि कर्मानुसार फल दिया जाता है तो सदा बहिश्त में रहनेवाली हूरों, फ़रिश्तों और मोती के सदृश लड़कों को कौन कर्म के अनुसार सदा के लिये बहिश्त मिला? जब प्याले भर-भर शराब पीयेंगे तो मस्त होकर क्यों न लड़ेंगे? और रूह निराकार होने से वहां खड़ी क्योंकर हो सकेगी? और ख़ुदा उस समय खड़ा होगा वा बैठा?

[क्या फरिश्ते जीवों को सजा देंगे ?]

'रूह' नाम यहां एक फ़रिश्ते का है, जो सब फ़रिश्तों से बड़ा है। क्या ख़ुदा रूह तथा अन्य फ़रिश्तों को पंक्तिबद्ध खड़े करके पलटन बांधेगा? क्या पलटन से सब जीवों को सजा दिलावेगा? और खुदा उस समय खड़ा होगा वा बैठा? यदि क़यामत तक ख़ुदा अपनी सब पलटन एकत्र करके शैतान को पकड़ ले तो उसका राज्य निष्कण्टक हो जाय। इसका नाम खुदाई है॥१६४॥

[सूर्य को लपेटना; आसमान की खाल उतारना]

१६५. जबकि सूर्य लपेटा जावे।१। और जबकि तारे गदले हो जावें।२। और जबकि पहाड़ चलाये जावें।३। और जब आसमान की खाल उतारी जावे।११।

मं० ७। सि० ३०। सू० ८१। आ० १। २। ३। ११॥

[ये सब बातें जङ्गलीपन की हैं]

समीक्षक—यह बड़ी बेसमझ की बात है कि गोल सूर्यलोक कैसे लपेटा जावेगा? और तारे गदले क्योंकर हो सकेंगे? और पहाड़ जड़ होने से

चलेंगे कैसे? और आकाश को क्या पशु समझा कि उसकी खाल निकाली जावेगी? यह बड़ी ही मूर्खता और जंगलीपन की बात है॥१६५॥

[आसमान का फटना; तारों का झड़ना; दरिया को चीरना]

१६६. और जबकि आसमान फट जावे।९। और जब तारे उड़ जावें।२। और जब दरिया चीरे जावें।३। और जब क़ब्रें जिलाकर उठाई जावें।४।

मं० ७। सि० ३०। सू० ८२। आ० १। २। ३। ४॥

[ये सब बातें भी बालकों के सदृश हैं]

समीक्षक—वाह जी **'क़ुरान'** के बनानेवाले **'फ़िलासफ़र'**! आकाश को क्योंकर फाड़ सकेगा? और तारों को कैसे उड़ा सकेगा? और दरिया क्या लकड़ी है जो चीर डालेगा? और क़ब्रें क्या मुर्दे हैं जो जिला सकेगा? ये सब बातें लड़कों के सदृश हैं॥१६६॥

[बुर्जों-वाला आसमान]

१६७. क़सम है आसमान बुर्जों वाले की।१। किन्तु वह 'क़ुरान' है बड़ा।२१। बीच महफ़ूज लौह रक्षा के।२२।

मं० ७। सि० ३०। सू० ८५। आ० १। २१। २२॥

[आकाश को किले के समान बुर्जों-वाला बताना अज्ञानता]

समीक्षक—इस **'कुरान'** के बनानेवाले ने भूगोल-खगोल भी नहीं पढ़ा था, नहीं तो आकाश को क़िले के समान बुर्जों-वाला क्यों कहता? यदि मेषादि राशियों को बुर्ज कहता है, तो अन्य बुर्ज क्यों नहीं? इसलिये ये बुर्ज नहीं हैं, किन्तु सब तारे लोक हैं।

[फिर तो वह खुदा भी विद्यारहित ही होगा]

क्या वह **'क़ुरान'** ख़ुदा के पास है? यदि वह **'क़ुरान'** उसका किया है, तो वह भी इससे अधिक विद्या और युक्ति से विरुद्ध होकर अविद्या से अधिक भरा होगा॥१६७॥

[खुदा का मकर के बदले मकर करना]

१६८. निश्चय, वे मकर करते हैं एक मकर।१५। और मैं भी मकर करता हूं एक मकर।१६।

मं० ७। सि० ३०। सू० ८६। आ० १५।१६॥

[क्या खुदा भी ठगी करने लगा ?]

समीक्षक—मकर कहते हैं ठगपन को। क्या ख़ुदा भी ठग है? और क्या चोरी का जवाब चोरी और झूठ का जवाब झूठ है? क्या कोई चोर भले आदमी के घर में चोरी करे, तो क्या भले आदमी को चाहिये कि उसके घर में जाके चोरी करे?॥१६८॥

[खुदा और फरिश्तों का आना]

१६९. और जब आवेगा मालिक तेरा और फ़रिश्ते पंक्ति बांध के।२२। और लाया जावेगा उस दिन दोज़ख़ को....।२३।

मं० ७। सि० ३०। सू० ८९। आ० २२। २३॥

[क्या दोज़ख़ भी इधर-उधर ले जाने की वस्तु है ?]

समीक्षक—कहो जी! जैसे कोटपाल वा सेनाध्यक्ष अपनी सेना को लेकर पंक्ति बांध फिरा करे वैसा ही इनका ख़ुदा है। क्या दोज़ख़ घड़ा-सा है कि जिसको उठाके जहाँ चाहे वहाँ ले जावें? यदि इतना छोटा है तो असंख्य क़ैदी उसमें कैसे समा सकेंगे?॥१६९॥

[खुदा की ऊँटनी; मरी डालना]

१७०. बस, कहा था वास्ते उनके पैग़म्बर ख़ुदा के ने, रक्षा करो ऊंटनी ख़ुदा की को, और पानी पिलाना उसके को।१३। बस झुठलाया उसको, बस पांव काटे उसके, बस मरी डाली ऊपर उनके, रब उनके ने।१४।

मं० ७। सि० ३०। सू० ९१। आ० १३। १४॥

[खुदा ऊँटनी क्यों रखता है; कयामत से पूर्व ही मरी कैसे ?]

समीक्षक—क्या ख़ुदा भी ऊंटनी पर चढ़के सैल किया करता है? नहीं तो किसलिये रक्खी? और विना क़यामत के अपना नियम तोड़ उन पर मरी क्यों डाली? यदि डाला तो उनको दण्ड किया। फिर क़यामत की रात में न्याय और उस रात का होना झूठ समझा जायगा? इस ऊंटनी के लेख से यह अनुमान होता है कि अरब देश में ऊंट-ऊंटनी के सिवाय दूसरी कोई सवारी नहीं होती हैं। इसीलिये किसी अरब देशी ने **'क़ुरान'** बनाया है॥१७०॥

[बाल पकड़कर घसीटना]

१७१. यों जो न रुकेगा, अवश्य घसीटेंगे उसको हम साथ बालों माथे के।१५। वह माथा, कि झूठा है और अपराधी।१६। हम बुलावेंगे फ़रिश्ते [जो उन्हें ले जायेंगे] दोज़ख़ के।१८।

मं० ७। सि० ३०। सू० ९६। आ० १५। १६। १८॥

[माथा भी कहीं झूठा वा अपराधी होता है ?]

समीक्षक—चपरासियों के इस नीच काम 'घसीटने से' भी ख़ुदा न बचा। भला, माथा भी कभी झूठा और अपराधी हो सकता है सिवाय जीव के?

भला, यह भी कभी ख़ुदा हो सकता है कि जैसे जेलखाने के दरोग़ा को जिले का हाक़िम बुलावा भेजे॥१७१॥

[कुरान को अँधेरी रात में उतारा]

१७२. निश्चय, उतारा हमने क़ुरान को बीच रात क़द्र के।१। और क्या जाने तू क्या है रात क़द्र की?।२। उतरते हैं फ़रिश्ते और पवित्रात्मा बीच उसके, साथ आज्ञा मालिक अपने की, वास्ते हर काम के।४।

मं० ७। सि० ३०। सू० ९७। आ० १। २। ४॥

[एक ही रात में कुरान उतरने की बात असत्य]

समीक्षक—यदि एक ही रात में **'क़ुरान'** उतारा, तो वह आयत अर्थात् [अमुक आयत] उस समय में उतरी और [उसको] धीरे-धीरे उतारा, यह बात सत्य क्योंकर हो सकेगी? और रात्रि अन्धेरी है, इसमें क्या पूछना है?

[हर काम फरिश्तों से ही क्यों कराता है ?]

वहाँ लिख आये हैं ऊपर-नीचे कुछ भी नहीं हो सकता और यहां लिखते हैं कि फ़रिश्ते और **'पवित्रात्मा'** ख़ुदा के हुक्म से संसार का प्रबंध करने के लिये आते हैं। इससे स्पष्ट हुआ कि ख़ुदा मनुष्यवत् एकदेशी है।

[यह पवित्रात्मा चौथा और कहाँ से आ गया ?]

अब तक देखा था कि खुदा, फ़रिश्ते और पैग़म्बर तीन की कथा है। अब एक 'पवित्रात्मा' चौथा निकल पड़ा! अब न जाने यह चौथा 'पवित्रात्मा' क्या है? यह तो ईसाइयों के मत अर्थात् पिता, पुत्र और **'पवित्रात्मा'** तीन के मानने से चौथा भी बढ़ गया।

[पवित्रात्मा पृथक् है, तो क्या शेष तीन वैसे नहीं हैं ?]

यदि कहो कि हम इन तीनों को ख़ुदा नहीं मानते, ऐसा भी हो, परन्तु जब **'पवित्रात्मा'** पृथक् है, तो ख़ुदा, फ़रिश्ते और पैग़म्बर को **'पवित्रात्मा'** कहना चाहिये वा नहीं? यदि **'पवित्रात्मा'** है, तो एक का ही नाम **'पवित्रात्मा'** क्यों? और घोड़े आदि जानवरों, रात-दिन और **'क़ुरान'** आदि की ख़ुदा क़समें खाता है। **क़समें खाना भले लोगों का काम नहीं**॥१७२॥

[कुरान के विषय में लेखक के संक्षिप्त विचार]

अब इस **'क़ुरान'** के विषय को लिखके बुद्धिमानों के सम्मुख स्थापित करता हूं कि यह पुस्तक कैसा है? मुझसे पूछो तो यह किताब न ईश्वर की, न विद्वान् की बनाई और न विद्या की हो सकती है। यह तो बहुत थोड़ा-सा दोष प्रकट किया, इसलिये कि लोग धोखे में पड़कर अपना जन्म व्यर्थ न गमावें। **जो कुछ थोड़ा-सा इसमें सत्य है, वह वेदादि विद्या-पुस्तकों के अनुकूल होने से जैसे मुझको ग्राह्य है, वैसे अन्य भी मज़हब के हठ और पक्षपातरहित विद्वानों और बुद्धिमानों को ग्राह्य है। इसके विना जो कुछ इसमें है, वह सब अविद्या, भ्रमजाल और मनुष्य के आत्मा को पशुवत् बनाकर, शान्तिभंग कराके, उपद्रव मचा, मनुष्यों में विद्रोह फैला, परस्पर दुःखोन्नति करनेवाला विषय है।** और **पुनरुक्त दोषों का तो 'क़ुरान' जानो भंडार ही है।**

परमात्मा सब मनुष्यों पर कृपा करे कि सब सबसे प्रीति, परस्पर मेल और एक दूसरे के सुख की उन्नति करने में प्रवृत्त हों। जैसे मैं अपना

वा दूसरे मतमतान्तरों के दोष पक्षपातरहित होकर प्रकाशित करता हूं, इसी प्रकार यदि सब विद्वान् लोग करें, तो क्या कठिनता है कि परस्पर का विरोध छूट, मेल होकर आनन्द में एकमत होके, सत्य की प्राप्ति सिद्ध न हो?

यह थोड़ा **'क़ुरान'** के विषय में लिखा, इससे बुद्धिमान् धार्मिक लोग ग्रन्थकार के अभिप्राय को समझ लाभ लेवें।

यदि कहीं भ्रम से अन्यथा लिखा गया हो तो उसको शुद्ध कर लेवें।

[मुसलमान मत की बात तो वेदों में भी लिखी है ?]

अब एक बात यह शेष है कि बहुत से मुसलमान ऐसा कहा करते और लिखा वा छपवाया करते हैं कि **"हमारे मज़हब की बात 'अथर्ववेद' में लिखी हैं।"** इसका यह उत्तर है कि 'अथर्ववेद' में इस बात का नाम-निशान भी नहीं है।

प्रश्न—क्या तुमने सब 'अथर्ववेद' देखा है? यदि देखा है तो **'अल्लोपनिषद्'** देखो। यह साक्षात् उसमें लिखी है। फिर क्यों कहते हो कि **'अथर्ववेद'** में मुसलमानों का नाम-निशान भी नहीं है?

अथ-'अल्लोपनिषदं' व्याख्यास्यामः

अस्माल्लां इल्ले मित्रावरुणा दिव्यानि धत्ते।

इल्लल्ले वरुणो राजा पुनर्द्दुः।
हया मित्रो इल्लां इल्लल्ले इल्लां वरुणो मित्रस्तेजस्कामः॥१॥
होतारमिन्द्रो होतारमिन्द्र महासुरिन्द्राः।
अल्लो ज्येष्ठं श्रेष्ठं परमं पूर्णं ब्रह्माणं अल्लाम्॥२॥
अल्लोरसूलमहामदरकबरस्य अल्लो अल्लाम्॥३॥
आदल्लाबूकमेककम्॥ अल्लाबूक निखातकम्॥४॥
अल्लो यज्ञेन हुतहुत्वा। अल्ला सूर्यचन्द्रसर्वनक्षत्राः॥५॥
अल्ला ऋषीणां सर्वदिव्यां इन्द्राय पूर्वं माया परममन्तरिक्षाः॥६॥
अल्लः पृथिव्या अन्तरिक्षं विश्वरूपम्॥७॥
इल्लां कबर इल्लां कबर इल्लां इल्लल्लेति इल्लल्लाः॥८॥
ओम् अल्लाइल्लल्ला अनादिस्वरूपाय अथर्वणाश्यामा हुं ह्रीं जनान् पशून् सिद्धान् जलचरान् अदृष्टं कुरु कुरु फट्॥९॥
असुरसंहारिणी हुं ह्रीं अल्लोरसूलमहामदरकबरस्य अल्लो अल्लाम् इल्लल्लेति इल्लल्लाः॥१०॥

इति-'अल्लोपनिषत्' समाप्ता॥

जो इसमें प्रत्यक्ष मुहम्मद साहब [को] रसूल लिखा है इससे सिद्ध होता है कि मुसलमानों का मत वेदमूलक है।

[अथर्ववेद में कहीं भी पैगम्बर वा उसके मत का उल्लेख नहीं]

उत्तर—यदि तुमने **'अथर्ववेद'** न देखा हो, तो हमारे पास आओ, आदि से पूर्त्ति तक देखो। अथवा जिस किसी अथर्ववेदी के पास बीस

काण्डयुक्त मन्त्रसंहिता **'अथर्ववेद'** को देख लो। कहीं तुम्हारे पैग़म्बर साहब का नाम वा मत का निशान न देखोगे।

[अल्लोपनिषद् की रचना अकबर के समय में हुई]

और जो यह **'अल्लोपनिषद्'** है वह न **'अथर्ववेद'** में, न उसके **'गोपथ ब्राह्मण'** में है वा किसी शाखा में है। यह तो अकबर शाह के समय में, अनुमान है कि किसी [मुसलमान] ने बनाई है। इसका बनानेवाला कुछ अरबी और कुछ संस्कृत भी पढ़ा हुआ दीखता है, क्योंकि इसमें अरबी और संस्कृत के पद लिखे हुये दीखते हैं।

[अरबी और संस्कृत शब्दों का निरर्थक मिश्रण]

देखो, **"अस्माल्लां इल्ले मित्रावरुणा दिव्यानि धत्ते"** इत्यादि में जो कि दश अङ्क में लिखा है, जैसे—इसमें **"अस्माल्लां"** और **"इल्ले"** अरबी और **"मित्रावरुणा दिव्यानि धत्ते"** ये संस्कृत-पद लिखे हैं, वैसे ही सर्वत्र देखने में आने से किसी संस्कृत और अरबी के पढ़े हुए ने बनाई है। यदि इसका अर्थ देखा जाता है तो यह कृत्रिम, अयुक्त, वेद और व्याकरण-रीति से विरुद्ध सिद्ध होती है।

[अन्य लोगों ने भी ऐसी ही उपनिषदें बना लीं]

जैसी यह उपनिषद् बनाई है, वैसी बहुत-सी उपनिषदें मतमतान्तरवाले पक्षपातियों ने बना ली हैं। जैसे 'स्वरूपोपनिषद्', 'नृसिंहतापनी', 'रामतापनी', 'गोपालतापनी' बहुत-सी बना ली हैं।

[अथर्ववेद की किसी शाखा में भी यह वर्णन नहीं]

प्रश्न—आज तक किसी ने ऐसा नहीं कहा, अब तुम कहते हो, हम तुम्हारी बात सच कैसे मानें?

उत्तर—तुम्हारे मानने वा न मानने से हमारी बात झूठ नहीं हो सकती। हां, जिस प्रकार से मैंने इसको अयुक्त ठहराया है, उसी प्रकार से जब तुम **'अथर्ववेद', 'गोपथ'** वा इसकी शाखाओं से प्राचीन लिखित **पुस्तकों में जैसा का तैसा लेख दिखलाओ, और अर्थसंगति से भी शुद्ध करो, तब तो [तुम्हारा लेख] सप्रमाण हो सकता है।**

[सभी अपने मतों को अच्छा बताते हैं, किसे सत्य मानें ?]

प्रश्न—देखो, हमारा मत कैसा अच्छा है कि जिसमें सब प्रकार का सुख और अन्त में मुक्ति होती है।

उत्तर—ऐसे ही अपने-अपने मत-वाले सब कहते हैं कि हमारा ही मत अच्छा है, बाक़ी सब बुरे। विना हमारे मत के दूसरे मत से मुक्ति नहीं हो सकती। अब हम तुम्हारी बात को सच्ची मानें वा उनकी? **हम तो यही मानते हैं कि सत्यभाषण, अहिंसा, दया आदि शुभगुण सब मतों में अच्छे हैं और बाक़ी वाद-विवाद, ईर्ष्या-द्वेष, मिथ्याभाषणादि कर्म सब मतों में बुरे हैं। यदि तुमको सत्य मत-ग्रहण की इच्छा हो, तो वैदिक मत को ग्रहण करो।**

इसके आगे **'स्वन्तव्यामन्तव्य का प्रकाश'** संक्षेप से लिखा जायगा।

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिकृते सत्यार्थप्रकाशे
सुभाषाविभूषिते यवनमतविषये चतुर्दशःसमुल्लासः सम्पूर्णः॥१४॥

ओ३म्

अथ स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाशः

सम्पूर्ण सत्यार्थप्रकाश

Click now

[सर्वतन्त्र-सिद्धान्त की परिभाषा]

'सर्वतन्त्र सिद्धान्त' अर्थात् **'साम्राज्य-सार्वजनिक धर्म'** जिसको सदा से सब मानते आये, मानते हैं और मानेंगे भी। इसीलिये **इसको 'सनातन'=नित्यधर्म कहते हैं कि जिसका विरोधी कोई भी न हो सके।**

[कौन प्रमाण के योग्य और कौन अयोग्य?]

यदि अविद्यायुक्त जन अथवा किसी मत-वाले के भरमाये हुये उसको अन्यथा जानें वा मानें, उसका स्वीकार कोई भी बुद्धिमान् नहीं करते, किन्तु **जिसको आप्त अर्थात् सत्यमानी, सत्यवादी, सत्यकारी, परोपकारक, पक्षपातरहित विद्वान् मानते हैं, वही सबको मन्तव्य और जिसको नहीं मानते, वह अमन्तव्य होने से प्रमाण के योग्य नहीं होता।**

[मेरा अपना मन्तव्य क्या है?]

अब जो वेदादि सत्यशास्त्र और ब्रह्मा से लेकर जैमिनि मुनि पर्यन्तों के माने हुए ईश्वरादि पदार्थ, जिनको कि मैं मानता हूँ, सब सज्जन महाशयों के सामने प्रकाशित करता हूँ।

मैं अपना मन्तव्य उसी को जानता हूँ कि जो तीन-काल में सबको एक-सा मानने योग्य है। **मेरा, कोई नवीन कल्पना वा मतमतान्तर चलाने का लेशमात्र भी अभिप्राय नहीं है, किन्तु जो सत्य है उसको मानना-मनवाना और जो असत्य है उसको छोड़ना और छुड़वाना मुझको अभीष्ट है।**

[धर्मयुक्त बातों को छोड़ देना मनुष्यधर्म नहीं है]

यदि मैं पक्षपात करता, तो आर्यावर्त में प्रचरित मतों में से किसी एक मत का आग्रही होता। किन्तु जो-जो आर्यावर्त वा अन्य देशों में अधर्मयुक्त चाल-चलन है उसका स्वीकार [नहीं करता] और जो धर्मयुक्त बातें हैं उनका त्याग नहीं करता, न करना चाहता हूँ; क्योंकि ऐसा करना मनुष्यधर्म से बहिः है।

[सच्चा मनुष्य कौन कहलाता है?]

मनुष्य उसी को कहना कि जो मननशील होकर स्वात्मवत् अन्यों के सुख-दुःख और हानि-लाभ को समझे। अन्यायकारी बलवान् से भी न डरे और धर्मात्मा निर्बल से भी डरता रहे। इतना ही नहीं, किन्तु अपने सर्वसामर्थ्य से धर्मात्माओं, कि चाहे वे महा-अनाथ, निर्बल और गुणरहित हों, उनकी रक्षा, उन्नति, प्रियाचरण और अधर्मी चाहे चक्रवर्ती, सनाथ, महाबलवान् और गुणवान् भी हो, तथापि उसका नाश, अवनति और अप्रियाचरण सदा किया करे; अर्थात् जहां तक हो सके वहां तक अन्यायकारियों के बल की हानि और न्यायकारियों के बल की उन्नति सर्वथा किया करे। इस काम में चाहे उसको

कितना ही दारुण दुःख प्राप्त हो, चाहे प्राण भी भले ही जावें, परन्तु इस मनुष्यपनरूप धर्म से पृथक् कभी न होवे।

[भर्तृहरि जी आदि महापुरुषों का भी यही मत है]

इसमें श्रीमान् महाराजे भर्तृहरि, व्यास जी और मनु आदि ने श्लोक लिखे हैं, उनका लिखना उपयुक्त समझकर लिखता हूँ—

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा
न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः॥१॥

भर्तृहरिशतक [नीतिशतक ८५]

न जातु कामान्न भयान्न लोभाद् धर्मं त्यजेज्जीवितस्यापि हेतोः।
धर्मो नित्यः सुखदुःखे त्वनित्ये जीवो नित्यो हेतुरस्य त्वनित्यः॥२॥

महाभारत [उद्योगपर्व-प्रजागरपर्व अ० ४०। श्लोक ११-१२]

एक एव सुहृद्धर्मो निधनेऽप्यनुयाति यः।
शरीरेण समं नाशं सर्वमन्यद्धि गच्छति॥३॥

मनु० [८। १७]

सत्यमेव जयते नानृतं सत्येन पन्था विततो देवयानः।
येनाऽऽक्रमन्त्यृषयो ह्याप्तकामा यत्र तत्सत्यस्य परमं निधानम्॥४॥

मुण्डकोपनिषद् [३। १। ६]

न हि सत्यात्परो धर्मो नानृतात्पातकं परम्।
नहि सत्यात्परं ज्ञानं तस्मात्सत्यं समाचरेत्॥५॥

[प्रथम पंक्ति, महाभारत, शान्ति० १६२.२४]

इन्हीं महाशयों के श्लोकों के अभिप्राय के अनुकूल निश्चय रखना सबको योग्य है।

[ऋषि द्वारा स्वमन्तव्यों का संक्षेप में उल्लेख]

अब मैं जिन-जिन पदार्थों को जैसा-जैसा मानता हूँ, उन-उन का वर्णन संक्षेप से यहाँ करता हूँ कि जिनका विशेष व्याख्यान इस ग्रन्थ में अपने-अपने प्रकरण में कर दिया है। उनमें से—

१. प्रथम **'ईश्वर'** कि जिसको ब्रह्म, परमात्मा-आदि नामों से कहते हैं; जो सच्चिदानन्द-आदि लक्षणयुक्त है; जिसके गुण, कर्म, स्वाभाव पवित्र हैं; जो सर्वज्ञ, निराकार, सर्वव्यापक, अजन्मा, अनन्त, सर्वशक्तिमान्, दयालु, न्यायकारी, सब सृष्टि का कर्त्ता-धर्त्ता-हर्त्ता, सब जीवों को कर्मानुसार सत्य-न्याय से फलदाता आदि लक्षणयुक्त है; उसी को परमेश्वर मानता हूँ।

२. **[चार वेद]** 'चारों वेदों' को [अर्थात्] विद्या-धर्म-युक्त, ईश्वरप्रणीत संहिताओं=मन्त्रभाग को निर्भ्रान्त, स्वतःप्रमाण मानता हूँ अर्थात् जो स्वयं प्रमाणरूप हैं कि जिसके प्रमाण होने में किसी अन्य ग्रन्थ की अपेक्षा न हो, जैसे सूर्य वा प्रदीप स्वयं अपने स्वरूप के स्वतः प्रकाशक और पृथिव्यादि के भी प्रकाशक होते हैं, वैसे चारों वेद हैं। और **चारों वेदों के ब्राह्मण, छः अङ्ग, छः उपाङ्ग, चार उपवेद और वेदों की ११२७ (ग्यारह-सौ सत्ताईस) शाखायें जो कि वेदों के व्याख्यानरूप ब्रह्मादि महर्षियों के बनाये ग्रन्थ हैं, उनको परतःप्रमाण अर्थात् वेदों के**

अनुकूल होने से प्रमाण और जो इनमें वेदविरुद्ध वचन हैं उनका अप्रमाण करता हूँ।

३. **[धर्म-अधर्म]** जो पक्षपातरहित, न्यायाचरण-सत्यभाषणादि- युक्त ईश्वराज्ञा वेदों से अविरुद्ध है, उसको **'धर्म'** और जो पक्षपातसहित, अन्यायाचरण, मिथ्याभाषणादि ईश्वराज्ञा-भंग वेदविरुद्ध है, उसको **'अधर्म'** मानता हूँ।

४. **[जीव]** जो इच्छा-द्वेष, सुख-दुःख और ज्ञानादि गुणयुक्त, अल्पज्ञ, नित्य है, उसी को **'जीव'** मानता हूँ।

५. **'जीव और ईश्वर'** स्वरूप और वैधर्म्य से भिन्न और व्याप्य-व्यापक और साधर्म्य से अभिन्न हैं अर्थात् जैसे आकाश से मूर्त्तिमान् द्रव्य कभी भिन्न न था, न है, न होगा और न कभी एक था, न है, न होगा, इसी प्रकार परमेश्वर और जीव को व्याप्य-व्यापक, उपास्य-उपासक और पिता-पुत्रवत् आदि सम्बन्धयुक्त मानता हूँ।

६. **'अनादि पदार्थ'** तीन हैं। एक ईश्वर, द्वितीय जीव, तीसरा प्रकृति अर्थात् जगत् का कारण, इन्हीं को नित्य भी कहते हैं। जो नित्य पदार्थ हैं उनके गुण, कर्म, स्वभाव भी नित्य हैं।

७. **'प्रवाह से अनादि'** जो संयोग से द्रव्य, गुण, कर्म उत्पन्न होते हैं वे वियोग के पश्चात् नहीं रहते, परन्तु जिससे प्रथम संयोग होता है वह सामर्थ्य उनमें अनादि है, और उससे पुनरपि संयोग होगा तथा वियोग भी, इन तीनों को प्रवाह से अनादि मानता हूँ।

८. **'सृष्टि'** उसको कहते हैं जो पृथक् द्रव्यों का ज्ञान-युक्ति-पूर्वक मेल होकर नानारूप बनना।

९. **'सृष्टि का प्रयोजन'** यही है कि जिसमें ईश्वर के सृष्टिनिमित्त गुण, कर्म, स्वभाव का साफल्य होना। जैसे किसी ने किसी से पूछा कि 'नेत्र किसलिये हैं?' उसने कहा, 'देखने के लिये।' वैसे ही सृष्टि करने के ईश्वर के सामर्थ्य की सफलता सृष्टि करने में है और जीवों के कर्मों का यथावत् भोग कराना आदि भी।

१०. **'सृष्टि सकर्तृक'** है। इसका कर्त्ता पूर्वोक्त ईश्वर है। क्योंकि सृष्टि की रचना देखने, जड़ पदार्थ में अपने आप यथायोग्य बीजादि स्वरूप बनने का सामर्थ्य न होने से सृष्टि का **'कर्त्ता'** अवश्य है।

११. **'बन्ध'** सनिमित्तक अर्थात् अविद्यादि के निमित्त से है। जो-जो पाप-कर्म, ईश्वरभिन्नोपासना, अज्ञानादि, ये सब दुःख फल करनेवाले हैं इसीलिये यह **'बन्ध'** है कि जिसकी इच्छा नहीं और भोगना पड़ता है।

१२. **'मुक्ति'** अर्थात् सब दुःखों से छूटकर बन्धरहित, सर्वव्यापक ईश्वर और उसकी सृष्टि में स्वेच्छा से विचरना, नियत समय पर्यन्त मुक्ति के आनन्द को भोगके पुनः संसार में आना।

१३. **'मुक्ति के साधन'** ईश्वरोपासना अर्थात् योगाभ्यास, धर्मानुष्ठान, ब्रह्मचर्य से विद्याप्राप्ति, आप्त विद्वानों का संग, सत्यविद्या, सुविचार और पुरुषार्थ आदि हैं।

१४. **'अर्थ'** जो धर्म ही से प्राप्त किया जाय। और जो अधर्म से सिद्ध होता है उसको **'अनर्थ'** कहते हैं।

१५. **'काम'** वह है कि जो धर्म और अर्थ से प्राप्त किया जाय।

१६. **'वर्णाश्रम'** गुण-कर्मों के योग से मानता हूँ।

१७. **'राजा'** उसी को कहते हैं, जो शुभ गुण-कर्म-स्वभाव से प्रकाशमान, पक्षपातरहित, न्यायधर्म का सेवी, प्रजाओं में पितृवत् वर्त्ते और उनको पुत्रवत् मानके उनकी उन्नति और सुख बढ़ाने में सदा यत्न किया करे।

१८. **‘प्रजा’** उसको कहते हैं कि जो पवित्र गुण, कर्म, स्वभाव को धारण करके पक्षपातरहित, न्यायधर्म के सेवन से राजा और प्रजा की उन्नति चाहती हुई, राजविद्रोह-रहित, राजा के साथ पुत्रवत् वर्ते।

१९. **[न्यायकारी]** जो सदा विचारकर असत्य को छोड़ सत्य का ग्रहण करे, अन्यायकारियों को हटावे और न्यायकारियों को बढ़ावे, अपने आत्मा के समान सबका सुख चाहे, उसको **‘न्यायकारी’** मानता हूँ।

२०. **‘देव’** विद्वानों को, और अविद्वानों को **‘असुर’**, पापियों को **‘राक्षस’**, अनाचारियों को **‘पिशाच’** मानता हूँ।

२१. **[देवपूजा]** उन्हीं विद्वानों, माता, पिता, आचार्य, अतिथि, न्यायकारी राजा और धर्मात्मा जन, पतिव्रता स्त्री, स्त्रीव्रत पति का सत्कार करना **‘देवपूजा’** कहाती है, इससे विपरीत **‘अदेवपूजा’** है। इन्हीं मूर्तियों की पूजा कर्त्तव्य, [और] इन मूर्त्तियों से इतर जड़, पाषाणादि मूर्तियों को सर्वथा अपूज्य समझता हूँ।

२२. **‘शिक्षा’** जिससे विद्या, सभ्यता, धर्मात्मता, जितेन्द्रियतादि की बढ़ती होवे और अविद्यादि दोष छूटें, उसको शिक्षा कहते हैं।

२३. **‘पुराण’** जो ब्रह्मादि के बनाये ‘ऐतरेय’ आदि ब्राह्मण पुस्तक हैं, उन्हीं को पुराण, इतिहास, कल्प, गाथा और नाराशंसी नाम से मानता हूँ, अन्य **‘भागवत’** आदि को नहीं।

२४. **‘तीर्थ’** जिनसे दुःखसागर से पार उतरें कि जो सत्यभाषण, विद्या, सत्संग, यमादि योगाभ्यास, पुरुषार्थ, विद्यादानादि शुभ कर्म हैं, उहीं को तीर्थ समझता हूँ; इतर जल-स्थलादि को नहीं।

२५. **[पुरुषार्थ]** पुरुषार्थ ‘प्रारब्ध से बड़ा’ इसलिये है कि जिससे संचित प्रारब्ध बनते, जिसके सुधरने से सब सुधरते और जिसके बिगड़ने से सब बिगड़ते हैं। इसी से प्रारब्ध की अपेक्षा पुरुषार्थ बड़ा है।

२६. **‘मनुष्य’** को सबसे यथायोग्य, स्वात्मवत् सुख-दुःख, हानि-लाभ में वर्त्तना श्रेष्ठ; अन्यथा वर्त्तना बुरा समझता हूँ।

२७. **‘संस्कार’** उसे कहते हैं कि जिससे शरीर, मन और आत्मा उत्तम होवे। वह निषेकादि-श्मशानान्त सोलह प्रकार का है। इसको कर्त्तव्य समझता हूँ और दाह के पश्चात् मृतक के लिये कुछ भी न करना चाहिये।

२८. **‘यज्ञ’** उसको कहते हैं कि जिसमें विद्वानों का सत्कार, यथायोग्य शिल्प अर्थात् रसायन जो कि **‘पदार्थविद्या’**, उससे उपयोग और विद्यादि

शुभगुणों का दान, अग्निहोत्रादि जिनसे वायु, वृष्टि, जल, ओषधि की पवित्रता करके सब जीवों को सुख पहुंचाना है, उसको उत्तम समझता हूँ।

२९. **[आर्य और दस्यु]** जैसे **'आर्य'** श्रेष्ठ और **'दस्यु'** दुष्ट मनुष्यों को कहते हैं, वैसे ही मैं भी मानता हूँ।

३०. **'आर्यावर्त देश'** इस भूमि का नाम इसलिये है कि जिसमें आदिसृष्टि से पश्चात् आर्य लोग निवास करते हैं । परन्तु इसकी अवधि उत्तर में **'हिमालय'** , दक्षिण में **'विन्ध्याचल'** , पश्चिम में **'अटक'** और पूर्व में **'ब्रह्मपुत्रा'** नदी है। इन चारों के बीच में जितना देश है, उसी को **'आर्यावर्त'** कहते हैं और जो इसमें सदा से रहते हैं, उनको भी **'आर्य'** कहते हैं।

३१. **[आचार्य]** जो सांगोपांग **'वेदविद्याओं'** का अध्यापक, सत्याचार का ग्रहण और मिथ्याचार का त्याग करावे, वह **'आचार्य'** कहाता है।

३२. **'शिष्य'** उसको कहते हैं कि जो सत्य शिक्षा और विद्या को ग्रहण करने योग्य, धर्मात्मा, विद्याग्रहण की इच्छा और आचार्य का प्रिय करनेवाला है।

३३. **[गुरु]** गुरु, माता, पिता और जो सत्य का ग्रहण करावे और असत्य को छुड़ावे, वह भी **'गुरु'** कहाता है।

३४. **'पुरोहित'** जो यजमान का हितकारी, सत्योपदेष्टा होवे।

३५. **'उपाध्याय'** जो वेदों के एकदेश वा अङ्गों को पढ़ाता हो।

३६. **'शिष्टाचार'** जो धर्माचरणपूर्वक ब्रह्मचर्य से विद्याग्रहण कर, प्रत्यक्षादि प्रमाणों से सत्यासत्य का निर्णय करके, सत्य का ग्रहण, असत्य का परित्याग करना है, यही शिष्टाचार, और जो इसको करता है वह **'शिष्ट'** कहाता है।

३७. **[प्रमाण]** प्रत्यक्षादि आठ **'प्रमाणों'** को मानता हूँ।

३८. **'आप्त'** कि जो यथार्थवक्ता, धर्मात्मा, सबके सुख के लिये प्रयत्न करता है, उसी को **'आप्त'** कहता हूँ।

३९. **'परीक्षा'** पाँच प्रकार की है। इसमें से प्रथम— जो ईश्वर, उसके गुण-कर्म-स्वभाव और **'वेदविद्या'** ; दूसरी— प्रत्यक्षादि आठ प्रमाण; तीसरी— सृष्टिक्रम; चौथी— आप्तों का व्यवहार, और पांचवीं— अपने आत्मा की पवित्रता [और] विद्या। इन पाँच परीक्षाओं से सत्यासत्य का निर्णय करके सत्य का ग्रहण, असत्य का परित्याग करना चाहिये।

४०. **'परोपकार'** जिससे सब मनुष्यों के दुराचार-दुःख छूटें, श्रेष्ठाचार और सुख बढ़े; उसके करने को **'परोपकार'** कहता हूँ।

४१. **'स्वतन्त्र'—'परतन्त्र'**— जीव अपने कामों में स्वतन्त्र और कर्मफल भोगने में ईश्वर की व्यवस्था से परतन्त्र [है], वैसे ही ईश्वर अपने सत्याचार आदि काम करने में स्वतन्त्र है।

४२. **'स्वर्ग'** नाम सुख-विशेष भोग और उसकी सामग्री की प्राप्ति का है।

४३. **'नरक'** जो दुःख-विशेष भोग और उसकी सामग्री को प्राप्त होना है।

४४. **'जन्म'** जो शरीर-धारण कर प्रकट होना; सो पूर्व, पर और मध्य भेद से तीनों प्रकार के मानता हूँ।

४५. **[जन्म-मृत्यु]** [आत्मा से] शरीर के सयोग का नाम **'जन्म'** और वियोग-मात्र को **'मृत्यु'** कहते हैं।

४६. **'विवाह'**— जो नियमपूर्वक, प्रसिद्धि से, अपनी इच्छा करके पाणिग्रहण करना [है, वह] **'विवाह'** कहाता है।

४७. **'नियोग'** विवाह के पश्चात्, पति के मर जाने आदि वियोग में अथवा नपुंसकत्वादि स्थिर रोगों में स्त्री, वा पुरुष [द्वारा], आपत्काल में,

स्ववर्ण वा अपने से उत्तम वर्णस्थ पुरुष वा स्त्री के साथ नियोग कर सन्तानोत्पत्ति करना।

४८. **'स्तुति'** गुण-कीर्तन-श्रवण और ज्ञान होना। इसका फल प्रीति आदि होते हैं।

४९. **'प्रार्थना'** अपने सामर्थ्य के उपरान्त ईश्वर के सम्बन्ध से जो विज्ञान आदि प्राप्त होते हैं, उनके लिये ईश्वर से याचना करनी। और इसका फल निरभिमान आदि होता है।

५०. **'उपासना'** जैसे ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव पवित्र हैं वैसे अपने करना। ईश्वर को सर्वव्यापक, अपने को व्याप्य जानके, ईश्वर के समीप हम और हमारे समीप ईश्वर है, ऐसा निश्चय योगाभ्यास से साक्षात् करना, उपासना कहाती है। इसका फल ज्ञान की उन्नति आदि है।

५१. **'सगुणनिर्गुणस्तुतिप्रार्थनोपासना'**— जो-जो गुण परमेश्वर में हैं उनसे युक्त और जो-जो गुण नहीं हैं उनसे पृथक् मानकर [परमेश्वर की] प्रशंसा करना **'सगुण-निर्गुण-स्तुति'** कहाती है। और शुभ गुणों के ग्रहण की ईश्वर से इच्छा और दोष छुड़ाने के लिये परमात्मा का सहाय चाहना **'सगुण-निर्गुण-प्रार्थना'**; और सब गुणों से सहित तथा सब दोषों से रहित परमेश्वर को मानकर अपने आत्मा को उसके और उसकी आज्ञा के अर्पण कर देना **'सगुण-निर्गुण-उपासना'** कहाती है।

[ये सिद्धान्त मेरे ग्रन्थों में यत्र-तत्र लिखे हैं]

ये संक्षेप से स्वसिद्धान्त दिखला दिये हैं। इनकी विशेष व्याख्या इसी **'सत्यार्थप्रकाश'** के प्रकरण-प्रकरण में है, तथा **'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका'** आदि ग्रन्थों में भी लिखी है। अर्थात् जो-जो बात सबके सामने माननीय है, उसको मानता, अर्थात् जैसा कि सत्य बोलना सबके सामने अच्छा, और मिथ्या बोलना बुरा है, ऐसे सिद्धान्तों को स्वीकार करता हूँ।

[मतमतान्तर के झगड़ों को मैं प्रसन्न नहीं करता]

और जो मतमतान्तरों के परस्परविरुद्ध झगड़े हैं, उनको मैं प्रसन्न नहीं करता; क्योंकि इन्हीं मत-वालों ने अपने मतों का प्रचार कर मनुष्यों को फसाके परस्पर शत्रु बना दिया है। इस बात को काट, सर्व सत्य का प्रचार कर, सबको ऐक्यमत में करा, द्वेष छुड़ा, परस्पर में दृढ़प्रीतियुक्त कराके, सबसे सबको सुख लाभ पहुँचाने के लिये मेरा प्रयत्न और अभिप्राय है। सर्वशक्तिमान् परमात्मा की कृपा, साहाय्य और आप्तजनों की सहानुभूति से **यह सिद्धान्त सर्वत्र भूगोल में शीघ्र प्रवृत्त हो जावे जिससे सब लोग सहज से धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की सिद्धि करके, सदा उन्नत और आनन्दित होते रहैं; यही मेरा मुख्य प्रयोजन है।**

अलमतिविस्तरेण बुद्धिमद्वर्येषु।

ओ३म् शन्नों मित्रः शं वरुंणः। शन्नों भवत्वर्य्यमा।शन्न इन्द्रो बृहस्पतिः। शन्नो विष्णुंरुरुक्रमः॥
नमो ब्रह्मंणे। नमंस्ते वायो। त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मांसि। त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्मांवादिषम्। ऋतमंवादिषम्। सत्यमंवादिषम्। तन्मामांवीत्। तद्वक्तारंमावीत्। आवीन्माम्। आवींद्वक्तारंम्।
ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

[तैत्तिरीय आरण्यक ७। १२]

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्याणां परमविदुषां श्रीविरजानन्दसरस्वतीस्वामिनां शिष्येण श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना विरचितः, स्वमन्तव्यामन्तव्यसिद्धान्तसमन्वितः, सुप्रमाणयुक्तः, सुभाषाविभूषितः, सत्यार्थप्रकाशोऽयं ग्रन्थः सम्पूर्तिमगमत्॥